नमस्ते जी

ऋषि दयानंद द्वारा प्रचारित वैदिक विचारधारा ने सैकड़ो हृदय को क्रन्तिकारी विचारो से भर दिया | जो वेद उस काल में विचारो से भी भुला दिए गए थे | ऋषि दयानंद ने उन हृदयों को वेदों के विचारो से ओतप्रोत कर दिया और देश में वेद गंगा बहने लगी | ऋषि के अपने अल्प कार्य काल में समाज की आध्यात्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विचार धारा को बदल के रख दिया | ऋषि के बाद भी कही वर्षो तक यह परिपाटी चली पर यह वैचारिक परिवर्तन पुनः उसी विकृति की और लौट रहा है | और इसी विकृति को रोकने के लिए वैदिक विद्वान प्रो॰ राजेंद्र जी जिज्ञासु के सानिध्य में "पंडित लेखराम वैदिक मिशन" संस्था का जन्म हुआ है | इस संस्था का मुख्य उद्देश्य वेदों को समाज रूपी शरीर के रक्त धमनियों में रक्त के समान स्थापित करना है | यह कार्य ऋषि के जीवन का मुख्य उद्देश्य था और यही इस संस्था का भी मुख्य उद्देश्य है | संस्था के अन्य उद्देश्यों में सम्लित है साहित्य का सृजन करना | जो दुर्लभ आर्य साहित्य नष्ट होने की और अग्रसर है उस साहित्य को नष्ट होने से बचाना और उस साहित्य को क्रम बद्ध तरीके से हमारे भाई और बहनों के समक्ष प्रस्तुत करना जिससे उनकी स्वाध्याय में रूचि बढ़े और वे तुलनात्मक अध्यन कर सकें जिससे उनकी स्वधर्म में रूचि बढ़े और अन्य मत मतान्तरो की जानकारी उन्हें प्राप्त हो और वे विधर्मियो द्वारा लगाये जा रहे विभिन्न आक्षेपों का उत्तर दे सकें विधर्मियो से स्वयं भी बचें और अन्यो की भी सहयता करें | संस्था का उद्देश्य है समाज के समक्ष हमारे गौरव शाली इतिहास को प्रस्तुत करना जिससे हमारा रक्त जो ठंडा हो गया है वह पुनः गर्म हो सके और हम हमारे इतिहास पुरुषो का मान सम्मान करें और उनके बताये गये नीतिगत मार्ग पर चलें | संस्था का अन्य उद्देश्य गौ पालन और गौ सेवा को बढ़ावा देना जिससे पशुओ के प्रति प्रेम, दया का भाव बढ़े और इन पशुओ की हत्या बंद हो, समाज में हो रहे परमात्मा के नाम पर पाखण्ड, अन्धविश्वास, अत्याचार को जड़ से नष्ट करना और परमात्मा के शुद्ध वैदिक स्वरुप को समाज के समक्ष रखना, हमारे युवा शक्ति को अनेक भोग, विबिन्न व्यसनों, छल, कपट इत्यादि से बचाना |

इन कार्यो को हम अकेले पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते पर, यह सारे कार्य है तो बड़े विशाल और व्यापक पर अगर संस्था को आप का साथ मिला तो बड़ी सरलता से पूर्ण किये जा सकते है | हमारा समजिक ढाचा ऐसा है की हम प्रत्येक कार्य की लिए एक दुसरे पर निर्भर है | आशा करते है की इस कार्य में आप हमारी तन, मन से साहयता करेंगे | संस्था द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट www.aryamantavya.in और www.vedickranti.in पर आप संस्था द्वारा स्थापित संकल्पों सम्बन्धी लेख पड़ सकते है और भिन्न-भिन्न वैदिक साहित्य को निशुल्क डाउनलोड कर सकते है | कृपया स्वयं भी जाये और अन्यो को भी सूचित करे यही आप की हवी होंगी इस यज्ञ में जो आप अवश्य करेंगे यही परमात्मा से प्राथना करते है |

जिन सज्जनों के पास दुर्लभ आर्य साहित्य है एवं वे उसे संरक्षित करने में संस्था की सहायता करना चाहते हैं वो कृपया निम्न पते पर सूचित करें

ptlekhram@gmail.com

धन्यवाद् !

पंडित लेखराम वैदिक मिशन

आर्य मंतव्य टीम

AryaMantavya
Make The Whole World Noble

ओ३म्

ऋग्वेदभाष्यम्

(अथ नवमं मण्डलम्)

(१-११४ सूक्तम्)

एवं

(दशमं मण्डलम्)

(१-३६ सूक्तम्)

षष्ठो भागः

भाष्यकार :

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार

अनुष्ठानकर्त्ता :

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राज०)-३२२२३०

ISBN N.-978-93-80209-19-7

प्रकाशक : **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास**
"अभ्युदय" भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग,
स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)–३२२ २३०
दूरभाष : ०९३५२६–७०४४८
चलभाष : ०–९४१४०–३४०७२, ०–९८८७४–५२९५९

संस्करण : स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द सरस्वती जन्म एवं स्मृति माह
जनवरी, २०११ ई०

मूल्य : ३५०.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. **श्री हरिकिशन ओम्प्रकाश**
३९९, गली मन्दिरवाली, नया बाँस, दिल्ली–११०००६,
चलभाष : ०९३५०९९३४५५

२. **श्री गणेशदास-गरिमा गोयल,** २७०४, प्रेममणि-निवास,
नया बाजार, दिल्ली–११० ००६, चलभाष : ०९८९९७५९००२

३. **श्री राजेन्द्रकुमार,** १८, विक्रमादित्यपुरी, स्टेट बैंक कॉलोनी,
बरेली (उ०प्र०) चलभाष : ०९८९७८८०९३०

शब्द-संयोजक : **आर्य लेजर प्रिंटस,** हिण्डौन सिटी, राजस्थान

मुद्रक : **राधा प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली–३१

वेदनिधि के सहयोगी
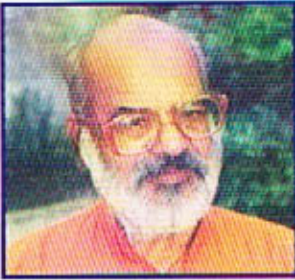
स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द सरस्वती, नई दिल्ली

आचार्य श्री आनन्द पुरुषार्थी होशंगाबाद (म०प्र०)

श्री हरिश्चन्द्र साहित्यार्थी दाहोद (गुजरात)

प्रिय नीतेश, आपकी स्मृति में– श्रीमती नलिनी गोयल-श्री मदनमोहन गोयल

श्री ओमप्रकाश चतुर्वेदी आगरा (उ०प्र०)

श्रद्धेय पतिदेव डॉ० बी०एल० मित्तल आपकी स्मृति में, प्रतिभा मित्तल
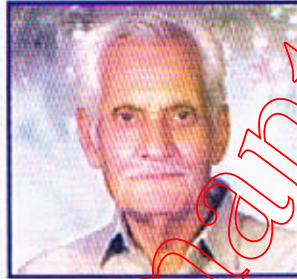
श्री मित्रावसु मॉडल टाउन, दिल्ली

श्री कृष्ण चोपड़ा सोलिहुल (यू०के०)

श्रीमती रक्षा चोपड़ा सोलिहुल (यू०के०)

श्री गोपालचन्द्र बर्मिंघम (यू०के०)

श्री राधेश्याम, दिल्ली (श्री मनोहर विद्यालंकार)

स्वामी श्री श्रद्धानन्द सरस्वती अलीगढ़ (उ०प्र०)

अथ नवमं मण्डलम्

नवम काण्ड के प्रथम सूक्त का ऋषि 'मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः' है। ऋग्वेद का प्रारम्भ भी इसी ऋषि के सूक्त से होता है। यह सोमरक्षण की कामना करता है। सोमरक्षण के द्वारा मधुर ही इच्छाओंवाला यह बनता है। किसी के भी अहित की कामना यह नहीं करता। यह प्रार्थना करता है कि—

प्रथमोऽनुवाकः

[१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्वादिष्ठ-मदिष्ठ' सोम का पान

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **पवस्व**=हमारे अन्दर गतिवाला हो (द० यजु० ७।२८) अथवा हमारे जीवन को पवित्र कर (य० ८।६३ द०)। उस धारा से हमें प्राप्त हो, जो कि **स्वादिष्ठया**=हमारे जीवन को अत्यन्त स्वाद व आनन्दवाला बनानेवाली है, जिसके द्वारा हमारी वाणी से मधुर ही शब्द उच्चारित होते हैं, जिससे मैं मधु सदृश ही बन जाता हूँ 'भूयासं मधुसन्दृशः'। उस धारा से तू हमें प्राप्त हो, जो कि **मदिष्ठया**=हमें आनन्दित करनेवाली है। सोमरक्षण से नीरोगता प्राप्त होकर जीवन उल्लासमय बनता है। (२) यह सोम **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **इन्द्राय**=एक जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पातवे**=शरीर के अन्दर ही पीने के लिये होता है। यह सोम जितेन्द्रिय पुरुष के द्वारा शरीर में ही व्याप्त किया जाता है। शरीर में व्याप्त किया गया यह सोम जीवन को स्वादिष्ठ व मदिष्ठ बनानेवाला होता है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर सोम को शरीर में ही व्याप्त करें। यह हमारे जीवन को स्वादिष्ठ व मदिष्ठ बनायेगा।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रक्षोहा विश्वचर्षणि' सोम

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्। द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित सोम **रक्षोहा**=शरीरस्थ रोगकृमियों का नाश करनेवाला है। रोगकृमि रक्षस् हैं, ये अपने रमण के लिये हमारा क्षय करते हैं। रक्षित हुआ-हुआ वीर्य (सोम) इन्हें विनष्ट करता है। **विश्वचर्षणिः**=यह सोम विश्वद्रष्टा है, ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर यह ज्ञान को दीप्त करता है और हमें सब तत्त्वों के दर्शन के योग्य बनाता है। यह सोम **योनिम्**=अपने उत्पत्ति-स्थानभूत शरीर को **अभि आसदत्**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है। प्राणसाधना के होने पर यह ऊर्ध्वगतिवाला होकर शरीर में ही व्याप्त हो जाता है। (२) इसके शरीर में व्याप्त होने से यह शरीर **अयो हतम्**=(हन् गतौ) लोहकणों से व्याप्त होता है, रुधिर में लोह कणों की (Iron) कमी नहीं
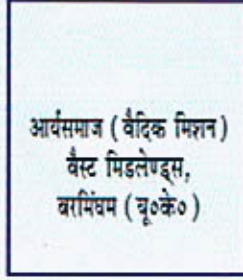
हो जाती। यह शरीर **द्रुणा सधस्थम्**=(द्रु गतौ) शरीर की सब नाड़ियों में संचरित होनेवाले रुधिर के साथ स्थित होता है (सधः सह), अर्थात् शरीर में रुधिर की कमी नहीं होती।

भावार्थ—रक्षित सोम रोगकृमियों को विनष्ट करता है, हमारे ज्ञान को दीप्त बनाता है। इसके रक्षण से शरीर में लोहकणों व रुधिर की न्यूनता नहीं होती।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वरिवोधातम' सोम

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम्॥ ३ ॥

(१) हे सोम! तू रक्षित हुआ-हुआ शरीर में **वरिवोधातमः**=अधिक से अधिक वरणीय वसुओं (धनों) का धारण करनेवाला **भव**=हो। **मंहिष्ठः**=दातृतम हो, हमें दान की वृत्तिवाला बना। सोम-रक्षण करनेवाला पुरुष उदार बनता है। **वृत्रहन्तमः**=तू वासनाओं का अधिक से अधिक विनाशक हो। (२) हे सोम! तू ही **मघोनाम्**=इन पापशून्य ऐश्वर्यवालों के (मा-अघ) **राधः**=कार्यसाधक ऐश्वर्य को **पर्षि**=प्राप्त करानेवाला हो। सोमरक्षण से वासना विनष्ट होती है, शक्ति का वर्धन होता है। इस प्रकार मनुष्य आवश्यक ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाला बनता है, पर उन ऐश्वर्यों को वह सुपथ से ही कमाता है।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम हमें उदार वृत्तिवाला बनाता है। तब वासनामय जीवनवाले न होने से हम सुपथ से ही धन कमाते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम से 'वीति-वाज व श्रव' की प्राप्ति

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा। अभि वाजमुत श्रवः॥ ४ ॥

(१) 'अन्धसस्पत इति सोमस्य पत इत्येतत्' (श० ९।१।२।४) इस वाक्य के अनुसार 'अन्धस्' सोम है। यह आध्यायनीय-अत्यन्त ध्यान देने योग्य होता है। इसके रक्षण से हमारी वृत्तियाँ सुन्दर बनती हैं। **अन्धसा**=इस सोम के रक्षण से तू **महानाम्**=महान् **देवानाम्**=दिव्य वृत्तिवाले पुरुषों के **वीतिम्**=(Light, cleaning) ज्ञान व पवित्रता को **अभि अर्ष**=अभिमुख्येन प्राप्त हो। ज्ञान और पवित्रता को प्राप्त करके तू भी देव बन। (२) तू इस सोम के रक्षण से **वाजं अभि**=शक्ति की ओर जानेवाला हो, शक्ति का तू अपने अन्दर रक्षण कर। **उत**=और **श्रवः**=, (Fame, glory) यश की ओर तू जानेवाला बन, तेरा जीवन बड़ा यशस्वी हो।

भावार्थ—सोम के रक्षण से ज्ञान व पवित्रता को प्राप्त करके हम देव बनते हैं। सोम का रक्षण हमें शक्ति का यश प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोमरक्षण से आप्तकामता

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे। इन्दो त्वे न आशसः॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्रो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! (इन्द् To be powerful) **त्वां अच्छा**=तेरी ओर **चरामसि**=हम गतिवाले होते हैं। तुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **तत् इत्**=वह ही **अर्थम्**=हमारा प्रयोजन होता है। हमारे जीवन का यही लक्ष्य होता है कि हम सोम का रक्षण करनेवाले बनें। इसी को जीवन का केन्द्रभूत बिन्दु बनाकर हम सब व्यवहार करते हैं। आहार-विहार ऐसा ही करने का प्रयत्न करते हैं, जो कि इसके रक्षण के अनुकूल हो। (२) हे

इन्दो=सोम! **नः आशसः**=हमारी सब कामनायें **त्वे**=तेरे में ही आधारित हैं। तेरे द्वारा ही हमारी सब कामनायें पूर्ण होती हैं। वस्तुतः सोमरक्षण ही ब्रह्मचर्य कहा है, और यही परमधर्म है 'ब्रह्मचर्यं परोधर्मः' यही सब उत्तम कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है।

भावार्थ—हमारा लक्ष्य सोम का रक्षण हो। इसके रक्षण में ही सब कामनाओं की पूर्ति है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सूर्य दुहिता द्वारा सोम शोधन

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वता तना॥ ६॥

(१) हे मनुष्य! **ते**=तेरे **परिस्रुतं सोमम्**=चारों ओर गति करनेवाले सोम को **सूर्यस्य** दुहिता=सूर्य की दुहिता, अर्थात् श्रद्धा **पुनाति**=पवित्र करती है। 'सूर्य' ज्ञान है, उसकी **दुहिता**=पूरिका (दुह प्रपूरणे) श्रद्धा है। अकेला ज्ञान मनुष्य को ब्रह्म राक्षस बना देता है। मनुष्य उस समय ऐटम बम्ब बनाकर सर्वनाश का उपाय करता है। 'श्रद्धा' ज्ञान की इस कमी को दूर करती है। मस्तिष्क की पूर्ति हृदय से होती है। ज्ञान के श्रद्धा के साथ होने पर शरीर में हम शक्ति का रक्षण करते हैं। सामान्यतः सोम नीचे की ओर प्रवाहवाला होता है। हृदय में श्रद्धा के होने पर वहाँ वासनाएँ नहीं उठतीं, और परिणामतः सोमशक्ति पवित्र बनी रहती है। (२) यह सुरक्षित सोम **वारेण**=शत्रुनिवारक बल से **शश्वता**=(शश प्लुत गतौ) प्लुत गतिवाले **तना**=शक्ति के विस्तार से हमें पवित्र करता है।

भावार्थ—ज्ञान की पूरक श्रद्धा सोम (वीर्य) को पवित्र रखती है। तथा हमें बल तथा स्फूर्तियुक्त शक्ति विस्तार को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अण्वी तथा योषणः (दश)

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश। स्वसारः पार्ये दिवि॥ ७॥

(१) **तम्**=उस सोम को **ईम्**=निश्चय से **अण्वीः**=सूक्ष्म बुद्धियाँ तथा **दश योषणः**=दसों इन्द्रियाँ **समर्ये**=(समर्यं संग्रामनाम नि० २।१७) वासनाओं के साथ संग्राम में **आगृभ्णन्ति**=सर्वथा ग्रहण करती हैं। 'सोम का रक्षण बुद्धि व इन्द्रियों से होता है' इसका अभिप्राय यही है कि सोम का व्यय बुद्धि की दीप्ति व इन्द्रियों की शक्ति के वर्धन में होकर उसका अपव्यय नहीं होता। इन्द्रियों को यहाँ 'योषणः' कहा है 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' बुराइयों को अपने से अलग करनेवाली तथा अच्छाइयों को अपने से मिलानेवाली ये इन्द्रियाँ सोम से ही शक्ति-सम्पन्न बनती हैं। (२) ये बुद्धियाँ व इन्द्रियाँ **स्वसारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली होती हैं (स्व+सृ) तथा उस **दिवि**=ज्ञान प्रकाश में स्थित होती हैं जो कि **पार्ये**=हमें भवसागर से पार करने का साधन बनता है।

भावार्थ—हम स्वाध्याय के द्वारा बुद्धि को सूक्ष्म बनाने का प्रयत्न करें। इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति व यज्ञों में व्यापृत रखें। इस प्रकार सोम का रक्षण करते हुए इस उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करें, विषयों से ऊपर उठें और प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'त्रिधातु-वारण-मधु' सोम

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम्। त्रिधातु वारणं मधु॥ ८॥

(१) **तम्**=उस सोम को **ईम्**=निश्चय से **अग्रुवः**=आगे गतिवाले पुरुष, उन्नतिपथ पर चलनेवाले

पुरुष **हिन्वन्ति**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। उन्नतिपथ पर चलनेवाले सोमरक्षण के लिये स्वभावतः प्रेरित होते हैं। इस सुरक्षित सोम से ही उन्होंने उज्ज्वल होना होता है। और उन्नतिपथ पर चलने की भावना उन्हें वासनाओं का शिकार नहीं होने देती। (२) ये व्यक्ति सोमरक्षण के द्वारा इस **बाकुरम्**=(भासमानं) तेजस्विता से चमकते हुए **दृतिम्**=चर्मपात्र रूप शरीर को **धमन्ति**=तेजस्विता की अग्नि से संयुक्त करते हैं (धा अग्निसंयोगे)। सोमरक्षण इन्हें तेजस्वी व सोत्साह बनाता है। (३) यह सोम **त्रिधातु**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों का धारण करनेवाला है। **वारणम्**=शरीरस्थ सब रोगों का निवारण करनेवाला है। और **मधु**=जीवन को मधुर बनानेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये सदा उन्नतिपथ पर चलने की भावना सहायक है। यह सोम 'त्रिधातु, वारण व मधु' है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'शिशु' सोम

अभीऽ३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्। सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

(१) **इमम्**=इस **शिशुम्**=(शो तनूकरणे) बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले **सोमम्**=सोम को **अघ्न्याः**=अहन्तव्य, अर्थात् जिनका सदा स्वाध्याय करना आवश्यक है, जिन्हें कभी भी त्यागना नहीं चाहिये, **उत**=और जो **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाली वेदवाणियाँ हैं, वे **अभिश्रीणन्ति**=सब प्रकार से परिपक्व करती हैं। इस सोम का ठीक परिपाक होने से ही वस्तुतः शरीर तेजस्वी बनता है और बुद्धि सूक्ष्म होती है। इस सूक्ष्म बुद्धि से ही अन्त में प्रभु का दर्शन होता है। (२) इस **सोमम्**=सोम को **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पातवे**=अपने अन्दर ही व्याप्त करने के लिये ये वेदवाणियाँ ही साधन बनती हैं। इनके स्वाध्याय में लगा हुआ व्यक्ति वासनाओं से बचा रहता है। और इस प्रकार सोमरक्षण में समर्थ होता है।

भावार्थ—वेदवाणियों का अध्ययन हमें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य करता है और सुररिक्षत सोम हमारी बुद्धि को तीव्र करता है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मघा मंहते

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते। शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥

(१) **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **इत्**=निश्चय से **अस्य मदेषु**=इस सोम के उल्लासों में **विश्वा**=सब **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **आजिघ्नते**=सर्वथा विनष्ट करता है। सोमरक्षण उसे शक्तिशाली बनाता है, शक्ति-सम्पन्न बनकर यह वासनाओं से ऊपर उठता है। निर्बल मनुष्य को ही रोग व वासनाएँ सताती हैं। (२) **च**=और **शूरः**=वासनाओं को शीर्ण करनेवाला बनकर यह पुरुष **मघा मंहते**=खूब ही ऐश्वर्यों का दान करनेवाला बनता है। वासनामय जीवनवाला पुरुष दान नहीं कर पाता।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर वासनाओं का विनाश करें व दान की वृत्तिवाले बनें।

सूक्त का मूल विषय 'सोमरक्षण के साधन व फल' है। अगले सूक्त का भी विषय यही है। यह सोमरक्षण करनेवाला निरन्तर मेधा की ओर चलता हुआ 'मेधातिथि' कहलाता है (अत सातत्यगमने)। यह प्रार्थना करता है कि—

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'देववी' सोम

पव॑स्व देव॒वीरति॑ प॒वित्रं॑ सोम॒ रंह्या॑। इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा॒ वि॑श ॥ १ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **देववीः**=दिव्य गुणों की कामनावाली होती हुई **रंह्या**=बड़े वेग से, शीघ्रता से **पवित्रम्**=इस मेधातिथि के पवित्र हृदय को **अतिपवस्व**=अतिशयेन पवित्र करनेवाली हो। सोम के रक्षण से हृदय पवित्र होता है, दिव्य गुणों का वर्धन होता है। (२) हे **इन्दो**=हमारे जीवन को शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **वृषा**=सब सुखों का सेचन करनेवाला होता हुआ **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के अन्दर **आविश**=समन्तात् प्रवेश करनेवाला हो। जितेन्द्रिय बनकर हम वासनाओं को विनष्ट करते हैं। इस वासना-विनाश से सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम जहाँ हमें शक्तिशाली बनाता है, वहाँ हमारे सब सुखों का कारण बनता है।

भावार्थ—सोम के रक्षण से (क) दिव्य गुणों का वर्धन होता है, (ख) शक्ति प्राप्त होती है, (ग) नीरोगता आदि के द्वारा जीवन सुखी बनता है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'द्युम्नवत्तम-धर्णसि' सोम

आ व॑च्यस्व महि॒ प्सरो॒ वृषे॑न्दो द्युम्नव॑त्तमः। आ योनिं॑ धर्णसिः॒ सदः॑ ॥ २ ॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाला है। **महि**=महनीय **प्सरः**=(यं प्सान्ति भुञ्जते स भोगः १।४१।७ द०) भोग को **आवच्यस्व**=(अस्मान् प्रति आगमय) हमारे प्रति प्राप्त कराइये। रक्षित सोम हमारे उत्कृष्ट आनन्द का कारण बनता है। (२) **द्युम्नवत्तमः**=उत्कृष्ट ज्ञान ज्योतिवाला, **धर्णसिः**=शरीर का धारण करनेवाला यह सोम है। हे सोम! तू **योनिम्**=अपने उत्पत्ति-स्थान इस शरीर में ही **आसदः**=आसीन हो। शरीर में ही स्थित हुआ-हुआ तू ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान को दीप्त करनेवाला हो और शरीर को नीरोग बनाकर उसका तू धारण करनेवाला बन।

भावार्थ—रक्षित सोम आनन्द व ज्ञान का वर्धन करता हुआ हमारा धारण करता है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कर्मरूप वस्त्र का धारण

अधु॑क्षत प्रि॒यं मधु॒ धारा॑ सु॒तस्य॑ वे॒धसः॑। अ॒पो व॑सिष्ट सु॒क्रतुः॑ ॥ ३ ॥

(१) **वेधसः**=(A learned man) ज्ञानी पुरुष **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए सोम की **धारा**=धारणशक्ति से **प्रियं मधु**=प्रीतिकर माधुर्य को **अधुक्षत**=अपने में प्रपूरित करते हैं। सोम का रक्षण करते हैं। यह रक्षित सोम उनके जीवन को मधुर बनाता है। (२) इस सोम के रक्षण के लिये **सुक्रतुः**=उत्तम प्रज्ञानवाला व्यक्ति **अपः वसिष्ट**=कर्मों को आच्छादित करता है, कर्मरूपी वस्त्र को धारण करता है। निरन्तर कर्मों में लगे रहने से उसे वासनाएँ नहीं सताती और इस प्रकार उसके लिये सोम के रक्षण का सम्भव होता है।

भावार्थ—निरन्तर कर्मों में लगे रहकर हम सोम का रक्षण करें यह हमारे जीवन में माधुर्य का संचार करेगा।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान-वस्त्र का धारण

म॒हान्तं॑ त्वा म॒हीरन्वापो॑ अर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः । यद्गोभि॑र्वासयि॒ष्यसे॑ ॥ ४ ॥

(१) हे जीव! **यद्**=जब **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **वासयिष्यसे**=तू अपने को आच्छादित करेगा तो **महान्तम्**=महान् बने हुए **त्वा**=तुझ को **महीः**=ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **सिन्धवः आपः**=बहनेवाले रेतःकण **अनु अर्षन्ति**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। 'आपः रेतो भूत्वा०' जल शरीर में रेतःकणों के रूप में रहते हैं। ये सब प्रकार की उन्नतियों का मूल होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। (२) इन रेतःकणों का रक्षण ज्ञान से अपने को आच्छादित करनेवाला ही कर पाता है। स्वाध्याय में लगे रहने से इन रेतःकणों का ज्ञानाग्नि के दीपन में व्यय होता है, और साथ ही हम वासनाओं के आक्रमण से बचे रहते हैं। इस प्रकार यह ज्ञान का आच्छादन सोमरक्षण का साधन बन जाता है।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना सोमरक्षण का उत्तम साधन है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कर्मशील का शुद्ध जीवन

स॒मु॒द्रो अ॒प्सु मा॑मृजे विष्ट॒म्भो ध॒रुणो॑ दि॒वः । सोमः॑ प॒वित्रे॑ अस्म॒युः ॥ ५ ॥

(१) **समुद्रः**=(स+मुद्) मनःप्रसाद के साथ रहनेवाला व्यक्ति **अप्सु**=कर्मों में **मामृजे**=अत्यन्त शुद्ध किया जाता है, कर्मों में लगे रहने से उसका जीवन पवित्र बनता है। **पवित्रे**=पवित्र हृदय के होने पर **सोमः**=यह सोम (वीर्य) **अस्मयुः**=हमारे साथ सम्पर्कवाला होता है (यु मिश्रणे)। संक्षेप में, हम कर्मों में लगे रहें तो हमारा हृदय पवित्र बना रहता है। हृदय के पवित्र होने पर सोम हमारे में सुरक्षित रहता है। (२) यह सुरक्षित सोम **विष्टम्भः**=हमारा विशेषरूप से स्तभन (धारण) करता है, हमारी शक्तियों को क्षीण नहीं होने देता तथा यह सोम **दिवः धरुणः**=ज्ञान का धारण करनेवाला होता है। सोम में ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनना है।

भावार्थ—हम कर्मों में लगे रहकर अपने जीवन को शुद्ध बनाते हैं। उस समय सोम हमारे में सुरक्षित रहता है। यह हमारी शक्तियों को स्थिर रखता है तथा हमारे ज्ञान का वर्धन करता है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'ज्ञानी भक्त' का जीवन

अचि॑क्रद॒द् वृषा॒ हरि॑र्म॒हान्मि॒त्रो न द॑र्श॒तः । सं सूर्ये॑ण रोचते ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोम को अपने में सुरक्षित करनेवाला व्यक्ति **अचिक्रदत्**=प्रातः-सायं प्रभु का आह्वान करता है। यह प्रभु का आराधन ही उसे सोमरक्षण के योग्य बनाता है। सोमरक्षण से यह **वृषा**=शक्तिशाली बनता है। शक्ति के द्वारा **हरिः**=औरों के दुःखों का हरण करनेवाला होता है। पर दुःखहरण से यह **महान्**=महान् होता है, लोक में समादृत होता है। (२) इस समय यह **मित्रः न**=सूर्य के समान **दर्शतः**=दर्शनीय होता है, अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी प्रतीत होता है और **सूर्येण**=ज्ञानसूर्य से **संरोचते**=सम्यक् देदीप्यमान होता है। यह तेजस्वी व ज्ञानी बनकर लोकहित में प्रवृत्त हुआ-हुआ प्रभु का प्रिय होता है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्मरण करें। शक्तिशाली बनकर परदुःखहरण में प्रवृत्त हों। तेजस्वी व ज्ञानी बनकर लोकहित को करनेवाले हों। इस प्रकार हम प्रभु के ज्ञानी भक्त बनें।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानसहचरित उल्लास

गिरस्त इन्दु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! (वीर्य) **ते ओजसा**=तेरे ओज से **अपस्युवः**=हमें कर्मों के साथ जोड़नेवाली, कर्मों की सतत प्रेरणा देनेवाली **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ **मर्मृज्यन्ते**=खूब परिशुद्ध की जाती हैं। वेदवाणियों में कर्मों की प्रेरणा दी गई है, सो ये 'अपस्यु' हैं। इनके परिशुद्ध ज्ञान के लिये ज्ञानाग्नि का दीप्त होना आवश्यक है। यह ज्ञानाग्नि का दीपन सोम के रक्षण से ही होता है, सोम ने ही तो इस ज्ञानाग्नि का ईंधन बनना है। (२) ये वाणियाँ वे हैं **याभिः**=जिनके साथ **मदाय**=उल्लास के लिये तू **शुम्भसे**=सुशोभित होता है। सोम के रक्षण के होने पर जीवन उल्लासमय तो होता ही है। उस उल्लास के साथ ज्ञान की वाणियाँ जुड़ जायें तो उल्लास की शोभा बढ़ जाती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जहाँ उल्लास बढ़ता है, वहां ज्ञानाग्नि भी दीप्त होती है। उल्लास व ज्ञान मिलकर शोभा के कारण बनते हैं।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उल्लास-रोग विनाश-प्रकाश

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे। तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥

(१) हे सोम! **तं त्वा**=उस तुझ को हम **ईमहे**=याचना करते हैं, तेरी प्राप्ति के व रक्षण के लिये हम यत्नशील होते हैं। जो तू **लोककृत्नुम्**=प्रकाश (आलोक) को करनेवाला है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि का दीपन होकर हमारा जीवन प्रकाशमय बनता है। (२) हे सोम! हम इसलिए तेरी प्राप्ति के लिये यत्नशील होते हैं कि **मदाय**=तू हमारे जीवनों में उल्लास का कारण बनता है, उल्लास के लिये होता है। **उ**=और **घृष्वये**=सब शत्रुओं को घर्षण के लिये होता है। सोमरक्षण से सब रोगकृमिरूप शत्रुओं का संहार हो जाता है। इस प्रकार हे सोम! **तव**=तेरी **प्रशस्तयः**=प्रशस्तियाँ (प्रशंसायें) **महीः**=महान् हैं। मानव जीवन के उत्कर्ष में सर्वप्रमुख स्थान इस 'सोम' का ही है। इसी में जीवन है 'मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात्'।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) उल्लास का कारण होता है, (ख) रोगकृमिरूप शत्रुओं का विनाश करता है, (ग) ज्ञानाग्नि को दीप्त करके जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'इन्द्रयु' सोम

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया। पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ॥ ९ ॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **इन्द्रयुः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को प्राप्त कराने की कामनावाला है। तेरे रक्षण से हमें प्रभु की प्राप्ति होती है, इस प्रकार तू हमारे साथ प्रभु को जोड़नेवाला है। तू **मध्वः**=माधुर्य की **धारया**=धारा से **पवस्व**=हमारे में क्षरित हो। तू हमें प्राप्त हो और तेरे द्वारा हमारा जीवन मधुर बने। (२) तू हमारे लिये **वृष्टिमान् पर्जन्यः**=वृष्टिवाले बादल की **इव**=तरह है। जिस प्रकार यह पर्जन्य संताप को दूर करके शान्ति को देनेवाला होता है, उसी प्रकार तू हमारे सब सन्तापों, रोगों व वासनाओं को शान्त करके हमें सुखी करता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें प्रभु की प्राप्ति कराता है।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'जीवन यज्ञ का आत्मा' सोम

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत। आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **गोषाः असि**=हमारे लिये उत्तम ज्ञानेन्द्रियों को देनेवाला है। **नृषाः**=उत्तम नर (=उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाली) सन्तानों को प्राप्त करानेवाला है। जहाँ तू **अश्वसाः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों को देनेवाला है, **उत**=और वहां **वाजसाः**=शक्ति को भी देनेवाला है। (२) वस्तुतः तू **यज्ञस्य**=हमारे जीवन यज्ञ का **आत्मा**=आत्मा है। जीवन यज्ञ का प्राणन तेरे से ही होता है। तेरे अभाव में यह यज्ञ मृत हो जाता है। तू **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमारी इन्द्रियों को सशक्त बनाता है, (ख) उत्तम सन्तानों का कारण बनता है तथा (ग) जीवनयज्ञ का उत्तमता से प्रणयन करता है।

इस सूक्त की तरह अगले सूक्त में भी सोमरक्षण का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। सोमरक्षण से जीवन में सुख का (शुनं) निर्माण करनेवाला 'शुनः शेप' अगले सूक्त का ऋषि है। यह कहता है कि—

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—**शुनः शेपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अमर्त्य देव

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति। अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **देवः**=(विजिगीषा) शरीरों के अन्दर व्याप्त हुआ-हुआ रोगों को जीतने की कामना करता है और **अमर्त्यः**=हमें रोगों से मरने नहीं देता। सुरक्षित सोम (वीर्य) रोगकृमियों को नष्ट करता है और इस प्रकार असमय की मृत्यु से हमें बचाता है। (२) यह सोम **द्रोणानि अभि आसदम्**=शरीरूप पात्रों में आसीन होने के लिये **पर्णवीः इव**=एक पक्षी की तरह **दीयति**=गति करता है। जैसे एक पक्षी दोनों पंखों को गतिमय करके ऊपर और ऊपर उठता चलता है, इसी प्रकार यह सोम शरीर में ब्रह्म व क्षत्र (ज्ञान व बल) दोनों का वर्धन करता हुआ ऊर्ध्वगतिवाला होता है।

भावार्थ—सोम हमें मृत्यु से बचाता है। यह शरीर में ब्रह्म व क्षत्र का वर्धन करता हुआ ऊर्ध्वगतिवाला होता है।

ऋषिः—**शुनः शेपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवमान अदाभ्य

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति। पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

(१) **विपा**=(विप्=A wise man) एक बुद्धिमान् पुरुष से **कृतः**=शरीर में परिष्कृत किया गया **एषः देवः**=यह रोगकृमियों को जीतनेवाला सोम (वीर्य) **ह्वरांसि अतिधावति**=सब कुटिलताओं को भी लांघ जाता है। शरीर में परिष्कृत सोम रोगों से व कुटिलताओं से बचाकर हमें स्वस्थ शरीर व निर्मल मनवाला बनाता है। (२) यह सोम **पवमानः**=हमें पवित्र करता है और **अदाभ्यः**=कभी हिंसित होने योग्य नहीं होता। जब सोम शरीर में सुरक्षित होता है तो मन

में छलछिद्र व कुटिलता की भावनायें उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार शरीर पर रोग आक्रमण नहीं कर पाते।

भावार्थ—सुरक्षित सोम रोगकृमियों को पराजित करता है और हमें कुटिल भावों से बचाता है।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देव-पवमान-हरि

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः। हरिर्वाजाय मृज्यते॥ ३॥

(१) **एषः**=यह सोम **देवः**=रोगकृमियों को पराजित करने की कामनावाला होता है। **पवमानः**=हमारे अन्तःकरणों को पवित्र करता है। **हरिः**=सब कष्टों व पापों का हरण करता है, हमें सुखी व पुण्यशाली बनाता है। (२) यह **विपन्युभिः**=प्रभु का विशिष्ट स्तवन करनेवाले पुरुषों से तथा **ऋतायुभिः**=ऋत के द्वारा गति करनेवाले पुरुषों से (ऋत+'इ' गतौ) **वाजाय**=शक्ति प्राप्ति के लिये **मृज्यते**=शुद्ध किया जाता है। प्रभु-स्तवन व नियमित आचरण हमें वासनाओं का शिकार नहीं होने देते और इस प्रकार हम सोम को परिशुद्ध रखने में समर्थ होते हैं, परिशुद्ध सोम 'देव' हैं 'पवमान' है, 'हरि' है।

भावार्थ—'उपासना' व 'नियमित गति' हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शूर

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः। पवमानः सिषासति॥ ४॥

(१) **एषः**=यह सोम **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता है और **विश्वानि वार्या**=सब वरणीय वस्तुओं को **सिषासति**=हमें प्राप्त कराता है। शरीर के स्वास्थ्य को, मन के प्रसाद को तथा बुद्धि की तीव्रता को देनेवाला यही है। (२) यह सोम **शूरः इव**=एक शूरवीर योद्धा के समान है, जो कि **सत्वभिः यन्**=पराक्रमों के साथ शत्रुओं के प्रति आक्रमण करनेवाला है। शरीर में रोगकृमि रूप शत्रुओं को यह सोम (वीर्य) उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे कि एक वीर योद्धा रणांगण में शत्रुओं को।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम वह शूरवीर योद्धा बनता है जो कि रोगकृमि रूप शत्रुओं को शीर्ण कर देता है।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रथर्यति-दशस्यति

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति। आविष्कृणोति वग्वनुम्॥ ५॥

(१) **एषः**=यह सोम **देवः**=सब रोगों को जीतने की कामना करता हुआ **रथर्यति**=उत्तम रथ को चाहता है, शरीर रूप रथ को उत्तम बनाना चाहता है। **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र बनाता हुआ **दशस्यति**=(दश आत्मनः इच्छति) दसों इन्द्रियाश्वों को सुन्दर बनाता है। सोम के द्वारा शरीर-रथ भी ठीक बना रहता है और इन्द्रियाश्व भी शक्तिशाली बने रहते हैं। (२) यह सोम हमारी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर **वग्वनुम्**=उत्तम ज्ञान की वाणियों को **आविष्कृणोति**=प्रकट करता है। बुद्धि के दीप्त होने पर और हृदय के पवित्र होने पर अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणायें सुन ही पड़ती हैं। यही आत्मा की आवाज का सुनाई पड़ना है।

भावार्थ—सोमरक्षण से शरीर, इन्द्रियाँ व बुद्धि सभी का ठीक विकास होता है।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रत्नों का आधान

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते। दधद्रत्नानि दाशुषे॥ ६॥

(१) **एषः**=यह **विप्रैः**=मेधावी पुरुषों से **अभिष्टुतः**=अभ्युदय व निःश्रेयस प्राप्ति के साधन के रूप में स्तुत हुआ-हुआ **देवः**=रोगों को जीतने की कामनावाला सोम **अपः विगाहते**=कर्मों का अवगाहन करता है। सोम के रक्षण से इहलोक अभ्युदयवाला बनता है तो परलोक निःश्रेयसवाला होता है। एवं सोम इहलोक व परलोक दोनों के दृष्टिकोण से स्तुत होता है। रक्षित सोम से शक्ति वर्धन होकर हमारा जीवन कर्ममय होता है। इस प्रकार यह सोम हमें कर्मों में अवगाहन करनेवाला बनाता है। (२) यह सोम **दाशुषे**=अपने को सोम के प्रति दे डालनेवाले के लिये, सोमरक्षण को ही जीवन का लक्ष्य बना लेनेवाले के लिये **रत्नानि दधत्**=रत्नों को धारण करता है। सोम के रक्षित होने पर हमें सभी रमणीय वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। यही भाव चतुर्थ मन्त्र में 'विश्वानि वार्या-सिषासति' इन शब्दों से कहा गया है।

भावार्थ—हमारे जीवन का ध्येय सोम का रक्षण हो। यह रक्षित सोम सब रमणीय वस्तुओं को हमें प्राप्त करायेगा। इसके रक्षण से तमोगुण की अकर्मण्यता नष्ट हो जाएगी।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रजोगुण से ऊपर

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया। पवमानः कनिक्रदत्॥ ७॥

(१) **एषः**=यह सोम **धारया**=अपनी धारणशक्ति के द्वारा **रजांसि तिरः**=सब राजस भावों को तिरस्कृत करके **दिवम्**=प्रकाशमय सात्त्विकभावों की ओर (सत्वस्य लक्षणं ज्ञानम्) **विधावति**=विशेषरूप से गतिवाला होता है। सोमरक्षण से हम रजोगुण से ऊपर उठकर सत्त्वगुण में प्रवेश करते हैं। (२) यह **पवमानः**=हमारे हृदयों को पवित्र करनेवाला सोम **कनिक्रदत्**=हमारे अन्दर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है मन्त्र पाँच के अनुसार 'आविष्कृणोति वग्वनुम्'। (३) दो मन्त्र में 'अपो विगाहते' इन शब्दों से तमोगुण से ऊपर उठने का संकेत था। यहाँ 'रजांसि तिरः' इन शब्दों से रजोगुण से ऊपर उठने का निर्देश हुआ है। इस प्रकार यह सोम हमें सत्त्वगुण में स्थापित करता है। हम नित्य सत्त्वस्थ बनकर प्रभु के प्रीति पात्र होते हैं।

ऋषिः—**शुनः शेपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'स्वध्वर' सोम

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः॥ ८॥

(१) **एषः**=यह सोम **अस्पृतः**=(स्पृणाति to kill) न नष्ट किया गया हुआ **रजांसि तिरः**=सब रजोगुण के भावों को तिरस्कृत करके **दिवं व्यासरत्**=प्रकाश की ओर गतिवाला होता है। सुरक्षित सोम जीवन को प्रकाशमय बनाता है। (२) **पवमानः**=यह सोम हमारे हृदयों को पवित्र करता है और **स्वध्वरः**=हमारे जीवनों को उत्तम यज्ञोंवाला बनाता है। मस्तिष्क दीप्त होने पर और हृदय के पवित्र होने पर जीवन यज्ञमय क्यों नहीं बनेगा?

भावार्थ—यदि सोम का हम रक्षण करेंगे तो यह हमारे जीवनों को प्रकाशमय, पवित्र व यज्ञिय बनायेगा।

ऋषिः—शुनः शेपः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'दिव्यता का साधक' सोम

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **देवः**=रोगों को जीतने की कामनावाला है। यह **प्रत्नेन जन्मना**=उस प्राचीनकाल से प्रादुर्भूत प्रभु से, सनातन पुरुष से, शाश्वत पुराण पुरुष से **देवेभ्यः**=देववृत्ति के विकास के लिये, दिव्यगुणों के प्रापण के लिये **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। असुर लोग इसका अपव्यय करके इसके वास्तविक लाभ को नहीं प्राप्त कर पाते। (२) **हरिः**=यह सब दुःखों का हरण करनेवाला सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **अर्षति**=अपने कार्य के लिये गतिमय होता है। हृदय के पवित्र होने पर ही यह शरीर में सुरक्षित रहता है, और तब 'रोगों के नाश' आदि अपने कार्यों को करता है।

भावार्थ—सोम को प्रभु ने उत्पन्न किया है। यह हमारे जीवनों में दिव्य गुणों के विकास को करता है।

सूचना—प्रस्तुत मन्त्र में प्रभु को 'प्रत्य जन्म' कहा है, ये प्रभु सदा से प्रादुर्भूत हैं, 'जातः' हैं **'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्'।**

ऋषिः—शुनः शेपः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्रभु-प्रेरणा को सुनना

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः। धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

(१) **एषः**=यह **स्यः**=वह सोम **उ**=निश्चय से **पुरुव्रतः**=पालन व पूरक कर्मोंवाला है। यह हमारे शरीरों का रोगों से रक्षण करता है और हमारे मनों में हीन भावनाओं को नहीं उत्पन्न होने देता। **जज्ञानः**=हमारे शरीरों में प्रादुर्भूत होता हुआ यह सोम **इषः**=हृदयस्थ प्रभु की उत्तम प्रेरणाओं को **जनयन्**=प्रकट करता है। इसके रक्षण से ही हमें नैर्मल्य के द्वारा अन्तःप्रेरणायें सुन पड़ती हैं। (२) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **धारया**=अपनी धारणशक्ति से हमारे जीवनों को **पवते**=पवित्र करता है।

भावार्थ—सोम हमें प्रभु प्रेरणाओं को सुनने के लिये आवश्यक पवित्रता को प्राप्त कराता है।

इस प्रकार सोम के महत्त्व को समझकर इस हिरण्य (सोम=वीर्य) के स्तूप (समुच्छ्राय=ऊर्ध्वगति) को करनेवाला 'हिरण्यस्तूप' अगले सूक्त का ऋषि है। वह सोम का स्तवन करता हुआ उत्कृष्ट जीवन की प्राप्ति के लिये आराधना करता है—

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूपः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

विजय तथा ज्ञान प्राप्ति

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **सोम**=वीर्य! तू हमारे लिये **महि श्रवः**=महान् ज्ञान को **सना**=प्राप्त करा। **च**=और तू ही तो **जेषि**=हमारे लिये सब विजयों को करता है। (२) **अथा**=अब महनीय ज्ञानों को प्राप्त कराके तथा सब वासनाओं को पराभूत करके **नः**=हमें **वस्यसः**=उत्कृष्ट जीवनवाला **कृधि**=करिये। इस शरीर में हमारा निवास हो। जीवन का

वास्तविक उत्कर्ष यही है कि हम वासनाओं से पराभूत न हों तथा ज्ञान प्राप्ति के द्वारा प्रकाशमय जीवनवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा विजयी बनकर व ज्ञान को प्राप्त करके हम उत्कृष्ट जीवनवाले हों।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्योति-स्वर्ग (सुख) सौभाग्य

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ २॥

(१) हे सोम! तू हमें **ज्योतिः सन**=ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करा। सोम ने ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर हमारी ज्ञान-ज्योति को दीप्त करना है। इस प्रकार ज्ञान को देकर हे सोम! तू हमें **स्वः सन**=स्वर्ग सुख को देनेवाला हो। अज्ञान ही सब क्लेशों का मूल है। 'अविद्या क्षेत्रमुत्तरेणाम्' अविद्या रूप क्षेत्र में ही सब कष्टों का जन्म होता है। (२) इस प्रकार ज्ञान-ज्योति व स्वर्ग सुखों को प्राप्त करके हे सोम! तू **विश्वा सौभगा च**=सब सौभाग्यों को भी (सना=) हमें प्राप्त करानेवाला हो। हमारे जीवनों को 'समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान व अनासक्ति' रूप छः के छः सौभाग्यों से युक्त कर। 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रिया, ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा'। **अथा**=अब **नः**=हमें सौभाग्य-सम्पन्न करके **वस्यसः**=उत्कृष्ट जीवनवाला **कृधि**=कर।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को 'ज्योति-सुख व सौभाग्य' सम्पन्न करता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दक्ष-क्रतु (बल व ज्ञान)

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ३॥

(१) हे सोम! तू **दक्षं सन**=हमें बल दे। **उत**=और **क्रतुम्**=प्रज्ञान को भी प्राप्त करा। सोम के रक्षण से हम बल व प्रज्ञान से सम्पन्न हों। हमारे क्षत्र व ब्रह्म का विकास होकर हमारा जीवन श्रेष्ठ बने। (२) हे **सोम**=वीर्य! तू **मृधः**=हिंसक शत्रुओं को **अपजहि**=सुदूर विनष्ट कर। वासनाएँ ही हमारे हिंसक शत्रु हैं। बल व प्रज्ञान के विकास से वासनाओं का विनाश होता है। **अथा**=अब इस वासना विनाश को करके **नः**=हमें **वस्यसः कृधि**=उत्कृष्ट जीवनवाला कर।

भावार्थ—सोम हमारे बल व ज्ञान का विकास करके, नानारूप शत्रुओं का नाश करता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम का पवित्रीकरण

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ४॥

(१) हे **पवीतारः**=हमारे जीवनों को ज्ञान देकर पवित्र करनेवाले आचार्यो! आप हमारे **सोमम्**=सोम को **पुनीतन**=पवित्र करो। ज्ञान के द्वारा वासनाओं का विनाश हो और यह सोम सदा पवित्र बना रहे। यह **सोम इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पातवे**=पीने के लिये हो। एक जितेन्द्रिय पुरुष इस सोम को अपने अन्दर ही सुरक्षित करनेवाला हो। (२) इस प्रकार हमारे सोम को वासनाओं से मलिन न होने देकर आप **अथा**=अब **नः**=हमें **वस्यसः कृधि**=उत्कृष्ट जीवनवाला करिये।

भावार्थ—हम ज्ञान को प्राप्त करते हुए सोम को वासनाओं से अपवित्र न होने दें। इस प्रकार रक्षित सोम से हमारा जीवन श्रेष्ठ बनेगा।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नीरोग प्रकाशमय जीवन

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

(१) हे सोम! **त्वम्**=तू **तव क्रत्वा**=तेरे द्वारा उत्पन्न प्रज्ञान से तथा **तव ऊतिभिः**=तेरे से किये गये रक्षणों से **नः**=हमें **सूर्ये आभज**=ज्ञान सूर्य में भागी बना। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, इसी से हमारे जीवनों में ज्ञानसूर्य के उदय का सम्भव होता है। यह सोम हमें रोगों से भी बचाता है और इस प्रकार अविच्छिन्न स्वाध्याय के द्वारा हम ज्ञानसूर्य का अपने में उदय करनेवाले होते हैं। (२) हे सोम! इस प्रकार प्रज्ञान व रक्षणों के द्वारा **अथा: अव नः**=हमें **वस्यसः कृधि**=उत्कृष्ट जीवनवाला करिये।

भावार्थ—सोम हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है तथा रोगों के आक्रमण से हमारा रक्षण करता है। इस प्रकार हमें नीरोग व प्रकाशमय जीवन प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दीर्घकाल तक सूर्य-दर्शन

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

(१) ये सोम! **तव क्रत्वा**=तेरे द्वारा उत्पन्न प्रज्ञान से तथा **तव**=तेरे द्वारा की गई **ऊतिभिः**=रक्षाओं से हम **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **सूर्यं पश्येम**=सूर्य को देखनेवाले बनें। अर्थात् दीर्घजीवनवाले बनें। सूर्य दर्शन से शीघ्र ही वञ्चित न हो जायें। (२) **अथा**=अब प्रज्ञान व रक्षण को प्राप्त कराके **नः**=हमें **वस्यसः**=उत्कृष्ट जीवनवाला **कृधि**=करिये।

भावार्थ—हम सोमरक्षण द्वारा ज्ञान व नीरोगता को प्राप्त करके दीर्घजीवनवाले हों।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्वायुध' सोम

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **स्वायुध**=उत्तम आयुधोंवाले, जिसके द्वारा इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि आदि सब आयुध उत्तम बनते हैं, तू **द्विबर्हसम्**=द्यावापृथिवी इन दोनों स्थानों में बढ़े हुए (द्वयोः स्थानयोः परिवृढं) **रयिम्**=धन को **अभ्यर्ष**=(अभिगमय) हमें प्राप्त करा। मस्तिष्क रूप द्युलोक का धन 'प्रज्ञान' है तथा शरीर रूप पृथिवीलोक का धन 'बल' हे। सोम हमारे लिये प्रज्ञान व बल दोनों को प्राप्त करानेवाला हो। (२) **अथा**=और अब, प्रज्ञान और बल को प्राप्त कराके, **नः**=हमें **वस्यसः**=उत्तम निवासवाला **कृधि**=करिये। सोम के रक्षण से हमारे इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुध उत्तम बन जाते हैं। इनके द्वारा हम जीवन-संग्राम को अच्छी तरह लड़ पाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे बल व ज्ञान को बढ़ाकर हमारे इन्द्रियाँ, मन व बुद्धिरूप आयुधों को उत्तम बनाता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रोगकृमि संहार

अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

(१) **समत्सु**=संग्रामों में **अनपच्युतः**=शत्रुओं से न आहत हुआ-हुआ, शत्रुओं से विचलित

न किया गया, **सासहिः**=शत्रुओं का पूर्ण पराभव करनेवाला, हे सोम! तू **रयिम्**=हमारे लिये ऐश्वर्य को **अभ्यर्ष**=प्राप्त करा। (२) शरीर में वीर्य का रोगकृमियों के साथ सतत संग्राम चलता है। उस संग्राम में यह सोम अविचलित (=स्थिर) होता हुआ इन रोगकृमियों का पराभव करता है। इनको विशेषरूप से कम्पित करके वह दूर भगा देता है। **अथा**=अब इन रोगकृमियों के संहार के द्वारा **नः**=हमें **वस्यसः**=उत्कृष्ट जीवनवाला **कृधि**=करिये।

भावार्थ—वीर्य के द्वारा शरीर में रोगकृमियों का संहार होकर हमारा जीवन उत्तम बने।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

यज्ञों के द्वारा सोम का वर्धन

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ९॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **त्वाम्**=तुझे **विधर्मणि**=अपने विशिष्ट धारण के निमित्त उपासक लोग **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा **अवीवृधन्**=बढ़ाते हैं। यज्ञों से वासना का उद्भव ही नहीं होता। इस प्रकार वासना के अभाव में सोम का वर्धन होता है। यह वृद्ध सोम हमारा विशेषरूप से धारण करता है। (२) इस प्रकार **अथा**=अब विशिष्ट धारण के द्वारा, **नः**=हमें **वस्यसः**=उत्कृष्ट निवासवाला **कृधि**=करिये सोम के रक्षण से सब शक्तियों का वर्धन होता है और जीवन उत्तम बनता है।

भावार्थ—यज्ञों में लगे रहने के द्वारा, वासना को उत्पन्न न होने देकर, हम सोम का रक्षण करें। यह हमारा विशेषरूप से धारण करेगा।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'विश्वायु' रयि की प्राप्ति

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ १०॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को **आभर**=प्राप्त करा, जो **अश्विनम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला है तथा **विश्वायुम्**=पूर्ण जीवन को देनेवाला है तथा **चित्रम्**=अद्भुत है अथवा 'चिती संज्ञाते' उत्तम ज्ञान से युक्त है। वस्तुतः वही धन उत्तम है जो कि—(क) ज्ञान से युक्त है, (ख) इन्द्रियों को शक्तिशाली बनानेवाला है तथा (ग) जीवन को पूर्ण बनाता है। (२) इस प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त कराके **अथा**=अब **नः**=हमें **वस्यसः**=प्रशस्त जीवनवाला **कृधि**=कर। वस्तुतः जीवन का सौन्दर्य इसी में है कि वह ज्ञान-सम्पन्न हो, इन्द्रियाँ सशक्त हों, जीवन यौवन में ही समाप्त न हो जाए।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) ज्ञान बढ़ता है, (ख) इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं, (ग) जीवन पूर्ण बनता है।

इस प्रकार यह हिरण्य स्तूप सोम की ऊर्ध्वगति करता हुआ 'असित' बनता है, विषयों से बद्ध (सित) नहीं होता 'काश्यप'=ज्ञानी बनता है और 'देवल'=दिव्य गुणों का आदान करनेवाला होता है। इसी 'असित काश्यप देवल' ऋषि का अगला सूक्त है। यह सोम का स्तवन करता हुआ कहता है कि—

[५] पञ्चम सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'समिद्ध' सोम

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति। प्रीणन्वृषा कनिक्रदत्॥ १॥

(१) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। ज्ञानाग्नि को दीप्त करने के कारण यहाँ सोम को 'समिद्ध' कहा गया है। सब ओर से शरीर का रक्षण करनेवाला यह 'विश्वतस्पति' है। पवित्र करनेवाला होने से 'पवमान' है। मस्तिष्क को यह 'समिद्ध' करता है। शरीर को 'रक्षित' करता है। मन को पवित्र बनाता है। मस्तिष्क के ज्ञानदीप्त होने से मैं 'काश्यप' बनता हूँ। शरीर के रोगों से अनाक्रान्त होने से मैं 'अ-सित'=अबद्ध होता हूँ। मन में पवित्रता के कारण 'देवल' होता हूँ। (२) **समिद्धः**=ज्ञान को दीप्त करनेवाला, **विश्वतस्पतिः**=शरीर को सर्वतः सुरक्षित करनेवाला **पवमानः**=मेरे मन को पवित्र करनेवाला यह सोम **विराजति**=मेरे शरीर में दीप्त होता है। (३) **प्रीणन्** (प्रीणयन्)=यह ज्ञानदीप्ति नीरोगता तथा पवित्रता से हमें प्रीणित करता है। **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनाता है। **कनिक्रदत्**=हमें प्रभु के आह्वान की वृत्तिवाला बनाता है। सोम मानो सुरक्षित होकर प्रभु का आह्वान करता है, प्रभु की आराधना करता है।

भावार्थ—सोम 'समिद्ध, विश्वतस्पति व पवमान' है। यह मेरे लिये 'प्रसन्नता, शक्ति व प्रभु की आराधना' का कारण बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'तनूनपात्' सोम

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति। अन्तरिक्षेण रारजत्॥ २॥

(१) यह सोम गत मन्त्र के अनुसार 'विश्वतस्पति' होता हुआ **तनूनपात्**=शरीर को गिरने नहीं देता। शरीर की शक्तियों के रक्षण का यह साधन बनता है। **पवमानः**=हृदय को पवित्र करता है। **शृंगे**=(दीप्ते उन्नतप्रदेशे सा०) शरीर के सर्वोन्नत प्रदेश मूर्धा (मस्तिष्क) में **शिशानः**=(शो तनूकरणे) ज्ञान को दीप्त करता हुआ (बुद्धि को सूक्ष्म बनाता हुआ) **अर्षति**=यह गति करता है। (२) **अन्तरिक्षेण**=हृदयदेश से **रारजत्**=(To be delighted) खूब आनन्द का यह अनुभव करता है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे उल्लास का कारण बनता है।

भावार्थ—सोम शरीर के लिये 'तनूनपात्' है। यह मन के लिये 'पवमान व राजत्' है। मस्तिष्क के लिये 'शिशान' है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'ईडेन्य' सोम

ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान्। मधोर्धाराभिरोजसा॥ ३॥

(१) यह सोम **ईडेन्यः**=स्तुति में उत्तम है। सोमरक्षण के होने पर हमारी वृत्ति प्रभु-स्तवन की बनती है **पवमानः**=यह हमारे हृदयों को पवित्र करता है। यह हमारे लिये **द्युमान् रयिः**=ज्ञान-ज्योतिवाला धन है। (२) यह हमारे अन्दर **मधोः धाराभिः**=मधु की धाराओं से, अर्थात् अत्यन्त माधुर्य से तथा **ओजसा**=ओज (शक्ति) से **विराजति**=दीप्त होता है। हमारे जीवन को मधुर व

ओजस्वी बनाता हुआ यह शोभायमान होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम 'प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले, पवित्र, ज्ञान धनवाले, मधुर व ओजस्वी' बनते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'देव' सोम

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा॒ पव॑मानः स्तृ॒णन्हरिः॑। दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते॥ ४॥

(१) यह सोम **प्राचीनम्**=(प्र अञ्च्) सदा अग्रगति की भावनावाले **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय को जिसने वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है उस हृदय को **ओजसा स्तृणन्**=ओजस्विता से आच्छादित करता हुआ **पवमानः**=हमें पूर्ण पवित्र बनाता है तथा **हरिः**=हमारे दुःखों व पापों का हरण करनेवाला होता है। (२) यह **देवः**=हमारे सब रोगों को जीतनेवाला तथा प्रकाशमय सोम **देवेषु**=देववृत्तिवाले पुरुषों में **ईयते**=गति करता है। देववृत्तिवाले पुरुषों में ही यह सुरक्षित रहता है।

भावार्थ—यह सोम हमें 'ओजसी, पवित्र, निष्पाप व सुखी तथा प्रकाशमय जीवनवाला' बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

हिरण्यय द्वार

उदातै॑र्जिहते बृ॒हद् द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययीः॑। पव॑माने॒न सुष्टु॑ताः॥ ५॥

(१) शरीर में इन्द्रियाँ द्वार कहलाती हैं 'अष्टचक्रा नवद्वारा०'। सोमरक्षण के द्वारा ये प्रभु प्रवण होती हैं। प्रभु-स्तवन की प्रवृत्तिवाली बनती हैं। **पवमानेन**=इस पवित्र करनेवाले सोम से ये **सुष्टुताः**=(शोभनं स्तुतं येषां) उत्तम स्तुतिवाली होती हैं। सोम के रक्षण के होने पर भोगवृत्ति का विनाश होकर प्रभु-स्तवन की वृत्ति जगती है। (२) उस समय **द्वारः**=ये इन्द्रिय द्वार **देवीः**=(दिव् स्तुतौ) प्रभु का स्तवन करते हैं और **हिरण्ययीः**=हितरमणीय ज्ञानवाले होते हैं। तथा **उदातैः**=(आत=दिशा) उत्कृष्ट दिशाओं से **बृहत्**=खूब ही **जिहते**=गतिवाले होते हैं। जीवन में यह सोमरक्षक पुरुष उत्कृष्ट मार्ग से ही गति करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर हमारी इन्द्रियाँ प्रभु-स्तवन करती हुईं, प्रकाशमय होती हुईं, उत्कृष्ट मार्ग से गति करती हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दर्शते नक्तोषासा

सु॒शि॒ल्पे बृ॑ह॒ती म॒ही पव॑मानो वृषण्यति। नक्तो॒षासा॒ न द॑र्श॒ते॥ ६॥

(१) सोमरक्षण के होने पर जीवन सुन्दर बनता है। हम उत्तम निर्माणात्मक कार्यों में लगे रहते हैं (सुशिल्पे) दिन वदिन हम आगे बढ़ते चलते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, (बृहती) प्रभु पूजा की वृत्तिवाले होते हैं (मही) जीवन दर्शनीय बन जाता है (दर्शते)। (२) **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **न**=(संप्रति सा०) अब **नक्तोषासा**=हमारे रात-दिन को **वृषण्यति**=शक्तिशाली बनाने की कामना करता है। **सुशिल्पे**=उन्हें उत्तम शिल्पवाला बनाता है, हम कला पूर्ण ढंग से प्रत्येक कार्य को करते हैं। **बृहती**=(परिवृद्धे) हमारे दिन-रात बढ़े हुए होते हैं, हम प्रतिदिन अपने को कुछ आगे बढ़ा हुआ अनुभव करते हैं। **मही**=सुरक्षित सोम हमारे दिन-रात को प्रभु-पूजनवाला

बनाता है, हम प्रभु को कभी भूलते नहीं। **दर्शते**=ये दिन-रात दर्शनीय बनते हैं। हम इनमें कोई भी कार्य ऐसा नहीं करते जो कि इन्हें अमंगल बना दे।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारे दिन-रात अत्यन्त सुन्दर बन जाते हैं।

ऋषिः-**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता-**आप्रियः**॥ छन्दः-**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः-**षड्जः**॥

दैव्या होतारा

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे। पवमान इन्द्रो वृषा॥ ७॥

(१) शरीर में प्राणापान 'दैव्य होता' कहलाते हैं। उस प्रभु से स्थापित होने से ये दैव्य हैं, शरीर यज्ञ के चलानेवाले ये होता हैं। शरीर में सब शक्तियों को स्थापित करनेवाले ये ही हैं। इन **उभा देवा**=दोनों शरीर के सब व्यवहारों के साधक, **नृचक्षसा**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाले **दैव्या होतारा**=प्राणापानों को **हुवे**=मैं पुकारता हूँ। इनकी आराधना करता हूँ, प्राणायाम का अभ्यास ही तो इनकी आराधना है। (२) इनकी आराधना से शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला सोम **पवमानः**=हमारे जीवन को पवित्र करता है। यह **इन्द्रः**=हमें परमैश्वर्यवाला बनाता है। **वृषा**=शक्तिशाली होता है।

भावार्थ—प्राणापान 'दैव्य होता' हैं। उनकी साधना से शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला सोम हमें पवित्र व शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः-**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता-**आप्रियः**॥ छन्दः-**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः-**गान्धारः**॥

'मही-सरस्वती-इडा'

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही। इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः॥ ८॥

(१) सोम के सुरक्षित होने पर शरीर में सब व्यवस्था ठीक चलती है। मन्त्र में कहते हैं कि **नः**=हमारे **इमम्**=इस **पवमानस्य**=सोम के **यज्ञम्**=यज्ञ में **सरस्वती-इडा-मही**=सरस्वती-इडा-मही **तिस्रः**=तीनों **सुपेशसः**=जीवन का उत्तम निर्माण करनेवाली **देवीः**=देवियाँ **अगमन्**=आयें। 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्' इस वाक्य के अनुसार यह जीवन 'सोम' के साथ है। इसलिए यहाँ इस जीवन को 'पवमान सोम का यज्ञ' कहा है। (२) इस सोम के सुरक्षित होने पर 'सरस्वती, इडा व मही' ये तीनों देवियाँ हमारे जीवन में आती हैं, ये तीनों 'भारती' हैं, **भारती**=हमारा उत्तमता से भरण करनेवाली हैं। निघण्टु १।११ में 'इडा, सरस्वती, मही' ये तीनों ही वाणी के नाम हैं। 'इडा' यह ऋग्वेद की वाणी हैं, जो सब भौतिक पदार्थों के विज्ञान को देती हुई हमें उत्तम अन्न प्राप्त कराती है, और हमारे इस अन्नमयकोश को बड़ा ठीक रखती है। 'सरस्वती' यजुर्वेद की वाणी है, जो सब यज्ञों व कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करती हुई, हमें शिक्षित व परिष्कृत जीवनवाला बनाती है। 'मही' साम वाणी है, जो कि हमें प्रभु-पूजन कराती हुई प्रभु के समान ही महान् बनाती है। एवं ये सब वाणियाँ भारती हैं, हमारे जीवन का सुन्दर भरण करती हैं, 'सुपेशस्' हैं। निघण्टु में भारती भी (१।११) वाणी का नाम है। 'इडा-सरस्वती-मही' तीनों ही भारती हैं। सोम के रक्षण के होने पर ये सब हमें प्राप्त होती हैं, इनके द्वारा हमारा जीवन यज्ञ उत्तमता से चलता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर हमारे जीवनयज्ञ में 'इडा-सरस्वती-मही' तीनों ही भारती देवियाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'इन्दु प्रजापति'

त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे। इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः॥ ९॥

(१) मैं **त्वष्टारम्**=संसार के निर्माता, **अग्रजाम्**=सृष्टि से पहले होनेवाले 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे', **गोपाम्**=रक्षक, **पुरो यावानम्**=आगे ले चलनेवाले, नेतृत्व देनेवाले प्रभु को **आहुवे**=पुकारता हूँ। यह प्रभु का स्मरण ही मुझे वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) उस समय यह **इन्दुः**=सोम **इन्द्रः**=मेरी इन्द्रियों को शक्तिशाली बनानेवाला होता है, **वृषा**=हमारे पर सब सुखों का वर्षण करता है, **हरिः**=हमारे कष्टों व पापों का हरण करता है, **पवमानः**=हमें पवित्र बनाता है और **प्रजापतिः**=हमारे सन्तानों का भी रक्षण करता है। सोमरक्षण से उत्तम सन्तान प्राप्त होते ही हैं। (३) इस सोमरक्षण के द्वारा मैं भी त्वष्टा=निर्माता, अग्रज=अग्र स्थान में होनेवाला, गोपा=अपना रक्षण करनेवाला तथा पुरोयावान=आगे और आगे बढ़नेवाला व नेतृत्व देनेवाला बनता हूँ।

भावार्थ—हम प्रभु-स्मरण करें। प्रभु स्मरण के द्वारा सोम का रक्षण करते हुए प्रभु जैसे ही बनें।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'भ्राजमान-हिरण्यय'

वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया। सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम्॥ १०॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **वनस्पतिम्**=वानस्पतिक भोजन से पालित शरीर को **मध्वा धारया**=माधुर्य की धारा से **समङ्ग्धि**=अलंकृत कर। शरीर को यहाँ 'वनस्पति' कहा गया है। यह वानस्पतिक भोजनों से ही निर्मित होना चाहिए। सोम का रक्षण होने पर इस शरीर में निवास बड़ा मधुर हो जाता है, 'नीरोगता, पवित्रता व बुद्धि की तीव्रता' से जीवन मधुर ही मधुर बन जाता है। (२) हे सोम! तू इस शरीर को **सह स्रवल्शं**=(सहस्+वल्श्) आनन्दयुक्त-विकसित-शाखाओंवाला, **हरितम्**=हरा-भरा, अशुष्क जो सूखे काठ की तरह नीरस व गिरने के लिये तैयार नहीं है, **भ्राजमानम्**=तेजस्विता से दीप्त, **हिरण्ययम्**=ज्ञान ज्योतिवाला कर।

भावार्थ—सोम के रक्षण से शरीर 'विकसित अंग-प्रत्यंगवाला, अशुष्क, तेजोदीप्त व ज्ञान प्रकाशित' बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**आप्रियः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

सर्वदेवाधिष्ठानता

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत। वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः॥ ११॥

(१) **विश्वेदेवाः**=सब देव **पवमानस्य**=इस पवित्र करनेवाले सोम की **स्वाहाकृतिम्**=शरीरयज्ञ में आहुति देने पर **आगत**=आयें। जिस समय सोम की शरीर में ही आहुति दी जाये, अर्थात् सोम का शरीर में ही रक्षण हो उस समय यह शरीर सब देवों का अधिष्ठान बने। (२) **वायुः**=यहाँ वायु का आगमन हो। वायु की तरह हम निरन्तर क्रियाशील बनें। **बृहस्पतिः**=ज्ञानियों के भी ज्ञानी का यहाँ आगमन हो। हम ऊँचे ज्ञानवाले बनें। **सूर्यः**=सूर्य की तरह प्रकाश को फैलानेवाले हम हों। **अग्निः**=अग्नि की तरह सब रोगों व वासनाओं को दग्ध करें। **इन्द्रः**='सर्वाणि

बलकर्माणि इन्द्रस्य' इन्द्र की तरह शक्तिशाली **सजोषसः**=कार्यों के करनेवाले हों।

भावार्थ—सोम के रक्षण से हमारा शरीर सब देवों का अधिष्ठान बनता है।

अगले सूक्त में भी प्रस्तुत सूक्त की तरह 'असित देवल काश्यप' प्रार्थना करता है कि—

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'देवयु-अस्मयु' सोम

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः। अव्यो वारेष्वस्मयुः॥ १॥

(१) हे सोम! तू **मन्द्रया**=मदकर-उल्लास की जनक, **धारया**=धारा से, धारणशक्ति से **पवस्व**=हमारे जीवनों को पवित्र कर। सोम शरीर में ही प्रवाहित होता है, तो यह शरीर का धारण तो करता ही है, हृदय में आनन्द व उल्लास को उत्पन्न करता है। (२) **वृषा**=यह हमारे शरीरों को शक्तिशाली बनाता है, **देवयुः**=दिव्य गुणों को हमारे साथ जोड़नेवाला होता है। **अव्यः**=(अवति इति अवः 'अव्-अच्, तेषु साधु') रक्षण करनेवालों में यह उत्तम है तथा **वारेषु**=रोग-निवारणादि कार्यों में **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाला होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमारे साथ दिव्य गुणों को जोड़ता है और रोगादि का निवारण करता हुआ हमारा हित करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'मद्य मद' का अभिक्षरण

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर। अभि वाजिनो अर्वतः॥ २॥

(१) हे **इन्दो**=सोम (वीर्य)! **इन्द्रः इति**=तू सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला है, इसलिए **त्यम्**=उस **मद्यम्**=आनन्द के कारणभूत **मदम्**=मद को, हर्ष को अथक हर्षजनक रस को **अभिक्षर**=हमारी ओर प्राप्त करा। (२) इस मद्य मद के द्वारा **वाजिनः**=शक्तिशाली **अर्वतः**=इन्द्रियाश्वों को **अभि**=(क्षर) प्राप्त करा। सोम के रक्षण से शरीर में ही एक उल्लासजनक रस का क्षरण होता है। इसी रस के द्वारा इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं।

भावार्थ—सोम के रक्षण से उल्लासमय जीवन प्राप्त होता है तथा इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वाज-श्रवस् (शक्ति-ज्ञान)

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ। अभि वाजमुत श्रवः॥ ३॥

(१) हे सोम! **सुवानः**=शरीर में उत्पन्न किया जाता हुआ तू **पवित्रे**=मेरे हृदय के पवित्र होने पर **त्यम्**=उस **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करने में उत्तम **मदम्**=उल्लासजनक रस को **अभि आ अर्ष**=सर्वथा प्राप्त करा। (२) इस मदकर रस के द्वारा **वाजम्**=शक्ति को **अभि**=(अर्ष) प्राप्त करा **उत**=और **श्रवः**=ज्ञान को प्राप्त करा। सोम के रक्षण से शक्ति व ज्ञान प्राप्त होते हैं। रक्षित सोम से शरीर शक्तिशाली बनता है और मस्तिष्क ज्ञान से दीप्त होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें वह मदकर रस प्राप्त कराये जिससे शक्ति व ज्ञान का वर्धन हो।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण से पवित्रता

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन्। पुनाना इन्द्रमाशत॥ ४॥

(१) **द्रप्सासः**=(Drop) कणों के रूप में होनेवाले **इन्दवः**=ये सोम (वीर्यकण) **आपः न**=व्याप्त होनेवाले जलों के समान **प्रवता अनु असरन्**=(प्रवत् Height, elevation) शरीर में उच्चता के अनुसार गतिवाले होते हैं। शरीर में, प्राणसाधना के द्वारा, जब इनकी ऊर्ध्वगति होती है तो ये सारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। (२) **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **पुनानाः**=पवित्र करते हुए **आशत**=ये व्याप्त करनेवाले होते हैं। जितेन्द्रियता इन सोमकणों के रक्षण का साधन बनती है। रक्षित सोमकण इस जितेन्द्रिय पुरुष को आधिव्याधियों से शून्य व पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

दश योषणः

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश। वने क्रीळन्तमत्यविम्॥ ५॥

(१) '**योषा**' शब्द पत्नी का वाचक है। 'इन्द्र' जीवात्मा है, इन्द्रियाँ उसकी पत्नी के समान हैं। संख्या में ये १० हैं, सो 'दश योषणः' इन शब्दों में यहाँ इनका उल्लेख हुआ है। ये **दश योषणः**=दस इन्द्र की पत्नियाँ के रूप में विद्यमान १० इन्द्रियाँ **वाजिनम्**=शक्तिशाली **अत्यं इव**=घोड़े के समान **यम्**=जिस सोम को **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। सोम शरीर में घोड़े के समान है। रथ घोड़े से गतिवाला होता है। यह शरीर सोम से गतिवाला होता है। सोम के अभाव में शरीर समाप्त हो जाता है। इन्द्रियाँ यदि विषयासक्त नहीं होती तो यह सोम पवित्र बना रहता है। इस प्रकार इन्द्रियाँ इसका शोधन करती हैं। (२) इस सोम का ये शोधन करती हैं जो कि **वने क्रीडन्तम्**=उपासना में यह ज्ञान की किरणों में (worshipping; A Ray of light) क्रीडा करता है, अर्थात् हमें उपासना की वृत्तिवाला बनाता है और हमारे जीवन को प्रकाशमय करता है। इस प्रकार '**अत्यविम्**'=जो अतिशयेन रक्षा करनेवाला है। (३) प्रस्तुत मन्त्र में सोमरक्षण के तीन लाभों का संकेत है—(क) यह हमें शक्तिशाली बनाता है (वाजिनम्), (ख) हमें उपासना की वृत्तिवाला करता है (वन) तथा हमारी ज्ञानरश्मियों को दीप्त करता है (वन)।

भावार्थ—इन्द्रियाँ विषयासक्त नहीं होती तो सोम को शुद्ध बनायें रखती हैं। यह सोम हमें शक्तिशाली, उपासनामय और ज्ञान की रश्मियोंवाला बनाता है।

सूचना—'योषा' शब्द पत्नी के लिये आता है। पत्नी के घर से बुराइयों को दूर करता है (यु=अमिश्रणे) और अच्छाइयों का सम्पर्क करना है (यु मिश्रणे)। यही काम इन्द्रियों का होना चाहिए।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान में लगे रहने द्वारा सोम का रक्षण

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये। सुतं भराय सं सृज॥ ६॥

(१) **तम्**=उस **सुतम्**=शरीर में उत्पन्न किये गये **वृषणं रसम्**=शक्तिशाली रस को, अर्थात् सोम को **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **संसृज**=संसृष्ट कर। जब हम ज्ञान की वाणियों में प्रवृत्त होते हैं, तो सब विषय-वासनाओं से बचे रहते हैं। इन से बचने के परिणामरूप सोम का रक्षण होता है, सोम का हमारे साथ सम्पर्क है। (२) इसका अपने साथ सम्पर्क हमें इसलिए करना है कि शरीर में ही संसृष्ट हुआ-हुआ सोम **मदाय**=हमारे जीवन में उल्लास के लिये होता है। **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है तथा **भराय**=शरीर के पोषण के लिये होता है।

भावार्थ—ज्ञान प्रसितता द्वारा सोम का रक्षण होता है और रक्षित सोम हमें उल्लासमय, दैवी सम्पत्तिवाला तथा पुष्ट अंग-प्रत्यंगवाला बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

आप्यायन

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः। पयो यदस्य पीपयत्॥ ७॥

(१) **देवः**=हमारे सब रोगों को जीतने की कामनावाला यह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **देवाय**=प्रकाशमय जीवनवाले, स्वाध्याय की रुचिवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **धारया पवते**=धारणशक्ति के साथ प्राप्त होता है। सोम के रक्षण के लिये ये दो ही मुख्य साधन हैं—(क) स्वाध्याय की प्रवृत्तिवाला बनना, तथा (ख) इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देना। (२) इस प्रकार सोम का रक्षण होने पर **यत्**=जो **अस्य**=इसकी **पयः**=आप्यायन शक्ति है, वह **पीपयत्**=इसे सब प्रकार से आप्यायित करती है। इस से शरीर पुष्ट होता है, मन निर्मल बनता है, मस्तिष्क दीप्त होता है।

भावार्थ—हम देववृत्ति के व जितेन्द्रिय बनकर सोम का रक्षण करें। यह हमारा सब अंगों में आप्यायन करेगा।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'यज्ञ का आत्मा' सोम

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः। प्रत्नं नि पाति काव्यम्॥ ८॥

(१) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **यज्ञस्य आत्मा**=जीवनयज्ञ का आत्मा ही है। आत्मा के चले जाने से जैसे जीवन समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार सोम के सुरक्षित न रहने पर यह जीवन यज्ञात्मक नहीं रहता। उस समय इस जीवन में असुरों का साम्राज्य हो जाता है। यह सोम **सुष्वाणः**=जीवनों में सब ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ (सु=ऐश्वर्ये) **रंह्या**=वेग से **पवते**=गतिवाला होता है। इस सोम के द्वारा जीवन बड़ा क्रियाशील बना रहता है। (२) यह सुरक्षित सोम **प्रत्नं काव्यम्**=सनातन काव्य को, वेदज्ञान को **नि पाति**=हमारे में सुरक्षित करता है 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। सुरक्षित सोम से ज्ञानाग्नि का दीपन होता है, उस से हम वेदार्थ को स्पष्ट समझनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—सोम ही जीवनयज्ञ का आत्मा है। यही सब ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता है। इसी से हमारे हृदयों में सनातन ज्ञान का प्रकाश होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

गुहा में ज्ञानगिराओं का स्थापन

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये। गुहा चिद्दधिषे गिरः॥ ९॥

(१) हे **मदिष्ठ**=अतिशयेन उल्लासजनक सोम! **एवा**=इस प्रकार **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ तू **इन्द्रयुः**=जितेन्द्रिय पुरुष की कामनावाला होता है। जितेन्द्रिय पुरुष को तू प्राप्त होता है और उसके जीवन में **मदं दधिषे**=उल्लास को धारण करता है। (२) तू **वीतये**=(वी=असने) अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये होता है और **चित्**=निश्चय से **गुहा**=बुद्धिरूप गुहा में **गिरः** दधिषे=ज्ञान की वाणियों को धारण करता है। सोमरक्षक पुरुष की बुद्धि में इन ज्ञान की वाणियों का प्रकाश होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमारे जीवनों को पवित्र करता है तथा अज्ञानान्धकार को दूर करके हमारे जीवनों को ज्ञान से द्योतित करता है।

अगले सूक्त के भी ऋषि देवता प्रस्तुत सूक्त के समान ही हैं। वहाँ 'असित काश्यप देवल' कहता है—

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ऋत के द्वारा सोम का रक्षण

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजनम्॥ १॥

(१) **इन्दवः**=सोमकण **ऋतस्य पथा**=ऋत के मार्ग से (ऋत=यज्ञ) यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहने से अथवा (ऋत, right) दिनचर्या को नियमित रूप से पालने के द्वारा **धर्मन्**=धारणात्मक कर्म में **असृग्रम्**=(सृज्यन्ते) लगाये जाते हैं। अर्थात् ऋत के द्वारा सोम का रक्षण होता है। ऋत का भाव है—(क) यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहना, (ख) दिनचर्या का ठीक पालना। ऐसा करने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता, और सोम के रक्षण का सम्भव होता है, रक्षित सोम हमारा धारण करनेवाले होते हैं। (२) ये सोम **सुश्रियः**=उत्तम श्री का (शोभा का) कारण बनते हैं तथा **अस्य**=इस जीव के **योजनम्**=प्रभु के साथ मेल को **विदानाः**=जाननेवाले व प्राप्त करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—ऋत के द्वारा सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम—(क) शरीर का धारण करता है, (ख) हमें श्री-सम्पन्न बनाता है, (ग) प्रभु के साथ हमारा मेल कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण से 'अग्रिय व वन्द्य' बनना

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते। हविर्हविष्षु वन्द्यः॥ २॥

(१) **मध्वः**=ओषधि वनस्पतियों के सारभूत सोम की **धारा**=(धारया) धारणशक्ति से यह सोमरक्षक पुरुष **अग्रियः**=अग्र-स्थान पर पहुँचनेवाला होता है। इस सोम की धारणशक्ति से यह **महीः आपः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्मों का **विगाहते**=आलोडन करता है। सोमरक्षण से शक्तिशाली

बनकर हम उन्नत तो होते ही हैं, उस समय हम महान् कर्मों को करनेवाले बनते हैं। (२) यह सोमरक्षक पुरुष **हविः**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला तथा लोकहित के कार्यों में अपनी आहुति देनेवाला होता है। **हविष्षु**=इन हविरूप पुरुषों में भी यह **प्र वन्द्यः**=वन्दना के योग्य बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) उन्नतिपथ पर हम आगे बढ़ते हैं, (ख) महत्त्वपूर्ण कार्यों को करनेवाले होते हैं, (ग) त्यागपूर्वक अदन करनेवाले व लोकहित के कार्यों में अपनी आहुति देनेवालों में श्रेष्ठ बनते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षक का उत्कृष्ट जीवन

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने। सद्माभि सत्यो अध्वरः॥ ३॥

(१) (युज्+क=युज) गत मन्त्र के अनुसार सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष **वाचः प्रयुजः**=वाणी का प्रकृष्ट योग करनेवाला होता है, ज्ञान की वाणियों को अपने साथ जोड़ता है। ज्ञान को प्राप्त करके **अग्रियः**=मुख्य अग्र स्थान पर पहुँचनेवाला होता है। **वृषा**=शक्तिशाली बनता है। **वने**=उपासना में (वन्=संभक्तौ) **अवचक्रदद्**=उस प्रभु का आह्वान करता है। (२) यह सोमरक्षक **सद्म अभि**=घर की ओर चलनेवाला होता है। यह जीवन की यात्रा समझता हुआ, यहाँ उलझ नहीं जाता। **सत्यः**=सदा सत्य को अपनानेवाला होता है। **अ-ध्वरः**=हिंसारहित यज्ञमय जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षक—(क) ज्ञान की वाणियों को अपने साथ जोड़ता है, (ख) उन्नतिपथ पर आगे बढ़ता है, (ग) शक्तिशाली बनता है, (घ) उपासनामय जीवनवाला होता है, (ङ) जीवन को यात्रा समझता है, (च) सत्य को अपनाता है, (छ) यज्ञशील होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'काव्य व नृम्ण' का धारण

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति। स्वर्वाजी सिषासति॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोमरक्षण करनेवाला पुरुष **कविः**=क्रान्तदर्शी, तत्त्वज्ञानी बनता है। यह **यत्**=जब **काव्या**=ज्ञानों को व **नृम्णा**=बलों को **वसानः**=धारण करता हुआ **परि अर्षति**=चारों ओर अपने कर्त्तव्य कर्मों में गतिवाला होता है। तो **वाजी**=(वाज Sacrifice) त्याग की वृत्तिवाला होता हुआ **स्वः सिषासति**=प्रकाशमय ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। (२) सोमरक्षण से रोगकृमियों का विनाश होकर बल बढ़ता है। रक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, ज्ञानाग्नि की दीप्ति होकर हम क्रान्तदर्शी बनते हैं। इस तत्त्वदर्शन से हमारे में त्याग की भावना पैदा होती है। यह त्याग की भावना हमें ब्रह्मलोक को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से नीरोगता–ज्ञानवृद्धि–त्याग की भावना व ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

राजा की तरह

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति। यदीमृण्वन्ति वेधसः॥ ५॥

(१) **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **वेधसः**=ज्ञानी पुरुष **ऋण्वन्ति**=इस सोम को अपने अन्दर प्रेरित करते हैं (प्रेरयन्ति) तो **पवमानः**=यह जीवनों को पवित्र करनेवाला सोम **स्पृधः**=जीवन के शत्रुभूत रोगकृमियों के प्रति **अभिसीदति**=उनके विनाश के लिये जाता है। इस प्रकार उनके विनाश के लिये जाता है **इव**=जैसे कि **राजा**=एक शासक **स्पृधः विशः**=शत्रुभूत मनुष्यों के प्रति जाता है। (२) शरीर में प्रेरित हुआ-हुआ सोम हमारा इस प्रकार रक्षण करता है, जैसे कि एक राजा राष्ट्र का रक्षण करता है। राजा राष्ट्र के शत्रुओं का विनाश करता है, इसी प्रकार सोम शरीर के शत्रुभूत रोगकृमियों का विनाश करता है।

भावार्थ—शरीर में प्रेरित सोम शरीर राष्ट्र का रोगकृमिरूप शत्रुओं से रक्षण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अव्यः=सर्वोत्तमरक्षक

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति। रेभो वनुष्यते मती॥ ६॥

(१) **अव्यः**=(अवति इति **अव्**=अच्, तेषु साधुः) यह सोमरक्षण करनेवालों में उत्तम है। **वारे**=रोगकृमिरूप शत्रुओं के वारण के निमित्त **परिप्रियः**=सर्वत्र प्रिय होता है। **हरिः**=शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ हमारे सब कष्टों का हरण करनेवाला होता है, (ग) **वनेषु सीदति**=उपासनाओं व ज्ञान-किरणों में यह स्थित होता है। इसके रक्षण के साधन यही हैं कि—(क) हम प्रभु की उपासना में प्रवृत्त रहें, तथा (ख) स्वाध्यायशील बनकर ज्ञान को उत्तरोत्तर बढ़ायें। (३) यह सोम का रक्षण करनेवाला **रेभः**=प्रभु का स्तोता बनकर **मती**=बुद्धि के द्वारा **वनुष्यते**=सब वासनारूप शत्रुओं का संहार करता है (वन् To hurt)।

भावार्थ—सोमरक्षकों में सर्वोत्तम है। यह हमारे सब कष्टों का हरण करता है। ज्ञान को बढ़ाता है, वृत्ति को उपासनामयी करता है। इसका रक्षक बुद्धि की तीव्रता के द्वारा वासनाओं को पराजित करता है।

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वायु-इन्द्र-अश्विना की प्राप्ति

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति। रणा यो अस्य धर्मभिः॥ ७॥

(१) **यः**=जो व्यक्ति **अस्य**=इस सोम के **धर्मभिः**=धारणों के द्वारा **रणा**=जीवन में आनन्द का अनुभव करता है, अर्थात् जो सोमरक्षणों में ही आनन्द को मानता है, **सः**=वह **मदेन साकम्**=जीवन के उल्लास के साथ **वायुम्**=वायु को, **इन्द्रम्**=इन्द्र को, **अश्विना**=अश्विनी देवों को **गच्छति**=प्राप्त होता है। (२) सोमरक्षण से जीवन में आनन्द का अनुभव होता है। यह सोमरक्षक वायु को प्राप्त करता है, अर्थात् वायु की तरह सतत क्रियाशील होता है। इन्द्र को प्राप्त होता है, देवराट् बनता है, सब आसुरवृत्तियों का संहार करनेवाला होता है। अश्विनीदेवों को प्राप्त करता है, अपनी प्राणापान शक्ति को बढ़ानेवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) गतिशीलता प्राप्त होती है, (ख) हम सब आसुर वृत्तियों का संहार कर पाते हैं, (ग) प्राणापान शक्ति बढ़ती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'मित्र, वरुण व भग' बनना

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः। विदाना अस्य शक्मभिः॥ ८॥

(१) **मध्वः**=ओषधियों के सारभूत सोम की **ऊर्मयः**=तरंगें **मित्रावरुणा**=मित्र-वरुण को **भगम्**=और भग को **आपवन्ते**=सर्वथा प्राप्त होती हैं। सब के साथ स्नेह करनेवाला 'मित्र' है, 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' न करनेवाला। अपने को पाप से निवृत्त करनेवाला 'वरुण' है। यह अशुभ कर्मों का अपने से निवारण करता है। 'भज सेवायाम्' से बना हुआ 'भग' शब्द उपासक का वाचक है। ये 'मित्र, वरुण व भग' ही अपने में सोम का रक्षण कर पाते हैं। (२) ये मित्र, वरुण और भग **अस्य**=इस सोम की **शक्मभिः**=शक्तियों से **विदानाः**=उस प्रभु के ज्ञानवाले बनते हैं, रक्षित सोम बुद्धि को तीव्र करता है, तीव्र बुद्धि से प्रभु का दर्शन होता है।

भावार्थ—'मित्र, वरुण व भग' बनकर हम सोम का रक्षण करें। रक्षित सोम हमें तीव्र बुद्धि बनाकर प्रभु-दर्शन के योग्य बनायेगा।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वाज-श्रवस्-वसु

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये। श्रवो वसूनि सं जितम्॥ ९॥

(१) **रोदसी**=द्यावापृथिवी **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **वाजस्य सातये**=शक्ति के लाभ के लिये **मध्वः रयिम्**=सोम के धन को, सोमरूप धन को **संजितम्**=जीतनेवाले हों। सारा वातावरण हमारे लिये इस बात की अनुकूलता को पैदा करे कि हम सोमरूप धन को प्राप्त करके शक्तिशाली बनें। (२) इस मधु के रयि (सोम-धन) को प्राप्त कराके ये द्यावापृथिवी हमारे लिये **श्रवः**=ज्ञान को तथा **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों को जीतनेवाले हों। सोमरक्षण से हमारा ज्ञान बढ़े और हमें सब वसुओं की प्राप्ति हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें (क) शक्ति प्राप्त हो, (ख) हमारा ज्ञान बढ़े तथा (ग) सब वसुओं की हमें प्राप्ति हो।

अगले सूक्त के भी ऋषि देवता यही हैं। वहाँ 'असित' कहता है—

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रिय कामना की पूर्ति

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्। वर्धन्तो अस्य वीर्यम्॥ १॥

(१) **एते**=ये **सोमाः**=सोमकण **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **प्रियं कामं अभि**=प्रिय इच्छा का लक्ष्य करके **अक्षरन्**=शरीर में गतिवाले होते हैं। शरीर में सुरक्षित होने पर ये इसकी सब प्रिय कामनाओं को पूर्ण करते हैं। सर्वोत्तम प्रिय कामना इस जितेन्द्रिय पुरुष की यही होती है कि मैं उस प्रभु को प्राप्त कर सकूँ। सोमरक्षण के द्वारा ही यह कामना पूर्ण होती है। यह सोम ही (वीर्य ही) उस सोम (प्रभु) को प्राप्त कराता है। (२) ये सोमकण **अस्य वीर्यम्**=इसके पराक्रम

को **वर्धन्तः**=बढ़ानेवाले होते हैं। रक्षित सोम से शरीर का एक-एक अंग शक्तिशाली बनता है। यह रक्षित सोम ही शरीर पर आक्रमण करनेवाले रोगकृमियों का विनाश करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब प्रिय कामनायें पूर्ण होती हैं। शक्ति का वर्धन होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

क्रियाशील व प्राणसाधक को सोमकणों की प्राप्ति

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना। ते नो धान्तु सुवीर्यम्॥ २॥

(१) **वायुम्**=गतिशील पुरुष को तथा **अश्विना**=प्राणापान की साधना करनेवाले पुरुष को **गच्छन्तः**=प्राप्त होते हुए **चमूषदः**=इस शरीर रूप चमस (पात्र) में ही स्थित होनेवाले सोमकण **पुनानासः**=हमारे जीवनों को पवित्र करते हैं। सोमकणों के रक्षण के लिये दो साधन हैं—(क) क्रिया में लगे रहना, (ख) प्राणापान की साधना करना, प्राणायाम का अभ्यासी बनना। रक्षित सोम हमारे जीवन को पवित्र बनाता है, आधि-व्याधियों से शून्य करता है। (२) **ते**=वे सोमकण **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम पराक्रम को **धान्तु**=धारण करें।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोमकण रोगकृमियों को कम्पित करके दूर करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण से जीवन की सफलता

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय। ऋतस्य योनिमासदम्॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **हार्दि**=हृदय में **पुनानः**=पवित्रता को करती हुई **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की **राधसे**=सिद्धि प्राप्ति के लिये **चोदय**=प्रेरणा को देनेवाली हो। रक्षित हुए-हुए सोम के द्वारा यह साधक पवित्र जीवनवाला बने और अन्ततः सफलता को प्राप्त करे। (२) **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान उस प्रभु को **आसदम्**=पाने के लिये यह समर्थ हो। इस सोम के रक्षण के द्वारा ही जीवन पवित्र बनता है और ज्ञानाग्नि दीप्ति होती है। ज्ञानाग्नि के दीप्त होने पर ही वासनाओं का विनाश होता है और प्रभु का दर्शन होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें पवित्र करे, सफलता की ओर प्रेरित करे और अन्ततः प्रभु को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

दश क्षिपः-सप्त धीतयः

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः। अनु विप्रा अमादिषुः॥ ४॥

(१) शरीर में दस इन्द्रियाँ हैं। वे जब व्यसनों को अपने से परे फेंकती हैं तो 'दश क्षिपः' कहलाती हैं (क्षिप्=फेंकना)। 'कर्णाविभौ नासिके चक्षणी मुखम्' ये सात जीवनयज्ञ के होता हैं, ये जब प्रभु का ध्यान करनेवाले होते हैं तो 'धीतयः' कहलाते हैं। **त्वा**=हे सोम! तुझे **दश**=ये दस **क्षिपः**=व्यसनों को दूर फेंकनेवाली इन्द्रियाँ **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। इन्द्रियाँ विषयों में न फँसी हों तो सोम शक्ति में वासनाओं का उबाल नहीं आता और वह पवित्र बनी रहती है। (२)

सप्त=सात (दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व वाणी) **धीतयः**=प्रभु का ध्यान करनेवाले जीवनयज्ञ के होता **हिन्वन्ति**=तुझे शरीर में ही प्रेरित करते हैं। **अनु**=इस शरीर के अन्दर प्रेरण के अनुपात में ही **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **अमादिषुः**=हर्ष का अनुभव करते हैं। जितना सोमरक्षण, उतना उल्लास।

भावार्थ—इन्द्रियां विषयों से रहित हों तथा प्रभु ध्यान में प्रवृत्त रहें तो सोम शरीर में सुरक्षित रहता है, तभी उल्लास का अनुभव होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देवेभ्यः—मदाय

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः। सं गोभिर्वासयामसि॥ ५॥

(१) 'मिष' धातु छिड़कने अर्थ में आती है (To sprinkle)। यह सोम **अति मेष्यः**=अतिशयेन शरीर में ही छिड़कने योग्य है, अर्थात् इसे नष्ट न होने देकर शरीर में ही व्याप्त करना ठीक है। हे सोम! तू 'अतिमेष्य' है, सो **कं सृजानम्**=आनन्द को उत्पन्न करनेवाले **त्वा**=तुझ को **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की उत्पत्ति के लिये तथा **मदाय**=जीवन को उल्लासमय बनाने के लिये **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **सं वासयामसि**=सम्यक् आच्छादित करते हैं, तुझे धारण करने का प्रयत्न करते हैं। (२) ज्ञान की वाणियों के द्वारा सोम के धारण का भाव यह है कि जब हम मन को इन ज्ञानवाणियों में व्यापृत करते हैं तो मन विषयों से व्यावृत्त होता है। वासनाओं का अबाल न आने से सोम का रक्षण होता है। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बन आता है। इस प्रकार इसका विनियोग बुद्धि को सूक्ष्म करने व ज्ञानदीप्ति में हो जाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम दिव्य गुणों के विकास का व उल्लास का साधन बनता है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति हमें सोमरक्षण में सहायक होती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अरुषः—हरिः

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः। परि गव्यान्यव्यत॥ ६॥

(१) **कलशेषु**='कलाः शेरते एषु' सोलह कलाओं के आधारभूत इन शरीरों में व्याप्त होता हुआ यह सोम **पुनानः**=पवित्र करनेवाला है। यह **आ अरुषः**=आरोचमान है, ज्ञान को दीप्त करनेवाला है। **हरिः**=कष्टों व रोगों का हरण करनेवाला है। (२) इसके रक्षण के लिये **गव्यानि**=ज्ञान की वाणियों से बने हुए **वस्त्राणि**=वस्त्रों को **परि अव्यत**=समन्तात् धारण करनेवाले बनो (पर्याच्छादयति=अव्यति सा०)। 'गव्य वस्त्रों को धारण' का भाव है 'निरन्तर ज्ञान प्राप्ति में लगना'। यह ज्ञान का व्यसन ही अन्य व्यसनों से हमें बचाता है और तभी सोम के रक्षण का सम्भव होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें पवित्र बनाता है, हमारे ज्ञान को दीप्त करता है, हमारे कष्टों व रोगों का हरण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

यज्ञशीलता व प्रभु मित्रता

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः। इन्दो सखायमा विश॥ ७॥

(१) (मघवान्=मखवान्) हे सोम! **मघोनः**=यज्ञशील **नः**=हमें **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त हो। हमें प्राप्त होकर तू **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **अपजहि**=हमसे से दूर कर। सदा यज्ञों में लगे रहने पर सोम का शरीर में सुरक्षित होना स्वाभाविक है। सोम के सुरक्षित होने पर हमारे जीवनों में 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' नहीं रहते। (२) **इन्दो**=हे शक्ति का संचार करनेवाले सोम! **सखायम्**=प्रभु का मित्रभूत मुझे **आविश**=समन्तात् प्राप्त हो। मैं प्रभु का मित्र बनूँ। प्रभु का मित्र बनने पर वासनाओं से मैं आक्रान्त न हूँगा और सोम को शरीर में ही व्याप्त करके 'नीरोग निर्मल व दीप्त' बन पाऊँगा।

भावार्थ—यज्ञशील व प्रभु के मित्र बनकर हम सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करें।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्द वृष्टि

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि। सहो नः सोम पृत्सु धाः॥ ८॥

(१) हे सोम! तू **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से **वृष्टिं**=धर्ममेघ समाधि में होनेवाली आनन्द की वर्षा को **परिस्रव**=परिस्रुत कर। सोमरक्षण से मनुष्य योग की अगली-अगली भूमिकाओं में पहुँचता हुआ इस धर्ममेघ समाधि की अन्तिम मंज़िल में भी पहुँचता है और आनन्द की वर्षा का अनुभव करता है। (२) हे सोम! तू **पृथिव्याः**=इस पृथिवी रूप शरीर के **द्युम्न**=(energy, strength, power) बल को **अधि**=आधिक्येन **धाः**=हमारे में स्थापित कर। सोमरक्षण से हमारा शरीर अंग-प्रत्यंग में बलवाला, सुदृढ़ बनाता है। (३) हे सोम! तू **पृत्सु**=काम-क्रोध आदि के साथ चलनेवाले अध्यात्म संग्रामों में **नः**=हमारे लिये **सहः**=शत्रुओं को कुचलने की शक्ति को (धाः) धारण कर। इस सोमरक्षण के द्वारा जैसे हम शारीरिक रोगों पर विजय पायें, उसी प्रकार मानस विकारों को भी हम पराभूत करनेवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) योगमार्ग में प्रगति होकर हमें आनन्द का लाभ होता है, (ख) शरीर का बल बढ़ता है, (ग) काम-क्रोध आदि शत्रुओं पर हम विजय पानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रकाश

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्। भक्षीमहि प्रजामिषम्॥ ९॥

(१) हे सोम! **नृचक्षसम्**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाले, उन्हें रोगादि के आक्रमण से बचानेवाले **त्वा**=तुझे **वयम्**=हम **भक्षीमहि**=अपने अन्दर ही खानेवाले (consume) विनियुक्त करनेवाले बनें। (२) उस तुझे हम अपने अन्दर ग्रहण करनेवाले हों, जो तू **इन्द्रपीतम्**=जितेन्द्रिय पुरुष से पीया जाता है, जितेन्द्रिय पुरुष ही तुझे अपने अन्दर व्याप्त कर पाता है। **स्वर्विदम्**=जो तू प्रकाश को प्राप्त करानेवाला है। तू **प्रजाम्**=शक्तियों के प्रकृष्ट प्रादुर्भाव को करनेवाला है तथा

इषम्=(इष प्रेरणे) उत्तम प्रेरणा को प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से हृदय निर्मल होता है और निर्मल हृदय में प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

अगले सूक्त में भी प्रस्तुत सूक्त की तरह सोम की महिमा का ही उल्लेख है—

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रिय जीवन

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। सुवानो याति कविक्रतुः॥ १॥

(१) **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ सोम **कविक्रतुः**=क्रान्तप्रज्ञ व शक्तिशाली होता हुआ **याति**=प्राप्त होता है प्रज्ञा व शक्ति का विकास करता हुआ यह सोम **प्रिया वयांसि**=प्रिय जीवनों को **परि** (याति)=प्राप्त कराता है। (२) यह सोम हमारे जीवनों में **दिवः कविः**=ज्ञान का (कु शब्दे) उपदेश करनेवाला है, इसके द्वारा निर्मल हृदय में ज्ञान की वाणी सुन पड़ती है। इस ज्ञान के उपदेश के द्वारा ये **नप्त्योः हितः**=न पतन के कारणभूत द्यावापृथिवी में स्थापित होता है। 'द्यावापृथिवी' मस्तिष्क व शरीर है। यह सोम इन में स्थापित होता है। शरीर में स्थापित हुआ-हुआ शरीर को तेजस्वी बनाता है और मस्तिष्क में स्थापित हुआ-हुआ ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर को तेजस्वी व मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है। ऐसा ही जीवन 'प्रिय जीवन' होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'उत्तम-स्तुतिमय-विकसित-द्रोहशून्य' जीवन

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे। वीत्यर्ष चनिष्ठया॥ २॥

(१) हे सोम! तू **चनिष्ठया वीती**=(चनः=अन्नं) अत्यन्त सात्त्विक अन्न के भक्षण से **अर्ष**=हमें प्राप्त हो। सात्त्विक अन्न के सेवन से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। यह सुरक्षित सोम **प्रप्र क्षयाय**=अत्यन्त उत्कृष्ट निवास के लिये होता है। (२) यह **पन्यसे**=उत्तम स्तुतिमय जीवन का कारण बनता है। **जुष्टः**=सेवित हुआ-हुआ **जनाय**=शक्तियों के विकास के लिये होता है, तथा **अद्रुहे**=न द्रोह के लिये होता है। सोमरक्षक पुरुष के जीवन में 'इर्ष्या-द्वेष-क्रोध' के लिये स्थान नहीं होता।

भावार्थ—सात्त्विक अन्न का सेवन सोमरक्षण के लिये अनुकूल होता है। रक्षित सोम जीवन को 'उत्तम, स्तुतिमय, विकसित, द्रोहशून्य' बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्यावापृथिवी का दीपन

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्। महान्मही ऋतावृधा॥ ३॥

(१) **सः**=वह सोम **सूनुः**=(षू प्रेरणे) जीवन में उत्कृष्ट प्रेरणा को देनेवाला है। **जातः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **शुचिः**=यह पवित्रता को करनेवाला है। **जाते**=(जनी प्रादुर्भावे) विकसित शक्तिवाले **मातरा**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **अरोचयत्**=यह दीप्त करता है। (२) **महान्**=यह सोम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके रक्षित होने पर (मातरा) द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर भी **मही**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनते हैं और **ऋतावृधा**=ऋत का वर्धन करनेवाले होते हैं। शरीर ठीक शक्तियोंवाला व मस्तिष्क ठीक ज्ञानोंवाला होता हुआ हमारे जीवन में ऋत का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को दीप्त करता है, उन्हें ऋत का वर्धन करनेवाला बनाता है। शरीर नीरोग बना रहता है, मस्तिष्क ज्ञानदीप्त बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

एकं अक्षि=अद्वितीय सर्वद्रष्टा

स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः। या एकमक्षि वावृधुः॥ ४॥

(१) **सः**=वह सोम **सप्त धीतिभिः**=सात ध्यानवृत्तियों के द्वारा 'कानों, नासिका छिद्रों, आँखों व मुख' इन सातों को अन्तर्मुखी वृत्तिवाला करने के द्वारा **हितः**=शरीर में स्थापित हुआ-हुआ **नद्यः**=ज्ञान की नदियों को **अजिन्वत्**=प्रीणित करता है। इन ज्ञान की नदियों को प्रीणित करके यह **अद्रुहः**=द्रोह से रहित होता है, किसी भी प्रकार हमारा विनाश नहीं होने देता। (२) इस सोम (वीर्य) द्वारा प्रीणित हुई-हुई ये ज्ञान नदियाँ वे होती हैं **याः**=जो कि **एकं अक्षि**=उस अद्वितीय सर्वद्रष्टा प्रभु को **वावृधुः**=हमारे में बढ़ाती हैं। इन ज्ञानों को प्राप्त करके हम प्रभु को सर्वद्रष्टा के रूप में अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार यह सोम हमें हिंसित होने से बचाता है।

भावार्थ—'कान, नासिका, चक्षु, जिह्वा' इन सभी को अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनाकर हम सोम का रक्षण करते हैं। रक्षित सोम से ज्ञान की नदियों का प्रवाह चलता है। ये हमें हिंसित होने से बचाती हैं। इनके द्वारा हम प्रभु को सर्वद्रष्टा के रूप में अनुभव करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'सन् अस्तृत युवा' सोम

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः। इन्दुमिन्द्र तव व्रते॥ ५॥

(१) **ताः**=वे गत मन्त्र में वर्णित धीतियाँ (ध्यानवृत्तियाँ) **सन्तम्**=श्रेष्ठ **अस्तृतम्**=अहिंसित **युवानाम्**=बुराइयों को हमारे से दूर करनेवाले और अच्छाइयों को हमारे से मिलानेवाले सोम को **महे**=महत्त्व की प्राप्ति के लिये **अभि आदधुः**=द्यावापृथिवी में स्थापित करती हैं, मस्तिष्क में (द्यावा में) यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और पृथिवी में (शरीर में) रोगकृमियों के विनाश का कारण बनता है। ज्ञान व स्वास्थ्य के द्वारा यह हमारे जीवन को सन्=श्रेष्ठ व **अस्तृत**=अहिंसित बनाता है। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तव व्रते**=तेरे व्रत में **इन्दुम्**=इस सोम को वे ध्यान वृत्तियाँ शरीर में स्थापित करनेवाली होती हैं। जब मनुष्य जितेन्द्रियता का व्रत लेता है तभी वस्तुतः वह ध्यानवृत्तिवाला बन पाता है। इस ध्यान-वृत्तियों से वह सोम का शरीर में रक्षण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—व्रतमय जीवन के द्वारा शरीर में सुरक्षित सोम हमारी 'श्रेष्ठता, अहिंसा व निर्दोषत्व' का कारण बनता है।

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'क्रिवि' सोम

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः। क्रिविर्देवीरतर्पयत्॥ ६॥

(१) **वह्निः**=हमें जीवन में सफलता से आगे-आगे ले चलनेवाला, **अमर्त्यः**=हमें रोगों से बचानेवाला, **वावहिः**=हमारे कार्यभारों का सम्यक् वहन करनेवाला यह सोम **सप्त**=शरीरयज्ञ के संचालक सातों होताओं को 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्', कानों, नासिका, छिद्रों, आँखों व मुख को **अभिपश्यति**=अच्छी प्रकार देखता है, सोम इनको सुरक्षित रखता है, सोमरक्षण से इनकी शक्ति बढ़ती है। (२) **क्रिविः**=(Doing, performing) सब कार्यों को सम्यक् करता हुआ तथा विरोधी तत्त्वों का विनाश करता हुआ यह सोम **देवीः**=ज्ञान प्राप्ति की साधनभूत इन इन्द्रियों को **अतर्पयत्**=प्रीणित करता है। सोमरक्षण से ये इन्द्रियाँ प्रवृद्ध शक्तिवाली बनती हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन करता है। सोम शरीर के सब कार्यों का संचालन करता है और रोगकृमियों का विनाश करता है।

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

तामसभावों का विनाश

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या। तानि पुनान जङ्घनः॥ ७॥

(१) हे **पुमः**=(पुनाति इति) हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **आ कल्पेषु**=(ordinance) शास्त्रों की आज्ञाओं में **नः अव**=हमें सुरक्षित कर। सोम के रक्षण से जीवन पवित्र बनता है, हमारी रुचि शास्त्रमर्यादानुसार कर्म करने की होती है। (२) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **तमांसि योध्या**=(=योधया) अन्धकार को युद्ध करके हमारे से दूर कर। सोमशक्ति से सम्पन्न होकर हम सब तामस भावों को अपने से दूर कर पायें। हे **पुनान**=पवित्र करनेवाले सोम! **तानि**=उन सब अन्धकारों को **जङ्घनः**=पूर्णरूप से नष्ट कर।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारा जीवन शास्त्रमर्यादा में चलनेवाला हो और तामस भावों को हम विनष्ट कर सकें।

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

प्रभु के समान दीप्त

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः। प्रत्नवद्रोचया रुचः॥ ८॥

(१) हे सोम! **नु**=अब **नव्यसे**=स्तुति के योग्य, **नवीयसे**=(नवते to go) उत्कृष्ट गतिमय **सूक्ताय**=सूक्त के लिये **पथः**=मार्गों को **साधया**=सिद्ध कर। सोमरक्षण से हमारी रुचि ऐसी बने कि हम प्रभु का स्तवन करें, जो स्तवन प्रशंसनीय व क्रियामय जीवन से युक्त हो। (२) हे सोम! तू **रुचः**=हमारी कान्तियों को **प्रत्न-वत्**=उस सनातन प्रभु की तरह **रोचया**=दीप्त कर। सोमरक्षण से हमारी दीप्ति प्रभु जैसी हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम (क) प्रभु के क्रियामय स्तवन को करनेवाले बनें तथा (ख) प्रभु के समान दीप्तिवाले हों।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मेधा-स्वः

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत्। सना मेधां सना स्वः॥ ९॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **महि श्रवः**=महनीय ज्ञान को **वीरवत्**=वीरता से युक्त **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों को और **अश्वम्**=कर्मेन्द्रियों को **रासि**=देता है। सोम के रक्षण से (क) ज्ञानवृद्धि होती है, (ख) इन्द्रियाँ सशक्त बनती हैं। (२) हे सोम! सुरक्षित हुआ-हुआ तू **मेधां सन**=बुद्धि को दे तथा **स्वः**=प्रकाश को व प्रकाशजन्य सुख को **आसन**=प्राप्त करा। सोमरक्षण से बुद्धि सूक्ष्म बनती है और ज्ञान का ग्रहण करनेवाली होती है। यह सूक्ष्म बुद्धि ही प्रभु का दर्शन कराती है।

भावार्थ—सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'ज्ञान को, सशक्त इन्द्रियों को, मेधा को व प्रकाशजन्य सुख को' प्राप्त कराता है।

इसी विषय को अगले सूक्त में भी देखिये—

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

रथों की तरह या घोड़ों की तरह

प्र स्वानासो रथाइवार्वन्तो न श्रवस्यवः। सोमासो राये अक्रमुः॥ १॥

(१) **सोमासः**=शरीर में सुरक्षित हुए-हुए सोम **प्र स्वानासः**=प्रकृष्ट शब्दोंवाले **रथाः इव**=रथों के समान होते हैं, 'रथ' यात्रा की पूर्ति का साधन होता है। ये सोम भी यात्रा पूर्ति का प्रमुख साधन बनते हैं। गतिमय रथ में ध्वनि होती है, इन सोमों के सुरक्षित होने पर मनुष्य प्रभु के सूक्तों का उच्चारण करता है। (२) ये सोम **अर्वन्तः न**=घोड़ों के समान **श्रवस्यवः**=यश की कामनावाले होते हैं। घोड़े बाह्य शत्रुओं को विजित करने में सहायक होते हैं शत्रु विजय से वे हमें यशस्वी बनाते हैं। सुरक्षित सोम अन्तः शत्रुओं को पराजित करके हमें यशस्वी बनाता है। ये सुरक्षित **सोमासः**=सोम **राये**=हमारे ऐश्वर्य के लिये **अक्रमुः**=गतिवाले होते हैं। इनके द्वारा हमारे ऐश्वर्य का वर्धन ही वर्धन होता है।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। ये हमें जीवनयात्रा की पूर्ति में रथ का काम देंगे, युद्ध में विजय के लिये ये घोड़ों के समान होंगे तथा हमारे ऐश्वर्य के वर्धन का साधन बनेंगे।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोमकणों का भुजाओं में धारण

हिन्वानासो रथाइव दधन्विरे गभस्त्योः। भरासः कारिणामिव॥ २॥

(१) **इव**=जैसे **रथाः**=रथ लक्ष्यदेश की ओर जाते हैं, इसी प्रकार शरीरस्थ सोमकण **हिन्वानासः**=प्रभु प्राप्ति की ओर प्रेरित होते हैं। रथ हमें लक्ष्य-स्थान पर ले जाता है। सोमकण भी हमें 'साकाष्ठा, सापरागतिः' इन शब्दों में वर्णित प्रभु की ओर ले जाते हैं। (२) **इव**=जैसे **कारिणाम्**=कर्म करनेवालों की भुजाओं पर **भरासः**=भार **दधन्विरे**=धारण किये जाते हैं, इसी

प्रकार ये सोम भी **गभस्त्योः**=हमारी भुजाओं में स्थापित किये जाते हैं। ये सोमकण ही भुजाओं को शक्तिशाली बनाते हैं। इनके भुजाओं में स्थापन का यह भी भाव है कि जब मनुष्य सदा क्रियाशील बना रहता है तो वासनाओं से अनाक्रान्त होने के कारण वह इनका रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—सोमकण ही सुरक्षित होकर भुजाओं को शक्तिसाली बनाते हैं, तथा जीवनयात्रा की सफल पूर्ति का साधन बनते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान की वाणियों द्वारा सोमकणों का शरीर में स्थापन

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभिः॒ सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते। य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभि॑ः॥ ३॥

(१) **सोमासः**=सोमकण **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **अञ्जते**=शरीर में अलंकृत किये जाते हैं (अज्यन्ते सा०) **न**=जैसे कि **राजानः**=राजा लोग **प्रशस्तिभिः**=प्रशंसा की वाणियों से तथा **न**=जैसे कि **यज्ञः**=यज्ञ **सप्त**=सात **धातृभिः**=होताओं से अलंकृत किया जाता है। (२) जैसे राजाओं की प्रशस्तियाँ की जाती हैं, इसी प्रकार इन सोमकणों की भी प्रशंसा होती है। जैसे यज्ञ सात होताओं द्वारा प्रणीत होता है, इसी प्रकार यह सोम शरीर में 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सात के संयम से सुरक्षित होता है। (३) 'शस्' धातु हिंसार्थक भी है। राजाओं का अलंकार यही है कि वे खूब ही शत्रुओं का शसन (हिंसन) करें। सोम भी शरीर में रोगकृमिरूप शत्रुओं का हिंसन करता है। इसी प्रकार यज्ञ जैसे सात होताओं द्वारा अलंकृत किया जाता है, यह सोम भी सात छन्दोंवाली इन ज्ञान की वाणियों से शरीर में अलंकृत किया जाता है। मनुष्य जब इन वाणियों में रुचिवाला बनता है तो वह वासनाओं से बचा रहता है। इस प्रकार ये सोमकण शरीर में ही सुरक्षित रहते हैं और शरीर को श्री-सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोमकण शरीर को अलंकृत करनेवाले होते हैं। इनकी सुरक्षा के लिये आवश्यक है कि हम ज्ञान की वाणियों की ओर झुकाववाले बने रहें।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

बर्हणा-गिरा

परि॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा। सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या॥ ४॥

(१) **परि सुवानासः**=(परितः सूयमानाः, षू प्रेरणे)=शरीर में चारों ओर प्रेरित किये जाते हुए सोम **इन्दवः**=सोमकण **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होते हैं। वस्तुतः शरीर के अंग-प्रत्यंग की शक्ति को ये ठीक रखते हैं। यह शरीर-रथ इनके कारण दृढ़ बना रहता है। इस प्रकार जीवन में उल्लास स्थिर रहता है। स्वास्थ्य के साथ ही उल्लास है। (२) **बर्हणा**=वासनाओं के उद्बर्हण के (विनाश के) द्वारा तथा **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **सुताः**=शरीर में संपादित हुए सोम **धारया अर्षन्ति**=धारण शक्ति के साथ प्राप्ति करते हैं। सोम को शरीर में सुरक्षित रखने के दो सम्बन्ध है, (क) वासनाओं का उद्बर्हण (विनाश), (ख) ज्ञान की वाणियों में लगाव। इस प्रकार रक्षित हुआ-हुआ सोम शरीर की शक्तियों का धारण करता है।

भावार्थ—वासनाओं के विनाश व ज्ञान प्राप्ति में तत्परता के द्वारा सोम को शरीर में सुरक्षित करके हम उल्लासमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

उषा का ऐश्वर्य व सूक्ष्म बुद्धि

आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम्। सूरा अण्वं वि तन्वते॥ ५॥

(१) **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणोंवाले ज्ञानी पुरुष के ये सोमकण **आपानासः**=पान (पेय पदार्थ) बनते हैं। ज्ञान प्राप्ति में लगा हुआ वह इन्हें शरीर में ही चारों ओर व्याप्त करता है। शरीर में व्याप्त किये हुए ये सोमकण **उषसः भगम्**=उषा के ऐश्वर्य को **जनन्त**=हमारे जीवन में उत्पन्न करते हैं। उषा का ऐश्वर्य यही है कि वह अपने प्रकाश से अन्धकार को तो दूर करती है, पर कभी सन्ताप का कारण नहीं बनती। इसी प्रकार सुरक्षित सोम हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं और शरीर के तापों का हरण करनेवाले होते हैं। (२) **सूराः**=ज्ञानी पुरुष, इस प्रकार इन सोमकणों के रक्षण के द्वारा **अण्वम्**=(subtle) सूक्ष्म बुद्धि को **वितन्वते**=विस्तृत करते हैं। इनके रक्षण से बुद्धि बड़ी तीव्र बनती है। उस तीव्र बुद्धि से अन्ततः हम प्रभु दर्शन कर पाते हैं।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहकर हम सोम को शरीर में ही व्याप्त करें। यह हमें उस ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करायेगा जो कि कभी संताप का कारण नहीं होता।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अप ऋण्वन्ति

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः। वृष्णो हरस आयवः॥ ६॥

(१) **मतीनां कारवः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियों के करनेवाले, **प्रत्नाः**=पुरातन सभ्यता का अंगीकार करनेवाले, जिन पर नयी दुनियाँ का रंग नहीं चढ़ गया, ऐसे लोग **द्वारा**=इन्द्रिय द्वारों को **अपऋण्वन्ति**=विषय-वासनाओं से पृथक् करते हैं। (२) ये इन्द्रिय द्वारों के विषयों से अलग करनेवाले लोग ही **वृष्णः**=इस शक्ति का सेचन करनेवाले सोम के **हरसः**=आहर्ता होते हैं और **आयवः**=(एति इति) गतिशील होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण ही हमें सदा गतिशील बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'परमपद प्रापक' सात होता

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः। पदमेकस्य पिप्रतः॥ ७॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोम का रक्षण करने पर इस जीवनयज्ञ के **सप्त**=सात **होतारः**=होता—'कान, नासिका छिद्र, आँखें तथा मुख' **समीचीनासः**=(सम्+अञ्च्) मिलकर कार्य करनेवाले होते हैं तथा **जामयः**=उत्तम गुणों व शक्तियों का विकास करनेवाले बनते हैं। (२) इस प्रकार मिलकर कार्य करनेवाले व उत्तम शक्तियों का विकास करनेवाले ये जीवन यज्ञ के सात होता **एकस्य**=उस अद्वितीय प्रभु के 'स एष एकः, एकवृदेक एव' (अथर्व०) **पदम्**=पद को **पिप्रतः**=(पूरयन्तः) हमारे में पूरित करनेवाले होते हैं। अर्थात् ये हमें प्रभु को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवनयज्ञ के सात होता 'दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख' हमें प्रभु के परमपद को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

कवि के अपत्य का दोहन

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा। कवेरपत्यमा दुहे॥ ८॥

(१) **नः**=हमारे **नाभौ**='अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' यज्ञ में **नाभिम्**=शरीर-रथ के केन्द्रभूत सोम को **आददे**=ग्रहण करता हूँ। यज्ञों में प्रवृत्त रहकर मैं सोम का रक्षण करता हूँ। उस समय **चक्षुः**=आँख **चित्**=निश्चय से **सूर्ये**=सूर्य में **सचा**=संगत होती है। अर्थात् यज्ञों में लगे रहना सोमरक्षण का साधन बनता है। सुरक्षित सोम दृष्टि शक्ति की वृद्धि का कारण बनता है। (२) इस सोमरक्षण से जहाँ दृष्टि शक्ति बढ़ती है, वहाँ मैं **कवेः**=उस क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ प्रभु के **अपत्यम्**=अपतन के हेतुभूत ज्ञान को **आदुहे**=अपने में पूरित करता हूँ। सोमरक्षण से ही बुद्धि तीव्र होती है और वेदधेनु के दोहन करनेवाली बनती है।

भावार्थ—यज्ञों में लगे रहने से सोम का रक्षण होता है। उस समय दृष्टि शक्ति भी तीव्र बनती है और उस सर्वज्ञ परमात्मा के वेदज्ञान को हमारी बुद्धि प्राप्त करती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रकाशमय प्रभु के पद का दर्शन

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्। सूरः पश्यति चक्षसा॥ ९॥

(१) **सूरः**='सुवीर्य इन्द्रः' सोमरक्षण के द्वारा उत्तम वीर्यवाला इन्द्र **प्रिया चक्षसा**=प्रिय-प्रीणित करनेवाली दृष्टिशक्ति से **दिवः पदम्**=उस प्रकाशमय प्रभु के पद को **अभिपश्यति**=देखता है। सोमरक्षण के द्वारा दृष्टिशक्ति सूक्ष्म बनती है। उस दृष्टि से सर्वत्र प्रभु की महिमा का दर्शन होता है। (२) यह प्रभु का पद **अध्वर्युभिः**=यज्ञशील पुरुषों के द्वारा **गुहा हितम्**=बुद्धिरूपी गुहा में स्थापित होता है। यज्ञशील पुरुष अपनी बुद्धि में उस प्रभु के प्रकाश को देखता है। इसी प्रकाश को सोमरक्षक इन्द्र अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से सूक्ष्म दृष्टि से तीव्र बुद्धि बनकर हम प्रभु का दर्शन करते हैं, यह प्रभु यज्ञशील पुरुषों के द्वारा बुद्धि रूप गुहा में स्थापित किये जाते हैं।

अगले सूक्त में भी इसी सोम की महिमा का प्रतिपादन है—

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोम गुणगान

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते॥ १॥

(१) हे **नरः**=(नृ नये) उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाले मनुष्यो! **अस्मै इन्दवे**=इस सोम के लिये **उपगायता**=समीपता से गायन करो। अर्थात् इसके गुणों का स्मरण करो। यह सोम **पवमानाय**=पवित्र करनेवाला है, शरीर को जहाँ रोगों से रहित करता है, वहाँ मन को वासनाओं से शून्य बनाता है। सोमरक्षण के होने पर मनुष्य क्रोध आदि के वशीभूत नहीं होता। (२) उस सोम के गुणों का गायन करो, जो कि **देवान् अभि इयक्षते**=देवों की ओर हमें ले चलता है,

देवों के साथ हमारा सम्पर्क करना चाहता है। अर्थात् सोम के द्वारा हमारे जीवन में दिव्य गुणों का वर्धन होता है।

भावार्थ—सोम (वीर्य) हमें पवित्र बनाता है, हमारे जीवन में दिव्य गुणों का वर्धन करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

माधुर्य व प्रभु प्राप्ति

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयु॥ २॥

(१) **अथर्वाणः**=(न थर्वति) स्थिर वृत्ति के लोग **ते**=हे सोम! तेरे **पयः**=रस को अथवा तेरी आप्यायन शक्ति को **मधुना**=माधुर्य के हेतु से **अभि अशिश्रयुः**=सेवन करते हैं। अर्थात् सोम की इस आप्यायनशक्ति से जीवन को वे मधुर बनाते हैं। (२) इस सोम के 'पयस्' को **देवाय**=उस प्रकाशमय प्रभु की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं। यह 'पयस्' **देवम्**=प्रकाशमय है। तथा **देवयु**=उस प्रकाशमय प्रभु से हमें मिलानेवाला है (यु मिश्रणे)।

भावार्थ—रक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके प्रभु के प्रकाश का साधन बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'गौ-जन-अर्वा'

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः॥ ३॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **नः पवस्व**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला हो। **गवे शम्**=हमारी ज्ञानेन्द्रियों के लिये तू शान्ति को करनेवाला हो। **जनाय शम्**=हमारी शक्तियों के प्रादुर्भाव के लिये (जन् प्रादुर्भावे) होता हुआ तू शान्ति को देनेवाला हो। **अर्वते शम्**=हमारे कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के लिये तू शान्ति को देनेवाला हो। (२) हे **राजन्**=हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाले सोम! तू **ओषधीभ्यः**=(पंचमी) ओषधियों के सेवन से उत्पन्न हुआ-हुआ **शम्**=शान्ति को देनेवाला हो। ओषधियाँ सामान्यतः 'सोम्य' भोजन हैं, मांसादि आग्नेय हैं। ओषधि भोजन से उत्पन्न सोम का शरीर में रक्षण सुगम हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ स्वस्थ रहती हैं। शक्तियों का विकास भी इसी सोमरक्षण पर निर्भर करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोम-गाथा-गान

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे। सोमाय गाथमर्चत॥ ४॥

(१) **सोमाय**=शरीर में उत्पन्न होनेवाली सोमशक्ति के लिये **गाथम्**=स्तुति रूप वाणी का **अर्चत**=उच्चारण करो। सोम के गुणवर्णनात्मक मन्त्रों के द्वारा सोम का स्तवन करो। उस सोम का जो कि **नु**=निश्चय से **बभ्रवे**=शरीर का खूब ही भरण करनेवाला है। **स्वतवसे**=जो सोम आत्मिक बल को बढ़ानेवाला है। (२) उस सोम का गायन करो, जो कि **अरुणाय**=तेजस्विता के अरुण वर्णवाला है। अर्थात् जो सोम अपने रक्षक को तेजस्विता की अरुणता प्राप्त कराता है और

दिविस्पृशे=ज्ञान के दृष्टिकोण से द्युलोक को छूनेवाला है। यह शरीर में हमें तेजस्वी बनाता है, मस्तिष्क में दीप्तिमय।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर का धारण करता है, आत्मिकबल को बढ़ाता है, हमें तेजस्वी व दीप्त मस्तिष्क बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'मधु' में मधु का शोधन

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन। मधावा धावता मधु॥ ५॥

(१) **सोमम्**=शरीरस्थ इस सोम (वीर्य) धातु को **पुनीतन**=पवित्र करो। जो सोम धातु **हस्तच्युतेभिः**=दान देने में खुले हाथवालों से (not close-fisted) जिनकी मुट्ठी सदा खुली है, जिनके हाथ से दान के रूप में धन क्षरित होता रहता है, ऐसे **अद्रिभिः**=(to adore) प्रभु का पूजन करनेवालों से **सुतम्**=उत्पन्न किया जाता है। दान की वृत्ति भोगवृत्ति को समाप्त करती है और इस प्रकार सोमरक्षण का साधन बन जाती है। प्रभु की उपासना भी हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाये रखती है। इस प्रकार यह भी सोम की रक्षिका बनती है। (२) **मधौ**=सारे ब्रह्माण्ड के सारभूत उस परब्रह्म में **मधु**=ओषधियों के सारभूत इस सोम का **आधावता**=धावन (=शोधन) करो।

भावार्थ—परब्रह्म में सोम का शोधन यही है कि परब्रह्म के उपासन से वासनाओं से बचे रहना। ये वासनायें ही तो सोम का विनाश करती हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'इन्दु' का इन्द्र में धारण

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन। इन्दुमिन्द्रे दधातन॥ ६॥

(१) **नमसा**=नमन के द्वारा **इत्**=निश्चय से **उपसीदत**=प्रभु की उपासना करो। इस प्रभु की उपासना से ही **इन्दुम्**=सोम को **इन्द्रे**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के निमित्त (जितेन्द्रिय पुरुष में) **दधातन**=धारण करो। उपासना के होने पर वासनाओं की प्रबलता नहीं होती। वासनाओं की प्रबलता के अभाव में सोम का रक्षण सुगम होता है, रक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके प्रभु के प्रकाश का साधन बनता है। (२) **दध्ना**='इन्द्रियं वै दधि' (तै० २।१।५।६) इन्द्रियों के हेतु से **इत्**=निश्चय से **अभि श्रीणीतन**=इस सोम का परिपाक करो। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखना इसलिए आवश्यक है कि इसी के द्वारा सब इन्द्रियों की शक्ति ठीक बनी रहती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये हम प्रभु का उपासन करें। रक्षित सोम हमारी इन्द्रियों की शक्ति के वर्धन का कारण बनता है और अन्ततः प्रभु के प्रकाश को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'देवेभ्यः अनुकामकृत्' सोम

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे। देवेभ्यो अनुकामकृत्॥ ७॥

(१) यह सोम '**अमित्र-हा**'=शरीरस्थ रोगकृमिरूप शत्रुओं का विनाशक करनेवाला है।

इनके विनाश के द्वारा **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से ध्यान करनेवाला है। हे सोम! तू हमें **पवस्व**=प्राप्त हो। तेरी प्राप्ति से **गवे** शम्=(गावः इन्द्रियाणि) हमारी इन्द्रियों के लिये **शम्**=शान्ति हो। यह सोम इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाकर उन्हें पूर्ण स्वस्थ बनाता है। (२) हे सोम! तू **देवेभ्यः**=देववृत्तिवाले पुरुषों के लिये **अनुकामकृत्**=अनुकूल कामना को करनेवाला है। सोमरक्षण से इन देव वृत्तिवाले पुरुषों के हृदयों में उत्तम ही कामनायें उत्पन्न होती हैं और इसी सोमशक्ति से वे सब कामनायें पूर्ण हो पाती हैं।

भावार्थ—सोम रोगकृमि रूप शत्रुओं का विनाश तो करता ही है, 'प्रतिकूल कामना' रूप मानस शत्रुओं का भी विनाश करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'मनसस्पति' सोम

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे। मनश्चिन्मनसस्पतिः॥ ८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **इन्द्राय पातवे**=जितेन्द्रिय पुरुष के पान के लिये होती है। एक जितेन्द्रिय व्यक्ति ही तुझे अपने अन्दर व्याप्त कर सकता है। तू शरीर के अंग-प्रत्यंग में **परिषिच्यसे**=चारों ओर सिक्त होती है। शरीर में सिक्त होकर तू **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होती है। (२) हे सोम! तू **मनः चित्**=निश्चय से ज्ञान है (मनु अवबोधने)। सोम के रक्षण से ही ज्ञानाग्नि दीप्त होती है। **मनसः पतिः**=सोम ही मन का पति है। सुरक्षित सोम मन की उत्तम स्थिति का कारण बनता है।

भावार्थ—सोम के शरीर में व्याप्त होने पर जीवन 'उल्लासमय व ज्ञानमय' बनता है। इससे मन भी ठीक स्थिति में रहता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सुवीर्य रयि

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः। इन्दविन्द्रेण नो युजा॥ ९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **पवमान**=हमारे जीवन को पवित्र बनानेवाले सोम! तू **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्यवाली **रयिम्**=रयि शक्ति को **रिरीहि**=दे। शरीर में 'प्राण-रयि' ये दो शक्तियाँ कार्य करती हैं। इन दोनों का मूल 'सोम' है। वस्तुतः इन दोनों शक्तियों को एक 'सोम' नाम से कहा जाता है। 'प्राण' वीर्य का पर्याय है। ये ही शक्तियाँ 'सूर्य व चन्द्र' भी कहलाती हैं, सूर्य 'प्राण' है, चन्द्र 'रयि' है। (२) हे **इन्दो**=सोम! तू शरीर में रक्षित होकर **नः**=हमें **इन्द्रेण**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **युजा**=युक्त कर। सोम की महिमा से तीव्र बुद्धि बनकर हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्राण व रयि शक्ति से युक्त करके प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाये।

अगले सूक्त को इसी भाव से प्रारम्भ करते हैं—

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'मधुमत्तम' सोम

सोमा॑ असृग्र॒मिन्द॑वः सु॒ता ऋ॒तस्य॒ साद॑ने। इन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्तमाः॥ १॥

(१) **सोमाः**=शरीर में ये वीर्यकण **इन्दवः**=अत्यन्त शक्ति को देनेवाले **असृग्रं** (सृज्यन्ते)=पैदा किये जाते हैं। **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए ये सोमकण **ऋतस्य सादने**=ऋत के आधारभूत प्रभु की प्राप्ति के निमित्त बनते हैं। प्रभु 'ऋत के योनि' व 'ऋत के आधार' हैं। रक्षित हुआ-हुआ सोम हमें दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनाकर प्रभु-दर्शन के योग्य करता है। (२) ये सोमकण **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मधुमत्तमाः**=अतिशयेन माधुर्य को पैदा करनेवाले होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष ही इनका रक्षण कर पाता है। रक्षित हुए-हुए ये उसके जीवन को 'शरीर, मन व बुद्धि' का स्वास्थ्य प्राप्त कराके मधुर बनाते हैं।

भावार्थ—सोम (क) शक्ति को देता है, (ख) 'ऋत के आधार' प्रभु को प्राप्त कराता है, (ग) जीवन को स्वास्थ्य के द्वारा मधुर बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रातः-सायं प्रभु-स्तवन

अ॒भि विप्रा॑ अनूषत॒ गावो॑ व॒त्सं न मा॒तरः॑। इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑॥ २॥

(१) **विप्राः**=(वि+प्रा पूरणे) सोमरक्षण के द्वारा विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले लोग **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली, सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अभि अनूषत**=दोनों ओर दिन के प्रारम्भ में व दिन के अन्त में प्रातः-सायं स्तुत करते हैं। प्रभु-स्तुति से ही जीवन को प्रारम्भ करते हैं, प्रभु स्तुति पर ही दिन की क्रियाओं को समाप्त करते हैं। (२) ये लोग इस प्रकार प्रभु का स्तवन करते हैं, **न**=जैसे कि **मातरः गावः**=दुधार धेनुएँ **वत्सम्**=उत्पन्न हुए-हुए बछड़े को पुकारती हैं। दुधार गौ का बछड़े के प्रति जो प्रेम होता है उसी प्रकार प्रभु के प्रति प्रेमवाले होते हुए हम प्रभु के निष्काम प्रिय-भक्त बनें। यह प्रभु-भक्ति **सोमस्य पीतये**=सोम के पान के लिये होती है। इस भक्ति के द्वारा हम सोम का शरीर में रक्षण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं प्रभु का स्मरण करें। यह स्मरण हमें सोम के रक्षण में सहायक हो।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'गौरी में अधिश्रित' सोम

म॒द॒च्युत्क्षे॑ति॒ साद॑ने॒ सिन्धो॑रू॒र्मा वि॑प॒श्चित्। सोमो॑ गौ॒री अधि॑ श्रि॒तः॥ ३॥

(१) **सोमः**=सोम (वीर्य) **मदच्युत्**=जीवन में आनन्द को क्षरित करनेवाला है। सोम के रक्षण से जीवन उल्लासमय बनता है। यह सोम **सादने**=(ऋतस्य सादने-१) ऋत के आधारभूत प्रभु में **क्षेति**=निवास को कराता है। इस सोम के रक्षण से हमारा ज्ञान दीप्त होता है और हम अन्ततः प्रभु में निवास करनेवाले बनते हैं। यह सोम **सिन्धोः ऊर्मा**=ज्ञान-समुद्र की तरंगों में हमें

निवास करनेवाला बनाता है। सोमरक्षण से हमारा ज्ञान बढ़ता है और यह सोम **विपश्चित्**=हमें उत्कृष्ट ज्ञानी बनाता है। (२) यह सोम **गौरी**=वाणी में **अधिश्रितः**=आश्रित है। ज्ञान की वाणी में इसका आधार है। अर्थात् जब हम ज्ञान की वाणियों में रुचिवाले बन जाते हैं, तो हमारा जीवन वासनामय नहीं रहता। उस समय सोम सुरक्षित रहता है। इस प्रकार यह सोम गौरी में अधिश्रित है।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियों में अधिश्रित सोम, (क) हमें हर्षयुक्त करता है, (ख) प्रभु की प्राप्ति का साधन बनता है, (ग) ज्ञान समुद्र की तरंगों में निवास कराता है। अर्थात् हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'सुक्रतु-कवि' सोम

दि॒वो नाभा॑ विचक्ष॒णोऽव्यो॒ वारे॑ महीयते। सोमो॒ यः सु॒क्रतुः॑ क॒विः॥ ४॥

(१) **यः सोमः**=जो सोम है वह **दिवः नाभा**=ज्ञान के केन्द्र में हमें स्थापित करनेवाला है। सब ज्ञानों का केन्द्र प्रभु हैं। यह **विचक्षणः**=विशेषरूप से हमारा ध्यान करनेवाला है (चक्ष् look after) **अव्यः**=(अवति इति अवः, तेषु साधुः) रक्षण करनेवालों में उत्तम है। **वारे**=कष्टों व रोगों के निवारणात्मक कार्य में **महीयते**=महिमावाला होता है, अर्थात् कष्टों व रोगों को दूर करने में इसकी महिमा प्रसिद्ध है। (२) यह सोम **सुक्रतुः**=उत्तम शक्तिवाला है व **कविः**=क्रान्तदर्शी-ज्ञानी है। रक्षित होने पर यह हमें शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराता है।

भावार्थ—रक्षित सोम सर्वोत्तम रक्षक है। यह शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

पवित्र हृदय में प्रभु का आलिंगन

यः सोमः॑ क॒लशे॒ष्वाँ अ॒न्तः प॒वित्र आहि॑तः। तमिन्दुः॒ परि॑ षस्वजे॥ ५॥

(१) **यः सोमः**=जो सोम है **कलशेषु**=(कलाः शेरते अस्मिन्) कलाओं के निवास-स्थानभूत शरीरों में **आ**=चारों ओर **अन्तः**=अन्दर स्थापित होता है, अर्थात् सब कलाओं का शरीर में रक्षण इस सोम (कला) पर ही निर्भर करता है। (२) **पवित्रे**=हृदय के पवित्र होने पर **आहितः**=शरीर में समन्तात् स्थापित **इन्दुः**=सोम **तम्**=उस प्रसिद्ध प्रभु को **परिषस्वजे**=आलिंगन करनेवाला होता है। पवित्र हृदय में प्रभु का दर्शन इस सोमरक्षण पर ही आधारित है।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम शरीर को सकल=पूर्ण वह सोलह कला सम्पन्न बनाता है तथा पवित्र हृदय में प्रभु-दर्शन कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मधुश्चुत् कोश

प्र वा॒चमिन्दु॑रिष्यति समु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑। जिन्व॒न्कोशं॑ मधु॒श्चुत॑म्॥ ६॥

(१) **इन्दुः**=शरीर को शक्तिशाली बनानेवाला सोम **वाचं प्र इष्यति**=ज्ञान की वाणियों को हमारे में प्रकर्षेण प्रेरित करता है। यह हमारे ज्ञान को बढ़ाता हुआ **समुद्रस्य**=(स+मुद्) सदा

आनन्दमय उस प्रभु के **अधिविष्टपि**=लोक में हमें प्रेरित करता है। अर्थात् हमें प्रभु की ओर ले चलता है। (२) यह सोम **मधुश्चुतम्**=ज्ञान-मधु को क्षरित करनेवाले **कोशम्**=ज्ञान के कोश को **जिन्वन्**=प्रीणित करता है। सोम के रक्षण से विज्ञानमय कोश ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है, वह हमें सदा ज्ञानमधु का रसास्वादन करानेवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम (क) ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करें, (ख) आनन्दमय प्रभु के लोक में पहुँचनेवाले हों, (ग) विज्ञानमय कोश से ज्ञानमधु का रसास्वादन कर सकें।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'नित्य-स्तोत्र-वनस्पति' सोम

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः। हिन्वानो मानुषा युगा॥ ७॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित सोम **नित्यस्तोत्रः**=सदा प्रभु के स्तोत्रोंवाला होता है, अर्थात् सोमरक्षणवाला पुरुष प्रभु की स्तुति के प्रति झुकाववाला होता है। **वनस्पतिः**=यह सोम ज्ञानरश्मियों का स्वामी है (वन=a ray of light) सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। तब ज्ञानरश्मियाँ चारों ओर फैलती हैं। (२) यह **सबर्दुघः**=ज्ञानदुग्ध का दोहन करनेवाला सोम **मानुषा युगा**=मानव दम्पतियों को, विचारशील पति-पत्नियों को **धीनां अन्तः**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के अन्दर **हिन्वानः**=प्रेरित करता है। सोमरक्षण के होने पर हम ज्ञानदुग्ध का पान करते हैं। इस ज्ञानदुग्ध का पान करनेवाले पति-पत्नी सदा ज्ञानपूर्वक उत्तम यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर हम (१) सदा प्रभु-स्तवन की रुचिवाले, (२) ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करनेवाले, (३) ज्ञानपूर्वक उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रिय ज्ञानवाणियों का प्रेरण

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति। विप्रस्य धारया कविः॥ ८॥

(१) **सोमः**=वीर्यशक्ति **प्रिया**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले **दिवः पदा**=ज्ञान के शब्दों का **हिन्वानः**=प्रेरित करता हुआ **अभि अर्षति**=शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है। जब सोम शरीर में रक्षित होता है तो यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। उस समय ज्ञान की प्रिय वाणियाँ हमारे अन्दर प्रेरित होती हैं। (२) यह सोम **विप्रस्य**=(वि-प्रा) विशेषरूप से अपने अन्दर इसका पूरण करनेवाले का **धारया**=धारणशक्ति के द्वारा, **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ बनानेवाला होता है। सोम विप्र का कवि है, अपने धारण करनेवाले को ज्ञानी बनाता है।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करते हैं, तो यह हमारे अन्दर प्रिय ज्ञानवाणियों को प्रेरित करता हुआ हमें ज्ञानी बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'सहस्रवर्चस् रयि'

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम्। अस्मे इन्दो स्वाभुवम्॥ ९॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू शरीर में रक्षित हुआ-हुआ हमारे लिये **रयिम्**=ज्ञान के ऐश्वर्य को **आधारय**=समन्तात् धारण करा। हमें तेरे द्वारा वह ज्ञान का ऐश्वर्य प्राप्त हो जो कि **सहस्रवर्चसम्**=अनन्त तेजस्वितावाला है। हे सोम! ज्ञान के साथ शक्ति को तू प्राप्त करा। (२) हे **इन्दो**=शक्तिशालिन् सोम! **अस्मे**=हमारे लिये उस ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करा जो कि **स्वाभुवम्**=(शोभनभवनम् सा०) उत्तम ब्रह्मलोक रूप भवनवाला है, जिसके द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो ज्ञानैश्वर्य हमें (स्व+आ+भू) आत्मा में स्थापित करनेवाला होता है, जिस ज्ञान के द्वारा हम 'आत्मनिष्ठ' बन पाते हैं।

भावार्थ—रक्षित सोम से हमें वह ज्ञानैश्वर्य प्राप्त हो जो कि अनन्त शक्तिवाला है तथा हमें आत्मनिष्ठ बनाता है।

अगले सूक्त में भी इसी भाव को देखिये—

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

गतिशील इन्द्र का 'निष्कृत'

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः। वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्॥ १॥

(१) **सोमः**=वीर्य **वायोः**=गतिशील **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **निष्कृतम्**=संस्कृत हृदय को **अर्षति**=प्राप्त होता है। हृदय के पवित्र होने पर ही सोम शरीर में सुरक्षित होता है। हृदय की पवित्रता 'वायु व इन्द्र' को प्राप्त होती है। वायु गतिशील व्यक्ति है, जो कभी अकर्मण्य नहीं होता। इसीलिए इसे वासनाएँ नहीं सताती। आलस्य के साथ ही वासनाओं का सम्बन्ध है। इस सोमरक्षण के लिये जितेन्द्रियता भी आवश्यक है। अजितेन्द्रिय के लिये सोमरक्षण नितान्त असम्भव है। 'जितेन्द्रियता व पवित्रता' पर्यायवाची से शब्द हैं। (२) रक्षित हुआ-हुआ सोम **पुनानः**=पवित्र करनेवाला होता है। **सहस्रधारः**=अनेक प्रकार से हमारा धारण करनेवाला है। **अत्यविः**=अतिशयेन रक्षण करनेवाला है। यह रोगकृमियों को नष्ट करके हमारे शरीरों का रक्षण करता है तथा 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' को नष्ट करके हमारे मनों का रक्षण करता है। ज्ञानाग्नि का तो एक मात्र ईंधन होता हुआ यह बुद्धि का रक्षण करनेवाला होता है। इस प्रकार यह सर्वोत्तम रक्षक है।

भावार्थ—गतिशील जितेन्द्रिय बनकर हम सोम का रक्षण करें। रक्षित हुआ-हुआ यह हमें पवित्र करे, हमारा धारण करे, हमारे 'शरीर, मन व बुद्धि' का रक्षण करे।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोम-गुण-गायन

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत। सुष्वाणं देववीतये॥ २॥

(१) हे **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले पुरुषो! **पवमानम्**=जीवन को पवित्र बनानेवाले **विप्रम्**=तुम्हारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले **सुष्वाणम्**=इस ऐश्वर्य के कारणभूत सोम (षू ऐश्वर्ये) का **अभि प्रगायत**=गायन करो। इसके गुणों का गायन करने से इसके रक्षण की वृत्ति तुम्हारे में उत्पन्न होगी। (२) इसके गुणों का गायन इसलिए करो कि यह उत्पन्न हुआ-हुआ **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है। सोम के रक्षण से दिव्य गुणों का विकास होता है।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम हमारा रक्षण करता है, यह दिव्य गुणों के विकास के लिये होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वाजसातये-देववीतये

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः। गृणाना देववीतये॥ ३॥

(१) **सहस्रपाजसः**=अनन्त शक्तियोंवाले **सोमाः**=ये सोमकण **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **पवन्ते**=हमें प्राप्त होते हैं। इनके रक्षण से शक्ति-सम्पन्न होकर हम जीवन-संग्राम में सदा विजयी बनते हैं। (२) **गृणानाः**=स्तुति किये जाते हुए ये सोमकण **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये व अन्ततः प्रभु की प्राप्ति के लिये होते हैं। सोम के स्तवन का भाव यही है कि हम इनके गुणों का रक्षण करें। इनके गुणों का स्मरण हमें इनके रक्षण के लिये प्रेरित करता है। रक्षित हुए-हुए ये हमारे अन्दर दिव्य गुणों का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम जीवन-संग्राम में विजयी बनते हैं और दिव्य गुणों की प्राप्ति करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

द्युमत्-सुवीर्यम्

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः। द्युमदिन्दो सुवीर्यम्॥ ४॥

(१) हे **इन्दो**=शक्तिशाली सोम! तू **नः**=हमारे लिये **वाजसातये**=जीवन-संग्राम में विजय की प्राप्ति के लिये **बृहतीः इषः**=वृद्धि की कारणभूत प्रेरणाओं को **पवस्व**=प्राप्त करा। सोम-रक्षण से हृदय पवित्र होता है। पवित्र हृदय में प्रभु-प्रेरणा सुन पड़ती है। यह प्रेरणा हमें जीवन-संग्राम में विजयी बनाती है। (२) **उत**=और हे सोम! तू हमें **द्युमत्**=ज्योतिर्मय **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य को (=शक्ति को) प्राप्त करा।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें पवित्र हृदय में प्रभु की प्रेरणायें सुन पड़ती हैं। हमें ज्योति व शक्ति प्राप्त होती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सुवीर्य रयि

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्। सुवाना देवास इन्दवः॥ ५॥

(१) **ते**=वे सोम **नः**=हमारे लिये **सहस्रिणम्**=सहस्र संख्यावाले **रयिम्**=ऐश्वर्य को तथा **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **आपवन्ताम्**=सर्वथा प्राप्त करायें। रक्षित हुआ-हुआ सोम ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है, उस ऐश्वर्य को जो कि शक्ति से युक्त है। (२) **सुवानाः**=उत्पन्न होते हुए ये सोम **देवासः**=हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाते हैं और **इन्दवः**=ये हमें शक्तिशाली बनानेवाले हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से सुवीर्य रयि की प्राप्ति होती है। ये सोम हमें प्रकाशमय शक्ति-सम्पन्न जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अव्यवार (रक्षण में उत्तम युद्ध)

अत्यां हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये। वि वारमव्यमाशवः॥ ६॥

(१) **न**=जैसे **हेतृभिः**=प्रेरकों से **हियानाः**=प्रेरित किये जाते हुए **अत्याः**=सतत गमनशील अश्व **वाजसातये**=संग्राम के लिये **असृग्रम्**=सृष्ट होते हैं, उसी प्रकार ये सोम प्राणायाम के द्वारा शरीर में प्रेरित होते हुए **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **वि असृग्रम्**=विशेषरूप से सृष्ट होते हैं। (२) **आशवः**=‘अशू व्याप्तौ’ शरीर में व्याप्त होनेवाले ये सोम **अव्यम्**=रक्षण में उत्तम **वारम्**=(war) युद्ध को लक्ष्य करके **असृग्रम्**=सृष्ट किये जाते हैं। शरीर में सृष्ट हुए-हुए ये रोगकृमियों के साथ युद्ध करके रोगकृमियों का संहार करते हैं। तथा ये शरीर में सुरक्षित होने पर ये ‘ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध’ आदि की वृत्तियों को भी विनष्ट करते हैं और इस प्रकार जीवन को पवित्र बनाते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमियों व वासनाओं का संग्राम में पराजय करके हमारे जीवनों को उत्तम बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु की ओर

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः। दधन्विरे गभस्त्योः॥ ७॥

(१) **वाश्राः**=शब्द करती हुई **धेनवः**=गौवें **न**=जैसे **वत्सं अभि**=बछड़े की ओर **अर्षन्ति**=गति करती हैं (reach towards) इसी प्रकार **वाश्राः**=प्रभु की स्तुतियों का उच्चारण करते हुए **इन्दवः**=ये सोमकण **वत्सम्**=(वदति इति) वेदवाणी का उच्चारण करनेवाले प्रभु की **अभि**=ओर अर्षन्ति=गतिवाले होते हैं। अर्थात् प्रभु स्तवन की वृत्ति के होने पर सोम शरीर में सुरक्षित रहते हैं (वाश्राः इन्दवः)। सोमरक्षण से प्रभु की ओर झुकाव अधिक होता है। यह रक्षित सोम ही हमें प्रभु को प्राप्त कराता है। (२) रक्षित हुए-हुए ये सोमकण **गभस्त्योः**=भुजाओं में **दधन्विरे**=धारण किये जाते हैं। बाहुओं के अन्दर ये सोमकण ही शक्ति का स्थापन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं और शक्तिशाली बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

द्वेष-निराकरण

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत्। विश्वा अप द्विषो जहि॥ ८॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! तू **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक सेवित हुआ-हुआ **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरः**=हर्ष के संचार को करनेवाला होता है। सोमरक्षण से जीवन में उल्लास की वृद्धि होती है। (२) हे सोम! **कनिक्रदत्**=प्रभु के नामों का निरन्तर उच्चारण करता हुआ तू **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **अपजहि**=सुदूर विनष्ट कर। सोमरक्षण से प्रभु-स्मरण की वृत्ति उत्पन्न होती है और द्वेष की भावनायें दूर होती हैं।

भावार्थ—रक्षित सोम (क) उल्लास को पैदा करता है, (ख) हमारे मनों को प्रभु-प्रवण

करता है, (ग) द्वेष को दूर करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**यवमध्यागायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ऋतमय जीवन

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः। योनावृतस्य सीदत॥ ९॥

(१) रक्षित हुए-हुए सोमकणो! **अराव्णः अपघ्नन्तः**=न देने की वृत्तियों को हमारे से दूर करते हुए होवो। सोमरक्षण करनेवाला पुरुष कभी कृपण नहीं होता। इस दान व त्याग की वृत्ति के द्वारा **पवमानाः**=हमें पवित्र करनेवाले होवो। लोभ ही तो सब पापों व अशुभ वृत्तियों का मूल है। दान इस लोभ रूप मूल को नष्ट करके सब अशुभ वृत्तियों को नष्ट कर देता है। पापवृत्ति को नष्ट करके **स्वर्दृशः**=उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु का हमें दर्शन कराते हो। (२) हे सोमकणो! **ऋतस्य योनौ**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **सीदत**=तुम आसीन होवो। अर्थात् हमें ब्रह्मनिष्ठ बनाओ। सब कार्यों को ऋतपूर्वक करते हुए हम ऋत के अधिष्ठान प्रभु में अधिष्ठित हों।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम अदान की वृत्ति को विनष्ट कर पाते हैं। जीवन को पवित्र बना कर प्रभु-दर्शन करते हैं और ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में स्थित होते हैं। अपने जीवन को ऋतमय बनाते हैं।

पवमान सोम का ही महत्त्व अगले सूक्त में भी वर्णित है—

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

पुरुस्पृह कार

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः। कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम्॥ १॥

(१) रक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे ज्ञान को बढ़ाता है, सो यह 'कवि' कहाता है। यह **कविः**=क्रान्तदर्शी सोम **परिप्रासिष्यदत्**=शरीर में रुधिर के साथ चारों ओर प्रवाहित होता है। यह **सिन्धोः ऊर्मौ**=ज्ञान-समुद्र की (रायः समुद्राँश्चतुरः) तरंगों में **अधिश्रितः**=आधिक्येन आश्रित होता है। अर्थात् यह सोम हमें ज्ञान के शिखर पर ले जानेवाला होता है। (२) यह सोम **कारम्**=इस शरीररूप रथ को (car) **बिभ्रत्**=धारण करता है। रक्षित सोम इस रथ का ऐसा रक्षण करता है कि यह **पुरुस्पृहम्**=बहुत स्पृहणीय रूपवाला होता है, स्वस्थ व सुन्दर शरीर को बनाने में सोम का ही प्रथम स्थान है।

भावार्थ—रक्षित सोम ज्ञान को बढ़ाता है तथा शरीर को स्वस्थ व सुन्दर बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोम का परिष्करण

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः। परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्॥ २॥

(१) शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, **यदि ई**=अगर ये **पञ्च व्राताः**=पाँच समूह रूप में रहनेवाली ज्ञानेन्द्रियाँ **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के साथ **सबन्धवः**=समान रूप से बन्धनवाली होती

हैं, अर्थात् यदि ये सदा ज्ञान प्राप्ति में लगी रहती हैं। तो ये **धर्णसिम्**=शरीर के धारक सोम को **परिष्कृण्वन्ति**=शरीर में ही परिष्कृत करती हैं। (२) इसी प्रकार शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ है, यदि ई=अगर ये पञ्च व्राता:=पाँच समूह रूप में रहनेवाली कर्मेन्द्रियाँ **गिरा**=ज्ञान की वाणी के अनुसार **अपस्यव:**=अपने साथ कर्मों को जोड़ने की कामनावाली होती हैं तो धर्णसिम्=शरीर धारक सोम को परिष्कृण्वन्ति=शरीर में ही अलंकृत करती हैं। एवं सोमरक्षण का उपाय यह है कि ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगी रहें तथा कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति व यज्ञादि कर्मों में लगे रहकर हम सोम का रक्षण करनेवाले हों।

ऋषि:—**असित: काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**गायत्री**॥
स्वर:—**षड्ज:**॥

दिव्य गुणों का विकास

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत। यदी गोभिर्वसायते॥ ३॥

(१) **आत्**=गत मन्त्र के अनुसार सोम का परिष्करण करने के अनन्तर **शुष्मिण: अस्य**=शक्तिशाली इस सोम के **रसे**=रस में, आनन्द में **विश्वे देवा:**=सब देव **अमत्सत**=आनन्द का अनुभव करते हैं। 'सब देव आनन्द का अनुभव करते हैं' इस वाक्य का भाव यह है कि सब दिव्य गुणों का विकास होता है। (२) यह विकास होता तभी है **यद् ई**=जब यह सोम निश्चय से **गोभि:**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वसायते**=आच्छादित किया जाता है। अर्थात् स्वाध्याय में प्रवृत्त होने के द्वारा जब हम सोम का रक्षण करते हैं तब हमारे जीवनों में दिव्य गुणों का विकास होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय में प्रवृत्त रहकर हम सोम शक्ति को वासनाओं के आक्रमण से बचायें और इस सोमरक्षण से हमारे जीवन में दिव्य गुणों का विकास हो।

ऋषि:—**असित: काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**निचृद्गायत्री**॥
स्वर:—**षड्ज:**॥

प्रभु के साथ मेल

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा। अत्रा सं जिघ्रते युजा॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सुरक्षित हुआ-हुआ सोम **नि-रिणान:**=(To expel, drive out) सब बुराइयों को शरीर से पृथक् करता हुआ **विधावति**=जीवन को बड़ा शुद्ध बना डालता है 'धाव् शुद्धौ'। यह सोम **तान्वा**=शक्तियों के विस्तार के द्वारा **शर्याणि**=(शृ हिंसावाम्) हमारी हिंसा करनेवाले काम-क्रोध आदि मानस शत्रुओं को तथा रोगकृमिरूप शारीर शत्रुओं को **जहत्**=यह त्यागनेवाला होता है। शरीर में रक्षित सोम शक्तियों को बढ़ाता है और आधि-व्याधियों को विनष्ट करता है। (२) इस प्रकार इस शरीर को शुद्ध बनाकर **अत्र**=यहाँ इस शरीर में **युजा**=उस अपने साथी के साथ **संजिघ्रते**=संगत होता है (संगतो भवति सा०) प्रभु ही सखा हैं, उनके साथ मेल इस सोम के द्वारा ही होता है।

भावार्थ—सोम शरीर का शोधन कर देता है, इस शुद्ध शरीर में जीव प्रभु रूप मित्र को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान के द्वारा सोम का शोधन
सोम शुद्धि से ज्ञानदीप्ति

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा। गाः कृण्वानो न निर्णिजम्॥ ५॥

(१) **यः**=जो **युवा**=हमारे सब दोषों को पृथक् करनेवाला (यु अमिश्रणे) तथा सब गुणों को मिलानेवाला (यु मिश्रणे) सोम है, वह **विवस्वतः**=ज्ञान के सूर्य की **नप्तीभिः**=न पतन होने देनेवाली शक्तियों से **शुभ्रः**=उज्ज्वल हुआ-हुआ **न**=अब (न इति संप्रत्यर्थे) **मामृजे**=हमारे जीवनों को शुद्ध बनाता है। ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से वासनाओं को उबाल नहीं आता। परिणामतः सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमारे जीवनों को शुद्ध बना डालता है। (२) **न**=(न=च) और यह सोम **गाः**=ज्ञान की वाणियों को **कृण्वानः**=हमारे मस्तिष्क में दीप्त करता हुआ **निर्णिजम्**=शोधन व पोषण के लिये होता है। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, ज्ञानाग्नि की दीप्ति से हम वेदवाणियों को स्पष्ट रूप में देखते हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ हमारे जीवन को शुद्ध बनाती हैं।

भावार्थ—स्वाध्याय की प्रवृत्ति सोम को शुद्ध करती है। शुद्ध सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता हुआ इन ज्ञान की वाणियों से हमारा शोधन करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु प्राप्ति

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या। वग्नुमियर्ति यं विदे॥ ६॥

(१) सोमरक्षण से बुद्धि सूक्ष्म बनती है। इस **अण्व्या**=सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा **गव्या**=(गव्यानि) वेदवाणी गौ से प्राप्य ज्ञानदुग्धों को **अति श्रिती**=(श्रयणार्थम्) अतिशयेन सेवन करने के लिये **तिरश्चता**=(तिरस् अञ्च्) तिरोहित रूप से गति करनेवाले, रुधिर में ही व्याप्त होकर गति करते हुए सोम से **जिगाति**=यह गतिमय होता है। सोम को शरीर में ही सुरक्षित करने पर यह सोम रुधिर व्याप्त हुआ-हुआ दिखता नहीं। इस सोम के द्वारा हमें वेदवाणी रूप गौ के ज्ञानदुग्ध का पान करनेवाली सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त होती है। (२) इस ज्ञानदुग्ध का पान करनेवाला व्यक्ति **वग्नुम्**=वेदज्ञान देनेवाले उस प्रभु को **इयर्ति**=प्राप्त होता है। उस प्रभु को **यम्**=जिसको **विदे**=जानने के लिये साधन रूप से इस सोम का शरीर में स्थापन हुआ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से वह सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त होती है जो कि हमें वेदज्ञान को प्राप्त कराने में सहायक होती है और हमें प्रभु का साक्षात्कार करानेवाली होती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सोम की धारण शक्तियाँ

अभि क्षिपः सर्मग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम्। पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः॥ ७॥

(१) सोमरक्षण से पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा सुन पड़ती है। इसलिए यहाँ सोम को 'इषस्पति'=प्रेरणा का पति कहा है। **क्षिपः**=वासनाओं व विषयों को अपने से परे फेंकनेवाली दस

इन्द्रियाँ **इषस्पतिम्**=प्रभु प्रेरणा के रक्षक इस सोम को **मर्जयन्तीः**=शुद्ध करती हुई **अभि समग्मत**=उस प्रभु की ओर गतिवाली होती हैं। विषयों से इन्द्रियों के अनाक्रान्त होने पर ही सोम का रक्षण होता है। इसके रक्षण पर ही प्रभु प्रेरणा का सुनाई पड़ना व प्रभु का मिलना सम्भव है। (२) इसलिए **वाजिनः**=इस शक्तिशाली सोम के **पृष्ठा**=धारण शक्तियों को **गृभ्णत**=ग्रहण करनेवाले बनो। सोम ही शरीर का धारण करता है, यही मन व बुद्धि का धारण करनेवाला है।

भावार्थ—वासनाशून्य इन्द्रियाँ सोमरक्षण का साधन बनती हैं। रक्षित सोम प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है। यही हमारा धारण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

दिव्य व पार्थिव वसु

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑शद्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा। वसू॑नि याह्यस्म॒युः॥ ८॥

(१) हे सोम! तू **विश्वानि**=सब **दिव्यानि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक सम्बन्धी **वसूनि**=ज्ञान धनों को तथा सब **पार्थिवा**=शरीर रूप पृथिवी सम्बन्धी दृढ़ता व नीरोगता रूप धनों को **परिमर्मशत्**=सर्वतः ग्रहण करता हुआ **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाला होकर **याहि**=गतिवाला हो। (२) सोम ही मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है तथा इसी ने शरीर को दृढ़ व नीरोग बनाना है। इस प्रकार यही दिव्य व पार्थिव धनों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम हमें दीप्त मस्तिष्क व दृढ़ शरीर बनाये।

सोम की महिमा को ही अगले भी सूक्त में देखिये—

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

लाभत्रयी

ए॒ष धि॒या या॑त्यण्व्या॒ शूरो॒ रथे॑भिरा॒शुभिः॑। गच्छ॒न्निन्द्र॑स्य निष्कृ॒तम्॥ १॥

(१) **एषः**=यह सोम **शूरः**=हमारे सब शत्रुओं को आधि-व्याधियों को शीर्ण करनेवाला है। **अण्व्याः**=सूक्ष्म **धिया**=बुद्धि से **याति**=हमें प्राप्त होता है। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। (२) यह **आशुभिः**=शीघ्र गतिवाले, शीघ्रता से मार्ग को व्यापनेवाले **रथेभिः**=शरीर रूप रथों से हमें प्राप्त होता है। रक्षित सोम शरीर को दृढ़ व क्रियाशील बनाता है। (३) यह **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **निष्कृतम्**=परिष्कृत हृदय को **गच्छन्**=प्राप्त होता है। सोम से हृदय निर्मल हो उठता है। सुरक्षित सोमवाले पुरुष को 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' पीड़ित नहीं करते।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) बुद्धि सूक्ष्म बनती है, (ख) शरीर स्फूर्तिमय होता है, (ग) हृदय पवित्र बन जाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

धियायते

ए॒ष पु॒रू धि॑याय॒ते बृ॑ह॒ते दे॒वता॑तये। यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते॥ २॥

(१) **एषः**=यह सोम **पुरु**=खूब ही **धियायते**=बुद्धिपूर्वक कर्मों को करने की इच्छा करता है। सोम के रक्षित होने पर बुद्धि का वर्धन होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है। इस प्रकार हम बुद्धिपूर्वक कर्मों को करनेवाले बनते हैं। (२) यह सोम **बृहते**=वृद्धि के कारणभूत **देवतातये**=दिव्य गुणों के विस्तार के लिये होता है। सोमरक्षण से आसुरी वृत्तियों का विनाश होकर दैवीवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। (३) यह सोम वह है **यत्र**=जिसमें **आमृतासः**=सब नीरोगतायें **आसते**=आसीन होती हैं। अर्थात् सोम के रक्षित होने पर शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं होता।

भावार्थ—सोमरक्षण करनेवाला पुरुष बुद्धिपूर्वक कर्म करता है, अपने अन्दर दिव्य गुणों का विस्तार करता है तथा नीरोगता को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

शुभ्र मार्ग से

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा। यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः॥ ३॥

(१) **यद् ई**=जब निश्चय से **भूर्णयः**=उत्तम भरण करनेवाले पुरुष **तुञ्जन्ति**=(To kill) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का संहार कर पाते हैं तो **एषः**=यह **अन्तः हितः**=शरीर के अन्दर स्थापित हुआ-हुआ **शुभ्रावता पथा**=उत्तम शोभावाले मार्ग से **विनीयते**=लक्ष्य-स्थान की ओर, ब्रह्म की ओर ले जाया जाता है। (२) जब मनुष्य भूर्णि बनता है, स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ में चलता हुआ सब का भरण करनेवाला बनता है, तो वह लोभ आदि आसुर वृत्तियों को समाप्त कर पाता है। इससे यह सोम का रक्षण करने में समर्थ होता है। रक्षित सोम के द्वारा इसका जीवन मार्ग उत्तम बनता है और यह प्रभु की ओर चलता हुआ अन्ततः प्रभु को प्राप्त करनेवाला बनता है।

भावार्थ—स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ में प्रवृत्त होकर हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करके सोम का रक्षण करें। इससे हम शुभ्र मार्ग का आक्रमण करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ऐश्वर्य-शक्ति व उत्साह

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्योऽ वृषा। नृम्णा दधान ओजसा॥ ४॥

(१) जैसे **यूथ्यः**=यूथ का, गोसमूह का रक्षण करनेवाला **वृषा**=बैल **शृंगाणि**=अपने सींगों को **दोधुवत्**=कम्पित करता हुआ **शिशीते**=तीव्र करता है उसी प्रकार यह सोम **यूथ्यः**=कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय व प्राण आदि के यूथों को रक्षित करनेवाला है, **वृषा**=उनमें शक्ति का सेचन करनेवाला है। यह अपने **शृंगाणि**=रोगकृमि विनाशक शक्तियों को दोधुवत्=गतिमय करता है और उन शत्रुनाशक शक्तियों को शिशीते=तीव्र करता है। (२) यह **ओजसा**=अपनी ओजस्विता के द्वारा **नृम्णा**=हमारे लिये आवश्यक धनों को (wealth) व शक्ति (strength) व उत्साह (courage) को **दधानः**=धारण करता है।

भावार्थ—सोम के अन्दर रोग व वासना रूप शत्रुओं के नाश का गुण है। यह ओजस्विता के द्वारा ऐश्वर्य-शक्ति व उत्साह को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सिन्धु-पति

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः। पतिः सिन्धूनां भवन्॥ ५॥

(१) **एषः**=यह सोम **वाजी**=शक्तिशाली है, हमें शक्ति-सम्पन्न करता है। यह **रुक्मिभिः**=स्वर्ण के समान देदीप्यमान **शुभ्रेभिः**=उज्ज्वल **अंशुभिः**=ज्ञान की किरणों से **ईयते**=हमें प्राप्त होता है। सोम के रक्षित होने पर हमारी ज्ञान की किरणें स्वर्ण के समान चमक उठती हैं, हमारा ज्ञान बड़ा उज्ज्वल व निर्मल होता है। (२) यह सोम **सिन्धूनाम्**=(रायः समुद्राँश्चतुरः०) वेदरूप चारों ज्ञान समुद्रों का **पतिः भवन्**=स्वामी बनता है सोम के रक्षण से हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम ज्ञान समुद्रों के पति बनते हैं। सोम (चन्द्रमा) से जैसे समुद्र में ज्वार आती है, इसी प्रकार सोम (वीर्य) से ज्ञान-समुद्र की तरंगे ऊँची उठती हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वसु प्राप्ति

एष वसूनि पिब्दना परुषा यायिवाँ अति। अव शादेषु गच्छति॥ ६॥

(१) **एषः**=यह सोम **परुषा**=अति कठोर (प्रबल) **पिब्दना**=पीड़ित करनेवाले राक्षसी भावों को **अति ययिवान्**=लाँघकर गति करता हुआ, **शादेषु**=(शद् शातने) शत्रुओं का शातन होने पर **वसूनि**=सब वसुओं को निवास के लिये आवश्यक पदार्थों को **अवगच्छति**=अन्दर प्राप्त कराता है (जानता है)। (२) सोमरक्षण से क्रूर आसुरी भाव विनष्ट होते हैं। उत्तम दिव्य भावों का विकास होता है। ये भाव ही जीवन को सुन्दर बनानेवाले वसु हैं। इनकी प्राप्ति होती तभी है जब कि हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट कर पाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण अशुभ भावों को विनष्ट करता है। सब वसुओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु-प्रेरणा क्रदण

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः। प्रचक्राणं महीरिषः॥ ७॥

(१) **एतम्**=इस **मर्ज्यम्**=शुद्ध रखने योग्य सोम को **आयवः**=गतिशील मनुष्य **द्रोणेषु**=इन शरीर रूप कलशों में (पात्रों में) **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। वस्तुतः सोम को शुद्ध रखने का प्रकार यही है कि हम गतिशील बने रहें। गतिशीलता हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाये रखती है। वासनाओं के अभाव में यह सोम शुद्ध बना रहता है। (२) यह शुद्ध सोम हमारे हृदय को और अधिक निर्मल बनानेवाला होता है और उस निर्मल हृदय में **महीः**=महत्त्वपूर्ण **इषः**=प्रेरणाओं को **प्रचक्राणम्**=करनेवाला होता है। सोम के द्वारा शुद्ध हुए-हुए हृदय में प्रभु की प्रेरणायें सुन पड़ती हैं।

भावार्थ—गतिशीलता द्वारा सोम का शोधन होता है। शुद्ध सोम हृदय को निर्मल करता हुआ हमें प्रभु प्रेरणाओं को सुनने योग्य बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

श क्षिपो मृजन्ति

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः। स्वायुधं मदिन्तमम्॥ ८॥

(१) **एतम्**=इस **त्यम्**=प्रसिद्ध सोम को **उ**=निश्चय से **दश क्षिपः**=दस विषय-वासनाओं को अपने से परे फेंकनेवाली इन्द्रियाँ तथा **सप्त धीतयः**=सात ध्यान वृत्तियाँ 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' दो कानों, दो नासिका छिद्रों, दो आँखों व मुख से होनेवाली प्रभु की उपासनायें **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। अर्थात् सोम को शुद्ध रखने के लिये आवश्यक है कि हम इन्द्रियों को विषय प्रवण न होने दें और कान-आँख आदि को प्रभु के ध्यान में लगाने का प्रयत्न करें। (२) यह सुरक्षित सोम '**स्वायुधं**'=उत्तम आयुध है। यह हमें रोगों से व वासनाओं से संग्राम में विजयी बनाता है। **मदिन्तमम्**=हमारे अतिशयित हर्ष का यह कारण बनता है। हमें उल्लास को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—'इन्द्रियों को विषय प्रवणता से रोकना व प्रभु ध्यान में लगाना' ही सोमरक्षण का साधन है। यह रक्षित सोम हमारा शत्रु-संहार के लिये उत्तम आयुध बनता है और हमारे हर्ष व उल्लास का कारण होता है।

अगले सूक्त में भी इसी विषय को कहते हैं—

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मदाय घृष्वये

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये। सर्गो न तक्त्येतशः॥ १॥

(१) हे सोम! **ओण्योः**=द्यावापृथिवी में-मस्तिष्क व शरीर में **मदाय**=आनन्द (हर्ष) के लिये तथा **घृष्वये**=शत्रुओं के घर्षण के लिये मस्तिष्क में ज्ञान के प्रकाश से आनन्द की प्राप्ति के लिये तथा शरीर में रोगकृमियों के विनाश के लिये **ते रसम्**=तेरे रस को (सार को) **प्रसोतारः**=प्रकर्षेण उत्पन्न करने के लिये होते हैं। सोम (वीर्य) का सार ही ओजस् है। इस ओजस्विता से मस्तिष्क में (splendour, light) प्रकाश होता है, तथा शरीर में (bodily strength) शक्ति उत्पन्न होती है। (२) **सर्गः**=(सृष्टः) उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **एतशः न**=अश्व की तरह **तक्ति**=गतिवाला होता है। इस सोम के द्वारा शरीर के सब इन्द्रियाश्व शक्तिशाली बनते हैं। शक्तिशाली बनकर ये शरीर-रथ का उत्तम संचालन करते हैं।

भावार्थ—शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ सोम उल्लास व शत्रु-विनाश के लिये होता है। इससे इन्द्रिय अश्व शक्ति-सम्पन्न बनकर शरीर-रथ को तीव्र गति से मार्ग पर ले चलते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

दक्षस्य क्रत्वा-अन्धसा

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा। गोषामण्वेषु सश्चिम॥ २॥

(१) हम **अण्वेषु**=सूक्ष्म तत्त्वों के ज्ञान के निमित्त सोम का **सश्रिम**=अपने साथ संयुक्त करते हैं, अपने शरीर में ही समवेत करते हैं (pervade)। जो सोम **रथ्यम्**=शरीररूप रथ की स्थिरता के लिये सर्वोत्तम है। जो **अपः वसानम्**=कर्मों का धारण करनेवाला है, अर्थात् हमें खूब क्रियाशील बनानेवाला है। **गोषाम्**=जो ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाला है, इसके द्वारा ज्ञानाग्नि तीव्र होती है और हम इन ज्ञानवाणियों के अन्तर्निहित भावों को अच्छी प्रकार समझ पाते हैं। (२) इस सोम को हम **दक्षस्य क्रत्वा**=कुशल पुरुष के कर्मों से प्राप्त करते हैं, अर्थात् कुशलतापूर्वक कर्मों में लगे रहना सोमरक्षण का उत्तम साधन है। वस्तुतः 'कार्यों को कुशलता से करना' स्वयं एक ऐसा व्यसन बन जाता है जो हमें अन्य सब व्यसनों से बचाये रखता है। व्यसन ही तो सोमरक्षण के सब से महान् विघ्न हैं। **अन्धसा**=अन्न से 'अदेर्नुं धो च' इस औणादिक सूत्र से यह शब्द बना है, इसका सामान्य अर्थ वह अन्न ही जो शरीर-रक्षण के लिये खाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण के (९।१।२।४) 'अन्धसस्पते=सोमस्य पते' इन शब्दों से स्पष्ट है कि 'अन्धस्' शब्द सोम्य अन्नों के लिये ही प्रयुक्त होता है। अन्धसा=सोम्य भोजनों के द्वारा हम इस सोम का अपने में रक्षण करते हैं।

भावार्थ—कुशल पुरुष की तरह कर्मों में लगे रहकर और सोम्य भोजनों को अपनाकर सोम का रक्षण करते हुए हम शरीर-रथ को सुदृढ़ बनाते हैं, कर्मों में सदा व्यापृत रहते हैं, ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अनप्तं-दुष्टरम्

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज। पुनीहीन्द्राय पातवे॥ ३॥

(१) **अनप्तम्**=(शत्रुभिरनाप्तम् सा०) शत्रुओं से न प्राप्त करने योग्य, सोम के शरीर में सुरक्षित होने पर रोगकृमि आदि शत्रु इस पर आक्रमण नहीं कर सकते। **अप्सु**=कर्मों में **दुष्टरम्**=(दुःखेन तरितुं योग्यं) विघ्नादि से जो अभिभवनीय नहीं। सोम का रक्षक पुरुष जब कर्म में प्रवृत्त होता है, तो कोई भी विघ्न उसे रोकनेवाला नहीं होता। ऐसे **सोमम्**=सोम को **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **आसृज**=समन्तात् सृष्ट करनेवाला हो। हृदय की पवित्रता के होने पर सोम का रक्षण होता है। यह रक्षित सोम रोगकृमिरूप शत्रुओं को शरीर गृह में नहीं आने देता और हमें सब कर्मों में निर्विघ्नता पूर्वक सफल बनाता है। (२) **पुनीहि**=इसे पवित्र करो। इसमें मलिन वासनाओं के उबाल को न पैदा होने दो। यह **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पातवे**=पीने के लिये हो। जितेन्द्रिय पुरुष इसे शरीर में सुरक्षित करनेवाला बने। रक्षित होकर यह उसका रक्षण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—हृदय को पवित्र करके हम सोम का रक्षण करें। यह रोगकृमिरूप शत्रुओं से अभिभवनीय नहीं होता, यह विघ्नों से असफल नहीं बनाया जाता। जितेन्द्रिय पुरुष से रक्षित हुआ-हुआ यह उसका रक्षण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान के द्वारा पवित्रता

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति। क्रत्वा सधस्थमासदत्॥ ४॥

(१) **चेतसा**=ज्ञान के द्वारा **पुनानस्य**=अपने जीवन को पवित्र करते हुए व्यक्ति का

सोमः=सोम (वीर्य) **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **प्र अर्षति**=प्रकर्षेण प्राप्त होनेवाला होता है। हृदय की पवित्रता के होने पर सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। (२) **क्रत्वा**=इस सोमरक्षण से प्राप्त शक्ति के द्वारा **सधस्थम्**=प्रभु के साथ एकत्र वास को **आसदत्**=प्राप्त होता है। सोमरक्षण से जीव अपने पवित्र हृदय में प्रभु के प्रकाश को देखता है। यही प्रभु के साथ एक स्थान में स्थित होना है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'=यह आत्मा निर्बल से लभ्य नहीं है। सोम हमें बल प्राप्त कराता है और प्रभु के मेल का अधिकारी बनाता है।

भावार्थ—ज्ञान में लगे रहने से हम विषयों से बचे रहते हैं, इस प्रकार हमारा जीवन पवित्र रहता है और हम प्रभु का दर्शन करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

नमन के द्वारा सोमरक्षण

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत। महे भराय कारिणः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **नमोभिः**=प्रभु के प्रति नमन के द्वारा **इन्दवः**=शक्ति को देनेवाले **सोमाः**=ये सोमकण **त्वा**=तेरे लिये **प्र असृक्षत**=प्रकर्षेण सृष्ट होते हैं। प्रभु के प्रति नमन हमारे अन्दर सोमकणों का रक्षण करता है। (२) रक्षित हुए-हुए ये सोमकण **महे भराय**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भरण के लिये होते हैं। इनके द्वारा हमारा उत्तम पोषण होता है। **कारिणः**=ये उत्तम शरीर रूप कार=रथवाले होते हैं। ये सोमकण शरीर-रथ को सुन्दर बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु नमन के द्वारा सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम हमारा उत्तम भरण करता है, हमारे शरीर-रथ को सुन्दर बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सर्व श्री-सम्पन्नता

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। शूरो न गोषु तिष्ठति॥ ६॥

(१) **अव्यये रूपे**=उस अविकृत रूप प्रभु में अथवा अविनाशी प्रभु में **पुनानः**=अपने को पवित्र करता हुआ यह सोम **विश्वाः**=सब **श्रियः अभि**=श्रियो (=लक्ष्मियों) की ओर **अर्षन्**=गति करता हुआ **गोषु**=इन्द्रियरूप गौओं के विषय में **शूरः न**=एक वीर की तरह **तिष्ठति**=स्थित होता है। (२) जब एक व्यक्ति प्रभु की उपासना में स्थित होता है तो वह वासनाओं से अपने को बचाकर सोम को पवित्र बनाये रखता है। यह पवित्र सोम सब लक्ष्मियों को प्राप्त कराता है। इस सोम के द्वारा इन्द्रियाँ सशक्त बनी रहती हैं। इन्द्रियाँ मानो गौवें है, तो यह सोम इन गौवों का रक्षक गोप है। यह इन्द्रिय शक्तियों को विनष्ट नहीं होने देता।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से सोम पवित्र होता है। यह सब श्रियों को प्राप्त कराता है। इन्द्रियों की शक्ति का रक्षण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान पर्वत के शिखर पर

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः। वृथा पवित्रे अर्षति॥ ७॥

(१) **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए **वेधसः**=शक्ति व ज्ञान के विधाता (=कर्ता) सोम की **धारा**=धारणशक्ति **दिवः सानु न**=ज्ञानपर्वत के मानो शिखर को ही **पिप्युषी**=आप्यायित करती है। सोम हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और हमें ज्ञान के शिखर पर ही मानो पहुँचा देता है। (२) यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **वृथा**=अनायास ही **अर्षति**=प्राप्त होता है। हृदय के पवित्र होने पर सोमरक्षण की कठिनता नहीं होती।

भावार्थ—उत्पन्न हुआ-हुआ सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें ज्ञान पर्वत के शिखर पर पहुँचा देता है। यह पवित्र हृदय में सुरक्षित रहता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सब वरणीय वस्तुओं की प्राप्ति

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु। अव्यो वारं वि धावसि॥ ८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **विपश्चितम्**=ज्ञानी पुरुष को **तना**=शक्तियों के विस्तार के द्वारा **पुनानः**=पवित्र करता है। (२) **अव्यः**=रक्षकों में उत्तम तू **आयुधु**=गतिशील मनुष्यों में (एति इति आयुः) **वारम्**=वरणीय वस्तुओं को **विधावसि**=विशेष रूप से प्राप्त कराता है। सोम के रक्षण के होने पर सब वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सोम हमें सशक्त व पवित्र बनाकर सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराता है।

अगले सूक्त का विषय भी सोमरक्षण ही है—

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

भूर्णयः सोमाः

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः। सोमा असृग्रमाशवः॥ १॥

(१) **इव**=जैसे **निम्नेन**=निम्न मार्ग से **सिन्धवः**=नदियाँ बहती हैं और तीव्र गति से बहती हैं, इसी प्रकार **आशवः**=तीव्र गतिवाले **सोमाः**=सोमकण **असृग्रम्**=(सृज्यन्ते) शरीर में सृष्ट होते हैं। इनकी उत्पत्ति से शरीर में स्फूर्ति आ जाती है, सारा शरीर शीघ्र गति सम्पन्न, क्रियाशील बन जाता है। (२) निम्न मार्ग से जाती हुई नदियाँ किनारों व बाधाओं को तोड़ती चलती हैं, इसी प्रकार ये सोम **वृत्राणि घ्नन्तः**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले होते हैं और **भूर्णयः**=हमारा पालन करते हैं (भृ भरणे)। हमारा पालन करते हुए क्षिप्रगतिवाले होते हैं (क्षिप्रगमनाः नि०)।

भावार्थ—सोम शरीर में शीघ्र गतिवाले होते हुए वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

इन्दवः सोमाः

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव। इन्द्रं सोमासो अक्षरन्॥ २॥

(१) **सुवानासः**=शरीर में उत्पन्न किये जाते हुए **सोमासः**=सोमकण **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले हैं। ये सोमकण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के **अभि**=ओर **अक्षरन्**=गतिवाले होते हैं, उसी प्रकार **इव**=जैसे कि **वृष्टयः**=वृष्टियें **पृथिवीम्**=पृथिवी की ओर गतिवाली होती हैं। (२) वृष्टि पृथिवी की ओर ही आती है, इसी प्रकार सोमकण जितेन्द्रिय पुरुष की ओर आते हैं। वृष्टियाँ पृथिवी में विविध अन्नों की उत्पत्ति का कारण होती हैं इसी प्रकार सोमकण शरीर में विविध शक्तियों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। ये 'इन्दु' हैं, शक्तिशाली हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता से सोमकणों का रक्षण होता है। रक्षित सोमकण शक्तियों को उत्पन्न करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मत्सर सोम

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः॥ ३॥

(१) **सोमः**=शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम (वीर्य) **अत्यूर्मिः**=(अतिशयितः ऊर्मिः येन) अतिशयित उत्साह की तरंगवाला होता है। सोमरक्षण से शरीर में उत्साह बना रहता है। **मत्सरः**=यह आनन्द का संचार करनेवाला है। **मदः**=उल्लासजनक है। (२) यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **अर्षति**=गतिवाला होता है। यह सब **रक्षांसि**=राक्षसों को, रोगकृमियों व राक्षसी भावों को **विघ्नन्**=नष्ट करता हुआ **देवयुः**=उस देव को हमारे साथ मिलानेवाला होता है। उस देव की प्राप्ति की कामनावाला होता है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर उत्साह आनन्द व उल्लास का कारण बनता है। यह पवित्र हृदय में प्राप्त होता है। हमारे रोगकृमियों व राक्षसी भावों को नष्ट करके हमें प्रभु से मिलाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

कलश-शोधन

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते। उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते॥ ४॥

(१) 'कलाः शेरते अस्मिन्' इस व्युत्पत्ति से १६ कलाओं के निवास का आधार बना हुआ यह शरीर कलश है। सोम (वीर्य) **कलशेषु**=इन शरीरों में **आधावति**=समन्तात् शोधन करनेवाला होता है (धाव् शुद्धौ)। यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **परिषिच्यते**=समन्तात् सिक्त होता है। हृदय में अपवित्र भावों के आने पर ही तो इसका विनाश होता है। (२) यह सोम **यज्ञेषु**=यज्ञों में, श्रेष्ठतम कर्मों में **उक्थैः**=प्रभु के स्तोत्रों के होने पर **वर्धते**=बढ़ता है। सोम का वर्धन या शरीर में स्थापन तभी हो पाता है जब कि हम यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहें और प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें।

भावार्थ—यज्ञों व स्तोत्रों में लगे रहकर हम सोम को शरीर में सुरक्षित रखें। यह हमें शुद्ध बनायेगा।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सूर्य-प्रेरण

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम्। इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः॥ ५॥

(१) हे **सोम**=सोम! तू **त्री रोचना**=शरीर, हृदय व मस्तिष्क, पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक इन तीन दीप्त लोकों को **अतिरोहन्**=उन्नत करके ऊपर उठता हुआ **दिवं न**=प्रकाशमय सूर्य के समान **भ्राजसे**=चमकता है। सोम के रक्षण से शरीर नीरोगता व तेजस्विता से चमकता है, हृदय निर्मलता से दीप्त हो उठता है और मस्तिष्क ज्ञान ज्योति से चमक उठता है। यह सोम का रक्षण करनेवाला सूर्य के समान चमक उठता है। (२) **इष्णन्**=गति करता हुआ तू **सूर्यं न**=सूर्य की तरह वर्तमान शरीरस्थ प्राणशक्ति को **चोदयः**=प्रेरित करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम ज्ञान के सूर्य को उदित करता है और प्राणशक्ति का वर्धन करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

विप्राः-कारवः

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः। दधानाश्चक्षसि प्रियम्॥ ६॥

(१) **विप्रः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवाले, **कारवः**=यज्ञादि उत्तम कर्मों को करनेवाले पुरुष **यज्ञस्य**=श्रेष्ठतम कर्म के **मूर्धन्**=शिखर में **अभि अनूषत**=प्रातः-सायं स्तवन करते हैं। यज्ञों को करना व प्रभु-स्तवन करना ही सोमरक्षण का साधन है। (२) **चक्षसि**=ज्ञान के होने पर **प्रियं दधानाः**=इस प्रीणित करनेवाले सोम को ये धारित करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के तीन साधन हैं—(क) यज्ञों में लगना, (ख) प्रभु-स्तवन, (ग) स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवर्धन।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अवस्यवः नरः

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः। मृजन्ति देवतातये॥ ७॥

(१) हे सोम! **तम्**=उस **वाजिनम्**=शक्तिशाली **त्वा**=तुझे **उ**=निश्चय से **विप्राः**=अपना पूरण करनेवाले **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले **नरः**=उन्नतिपथ पर बढ़नेवाले लोग **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। सोम का शोधन सदा बुद्धिपूर्वक कर्मों में लगे रहने से होता है। ऐसा करने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता। (२) वासनाओं के आक्रमण के न होने से यह सोम शुद्ध बना रहता है और **देवतातये**=दिव्य गुणों के विस्तार के लिये होता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण बुद्धि पूर्वक कर्मों में लगे रहने से होता है। सोमरक्षण से दिव्य गुणों का विस्तार होता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

चारु सोम

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः। चारुर्ऋताय पीतये॥ ८॥

(१) हे सोम! तू **मधोः**=मधु की **धाराम्**=धारा को **अनुक्षर**=हमारे में अनुकूलता से क्षरित करनेवाला हो। तेरे रक्षण से हमारा जीवन अतिशयेन मधुर बने। (२) **तीव्रः**=अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ तू **सधस्थम्**=प्रभु के साथ सहस्थिति को **आसदः**=प्राप्त कर। प्रभु के साथ एक स्थान में

हमें स्थित करनेवाला कर। (३) **चारुः**=सुन्दर जो तू है वह **ऋताय**=ऋत के लिये हो। हमारे जीवन को ऋतवाला बना। **पीतये**=तू हमारे रक्षण के लिये हो। सोम के रक्षण से जीवन अनृत से रहित होकर बड़ा सुन्दर बनता है। इस ऋत के कारण शरीर सुरक्षित रहता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को मधुर व ऋतवाला बनाता है। यही जीवन का रक्षक होता है।

अगले सूक्त में इस सोम को 'मदेषु सर्वधा असि' इन शब्दों में स्मरण किया है—

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गिरिष्ठा सोम

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः। मदेषु सर्वधा असि॥ १॥

(१) **सोमः**=सोम (वीर्यशक्ति) **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ **गिरिष्ठाः**=वेदवाणी में स्थित होता है। अर्थात् स्वाध्याय के होने पर यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और इस प्रकार ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाला होता है। यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **परि अक्षाः**=परितः क्षरित होता है। हृदय के पवित्र होने पर यह सोम शरीर में ही व्याप्त होता है। (२) हे सोम! **मदेषु**=तेरे रक्षण से उत्पन्न उल्लासों के होने पर तू **सर्वधाः**=सब का धारण करनेवाला **असि**=होता है। इस सोम से शरीर नीरोग बनता है, इन्द्रियाँ सशक्त, मन निर्मल व बुद्धि तीव्र होती है। इस प्रकार यह सोम 'सर्वधा' है।

भावार्थ—स्वाध्याय में प्रवृत्त रहने पर सोम शरीर में ही व्याप्त हुआ रहता है। यह जीवन को हर्षमय बनाता हुआ सबका धारण करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'विप्र व कवि' सोम

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः। मदेषु सर्वधा असि॥ २॥

(१) हे सोम! **त्वम्**=तू **विप्रः**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाला है। सोम के रक्षण के होने पर शरीर में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहती। रोगकृमियों के विनाश स्थूल शरीर ठीक रहता है तो वासनाओं के विनाश से मन में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। (२) हे सोम! त्वम्=तू **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ व ज्ञानी है। सोमरक्षण से बुद्धि तीव्र होती है, इस तीव्र बुद्धि से हमारा ज्ञान बढ़ता है। (३) **अन्धसः**=इस सोम से **मधु प्रजातम्**=जीवन में माधुर्य का विकास होता है। सोम रक्षक के जीवन में 'ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध व चिड़चिड़ापन' आदि नहीं रहते। वस्तुतः हे सोम! तू **मदेषु**=उल्लासों के होने पर **सर्वधाः**=सबका धारण करनेवाला **असि**=है।

भावार्थ—सोम (क) हमारी न्यूनताओं को दूर करता है, (ख) यह हमें ज्ञानी बनाता है, (ग) जीवन को मधुर करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देवों से पेय सोम

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत। मदेषु सर्वधा असि॥ ३॥

(१) हे सोम! **विश्वे**=सब **सजोषसः**=प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों का सेवन करनेवाले (जुषी प्रीति सेवनयोः) **देवासः**=देववृत्ति के लोग **तव**=तेरे **पीतिम्**=पान को **आशत**=(प्राप्नुवन्) प्राप्त करते हैं। सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि—(क) हम देववृत्ति के बनें और (ख) अपने कर्त्तव्य कर्मों में लगे रहें। (२) सुरक्षित होने पर हे सोम! तू **मदेषु**=उल्लासों के होने पर **सर्वधाः**=शरीर, मन, बुद्धि सबका धारण करनेवाला **असि**=है।

भावार्थ—देववृत्ति के कर्त्तव्यपरायण लोग ही सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'वसुप्रापक' सोम

आ यो विश्वा॑नि॒ वार्या॒ वसू॑नि॒ हस्त॑योर्द॒धे। मदे॑षु स॒र्व॒धा अ॑सि॥ ४॥

(१) हे सोम! तू वह है **यः**=जो **विश्वानि**=सब **वार्या**=वरणीय, चाहने योग्य **वसूनि**=वसुओं को निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को **हस्तयोः**=हाथों में **आ दधे**=धारण करता है। इस सोम के धारण से हमें सब वसुओं की प्राप्ति होती है। (२) हे सोम! तू **मदेषु**=उल्लासों के होने पर **सर्वधाः असि**=सबका धारण करनेवाला है। 'शरीर, मन, मस्तिष्क' सभी को तू उत्तम बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब वसुओं को प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

माता-पिता का पूरक पुत्र

य इ॒मे रोद॑सी म॒ही सं मा॒तरे॑व॒ दोह॑ते। मदे॑षु स॒र्व॒धा अ॑सि॥ ५॥

(१) सोम वह है **यः**=जो **इमे**=इन **मही रोदसी**=महत्त्वपूर्ण द्यावापृथिवी को **मातरा इव**=माता-पिता के समान **संदोहते**=सम्यक् प्रपूरित करता है। जैसे एक पुत्र माता-पिता की पूर्ति करनेवाला होता है (अथ यदैव जायां विन्दते उत प्रजायते, तर्हि हि सर्वो भवति श० ५।२।१।१०) पति जाया को प्राप्त करके, सन्तान को जन्म देने पर, पूर्ण होता है। एवं सन्तान माता-पिता को मानो पूर्णता प्राप्त कराता है, इसी प्रकार यह सोम मस्तिष्क व शरीर रूप (द्यावापृथिवी) पिता-माता को पूर्णता प्राप्त करानेवाला होता है। (२) सुरक्षित होने पर **मदेषु**=उल्लासों की वर्तमानता में, हे सोम! तू **सर्वधाः असि**='शरीर, मन व बुद्धि' सभी का धारण करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर की न्यूनताओं को दूर करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

शक्ति-सम्पन्न मस्तिष्क व शरीर

परि॒ यो रोद॑सी उ॒भे स॒द्यो वाजे॑भि॒रर्ष॑ति। मदे॑षु स॒र्व॒धा अ॑सि॥ ६॥

(१) यह सोम वह है **यः**=जो **सद्यः**=शीघ्र ही **उभे रोदसी**=इन दोनों द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **वाजेभिः**=शक्तियों के साथ **परि अर्षति**=समन्तात् प्राप्त होता है। सोम के द्वारा मस्तिष्क भी शक्ति-सम्पन्न बनता है, शरीर भी। शक्ति-सम्पन्न मस्तिष्क ज्ञान से दीप्त हो उठता है और शक्ति-सम्पन्न शरीर तेजस्विता से चमक आता है। (२) हे सोम! तू **मदेषु**=उल्लासों के होने पर **सर्वधाः असि**=सबका धारण करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर दोनों को शक्ति-सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'शुष्मी' सोम

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत्। मदेषु सर्वधा असि॥ ७॥

(१) **सः**=वह सोम **शुष्मी**=शत्रुशोषक बलवाला है। **कलशेषु**=सोलह कलाओं के निवास-स्थानभूत इन शरीरों में **आपुनानः**=समन्तात् पवित्रता को करता हुआ यह सोम **अचिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता है। अर्थात् सोमरक्षक पुरुष प्रभु के आह्वान की वृत्तिवाला बनता है। एवं सोम हमें (क) शत्रु-शोषक बल प्राप्त कराता है, (ख) हमारे जीवनों को पवित्र करता है, (ग) और हमें प्रभु-प्रवण बनाता है। (२) हे सोम! तू **मदेषु**=उल्लासों के होने पर **सर्वधाः असि**=सबका धारण करनेवाला है। तू शत्रु-शोषक बल को प्राप्त कराके शरीरों को नीरोग बनाता है। पवित्रता के द्वारा मनों को निर्मल करता है। प्रभु सम्पर्क में लाकर हमें ज्ञान-ज्योति से दीप्त कर देता है।

भावार्थ—सोम हमें शत्रु-शोषक शक्ति देता है। हमारे मनों को पवित्र करता है। हमें प्रभु सम्पर्क में लाकर ज्ञानदीप्त बनाता है।

सूचना—'मदेषु सर्वधा असि' इस वाक्य को सात बार दुहराने का भाव यह प्रतीत होता है कि यह सोम शरीर में सातों धातुओं का ठीक से धारण करता हुआ सातों ऋषियों को (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) शक्ति सम्पन्न करता है।

इसी सोम का वर्णन अगले सूक्त में देखिये—

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिव्य व पार्थिव वसु

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु। तन्नः पुनान आ भर॥ १॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **यत्**=जो **चित्रम्**=अद्भुत अथवा 'चित् र' ज्ञान को देनेवाला (=बढ़ानेवाला) **दिव्यम्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के साथ सम्बद्ध **वसु**=ज्ञान धन है, और जो **उक्थ्यम्**=रक्षा में विनियुक्त होने के कारण स्तुति के योग्य **पार्थिवं वसु**=शरीर रूप पृथिवी के साथ सम्बद्ध शक्ति रूप धन है, **तत्**=उस धन को **नः**=हमारे लिये **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **आभर**=सर्वथा प्राप्त करा। (२) सोम से हमें दिव्य व पार्थिव दोनों धनों की प्राप्ति हो। इन दोनों धनों की प्राप्ति के लिये हृदय की पवित्रता रूप तीसरा धन है। वह भी इस सोम ने ही प्राप्त कराना है।

भावार्थ—सोम हमें मस्तिष्क में दिव्य धन (ज्ञान) प्राप्त कराये, शरीर में पार्थिव धन (शक्ति) को दे। तथा हृदयान्तरिक्ष में पवित्रता को करनेवाला हो (पुनानः)।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

स्वःपति-गोपति

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती। ईशाना पिप्यतं धियः॥ २॥

(१) 'इन्द्र' जितेन्द्रिय पुरुष है। यह 'सोम' का रक्षण करता है। प्रभु कहते हैं कि हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **च**=और **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **युवम्**=तुम दोनों **हि**=निश्चय से **स्वःपती**=स्वर्ग के व प्रकाश के स्वामी **स्थः**=होते हो तथा **गोपती**=ज्ञान की वाणियों के स्वामी बनते हो या इन्द्रियों के स्वामी होते हो। (२) इस प्रकार प्रकाश व ज्ञान की वाणियों के व इन्द्रियों के (गावः इन्द्रियाणि) **ईशाना**=स्वामी होते हुए आप **धियः**=ज्ञानपूर्वक कर्मों का **पिप्यतम्**=आप्यायन करनेवाले बनो। इन कर्मों से ही वस्तुतः प्रभु का उपासन होता है।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष सोम का रक्षण करता हुआ प्रकाश व ज्ञान का स्वामी बनकर उत्तम कर्मों का आप्यायन (वर्धन) करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

पुनानः हरिः

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि। हरिः सन्योनिमासदत्॥ ३॥

(१) यह सोम (वीर्य) **वृषा**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाला है व हमें शक्तिशाली बनानेवाला है। **आयुषु**=गतिशील पुरुषों में **पुनानः**=यह पवित्रता का संचार करनेवाला है। यह **अधि बर्हिषि**=पवित्र हृदय में, वासनाशून्य हृदय में यह **स्तनयन्**=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है। सोम के रक्षित होने पर हृदय पूर्ण पवित्र बनता है। उस पवित्र हृदय में यह सोमरक्षक प्रभु के नामों का स्मरण करता है। (२) **हरिः सन्**=सब दुःखों का हरण करनेवाला होता हुआ यह **योनिं आसदत्**=सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में आसीन होता है। सोमरक्षक व्यक्ति अन्ततः प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—रक्षित सोम (क) हमें शक्तिशाली बनाता है, (ख) पवित्र करता है, (ग) सब दुःखों का हरण करता है, (घ) प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सूनोः वत्सस्य मातरः

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि। सूनोर्वत्सस्य मातरः॥ ४॥

(१) **धीतयः**=सोम का पान करनेवाले लोग (धेट् पाने) **वृषभस्य**=उस शक्तिशाली-सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु के **अधिरेतसि**=इस रेतस् के विषय में **अवावशन्त**=कामना करते हैं। प्रभु से उत्पन्न किये गये इस सोम को अपने अन्दर ही पीने की इच्छा करती हैं, इसे अपने अन्दर सुरक्षित रखते हैं। (२) ये व्यक्ति **सूनोः**=हृदयस्थरूपेण प्रेरणा देनेवाले (षू प्रेरणे) **वत्सस्य**=वेद-वाणियों का उच्चारण करनेवाले उस प्रभु के **मातरः**=ज्ञान प्राप्त करनेवाले होते हैं (प्र०मा=to know)। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को ये सुनते हैं और उससे उच्चरित ज्ञान-वाणियों के द्वारा प्रभु को जाननेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु से उत्पन्न किये गये सोम को अपने अन्दर पीनेवाले व्यक्ति प्रभु प्रेरणा को सुन पाते हैं, उससे उच्चारित ज्ञान वाणियों को सुनते हुए प्रभु का ज्ञान प्राप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु से मेल

कुविद् वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत्। याः शुक्रं दुहते पयः॥ ५॥

(१) **वृषण्यन्तीभ्यः**=(वृषणं सोममात्मन इच्छन्तीभ्यः) शक्ति को देनेवाले सोम की कामना करती हुई प्रजाओं के लिये **पुनानः**=पवित्रता को करता हुआ यह सोम **कुवित्**=खूब **गर्भम्**=प्रभु के साथ मेल को **आदधत्**=धारण करता है। जब हम सोम का रक्षण करते हैं, यह रक्षित सोम हमें निर्मल जीवनवाला बनाता है, अन्ततः प्रभु से हमारा मेल कराता है। (२) उन प्रजाओं का यह प्रभु से मेल कराता है, **याः**=जो इस सोम से **शुक्रं पयः**=दीप्त आप्यायन शक्ति को **दुहते**=दोहते हैं। सोमरक्षण के द्वारा शरीर के सब अंग-प्रत्यंग आप्यायित हो उठते हैं। सब अंग-प्रत्यंगों के आप्यायित होने पर हम पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करते हैं, और अपने जीवन को पवित्र बनाकर प्रभु से मेलवाले होते हैं।

भावार्थ—सोम हमारे शरीरों को आप्यायित करके हमारे जीवन को पवित्र करता है तथा प्रभु से हमारा मेल कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

शत्रुओं में भय सञ्चार

उप शिक्षा पतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु। पवमान विदा रयिम्॥ ६॥

(१) हे सोम! **अपतस्थुषः**=वासनाओं से दूर स्थित होनेवाले हम लोगों को **उपशिक्ष**=उस प्रभु के समीप करनेवाला हो, हमें प्रभु को प्राप्त करा। हमारे **शत्रुषु**=शातन (=विनाश) करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं में **भियसम्**=भय को **आधेहि**=स्थापित कर। अर्थात् इस सोम के रक्षण से काम-क्रोध आदि शत्रु विनष्ट हो जायें। (२) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! तू सुरक्षित होने पर **रयिं विदा**=हमें ज्ञान रूप ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला हो। वस्तुतः सोमरक्षण से बुद्धि तीव्र होती है और हम ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सोम हमें प्रभु का सान्निध्य प्राप्त कराता है, काम-क्रोधादि को विनष्ट करता है, ज्ञानैश्वर्य का वर्धन करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

नीरोग व निर्मल

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर। दूरे वा सतो अन्ति वा॥ ७॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **शत्रोः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं के **वृष्ण्यम्**=बल को **नितिर**=नष्ट कर। सोमरक्षण के द्वारा हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को निर्बल करके इन्हें विनष्ट कर सकें। (२) (शत्रोः) शरीर को विनष्ट करनेवाले रोगकृमिरूप शत्रुओं के **शुष्मम्**=शोषक बल को **नितिर**=नष्ट कर। रोगकृमियों के विनाश से हम स्वस्थ बनें। **दूरे वा सतः**=दूर होनेवाले, इन रोगकृमि रूप शत्रुओं की **वा**=तथा **अन्ति**=(सतः) समीप होनेवाले 'मनसिज' काम आदि शत्रुओं की **वयः**=उमर को नितिर=नष्ट कर। अथवा वयः (वय् गतौ) गति को विनष्ट कर।

रोगकृमि बाहर से हमारे पर आक्रमण करते हैं, काम-क्रोध आदि अन्दर से। इसलिए इन्हें यहाँ 'दूरे वा सतः' तथा 'अन्ति वा सतः' इन शब्दों से स्मरण किया है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम आन्तरिक काम-क्रोध आदि शत्रुओं को तथा बाह्य रोगकृमि रूप शत्रुओं की गति को विनष्ट करके अपने जीवन को नीरोग व निर्मल बना पायें।

इसी सोमरक्षण के लाभ को अगले सूक्त में देखिये—

[२०] वशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अव्यः कविः

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति। साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः॥ १॥

(१) यह सोम '**कविः**'=कवि है, क्रान्तप्रज्ञ है, हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाला है। यह **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है। सोम हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनाकर, हमारे ज्ञान को बढ़ाता है तथा ज्ञानवृद्धि के द्वारा दिव्य गुणों का वर्धन करता है। (२) **अव्यः**=रक्षकों में उत्तम यह सोम **वारेभिः**=सब रोगों के निवारण के साथ **प्र अर्षति**=प्रकर्षेण प्राप्त होता है। यह **विश्वाः**=सब **स्पृधः**=शत्रुओं को **अभि साह्वान्**=अभिभूत करनेवाला व कुचलनेवाला होता है।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम हमें क्रान्तिप्रज्ञ बनाता है, सो 'कवि' है। यह रोगों से हमें बचाता है तो 'अव्य' है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोमान् वाज

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति। पवमानः सहस्त्रिणम्॥ २॥

(१) **सः**=वह **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला सोम **हि ष्मा**=निश्चय से **जरितृभ्यः**=उपासकों के लिये **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **सहस्त्रिणम्**=प्रसन्नता से परिपूर्ण **वाजम्**=बल को **आ इन्वति**=शरीर में सर्वत्र व्याप्त करता है। (२) सोम का रक्षण होने पर यह हमें पवित्र बनाता है (पवमानः), हमारी वृत्ति को उपासनामय करता है (जरितृभ्यः) इन्द्रियों को प्रशस्त करता है (गोमान्) हमारे जीवन को आनन्दमय बनाता है (सहस्त्रिणं) हमारे में शक्ति का सञ्चार करता है (वाजम्)।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। यह रक्षित सोम हमें प्रशस्त इन्द्रियों से युक्त आनन्दमय शक्ति को प्राप्त कराये।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

तत्त्वचिन्तन

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती। स नः सोम श्रवो विदः॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **श्रवः**=ज्ञान को **विदः**=प्राप्त करा। तू

चेतसा=उत्तम चित्त के द्वारा **विश्वानि**=सब तत्त्वों को **परिमृशते**=चिन्तन करनेवाला होता है। सोम के रक्षण पर हृदय निर्मल बनता है, बुद्धि की पवित्रता के कारण हम तत्त्वों का चिन्तन करनेवाले बनते हैं। बुद्धि की सूक्ष्मता का यह स्वाभाविक परिणाम है कि हम तत्त्वद्रष्टा बन पाते हैं। (२) हे सोम! तू **मती**=बुद्धि के द्वारा **पवसे**=हमारे जीवन को पवित्र करता है। बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान हमारी वासनारूप मलिनताओं को विनष्ट करता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। तत्त्वदर्शन कराता हुआ यह सोम हमें पवित्र बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

यश-रयि-इष्

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्। इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ४॥

(१) हे सोम! तू हमारे जीवनों को पवित्र करके **बृहद् यशः**=उत्कृष्ट यश को **अभ्यर्ष** (अभिगमय)=प्राप्त करा। (२) **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **ध्रुवं रयिम्**=स्थिर ऐश्वर्य को प्राप्त करा। सोमरक्षण से हम यज्ञों की वृत्तिवाले बनें। यज्ञशीलता से 'ध्रुव रयि' को प्राप्त करनेवाले हों। (३) हम **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **इष**=प्रेरणा को **आभर**=सर्वथा प्राप्त करा। हम पवित्र हृदयों में प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन यशस्वी-स्थिर ऐश्वर्यवाला व प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाला बनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'सुव्रत' सोम

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ। पुनानो वह्ने अद्भुत॥ ५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **राजा इव**=राजा की तरह **सुव्रतः**=उत्तम व्रतों व कर्मोंवाला होता है। अपनी इन्द्रियों पर शासन करनेवाला व्यक्ति 'राजा' है। सोमरक्षण के होने पर हमारे सब कर्म शोभन होते हैं। उसी प्रकार शोभन होते हैं, जैसे कि एक राजा के जितेन्द्रिय पुरुष के कर्म शोभन होते हैं, (२) हे **वह्ने**=हमारे लिये सब उत्तमताओं को प्राप्त करानेवाले **अद्भुत**=अनुपम शक्तिवाले सोम! तू **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को **आविवेशिथ**=हमारे में प्रविष्ट करा। अर्थात् हमारी बुद्धियों को तीव्र बनाकर हमें ज्ञान को प्राप्त करा।

भावार्थ—सोमरक्षण के परिणामस्वरूप हमारे कर्म पवित्र हों, हमें ज्ञान की वाणियाँ प्राप्त हों।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'दुष्टर' सोम

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः। सोमश्चमूषु सीदति॥ ६॥

(१) **सः**=वह सोम **वह्निः**=हमारे लिये ज्ञान व शक्ति आदि को प्राप्त करानेवाला है। **अप्सु**=

कर्मों में **दुष्टरः**=विघ्नों से आसानी से पराभूत होनेवाला नहीं। अर्थात् सोमरक्षक पुरुष कर्मों को करता हुआ विघ्नों से पराजित नहीं हो जाता। **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ यह **गभस्त्योः**=बाहुओं में होता है। अर्थात् भुजाओं को यह शक्तिशाली बनाता है। (२) यह **सोमः**=सोम **चमूषु**=शरीररूप पात्रों में **सीदति**=आसीन होता है। वस्तुतः इस सोम (वीर्य) का आधारभूत पात्र यह शरीर ही है। शरीर में सुरक्षित होने पर यह उसे 'सत्य, यश व श्री' से सम्पन्न करता है।

भावार्थ—रक्षित सोम हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराता है। कर्मों में विघ्नों से पराभूत नहीं होने देता।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'क्रीडु' सोम

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥ ७॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **क्रीडुः**=क्रीडनशील है, अर्थात् सोमरक्षण करनेवाला पुरुष क्रीडक की मनोवृत्तिवाला होता है। यह हर्ष-शोक से बहुत आन्दोलित नहीं होता। **मखः न**=यह जैसा यज्ञशील है, उसी प्रकार **मंहयुः**=दान की वृत्तिवाला है। सोमरक्षक पुरुष सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहता है तथा लोभ से ऊपर उठा होने के कारण दानशील होता है। (२) हे सोम! तू **पवित्रम्**=पवित्र हृदय को **गच्छसि**=प्राप्त होता है तथा **स्तोत्रे**=प्रभु के उपासक के लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **दधत्**=धारण करनेवाला होता है। उसे तू नीरोग बनाता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन के द्वारा हृदय को पवित्र करने से सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम हमें क्रीडक की मनोवृत्तिवाला, यज्ञशील व दान देनेवाला बनाता है। इससे हमारे में बल का आधान होता है।

अगला सूक्त भी सोम की ही महिमा का प्रतिपादन कर रहा है—

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मत्सरासः स्वर्विदः

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः। मत्सरासः स्वर्विदः॥ १॥

(१) **एते**=ये **इन्दवः**=शक्ति को देनेवाले **सोमाः**=सोमकण **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **धावन्ति**=प्राप्त होते हैं (धाव् गतौ)। उसे प्राप्त होकर ये उसके शत्रुओं को **घृष्वयः**=नष्ट करनेवाले होते हैं, घिस देते हैं। (२) ये सोमकण शरीर में सुरक्षित होकर **मत्सरासः**=आनन्द का संचार करनेवाले हैं और **स्वर्विदः**=प्रकाश को व सुख को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता सोमरक्षण का साधन है। रक्षित सोम 'शक्ति को देनेवाला, आधि-व्याधि रूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला, आनन्द का संचार करनेवाला व प्रकाश को प्राप्त करानेवाला' है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वयस्कृत्' सोम

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः। स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः॥ २॥

(१) ये सोम **प्रवृण्वन्तः**=(सुवानं संभजन्तः) उत्पन्न करनेवाले का सम्भजन करनेवाले हैं। जो भी अपने अन्दर इन सोमकणों का सम्पादन करता है, ये सोमकण उसे नीरोग व पवित्र बनाते हुए उसकी सेवा करते हैं। **अभियुजः**=ये सुरक्षित सोमकण उसके शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं, उसके अन्दर आ जानेवाले रोगकृमियों को विनष्ट करते हैं और काम-क्रोध आदि को भी उससे दूर करते हैं। (२) **सुष्वये**=उत्तम सवन करनेवाले के लिये **वरिवोविदः**=ये धन को प्राप्त कराते हैं। इनके रक्षण से शरीर के लिये आवश्यक सब वसुओं की प्राप्ति होती है। ये सोम **स्तोत्रे**=प्रभु के स्तवन करनेवाले के लिये **स्वयम्**=अपने आप **वयस्कृतः**=उत्कृष्ट जीवन को करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—रक्षित सोम हमारे रोगकृमि रूप शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं। उत्तम धनों को प्राप्त कराते हैं। उत्कृष्ट जीवन को करनेवाले हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सधस्थ की ओर

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित्। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन्॥ ३॥

(१) **वृथा**=अनायास ही सहजस्वभाव से **क्रीडन्तः**=मेरे अन्दर क्रीडा करते हुए मुझे क्रीडक की मनोवृत्तिवाला बनाते हुए **इन्दवः**=सोमकण उस **एकम्**=अद्वितीय **सधस्थम्**=सब के मिलकर ठहरने के स्थान 'प्रभु' की **अभि**=ओर **इत्**=ही **वि अक्षरन्**=गतिवाले होते हैं। प्रभु 'सधस्थ' हैं, सारे प्राणी उस प्रभु में ही स्थित होते हैं, वे प्रभु ही सब प्राणिरूप पक्षियों के एक नीड (घोंसला) हैं। सोम के रक्षण से हम इन प्रभु को पानेवाले बनते हैं। (२) ये सोम **सिन्धोः ऊर्मा**=ज्ञान समुद्र की तरंगों पर हमें ले जानेवाले होते हैं। 'रायः समुद्राश्चतुरः'=इन शब्दों में चार वेद चार ज्ञान धन के समुद्र ही हैं। इन की तरंगों पर तैरनेवाला वह व्यक्ति होता है जो कि अपने शरीर में उत्पन्न सोम का अपने में रक्षण करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें (क) प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर ले चलता है, (ख) इससे हम ज्ञान समुद्र की तरंगों में तैरनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सब वरणीय वस्तुओं की प्राप्ति

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत। हिता न सप्तयो रथे॥ ४॥

(१) **एते**=ये **पवमानासः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम **विश्वानि**=सब **वार्या**=वरणीय वस्तुओं को **आशत**=व्याप्त करनेवाले होते हैं। सोमरक्षण से सब वरणीय वस्तुएँ हमें प्राप्त होती हैं। (२) ये सोम **रथे**=इस शरीर-रथ में **हिताः**=स्थापित, जुते हुए **सप्तयः न**=घोड़ों के समान हैं। जिस प्रकार घोड़े हमें उद्दिष्ट स्थल पर पहुँचाते हैं, उसी प्रकार ये सोम हमें जीवनयात्रा में इस शरीर रथ के द्वारा उद्दिष्ट स्थल पर पहुँचानेवाले हैं, ये हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं तथा इस शरीर-रथ के द्वारा लक्ष्य स्थान (=ब्रह्म) तक पहुँचाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'पिशंग-वेन-अरावा' प्रभु

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे। यो अस्मभ्यमरावा॥ ५॥

(१) **इन्दवः**=सोमकणो! **अस्मिन्**=इस सोम के रक्षक पुरुष में **पिशंगम्**=(पिशं गच्छति) शत्रुपेषण रूप कार्य के प्रति जानेवाले उस प्रभु को **आदधात**=स्थापित करो। सोमरक्षण से प्रभु का दर्शन होता है, वे हमारे हृदयों में स्थित प्रभु काम आदि वासनाओं को विनष्ट करते हैं। (२) उस प्रभु को हमारे हृदयों में स्थापित करो जो कि **वेनम्**=सदा हमारे हित की कामनावाले हैं। इन प्रभु को **आदिशे**=हमारे हृदयों में इसलिए स्थापित करो कि इनसे हमें सदा हमारे कर्त्तव्यों का आदेश प्राप्त होता रहे। (३) उन प्रभु को हमारे हृदयों में स्थापित करो **यः**=जो कि **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **अरावा**=(न रावयति) न रुलानेवाले हैं। हमें पापों से बचाकर शुभ कर्मों में वे प्रभु प्रेरित करते हैं और इस प्रकार हमें दुर्गति से बचाकर न रुलानेवाले होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें उन प्रभु को प्राप्ति होती है जो (क) हमारे शत्रुओं को पीस डालते हैं, (ख) हमारे हित की कामना करते हुए हमें कर्त्तव्य का उपदेश देते हैं, (ग) हमें पाप व दुर्गति से बचाकर न रुलानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'रथ्य-नव-केत' प्रभु

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे। शुक्राः पवध्वमर्णसा॥ ६॥

(१) **ऋभुः न**='उरु भाति' ज्ञान से दीप्त समझदार पुरुष की तरह **रथ्यम्**=हमारे शरीर रथ के उत्तम सारथि **नवम्**=(नु स्तुतौ) स्तुत्य-उपासना के योग्य **केतम्**=प्रज्ञानस्वरूप प्रभु को **आदिशे**=कर्त्तव्य कर्मों का आदेश प्राप्त कराने के लिये, हे सोमकणो! उस प्रभु को मेरे **दधात**=अन्दर स्थापित करो। सोमकणों के रक्षण से मेरे हृदय में प्रभु की स्थिति हो। उस प्रभु से मुझे कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश मिलता रहे। (२) **शुक्राः**=हे सोमकणो! मेरे जीवन को (शुच्) दीप्त व पवित्र करनेवाले वीर्यकणो! तुम **अर्णसा**=ज्ञानजल के द्वारा **पवध्वम्**=मेरे जीवन को पवित्र करनेवाले होवो।

भावार्थ—सोमरक्षण से प्रभु मेरे शरीर-रथ के सारथि बनेंगे। तब भटकने का प्रश्न ही न रहेगा। इन सोमकणों के रक्षण से हमारा ज्ञान भी उत्तरोत्तर बढ़ेगा।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

काष्ठा प्राप्ति

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत। सतः प्रासाविषुर्मतिम्॥ ७॥

(१) **एते**=वे **उ**=निश्चय से **त्ये**=वे सोमकण **अवीवशन्**=सदा हमारे हित की कामना करते हैं। हमारे रोगकृमि रूप शरीर शत्रुओं को तथा वासनारूप मानस शत्रुओं को विनष्ट करके ये हमारा हित करते हैं। (२) ये **वाजिनः**=शक्ति को देनेवाले सोमकण **काष्ठां अक्रत**=जीवन के लक्ष्य-स्थान को करनेवाले होते हैं। अर्थात् ये मनुष्य को लक्ष्य-स्थानभूत प्रभु तक पहुँचानेवाले होते हैं

'सा काष्ठा सा परागतिः'। (२) इसी उद्देश्य से ये सोम **सतः**=एक सत्पुरुष की **मतिम्**=बुद्धि को **प्रासाविषुः**=उत्पन्न करते हैं। एक सज्जन पुरुष की बुद्धि इन रक्षित सोमकणों से दीप्त हो उठती है, सूक्ष्म विषयों का वह ग्रहण करनेवाली बनती है।

भावार्थ—रक्षित सोमकण (क) हमारा हित करते हैं, (ख) हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं, (ग) हमारे में सद्बुद्धि का विकास करते हैं।

सूक्त का भाव एक वाक्य में यही है कि सोमरक्षण से हम प्रभु को प्राप्त करते हैं। अगले सूक्त में भी सोम की महिमा का ही वर्णन है—

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रवाजिनः रथाः

एते सोमास आशवो रथाइव प्र वाजिनः। सर्गाः सृष्टा अहेषत॥ १॥

(१) **एते**=ये **सोमासः**=सोमकण **आशवः**=शरीर में व्याप्त होनेवाले हैं (अशू व्याप्तौ) तथा **प्रवाजिनः**=प्रकृष्ट घोड़ों से युक्त **रथाः इव**=रथों के समान हैं। जैसे ये रथ अवश्य हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं, इसी प्रकार सुरक्षित सोम हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले है। सोम के रक्षण से शरीर-रथ उत्तम बनता है और उसमें उत्तम इन्द्रियाश्व जुते होते हैं। सोम की शक्ति ही इन सब इन्द्रियाश्वों को शक्तिशाली बनाती है। (२) शरीर में ये सोम **सृष्टाः**=उत्पन्न हुए-हुए **सर्गाः**=अश्वों के समान हैं (सर्ग=A horse) ये जीवनयात्रा की पूर्ति का साधन बनते हैं और **अहेषत**=स्तुति के शब्दों का उच्चारण करते हैं। जैसे घोड़े हिनहिनाते हैं, इसी प्रकार सोम की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न इन्द्रियाश्व प्रभु के गुणों का गान करते हैं।

भावार्थ—सोम इन्द्रियाश्वों को शक्तिशाली बनाता है, तथा वे प्रभु का गुणगान करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'वायु पर्जन्य व अग्नि' के समान

एते वाताइवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः। अग्नेरिव भ्रमा वृथा॥ २॥

(१) **एते**=ये सोम **उरवः वाताः इव**=विशाल वायुवों के समान हैं। तीव्र गतिवाली वायुओं के समान ये सोम हमें शक्ति-सम्पन्न बनाकर तीव्र गतिवाला करते हैं। (२) ये सोम **पर्जन्यस्य वृष्टयः इव**=मेघों की वृष्टि के समान हैं। जैसे यह वृष्टि सन्ताप का हरण करनेवाली है, उसी प्रकार ये सुरक्षित सोम हमारे रोगादि का हरण करके हमें शान्ति को देनेवाले हैं। (३) ये सोम **वृथा**=अनायास ही जब शरीर में व्याप्त होते हैं, अर्थात् जब शरीर में ये स्वभावतः ऊर्ध्वगतिवाले होते हैं तो **अग्नेः भ्रमाः इव**=अग्नि की आकाश में भ्रान्त होनेवाली लपटों के समान होते हैं। जैसे अग्नि की लपटें प्रकाशमान होती हैं, उसी प्रकार इस सोमरूप ईंधन से ज्ञानाग्नि की ज्वालायें प्रज्वलित होती हैं, ज्ञानाग्नि दीप्त हो उठती है।

भावार्थ—सोमकण शरीर में वायु के समान शक्ति व गति को, मन में पर्जन्य के समान सन्तापशून्यता को तथा मस्तिष्क में अग्नि के समान ज्ञानाग्नि की दीप्तता को पैदा करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

विपश्चितः दध्याशिरः

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः। विपा व्यानशुर्धियः॥ ३॥

(१) **एते**=ये **सोमासः**=सोमकण **पूताः**=शुद्ध रखे जाने पर इनमें वासनाओं का उबाल न आने देने पर **विपश्चितः**=ये ज्ञानी होते हैं, अर्थात् हमें ज्ञानी बनाते हैं। सोमरक्षण करनेवाला पुरुष विशेषरूप से (बारीकी से) देखता हुआ चिन्तनशील होता है। ये सोमकण **दध्याशिरः**=(धत्ते बलं इति दधि, आश्रृणाति) बल को धारण करनेवाले व रोगकृमियों का विनाश करनेवाले होते हैं। (२) ये सोमकण **धियः**=हमारे ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले इन कर्मों को **विपा**=(विप् Hymns) स्तोत्रों से **व्यानशुः**=व्याप्त कर देते हैं। अर्थात् सोमरक्षण करने पर हम (क) कर्मशील होते हैं, (ख) कर्मों को बुद्धिपूर्वक करते हैं, (ग) उन कर्मों को प्रभु-स्मरण के साथ करते हैं। ऐसा करने से हमारे कर्म पवित्र बने रहते हैं और हमें उन कर्मों का अहंकार नहीं होता।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित पवित्र सोमकण हमारा धारण करते हैं। रोगकृमियों का विनाश करते हैं। सोमरक्षण करने पर हम कर्मों को ज्ञानपूर्वक प्रभु-स्मरण के साथ करते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

सुपथ व उत्तम लोक

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः। इयक्षन्तः पथो रजः॥ ४॥

(१) गत मन्त्र में जो भाव 'एते पूताः' इन शब्दों से कहा गया था, वही भाव यहाँ 'एते मृष्टाः' इन शब्दों में कहा गया है। 'मृजू शुद्धौ' **मृष्टाः**=शुद्ध रखे गये **एते**=ये सोम **अमर्त्याः**=हमें रोगादि से मृत्यु का शिकार नहीं होने देते। **ससृवांसः**=निरन्तर गति करते हुए ये सोमकण **न शश्रमुः**=थकते नहीं। ये सोमकण रक्षित होने पर हमें अनथक श्रमशील बनाते हैं। (२) ये सोमकण **पथः**=मार्गों को व **रजः**=उत्तम लोकों को **इयक्षन्तः**=हमारे साथ संगत करनेवाले होते हैं। सोमकणों के रक्षण के होने पर मनुष्य स्वभावतः सुपथ का आक्रमण करता है और उत्तम लोक की प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

भावार्थ—सोमकण हमें (क) रोगों से मरने नहीं देते, (ख) ये हमें अनथक श्रमवाला बनाते हैं। (ग) उत्तम मार्गों की ओर हमारा झुकाव करते हैं, (घ) हमें उत्तम लोकों की प्राप्ति का अधिकारी बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

द्यावापृथिवी के पृष्ठ पर

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः। उतेदमुत्तमं रजः॥ ५॥

(१) **एते**=ये सोमकण **रोदसोः**=द्यावापृथिवी के **पृष्ठानि**=पृष्ठों को, शिखरों को **विप्रयन्तः**=विशेषरूप से प्राप्त होते हुए **व्यानशुः**=शरीर में व्याप्त होते हैं (अशू व्याप्तौ)। द्यावापृथिवी के शिखरों पर जाने का भाव यह है कि मस्तिष्क व शरीर की उन्नति करना। सोमकण रोगकृमियों को नष्ट करके शरीर को स्वस्थ बनाते हैं, और मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि को दीप्त करते

हैं। (२) **उत**=और इस प्रकार शारीरिक व बौद्धिक उन्नति के द्वारा ये सोमकण **इदम्**=इस **उत्तमं रजः**=उत्तम लोक को व्याप्त करनेवाले होते हैं। सोमरक्षण से अन्ततः सर्वोत्तम लोक, अर्थात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। यह सोम (वीर्य) उस सोम (प्रभु) की प्राप्ति का कारण बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शारीरिक व बौद्धिक उन्नति के शिखर पर ले जाता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उत्तमाय्य का व्यापन

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत। उतेदमुत्तमाय्यम्॥ ६॥

(१) **उत्तमम्**=सर्वोत्कृष्ट 'यज्ञ-तप-दान' रूप **तन्तुम्**=कर्मतन्तु को **तन्वानम्**=विस्तृत करते हुए इस सोम के **अनु**=रक्षण के अनुसार, अर्थात् जितना-जितना सोम का रक्षण करते हैं उतना-उतना **प्रवतः**=(Height, elevation) उन्नत स्थितियों को व्याप्त करते हैं। (२) **उत**=और अन्ततोगत्वा **इदम्**=इस **उत्तमाप्यम्**=उत्तम लोगों से प्राप्त होने योग्य मोक्षलोक को व्याप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें उत्तम कर्मों में प्रेरित करता हुआ उन्नत लोकों को प्राप्त कराता है, अन्ततः मोक्ष लोक का हमें अधिकारी बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वसु व गव्य' की प्राप्ति

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः। ततं तन्तुमचिक्रदः॥ ७॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **पणिभ्यः**=स्तोताओं के लिये **वसु**=निवास के लिये आवश्यक तत्त्व को **आधारयः**=शरीर में समन्तात् धारण करता है। प्रभु-स्तवन से हम वासनाओं से बचे रहते हैं, और इस प्रकार सोम सुरक्षित रहता है। यह सुरक्षित सोम हमारे शरीर में रोगकृमियों को नहीं पनपने देता। हमारा शरीर निवास के लिये आवश्यक शक्तिरूप धन से युक्त रहता है। (२) हे सोम! तू इन स्तोताओं के लिये **गव्यानि**=(धारयः) वेदवाणी रूप गौ के उत्तम ज्ञानदुग्धों को धारण करता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और जो **ततम् तन्तुम्**=इस संसार के तन्तुओं को **अचिक्रदः**=संचारित करता है। उसकी उस दीप्त ज्ञानाग्नि से हम ज्ञान के प्रकाश को पानेवाले होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शारीरिक वसुओं व मस्तिष्क की ज्ञानरश्मियों (गव्य) को प्राप्त कराता है।

सूक्त का भाव यह है कि सुरक्षित सोम हमें अन्ततः ब्रह्मलोक को प्राप्त कराता है। अगला सूक्त भी इसी भाव का द्योतक है—

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'स्फूर्ति-माधुर्य-उल्लास व तत्त्वज्ञान'

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया। अभि विश्वानि काव्या॥ १॥

(१) **सोमाः**=सोमकण **असृग्रम्**=शरीर में उत्पन्न किये जाते हैं। ये सोमकण **आशवः**=शरीर में सुरक्षित होने पर हमें शीघ्रता से कार्यों को करानेवाले होते हैं, ये हमारे जीवनों में स्फूर्ति को पैदा करते हैं। ये सोम **मधोः**=माधुर्य के व **मदस्य**=हर्ष के **धारया**=धारण के हेतु से शरीर में उत्पन्न किये जाते हैं। शरीर में सुरक्षित हुए-हुए ये माधुर्य की व हर्ष की धारा को जन्म देते हैं। सोमरक्षक के जीवन में माधुर्य व मद होता है। 'वाणी में माधुर्य, मन में आह्लाद' ये सुरक्षित सोम के परिणाम हैं। (२) यह सोम **विश्वानि**=सब **काव्या**=तत्त्वज्ञानों को **अभि**=लक्ष्य करके शरीर में सृष्ट होता है। इससे ज्ञानाग्नि का दीपन होता है, बुद्धि को यह सूक्ष्म बनाता है। इस सूक्ष्म बुद्धि से हम तत्त्व का दर्शन करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'स्फूर्ति-माधुर्य-उल्लास व तत्त्वज्ञान' को हमारे जीवनों में जन्म देता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रत्नासः नवीयः

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः। रुचे जनन्त सूर्यम्॥ २॥

(१) **प्रत्नासः**=अत्यन्त प्राचीनकाल में उत्पन्न किये गये ये सोमकण **आयवः**=गतिशील होते हैं। शरीर में सुरक्षित होने पर ये क्रियाशीलता को उत्पन्न करते हैं। ये सोमकण **नवीयः**=स्तुत्य **पदम्**=मार्ग का **अनु अक्रमुः**=क्रमशः आक्रमण करते हैं। सोमरक्षण करनेवाले पुरुष क्रमशः आश्रमों में स्तुत्य मार्ग का ही आक्रमण करते हैं, प्रशस्त कर्मों को ही करनेवाले होते हैं। (२) सुरक्षित हुए-हुए ये सोम **रुचे**=दीप्ति के लिये **सूर्यं जनन्त**=ज्ञानसूर्य के प्रादुर्भाव को करते हैं। ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ये उसे दीप्त करते हैं। बुद्धि को सूक्ष्म बनाकर ये उसे तत्त्वदर्शन के योग्य बनाते हैं। यह तत्त्वज्ञान ही उनके कर्त्तव्य मार्ग को प्रशस्त करता है।

भावार्थ—'अत्यन्त पुराण होते हुए भी ये सोम नवीन मार्ग का आक्रमण करते हैं' इस वाक्य में विरोधाभास अलंकार है। वस्तुतः सोमकणों का जन्म सृष्टि के प्रारम्भ में ही हुआ, सो ये 'प्रत्न' हैं। इनके सुरक्षित होने पर स्तुत्य मार्ग का आक्रमण होता है, सो ये 'नवीयस्' हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रजावतीः इषः

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम्। कृधि प्रजावतीरिषः॥ ३॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **अर्यः**=स्वामी होता हुआ **अदाशुषः**=न देनेवाले के **गयम्**=(wealth) धन को **नः**=हमारे लिये **आभर**=प्राप्त करा। जिस समय शरीर में सोम का रक्षण करते हैं, उस समय यह सोम हमें उदार वृत्तिवाला बनाता है। तब हम धनों को दान में विनियुक्त करनेवाले होते हैं। हमारा धन लोकहित के कार्यों में व्ययित होता है। (२) हे सोम! तू हमारे लिये **प्रजावतीः**=प्रकृष्ट विकासवाली, विकास की साधनभूत **इषः**=प्रेरणाओं को **कृधि**=कर। तेरे रक्षण से हम पवित्र हृदयवाले बनें। उस पवित्र हृदय में हम उन प्रेरणाओं को सुनें जो कि हमें उत्तम मार्ग पर ले चलती हुई विकसित शक्तिवाला बनायें।

भावार्थ—सब धनों का स्वामी 'सोम' है। सोम का रक्षक पुरुष सब धनों को प्राप्त करता

है और विकास की कारणभूत प्रेरणाओं को सुनता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

मधुश्चुतं कोशं अभि

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। अभि कोशं मधुश्चुतम्॥ ४॥

(१) **आयवः**=गतिशील सब गतियों को उत्पन्न करनेवाले **सोमासः**=सोमकण **मद्यम्**=आनन्दजनक **मदम्**=हर्ष को **अभि पवन्ते**=लक्ष्य करके गतिवाले होते हैं। सोमकण शरीर में गतिमय होते हैं, तो जीवन में एक अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है। (२) ये सोमकण **मधुश्चुतम्**=माधुर्य ही माधुर्य को क्षरित करनेवाले माधुर्य के स्रोत बने हुए **कोशं अभि**=कोश का लक्ष्य करके गतिवाले होते हैं। अर्थात् ये हमें प्रभु के समीप ले जाते हैं, जो प्रभु आनन्दमय व आनन्द के स्रोत हैं, उनकी ओर हमें यह सोम ही ले चलता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम आनन्द का कारण है और आनन्दमय प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

सुवीरः अभिशस्तिपाः

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम्। सुवीरो अभिशस्तिपाः॥ ५॥

(१) **सोमः**=यह सोम **अर्षति**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला होता है। **धर्णसिः**=यह हमारा धारण करता है यह हमारे अन्दर **इन्द्रियम्**=बल को व **रसम्**=रस को, मधुरवाणी व मधुर व्यवहार को **दधानः**=धारण करता है। सोम के रक्षण से (क) हमारा धारण होता है, (ख) यह हमें बल देता है, (ग) हमारे जीवन को रसमय करता है। (२) यह सोम **सुवीरः**=उत्तम वीर है, यह हमारे शरीर में रोगकृमियों को कम्पित करके दूर भगाता है। **अभिशस्तिपाः**=अभितः होनेवाली हिंसा से बचाता है। यह हमें वासनाओं व रोगों का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे शरीर में बल व मन में रस का संचार करता है। यह हमें सब प्रकार की हिंसाओं से बचाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

पवित्रता प्रभु-सम्पर्क-शक्ति

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः। इन्दो वाजं सिषाससि॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवसे**=पवित्रता को करनेवाला होता है। इस पवित्रता के द्वारा **देवेभ्यः**=देव वृत्तिवाले पुरुषों के लिये तू **सधमाद्यः**=प्रभु के साथ आनन्द का अनुभव करानेवालों में उत्तम होता है। सोम के रक्षण से पवित्रता को प्राप्त होकर हम देव बनते हैं। देव बनकर उस प्रभु के साथ मेल के आनन्द को प्राप्त करते हैं। (२) हे **इन्दो**=सोम! तू **वाजम्**=शक्ति को **सिषाससि**=हमें देने की कामना करता है। तेरे रक्षण से हम शक्ति-सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—सोम (क) हमें पवित्र बनाता है, (ख) प्रभु-सम्पर्क के आनन्द को देता है, (ग)

शक्ति प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्द व अनुपम शक्ति

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति। जघान जघनच्च नु॥ ७॥

(१) **मदानाम्**=मदों में, हर्षों में अत्यन्त हर्षजनक **अस्य पीत्वा**=इस सोम का (वीर्य का) पान करके **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **अप्रति**=एक अनुपम (matchless) योद्धा की तरह **वृत्राणि**=वृत्रों को, ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जघान**=नष्ट करता है **च**=और **नु**=निश्चय से **जघनत्**=विनष्ट करता है। (२) सुरक्षित हुआ-हुआ सोम अद्भुत आनन्द को प्राप्त कराता है। और हमें अनुपम शक्तिवाला बनाकर वासनाओं के विनाश के योग्य बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम से हम आनन्द का अनुभव करते हैं। इससे शक्ति-सम्पन्न बनकर हम वासनाओं का विनाश करनेवाले होते हैं।

सोमरक्षण के महत्त्व को ही अगले सूक्त में भी देखिये—

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उत्कृष्ट गति

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः। श्रीणाना अप्सु मृञ्जत॥ १॥

(१) **सोमासः**=सोमकण **प्र अधन्विषुः**=प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं। सुरक्षित होने पर सोम हमें उत्कृष्ट मार्ग पर चलनेवाला बनाते हैं। ये **पवमानासः**=हमें पवित्र करते हैं। **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनाते हैं। (२) **श्रीणानाः**=हमारे जीवन को परिपक्व करते हुए ये सोम **अप्सु**=कर्मों में **मृञ्जत**=शुद्ध होते हैं। सोमरक्षण से शरीर में सब शक्तियों का उत्तम परिपाक होता है। इस सोम का शोधन व रक्षण निरन्तर कर्मों में लगे रहने से होता है। यह कर्मतत्परता हमें वासनाओं से बचाती है। और वासनाओं के अभाव में सोम सुरक्षित बना रहता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) हम प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं, (ख) पवित्रता को प्राप्त करते हैं, (ग) शक्तिशाली बनते हैं, (घ) सब शक्तियों का ठीक से परिपाक कर पाते हैं। इस सोम की शुद्धि कर्मों में लगे रहने से होती है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

पुनाना

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः। पुनाना इन्द्रमाशत॥ २॥

(१) **गावः**=(गच्छन्ति इति) गमनशील सोमकण **आपः न**=जलों के समान सर्वत्र शरीर में व्याप्त होनेवाले **प्रवता यतीः**=(प्रवत् height elevation) उत्कृष्ट स्थान की ओर जाते हुए **अभि**=उस प्रभु की ओर **अधन्विषुः**=गतिवाले होते हैं। जब इन सोमकणों की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है, तो ये हमें शक्ति प्राप्त कराके गतिशील बनाते हैं, और उत्कर्ष की ओर ले जाते हुए हमें प्रभु को प्राप्त कराते हैं। (२) ये सोमकण **पुनानाः**=हमें पवित्र करते हुए **इन्द्रं आशत**=जितेन्द्रिय पुरुष में व्याप्त होते हैं। वस्तुतः जितेन्द्रियता के होने पर ये शरीर में व्याप्त होते हैं और हमें पवित्र

बनाते हैं। शरीरस्थ रोगकृमियों का ही ये संहार नहीं करते, अपितु मानस वासनाओं को भी विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमें उत्कृष्ट गतिवाला बनाते हैं, (ख) अन्त में प्रभु को प्राप्त कराते हैं, (ग) हमारे जीवन को पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उत्कृष्ट मार्ग का आक्रमण

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे॥ ३॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! तू **प्रधन्वसि**=हमारे शरीरों में प्रकृष्ट गतिवाला होता है। शरीर में सुरक्षित होने पर यह उत्कृष्ट पथ पर चलने की रुचिवाला बनाता है। हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **इन्द्राय पातवे**=जितेन्द्रिय पुरुष के पान के लिये होता है। जितेन्द्रिय पुरुष ही तुझे शरीर में व्याप्त कर पाता है। (२) **नृभिः**=उत्कृष्ट पथ पर चलनेवाले पुरुषों से **यतः**=संयत हुआ-हुआ तू **विनीयसे**=विशिष्ट रूप से शरीर में सर्वत्र प्राप्त कराया जाता है।

भावार्थ—शरीर में रक्षित सोम हमें उत्कृष्ट मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सस्त्रिः अनुमाद्यः

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः॥ ४॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **नृमादनः**=मनुष्यों को आनन्दित करनेवाला है। तू **चर्षणीसहे**=सब मनुष्यों को अभिभूत करनेवाले प्रभु के लिये **पवस्व**=प्रगतिवाला हो, प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़। तेरी रक्षा करनेवाला व्यक्ति प्रभु को प्राप्त करनेवाला हो। (२) वह तू प्रभु को प्राप्त करानेवाला हो **यः**=जो कि **सस्निः**=हमारे जीवन को बड़ा शुद्ध बनाता है और **अनुमाद्यः**=उस शुद्धता के अनुपात में ही हर्ष को प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमारे जीवन को आनन्दमय बनाता है। (ख) हमें शुद्ध करता है और (ग) प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्रधाम की प्राप्ति

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि। अरमिन्द्रस्य धाम्ने॥ ५॥

(१) **इन्दो**=हे सोम! **यत्**=जब तू **अद्रिभिः**=(those who adore) उपासकों से **सुतः**=उत्पन्न किया हुआ **पवित्रम्**=पवित्र हृदय की ओर **परिधावसि**=गतिवाला होता है तो **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **धाम्ने**=तेज के लिये **अरम्**=पर्याप्त होता है। अर्थात् तू इस उपासक को प्रभु की प्राप्ति करानेवाला होता है। (२) प्रभु की उपासना से हृदय पवित्र बनता है। हृदय की पवित्रता सोम के रक्षण का साधन बनती है, सुरक्षित सोम बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। यह सूक्ष्म बुद्धि प्रभु-दर्शन का साधन बनती है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक, हृदय की पवित्रता के द्वारा, सोम का रक्षण करनेवाला बनता

है। सुरक्षित सोम इसे प्रभु की तेजस्विता को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अद्भुतः

पव॑स्व वृत्रहन्तमो॒क्थेभि॑रनुमाद्यः॑। शुचि॑ः पाव॒को अद्भु॑तः॥ ६॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=वासनाओं को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले इन्द्र! आप हमें **पवस्व**=प्राप्त होइये गतमन्त्र के अनुसार उपासक सोमरक्षण के द्वारा प्रभु का दर्शन करता है। इस प्रभु से अब उपासक कहता है कि आप मुझे प्राप्त होइये। **उक्थेभिः अनुमाद्यः**=आप स्तोत्रों से प्रसन्न करने के योग्य हैं। वस्तुतः आपके स्तोत्र उपासक को आपकी तेजस्विता प्राप्त कराके आनन्दित करनेवाले होते हैं। (२) आप **शुचिः**=पूर्ण पवित्र हैं। **पावकः**=उपासक को पवित्र करनेवाले हैं। **अद्भुतः**=अद्भुत महिमावाले हैं, आपकी उपासना से उपासक का जीवन वासनाओं के विनाश से पवित्र बनता है।

भावार्थ—प्रभु उपासक के जीवन पवित्र करके आनन्दित करनेवाले हैं।

ऋषिः—**असितः काश्यपो देवलो वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

देवावीः अघशंसहा

शुचि॑ः पाव॒क उ॑च्यते॒ सोम॑ः सु॒तस्य॒ मध्व॑ः। दे॒वा॒वीर॑घशंस॒हा॥ ७॥

(१) **सुतस्य मध्वः**=उत्पन्न हुए-हुए इस मधुर जीवन का **सोमः**=यह सोम **पावकः**=पवित्र करनेवाला है। **शुचिः उच्यते**=यह सोम अत्यन्त पवित्र कहा जाता है। वस्तुतः सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही जीवन को मधुर बनाता है। (२) **देवावीः**=यह देवों का (अविता) प्रीणित करनेवाला है। दिव्य गुणों का हमारे में वर्धन करनेवाला है। **अघशंसहा**=अघ, अर्थात् पाप के शंसन करनेवाले आसुरभाव को यह विनष्ट करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन में दिव्यगुणों को प्रीणित करता है और आसुरभावों को विनष्ट करता है।

इन दृढ भी आसुरभावों को विनष्ट करनेवाला 'दृढ़च्युत' होता है, पाप का संघात (विनाश) करनेवाला यह 'आगस्त्य' है। यह सोम का स्तवन करते हुए कहता है कि—

द्वितीयोऽनुवाकः

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**दृळ्हच्युत आगस्त्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मरुद्भ्यः वायवे प्रदः

पव॑स्व दक्ष॒साध॑नो दे॒वेभ्य॑ः पी॒तये॑ हरे। म॒रुद्भ्यो॑ वा॒यवे॒ मद॑ः॥ १॥

(१) हे **हरे**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम! तू **दक्षसाधनः**=उन्नति को सिद्ध करनेवाला होकर **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये तू हो। **पीतये**=(पा रक्षणे) तू रक्षण के लिये हो, रोगकृमियों का विनाश करके तू हमारी रक्षा करनेवाला बन। (२) **मदः**=आनन्द को देनेवाला तू **मरुद्भ्यः**=प्राणों के लिये हो, और वायवे प्राणशक्ति की वृद्धि हो।

वायवे=तू उस गति के द्वारा सब बुराइयों का गन्धन-हिंसन करनेवाले प्रभु की प्राप्ति के लिये हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) उन्नति का साधक होता है, (ख) दिव्य गुणों का प्रापक होता है, (ग) रोगों से हमें बचाता है, (घ) प्राणशक्ति को बढ़ाता है, (ङ) अन्ततः प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**दृळहच्युत आगस्त्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

धर्मणा वायुमा विश

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमा विश॥ २॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **हितः**=शरीर के अन्दर ही स्थापित किया गया तू **योनिं अभि**=उस सब के उत्पत्ति-स्थान प्रभु की ओर हमें ले चलनेवाला हो। सोमरक्षण से ही बुद्धि की दीप्ति होकर हमें प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) हे सोम! तू **कनिक्रदत्**=उस प्रभु का आह्वान करता हुआ, **धर्मणा**=धारणात्मक कर्मों को करने के द्वारा **वायुम्**=उस गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाले प्रभु को **आविश**=प्राप्त हो, प्रभु में प्रवेश करनेवाला बन। वस्तुतः सोमरक्षण से (क) हम प्रभु-प्रवण बनकर प्रभु का स्तवन करनेवाले बनते हैं। (ख) धर्म के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, (ग) अन्ततः प्रभु को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सोम का रक्षण ज्ञानपूर्वक कर्मों में लगे रहने के द्वारा होता है। रक्षित सोम हमें प्रभु की ओर झुकाववाला बनाता है और हमें धर्म के कार्यों में प्रवृत्त करके प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**दृळहच्युत आगस्त्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वृषा-कविः

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः। वृत्रहा देववीतमः॥ ३॥

(१) **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **देवैः सं शोभते**=दिव्य गुणों के साथ शोभायमान होता है। यह हमारे में दिव्य गुणों का वर्धन करता है। **कविः**=हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाता है। एवं 'वृषा' सोम हमें शक्ति की प्राप्ति कराता है। 'कवि' सोम हमें क्रान्तप्रज्ञ बनानेवाला है। हमारे मनों को यह दिव्य गुणों से युक्त करता है। (२) **योनौ**=यह सोम हमें मूल उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **अधिप्रियः**=आधिक्येन प्रीतिवाला करता है। (२) **वृत्रहा**=प्रभु में प्रीति के द्वारा ही यह वासनाओं को विनष्ट करता है और **देववीतमः**=दिव्य गुणों को अधिक से अधिक प्राप्त करानेवाला है। वासनाओं के विनाश से ही सद्गुणों का विकास होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शक्तिशाली व ज्ञानी बनाता है।

ऋषिः—**दृळहच्युत आगस्त्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मोक्ष लोक प्राप्ति

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः। यत्रामृतास आसते॥ ४॥

(१) **विश्वा रूपाणि**=सब जीवित शरीरों में **आविशन्**=समन्तात् व्याप्त होता हुआ, प्रवेश करता हुआ यह सोम **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **याति**=गति करता है। यदि सोम शरीर में व्याप्त होता है तो यह उसे तेजस्वी बनाता है। पवित्र करता है। अतएव यह सोम **हर्यतः**=कमनीय है,

इसकी कामना हम सब को करनी चाहिए। (२) यह सोम अन्ततः हमें वहाँ प्राप्त कराता है (याति) **यत्र**=जहाँ कि **अमृतासः**=मुक्तात्मा **आसते**=निवास करते हैं। अर्थात् हमारे लिये यह ब्रह्मलोक की प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ हमें मोक्ष लोक का भागी बनाता है।

ऋषिः—**दृळहच्युत आगस्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कविक्रतुः

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक्। इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥ ५ ॥

(१) **अरुषः**=आरोचमान **सोमः**=सोम **पवते**=पवित्र करनेवाला होता है। यह सोम अपने रक्षक को तेजस्विता से दीप्त कर देता है। यह **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को **जनयन्**=प्रादुर्भूत करता है। इसके रक्षण से बुद्धि तीव्र होती है और हम ज्ञान की वाणियों के तत्त्वार्थ को देखनेवाले होते हैं। (२) **आयुषक्**=आयु के साथ मेल करनेवाला दीर्घजीवन की प्राप्ति का साधनभूत यह सोम **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **गच्छन्**=प्राप्त होता है। और **कविक्रतुः**=क्रान्तप्रज्ञ व शक्तिशाली है। मनुष्य को सूक्ष्म बुद्धिवाला व शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'तेजस्वी, तत्त्वद्रष्टा, दीर्घजीवी, सूक्ष्म बुद्धि व शक्ति-सम्पन्न' बनाता है।

ऋषिः—**दृळहच्युत आगस्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अर्कस्य योनिमासदम्

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे। अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ! बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले! **मदिन्तम**=अत्यन्त **हर्षयुक्त**=जीवन को उल्लासमय बनानेवाले सोम! तू **धारया**=अपनी धारण शक्ति से **पवित्रम्**=इस पवित्र हृदयवाले पुरुष को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त हो। (२) तू अन्ततः **अर्कस्य**=उस अर्चनीय प्रभु के **योनिम्**=स्थान को **आसदम्**=प्राप्त होने के लिये हो। तेरे रक्षण से सूक्ष्म बुद्धिवाले बनकर हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर हमें पवित्र बनाता हुआ प्रभु की प्राप्ति का पात्र बनाता है।

इस सोम को सुरक्षित करनेवाला व्यक्ति 'दार्ढच्युतः'=दृढ़ भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को च्युत करनेवाला तथा **इध्मवाहः**=ज्ञान की दीप्तियों को धारण करनेवाला बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है और कहता है कि—

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**इध्मवाहो दार्ढच्युतः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सूक्ष्म बुद्धि

तमेमृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि। विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥

(१) **तम्**=उस **वाजिनम्**=सम्पूर्ण शक्ति के आधारभूत सोम को **अदिते**=उस अविनाशी परमात्मा की **उपस्थे अधि**=उपासना में **अमृक्षन्त**=शुद्ध करते हैं। प्रभु की उपासना से वासनायें नहीं उत्पन्न होती। और वासनाओं के अभाव में सोम शुद्ध बना रहता है। (२) ये सोम रक्षक पुरुष **अण्व्या**=सूक्ष्म **धिया**=बुद्धि से **वि प्रासः**=अपना पूरण करनेवाले होते हैं। सोम रक्षण से

सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त करके अपनी सब कमियों को दूर करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासना से सोम (वीर्य) शुद्ध बना रहता है शरीर में सुरक्षित होकर यह सूक्ष्म बुद्धि को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—**इध्मवाहो दार्ळ्हच्युतः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्र और 'दिवः धर्ता

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम्। इन्दुं धर्तारमा दिवः॥ २॥

(१) **तं इन्दुम्**=उस शक्तिशाली सोम को **गावः**=ये ज्ञान की वाणियाँ **अभ्यनूषत**=स्तुत करती हैं। वेदवाणियों में सोम के महत्त्व का सविस्तार प्रतिपादन हुआ है। उस सोम का जो कि **सहस्रधारम्**=हजारों प्रकार से हमारा धारण करनेवाला है। **अक्षितम्**=जो हमें कभी क्षीण नहीं होने देता। (२) उस सोम का वेदवाणियाँ स्तवन करती हैं, जो कि **इन्दुम्**=हमें शक्तिशाली बनाता है और **दिवः आधर्तारम्**=ज्ञान का समन्तात् धारण करनेवाला है।

भावार्थ—सोम शतशः प्रकारों से हमारा धारण करता हुआ हमें क्षीण नहीं होने देता।

ऋषिः—**इध्मवाहो दार्ळ्हच्युतः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

धर्णसिं भूरिधायसम्

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि। धर्णसिं भूरिधायसम्॥ ३॥

(१) **तम्**=उस **वेधाम्**=हमारे जीवन में सब शक्तियों के विधाता (निर्माता) **पवमानम्**=पवित्र करनेवाले सोम को **मेधया**=मेधा बुद्धि की प्राप्ति के हेतु से **अधि द्यवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **अह्यन्**=प्रेरित करते हैं। जब सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है, तो यह मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इस प्रकार यह सोम बुद्धि की सूक्ष्मता का कारण बनता है। (२) **धर्णसिम्**=यह सोम धारक हैं। शरीर में व्याप्त होने पर अंग-प्रत्यंग की शक्ति को दृढ़ करता है। **भूरिधायसम्**=यह सोम खूब ही ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाला है (धेट् पाने)। बुद्धि को तीव्र करके यह सोम ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाला होता है।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम हमारी सब शक्तियों का निर्माण करनेवाला व बुद्धि को दीप्त करनेवाला है। इस प्रकार यह धारक व ज्ञानदुग्ध का पिलानेवाला होता है।

ऋषिः—**इध्मवाहो दार्ळ्हच्युतः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाचः पतिं-अदाभ्यम्

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः। पतिं वाचो अदाभ्यम्॥ ४॥

(१) **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणोंवाले ज्ञानी पुरुष के **संवसानम्**=निवास को उत्तम बनानेवाले **तं**=उस सोम को **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों को करने के द्वारा **भुरिजोः**=बाहुवों में **अह्यन्**=प्रेरित करते हैं। भुजाओं में व्याप्त होकर यह हमें शक्तिशाली बनाता है। इसको शरीर में सुरक्षित करने का उपाय यही है कि सदा हम कर्मों में लगे रहें। समझदारी के साथ कर्मों में लगे रहना वह साधन है जो कि हमें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) यह सोम **वाचः पतिम्**=वाणी का पति हैं, ज्ञान की वाणियों का स्वामी है। इसके रक्षण से हम ज्ञान की वाणियों को खूब समझने लगते हैं। **अदाभ्यम्**=यह सोम हिंसित नहीं होता, सोम के रक्षण के होने पर शरीर को रोगकृमि हिंसित नहीं कर पाते। एवं सोम हमारे लिये ज्ञानवर्धक व स्वास्थ्य

को सिद्ध करनेवाला होता है।

भावार्थ—कर्मों में लगे रहने से सोम का रक्षण होता है। यह ज्ञान की वाणियों का पति तथा किन्हीं भी रोगों से पीड़ित न होने देनेवाला है।

ऋषिः—**इध्मवाहो दाळर्हच्युतः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

हर्यतं भूरिचक्षसम्

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। हर्यतं भूरिचक्षसम्॥ ५॥

(१) **जामयः**=(जमतिः गतिकर्मा नि०) अपने कर्त्तव्य में लगे रहनेवाले गतिशील पुरुष **तम्**=उस **हरिम्**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम को **अद्रिभिः**=(आदृ=adore) उपासनाओं के द्वारा **सानौ अधि**=शिखर प्रदेश में, मस्तिष्क में **हिन्वन्ति**=प्रेरित करते हैं। उपासना साधन बनती है, वासनाओं से बचने का इस प्रकार वासना विनाश साधन बनता है सोमरक्षण का। सुरक्षित सोम शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ मस्तिष्क में पहुँचता है। यहाँ यह ज्ञानाग्नि को दीप्त कर देता है। (२) उस सोम को शिखर प्रदेश की ओर प्रेरित करते हैं, जो कि **हर्यतम्**=कमनीय है व हमें गतिमय बनानेवाला है तथा **भूरिचक्षसम्**=पालक व पोषक ज्ञानवाला है। यह हमें उस ज्ञान को प्राप्त कराता है जो कि हमारा पालक व पोषक बनता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण (क) क्रिया में लगे रहने से होता है, (ख) तथा उपासना द्वारा सुरक्षित सोम हमारे जीवन को कमनीय व ज्ञान-ज्योतिवाला बनाता है।

ऋषिः—**इध्मवाहो दाळर्हच्युतः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्राय मत्सरम्

तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम्। इन्दविन्द्राय मत्सरम्॥ ६॥

(१) **वेधसः**=(a learned man) ज्ञानी पुरुष, हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **तं त्वा**=उस तुझको **हिन्वन्ति**=अपने अन्दर, मस्तिष्क की ओर प्रेरित करते हैं। जो तू **गिरावृधम्**=ज्ञान की वाणियों से वृद्धि को प्राप्त होता है। ज्ञान की वाणियों में लगे रहने से हम सोम को सुरक्षित करनेवाले होते हैं। (२) हे **इन्दो**=सोम! उस तुझको हम शरीर में ही प्रेरित करते हैं तो तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरम्**=आनन्द का संचार करनेवाला है। सोमरक्षण करनेवाला पुरुष कभी निराश व उदास नहीं होता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जितेन्द्रिय पुरुष के जीवन को आनन्दमय बनाता है।

यह सोमरक्षक ज्ञानी पुरुष सर्वहित में प्रवृत्त हुआ-हुआ 'नृमेध' यज्ञ को करनेवाला 'नृमेध' ही बन जाता है। यह सोम की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

कविः अभिष्टुतः

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते। पुनानो घ्नन्नप स्त्रिधः॥ १॥

(१) **एषः**=यह सोम **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ होता है। सोम अपने रक्षक पुरुष को तीव्र बुद्धिवाला बनाता है। **अभिष्टुतः**=(अभि स्तुतं येन) इस सोम के रक्षणवाला पुरुष प्रातः-सायं प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला होता है। **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में यह **अधि तोशते**=आधि-व्याधिरूप

शत्रुओं का हिंसन करनेवाला होता है। (२) **पुनानः**=यह हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **स्त्रिधः**=सब कुत्सित वृत्तियों को **अपघ्नन्**=सुदूर विनष्ट करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) बुद्धि तीव्र होती है, (ख) प्रभु-स्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है, (ग) वासनाओं का संहार होता है, (घ) पवित्रता होती है, (ङ) सब बुराइयों का विनाश होता है।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दक्षसाधनः

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते। पवित्रे दक्षसाधनः॥ २॥

(१) **एषः**=यह सोम **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये होता है। **वायवे**=गतिशीलता के लिये होता है। **स्वर्जित्**=सब प्रकाशों व सुखों का विजय करनेवाला यह सोम **परिषिच्यते**=शरीर में चारों ओर सिक्त होता है। (२) **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में यह **दक्षसाधनः**=सब उन्नतियों को सिद्ध करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही ऐश्वर्य, गति व उन्नति का साधक है।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिवः-मूर्धा-वृषा

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः। सोमो वनेषु विश्ववित्॥ ३॥

(१) **एषः**=यह सोम **नृभिः**=(कर्मनेतृभिः सा०) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का प्रणयन करनेवालों से **विनीयते**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में प्राप्त कराया जाता है। यह **दिवः मूर्धा**=ज्ञान का शिखर बनता है और **सुतः**=सम्यक् उत्पन्न हुआ-हुआ **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला होता है। (२) यह **सोमः**=सोम (वीर्य) **वनेषु**=उपासकों में **विश्ववित्**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाला होता है (विद् लाभे)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान के दृष्टिकोण से हमें शिखर पर पहुँचाता है और शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गव्यु-हिरण्ययु

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः॥ ४॥

(१) **एषः**=यह सोम **गव्युः**=हमारे लिये प्रशस्त इन्द्रियों की कामना करता है, इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाता है। **अचिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता है, सोमरक्षण से मनुष्य प्रभु की ओर झुकाववाला होता है। **पवमानः**=यह हमारे जीवनों को पवित्र करता है। **हिरण्ययुः**=(हिरण्यं वै ज्योतिः) हमारे लिये ज्ञान-ज्योति की कामनावाला होता है। (२) **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला यह सोम **सत्राजित्**=महान् शत्रुभूत आसुर वृत्तियों को जीतनेवाला होता है और **अस्तृतः**=स्वयं कभी हिंसित नहीं होता। शरीर में सोम के रक्षित होने पर रोग इस पर कभी आक्रमण नहीं कर पाते।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमारी इन्द्रियों को उत्तम बनाता है, (ख) हमें प्रभु-प्रवण करता है, (ग) पवित्र करता है, (घ) ज्ञान-ज्योति को दीप्त करता है, (ङ) हमें रोगादि शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होने देता।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सूर्य से स्पर्धा

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **सूर्येण**=सूर्य से **हासते**=स्पर्धा करता है (हासतिः स्पर्धाकर्मणि)। अर्थात् सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें सूर्य के समान तेजस्वी बनाता है। **पवमानः**=यह हमें पवित्र करता है। **अधि द्यवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में सूर्य के समान ज्ञान-ज्योतिवाला होता है। (२) **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **मत्सरः**=आनन्द का संचार करनेवाला होता है और **मदः**=उल्लास का जनक होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सूर्य के समान दीप्तिवाला करता है।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृषा हरि

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः। पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **शुष्मी**=शत्रु-शोषक बलवाला है। **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में (अन्तराक्षि) मध्यमार्ग में यह **असिष्यदत्**=शरीर के अन्दर प्रवाहित होनेवाला होता है। अर्थात् जब हम अतिभोजन आदि से हटकर सदा नपी-तुली क्रियाओंवाले होते हैं तो यह हमारे अन्दर सुरक्षित रहता है। उस समय यह **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनाता है और **हरिः**=हमारे सब रोगों का हरण करता है। (२) **पुनानः**=पवित्र करता हुआ यह **इन्दुः**=सोम (वीर्य) **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **आ**=समन्तात् प्राप्त होता है। जितेन्द्रिय पुरुष इसका अपने में रक्षण करता है। रक्षित हुआ-हुआ यह उसके जीवन को आधि-व्याधियों से शून्य पवित्र बनाता है।

भावार्थ—सोम हमारे शरीर के अन्दर के शत्रुओं को नष्ट करता है।

इस सोम के रक्षण से बुद्धि भी तीव्र बनती है। सो सोम का रक्षक 'प्रियमेध' (प्रिया मेधा यस्मै) होता है। सोम का वर्णन करता हुआ प्रियमेध कहता है—

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'मनसस्पति' सोम

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः। अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **वाजी**=शक्ति को देनेवाला है। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले पुरुषों से **हितः**=अपने अन्दर स्थापित किया जाता है। शरीर के अन्दर स्थापित हुआ-हुआ यह सोम **विश्ववित्**=सब ज्ञानों को प्राप्त करानेवाला होता है तथा **मनसः पतिः**=मन का रक्षक होता है। सोम के सुरक्षित होने पर ज्ञानाग्नि तीव्र होती है तथा मन शुद्ध बनता है, मन में ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध नहीं उत्पन्न होते। (२) यह सोम **अव्यः**=रक्षण करनेवालों में उत्तम है और **वारम्**=सब वरणीय वस्तुओं को **विधावति**=विशेषरूप से प्राप्त कराता है। सोम के सुरक्षित होने पर सब धातुएँ ठीक बनी रहती हैं।

भावार्थ—लक्ष्य को ऊँचा बनानेवाले व्यक्ति सोम का रक्षण कर पाते हैं। यह सोम शक्ति, ज्ञान व पवित्र भावनाओं को देनेवाला होता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दिव्यता-तेजस्विता

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः। विश्वा धामान्याविशन्॥ २॥

(१) **एषः**=यह **सोमः**=सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **अक्षरत्**=संचरित होता है। सोम रक्षण के लिये हृदय की पवित्रता आवश्यक है। यह सोम **देवेभ्यः**=देवों के लिये, दिव्य गुणों के विकास के लिये **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। इसको रक्षण से हमारे जीवन में दिव्य गुणों का विकास होता है। (२) यह **विश्वा धामानि**=सब तेजों में **आविशन्**=प्रवेश करता हुआ होता है। सोम के रक्षण से अंग-प्रत्यंग तेजस्वी बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से दिव्य गुणों व तेजस्विता की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृत्रहा देववीतमः

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः। वृत्रहा देववीतमः॥ ३॥

(१) **एषः**=यह **देवः**=दिव्य गुणों के विकास का कारणभूत, **अमर्त्यः**=हमें रोगों के कारण असमय में न मरने देनेवाला सोम **अधियोनौ**=अपने उत्पत्ति-स्थान में, अर्थात् शरीर में ही **शुभायते**=शोभावाला होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सब प्रकार की उन्नतियों का साधक होता है। शरीर को पृथक् हुआ-हुआ यह मल मात्र रह जाता है। (२) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह **वृत्रहा**=सब ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करता है तथा **देववीतमः**=अधिक से अधिक दिव्य गुणों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शोभा की वृद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दशभिर्जामिभिर्यतः

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः। अभि द्रोणानि धावति॥ ४॥

(१) **एषः**=यह सोम **वृषा**=शक्तिशाली है, शक्ति को देनेवाला है। **कनिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता हुआ यह सोम **दशभिः**=दस **जामिभिः**=शक्तियों को प्रादुर्भूत करनेवाले प्राणों से **यतः**=संयत हुआ-हुआ **द्रोणानि अभि**=इन शरीर रूप पात्रों की ओर **धावति**=गतिवाला होता है, (२) प्राणापान के द्वारा सोम की ऊर्ध्वगति होती है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम हमें प्रभु-प्रवण करता है और शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—दस प्राणों के संयम से सोम शरीर में सुरक्षित होता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमें शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवमानः विचर्षणिः

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः। विश्वा धामानि विश्ववित्॥ ५॥

(१) **एषः**=यह सोम **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को **अरोचयत्**=दीप्त करता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान को दीप्त करता है। **पवमानः**=यह हमें पवित्र करनेवाला है।

विचर्षणिः=यह हमारा देखनेवाला व ध्यान करनेवाला है। हमें नीरोग रखता है। (२) यह हमारे अन्दर **विश्वा धामानि**=सब तेजों को (अरोचयत्) दीप्त करता है, और **विश्ववित्**=सब ज्ञानों को देनेवाला है (विद् ज्ञाने) अथवा सब आवश्यक वसुओं को प्राप्त कराता है (विद् लाभे)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान के सूर्य का उदय करता है और सब तेजों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शुष्मी अदाभ्यः

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति। देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **शुष्मी**=हमें शत्रु-शोषक बल को प्राप्त कराता है। **अदाभ्यः**=रोगकृमियों व वासनाओं से हिंसित नहीं होता। **सोमः**=यह सोम **पुनानः**=हमें पवित्र करता हुआ **अर्षति**=गति करता है। (२) **देवावीः**=सुरक्षित हुआ-हुआ सोम दिव्यगुणों का प्राणयिता होता है, दिव्य गुणों के द्वारा हमें तृप्त करता है और **अघशंसहा**=बुराई के शंसन करने की वृत्ति का विनाश करता है। हमारा अघों की ओर झुकाव नहीं रहता।

भावार्थ—सोम हमें 'सबल, नीरोग, पवित्र व दिव्य गुणयुक्त' बनाकर पाप से पराङ्मुख करता है।

पुनः नृमेध ऋषि कहता है—

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ओजस्विता व दिव्यगुण

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा। देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

(१) **अस्य**=इस **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए **वृष्णः**=शक्ति को देनेवाले सोम की **धाराः**=धारायें **प्र अक्षरन्**=शरीर में प्रवाहित होती हैं। (२) शरीर में प्रवाहित होने पर ये सोम की धारायें **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **देवान् अनु**=दिव्य गुणों को **अनु**=लक्ष्य करके **प्रभूषतः**=(प्रभवितुमिच्छतः) हमें शक्तिशाली बनाने की कामना करती हैं। यह सोम हमें ओजस्वी बनाता है। हमें शक्तिशाली बनाकर हमारे अन्दर दिव्य गुणों का वर्धन करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें ओजस्वी व दिव्य गुण-सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान-ज्योति व स्तुति

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा। ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

(१) **वेधसः**=बुद्धिमान् पुरुष, **गृणन्तः**=प्रभु-स्तवन करते हुए **कारवः**=उत्तमता से अपने कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाले **गिरा**=ज्ञान की वाणियों से इन ज्ञान की वाणियों के स्वाध्याय में लगकर **सप्तिम्**=इस शरीर में समवेत होनेवाले सोम को **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं (सप्=To connect)। सोम को परिशुद्ध रखने व शरीर में ही सम्बद्ध करने के तीन उपाय हैं—(क) प्रभु-स्तवन (गृणन्तः), (ख) कुशलता से कर्मों में लगे रहना (कारवः), (ग) स्वाध्याय (गिरा)। समझदार लोग इन उपायों से सोम को शरीर में ही व्याप्त करते हैं। (२) उस सोम को परिशुद्ध करते हैं जो कि **ज्योतिः जज्ञानम्**=ज्ञान-ज्योति को उत्पन्न कर रहा है तथा **उक्थ्यम्**=स्तुति के योग्य है अथवा स्तुति में उत्तम है। अर्थात् हमें सुरक्षित होने पर प्रभु-स्तुति-प्रवण करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के साधन हैं—(क) प्रभु-स्तवन, (ख) कुशलता से कार्यों में व्यापृत रहना, (ग) स्वाध्याय। सुरक्षित सोम हमारी ज्ञानदीप्ति को बढ़ाता है और हमें प्रभु की स्तुति की ओर झुकाता है।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उक्थ्य समुद्र का वर्धन

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो। वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्॥ ३॥

(१) हे **प्रभूवसो**=प्रभूत वसुओंवाले सोम, बहुत निवासक तत्त्वों से युक्त सोम! **पुनानाय**=गत मन्त्र के अनुसार 'स्वाध्याय, क्रियाशीलता व स्तवन' द्वारा तुझे पवित्र करनेवाले पुरुष के लिये **ते**=तेरे **तानि**=वे ज्ञान व स्तवन तेरे द्वारा दीप्त की गई ज्ञानाग्नि व उत्पन्न की गई प्रभु-स्तवन की वृत्ति **सुषहा**=अच्छी तरह शत्रुओं को कुचलनेवाली हैं। (२) हे सोम! तू **उक्थ्यम्**=उस स्तुति के योग्य **समुद्रम्**=सदा आनन्द के साथ (स-मुद्) निवास करनेवाले प्रभु को **वर्धा**=हमारे अन्दर बढ़ा। हमारे हृदयों में प्रभु के प्रकाश का वर्धन हो। हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त हों और उपासना में आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—सोम के सुरक्षित होने पर हम दीप्त ज्ञानवाले बनकर शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हों और उपासना में आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वसु विजय व द्वेष निराकरण

विश्वा वसूनि संजयन्पवस्व सोम धारया। इनु द्वेषांसि सध्र्यक्॥ ४॥

(१) हे **सोम**=सोम (वीर्यशक्ते!) **विश्वा वसूनि**=सब वसुओं को **संजयन्**=विजय करते हुए, निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों को हमारे लिये प्राप्त कराते हुए **धारया**=अपनी धारणशक्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। सोम के रक्षण से सब वसुओं की हमें प्राप्ति हो। (२) इन वसुओं को प्राप्त कराके **द्वेषांसि**=सब द्वेष की वृत्तियों को **सध्र्यक्**=साथ-साथ ही, अर्थात् इकट्ठे ही **इनु**=हमारे से सुदूर प्रेरित कर। सोम के रक्षण से हम सबल बनें और द्वेष की भावनाओं से ऊपर उठें।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब वसुओं की प्राप्ति होती है और सब द्वेष दूर हो जाते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

निन्दनीय बातों से दूर

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित्। निदो यत्र मुमुच्महे॥ ५॥

(१) हे सोम! तू **समस्य कस्य चित्**=सब किसी **अररुषः**=न देने की वृत्तिवाले आत्मम्भरि असुर के **स्वनात्**=शब्दों से 'इदमद्य मया लब्धम्, इमं प्राप्स्ये मनोरथम्'=ये तो मिल गया, ये भी मनोरथ पूर्ण हो जाएगा 'असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये चापरानपि' उस शत्रु को तो मार दिया, औरों को भी मार डालूँगा। और तव 'ईश्वरोहं' मैं ही तो ईश्वर हूँगा 'कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया' मेरे समान होगा ही कौन? इन असुरों की बातों से **नः**=हमें **सुरक्षा**=अच्छी प्रकार बचा। हम असुरों के इन शब्दों से प्रकट होनेवाले विचारों से दूर रहें। (२) हे सोम! तू हमें आसुर भावों से दूर करके वहाँ पहुँचा **यत्र**=जहाँ कि **निदाः**=सब निन्दात्मक बातों से **मुमुच्महे**=हम अपने को मुक्त कर पायें। सब निन्दनीय आसुरभावों से ऊपर उठकर हम दिव्य जीवनवाले बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सब आसुरभावों से बचानेवाला होता है, निन्दनीय कर्मों से हम पृथक् हो जाते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युमान् शुष्म

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया। द्युमन्तं शुष्ममा भर॥ ६॥

(१) **इन्दो**=हे सोम! तू **पार्थिवं रयिम्**=इस शरीर रूप पृथिवी के दृढ़ता व शक्ति रूप धन को **आपवस्व**=हमें सर्वथा प्राप्त करा। इसी प्रकार **दिव्यं** (रयिं)=मस्तिष्क रूप द्युलोक के ज्ञानरूप धन को भी **धारया**=अपनी धारक शक्ति से हमारे लिये प्राप्त करा। (२) इस प्रकार **द्युमन्त**=प्रशस्त ज्ञान की ज्योतिवाले **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **आभर**=तू हमारे लिये प्राप्त करानेवाला हो। सोमरक्षण से हमारे में 'ब्रह्म व क्षत्र' दोनों का विकास हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें दृढ़ शरीर व दीप्त मस्तिष्क बनाता है।

दृढ़ शरीर व दीप्त मस्तिष्क बनकर यह सब शत्रुओं का भेदन करनेवाला 'भिन्दु' होता हुआ 'बिन्दु' कहलाता है। सोम का रक्षक होने से भी यह सोम का पुतला 'बिन्दु' नामवाला ही हो जाती है (बिन्दुः सोम 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्')। यह कहता है—

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाणी का प्रकाश

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन्। पुनानो वाचमिष्यति॥ १॥

(१) **शुष्मिणः**=शत्रु-शोषक बलवाले **अस्य**=इस सोम की **धाराः**=धारायें **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **वृथा**=अनायास ही **प्र अक्षरन्**=प्रकर्षेण क्षरित होती हैं। हृदय की पवित्रता सोम रक्षण का कारण बनती है। सोम शरीर में सुरक्षित होकर अंग-प्रत्यंग को शक्तिशाली बनाता है। (२) **पुनानः**=यह सोम हमारे जीवनों को और अधिक पवित्र करता हुआ **वाचं इष्यति**=प्रभु की वाणी को हमारे में प्रेरित करता है। पवित्र हृदय में प्रभु की वाणी का प्रकाश होता ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर को शक्तिशाली बनाता है (शुष्मिणः), हृदय को पवित्र करता है (पुनानः), ज्ञान की वाणियों को प्रेरित करता है।

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वग्नु+इन्द्रिय (ज्ञान+शक्ति)

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत्। इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम्॥ २॥

(१) **इन्दुः**=यह सोम **सोतृभिः**=सोम का सम्पादन करनेवालों से **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ **हियानः**=शरीर में ही प्रेयमाण होता है। शरीर में प्रेरित होने पर यह **कनिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करनेवाला होता है। सुरक्षित सोमवाले पुरुष की प्रवृत्ति प्रभु-स्मरण की ओर होती है। (२) यह सोम **वग्नुम्**=ज्ञान की वाणियों को तथा **इन्द्रियम्**=शक्ति को **इयर्ति**=हमारे में प्रेरित करता है। सोम के सुरक्षित होने पर ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और हम ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार एक-एक इन्द्रिय इस सोम की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनती है, सुरक्षित सोम ही इन्हें शक्ति-सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नृषाह्य शुष्म

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम्। पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥

(१) **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **धारया**=अपनी धारण शक्ति से **नः**=हमारे लिये **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। (२) उस बल को प्राप्त करा, जो कि **नृषाह्यम्**=सब मनुष्यों का पराभव करनेवाला है, जो हमें 'ईश्वरभाव' से युक्त करता है, हमें शासन शक्ति प्राप्त कराता है। **वीरवन्तम्**=जो बल वीर पुत्रोंवाला है, हमारे सन्तानों को भी वीर बनानेवाला है। **पुरुस्पृहम्**=पालक व पूरक होता हुआ स्पृहणीय है। यह बल शरीर का पालन करता है, मन का पूरण करता है और अतएव स्पृहणीय होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'नृषाह्य-वीरवान्-पुरुस्पृह' बल को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अभि द्रोणानि

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत्। अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥

(१) **सोमः**=सोम **धारया**=अपनी धारणशक्ति के साथ **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **प्र अति असिष्यदत्**=खूब ही शरीर में प्रवाहित होता है। (२) यह सोम स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर रूप **द्रोणानि**=पात्रों में **अभि आसदम्**=आभिमुख्येन प्राप्त होने के लिये होता है। शरीरों में स्थित होता हुआ यह उन्हें अपनी-अपनी शक्ति से युक्त करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम सब कोशों को पवित्र करनेवाला होता है।

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'मधुमत्तम-हरि' सोम

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

(१) **अप्सु**=कर्मों में **मधुमत्तमम्**=अत्यन्त माधुर्यवाले, सब कर्मों को अत्यन्त मधुर बनानेवाले, **हरिम्**=सब रोगों व मलों का हरण करनेवाले **त्वा**=तुझ को **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा (अद्रि=adore) **हिन्वन्ति**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। (२) हे **इन्दो**=सोम! अन्दर प्रेरित हुआ-हुआ तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पीतये**=(पानं पीतिः) रक्षण के लिये होता है। तू इस जितेन्द्रिय पुरुष को रोगों व वासनाओं का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम रोगों का हरण करने से 'हरि' होता है। यह हमारे सब कार्यों में माधुर्य को ले आता है। प्रभु की उपासना से यह सोम शरीर में सुरक्षित होता है।

ऋषिः—**बिन्दुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'चारु मत्सर' सोम

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥

(१) **मधुमत्तमम्**=हमारे सब कर्मों को अत्यन्त मधुर बनानेवाले **सोमम्**=सोम को **वज्रिणे**=क्रियाशीलता रूप वज्रवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **सुनोता**=उत्पन्न करो। सोम का रक्षण

क्रियाशील जितेन्द्रिय पुरुष ही कर पाता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम उसके सब कर्मों व व्यवहारों को मधुर बनाता है। (२) इस **चारुम्**=जीवन को सुन्दर बनानेवाले, **मत्सरम्**=आनन्द का संचार करनेवाले सोम को **शर्धाय**=बल के लिये सम्पादित करो। यह सोम ही तुम्हें वह शक्ति प्राप्त करायेगा जो कि शत्रुओं का संहार करती है। (शृध् to cutoff, hurt)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे शत्रुओं का संहार करता है और हमारे जीवन को मधुर बनाता है।

सोमरक्षण से प्रशस्त इन्द्रियोंवाला यह 'गो-तम' बनता है। यह कहता है कि—

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

चेतनं रयिम्

प्र सोमा॑सः स्वा॒ध्य१॒ पव॑मानासो अक्रमुः। र॒यिं कृ॑ण्वन्ति॒ चेत॑नम्॥ १॥

(१) **सोमासः**=सोमकण **प्र अक्रमुः**=शरीर में प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं। शरीर में गतिवाले होकर ये **स्वाध्यः**=उत्कृष्ट धी-बुद्धि व ज्ञानवाले होते हैं 'सुध्मानाः सुकर्माणो वा सा०' उत्तम ध्यान व कर्मोंवाले होते हैं। **पवमानासः**=ये हमारे जीवनों को पवित्र करते हैं। (२) सुरक्षित होने पर ये **चेतनं रयिम्**=ज्ञान धन को **कृण्वन्ति**=हमारे लिये करनेवाले होते हैं। सोमकण ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। इस दीप्त ज्ञानाग्नि से ज्ञानधन प्राप्त होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें उत्तम ध्यान कर्म व ज्ञानवाला बनाता है। हमें यह पवित्र करता है।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**यवमध्यागायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'द्युम्नवर्धन' सोम

दि॒वस्पृ॑थि॒व्या अधि॑ भ॒वेन्दो॑ द्युम्न॒वर्ध॑नः। भवा॑ वाजा॑नां॒ पतिः॑ ॥२॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के तथा **पृथिव्याः**=शरीर रूप पृथिवी के **अधि**=आधिक्येन **द्युम्नवर्धनः**=द्योतमान धन का बढ़ानेवाला **भव**=हो। मस्तिष्क में तू ज्ञान को बढ़ा, शरीर में शक्ति को। इस प्रकार मस्तिष्क भी ज्योतिर्मय बनता है और शरीर तेजस्वी। (२) हे सोम! तू **वाजानां पतिः**=शक्तियों का रक्षक **भवा**=हो। सुरक्षित सोम से ही सब अंग-प्रत्यंगों की शक्ति बढ़ती है।

भावार्थ—हे सोम! तू सुरक्षित होकर सब शक्तियों का रक्षण करनेवाला हो।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'प्राणायाम व स्वाध्याय' से सोमरक्षण

तुभ्यं॒ वाता॑ अभि॒प्रिय॒स्तुभ्य॑मर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः। सोम॒ वर्ध॑न्ति ते॒ महः॑ ॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **तुभ्यम्**=तेरे लिये **वाताः**=प्राण **अभिप्रियः**=अभिप्रीणित करनेवाले होते हैं। प्राणायाम के द्वारा शरीर में इन सोमकणों की ऊर्ध्वगति होती है। इसी प्रकार **तुभ्यम्**=तेरे लिये **सिन्धवः**=ज्ञान के समुद्र **अर्षन्ति**=गतिवाले होते हैं। जितना-जितना हम स्वाध्याय की वृत्तिवाले बनते हैं, उतना-उतना ही हम सोमरक्षण के योग्य बनते हैं। स्वाध्याय से हम व्यसनों से बचे रहते हैं। यह व्यसनों से रक्षण हमारे लिये सोमरक्षण का साधन बन जाता है। सुरक्षित सोम

इस ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उसे दीप्त करता है। एवं प्राणायाम व स्वाध्याय से सोम का रक्षण होता है। (२) **सोम**=हे सोम! ये प्राणायाम और स्वाध्याय **ते महः**=तेरे तेज को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम हमें तेजस्वी बनाता है।

भावार्थ—प्राणायाम व स्वाध्याय के द्वारा सोम का रक्षण करके हम तेजस्वी बनें।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाजयुक्त जीवन

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे॥ ४॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू गत मन्त्र के अनुसार प्राणायाम व स्वाध्याय के द्वारा शरीर में **आप्यायस्व**=आप्यायित हो। **ते**=तेरा **वृष्ण्यम्**=बल **विश्वतः समेतु**=सब ओर शरीर के अंग-प्रत्यंग में संगत हो। (२) तू **वाजस्य**=शक्ति के **संगथे**=मेल के निमित्त **भवा**=हो। तेरे सुरक्षित होने से हमारा जीवन वाजवाला (vigorous) शक्तिशाली हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को वाजी (vigorous) बनाता है।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोम्य भोजन

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम्। वर्षिष्ठे अधि सानवि॥ ५॥

(१) हे **बभ्रो**=खूब ही भरण-पोषण करनेवाले सोम! **तुभ्यम्**=तेरे लिये **गावः**=गौवें **अक्षितम्**=जिन से वीर्य का क्षय नहीं होता ऐसे **घृतम्**=घृत को व **पयः**=दूध को **दुदुह्रे**=दोहती हैं। अर्थात् गोघृत व गोदुग्ध वे सोम्य भोजन हैं, जिनसे कि शरीर में सोम सुरक्षित रहता है। (२) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम **वर्षिष्ठे**=सर्वोच्च **अधिसानवि**=शिखर प्रदेश पर पहुँचता है। यह वर्षिष्ठ सानु शरीर में मस्तिष्क है। मस्तिष्क में पहुँचा हुआ यह सोम वहाँ ज्ञानाग्नि को खूब दीप्त करता है। यह दीप्त ज्ञान ब्रह्म का हमारे लिये प्रकाश करता है।

भावार्थ—गोघृत व गोदुग्ध वे सोम्य भोजन हैं जो हमारे में वीर्य को सुरक्षित रखते हैं।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

स्वायुध सोम

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्। इन्दो सखित्वमुश्मसि॥ ६॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! **वयम्**=हम **ते**=तेरे **सखित्वम्**=सखित्व को, मित्रता को **उश्मसि**=चाहते हैं। हम तुझे अपने शरीर में ही सुरक्षित करते हैं। (२) जो तू **भुवनस्य पते**=पृथिवी (शरीर), अन्तरिक्ष (हृदय) व द्युलोक (मस्तिष्क) का पति-स्वामी व रक्षक है। और **स्वायुधस्य**=उत्तम 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों (शस्त्रों) वाले **सतः**=होते हुए तेरे हम मित्र बनते हैं। सुरक्षित सोम से 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' सभी उत्तम बनते हैं। ये हमारे लिये जीवन-संग्राम में विजय को प्राप्त करानेवाले उत्तम आयुध हैं। सोम ही इन्हें ऐसा बनाता है।

भावार्थ—सोम 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप उत्तम आयुधों को प्राप्त कराता है, शरीर, हृदय व मस्तिष्क का रक्षण करता है।

यह सोम हमें 'श्यावाश्व' गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला बनाता है। यह श्यावाश्व कहता है—

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**श्यावाश्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

श्रवसे विदथे

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः। सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

(१) **सोमासः**=शरीरस्थ सोम (=वीर्य) कण **मदच्युतः**=(मदस्राविणः) हमारे जीवनों में उल्लास को पैदा करनेवाले हैं। **मघोनः**=(मघ=मख) यज्ञशील **नः**=हमारे प्रति **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए ये सोमकण **अक्रमुः**=प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं। यज्ञशीलता हमें विषय-वासनाओं से बचाती है और इस प्रकार हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। (२) इस प्रकार यज्ञशीलता से शरीर में सुरक्षित हुए-हुए सोमकण **श्रवसे**=यशस्वी जीवन के लिये तथा **विदथे**=ज्ञान प्राप्ति के लिये होते हैं। सोम के रक्षण से हमारे बल उत्तम होते हैं, वे कर्म हमारे यश का कारण बनते हैं। तथा इस सोमरक्षण से हमारे ज्ञान की भी वृद्धि होती है। सोम कर्मेन्द्रियों को सशक्त तथा ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञानदीप्त बनाता है।

भावार्थ—यज्ञशीलता के द्वारा शरीर में सुरक्षित सोम हमारे उल्लास का कारण होता हुआ हमारे कर्मों को यशस्वी बनाता है तथा हमारे ज्ञान को दीप्त करता है।

ऋषिः—**श्यावाश्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्राय-पीतये

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

(१) **आत्**=अब **ईम्**=निश्चय से **त्रितस्य**='काम-क्रोध-लोभ' को जीतनेवाले (त्रीन् तरति) अथवा 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का विकास करनेवाले (त्रीन् तनोति) उपासक की **योषणः**=वाणियाँ ('योषा हि वाक्' श० १।४।४।४) **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा (आदृ adore) **इन्दुम्**=शक्ति को देनेवाले **हरिम्**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=शरीर में ही प्रेरित करती है। 'ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु का उपासन' हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। उपासना से वृत्ति वासनामय नहीं होती। यह शुद्ध वृत्ति ही सोम का रक्षण कराती है। (२) यह सुरक्षित सोम **इन्द्राय**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिये होता है तथा **पीतये**=रक्षा के लिये होता है। इहलोक के दृष्टिकोण से यह हमें नीरोग बनाता है तथा परलोक के दृष्टिकोण से यह हमें प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलाता है।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु का उपासन हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाता है। रक्षित सोम हमें प्रभु की ओर ले चलता है और हमारा रक्षण करनेवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गणं-मतिम्

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्। अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

(१) **अत्**=अब **ईम्**=निश्चय से **हंसः**=हमारे सब रोगों का हनन करनेवाला (हन्ति इति हंसः) गत मन्त्र का हरि (हरति) यह सोम **विश्वस्य**=सोम को शरीर में ही प्रविष्ट करनेवाले पुरुष के **यथा**=जैसे **गणम्**=इन्द्रिय गणों को उसी प्रकार **मतिम्**=बुद्धि को **अवीवशत्**=निरन्तर चाहता है। शरीर में व्याप्त होने पर यह सोम कर्मेन्द्रियों को व ज्ञानेन्द्रियों को तथा बुद्धि को उत्तम बनाता है। (२) **अत्यः न**=यह सोम निरन्तर गतिवाले घोड़े के समान होता है। यह हमें खूब ही

क्रियाशील बनाता है। **गोभिः**=यह ज्ञान की वाणियों से **अज्यते**=शरीर में अलंकृत किया जाता है।

भावार्थ—हम ज्ञान प्राप्ति में लगे रहें, तो सोम शरीर में सुरक्षित रहता है।

ऋषिः—**श्यावाश्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शरीर व मस्तिष्क का ध्यान करना

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि। सीदन्नृतस्य योनिमा॥ ४॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **उभे**=दोनों द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **अवचाकशत्**=देखता हुआ दोनों का ध्यान करता हुआ तू **अर्षसि**=शरीर में गतिवाला होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ तू **मृगः न**=जैसे आत्मान्वेषण की वृत्तिवाला होता है, उसी प्रकार **तक्तः**=(To rush upon) रोगों पर धावा बोलनेवाला होता है, रोगों पर आक्रमण करके उन्हें दूर करनेवाला होता है। (२) हे सोम! तू **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **सीदन्**=स्थित होता हुआ **आ**=हमें प्राप्त हो। अर्थात् तू हमें प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर, ऋत के मार्ग पर चलाता हुआ प्रभु को प्राप्त करानेवाला बन। प्रभु ऋत के उत्पत्ति-स्थान हैं। यह सोमरक्षक ऋत को अपनाता हुआ सब कार्यों को ठीक समय व ठीक स्थान पर करता हुआ प्रभु को प्राप्त होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ बनाता है। यह रोगों पर आक्रमण करता है, अन्ततः हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**श्यावाश्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु-स्मरण व युद्ध

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम्। अगन्नाजिं यथा हितम्॥ ५॥

(१) **गावः**=ज्ञान की वाणियाँ व इन्द्रियाँ उसी प्रकार **अभि अनूषत**=दिन के दोनों ओर प्रातः-सायं प्रभु का स्तवन करती हैं, **इव**=जैसे कि कोई **योषा**=स्त्री **प्रियं जारम्**=अपने प्रिय व्यक्ति को स्तुत करती है। वह स्त्री जैसे अपने प्रिय का सर्वभावेन स्मरण करती है, इसी प्रकार इस उपासक की वाणियाँ प्रभु का ही स्तवन करती हैं। (२) ये **यथा**=जैसे प्रभु-स्मरण करते हैं, उसी प्रकार **हितं आजिम्**=हितकर संग्राम को वासनाओं के साथ चलनेवाले सात्त्विक संग्राम को **अगन्**=प्राप्त होते हैं। यह संग्राम मनुष्य का वास्तविक हित करनेवाला है, यही सात्त्विक संग्राम है। इस संग्राम में प्रभु-स्मरण से ही तो विजय होती है।

भावार्थ—इस प्रकार प्रातः-सायं प्रभु-स्मरण करते हुए हमें इस सात्त्विक संग्राम को करते चलना है।

ऋषिः—**श्यावाश्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्युमद्यशः, सनिं मेधां उत श्रवः

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च। सनिं मेधामुत श्रवः॥ ६॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु-स्मरण के साथ सात्त्विक संग्राम के द्वारा वासनाओं का पराजय करने पर सुरक्षित हुए-हुए सोम! तू **अस्मे**=हमारे लिये **द्युमद्यशः**=ज्योतिर्मय यश को **धेहि**=धारण कर। तेरे द्वारा हमारी ज्ञान-ज्योति बढ़े तथा हम यशस्वी कार्यों को ही करनेवाले हों। (२) **मघवद्भ्यः**=यज्ञशील पुरुषों के लिये **च**=और **मह्यम्**=मेरे लिये **सनिं मेधाम्**=धनों का उचित संविभाग करनेवाली बुद्धि को **उत**=और **श्रवः**=ज्ञान को धारण कर। सुरक्षित सोम से हमें बुद्धि

व ज्ञान प्राप्त हो।

भावार्थ—सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे जीवन को 'ज्योतिर्मय, यशस्वी, मेधावाला तथा ज्ञान-सम्पन्न' बनाये।

सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही हमें 'त्रित' बनाता है, 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों को तराता है। यही हमारे 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का विकास करता है (त्रीन् तनोति)। यह त्रित ही अगले सूक्त का ऋषि है—

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

विपश्चित् सोम

प्र सोमा॑सो विप॒श्चितो॒ऽपां न य॑न्त्यू॒र्मयः॑। वना॑नि महि॒षाइ॑व॥ १॥

(१) **विपश्चितः**=हमारे जीवनों में ज्ञानों का वर्धन करनेवाले **सोमासः**=सोमकण **प्रयन्ति**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हमें प्राप्त होते हैं, **न**=जैसे कि **अपां ऊर्मयः**=प्रजाओं को 'भूख-प्यास, शोक-मोह व जरा-मत्यु' रूप छह ऊर्मियाँ प्राप्त होती हैं। सामान्य मनुष्य को भूख-प्यास अवश्य लगती ही है। इसी प्रकार हमें सोमकण अवश्य प्राप्त हों। (२) सोमकण हमें इस प्रकार प्राप्त हों **इव**=जैसे कि **महिषाः**=(मह पूजायाम्) पूजा की वृत्तिवाले लोग **वनानि**=वनों को, एकान्त देशों को प्राप्त होते हैं। उपासक एकान्त देश को प्राप्त करके प्रभु के उपासन में प्रवृत्त होता है। हमें भी सोम प्राप्त होकर इसी प्रकार उपासना की वृत्तिवाला बनायें।

भावार्थ—सोमकणों को शरीर में सुरक्षित रखकर हम अपने ज्ञानों का वर्धन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोमान् वाज

अ॒भि द्रोणा॑नि ब॒भ्रवः॑ शु॒क्रा ऋ॒तस्य॒ धार॑या। वाजं॒ गोम॑न्तमक्षरन्॥ २॥

(१) **बभ्रवः**=हमारा धारण करनेवाले, **शुक्राः**=ज्ञान की दीप्ति को बढ़ानेवाले ये वीर्यकण **ऋतस्य धारया**=ऋत के धारण के साथ—'जो भी ठीक है' उसे प्राप्त कराते हुए **द्रोणानि अभि**=शरीर रूप पात्रों में प्राप्त होते हैं। शरीर में सुरक्षित होने पर ये सोमकण (क) हमारा धारण करते हैं, (ख) ज्ञानदीप्ति का वर्धन करते हैं, (ग) 'जो चीज ठीक है' उसे हमारे में सुरक्षित करते हैं। (२) ये सोमकण **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजम्**=बल को **अक्षरन्**=हमारे में क्षरित करते हैं। 'गोमन्तं' शब्द का अर्थ 'प्रशस्त इन्द्रियोंवाले' भी किया जा सकता है। सोम हमारी इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाता है, हमें बल को प्राप्त कराते हैं तथा हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं।

भावार्थ—शरीर में धारित सोम (क) हमारा धारण करते हैं, (ख) हमारी दीप्ति को बढ़ाते हैं, (ग) हमें ठीक रखते हैं, (घ) बल का वर्धन करते हैं, (ङ) ज्ञान को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्र से महेन्द्र तक

सु॒ता इन्द्रा॑य वा॒यवे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑। सोमा॑ अर्षन्ति॒ विष्ण॑वे॥ ३॥

(१) **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम **इन्द्राय**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता, बल के कर्मों को करनेवाले

इन्द्र के लिये होते हैं, ये हमें इन्द्र बनाते हैं। (२) **वायवे**=(वा गतिगन्धनयोः) ये हमें गति के द्वारा सब बुराइयों का गन्धन (=हिंसन) करनेवाले बनाते हैं। (३) **वरुणाय**=ये हमारे से द्वेष आदि का निवारण करते हैं (निवारयति) सोम का रक्षण होने पर हमारे मनों में 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' नहीं उत्पन्न होते। (४) **मरुद्भ्यः**=(मरुतः प्राणाः) ये हमारे जीवनों में प्राणशक्ति का वर्धन करते हैं। वस्तुतः सोम ही प्राण है। सोमरक्षण से ही प्राणशक्ति बनी रहती है। (५) ये **सोमाः**=सोमकण **विष्णवे**=उस सर्वव्यापक प्रभु के लिये **अर्षन्ति**=गतिवाले होते हैं, इनके रक्षण से अन्ततः हमें प्रभु की प्राप्ति होती है। ये हमें 'विष् व्याप्तौ' व्यापक हृदयवाला बनाते हैं यह व्यापकता ही (उदारता ही) धर्म है 'उदारं धर्ममित्याहुः'। धर्मात्मा होते हुए हम प्रभु को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सोमकण सुरक्षित होने पर हमें 'सबल इन्द्रियोंवाला, गतिशील, निर्द्वेष, प्राणशक्ति-सम्पन्न व प्रभु को प्राप्त करनेवाला' बनाते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

तिस्रो वाचः

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोम के शरीर में सुरक्षित होने पर **तिस्रः वाचः**='ऋग्-यजु-साम' रूप तीनों वाणियाँ हमारे हृदयों में **उदीरते**=उच्चरित होती हैं। हम मस्तिष्क में विज्ञान से दीप्त होते हैं, हाथों से यज्ञात्मक कर्मों को करनेवाले बनते हैं और हृदय में उपासना की वृत्तिवाले होते हैं। (२) इस सोम के रक्षित होने पर **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाली **गावः**=ये वेदवाणीरूप गौवें (ज्ञान की वाणियाँ) **मिमन्ति**=हमारे अन्दर शब्दायमान होती हैं। वस्तुतः **हरिः**=यह दुःखों का हरण करनेवाला सोम **कनिक्रदत्**=गर्जना करता हुआ, प्रभु का उपासन करता हुआ **एति**=हमें प्राप्त होता है। सोमरक्षण से हमारी वृत्ति प्रभु की उपासना की बनती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम 'ऋग्-यजु-साम' रूप वाणियों को प्राप्त करते हैं, वेदवाणीरूप गौ हमारे में शब्दायमान होती है। हम प्रभु का नाम-स्मरण करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

स्वाध्याय द्वारा सोम शुद्धि

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः। मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम्॥ ५॥

(१) **ब्रह्मीः**=ब्रह्म का प्रतिपादन करनेवाली इन ज्ञान की वाणियों का **अभि**=लक्ष्य करके उपासक **अनूषत**=उस प्रभु का स्तवन करते हैं। ये वेदवाणियाँ **यह्वी**=महान् हैं, इनके द्वारा प्रभु की ओर जाया जाता है और प्रभु को पुकारा जाता है (यातश्च हूतश्च नि०)। ये **ऋतस्य मातरः**=हमारे जीवनों में ऋत का निर्माण करनेवाली हैं। हमारे से अनृत को दूर करके ये हमें ऋत की ओर ले चलती हैं। (२) ये **दिवः शिशुम्**=ज्ञान के तीव्र करनेवाले (शो तनूकरणे) ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाले सोम को **मर्मृज्यन्ते**=खूब ही शुद्ध कर देती हैं। 'तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्'। सोम शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ मस्तिष्क में पहुँचता है। सब से प्रथम इस शरीर रूप पृथिवी में यह नीरोगता व दृढ़ता को जन्म देता है। फिर दूसरे हृदयान्तरिक्ष में यह निर्मलता को, निर्द्वेषता आदि को लानेवाला होता है। अन्ततः तीसरे द्युलोक में यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। वेदवाणियाँ इस सोम को शुद्ध रखती हैं। वेदवाणियों का अध्येता पुरुष वासनाओं से बचा रहता है। यह वासनाओं से बचाव ही सोम को शुद्ध रखता है।

भावार्थ—हम स्वाध्याय में प्रवृत्त रहें जिससे हमारा सोम शुद्ध बना रहे।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रायः समुद्रान् चतुरः

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **चतुरः**=चारों **सहस्रिणः**=सहस्र संख्यावाले व (सहस्) आनन्द से युक्त **रायः समुद्रान्**=ज्ञानैश्वर्य के समुद्रों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **विश्वतः**=सब ओर से **आपवस्व**=प्राप्त करा। (२) चार वेद ही चार ज्ञानैश्वर्य के समुद्र हैं। सोम हमें इन्हें प्राप्त कराये। सोम के रक्षित होने पर ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और हम इन ज्ञान-समुद्रों को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। इन ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करके हमारा जीवन आनन्दमय होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें सोमरक्षण द्वारा दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनाकर चारों ज्ञानैश्वर्य के समुद्र रूप वेदों को प्राप्त करायें।

इनको प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही त्रित बनता है, तीनों का 'शरीर, मन व बुद्धि का' विकास करनेवाला (त्रीन् तनोति) अथवा काम-क्रोध-लोभ तीनों को तैरनेवाला 'त्रीन् तरति'। यह त्रित कहता है—

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

धारया-तना

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति। रुजद् दृळ्हा व्योजसा॥ १॥

(१) **सुवानः**=शरीर में उत्पन्न किया जाता हुआ **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **धारया**=धारणशक्ति के हेतु से तथा **तना**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से **हिन्वानः**=शरीर के अन्दर प्रेरित किया जाता हुआ **प्रअर्षति**=प्रकर्षेण प्राप्त होता है। शरीर में धारण किया हुआ यह सोम हमारा धारण करता है, हमारी शक्तियों का विस्तार करता है। (२) यह सोम **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **दृढा**=दृढ़ भी शत्रु पुरियों को काम-क्रोध-लोभ की नगरियों को **विरुजत्**=विशेषेण भग्न कर देता है। सोमरक्षण से काम-क्रोध-लोभ का विनाश करके ही यह 'त्रित' बनता है, तीनों को तैरनेवाला।

भावार्थ—सोम (क) हमारा धारण करता है, (ख) यह हमारी शक्तियों का विस्तार करता है, (ग) काम-क्रोध-लोभ का विनाश करता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

'इन्द्र-वायु-वरुण-मरुत्-विष्णु'

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमो अर्षति विष्णवे॥ २॥

(१) **सुतः**=उत्पन्न हुआ **सोमः**=सोम (वीर्य) **अर्षति**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला होता है। उस समय यह **इन्द्राय**=इन्द्रियों को सशक्त बनाने के लिये होता है। **वायवे**=गतिशीलता के लिये होता है। हमें यह बड़ा स्फूर्तिमय बनाता है। **वरुणाय**=यह द्वेष के निवारण के लिये होता है, सोम के रक्षण के होने पर हमारे मनों में द्वेष आदि के भाव नहीं पनपते। **मरुद्भ्यः**=यह प्राणों के लिये होता है, इस सोम के रक्षण से प्राणशक्ति का वर्धन होता है। (२) और अन्ततः

यह **विष्णवे**=(विष् व्याप्तौ) व्यापक मनोवृत्ति के लिये होता है, हमें उदार और उदार बनाता हुआ प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है। हम जितने-जितने विशाल मनवाले बनते जाते हैं, उतना-उतना प्रभु के समीप होते जाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'सशक्त, गतिशील, निर्द्वेष, प्राणशक्ति-सम्पन्न व उदार हृदय' बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** । स्वरः—**षड्जः** ॥

आप्यायन

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

(१) **वृषाणम्**=शक्ति को देनेवाले, **वृषभिः यतम्**=शक्तिशाली पुरुषों से शरीर में ही संयत किये गये **सोमम्**=सोम को (वीर्यशक्ति को) **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **सुन्वन्ति**=अपने में उत्पन्न करते हैं। प्रभु की उपासना से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। (२) **शक्मना**=शक्ति की प्राप्ति के हेतु से ये उपासक इस सोम से **पयः दुहन्ति**=शरीर में आप्यायन-वर्धन का दोहन करते हैं, प्रपूरण करते हैं। सोम के रक्षण से सब अंगों की शक्ति का वर्धन व आप्यायन होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब अंगों की शक्ति का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मर्ज्यः-मत्सरः

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

(१) यह सोम **त्रितस्य**='काम-क्रोध-लोभ' को तैर जानेवाले का **मर्ज्यः**=शोधन करनेवालों में उत्तम होता है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम त्रित के जीवन को बड़ा सुन्दर बना देता है। यह **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरः**=आनन्द का संचार करनेवाला **भुवत्**=होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम उल्लास को पैदा करता है। (२) यह **हरिः**=सब रोगों का हरण करनेवाला सोम **रूपैः**=सौन्दर्यों से **समज्यते**=समलंकृत किया जाता है। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर सब अंग-प्रत्यंग शोभायमान होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को शुद्ध, उल्लासमय व उत्तम रूपवान् बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** । स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रियतम हवि

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

(१) **पृश्निमातरः**=('संस्प्रष्टा भासां' नि०) ज्ञान-ज्योतियों का स्पर्श करनेवाले (पृश्नि) निर्माण के कार्यों में लगनेवाले (मातरः) लोग **ईम्**=निश्चय से इस सोम को **अभिदुहते**=शरीर में शक्ति के लिये तथा मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि की दीप्ति के लिये अपने अन्दर प्रपूरित करते हैं। (२) उस सोम को अपने अन्दर प्रपूरित करते हैं, जो कि **ऋतस्य विष्टपम्**=ऋत का लोक है, ऋत अर्थात् यज्ञ का आधार है। सोम के रक्षित होने पर वृत्ति यज्ञिय बनती है। **चारु**=यह सोम सुन्दर है, चरणीय है, भक्षणीय है, शरीर के ही अन्दर व्यापन के योग्य है। यह **प्रियतमं हविः**=प्रियतम हवि है, शरीर में सुरक्षित होने पर अधिक से अधिक प्रीणित करनेवाला है। यह जीवनयज्ञ की सर्वोत्तम हवि है। इसे शरीर में सुरक्षित रखना ही चाहिये।

भावार्थ—ज्ञानी व निर्माण के कार्य में लगे हुए व्यक्ति इस सोम का रक्षण करते हैं। सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम जीवन को ऋतमय बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

अह्रुताः गिरः

समे॑नमह्रुता इ॒मा गिरो॑ अर्षन्ति स॒स्रुतः॑। धे॒नूर्वा॒श्रो अ॑वीवशत्॥ ६॥

(१) **एनम्**=इस सोम को **इमाः**=ये **सस्रुतः**=समानरूप से मिलकर प्रवाहित होनेवाली **अह्रुताः**=अकुटिल, हमें कुटिलता से दूर ले जानेवाली **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ **सं अर्षन्ति**=सम्यक् प्राप्त होती हैं। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर हमें 'ऋग्-यजु-साम' रूप ज्ञान की वाणियाँ समानरूप से प्राप्त होती हैं, मस्तिष्क में विज्ञान (ऋग्), हाथों में कर्म (यजुः) तथा मन में उपासना (साम) वाले हम बनते हैं। (२) **वाश्रः**=प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाली यह शक्ति **धेनूः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली इन वेदवाणीरूप गौओं को **अवीवशत्**=खूब ही चाहता है। इनमें प्रीतिवाला होने से सोम रक्षित होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये ज्ञान की वाणियों की प्राप्ति में लगे रहना आवश्यक है।

इस सोम के रक्षण से हम 'प्रभूवसु' बनते हैं—'प्रभावयुक्त वसुओंवाले'। प्रकृष्ट सामर्थ्यों से युक्त वसुओंवाला यह सोम के विषय में कहता है—

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**प्रभूवसुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रयि-ज्योति

आ नः॑ पवस्व॒ धार॑या॒ पव॑मान र॒यिं पृ॒थुम्। यया॒ ज्योति॑र्वि॒दासि॑ नः॥ १॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **धारया**=अपनी धारण शक्ति के द्वारा **नः**=हमारे लिये **पृथुं रयिम्**=विशाल धन को **आपवस्व**=प्राप्त करा। इस सोम के रक्षण से हम स्वस्थ शरीर बनकर आवश्यक धनों को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। (२) हे सोम! तू हमें उस धारणशक्ति के साथ प्राप्त हो, **यथा**=जिससे **नः**=हमारे लिये **ज्योतिः**=प्रकाश को **विदासि**=प्राप्त कराता है। इस सोम से ही शरीर में ज्ञानाग्नि का दीपन होता है, यह दीप्त ज्ञानाग्नि से हम ज्योति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सोम के रक्षण से हमें रयि (धन) व ज्योति (ज्ञान) की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

समुद्रमीङ्खय-विश्वमेजय

इन्दो॑ समुद्रमीङ्खय॒ पव॑स्व विश्वमेजय। रा॒यो ध॒र्ता न॒ ओज॑सा॥ २॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! शक्ति को बढ़ानेवाले वीर्य, **समुद्रमीङ्खय**=जो तू हमारे अन्दर ज्ञान-समुद्र को प्रेरित करनेवाला है, ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला है तथा जो तू **विश्वमेजय**=शरीर में प्रविष्ट हो जानेवाले रोगकृमियों को कम्पित करनेवाला है, वह तू **नः**=हमारे लिये **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **रायः धार्ता**=ज्ञानैश्वर्य का धारण करनेवाला है। (२) यह सोम 'विश्वमेजय' है, रोगकृमियों को कम्पित करके हमें नीरोग बनाता है। नीरोग बनाकर यह हमें ओजस्वी करता है, हमारे ओज को बढ़ानेवाला होता है। यह 'समुद्रमीङ्खय' है, ज्ञान-

समुद्र को हमारे अन्दर प्रेरित करनेवाला है। इस प्रकार यह हमारे ज्ञानैश्वर्य को बढ़ाता है।

भावार्थ—यह सोम ज्ञान-समुद्र को प्रेरित करनेवाला है तथा शरीर में प्रविष्ट हो जानेवाले रोगकृमियों को कम्पित करके हमारे से दूर करनेवाला है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अभिष्याम पृतन्यतः

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः। क्षरा णो अभि वार्यम्॥ ३॥

(१) हे **वीरवः**=वीरोंवाले सोम, वीरता के कार्यों को करनेवाले सोम! **वीरेण**=सब शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **त्वया**=तेरे द्वारा **पृतन्यतः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले रोगों व वासनारूप शत्रुओं को **अभिष्याम**=हम अभिभूत करनेवाले हों। इनको पराजित करके हम शरीर में नीरोग व मन में निर्मल बनें। (२) **नः**=हमारे लिये **वार्यम्**=वरणीय वस्तुओं को **अभिक्षर**=प्राप्त करा। सोम रक्षित होने पर सब अवाञ्छनीय तत्त्वों को विनष्ट करके हमें शरीर में दृढ़ता, मन में निर्मलता व मस्तिष्क में दीप्ति को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—हम सोम के रक्षण के द्वारा आक्रमण करनेवाले रोगों व वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करें और सब वरणीय धनों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**प्रभूवसुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाजसा ऋषिः

प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः। व्रता विदान आयुधा॥ ४॥

(१) **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **सिषासन्**=(संभक्तुमिच्छन्) हमें शक्ति-सम्पन्न करना चाहता हुआ **वाजम्**=बल को **प्र इष्यति**=हमारे में प्रकर्षेण प्रेरित करता है। यह **वाजसाः**=बल को देनेवाला है और **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा है, हमें तत्त्वज्ञानी बनाता है। (२) यह सोम **व्रता विदानः**=हमें उत्तम कर्मों को प्राप्त कराता है (विद् लाभे) तथा **आयुधा**=उन कर्मों को पूर्ण करने के लिये 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों को प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से हमारी 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' सब उत्तम बनते हैं और हम इन आयुधों के द्वारा सदा उत्तम कर्मों को करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शक्ति देता है, ज्ञान देता है। उत्तम कर्मों में प्रेरित करता हुआ यह सोम हमें उत्तम इन्द्रियों, मन व बुद्धि को प्राप्त कराता है जिससे हम उत्तम कर्मों को कर सकें।

ऋषिः—**प्रभूवसुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पुनान-गोपति

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि। सोमं जनस्य गोपतिम्॥ ५॥

(१) **तम्**=उस **वाचमीङ्खयम्**=ज्ञान की वाणियों के प्रेरित करनेवाले **सोमम्**=सोम को (वीर्यशक्ति को) **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **वासयामसि**=अपने अन्दर बसाते हैं। ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से चित्त निर्मल रहता है और वासनाओं के आक्रमण के अभाव में सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। यह सोम **पुनान**=हमारे जीवनों को पवित्र बनाता है। (२) उस सोम को हम शरीर में सुरक्षित करते हैं, जो कि **जनस्य गोपतिम्**=लोगों की इन्द्रियों का **पति**=रक्षक है। रक्षित सोम इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ानेवाला है।

भावार्थ—सोम का रक्षण स्वाध्याय में लगे रहने से सम्भव है। यह सोम हमारे जीवन को

पवित्र व सशक्त इन्द्रियोंवाला बनाता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

धर्मणस्पति-प्रभूवसु

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः। पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥

(१) **विश्वो जनः**=सब मनुष्य **यस्य व्रते**=जिस सोम के व्रत में **दाधार**=अपना धारण करते हैं। जिस समय सोमरक्षण के लिये व्रत में चलते हैं, तो उस समय ये मनुष्य अपना धारण करनेवाले बनते हैं। (२) यह सोम **धर्मणस्पते**=धारणात्मक कर्मों का रक्षक है, **पुनानस्य**=पवित्र करनेवाला है तथा **प्रभूवसोः**=प्रभावयुक्त वसुओंवाला है। सोमरक्षण से मनुष्य सदा धारणात्मक कर्मों को करने की वृत्तिवाला होता है इस सोम के रक्षण से जीवन पवित्र बनता है, शरीर नीरोग तथा मन निर्मल। सोमरक्षण करनेवाला मनुष्य निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों से युक्त होता है और सामर्थ्यवान् बनता है।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करते हैं, तो यह (क) हमें धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त करता है, (ख) हमारे जीवनों को पवित्र बनाता है, (ग) हमें प्रभाव सम्पन्न बनाता है व निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त कराता है।

'प्रभूवसु' ऋषि ही अगले सूक्त में कहता है—

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कार्ष्मन् वाजी

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः। कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥

(१) यह सोम **असर्जि**=शरीर में उत्पन्न किया जाता है। शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **यथा रथ्यः**=इस प्रकार है जैसे कि रथ में जुतनेवाला एक उत्तम घोड़ा। यह घोड़ा जैसे लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाला होता है, इसी प्रकार सोम भी हमें जीवनयात्रा को पूर्ण करके लक्ष्य पर पहुँचाता है। यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के निमित्त, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर के निमित्त **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। यह सोम मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल बनाता है और शरीर को तेजस्विता से दीप्त। (२) यह **वाजी**=शक्तिशाली सोम **कार्ष्मन्**=संग्राम में **नि अक्रमीत्**=शत्रुओं को पाँव तले कुचलनेवाला होता है (कार्ष्मयुद्धं इतरेतरकर्षणात्)। रोगकृमियों को नष्ट करके यह जहाँ रोगों को विनष्ट करता है, वहाँ काम-क्रोध-लोभ आदि वासनाओं का भी यह विनाश करनेवाला है।

भावार्थ—सोम (वीर्य) शरीर में सुरक्षित होने पर रोग व वासनारूप शत्रुओं को कुचल डालता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वह्निः-जागृविः-देववीः' सोम

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति। अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **सः**=वह तू **वह्निः**=शरीर-रथ में जुते घोड़े के समान हमें लक्ष्य-स्थान पर प्राप्त करानेवाला है। **जागृविः**=तू सदा जागरणशील है। शरीररक्षण के कार्य में तू अप्रमत्त

है। **देववीः**=दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाला तू **अतिपवस्व**=हमें अतिशयेन प्राप्त हो। सोमरक्षण से हम (क) अन्ततः अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचते हैं। (ख) यह रक्षण कार्य में अप्रमत्त होकर हमें रोगाक्रान्त नहीं होने देता। (ख) हमारे अन्दर इसके रक्षण से दिव्य गुणों का वर्धन होता है। (२) हे सोम! तू **मधुश्चुतम्**=मधु को, माधुर्य व आनन्द को ही क्षरित करनेवाले **कोशं अभि**=कोश की ओर हमें ले चलनेवाला है। 'मधुश्चुत् कोश' प्रभु हैं, यह हमें प्रभु की ओर ले चलता है।

भावार्थ—सोम 'वह्नि-जागृवि-देववी' है, यह हमें प्रभु की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्योति-क्रतु-दक्ष

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय। क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

(१) हे **पूर्व्य**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम! **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **नः**=हमारी **ज्योतींषि**=ज्ञान-ज्योतियों को **विरोचय**=दीप्त करनेवाला हो। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और इस प्रकार सोमरक्षण से हमारा ज्ञान चमक उठता है। (२) हे सोम! तू सुरक्षित होने पर **नः**=हमें **क्रत्वे**=शक्ति के लिये तथा **दक्षाय**=(growth) उन्नति के लिये **हिनु**=प्रेरित कर। इस सोम के द्वारा हमारी शक्ति का वर्धन हो। और हम सब प्रकार से उन्नत हो पायें।

भावार्थ—सोम हमारी ज्ञान-ज्योति को बढ़ाता है, हमें सशक्त बनाता है और हमारी सब प्रकार से उन्नति का कारण बनता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋतायुभिः शुम्भमानः

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः। पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥

(१) **ऋतायुभिः**=ऋत का आचरण करनेवालों से **शुम्भमानः**=शरीर में ही अलंकृत किया जाता हुआ यह सोम **गभस्त्योः**=बाहुवों में **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता है। भुजाओं से सदा कर्मों को करते हुए हम इस सोम को पवित्र बनाये रखते हैं। (२) यह सोम उसे **अव्यये वारे**=कभी नष्ट न होनेवाले वरणीय प्रभु के निमित्त **पवते**=हमें प्राप्त होता है। इस सोम के रक्षण के द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—ऋत को अपनाने से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। अनृत ही इसके विनाश का कारण बनता है। कर्मशीलता से यह पवित्र बना रहता है। हमें पवित्र बनाकर यह प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दिव्य, पार्थिव आन्तरिक्ष्य' वसु

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा। पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

(१) **सः सोमः**=वह सोम (वीर्य) **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये, सोम के लिये अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिये, सब प्रकार से सोमरक्षण में प्रवृत्त पुरुष के लिये, **विश्वा**=सब **दिव्यानि**=द्युलोक के साथ सम्बद्ध, **पार्थिवा**=पृथिवीलोक के साथ सम्बद्ध तथा **आन्तरिक्ष्या**=अन्तरिक्षलोक के साथ सम्बद्ध **वसु**=वसुओं को **पवताम्**=प्राप्त कराये। (२) शरीर में मस्तिष्क

ही द्युलोक है। द्युलोक सम्बद्ध वसु 'ज्ञान' है। अन्तरिक्ष 'हृदय' है। हृदय सम्बद्ध वसु 'पवित्रता व भक्ति' है। यह शरीर ही पृथिवी है। इसके साथ सम्बद्ध वसु 'शक्ति' है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें 'ज्ञान, पवित्रता व शक्ति' सब वसुओं को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—यदि हम पूर्ण प्रयत्न से सोम का रक्षण करते हैं तो यह हमें ज्ञानदीप्त मस्तिष्कवाला, पवित्र व भक्ति-सम्पन्न हृदयवाला तथा शक्ति-सम्पन्न शरीरवाला बनाता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अश्वयु-गव्ययुः-वीरयु

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि। वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **अश्वयुः**=हमारे लिये उत्तम इन्द्रियाश्वों की कामना करता हुआ, **गव्ययुः**=तथा उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की कामना करता हुआ **दिवः पृष्ठम्**=शरीरस्थ मस्तिष्क रूप द्युलोक के पृष्ठ पर **आरोहसि**=आरोहण करनेवाला होता है। शरीर में शक्ति की ऊर्ध्वगति होने पर यह मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इस प्रकार यह हमारे ज्ञान की वृद्धि का कारण होता है। (२) हे **शवसस्पते**=शक्तियों के स्वामिन् सोम! तू **वीरयुः**=हमारे साथ वीरता को जोड़नेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'अश्वयु, गव्यु तथा वीरयु' है।

उत्तम इन्द्रियोंवाला व वीरतावाला बनकर हम सब बुराइयों को दूर फेंकनेवाले बनते हैं। बुराइयों को दूर फेंकनेवाला 'रहू' है। इनमें भी गिनने योग्य होने से यह 'गण' है। यह 'रहूगण' कहता है—

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**रहूगणः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

देवयु

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

(१) **सः**=वह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **सोमः**=सोम (वीर्य) **पीतये**=शरीर में ही पीने के लिये उद्दिष्ट होता है इसको शरीर में ही पान करना चाहिए। इस प्रकार यह **वृषा**=शक्ति का संचार करनेवाला सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय पुरुष में **अर्षति**=गतिवाला होता है। (२) शरीर में गतिवाला यह सोम **रक्षांसि**=रोगकृमिरूप राक्षसों को **विघ्नन्**=नष्ट करता हुआ, **देवयुः**=हमारे साथ दिव्य गुणों को जोड़नेवाला होता है। इस सोम के द्वारा शरीर नीरोग बनता है और मन दिव्य गुणों से परिपूर्ण होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमिरूप राक्षसों का विनाश करता है। हृदय में दिव्यभावनाओं को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—**रहूगणः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विचक्षण-हरि-धर्णसि

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः। अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

(१) **सः**=वह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **अर्षति**=गतिवाला होता है। शरीर में

सुरक्षित हुआ-हुआ यह **विचक्षणः**=विशेषरूप से देखनेवाला है, हमारे ज्ञान की वृद्धि का कारण होता है। यह **हरिः**=सब रोगों का हरण करनेवाला है, अथवा सब वासनाओं को विनष्ट करनेवाला है तथा **धर्णसिः**=धारक है। मस्तिष्क में 'विचक्षण', हृदय में 'हरि', शरीर में यह सोम 'धर्णसि' है। (२) यह सोम **कनिक्रदत्**=उस प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **योनिं अभि**=उस ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति-स्थान (=प्रभव) प्रभु की ओर चलता है। सोमरक्षण से हमारी प्रवृत्ति प्रभु-स्मरणवाली बनती है, हम प्रभु के नामों का उच्चारण करते हुए प्रभु की ओर बढ़ते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञानी, पवित्र व स्वस्थ बनाता है। हमें प्रभु-स्मरण की वृत्तिवाला बनाकर प्रभु की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाजी-पवमानः-दिवः रोचना (रोचकः)

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति। रक्षोहा वारमव्ययम्॥ ३॥

(१) **सः**=वह सोम **वाजी**=शक्ति को देनेवाला है, **दिवः रोचना**=ज्ञान को दीप्त करनेवाला है तथा **पवमानः**=हमारे हृदयों को पवित्र करनेवाला है। (२) **रक्षोहा**=रोगकृमिरूप राक्षसों को तथा राक्षसी भावों को नष्ट करनेवाला यह सोम **अव्ययम्**=कभी नष्ट न होनेवाले **वारम्**=उस वरणीय प्रभु की ओर **विधावति**=विशिष्टरूप से गतिवाला होता है, हमें शरीर व मन में स्वस्थ बनाकर यह सोम प्रभु की ओर ले चलता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शक्ति देता है, ज्ञान को दीप्त करता है, पवित्र करता है। राक्षसीभावों को विनष्ट करके यह हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

जामिभिः-सूर्यं सह

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्। जामिभिः सूर्यं सह॥ ४॥

(१) **सः**=वह सोम **त्रितस्य**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों को तैर जानेवाले के **अधि सानवि**=शिखर प्रदेश में, अर्थात् मस्तिष्क में **पवमानः**=पवित्रता को करता हुआ **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को **अरोचयत्**=दीप्त करता है। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। (२) **जामिभिः सह**=सद्गुणों के प्रादुर्भाव के साथ यह सोम ज्ञान सूर्य को दीप्त करता है। ज्ञान को तो यह बढ़ाता ही है। साथ ही यह सद्गुणों का भी हमारे में विकास करता है। ज्ञान के साथ मौन, शक्ति के साथ क्षमा, अभ्युदय के साथ विनय आदि गुण सोमरक्षण के होने पर ही पनपते हैं।

भावार्थ—काम-क्रोध-लोभ को तैरनेवाले के जीवन में सुरक्षित होकर सोम सद्गुणों को जन्म देता है और ज्ञान सूर्य को दीप्त करता है।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वृत्रहा-वृषा

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः। सोमो वाजमिवासरत्॥ ५॥

(१) **सः**=वह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **वृत्रहा**=वासना को नष्ट करनेवाला है। ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करके यह ज्ञान को दीप्त करता है। **वृषा**=शक्ति को देनेवाला

है। **वरिवोवित्**=सब वरणीय धनों को प्राप्त कराता है। **अदाभ्यः**=न हिंसित होनेवाला है। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर यह रोगकृमियों का विनाश करता है और इस प्रकार यह हमें रोगों से हिंसित नहीं होने देता। (२) **सोमः**=यह सोम (=वीर्यशक्ति) इस प्रकार शरीर में **अर्षत्**=गतिवाला होता है, **इव**=जैसे कि एक अश्व **वाजम्**=संग्राम में गति करता है। यह सोम इस संग्राम में शत्रुभूत रोगकृमियों को तथा काम-क्रोध आदि वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करता है। शरीर में शक्ति को देता है। वरणीय धनों को प्राप्त कराता है और हमें हिंसित नहीं होने देता।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शरीर शोधक सोम

स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति। इन्दुरिन्द्राय मंहना॥ ६॥

(१) **सः**=वह **देवः**=प्रकाशमय **इन्दुः**=शक्ति को देनेवाला सोम **कविना**=क्रान्तप्रज्ञ समझदार व्यक्ति से **इषितः**=शरीर में प्रेरित हुआ-हुआ **द्रोणानि अभि धावति**=शरीर रूप पात्रों को लक्ष्य करके शोधन करनेवाला होता है (धाव् शुद्धौ)। (२) जीवन को शुद्ध बनाकर यह **इन्द्रः**=सोम **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मंहना**=महान् होता है अथवा (मंहते दानकर्मणः) सब वरणीय धनों को देनेवाला होता है। सब वरणीय धनों को प्राप्त कराके यह सोम उस इन्द्र को महान् बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर का शोधन करता है। यह सब वरणीय धनों को प्राप्त कराके हमें महान् बनाता है।

'रहूगण' ही अगले सूक्त में भी सोम का प्रशंसन करता हुआ कहता है—

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रथः अव्यः

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति। गच्छन्वाजं सहस्रिणम्॥ १॥

(१) **एषः**=यह **उ**=निश्चय से **स्यः**=वह सोम **वृषा**=शक्ति को देनेवाला है। **रथः**=जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये रथ के समान है। **अव्यः**=शरीर का रक्षण करनेवालों में उत्तम है। **वारेभिः**=वरणीय धनों के साथ यह **अर्षति**=शरीर में गतिवाला होता है। (२) यह सोम **सहस्रिणं वाजम्**=शत संख्यावाली बहुत अधिक **वाजम्**=शक्ति को **गच्छन्**=जाता हुआ होता है। अर्थात् सुरक्षित होने पर यह सोम खूब ही शक्ति को प्राप्त कराता है। अथवा सहस्रिणम्=आमोदयुक्त, आनन्दयुक्त बल को यह प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये उत्तम रथ होता है। यह उत्तम रक्षक है। सब वरणीय धनों को प्राप्त कराता है तथा आनन्दयुक्त शक्ति को देता है।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

योषणः अद्रिभिः

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये॥ २॥

(१) **एतम्**=इस **हरिम्**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम को **त्रितस्य**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों को तैर जानेवाले त्रित की **योषण:**=ज्ञानवाणियाँ **अद्रिभि:**=उपासनाओं के द्वारा **हिन्वन्ति**=शरीर में ही प्रेरित करती हैं। (२) **इन्दुम्**=इस शक्तिशाली सोम को **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के **पीतये**=रक्षण के लिये शरीर में प्रेरित करते हैं। इस सोम को शरीर में प्रेरित करने के लिये 'स्वाध्याय व उपासना' महान् साधन हैं।

भावार्थ—स्वाध्याय व उपासना के द्वारा त्रित सोम को शरीर में ही व्याप्त करने के लिये सतत उद्योगवाला होता है।

ऋषि:—रहूगण: ॥ देवता—**पवमान: सोम:** ॥ छन्द:—**गायत्री** ॥ स्वर:—**षड्ज:** ॥

कर्म-व्यापृत इन्द्रियाँ

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युव:। याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥

(१) **एतम्**=इस **त्यम्**=प्रसिद्ध सोम को **दश**=दस संख्यावाली **अपस्युव:**=कर्मों को अपने साथ जोड़नेवाली **हरित:**=इन्द्रियाँ (इन्द्रियरूप अश्व) **मर्मृज्यन्ते**=खूब शुद्ध करती हैं। इन्द्रियाँ कर्मों में लगी रहें, तो सोम की शुद्धि बनी रहती है। उस समय वासनाओं का आक्रमण न होने से सोम में किसी प्रकार की मलिनता नहीं आती। (२) उन कर्मव्यापृत इन्द्रियों से सोम का शोधन होता है, **याभि:**=जिनसे **मदाय**=हर्ष व उल्लास के लिये **शुम्भते**=शोभावाला होता है, अपने को सद्गुणों से अलंकृत करता है।

भावार्थ—कर्म-व्यापृत इन्द्रियाँ वासनाओं से अनाक्रान्त होकर सोम का शोधन करती हैं।

ऋषि:—**रहूगण:** ॥ देवता—**पवमान: सोम:** ॥ छन्द:—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वर:—**षड्ज:** ॥

श्येनो न

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति। गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥

(१) **एष:**=यह **स्य:**=वह प्रसिद्ध सोम **मानुषीषु विक्षु**=मानव हित में लगी हुई इन्द्रियों से **आसीदति**=आसीन होता है। इस प्रकार आसीन होता है **न**=जैसे कि **श्येन:**=वह गतिशील प्रभु, अर्थात् सर्वभूत हित में लगे हुए व्यक्ति जिस प्रकार प्रभु को अपने में आसीन कर पाते हैं, उसी प्रकार इस सोम का भी अपने में रक्षण करनेवाले होते हैं। (२) यह सोम उसी प्रकार हमें **गच्छन्**=प्राप्त होता है, **न**=जैसे कि **जार:**=एक स्तोता **योषितम्**=इस वेदवाणी को प्राप्त होता है (जरते: स्तुति कर्मण:, योषा वाङ्नाम)। स्तुति करनेवाला वेदवाणी को प्राप्त करता है। इसी प्रकार यह स्तोता मानवहित में लगा हुआ इस सोम का भी रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—हम मानवहितकारी कर्मों में लगे हुए होकर सोम का अपने में रक्षण करें। सदा प्रभु का स्मरण करते हुए प्रभु को अपने में आसीन करें और सोम के रक्षक बनें।

ऋषि:—**रहूगण:** ॥ देवता—**पवमान: सोम:** ॥ छन्द:—**ककुम्मतीगायत्री** ॥ स्वर:—**षड्ज:** ॥

मद्य: रस:

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिव: शिशु:। य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥

(१) **एष:**=यह **स्य:**=प्रसिद्ध **मद्य:**=आनन्द को देनेवालों में उत्तम **रस:**=रसरूप सोम **अवचष्टे**=रक्षित होने पर हमारा ध्यान करता है (अवचश्यति=(looks after))। हमें रोग आदि

से आक्रान्त नहीं होने देता। यह सोम **दिवः शिशुः**=ज्ञान का सूक्ष्म करनेवाला है। बुद्धि को तीव्र बनाकर ज्ञान का वर्धन करनेवाला है। (२) **यः**=जो **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **वारम्**=सब वासनाओं का निवारण करनेवाले व्यक्ति में **आविशत्**=प्रवेश करता है। जब हम वासनाओं का निवारण करते हैं तो इस सोम का अधिष्ठान बनते हैं।

भावार्थ—यह सोम 'मद्य रस' है। वासनाओं का निवारण करने पर इसे हम सुरक्षित कर पाते हैं।

ऋषिः—**रहूगणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

हरिः धर्णसिः

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः। क्रन्दन्योनिमभि प्रियम्॥ ६॥

(१) **एषः**=यह **स्यः**=प्रसिद्ध **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **पीतये**=हमारे रक्षण के लिये होता है। **हरिः**=सब रोगों का हरण करनेवाला यह सोम **अर्षति**=हमें प्राप्त होता है और **धर्णसिः**=हमारा धारण करनेवाला होता है। (२) यह **प्रियम्**=उस आनन्द को देनेवाले **योनिम्**=सब के उत्पत्ति-स्थान **प्रभव**=प्रभु को **अभि**=लक्ष्य करके **क्रन्दन्**=स्तुति-वचनों का उच्चारण करनेवाला होता है। सोम शरीर में सुरक्षित होता है, तो हमारी वृत्ति प्रभु-स्तवन की बनती है।

भावार्थ—सोम हमारा धारण करता है। यह हमें प्रभु-भक्त बनाता है।

इस सोम के रक्षण से हम तीव्र बुद्धिवाले स्तोता बनकर 'बृहन्मति' बनते हैं। यह बृहन्मति सोम का स्तवन करता हुआ कहता है—

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**बृहन्मतिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रिय धाम की प्राप्ति

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्र देवा इति ब्रवन्॥ १॥

(१) हे **बृहन्मते**=विशाल बुद्धिवाले पुरुष! तू **प्रियेण धाम्ना**=प्रीणित करनेवाले तेज के हेतु से **आशुः**=शीघ्रता से कर्मों में व्याप्त होनेवाला होकर **अर्ष**=वहाँ जानेवाला हो, **'यत्र देवाः'**=जहाँ देव हैं, **इति ब्रवन्**=ऐसा लोग कहते हैं। (२) सोम का रक्षण होने पर यह शरीर देवों का अधिष्ठान बनता है 'बृहन्मति' उस शरीर में ही स्थित का होने का प्रयत्न करता है, जिसमें कि सोम का रक्षण किया गया है।

भावार्थ—इस सोम के रक्षण से इसे 'प्रिय तेज' प्राप्त होता है, वह शक्ति प्राप्त होती है, जो कि इसे प्रीणित करनेवाली होती है, वस्तुतः सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम ही इसे 'बृहन्मति' बनाता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्द की वृष्टि

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव॥ २॥

(१) हे सोम! तू **अनिष्कृतम्**=असंस्कृत हृदय को वासना-विनाश के द्वारा **परिष्कृण्वन्**=परिष्कृत कर देता है। सोमरक्षण से वासनाएँ विनष्ट हो जाती हैं और हृदय निर्मल हो जाता है। इस प्रकार हृदय की निर्मलता से यह सोम **जनाय**=शक्तियों का प्रादुर्भाव करनेवाले पुरुष के लिये

इषः=प्रेरणाओं को **यातयन्**=प्राप्त कराता है। इस निर्मल हृदय से प्रभु की प्रेरणाओं का उद्गम होता है। (२) हे सोम! इस प्रकार हृदयों के परिष्कृत करके, प्रेरणाओं को प्राप्त कराके तू **दिवः**=द्युलोक से, मस्तिष्क से **वृष्टिम्**=धर्ममेघ समाधि में प्राप्त होनेवाली आनन्द की वर्षा को **परिस्रव**=परिस्रुत कर। सोमरक्षण का ही परिणाम है कि हम साधना में आगे बढ़ते हुए इस आनन्द की वर्षा का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से (१) हृदय परिष्कृत होता है, (२) अन्तः प्रेरणायें सुन पड़ती हैं, (३) धर्ममेघ समाधि में होनेवाली आनन्द की वर्षा का अनुभव होता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विचक्षाणः विरोचयन्

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥

(१) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **एति**=प्राप्त होता है। हृदय की पवित्रता के होने पर ही यह शरीर में स्थित होता है। यह **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **त्विषिम्**=ज्ञान की दीप्ति को **आदधानः**=धारण करता हुआ होता है। 'शरीर में ओजस्विता व मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति' ये दोनों ही सोमरक्षण के मुख्य लाभ हैं। (२) मस्तिष्क को यह सोम **विचक्षाणः**=विशिष्ट ज्ञान दर्शनवाला बनाता है तथा **विरोचयन्**=शरीर को यह ओजस्विता से दीप्त करता है। सोमरक्षण से सूक्ष्म बनी हुई बुद्धि तत्त्व का दर्शन करनेवाली होती है और शरीर को यह सोमरक्षण ओजस्वी व दीप्त बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम 'ब्रह्म व क्षत्र' का पोषण कर पाते हैं।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युलोक से भी परे

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

(१) **अयम्**=यह **सः**=वह सोम **यः**=जो कि **दिवः परि**=द्युलोक के भी परे **रघुयामा**=शीघ्र गमनवाला होता है, वह **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **आ वि अक्षरत्**=संचलनवाला होता है। सोम शरीर में सुरक्षित होने पर हमें पृथिवी पृष्ठ से अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से द्युलोक में, द्युलोक से भी परे स्वर्लोक में ले जानेवाला होता है। (२) यह सोम हमें **सिन्धोः ऊर्मा**=ज्ञान-समुद्र की तरंगों में ले चलनेवाला होता है, सुरक्षित सोम बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। इस सूक्ष्म बुद्धि से ज्ञानजल का सिन्धु प्रवाहित होता है। हम इस सिन्धु की तरंगों में तैरनेवाले बनते हैं। यह ज्ञान ही तो हमें द्युलोक से भी ऊपर ब्रह्मलोक में पहुँचाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें द्युलोक से ऊपर स्वर्लोक में ले चलता है। यह हमें ज्ञान-समुद्र की तरंगों में तरानेवाला होता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मधु सेचन

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः। इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

(१) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **परावतः**=दूरदेश से **अथ उ**=और निश्चय से **अर्वावतः**=समीप देश से **आविवासन्**=अन्धकार को दूर करनेवाला होता है (विवासयति vanishes)। समीप देश से अन्धकार को दूर करने का भाव 'प्रकृति-विषयक अज्ञान को दूर करना'

है तथा दूरदेश से अन्धकार को दूर करने का भाव 'आत्मविषयक अज्ञान को दूर करना' है। इस प्रकार सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें 'अपरा व परा' दोनों ही विद्याओं को प्राप्त कराता है। (२) यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मधु सिच्यते**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला होकर सिक्त होता है। शरीर में सुरक्षित होने पर यह सोम हमें अत्यन्त मधुर जीवनवाला बनाता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष सोमरक्षण के द्वारा (क) अपरा विद्या (प्रकृति विद्या) को प्राप्त करता है, (ख) परा विद्या को प्राप्त करता है, आत्मदर्शन करता है, (ग) जीवन को मधुर बना पाता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

समीचीनाः अनूषत

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥

(१) **समीचीनाः**=सम्यक् गतिवाले पुरुष अथवा मिलकर चलनेवाले पुरुष **अनूषत**=उस प्रभु का स्तवन करते हैं। इन **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **हरिम्**=सब दुःखों का हरण करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=शरीर के अन्दर ही प्रेरित करते हैं। (२) हे उपासको! इस सोम के रक्षण के द्वारा तुम **ऋतस्य योनौ**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **सीदत**=बैठो। सोमरक्षण हमें उत्कृष्ट जीवनवाला बनाता हुआ अन्ततः प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाता है।

भावार्थ—उपासना से सोम शरीर में सुरक्षित होता है। इसके द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

अगले सूक्त में भी 'बृहन्मति' ही सोम के विषय में कहता है—

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सब शत्रुओं का विनाश

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः। शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

(१) **पुनानः**=हमें पवित्र करता हुआ यह सोम **विश्वाः मृधः अभि**=सब शत्रुओं के प्रति **अक्रमीत्**=आक्रमण करनेवाला होता है। काम-क्रोध-लोभ आदि पर आक्रमण करके यह उन्हें विनष्ट करता है, रोगकृमियों को भी यह आक्रान्त करता है। यह सोम **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से देखनेवाला, ध्यान करनेवाला है। (२) **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी लोग **धीतिभिः**=स्तुतियों व उत्तम कर्मों के द्वारा **शुम्भन्ति**=सोम को शरीर में ही सुशोभित करते हैं। सोमरक्षण में स्तुति साधन बनती है। कर्मों में लगे रहने से ही हम वासनाओं से बचते हैं और सोम को रक्षित कर पाते हैं।

भावार्थ—सोम हमारे रोग व वासना रूप शत्रुओं पर आक्रमण करता है। इसका रक्षण स्तुति व कर्म में लगे रहने से होता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

योनि-आरोहण

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः। ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥

(१) **अरुणः**=यह तेजोमय, अप्रतिहत सामर्थ्यवाला सोम **योनिम्**=अपने उत्पत्ति-स्थान इस

शरीर में **आरुहत्**=आरोहण करता है, शरीर में ही इसकी ऊर्ध्वगति होती है। ऐसी स्थिति में **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला होता है और **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **गमत्**=प्राप्त होता है। अथवा उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की ओर चलनेवाला होता है। (२) उस प्रभु की ओर चलता हुआ यह सोम अन्ततः **ध्रुवे सदसि**=उस ध्रुव-अविचल सब के आधार (सर्वाधार) प्रभु में **सीदति**=स्थित होता है। हमें यह प्रभु को प्राप्त करानेवाला बनता है।

भावार्थ—सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होने पर यह हमें शक्तिशाली बनाता हुआ प्रभु की ओर ले चलता है, अन्ततः प्रभु में आसीन करता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

महान् रयि की प्राप्ति

नू नो॑ र॒यिं म॒हामि॑न्दो॒ऽस्मभ्यं॑ सोम वि॒श्वतः॑। आ प॑वस्व सह॒स्रिण॑म्॥ ३ ॥

(१) हे **इन्दो**=शक्तिशालिन् **सोम**=सोम (वीर्यशक्ते)! **नः**=हमारे लिये **महाम्**=महनीय **रयिम्**=ऐश्वर्य को **नु**=निश्चय से **आपवस्व**=प्राप्त करा। महनीय ऐश्वर्य शरीर के दृष्टिकोण से ओज है, और मस्तिष्क के दृष्टिकोण से ज्ञान है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे लिये इसे प्राप्त कराता है। (२) हे सोम! तू **विश्वतः**=सब ओर से **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **सहस्त्रिणम्**=सहस्र संख्यावाले, खूब अधिक अथवा (स+हस्) आनन्दयुक्त धन को प्राप्त करानेवाला हो। यह महान् आनन्दमय ऐश्वर्य 'प्रभु' ही हैं। प्रभु प्राप्ति में सम्पूर्ण धन की प्राप्ति है और इसी में आनन्द का लाभ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से महनीय ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। सोमरक्षण से ही प्रभु की भी प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युम्नानि-इषः

विश्वा॑ सोम पवमान द्यु॒म्नानी॑न्दवा भ॑र। वि॒दाः स॑ह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥ ४ ॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले, **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले **सोम**=वीर्यशक्ते! **विश्वा**=सब **द्युम्नानि**=ज्योतियों को **आभर**=हमारे में भर दे। सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। यही हृदय को पवित्र करता है तथा शरीर में सम्पूर्ण शक्ति का संचार करनेवाला यही है। (२) हे सोम! तू **सहस्त्रिणीः इषः**=(स+हस्) आनन्द की कारणभूत प्रेरणाओं को **विदाः**=प्राप्त करा। इस सोम के रक्षण से हृदय पवित्र होता है, सोम 'पवमान' है। पवित्र हृदय में प्रभु की प्रेरणायें सुन पड़ती हैं। इन प्रेरणाओं में ही जीवन का उल्लास है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब ज्योतियों व प्रेरणाओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रयि-सुवीर्य-ज्ञान

स नः॑ पुना॒न आ भ॑र र॒यिं स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म्। ज॒रि॒तुर्व॑र्धया॒ गिरः॑ ॥ ५ ॥

(१) हे सोम! तू **पुनानः**=हमें पवित्र करता हुआ **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=ऐश्वर्य को, ज्ञान व बल रूप धन को **आभर**=खूब ही प्राप्त करा। **स्तोत्रे**=स्तोता के लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति

को देनेवाला हो। वस्तुतः स्तोता वासनाओं से अपने को बचा पाता है और इस प्रकार सोम का रक्षण करनेवाला होता है। यह सुरक्षित सोम उसे वीर बनाता है। (२) हे सोम! तू **जरितुः**=स्तोता की **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को **वर्धया**=बढ़ानेवाला हो। वस्तुतः सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करके स्तोता के ज्ञान को बढ़ाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम रयि, सुवीर्य व ज्ञान को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**बृहन्मतिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अभ्युदय व निःश्रेयस का साधक सोम

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्। वृषन्निन्दो न उक्थ्यम्॥ ६॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले **सोम**=सोम **पुनानः**=हमें पवित्र करता हुआ तू **द्विबर्हसम्**=(द्वयोः लोकयोः परिवृढम् सा०) इहलोक व परलोक के दृष्टिकोण से बढ़े हुए, अभ्युदय व निःश्रेयस रूप **रयिम्**=ऐश्वर्य को **आभर**=हमें प्राप्त करा। सोमरक्षण से इस लोक में अभ्युदय को प्राप्त करने पर हम निःश्रेयस को प्राप्त करनेवाले बनें। (२) हे **वृषन्**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **नः**=हमारे लिये **उक्थ्यम्**=स्तुति के योग्य, प्रशंसनीय धन को देनेवाला हो, सोमरक्षक पुरुष धन को प्राप्त करता है। उस धन का सदुपयोग करके वह यशस्वी बनता है।

भावार्थ—सोम हमारे अभ्युदय व निःश्रेयस का साधक होता है।

सोमरक्षण से जीवन को उत्तम बनाकर यह मेध्य (=पवित्र) प्रभु के आतिथ्य के लिये उद्यत होकर 'मेध्यातिथि' बनता है। यह कहता है कि—

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दीप्त गतिशील निर्मल

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः। घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥ १॥

(१) **ये**=जो सोम **गावः न**=(अर्थं गमयन्ति) जैसे पदार्थों का ज्ञान देनेवाले हैं, उसी प्रकार **भूर्णयः**=हमारा भरण करनेवाले हैं। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। इस सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा हम तत्त्वज्ञान को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ये सोम हमारे लिये 'गावः' अर्थों के गमक होते हैं। शरीर में शक्ति का संचार करते हुए ये हमारा भरण करते हैं। (२) **त्वेषाः**=ये सोम ज्ञानदीप्त हैं, हमारे ज्ञान को दीप्त करते हैं। **अयासः**=ये सोम गमनशील हैं। ज्ञानेन्द्रियों के दृष्टिकोण से ये 'त्वेष' हैं, कर्मेन्द्रियों के दृष्टिकोण से 'अयासः' हैं। ऐसे ये सोम **प्र अक्रमुः**=शरीर में गतिवाले होते हैं। (३) ये सोम **कृष्णां त्वचम्**=हृदय पर आये हुए वासना के मलिन आवरण को **अपघ्नन्तः**=दूर विनष्ट करनेवाले हैं। मस्तिष्क को ये सोम दीप्त बनाते हैं, शरीर को गतिशील तथा हृदय को वासना के मलिन आवरण से रहित।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'दीप्त गतिशील व निर्मल' बनाते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'सुवित' सोम का सेतु

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम्। साह्वांसो दस्युमव्रतम्॥ २॥

(१) **सुवितस्य**=सब सुन्दर गतियों के कारणभूत सोम के (शोभनं इतं यस्मात्) **दुराव्यम्**=सब

बुराइयों से बचाने में उत्तम **सेतुम्**=शरीर में बंधन को (षिञ् बन्धने) **अतिमनामहे**=अतिशयेन आदृत करते हैं। शरीर में सोमरक्षण के महत्त्व को समझते हुए हम सदा शुभ मार्ग पर चलते हैं और अशुभ से अपना रक्षण कर पाते हैं। (२) सोमरक्षण का ही यह परिणाम है कि हम **अव्रतम्**=सब नियमों का भंग करनेवाले **दस्युम्**=नाशक आसुरी भाव को **साह्वांसः**=कुचलनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—शरीर में सोमरक्षण से हम आसुरीभावों का विनष्ट करते हैं और शुभ मार्ग पर चलनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृष्टि का स्वन

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

(१) **पवमानस्य**=पवित्र करनेवाले, **शुष्मिणः**=शत्रुशोषक बलवाले इस सोम का **स्वनः**=शब्द **वृष्टेः इव**=वृष्टि के शब्द की तरह **शृण्वे**=सुनाई पड़ता है। वस्तुतः सोमरक्षण से धीमे-धीमे अध्यात्म वृत्ति में उत्त्थान होकर मनुष्य समाधि की स्थिति तक पहुँचता है। उस समय 'धर्ममेघ समाधि' में आनन्द की वृष्टि का अनुभव होता है। इसी वृष्टि का प्रस्तुत मन्त्र में उल्लेख है। (२) इस समय **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **विद्युतः**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति रूप **विद्युत् चरन्ति**=गतिवाली होती है। सोमरक्षण से बुद्धि की सूक्ष्मता सिद्ध होती है और ज्ञान चमक उठता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से समाधि की स्थिति में होनेवाली आनन्द की वर्षा का अनुभव होता है। मस्तिष्क में ज्ञानदीप्तियाँ चमक उठती हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रशस्त इन्द्रियाँ

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्। अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **महीम्**=अत्यन्त महनीय (महत्त्वपूर्ण) **इषम्**=प्रेरणा को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा सोमरक्षण से ही प्राप्त होती है। सोमरक्षण से वासनाओं का विध्वंस होकर हृदय की निर्मलता सिद्ध होती है। यह निर्मल हृदय प्रभु की प्रेरणाओं के सुनने का आधार बनता है। (२) यह प्रेरणा **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाली है, **हिरण्यवत्**=हितरमणीय ज्ञानवाली है। **अश्वावत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाली है तथा **वाजवत्**=शक्ति व गतिवाली है (वज् गतौ)। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलने पर हमारी (क) ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तम होती हैं और हमारे ज्ञान का खूब ही वर्धन होता है। (ख) इसी प्रकार हमारी कर्मेन्द्रियाँ सशक्त होती हैं और परिणामतः हम खूब स्फूर्ति के साथ क्रियाओं में लगे रहते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से पवित्र हृदय बनकर हम प्रभु की प्रेरणा को सुनते हैं। इससे हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ प्रशस्त बनती हैं, हमारा ज्ञान व शक्ति बढ़ती है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्यावापृथिवी का आपूरण

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

(१) हे **विचर्षणे**=विशेषरूप से हमारा ध्यान करनेवाले (look after) सोम! **सः**=वह तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो, हमें पवित्र करनेवाला हो। तू **मही रोदसी**=महत्त्वपूर्ण द्यावापृथिवी का

आपृण=(आ पूरय) पूरण करनेवाला हो। मस्तिष्क को ज्ञानदीप्ति से भरनेवाला हो तथा शरीर को तू शक्ति से परिपूर्ण कर। (२) इन द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को तू इस प्रकार ज्ञान व शक्ति से भरनेवाला हो **न**=जैसे कि **सूर्यः**=सूर्य **रश्मिभिः**=किरणों से **उषाः**=उषा से उपलक्षित दिनों को भर देता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे मस्तिष्क को ज्ञान से भरता है और शरीर को शक्ति से।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्राक्षारस का पात्र (A cup of tea)

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः। सरा रसेव विष्टपम्॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **शर्मयन्त्या**=सुख को देनेवाली **धारया**=धारा से **नः विश्वतः**=हमारे चारों ओर **परि सरा**=गतिवाला हो। सोम का हमारे शरीर में चारों ओर प्रवाह हो। यह प्रवाह अंग-प्रत्यंग को शक्तिशाली बनाकर हमें सुखी करनेवाला हो। (२) यह सोम हमारे अंगों में इस प्रकार प्रवाहवाला हो **इव**=जैसे कि **रसा**=द्राक्षारस **विष्टपम्**=एक पात्र (cup) में प्रवेश करता है। शरीर ही वह विष्टप (चमस=पात्र) हो, जिसमें कि रसारूप सोम का प्रवेश हो। शरीर को अन्यत्र 'चमस' कहा ही गया है। सोम के लिये रस शब्द का प्रयोग होता ही है।

भावार्थ—शरीर रूप पात्र में डला हुआ यह सोम रूप द्राक्षारस हमारा कल्याण करता है।

मेध्यातिथि ही कहता है—

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

विज्ञानक्षत्र-ज्ञान सूर्य

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम्। वसानो गा अपो हरिः॥ १॥

(१) **हरिः**=यह सब रोगों व वासनाओं का हरण करनेवाला सोम! **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के साथ सम्बद्ध **रोचना**=ज्ञानदीप्तियों को **जनयन्**=प्रादुर्भूत करता है। यह **अप्सु**=(आपो वै नरसूनवः) प्रजाओं के निमित्त **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **जनयन्**=उदित करता है। 'रोचना' शब्द विज्ञान के नक्षत्रों का सूचक था, तथा 'सूर्य' शब्द आत्मज्ञान के सूर्य का प्रतिपादन करता है। (२) यह सोम **गाः**=ज्ञानरश्मियों को **वसानः**=धारण करता है तथा **अपः**=उन ज्ञानरश्मियों के अनुसार होनेवाले कर्मों को धारण करता है। सोमरक्षण से हम ज्ञानी बनकर उन ज्ञान-वाणियों के अनुसार कर्म करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—सोम हमारे मस्तिष्क गगन में विज्ञान के नक्षत्रों व ज्ञान के सूर्य को दीप्त करता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिव्यवृत्ति की प्राप्ति

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि। धारया पवते सुतः॥ २॥

(१) **एषः**=यह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **देवः**=प्रकाशमय है, यह हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाता है। यह **प्रत्नेन मन्मना**=उस सनातन (अनादि सिद्ध) ज्ञान के साथ हमें प्राप्त होता

है। सोमरक्षण से ही बुद्धि की दीप्तता को प्राप्त करके इस वेदज्ञान को प्राप्त करने का सम्भव होता है। (२) यह सोम **देवेभ्यः**=देववृत्तिवाले व्यक्तियों के लिये **धारया**=धारणशक्ति के साथ **परिपवते**=शरीर में चारों ओर गति करता है, वस्तुतः इसके शरीर में व्याप्त होने से ही हमारी वृत्ति दिव्य बनती है।

भावार्थ—सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें दिव्यवृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अनन्त शक्तिवाले सोम

वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये। सोमाः सहस्रपाजसः॥ ३॥

(१) **सहस्रपाजसः**=अनन्त शक्तिवाले **सोमाः**=सोम **पवन्ते**=हमें प्राप्त होते हैं। वस्तुतः शरीर में सुरक्षित होकर ये हमें अनन्त ही शक्ति को प्राप्त कराते हैं। (२) हमें प्राप्त हुए-हुए ये सोम **वाजसातये**=उस शक्ति के साधक संग्राम के लिये होते हैं, जो कि **वावृधानाय**=हमें निरन्तर बढ़ानेवाला है तथा **तूर्वये**=काम आदि शत्रुओं का संहार करनेवाला है। अध्यात्म संग्राम 'वाजसाति' है, यह हमारी शक्ति का वर्धक है। इस संग्राम को करते हुए हम प्रतिदिन आगे बढ़ते हैं और अपने ध्वंसक शत्रुओं का ध्वंस कर पाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित हुए-हुए सोम हमें अध्यात्म-संग्राम में विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु-स्मरण व दिव्य गुण

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते। क्रन्दन्देवाँ अजीजनत्॥ ४॥

(१) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम **इत्**=निश्चय से **प्रत्नं पयः**=सनातन वेदज्ञान को **दुहानः**=हमारे में प्रपूरित करता हुआ **पवित्रे**=हृदय के पवित्र होने पर **परिषिच्यते**=शरीर में चारों ओर सिक्त होता है। सोमरक्षण के लिये हृदय की पवित्रता आवश्यक है। रक्षित सोम वेदज्ञान को हमें प्राप्त कराता है। (२) **क्रन्दन्**=प्रभु का आह्वान करता हुआ यह सोम **देवान्**=दिव्य गुणों को **अजीजनत्**=हमारे में प्रादुर्भूत करता है। सोमरक्षण से प्रभु-स्मरण की वृत्ति उत्पन्न होती है, और इस प्रभु-स्मरण की वृत्ति के अनुपात में दिव्य गुणों का विकास होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमारे में ज्ञानदुग्ध का पूरण करता है, (ख) यह हमें प्रभु-स्मरण की वृत्तिवाला बनाता है, (ग) और हमारे में दिव्य गुणों का विकास करता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वार्य-देव-ऋत

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः। सोमः पुनानो अर्षति॥ ५॥

(१) **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **सोमः**=सोम (=वीर्य) **विश्वानि**=सब **वार्या**=वरणीय वस्तुओं के **अभि**=ओर **अर्षति**=गतिवाला होता है। यह हमें सब चाहने योग्य चीज़ों को प्राप्त कराता है। इसी से जीवन में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती। (२) यह सोम **ऋतावृधः**=ऋत का, सत्य का व यज्ञ का वर्धन करनेवाले **देवान्**=दिव्य गुणों की **अभि**=ओर गतिवाला होता है। सोमरक्षण से हम ऋत का मेल करते हैं और जीवनों में दिव्य गुणों

का विकास होता है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होने पर हमारे जीवनों में सब वरणीय वस्तुओं को, दिव्य गुणों को तथा ऋत को बढ़ाता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'गति व शक्ति' सम्पन्न

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः। पवस्व बृहतीरिषः॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **सुतः**=उत्पन्न हुई-हुई तू **नः**=हमारे लिये **बृहतीः**=वृद्धि की कारणभूत **इषः**=प्रेरणाओं को **पवस्व**=प्राप्त करा। इस सोम के सुरक्षण से हृदय पवित्र होता है। पवित्र हृदय में प्रभु-प्रेरणा सुनाई पड़ती है। (२) यह प्रभु-प्रेरणा **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाली होती है, **वीरवत्**=यह हमें वीरता प्राप्त कराती है। अथवा उत्तम वीर सन्तानों के देनेवाली होती है। **अश्वावत्**=यह प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाली है तथा **वाजवत्**=गति व शक्तिवाली है (वज् गतौ)।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें प्रभु-प्रेरणा के सुननेवाला बनाता है। इस प्रभु-प्रेरणा से हम प्रशस्त इन्द्रियोंवाले वीर व 'शक्ति व गति-सम्पन्न' बन पाते हैं।

मेध्यातिथि ही कहते हैं—

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोभिः गीर्भिः

यो अत्यइव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः। तं गीर्भिर्वासयामसि॥ १॥

(१) **यः**=जो सोम **अत्यः इव**=सततगामी अश्व के समान है, अर्थात् यह हमें शक्ति-सम्पन्न बनाकर खूब ही गतिमय करता है। यह सोम **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **मृज्यते**=शुद्ध किया जाता है। यदि हम स्वाध्याय में लगते हैं तो वासनाओं से आक्रान्त न होने से यह सोम शुद्ध बना रहता है। यह **मदाय**=आनन्द व उल्लास के लिये होता है। **हर्यतः**=गतिशील व कान्त होता है। हमें गतिशील बनाता है, चाहने योग्य होता है। (२) **तम्**=उस सोम को **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **वासयामसि**=अपने अन्दर धारण करते हैं। प्रभु-स्तवन करते हैं और प्रभु-स्तवन द्वारा सोम का रक्षण कर पाते हैं। यह प्रभु-स्मरण हमें वासनाओं से बचाता है, और इस प्रकार सोम को हमारे में बसाता है।

भावार्थ—स्वाध्याय (गोभिः व स्तुति (गीर्भिः) सोमरक्षण के साधन हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्राय पीतये

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा। इन्दुमिन्द्राय पीतये॥ २॥

(१) **तं इन्दुम्**=उस शक्तिशाली सोम को **नः**=हमारी **विश्वाः**=सब **अवस्युवः**=रक्षण की कामनावाली **गिरः**=स्तुति-वाणियाँ **पूर्वथा**=पालन व पूरण के प्रकार से **शुम्भन्ति**=अलंकृत करती हैं। स्तुति-वाणियाँ प्रभु के स्मरण के द्वारा हमारे जीवन में वासनाओं को नहीं पैदा होने देती। वासनाओं के अभाव में सोम हमारे शरीर में सुरक्षित रहता हुआ उसका पालन व पूरण करता है (पृ पालनपूरणयोः)। यह सोम शरीर का रोगों से पालन (बचाव) करता है। मन का पूरण करता

है, मन में वासनाओं को नहीं आने देता। (२) वासनाओं के अभाव में यह सोम **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये होता है। तथा **पीतये**=सब प्रकार से हमारे रक्षण के लिये होता है।

भावार्थ—प्रभु उपासना के द्वारा शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम प्रभु प्राप्ति के लिये तथा रक्षण के लिये साधन बनता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विप्र मेध्यातिथि द्वारा सोम का पवित्रीकरण

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः। विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

(१) **विप्रस्य**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले, **मेध्यातिथेः**=पवित्र प्रभु को अपना अतिथि बनानेवाले, प्रभु का, हृदयासन पर बिठाकर, आतिथ्य करनेवाले, ज्ञानी पुरुष की **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों से यह **सोमः**=सोम (वीर्य) **परिष्कृतः**=सुसंस्कृत होता है। प्रभु की उपासना, वासनाओं को नहीं पैदा होने देती। यह वासनाशून्यता सोम को पवित्र रखती है। (२) यह पवित्र **हर्यतः**=कान्ति से युक्त सोम **पुनानः**=हमारे जीवन को पवित्र करता हुआ **याति**=हमें प्राप्त होता है, शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला होता है।

भावार्थ—स्तुति-वाणियों से परिष्कृत हुआ-हुआ सोम हमें पवित्र करता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सुश्री सहस्रवर्चस्' रयि

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम्। इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले **सोम**=वीर्य तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रयिम्**=रयि शक्ति को **विदा**=प्राप्त करा। 'रयि' धन को कहते हैं। जीवन को धन्य बनानेवाली सभी चीजें धन हैं, रयि हैं। सोम के रक्षण से ही इनकी प्राप्ति होती है। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू हमारे लिये उस रयि को प्राप्त करा जो कि **सुश्रियम्**=उत्तम श्री (शोभा) को देनेवाली है और **सहस्रवर्चसम्**=अनन्त शक्ति को प्राप्त करानेवाली है। सोम से शोभा व शक्ति प्राप्त होती है।

भावार्थ—सोम के रक्षण से हम शोभा व शक्ति-सम्पन्न रयि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाजसृत्

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ। यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥

(१) **इन्दुः**=यह हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान है। यह हमें शक्ति-सम्पन्न करके खूब क्रियाशील बनाता है। यह सोम **वाजसृत्**=संग्राम में गतिवाला होता है। यह संग्राम अध्यात्म संग्राम है। इस संग्राम में यह सोम काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का पराभव करता है। **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **आकनिक्रन्ति**=यह खूब ही प्रभु-स्तवन करता है। सोमरक्षण से अशुभ वृत्तियों का विनाश होता है, और प्रभु-स्मरण की भावना जागती है। (२) **यद्**=जब **अति अक्षाः**=यह सोम अतिशयेन शरीर में व्याप्त होता है, तो **देवयुः**=हमारे साथ दिव्य गुणों को जोड़नेवाला होता है। हमारे में दिव्य गुणों का वर्धन करता हुआ यह सोम

हमें उस 'देव' प्रभु से मिलानेवाला होता है। इस सोम के (वीर्य के) रक्षण से ही तो उस सोम की (प्रभु की) प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विप्र का वर्धक

पर्वस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे। सोम रास्वं सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **गृणतः**=स्तुति करते हुए **विप्रस्य**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष के **वाजसातये**=शक्ति को प्राप्त कराने के लिये तथा **वृधे**=वृद्धि के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। शरीर में सुरक्षित वीर्य शक्ति को प्राप्त कराता है और सब प्रकार की उन्नतियों का कारण बनता है। (२) हे सोम! तू **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्यशक्ति को **रास्व**=दे। उस शक्ति को दे जिससे कि हम सब रोगों को कम्पित करके नष्ट करनेवाले हों (वि ईरयति)।

भावार्थ—सोम हमें शक्ति को प्राप्त कराता है। यह हमारा वर्धन करता है। हमारे रोगों को कम्पित करके यह दूर करनेवाला होता है।

शक्ति को प्राप्त कराके यह सोम हमें 'अयास्य'=न थकनेवाला बनाता है। यह 'अयास्य' कहता है—

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'अयास्य' का देवों की ओर जाना

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि। अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥

(१) हे **इन्दो**=शक्ति को देनेवाले सोम! तू **नः**=हमारे **महे तने**=महान् शक्तियों के विस्तार के लिये होता है। तू **ऊर्मिं न**=(light, speed) प्रकाश व गति के समान **बिभ्रत्**=हमारा धारण करता हुआ **प्र अर्षसि**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त होता है। सोमरक्षण से ही मस्तिष्क में प्रकाश तथा शरीर में स्फूर्ति व गति उत्पन्न होती है। (२) प्रकाश तथा स्फूर्ति व गति से सम्पन्न यह **अयास्यः**=अनथक श्रमशील व्यक्ति **देवान् अभि**=दिव्य गुणों की ओर चलता है। दिव्य गुणों की ओर चलते-चलते ही तो यह उस 'देव' प्रभु तक पहुँचेगा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम प्रकाश व गति को प्राप्त कराके हमारा धारण करता है। यह हमें दिव्यगुणों की ओर ले चलता हुआ 'देव' प्रभु का प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम का दूरदेश में प्रेरण

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति। विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥

(१) **मती**=मननपूर्वक की गई स्तुति से **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक सेवन किया हुआ **सोमः**=सोम (वीर्य) **परावति**=सुदूर देश में, मस्तिष्क रूप द्युलोक में **हिन्वे**=प्रेरित किया जाता है। प्रभु-स्तवन सोमरक्षण का साधन बनता है। सुरक्षित सोम शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ मस्तिष्क रूप द्युलोक में प्रेरित होता है, यह सोम ज्ञान का साधन बनता है। यह **धिया हितः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के हेतु से शरीर में स्थापित हुआ है। इसकी शरीर में स्थिति से ही बुद्धि तीव्र बनती है।

(२) यह सोम **धारया**=अपनी धारक शक्ति के द्वारा **विप्रस्य**=ज्ञानी पुरुष का **कविः**=(कौति सर्वाः विद्याः) सब विद्याओं का उपदेश देनेवाला होता है। इसी से बुद्धि तीव्र बनती है और सब ज्ञानों का ग्रहण करनेवाली होती है। एवं सोम ज्ञानी पुरुष के लिये 'कवि' बनता है।

भावार्थ—मननपूर्वक स्तुति से सोम का रक्षण होता है। सुरक्षित सोम बुद्धि का यह वर्धक होता है और सब ज्ञानों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'जागृवि-विचर्षणि' सोम

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ। सोमो याति विचर्षणिः॥ ३॥

(१) **अयम्**=यह सोम **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **देवेषु**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **जागृविः**=सदा जागरणशील है यह शरीर में रोगों के आक्रमण को नहीं होने देता तथा मन को वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता। **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में यह **आ एति**=शरीर में समन्तात् गतिवाला होता है। (२) यह **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से देखनेवाला, ध्यान करनेवाला **सोमः**=सोम **याति**=शरीर में गति करता है।

भावार्थ—सोम सदा जागरुक रहकर हमारी रक्षा करता है।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वाज व श्रवस्' का विजेता सोम

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम्। बर्हिष्माँ आ विवासति॥ ४॥

हे सोम! **स**=वह तू **नः**=हमें **पवस्व**=पवित्र करनेवाला है, **वाजयुः**=बल को देनेवाला है, **चारु**=रमणीकता प्रदाता है, **अध्वरम्**=यज्ञ का प्रेरक है **बर्हिष्मान्**=दुरितों को दूर करता हुआ, **चक्राणः**=कर्मशील बनाता है, तथा **आ विवासति**=हमारे आच्छादन प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम हमें ज्ञान, बल, सौन्दर्य, उज्ज्वल चरित्र प्रदान करता है।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

विप्रवीर सदावृध

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः। सोमो देवेष्वा यमत्॥ ५॥

सः=वह **विप्रवीरः**=विद्वानों में श्रेष्ठ **सोमः**=सोम **देवेषु**=प्राणों में मुख्य प्राण या आत्मा के तुल्य **सदावृधः**=सदा बढ़ानेवाला **नः**=हमें **वायवे**=गतिशील **भगाय**=ऐश्वर्य के लिये **आयमत्**=नियम में चलाता है।

भावार्थ—हम ऐश्वर्य, गतिशीलता, प्राणशक्ति, विद्वत्ता वृद्धि के लिये सोम को धारण करें।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

क्रतुविद्गातुवित्तमः

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः। वाजं जेषि श्रवो बृहत्॥ ६॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **अद्य**=आज **नः**=हमारे **वसुत्तये**=धन लाभ के लिये **क्रतुवित्**=शक्ति को प्राप्त करानेवाला है तथा **गातुवित्तमः**=उत्कृष्ट मार्ग का ज्ञान देनेवाला है। सोम शक्ति (=क्रतु) को प्राप्त कराता है। यह ज्ञान वृद्धि के द्वारा मार्ग का प्रदर्शन करता है। शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके हम वसुओं (धनों) को प्राप्त करते हैं। (२) हे सोम! तू हमारे लिये **वाजं जेषि**=शक्ति का विजय

करता है। शक्ति के साथ **बृहत् श्रवः**=वृद्धि के कारणभूत महान् ज्ञान को तू हमारे लिये **जेषि**=जीतता है। शक्ति व ज्ञान की विजय हमारे जीवन को पूर्णता की ओर ले चलती है।

भावार्थ—सोम हमें शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराके सब वसुओं का विजेता बनाता है।

'अयास्य' ही कहते हैं—

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

देववीतये

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये। इन्दविन्द्राय पीतये॥ १॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **सः**=वह तू **मदाय**=हमारे उल्लास के लिये **कं पवस्व**=हमारे आनन्दों को पवित्र करनेवाला हो। हमारे आमोद-प्रमोद की पवित्रता ही 'हमें विलासी बन जाने से' बचाती है। यह विलास में न फँसना हमें जीर्ण होने से बचाता है और आनन्दमय बनाये रहता है। (२) हे सोम! तू **नृचक्षाः**=उन्नतिपथ पर चलनेवालों का (नृ) ध्यान करनेवाला है (चक्षस्) **देववीतये**=तू दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है (वी=गति=प्राप्ति) तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति के द्वारा **इन्द्राय**=उस प्रभु की प्राप्ति का साधन बनता है और **पीतये**=हमारे रक्षण के लिये होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारा रक्षण करता हुआ हमें दिव्य गुणों व प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दूत-कर्म करनेवाला' सोम

स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे। देवान्त्सखिभ्य आ वरम्॥ २॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **दूत्यं अभि अर्ष**=दूत-कर्म करने के लिये प्राप्त हो। तू हमारे लिये प्रभु के सन्देश को प्राप्त करानेवाला बन। **त्वम्**=तू **इन्द्राय**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **तोशसे**=हमारी वासनाओं का संहार करता है। वासनाओं के संहार से ही ज्ञानदीप्ति होकर हमें प्रभु का दर्शन होता है। (२) हे सोम! तू हम **सखिभ्यः**=सखाओं के लिये **देवान्**=दिव्य गुणों को तथा **वरम्**=वरणीय धन को **आ** (पवस्व)=प्राप्त करा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें (क) प्रभु का सन्देश सुनाता है, (ख) वासनाओं का संहार करता है, (ग) दिव्य गुणों को तथा श्रेष्ठ धन को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'ऐश्वर्य द्वार' का उद्घाटन

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम्। वि नो राये दुरो वृधि॥ ३॥

(१) हे सोम! **उत**=और **अरुणम्**=तेजस्वी **कम्**=आनन्दप्रद **त्वाम्**=तुझको **वयम्**=हम **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अञ्ज्मः**=अपने अन्दर संस्कृत करते हैं। तू **मदाय**=हमारे उल्लास का कारण बनता है। (२) हे सोम! तू **नः**=हमारे **राये**=ऐश्वर्य के लिये **दुरः विवृधि**=द्वारों को खोल डाल। सोमरक्षण से हम सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाले बनें। हमारे लिये ऐश्वर्य के द्वार खुले हों। अन्नमयादि सब कोशों को हम क्रमशः 'तेज, वीर्य, बल व ओज, मन्यु तथा सहस्' रूप ऐश्वर्यों से इस सोम के द्वारा ही परिपूर्ण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहकर हम सोम को शरीर में सुरक्षित करते हैं। यह सुरक्षित सोम हमारे लिये ऐश्वर्य के द्वारों को खोल डालता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'जीवनयात्रा की पूर्ति का साधक' सोम

अत्यू पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि। इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥

(१) **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **उ**=निश्चय से **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **अति अक्रमीत्**=अतिशयेन प्राप्त होता है। उसी प्रकार प्राप्त होता है **न**=जैसे कि **यामनि**=जीवनयात्रा के मार्ग में **वाजा**=एक तीव्रगतिवाला घोड़ा **धुरम्**=रथ की धुरा को प्राप्त होता है। घोड़ा रथ में जुतकर हमें लक्ष्य पर पहुँचाता है। इसी प्रकार यह सोम शरीर में सुरक्षित होकर हमें ब्रह्म तक पहुँचानेवाला होता है। (२) यह **इन्दुः**=सोम **देवेषु**=देववृत्तिवाले व्यक्तियों में **पत्यते**=गतिवाला होता है। वस्तुतः हमारे शरीरों में ही गतिवाला होकर यह सोम ही हमें दिव्य गुणोंवाला बनाता है।

भावार्थ—सोम हमारी जीवनयात्रा की पूर्ति का साधन बनता है, यह हमें देववृत्ति का बनाता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'नाव' रूप सोम

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम्। इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥

(१) **ई**=निश्चय से **सखायः**=प्रभु के मित्र **इन्दुम्**=इस सोम का **सं अस्वरन्**=सम्यक् स्तवन करते हैं। वे गुणों का प्रतिपादन करते हैं। सोम के गुणों का स्मरण सोमरक्षण के लिये प्रेरक बनता है। उसका स्तवन करते हैं जो कि **वने क्रीडन्तम्**=उपासक में (वन संभक्तौ) क्रीडा का करनेवाला है। उपासक को सोम क्रीडक की मनोवृत्तिवाला बनाता है। यह सोमरक्षक पुरुष (sport's man like spirit) क्रीडक की मनोवृत्तिवाला होता है। हम उस सोम का स्तवन करते हैं जो कि **अत्यविम्**=अतिशयेन रक्षक है। यह हमें रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता, वासनाओं का शिकार होने से बचाता है। (२) **इन्दुम्**=इस सोम को **नावा**=एक नाव के रूप से **अनूषत**=स्तुत करते हैं। यह सोम जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये एक नौका के समान बनता है, इसके द्वारा हम भवसागर को आसानी से पार कर पाते हैं।

भावार्थ—सोम हमें (क) क्रीडक की मनोवृत्तिवाला बनाता है, (ख) हमारा रक्षण करता है, (ग) भवसागर को तैरने के लिये नाव के समान होता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विशिष्ट दृष्टि शक्ति व सुवीर्य

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे। इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

(१) हे सोम! **तया**=उस **धारया**=धारण शक्ति के साथ तू हमें **पवस्व**=प्राप्त हो, **यया**=जिससे **पीतः**=शरीर के अन्दर ही पिया हुआ तू **विचक्षसे**=विशिष्ट दृष्टि शक्ति के लिये हो, हमारे ज्ञान को तू बढ़ानेवाला हो। (२) हे **इन्दो**=सोम! तू **स्तोत्रे**=स्तोता के लिये **सुवीर्यम्**=उत्कृष्ट वीर्य को प्राप्त करानेवाला बन। इस वीर्य के द्वारा वह स्तोता नीरोग जीवनवाला बने।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम उस शक्ति को देता है जिससे कि स्तोता नीरोग व विशिष्ट

दृष्टि शक्तिवाला बनता है।

अगले सूक्त में भी 'अयास्य' ही कहते हैं कि—

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'पर्वतावृधः' सोमासः

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्याइव। क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥

(१) ये सोम **देववीतये**=दिव्य गुणों की तथा दिव्य गुणों के द्वारा उस देव की प्राप्ति के लिये **असृग्रन्**=उत्पन्न किये जाते हैं। ये सोम **इव**=उस प्रकार के हैं जैसे कि **कृत्व्याः**=कर्म में कुशल **अत्यासः**=निरन्तर गतिशील घोड़े हों। जैसे ये घोड़े हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं, इसी प्रकार ये सोमकण भी हमारी लक्ष्य प्राप्ति का कारण बनते हैं। (२) ये **पर्वतावृधः**=(पर्वतेन=) ज्ञान व ब्रह्मचर्य आदि से वृद्धि को प्राप्त होनेवाले सोम **क्षरन्तः**=शरीर में व्याप्त होनेवाले होते हैं। (य० ३५।१५) आचार्य पर्वत का अर्थ 'ज्ञान व ब्रह्मचर्य' करते हैं। सोमरक्षण के ये ही साधन हैं। इनके द्वारा सोमकण शरीर में ही क्षरित होते हैं।

भावार्थ—ज्ञान व ब्रह्मचर्य से शरीर में ही गतिवाले ये सोमकण दिव्य गुणों के वर्धन व प्रभु की प्राप्ति के लिये होते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

परिष्कृत सोम

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती। वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥

(१) **परिष्कृतासः**='ज्ञान व ब्रह्मचर्य' आदि से परिष्कृत हुए-हुए **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले **सोमाः**=सोमकण **वायुम्**=(वा गतिगन्धनयोः) गति के द्वारा सब बुराइयों का संहार करनेवाले प्रभु के प्रति **असृक्षत**=गतिवाले होते हैं। ये सोमकण हमें प्रभु के प्रति ले चलते हैं। (२) ये सोमकण हमें इस प्रकार प्रभु की ओर ले चलते हैं, **इव**=जैसे कि **पित्र्यावती**=उत्तम माता-पितावाली **योषा**=एक युवति वर के प्रति जाती है। जीव पत्नी है, प्रभु पति। इस पति-पत्नी सम्बन्ध को स्थिर रखनेवाला यह सोम है। शरीर में जब तक सोम का रक्षण रहता है तब तक जीव प्रभु का भक्त व उपासक बना रहता है।

भावार्थ—परिष्कृत सोम हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः

एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः। इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥

(१) **एते**=ये **सोमासः**=सोमकण **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले हैं। **प्रयस्वन्तः**=ये प्रकृष्ट उद्योगवाले हैं। हमें खूब क्रियाशील बनानेवाले हैं। **चमू सुताः**=द्यावापृथिवी के निमित्त, मस्तिष्क व शरीर के निमित्त उत्पन्न किये गये हैं। मस्तिष्क को ये ज्ञानदीप्त बनाते हैं और शरीर को शक्ति-सम्पन्न। (२) ये सोम **इन्द्रम्**=एक जितेन्द्रिय पुरुष को **कर्मभिः**=कर्मों के द्वारा **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। कर्मों में लगे रहने से ही इनका रक्षण होता है। रक्षित हुए-हुए सोम हमारा वर्धन करते हैं।

भावार्थ—'कर्मों में लगे रहना' हमें वासनाओं से बचाता है। वासनाओं के अभाव में सोम का रक्षण होता है। यह मस्तिष्क व शरीर का ज्ञान व शक्ति द्वारा वर्धन करता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान द्वारा सोम का उचित परिपाक

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना। गोभिः श्रीणीत मत्सरम्॥ ४॥

(१) हे **सुहस्त्यः**=शोभन कर्मों में प्रवृत्त पुरुषो! (शोभनौ हस्तौ येषां) **आ धावता**=इस सोम को समन्तात् शुद्ध करो। **मन्थिना**=ग्रन्थों का मन्थन करनेवाले के साथ, अर्थात् ज्ञानचर्चा में आसीन होकर, **शुक्रा**=सोम का **गृभ्णीत**=ग्रहण करो। ज्ञानचर्चा में लगे रहना सोमरक्षण का सर्वोत्तम मार्ग है। (२) **गोभिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा **मत्सरम्**=आनन्द को सञ्चरित करनेवाले इस सोम को **श्रीणीत**=परिपक्व करो। ज्ञान में लगे रहने से ही इस सोम में विकार नहीं आते और इसका ठीक परिपाक होता है।

भावार्थ—यज्ञादि कर्मों में लगे रहकर व ज्ञानचर्चा में प्रवृत्त रहकर हम सोम का रक्षण व ठीक परिपाक करें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'गातुवित्' सोम

स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः। अस्मभ्यं सोम गातुवित्॥ ५॥

(१) हे **धनञ्जय**=हमारे लिये सब आवश्यक धनों का विजय करनेवाले सोम! **सः**=वह तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो, हमारे जीवन को पवित्र कर। तू **महः राधसः**=उत्कृष्ट कार्यसाधक धन का **प्रयन्ता**=देनेवाला है। सोमरक्षण करनेवाला सदा उत्तम मार्गों से धनों का विजय करनेवाला बनता है। (२) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **गातुवित्**=मार्ग को प्राप्त करानेवाला है। हमारे लिये मार्ग का तू ज्ञान देनेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण से शक्ति में वृद्धि होकर हम सांसारिक अभ्युदय को प्राप्त करते हैं। इससे ज्ञान में वृद्धि होकर हम मार्ग को देखनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवमान-मत्सर-मद

एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः। इन्द्राय मत्सरं मदम्॥ ६॥

(१) **दश क्षिपः**=विषय-वासनाओं को अपने से परे फेंकनेवाली दस इन्द्रियाँ **एतम्**=इस **मर्ज्यम्**=जीवन शोधकों में सर्वोत्तम सोम को **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। इन्द्रियाँ=विषयों में नहीं जाती तो यह सोम पवित्र बना रहता है। (२) यह **पवमानम्**=हमें पवित्र करनेवाला है। **मत्सरम्**=हमारे में आनन्द का संचार करनेवाला है। **मदम्**=हमें एक अध्यात्म मस्ती को देनेवाला है। इस प्रकार **इन्द्राय**=यह हमें उस प्रभु के लिये ले चलनेवाला है।

भावार्थ—विषयों से ऊपर उठकर हम सोम का रक्षण करें। यह 'पवमान, मत्सर व मद' है। हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

यह सोम का रक्षण करनेवाला गम्भीरता से प्रत्येक चीज के तत्त्व को देखनेवाला 'कवि' बनता है, अपनी शक्तियों का ठीक परिपाक करता हुआ यह 'भार्गव' बनता है। 'भ्रस्ज पाके'। यह कवि

भार्गव कहता है—

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तेजस्विता का वर्धन

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत। मन्दान उद् वृषायते ॥ १ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **अया सुकृत्यया**=इस शोभन क्रियाशीलता के द्वारा **महः चित् अभि**=तेजस्विता की ओर **अवर्धत**=बढ़ता है। यदि हम यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहते हैं तो हम वासना के शिकार नहीं होते। इससे सोम सुरक्षित रहता है और तेजस्विता का अभिवर्धन होता है। (२) इस सोम के रक्षण के होने पर **मन्दानः**=मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ **उद् वृषायते**=उत्कृष्ट शक्तिशाली पुरुष की तरह आचरण करता है। निर्बल पुरुष 'ईर्ष्या, द्वेष व क्रोध' में चलता है। सबल पुरुष इन भावों को हेय समझता हुआ कभी इनसे प्रेरित नहीं होता।

भावार्थ—सोमरक्षण से तेजस्विता का वर्धन होता है और यह सोमी उत्कृष्ट शक्तिशाली पुरुष की तरह आचरण करता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋण चयण

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा। ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥

अस्य=इस सोम के **दस्युतर्हणा**=दुष्ट विचारों को नष्ट करनेवाले **कर्त्वा**=कर्त्तव्य और **कृतानि इत**=किये कार्य भी **चेतन्ते**=सब जानते हैं। **धृष्णु**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाला (कामादि का विजेता) **ऋणा च चयते**=सद्गुणों का संचय भी करता है।

भावार्थ—सोमी दुष्ट विचारों का शमन तथा सद्विचारों का संग्रह करता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सहस्त्रसा

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्। उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

यत् अस्य=जब सोम का **उक्थं**=उत्पादन **जायते**=होता है। **आत्**=इसके बाद यह **सोम**=वीर्य शक्ति से **इन्द्रिय**=ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ **सहस्त्रसाः**=बहुत प्रकार से **रसः**=बलवती और **वज्रः**=तेजस्विनी **भुवत्**=बन जाती हैं।

भावार्थ—सोम हमारी उभयेन्द्रियों की शक्तियों का वर्धन करता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्वयं कवि

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति। यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

(१) यह सोम **स्वयं कविः**=स्वयं कवि है, क्रान्तदर्शी है, बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाला है। **विधर्तरि**=अपना धारण करनेवाले में **विप्राय**=उस सर्वज्ञ ब्रह्म की प्राप्ति के लिये **रत्नम्**=रमणीय वस्तुओं को **इच्छति**=चाहता है। यह सोम हमें शरीर में नीरोगता प्रदान करता है, मन में निर्मलता को उत्पन्न करता है, बुद्धि को यह तीव्र बनाता है। इन 'नीरोगता, निर्मलता व बुद्धि की तीव्रता' रूप रत्नों के द्वारा यह हमें उस सर्वज्ञ प्रभु की प्राप्ति करानेवाला है। (२) यह सोम हमें तभी प्रभु

को प्राप्त कराता है यत्=जब कि ई=निश्चय से यह धियः=बुद्धियों को व कर्मों को मर्मृज्यते=खूब ही शुद्ध करता है। हमारे कर्मों को पवित्र करता हुआ यह कर्मेन्द्रियों का शोधन करता है, तो हमारे ज्ञानों का शोधन करता हुआ यह हमारी ज्ञानेन्द्रियों को शुद्ध बनाता है। इन्द्रियों का शोधन करता हुआ यह सोम हमें विषयों से दूर व प्रभु के समीप करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे ज्ञानों व कर्मों को शुद्ध करता हुआ हमें उन रमणीय वस्तुओं को प्राप्त कराता है, जो कि हमें प्रभु के समीप ले जानेवाली होती हैं।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

धनों को देने की कामनावाला (रयीणां सिषासतुः)

सिषासतू रयीणां वाजेष्ववतामिव। भरेषु जिग्युषामसि॥ ५॥

(१) हे सोम! तू **भरेषु**=संग्रामों में **जिग्युषाम्**=विजय की कामनावालों के लिये **रयीणाम्**=धनों के **सिषासतुः**=देने की कामनावाला **असि**=है। 'काम-क्रोध-लोभ' आदि आसुरभावों के साथ संग्राम करनेवाले को यह सोम उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्त कराता है। यह विजेता 'तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु व सहस्' रूप ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाला होता है। (२) **इव**=जिस प्रकार **वाजेषु**=युद्धों में **अर्वताम्**=घोड़ों को घास आदि देते हैं, इसी प्रकार सोम हमें संग्रामविजयेच्छु होने पर सब रयि प्राप्त कराता है।

भावार्थ—वासना-संग्राम में विजयी बनें, तो सुरक्षित सोम हमारे लिये सब ऐश्वर्यों को देता है।

अगले सूक्त में भी 'कवि भार्गव' ही कहता है—

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'शक्ति का धारक' सोम

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः। चारुं सुकृत्ययेमहे॥ १॥

(१) हे सोम! **नृम्णानि बिभ्रतम्**=(strength, wealth) शक्तियों व तेज आदि ऐश्वर्यों को धारण करते हुए **चारुम्**=सुन्दर जीवन को सुन्दर बनानेवाले, **तं त्वा**=उस तुझ को **सुकृत्यया**=शोभन कर्मों के द्वारा **ईमहे**=(wish, desire) चाहते हैं। सोम के रक्षण से हमारी प्रवृत्ति शुभ कर्मों की ओर ही होती है। (२) **महः दिवः**=महान् ज्ञान के **सधस्थेषु**=मिलकर ठहरने के स्थानों के निमित्त हम इस सोम की कामना करते हैं। सोम के रक्षण से हम चित्तवृत्ति का निरोध करके हृदय में प्रभु का दर्शन करते हैं। यह हृदय 'सधस्थ' होता है, यहाँ हम परमात्मा के साथ स्थित हो रहे होते हैं। इस स्थिति में ही हमें महान् ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसलिए 'महः दिवः सधस्थेषु' इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसके रक्षण से हम उत्तम कर्मों में प्रेरित होते हैं। यह हमारे लिये शक्ति व धनों को धारण करता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'शतं पुरो रुरुक्षणिम्' (clearing, of the slum)

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्। शतं पुरो रुरुक्षणिम्॥ २॥

(१) हम उस सोम को (ईमहे=) चाहते हैं जो कि **संवृक्तधृष्णुम्**=(संवृक्त=संछिन्न) नष्ट

किये हैं, धर्षणशील शत्रु जिसने ऐसा है। यह सोम 'काम-क्रोध-लोभ' को नष्ट करता है, ये शत्रु हमारा धर्षण करते हैं। सुरक्षित सोम इन धर्षक शत्रुओं को छिन्न कर डालता है। **उक्थ्यम्**=यह सोम स्तुत्य है अथवा हमें स्तुति में प्रेरित करनेवाला है। सोम के रक्षित होने पर हम प्रभु-स्तवन की ओर प्रवृत्त होते हैं। यह सोम **महामहिव्रतम्**=महान् बहुत कर्मोंवाला है। सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष महनीय कर्मों में प्रवृत्त रहता है। यह सोम **मदम्**=हमारे लिये उल्लास को देनेवाला है। (२) यह सोम शरीर में बने हुए असुरों के **शतम्**=सैकड़ों **पुरः**=नगरों को **रुरुक्षणिम्**=(विनाशयन्तम्) नष्ट करनेवाला है। 'काम' इन्द्रियों में, 'क्रोध' मन में व 'लोभ' बुद्धि में अपना नगर बनाता है। इन सब नगरों को यह सोम विध्वस्त करता है। यह सोम हमारे शरीर को असुर-पुरियों की स्थापना से मलिन नहीं होने देता। इन आसुरभावों से (slum) में परिवर्तित हुए-हुए शरीर को इन के विनाश से फिर से यह सोम सुन्दर बना देता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शत्रुओं का धर्षण करनेवाला है, हमें स्तुति में प्रवृत्त करता है, महनीय कर्मों के प्रति झुकाववाला बनाता है, उल्लासमय करता है। यह असुरों की नगरियों का विध्वंस करता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सुपर्ण अव्यथि' का सोम धारण

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथिर्भरत्॥ ३॥

(१) हे **सुक्रतो**=शोभन कर्मन् व शोभन शक्तिवाले सोम! **अतः**=क्योंकि तू गत मन्त्र के अनुसार असुर-पुरियों का विध्वंस करता है, इसलिए **सुपर्णः**=अपना उत्तमता से पालन व पूरण करनेवाला व्यक्ति **अव्यथिः**=कार्यों को न व्यथित होकर करनेवाला व्यक्ति **दिवः**=प्रकाश के हेतु से **भरत्**=अपने अन्दर तुझे भरता है, शरीर में ही तेरे धारण का प्रयत्न करता है। (२) हे सोम! यह 'अव्यथि सुपर्ण' उस तेरे धारण का प्रयत्न करता है जो तू **रयिं अभि**=ऐश्वर्य का लक्ष्य करके **राजानम्**=दीप्त होनेवाला है। सोम अन्नमय आदि सब कोशों को तेज आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न करता है। इन ऐश्वर्यों से सम्पन्न करके यह हमें दीप्ति प्रदान करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम (क) अपने को वासनाओं के आक्रमण से बचायें तथा (ख) अनथक रूप से कार्यों में लगे रहें। यह सुरक्षित सोम हमें दीप्त जीवनवाला बनायेगा।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वि' (गतिशील, यज्ञशील) का सोम-भरण

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्। गोपामृतस्य विर्भरत्॥ ४॥

(१) **विः**=(goer, sacrificer) गतिशील व त्यागशील (यज्ञादि उत्तम कर्मों को करनेवाला) पुरुष **इत्**=निश्चय से **विश्वस्मा**=सम्पूर्ण **स्वर्दृशे**=ज्ञान की प्राप्ति के लिये सोम का **भरत्**=अपने अन्दर धारण करता है। 'गतिशीलता व त्यागशीलता' सोमरक्षण के लिये सहायक बनती हैं। सुरक्षित सोम हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है। (२) यह 'वि' उस सोम का धारण करता है जो कि **साधारणम्**=सब प्राणियों में समान रूप से प्रभु द्वारा स्थापित किया गया है। **रजस्तुरम्**=जो सोम सुरक्षित होने पर राजसभावों को विनष्ट करनेवाला है। और जो सोम **ऋतस्य गोपाम्**=हमारे जीवनों में ऋत का रक्षक है। सोम के रक्षण से हमारे जीवनों में सब चीज ठीक ही होती है।

भावार्थ—गतिशीलता व त्यागशीलता सोमरक्षण के साधन हैं। सुरक्षित सोम हमारे अन्दर

ऋत का रक्षण करता है। यह राजसभावों को विनष्ट करता है और हमारे ज्ञान को बढ़ाता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'उत्कृष्ट महिमा' वाला सोम

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे। अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥

(१) यह सोम **अधा**=अब, गत मन्त्र अनुसार गतिशीलता व त्यागशीलता से शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ **इन्द्रियम्**=बल व वीर्य को **हिन्वानः**=प्रेरित करता हुआ **ज्यायः महित्वम्**=उत्कृष्ट महिमा को **आनशे**=व्याप्त करता है, सोम के रक्षण से हमारा बल व वीर्य बढ़ता है और हमें उत्कृष्ट महिमा प्राप्त होती है। (२) यह सोम **अभिष्टिकृद्**=हमारी सब वासनाओं व व्याधियों पर आक्रमण करनेवाला है। यह **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से ध्यान करनेवाला है। यह हमें सब प्रकार से सुरक्षित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमारे अन्दर शक्ति को प्राप्त कराता है, (ख) हमें महत्त्वपूर्ण जीवनवाला बनाता है, (ग) हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करता है, (घ) हमारा विशेषरूप से ध्यान करता है।

अगला सूक्त भी इस कवि भार्गव का ही है—

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अयक्ष्माः बृहतीः इषः

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि। अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

(१) हे सोम! तू **नः**=हमारे लिये **वृष्टिम्**=सुखों के वर्षण को **आ सु पवस्व**=समन्तात् उत्तमता से प्राप्त करा सोमरक्षण के द्वारा हम सर्वथा सुखी हों। **दिवः परि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से **अपाम्**=कर्मों की **ऊर्मिम्**=तरंग को प्राप्त करा। अर्थात् सोमरक्षण के द्वारा हम सदा ज्ञानपूर्वक बड़े उल्लास के साथ कर्मों को करनेवाले हों। (२) हे सोम! तू हमें उन **इषः**=प्रेरणाओं को प्राप्त करा जो कि **अयक्ष्माः**=सब प्रकार के रोगों से रहित हैं, हमें सब रोगों से ऊपर उठानेवाली हैं तथा **बृहतीः**=हमारी वृद्धि का कारण बनती है। अन्तःस्थित प्रभु से हमें प्रेरणा प्राप्त होती है। यह प्रेरणा हमारे उत्थान का कारण बनती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमें नीरोग बनाकर सुखी करता है, (ख) ज्ञानपूर्वक उत्साहमय कर्मों में लगाता है, (ग) प्रभु प्रेरणा को सुनने योग्य हमें बनाता है। यह प्रेरणा हमें नीरोग व उन्नत करती है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जन्यासः गावः

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन्। जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

(१) हे सोम! तू **तया धारया**=अपनी उस धारणशक्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो, **यया**=जिससे **गावः**=वेदवाणियाँ **हि**=यहाँ इस जीवन में **आगमन्**=हमें प्राप्त हों। (२) **जन्यासः**=(जननं जनः, तत्र उत्तमाः) सद्गुणों के विकास में उत्तम ये वेदवाणियाँ **नः**=हमारे **गृहम्**=इस शरीररूप घर में **उप**=समीपता से प्राप्त हों। सोमरक्षण से बुद्धि तीव्र होती है और हम ज्ञान की वाणियों को अपनाने के लिये तैयार होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें वे वेदवाणियाँ प्राप्त होती हैं जो कि हमारे जीवनों में सद्गुणों को जन्म देनेवाली होती हैं।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्द की वृष्टि

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः। अस्मभ्यं वृष्टिमा पव॥ ३॥

(१) हे सोम! तू **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **घृतं पवस्व**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति को **पवस्व**=प्राप्त करा। तू **यज्ञेषु**=उत्तम कर्मों के होने पर **देववीतमः**=अधिक से अधिक दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाला हो। (२) **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **वृष्टिम्**=आनन्द की वर्षा को **आपव**=सर्वथा प्राप्त करा। सोमरक्षण से ही योग में प्रगति होकर हम धर्ममेघ समाधि तक पहुँचते हैं और आनन्द की वर्षा को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) मल नष्ट होते हैं, (ख) ज्ञानदीप्त होता है, (ग) दिव्य गुणों का वर्धन होता है, (घ) हम यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, (ङ) समाधि में आनन्द की वर्षा का अनुभव होता है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पवित्र हृदय में प्रभु-प्रेरणा का श्रवण

स नं ऊर्जे व्यव्ययं पवित्रं धाव धारया। देवासः शृणवन्हि कम्॥ ४॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमें **ऊर्जे**=बल व प्राणशक्ति को प्राप्त कराने के लिये **धाव**=प्राप्त हो **अव्ययम्**=(अ-वि-अय्) इधर-उधर न भटकनेवाले **पवित्रम्**=पवित्र हृदय को तू **वि धाव**=विशेष रूप से शुद्ध कर डाल। (२) **हि**=जिससे निश्चयपूर्वक **देवासः**=देववृत्ति के बनकर हम लोग **कम्**=प्रभु की सुखकर प्रेरणा को **शृण्वन्**=सुननेवाले बनें। हमें अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा सुन पड़े। यह प्रेरणा हमें उत्थान की ओर ले जाकर देव बनाती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हृदय पवित्र व न भटकनेवाला बनता है। वहाँ प्रभु की प्रेरणा सुन पड़ती है।

ऋषिः—**कविर्भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रक्षोहनन

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्। प्रत्नवद्रोचयन्रुचः॥ ५॥

(१) **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला सोम **असिष्यदत्**=शरीर में प्रवाहित होता है। यह शरीर के अंग-प्रत्यंगों में **रक्षांसि**=अपने रमण के लिये हमारा क्षय करनेवाले इन रोगकृमियों को **अपजङ्घनत्**=विनष्ट करता है। इस प्रकार यह सोम हमें नीरोग बनाता है। यह नीरोगता हमारी तेजस्विता का कारण बनती है। (२) यह सोम **प्रत्नवत्**=उस सनातन प्रभु की तरह **रुचः**=दीप्तियों को **रोचयन्**=हमारे में दीप्त करता है। सोमरक्षण से हम प्रभु की तरह दीप्त हो उठते हैं। सोम हमें प्रभु की तरह दीप्त ज्ञानवाला बनाता है, तेजस्वी बनाता है। यह सोमरक्षक ब्रह्म का ही छोटा रूप प्रतीत होने लगता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम नीरोग अतएव तेजस्वी बनते हैं, हमारे में ज्ञानदीप्ति चमक उठती है।

यह दीप्त ज्ञानवाला व्यक्ति सोमरक्षण के उद्देश्य से ही प्रभु के स्तुति-वचनों का उच्चारण करता है। ये स्तुति-वचन 'उचथ' हैं, इनमें उत्तम यह 'उच्थ्य' है। यह सोम के लिये कहता है—

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शरीर में बल, मस्तिष्क में ज्ञान, हृदय में प्रभु-प्रेरणा

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः। वाणस्य चोदया पविम्॥ १॥

(१) हे सोम! **ते**=तेरे **शुष्मासः**=शत्रु-शोषक बल **उद् ईरते**=उद्गत होते हैं। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर वह वर्चस् (vitality) उत्पन्न होता है जो कि सब रोगकृमियों का शोषण कर देता है। यह शुष्म उसी प्रकार उत्पन्न होता है **इव**=जैसे कि **सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः**=ज्ञान-समुद्र की तरंगों का शब्द उत्पन्न होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि भी दीप्त हो उठती है। ज्ञानजल का प्रवाह नियम से हमारे में प्रवाहित होने लगता है। (२) हे सोम! तू **वाणस्य**=वाचस्पति प्रभु की **पविम्**=वाणी को **चोदया**=हमारे में प्रेरित कर। सोमरक्षण से हृदय इस प्रकार पवित्र हो जाता है कि उसमें प्रभु की वाणी सुन पड़ने लगती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) शरीर में शत्रु-शोषक बल प्राप्त होता है, (ख) मस्तिष्क में ज्ञान-समुद्र की तरंगें उठने लगती हैं, (ग) हृदय में प्रभु की वाणी सुनाई पड़ती है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

तीनों ज्ञानवाणियों का उदीरण

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः। यदव्य एषि सानवि॥ २॥

(१) हे सोम! **ते प्रसवे**=शरीर में तेरे उत्पन्न होने पर **मखस्युवः**=यज्ञों को हमारे साथ जोड़नेवाली **तिस्रः वाचः**=ऋग्-यजु-साम रूप तीनों वाणियाँ **उदीरते**=उद्गत होती हैं। अर्थात् सोमरक्षण से हमें वह वेदज्ञान प्राप्त होता है, जो कि हमारे साथ यज्ञों को संगत करता है। (२) यह सब तब होता है **यद्**=जब कि **अव्ये**=जिसका बहुत अच्छी प्रकार रक्षण किया गया है उस **सानवि**=शिखर प्रदेश में, अर्थात् मस्तिष्क में तू **एषि**=प्राप्त होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ऊर्ध्वगतिवाला होकर जब मस्तिष्क में प्राप्त होता है, उस समय यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और हम ऋग्-यजु-साम रूप में उच्चरित प्रभु की वाणियों को समझनेवाले होते हैं। इन वाणियों के द्वारा हमें यज्ञों का ज्ञान प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से सोम की ऊर्ध्वगति होकर जब यह सोम मस्तिष्क में प्राप्त होता है तो हमें सब ज्ञान की वाणियाँ स्पष्ट होने लगती हैं।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'प्रिय-हरि-पवमान-मधुश्चुत्'

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। पवमानं मधुश्चुतम्॥ ३॥

(१) **अव्यः**=(अवति इति अविः) रक्षक के **वारे**=जिसमें से बुराइयों का निवारण किया गया है ऐसे हृदय में **प्रियम्**=प्रीणित करनेवाले **हरिम्**=दुःखों का हरण करनेवाले सोम को **अद्रिभिः**=(adore) उपासनाओं के द्वारा **परि हिन्वन्ति**=शरीर में चारों ओर प्रेरित करते हैं। जो व्यक्ति वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचाता है वह 'अवि' है। इसके वारे=वार में, अशुभ

वासनाओं के निवारणवाले हृदय में उपासनाओं के द्वारा सोम को शरीर में व्याप्त किया जाता है। यह सोम हरि है, सब दुःखों का हरण करनेवाला है। यह प्रिय है, शक्ति के संचार के द्वारा हमें प्रीणित करनेवाला है। (२) **पवमानम्**=यह सोम हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला है तथा **मधुश्चुतम्**=माधुर्य को हमारे में क्षरित करनेवाला है। सोमरक्षण से हमारा जीवन मधुर बनता है।

भावार्थ—सोम 'प्रिय-हरि-पवमान-मधुश्चुत्' है। प्रभु की उपासना के द्वारा इसका रक्षण होता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मदिन्तम कवि

आ प॑वस्व मदिन्तम प॒वित्रं॒ धार॑या कवे। अ॒र्कस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म्॥ ४॥

(१) हे **मदिन्तम**=अत्यन्त हर्ष को देनेवाले सोम! **आपवस्व**=तू हमें समन्तात् पवित्र कर। हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन्! बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले सोम! **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष का **धारया**=तू धारण कर। पवित्र हृदयवाले पुरुष में ही सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम उसका धारण करता है। सोम हमारा रक्षण इस प्रकार करता है कि यह हमारे ज्ञान को दीप्त करता है। (२) यह सोम **अर्कस्य**=उस अर्चनीय प्रभु के **योनिम्**=स्थान को **आसदम्**=आसीन होने के लिये होता है। अर्थात् सुरक्षित सोम हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें आनन्द को प्राप्त कराता है। ज्ञान को यह बढ़ानेवाला है। अन्ततः यह हमें ब्रह्मलोक में आसीन करता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रकाश-रश्मियों व प्रभु की प्राप्ति

स प॑वस्व मदिन्तम॒ गोभि॑रञ्जा॒नो अ॒क्तुभिः॑। इन्द॒विन्द्रा॑य पी॒तये॑॥ ५॥

(१) हे **मदिन्तम**=अत्यन्त हर्ष को देनेवाले सोम! **सः**=वह तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **अञ्जानः**=अलंकृत होता हुआ तू हमें पवित्र कर। **अक्तुभिः**=प्रकाश की रश्मियों के हेतु से तू हमें प्राप्त हो। जितना-जितना हम ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करेंगे उतना-उतना हम सोम रक्षण के योग्य बनेंगे। रक्षित सोम हमारे जीवन में प्रकाश की रश्मियों को प्राप्त करायेगा। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू रक्षित होकर **इन्द्राय**=हमें प्रभु को प्राप्त कराने के लिये हो, प्रभु प्राप्ति का साधन बन। **पीतये**=तू हमारे रक्षण के लिये हो, हमें रोगों से बचानेवाला हो।

भावार्थ—स्वाध्याय के द्वारा हम सोम का रक्षण करते हैं। रक्षित सोम हमें प्रकाश की रश्मियों को प्राप्त कराके प्रभु को प्राप्त कराता है।

उच्चथ्य ही कहते हैं—

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोम से प्रभु प्राप्ति व नीरोगता

अध्व॑र्यो॒ अद्रि॑भिः सु॒तं सोमं॑ प॒वित्र॒ आ सृ॑ज। पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे॥ १॥

(१) **अध्वर्यो**=हे यज्ञशील पुरुष! अहिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले पुरुष, **सुतं सोमम्**=शरीर

में उत्पन्न हुए-हुए सोम को **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **आसृज**=सर्वथा संसृष्ट कर। तू हृदय को पवित्र बना और इस प्रकार सोम का शरीर में ही रक्षण करनेवाला बन। (२) **पुनीहि**=इस सोम को तू सर्वथा पवित्र कर। इसमें वासनाओं के उबाल को मत पैदा होने दे। वासनाओं से मलिन हुआ-हुआ सोम शरीर में सुरक्षित नहीं रह सकता। यह पवित्र सोम **इन्द्राय**=प्रभु प्राप्ति के लिये होता है। और **पातवे**=शरीर के रक्षण के लिये होता है। इस सोम के द्वारा शरीर में रोगकृमियों का संहार होकर नीरोगता प्राप्त होती है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना द्वारा हृदय को पवित्र बनाकर हम सोम का रक्षण करते हैं। यह हमें नीरोग बनाता है और प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिवः पीयूषम्

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम्॥ २॥

(१) **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये और **वज्रिणे**=वज्रतुल्य दृढ़ शरीरवाला बनने के लिये **सोमम्**=सोम को (वीर्यशक्ति को) **सुनोता**=अपने अन्दर सम्पादित करो। शरीर में सुररिक्षत हुआ-हुआ यह सोम रोगकृमियों के विनाश के द्वारा हमें दृढ़ शरीरवाला बनाता है। यह हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है। (२) यह सोम तो **दिवः पीयूषम्**=द्युलोक का अमृत है। शरीर में मस्तिष्क ही द्युलोक है। यह सोम मस्तिष्क को कभी नष्ट न होने देनेवाला है। ज्ञानाग्नि का यही तो ईंधन बनता है। **उत्तम्**=यह उत्तम है, अर्थात् हमें सर्वोत्कृष्ट स्थिति में प्राप्त करानेवाला है। **मधुमत्तमम्**=जीवन को अतिशयेन मधुर बनानेवाला है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम ज्ञान का अमृत है, ज्ञान को न नष्ट होने देनेवाला है, हमें उत्कृष्ट स्थिति में प्राप्त कराता है, हमारे जीवन को मधुर बनाता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मधुर व पवमान

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते। पवमानस्य मरुतः॥ ३॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **त्ये**=वे **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति और **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले पुरुष **तव व्यश्नते**=तेरा ही सेवन करते हैं, शरीर में तुझे व्याप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं। शरीर में सोम को सुरक्षित करने के लिये आवश्यक है कि हम आसुरभावों से ऊपर उठें, दिव्यभावों को अपने हृदयों में भरें। इसके हम प्राणसाधना करनेवाले बनें। प्राणसाधना द्वारा शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। (२) उस सोम का हम शरीर में व्यापन करें जो कि **अन्धसः**=शरीर का अन्न बनता है, शरीर का वस्तुतः धारण करनेवाला यह सोम ही है। **मधोः**=यह जीवन को मधुर बनानेवाला है और **पवमानस्य**=हमें पवित्र बनानेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण में देववृत्ति व प्राणायाम सहायक हैं। यह सोम शरीर का अन्न है, जीवन को धुर बनाता है तो हमें पवित्र करता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मदाय-भूर्णये-ऊतये

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये। वृषन्त्स्तोतारमूतये॥ ४॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **हि**=निश्चय से **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **वर्धयन्**=सब शक्तियों का वर्धन करता हुआ **मदाय**=हर्ष के लिये होता है, **भूर्णये**=भरण के लिये होता है अथवा (भूर्णि=क्षिप्रम्) शीघ्रता से कार्यों को करने के लिये होता है। (२) हे सोम! **स्तोतारम्**=उपासक को **वृषन्**=सब सुखों से सिक्त करता हुआ तू **ऊतये**=रक्षण के लिये होता है। सोम शरीर में सुरक्षित होने पर आधिव्याधियों को विनष्ट करनेवाला होता है। प्रभु की उपासना के होने पर यह शरीर में सुरक्षित रहता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम उल्लास के लिये, शीघ्रता से कार्यों को करने के लिये तथा रक्षण के लिये होता है।

ऋषिः—**उचथ्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाज और श्रव (बल-ज्ञान)

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः। अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥

(१) हे **विचक्षण**=अपने उपासक को विशिष्ट ज्ञानयुक्त करनेवाले सोम! तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **धारया**=अपनी धारण शक्ति के साथ **अभि अर्ष**=आभिमुख्येन प्राप्त हो। (२) हे सोम! तू अपने उपासक को **वाजं अभि**=शक्ति की ओर ले चल। **उत**=और **श्रवः**=उसे ज्ञान की ओर ले चल। उपासक के बल व ज्ञान को तू बढ़ानेवाला हो।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। रक्षित सोम हमारे बल व ज्ञान का वर्धन करेगा।

उचथ्य ही अगले सूक्त में कहता है—

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**उचथ्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शक्ति व ज्ञानदीप्ति

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा। सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥

(१) **द्युक्षः**=दीप्ति में निवास करनेवाला, ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला, यह सोम **सनद्रयिः**=ऐश्वर्यों का देनेवाला है। शरीर के सब कोशों को यह ऐश्वर्य से युक्त करता है। यह **नः**=हमारे लिये **अन्धसा**=अन्न के द्वारा **वाजम्**=शक्ति को **भरत्**=भरता है। अन्न से रस-रुधिर आदि के क्रम से इसका उत्पादन होता है। उत्पन्न हुआ-हुआ सोम हमें शक्ति-सम्पन्न करता है। मांस-भक्षण से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम न तो शरीर में सुरक्षित रह पाता है और नां ही हमें शक्ति-सम्पन्न करता है। (२) हे सोम! **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ तू **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **आ अर्ष**=समन्तात् गतिवाला हो। हृदय की पवित्रता के होने पर यह सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है और उस समय यह हमें शक्ति व ज्ञान को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—अन्न के आहार से उत्पन्न सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। यह सुरक्षित सोम हमारे में शक्ति व ज्ञान का सञ्चार करता है।

ऋषिः—**उचथ्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रत्नेभिः अध्वभिः

तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः। सहस्रधारो यात्तना ॥ २ ॥

(१) **प्रत्नेभिः अध्वभिः**=प्राचीन, सदा से चले आये मार्गों के द्वारा **तव अव्यः**=हे सोम! तेरा रक्षण करनेवाले के **वारे**=जिसमें से वासनाओं का निवारण किया गया है उस हृदय में **प्रियः**=प्रीति को प्राप्त करानेवाला **परियात्**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। धर्म का मार्ग सदा से चला आ रहा है, अतएव वह सनातन है। जब कोई इस शाश्वत धर्म का लोप करके नये ही मार्ग पर चलने लगता है तभी वह विषयों का शिकार हो जाता है। शाश्वत धर्म के मार्गों पर चलता हुआ व्यक्ति सोम का रक्षण करनेवाला होता है, इस धर्म का लोप ही हमें विषय-प्रवण करके सोम-रक्षण के योग्य नहीं रहने देता। (२) सनातन धर्म मार्ग पर चलकर सोम का रक्षण करनेवाले के शरीर में यह सोम शरीर में सर्वत्र व्याप्त होता है (परियात्)। यह अंग-प्रत्यंग को सशक्त करके प्रीति को प्राप्त कराता है (प्रियः)। (२) यह सोम **तना**=शक्तियों के विस्तार के द्वारा **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से हमारा धारण करनेवाला होता है। हम सोम का धारण करते हैं। यह सोम हमारा धारण करता है।

भावार्थ—शाश्वत धर्म मार्ग पर चलते हुए हम सोम का धारण करते हैं, तो यह सोम हमारा धारण करता है।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

चरु तथा दान

चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय। वधैर्वधस्नवीङ्खय॥ ३॥

(१) हे सोम! **यः चरुः न**=जो चरु (An oblation of rice and barley) के समान उत्कृष्ट भोजन है **तं ईंखय**=उसे हमारे लिये प्राप्त करा। अर्थात् हम यज्ञ करके सदा यज्ञशेष रूप अमृत का ही सेवन करनेवाले बनें। यह चरु के रूप में किया गया भोजन सोमरक्षण की अनुकूलता को पैदा करता है। (२) **इन्दो**=हे हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम **न**=(इदानीं सा) अब **दानम्**=दान की वृत्ति को **ईंखय**=हमें प्राप्त करा। सोमरक्षक पुरुष दान की वृत्तिवाला होता है। भोगवृत्ति सोमरक्षण के प्रतिकूल है। (३) **वधस्नो**=रोगकृमियों के वध के लिये शरीर में स्तुति होनेवाले सोम **वधैः**=सब अवाञ्छनीय तत्त्वों के विनाश के हेतु से **ईंखय**=तू हमारे अंग-प्रत्यंग में गतिवाला हो। तेरे द्वारा हमारा सारा शरीर निर्मल हो उठे।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम यज्ञशेष का सेवन करें। दान की वृत्तिवाले हों न कि भोगवृत्तिवाले तथा अंग-प्रत्यंग में सोम को प्राप्त कराके हम सब आधिव्याधियों को विनष्ट करनेवाले हों।

ऋषिः—**उचथ्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

काम आदि की बल का अभिभव

नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्। यो अस्माँ आदिदेशति॥ ४॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाला तू जिस सोम की सभी आराधना करते हैं ऐसा तू **एषां जनानाम्**=इन विकसित शक्तिवाले, अति प्रबल शत्रुओं के **शुष्मम्**=शोषक बल को **नि**=(न्यक् कुरु) पराभूत कर। इन हमारे शत्रुभूत काम-क्रोध-लोभ के बल को पराजित करनेवाला है। (२) इन शत्रुओं के उस बल को पराभूत कर **यः**=जो कि **अस्मान्**=हमें **आदिदेशति**=(challange) युद्ध के लिये ललकारता सा है। काम-क्रोध-लोभ का बल हमें युद्ध के लिये ललकारता हुआ सदा पराजित-सा कर देता है। शरीर में हम सोम का रक्षण कर पाते

हैं तो इन सब शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ होते हैं। प्रभु की उपासना इस सोम के रक्षण के द्वारा ही हमें सबल बनाती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम काम-क्रोध-लोभ के वेग को पराभूत करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**उचथ्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'मंहयद्रयि' सोम

शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम्। पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **मंहयद्रयिः**=सब धनों का देनेवाला है (मंहतेर्दानकर्मणः)। प्रथम मन्त्र में 'सनद्रयिः' शब्द से इसी भाव को व्यक्त किया गया था। ऐसा तू **नः**=हमें **ऊतिभिः**=रक्षणों के हेतु से **शुचीनाम्**=अपने पवित्र बलों के **शतं सहस्रं वा**=सैंकड़ों व हजारों को **पवस्व**=प्राप्त करा। (२) वस्तुतः सोम ही शरीर के सब कोशों को ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है, यही 'सनद्रयि-मंहयद्रयि' है। यही हमें पवित्र बलों को प्राप्त कराता है, उन बलों को जिनसे कि हम अपना रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सब ऐश्वर्यों व बलों को प्राप्त कराता है।

इस बलों के देनेवाले सोम का रक्षक पुरुष 'अवत्सार' कहलाता है। यह इस सब भोजनों के सारभूत सोम का अवन (रक्षण) करता है। यह सोम के लिये कहता है कि—

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रुओं का निराकरण

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः। नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रतुल्य दृढ़ शरीरवाले सोम! **ते**=उस तेरे **शुष्मासः**=बल **रक्षः भिन्दन्तः**=सब रोगकृमियों व राक्षसी भावनाओं का विदारण करते हुए **उद् अस्थुः**=शरीर में उत्थित होते हैं। सोम की शक्तियों से सब रोगकृमियों का विनाश तो होता ही है, काम-क्रोध आदि आसुर भाव भी विनष्ट होते हैं। (२) हे सोम! **याः**=जो भी **परिस्पृधः**=हमारे पराभव की कामनावाले काम-क्रोध शत्रुओं के सैन्य हैं, उन्हें **नुदस्व**=परे धकेल। वे शत्रुभूत काम-क्रोध हमारे पर प्रबल न हो सकें।

भावार्थ—हमारे अन्दर सोम की शक्ति उद्गत हो, वह हमारे शत्रुओं को पराभूत करे।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ओजस्विता से शत्रुहनन

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते। स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

(१) हे सोम! गत मन्त्र के अनुसार तेरे रक्षण के द्वारा उत्पन्न **अया ओजसा**=इस ओज के द्वारा **निजघ्निः**=मैं शत्रुओं का हनन करनेवाला होता हूँ। (२) **रथसंगे**=इस शरीर रूप रथ के वासनाओं के साथ युद्ध के उपस्थित होने पर **हिते धने**=हितकर धन की प्राप्ति के निमित्त मैं **अबिभ्युषा**=न भयभीत हुए-हुए **हृदा**=हृदय से **स्तवा**=उस प्रभु का स्तवन करता हूँ। (संग=fight, encounter) प्रभु का स्तवन ही मुझे वह शक्ति देता है, जिससे कि मैं इन काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव कर पाता हूँ। इनका पराभव ही मुझे सोम के रक्षण के योग्य बनाता है और तभी मैं ओजस्वी व विजयी बनता हूँ। इस स्थिति ही में मुझे सब इष्ट धनों का लाभ होता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से मैं ओजस्वी बनकर शत्रुओं का विजय करता हूँ। अब सोमरक्षण के होने पर मुझे सब इष्ट धन प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण के नियमों का पालन

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति॥ ३॥

(१) **अस्य पवमानस्य**=इस जीवन को पवित्र करनेवाले सोम के **व्रतानि**=रक्षण के साधनभूत कर्म-नियम 'नियमः पुण्यकं व्रतम्', **दूढ्या**=(दुर्धिया) दुर्बुद्धि के कारण मेरे से **न आधृषे**=धर्षण के लिये नहीं होते। अर्थात् मैं दुष्ट बुद्धि के कारण सोम के रक्षण के साधनभूत नियमों को नहीं तोड़ता। (२) जब सोमरक्षण के नियमों का पालन करता हुआ मैं सोम का रक्षण करता हूँ तो हे सोम! **यः**=जो भी **त्वा पृतन्यति**=तेरे पर आक्रमण करता है, उसे तू **रुज**=नष्ट कर। रक्षित सोम हमारे सब शत्रुओं को नष्ट करके हमारा रक्षण करता है।

भावार्थ—हम सोमरक्षण के नियमों का पालन करते हुए सोम का रक्षण करें। यह हमारे सब शत्रुभूत रोगकृमियों व वासनाओं का विनाश करके हमारा रक्षण करेगा।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'गति-संयम-ज्ञान'

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्॥ ४॥

(१) **तम्**=उस **इन्दुम्**=शक्ति को देनेवाले सोम को **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **हिन्वन्ति**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। इस इन्दु के रक्षण से ही हमारे जीवनों में ज्ञान की ज्योति का उदय होता है, और हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनते हैं। (२) उस सोम को ये उपासक अपने अन्दर प्रेरित करते हैं जो कि **मदच्युतम्**=आनन्द को ही हमारे में क्षरित करनेवाला है। **हरिम्**=हमारे सब दुःखों का हरण करनेवाला है। **नदीषु**=गंगा, यमुना व सरस्वती 'गति, संयम व ज्ञान' इन तीनों के प्रवाहित होने पर हमें **वाजिनम्**=अत्यन्त शक्तिशाली बनानेवाला है। तथा **मत्सरम्**=एक अद्भुत हर्ष का हमारे में संचार करनेवाला है। (३) इस सोम को शरीर में ही प्रेरित करके हम वास्तविक आनन्द को प्राप्त करते हैं। यह हमें शक्ति-सम्पन्न करके गतिशील बनाता है, यही 'गंगा' का बहना है। यह हमारे दुर्भागों को विनष्ट करके हमें संयत जीवनवाला बनाता है, यही हमारे जीवन में 'यमुना' का प्रवाह है। यह मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है, यही 'सरस्वती' का प्रकाश है। एवं सोमरक्षण हमारे में तीनों नदियों को प्रवाहित करके हमें शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से शरीर में 'गंगा', हृदय में 'यमुना' तथा मस्तिष्क में 'सरस्वती' का प्रवाह चलता है और हमारा जीवन 'गति, संयम व ज्ञान' से परिपूर्ण होता है।

अगले सूक्त में भी अवत्सार ऋषि ही कहते हैं—

[५४] चतुष्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ऋषि-दोहन (वेदवाणी रूप गौ का दोहन)

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम्॥ १॥

(१) जब सोम शरीर में सुरक्षित होता है, तो यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त

करता है। **अस्य**=इस सोम की **प्रत्नाम्**=सदा से चली आ रही, सनातन **द्युतम्**=ज्योति के **अनु**=अनुसार, अर्थात् जितना-जितना ये सोम का रक्षण करते हैं, उतना-उतना **अह्वयः**=(अह्वि=wise learned) बुद्धिमान् मनुष्य **सहस्त्रसां ऋषिम्**=अनन्त ज्ञान से सने हुए इस वेद से (ऋषि: वेद:) **शुक्रं पयः**=शुद्ध ज्ञानदुग्ध को **दुदुह्रे**=दोहते हैं। वेदवाणी गौ है। उसका दीप्त ज्ञान ही दुग्ध है। (२) बुद्धिमान् पुरुष सोम का अपने अन्दर रक्षण करते हैं, जिससे 'तीव्र बुद्धि' बनकर इस ज्ञान का दोहन कर सकें।

भावार्थ—सोम के अन्दर यह सनातन शक्ति है कि वह बुद्धि को तीव्र बनाता है। समझदार पुरुष इस सोम के रक्षण से तीव्र बुद्धि बनकर वेदज्ञान को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सूर्य के समान

अयं सूर्यइवोपदृगयं सरांसि धावति। सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

(१) **अयम्**=गत मन्त्र के अनुसार सोमरक्षण के द्वारा वेदवाणी रूप गौ से ज्ञानदुग्ध का दोहन करनेवाला यह पुरुष **सूर्य इव**=सूर्य की तरह **उपदृग्**=दिखनेवाला होता है। यह लगभग सूर्य जैसा लगता है। सूर्यसम तेजस्वी होता है। (२) **अयम्**=यह सोमरक्षक **सरांसि**=अपने ज्ञान सरोवरों को **धावति**=शुद्ध कर लेता है (धाव शुद्धौ)। सोम के द्वारा ज्ञानाग्नि दीप्त हो उठती है। ज्ञान का शोधन करता हुआ यह **सप्त**=सात **प्रवतः**=(height, elevation) ऊँचाइयों को, उच्च लोकों को धावति=जाता है, उन लोकों में आगे-आगे बढ़ता चलता है। और **आ दिवम्**=उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा तक पहुँचता है। ये सात लोक 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्' इन सात व्याहियों द्वारा सूचित हो रहे हैं। इन लोकों का आक्रमण करता हुआ यह सोमी सूर्य सम तेजस्वी प्रतीत होता है।

भावार्थ—यह सोम रक्षक पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होता है, यह ज्ञानसरोवरों को शुद्ध कर डालता है, 'भू' आदि लोकों का विजय करता हुआ प्रभु को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवित्रता व दीप्ति

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि। सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

(१) **अयम्**=यह सोम **विश्वानि**=सब **भुवना**=भुवनों को, लोकों को, शरीर के अंगों को (Localities) **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **उपरि तिष्ठति**=ऊपर, शरीर के मस्तिष्क रूप द्युलोक में **तिष्ठति**=स्थित होता है। (२) उस समय **सोमः**=यह सोम **देवः न सूर्यः**=देदीप्यमान सूर्य के समान होता है। जैसे सूर्य सब भुवनों के अन्धकार को विनष्ट करता है, इसी प्रकार यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को इस प्रकार दीप्त करता है कि सारा अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम पवित्रता को करता है तथा ज्ञानदीप्ति को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्रयु सोम

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः। पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **नः**=हमें **देववीतये**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराने के लिये **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **वाजान्**=बलों को **परि अर्षसि**=समन्तात् प्राप्त कराता

है। 'सब इन्द्रियाँ शुद्ध हों, हम शक्ति-सम्पन्न हों' तो यही दिव्य गुणों के विकास का मार्ग है। (२) हे सोम! **पुनानः**=हमें पवित्र करते हुए तुम **इन्द्रयुः**=उस परमैश्वर्यवाले प्रभु को हमारे साथ जोड़नेवाले हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन को पवित्र करता हुआ हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

अवत्सार ही अगले सूक्त में भी कहता है—

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

यव-पुष्ट-सौभग

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टपुष्टं परि स्रव। सोम विश्वा च सौभगा॥ १॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **नः**=हमारे लिये **अन्धसा**=सोम्य अन्नों के द्वारा **यवं यवम्**=प्रत्येक बुराई के अमिश्रण तथा अच्छाई के मिश्रण को **परिस्रव**=प्राप्त करा। सोमरक्षण के उद्देश्य से हम सोम्य अन्नों का ही सेवन करें। यह सोम्य अन्नों का सेवन हमें दुरितों से दूर करके भद्र की ओर ही ले चलनेवाला हो। (२) हे सोम! **च**=और तू हमारे लिये **विश्वा सौभगा**=सब सौभाग्यों को प्राप्त करानेवाला हो। 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा' ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान व वैराग्य रूप सभी सौभग्य हमें प्राप्त हों।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) सब बुराइयाँ दूर होकर अच्छाइयाँ प्राप्त होती हैं, (ख) अंग-प्रत्यंग पुष्ट होता है, (ग) सब सौभाग्य हमें प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण के दो प्रमुख साधन

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः। नि बर्हिषि प्रिये सदः॥ २॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! **यथा तव स्तवः**=जिस प्रकार हम तेरा स्तवन करनेवाले हैं, और **यथा**=जिस प्रकार **ते**=तेरा **अन्धसः**=सोम्य अन्न के द्वारा **जातम्**=विकास व प्रादुर्भाव हुआ है तू **प्रिये**=पवित्रता के कारण प्रीति करनेवाले **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निषदः**=आसीन हो। (२) सोमरक्षण के दो साधन हैं—(क) एक तो हम सोम का स्तवन करते हुए सोमरक्षण के महत्त्व को समझें और सोमरक्षण के लिये प्रबल आकांक्षावाले हों। (ख) और इस सोमरक्षण के उद्देश्य से सदा सात्त्विक अन्न का ही सेवन करें। सोम्य अन्न के भक्षण से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम अवश्य शरीर में सुरक्षित रहेगा। 'जैसा अन्न वैसा मन' (आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः) अन्तःकरण की शुद्धि से यह सोम शरीर में ही व्याप्त होगा।

भावार्थ—हम सोमरक्षण के महत्त्व का ध्यान करें और इसके रक्षण के उद्देश्य से सोम्य अन्नों का ही सेवन करें।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोवित्-अश्ववित्

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा। मक्षूतमेभिरहभिः॥ ३॥

(१) **उत**=और हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **नः**=हमारे लिये **गोवित्**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करानेवाला हो। **अश्ववित्**=उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करानेवाला हो। सुरक्षित सोम सब इन्द्रियों

को सशक्त बनाता है, कर्मेन्द्रियाँ शक्ति-सम्पन्न होकर यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में रुचिवाली होती हैं। (२) हे सोम! तू **मक्षूतमेभिः**=(मक्ष् To accumalating heap, collect) अधिक से अधिक संचय की कारणभूत **अहभिः**=(अह व्याप्तौ) व्याप्तियों के द्वारा **अन्धसा**=इस सोम्य अन्न के भक्षण से तू **पवस्व**=हमें पवित्र करनेवाला हो। जिस समय हम सोम्य अन्नों का सेवन करते हैं, उस समय यह सोम शरीर में सुरक्षित होता है। रुधिर में व्याप्त होता हुआ यह सोम शरीर में संचित होता हुआ हमारे जीवनों को सब प्रकार से पवित्र करता है।

भावार्थ—सोम्य अन्न के सेवन से सोम शरीर में ही संचित व व्याप्त होता है। यह ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को प्रशस्त बनाता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यो जिनाति न जीयते

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य। स पवस्व सहस्त्रजित्॥ ४॥

(१) हे सोम! **यः**=जो तू **जिनाति**=शत्रुओं का नाश करता है और **न जीयते**=रोगकृमि रूप शत्रुओं से कभी आक्रान्त नहीं होता। आक्रान्त होना तू दूर रहा, **शत्रुं समीत्य**=शत्रुओं पर आक्रमण करके **हन्ति**=उनका नाश करता है। **सः**=यह तू **सहस्त्रजित्**=शतशः शत्रुओं का विजेता **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। (२) शरीर में सोम के रक्षित होने पर यह सोम शरीर में सब रोगकृमि व वासना रूप शत्रुओं का विनाश करता है। यह रोगकृमियों पर आक्रमण करके उन्हें विनष्ट कर देता है। इस प्रकार यह सोम हमारे लिये सब आवश्यक वसुओं का विजेता बनता है।

भावार्थ—हे सोम! तू हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारे लिये शतशः वसुओं का विजेता बन।

अगला सूक्त भी 'अवत्सार' ऋषि का ही है—

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'देवयु' सोम

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः॥ १॥

(१) **सोमः**=शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **आशुः**=हमें शीघ्रता से कार्य करनेवाला बनाता है। यह **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **ऋतम्**=ऋत को **परि अर्षति**=प्राप्त कराता है (परिगमयति) हृदय की पवित्रता के होने पर ही इसका शरीर में रक्षण होता है। और यह शरीर में 'बृहत् ऋत' को प्राप्त कराता है। सोमरक्षक का जीवन ऋतवाला बनता है (regular) व्यवस्थित। (२) यह सोम **रक्षांसि**=रोगकृमियों व राक्षसीभावों को **विघ्नन्**=नष्ट करनेवाला होता है और इस प्रकार **देवयुः**=हमें उस महादेव से मिलानेवाला होता है। सोमरक्षण से दिव्य गुणों का वर्धन होकर अन्ततः प्रभु की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमारे लिये 'बृहत् ऋत' को प्राप्त कराता है तथा दिव्य गुणों का हमारे में वर्धन करता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शक्ति-यज्ञ-प्रभु प्राप्ति

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः। इन्द्रस्य सख्यमाविशन्॥ २॥

(१) **यत्**=जब **सोमः**=शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **वाजम्**=शक्ति को **अर्षति**=(गमयति) प्राप्त कराता है, तो **शतं धाराः**=रस सोम की ये शतशः धारणशक्तियाँ **अपस्युवः**=(अपस्+यु) कर्म की कामनावाली होती हैं। सोम की ये धारणशक्तियाँ हमें यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त करती हैं। सोमी पुरुष सदा यज्ञों की कामनावाला होता है। (२) इन यज्ञों के द्वारा उस यज्ञरूप प्रभु की उपासना करती हुई ये सोम धारायें **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की **सख्यम्**=मित्रता में **आविशन्**=प्रवेश करती हैं। हमें प्रभु की मित्र बनाती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) शक्ति बढ़ती है (ख) हमारा झुकाव यज्ञों की ओर होता है, (ग) हम प्रभु को प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'मृज्यसे सोम सातये'

अ॒भि त्वा॒ योष॑णो॒ दश॑ जा॒रं न क॒न्या॑नूषत। मृ॒ज्यसे॑ सोम सा॒तये॑॥ ३॥

(१) **दश योषणः**=('यु मिश्रणामिक्षणयोः') अज्ञान व दुरित से पृथग्भूत तथा ज्ञान और भद्र से युक्त दस इन्द्रियाँ **त्वा अभि अनूषत**=हे सोम! तेरा लक्ष्य करके स्तवन करती हैं। पवित्र इन्द्रियाँ सोम की ही महिमा का प्रतिपादन करती हैं। सोमरक्षण से ही वे सशक्त व पवित्र बनी हैं। इस प्रकार ये इन्द्रियाँ सोम का स्तवन करती हैं, **न**=जैसे कि **कन्या**=(कन दीप्तौ) दीप्त ज्ञानवाली वेदवाणी **जारम्**=एक स्तोता को प्रशंसित करती हैं। वेद में प्रभु के स्तोता का यत्र-तत्र शंसन है ही। वेदवाणी को स्तोता प्रिय है, पवित्र इन्द्रियों को उसी प्रकार सोम प्रिय है। (२) हे **सोम**= वीर्यशक्त! तू **सातये**=सब वसुओं की प्राप्ति के लिये **मृज्यसे**=शुद्ध किया जाता है। सोम के शोधन से शरीर में निवास के लिये सब आवश्यक तत्त्व ठीक बने रहते हैं। वासनाओं का उबाल न आने देना ही सोम का शोधन है।

भावार्थ—इन्द्रियों की पवित्रता से सोम का रक्षण होता है। वासनाओं से मलिन हुआ-हुआ सोम शरीर में सब वसुओं को स्थापित करता है।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**यवमध्यागायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

निष्पापता

त्वमिन्द्रा॑य॒ विष्ण॑वे स्वा॒दुरि॑न्दो॒ परि॑ स्रव। नॄन्त्स्तो॒तॄन्पा॒ह्यंह॑सः॥ ४॥

(१) हे **इन्दो**=हमारे जीवन को शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **त्वम्**=तू **स्वादुः**=जीवन को रसमय बनानेवाला है। **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **परिस्रव**=हमारे में प्रवाहित हो। **विष्णवे**=उस सर्वव्यापक प्रभु की प्राप्ति के लिये हमारे में प्रवाहित हो। सोमरक्षण हमें 'इन्द्र व विष्णु' बनाता, ज्ञान व शक्ति का ऐश्वर्य इस सोमरक्षण से ही प्राप्त होता है। यह सोमरक्षण ही हमें उदार (=व्यापक मनोवृत्तिवाला) बनाता है। (२) हे सोम! तू **नॄन्**=अपने को उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **स्तोतॄन्**=इन स्तोताओं को **अंहसः**=सब पापों व कष्टों से **पाहि**=बचानेवाला हो। सोमरक्षण से हम आगे बढ़ने की वृत्तिवाले बनते हैं, प्रभु के स्तोता बनते हैं और इस प्रकार पापों से बचे रहते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञानैश्वर्य सम्पन्न, व्यापक वृत्तिवाला तथा निष्पाप जीवनवाला बनाता है।

अवत्सार ही कहता है—

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सहस्त्रीवाज' व 'दिवः वृष्टि'

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः। अच्छा वाजं सहस्त्रिणम्॥ १॥

(१) (असश्चत्=not defeated or overcome) हे सोम! **ते**=तेरी **असश्चतः**=वासनाओं से अनाक्रान्त **धाराः**=धारायें **सहस्त्रिणं वाजं अच्छा**=सहस्र पुरुषों की शक्ति के तुल्य शक्ति की ओर **प्रयन्ति**=प्रकर्षेण प्राप्त होती हैं। अर्थात् सुरक्षित सोम हमें अनन्त शक्ति प्राप्त कराता है, हमें नागायुतवली (हजारों हाथियों के बलवाला) बनाता है। (२) उसी प्रकार ये सोम धारायें हमें बल प्राप्त कराती हैं, **न**=जैसे कि **दिवः वृष्टयः यन्ति**=ज्ञान की वृष्टियाँ हमें प्राप्त होती हैं। बल प्राप्ति की तरह इस सोमरक्षण से ज्ञान की प्राप्ति भी होती है। अथवा सोमरक्षण से ही धर्ममेघ समाधि में प्राप्त होनेवाली आनन्द की वर्षा हमें प्राप्त होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से बल व ज्ञान का वर्धन होता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आयुध-रक्षण

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति। हरिस्तुञ्जान आयुधा॥ २॥

(१) यह सोम शरीर में सुरक्षित होने पर **प्रियाणि**=देवों के लिये प्रीतिकर (देव-हितं) **विश्वा काव्या**=सब वेद की वाणियों को (देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति) **अभिचक्षाणः**=सम्यक् देखता हुआ, अर्थात् इनके द्वारा प्रकृति व आत्मा का ज्ञान प्राप्त कराता हुआ **अर्षति**=गति करता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। ज्ञानाग्नि के दीप्त होने से ज्ञान की वाणियाँ हमें प्रिय होती हैं। उन ज्ञान की वाणियों में हम प्रकृति व आत्मा का ज्ञान पाते हैं, यही इन वाणियों का अभिचक्षण है। (२) **हरिः**=यह सब रोगों व वासनाओं का हरण करनेवाला सोम **आयुधा**=हमारे इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुधों को **तुञ्जानः**=(guard, protect) सुरक्षित करता है। वस्तुतः सोम की शक्ति से ही ये सब आयुध शक्ति-सम्पन्न होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) ज्ञान बढ़ता है, (ख) इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि उत्तम बनते हैं।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

निर्भयता-सुव्रतता-ऐश्वर्य

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः। श्येनो न वंसु षीदति॥ ३॥

(१) **सः**=वह सोम **आयुभिः**=गतिशील पुरुषों से **मर्मृजानः**=शुद्ध किया जाता है। कर्म में लगे रहना ही वासनाओं से आक्रान्त न होने का उपाय है। वासनाओं से आक्रान्त न होने पर ही सोम का रक्षण होता है एवं गतिशील पुरुष सदा कर्मों में प्रवृत्त पुरुष इस सोम का रक्षण कर पाते हैं। (२) यह सोम **इभः**=(गतभयः) भयों से रहित है। इसके रक्षण के होने पर शरीर में आधि-व्याधि के आक्रमण का भय नहीं रहता। (३) यह **सुव्रतः**=उत्तम व्रतोंवाले **राजा इव**=राजा के समान है। इसके सुरक्षित होने पर हमारे कर्म उत्तम होते हैं तथा यह हमें दीप्त जीवनवाला बनाता है (राज् दीप्तौ) एक राजा अपने ऐश्वर्य से ही चमकता है, पर यदि साथ ही वह उत्तम कर्मोंवाला हो तो उसकी शोभा खूब ही बढ़ जाती है। यह सोमरक्षण हमें 'सुव्रत राजा' के समान बनाता है। (४) **श्येनः न**=एक गतिशील पुरुष की तरह यह सोम **वसु**=सम्भजनीय ऐश्वर्यों में **सीदति**=स्थित

होता है। सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करानेवाला यह सोम ही है। गतिशीलता हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। सुरक्षित सोम हमारे लिये ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ—गतिशील बने रहने से, वासनाओं से आक्रान्त न होने के कारण हम सोम का रक्षण कर पाते हैं। सुरक्षित सोम हमें (क) रोगादि के भय से बचाता है, (ख) हमें सुव्रत बनाकर शोभायुक्त करता है, (ग) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युलोक व पृथिवीलोक का ऐश्वर्य

स नो॒ विश्वा॑ दि॒वो वसू॒तो पृ॑थि॒व्या अधि॑। पु॒ना॒न इ॑न्द॒वा भ॑र ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्दो**=शक्ति को देनेवाले सोम! तू **विश्वा**=सब **दिवः अधि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में स्थित **वसु**=वसुओं को **नः**=हमारे लिये **आभर**=प्राप्त करा। मस्तिष्क रूप द्युलोक के **वसु**=ऐश्वर्य 'ज्ञान-विज्ञान' ही हैं। सुरक्षित सोम इन वसुओं को प्राप्त करानेवाला होता है। सोम से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, बुद्धि सूक्ष्म बनती है। यह सूक्ष्म बुद्धि सब ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करनेवाली होती है। (२) **उत उ**=और निश्चय से हे सोम! **पुनानः**=तू हमें पवित्र करता हुआ **पृथिव्याः अधि**=पृथिवी में, इस शरीर रूप पृथिवी में स्थित वसुओं को भी प्राप्त करा। मस्तिष्क में ज्ञान को तू भरनेवाला हो और शरीर में शक्ति को देनेवाला हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम द्युलोक व पृथिवीलोक के ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है।

अवत्सार ही कहता है—

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तरत् स मन्दी धावति

तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति॒ धारा॑ सु॒तस्यान्ध॑सः। तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥ १ ॥

(१) **सुतस्य**=शरीर में उत्पन्न हुए-हुए **अन्धसः**=इस अत्यन्त ध्यान देने योग्य (आध्यायनीयं भवति नि० ५।२। अन्धसस्पत इति सोमस्य पते इत्येतत् श० ९।१।२।४) सोम की **धारा**=धारण शक्ति के द्वारा **तरत्**=सब रोगों व वासनाओं को तैरता हुआ **सः**=वह **मन्दी**=(To shine) ज्ञान-ज्योति से चमकनेवाला पुरुष **धावति**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में गतिवाला होता है। एवं सोमरक्षण से (क) वह नीरोग व निर्मल मनवाला बनता है, (ख) ज्ञान से दीप्त होता है और (ग) यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होता है। (२) **तरत्**=वासनाओं व रोगों से तैरता हुआ **सः**=वह सोम के महत्त्व को समझनेवाला पुरुष **मन्दी**=(To praise) प्रभु का उपासक बनता है। प्रभु का उपासक बनकर **धावति**=अपने जीवन को शुद्ध करता है। प्रभु की उपासना उसे वासनाओं का शिकार नहीं होने देती। वासनाओं से आक्रान्त न होने से वह सोमरक्षण कर पाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण करनेवाला पुरुष (क) रोगों से पार हो जाता है, (ख) ज्ञानदीप्ति से चमक उठता है, (ग) यज्ञादि क्रियाओं में लगा हुआ अपने जीवन को शुद्ध बना पाता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानरश्मि-वसु

उ॒स्रा वे॑द॒ वसू॑नां॒ मर्त॑स्य दे॒व्यव॑सः। तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥ २ ॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **अवसः**=रक्षण करनेवाले सोम की धारा **उस्रा**=(A ray of light)

प्रकाश की किरण ही है। यह अपने रक्षक की ज्ञानदीप्ति को बढ़ानेवाली है। **वसूनां वेद**=(विद लाभे) यह वसुओं को प्राप्त करानेवाली है। इसके रक्षण से शरीर में निवास को उत्तम बनानेवाले सब तत्त्वों का रक्षण होता है। यह सोम की धारा **मर्तस्य देवी**=समान्य मनुष्य को दिव्य गुण-सम्पन्न बनानेवाली है 'ऋषिकृन् मर्त्यानाम्'=मनुष्यों को मानो ऋषि बना देती है। (२) **तरत्**=वासनाओं व रोगों को तैरता हुआ **सः**=वह **मन्दी**=ज्ञान से दीप्त होता हुआ **धावति**=अपने जीवन को बड़ा शुद्ध बना लेता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञानरश्मियों को प्राप्त कराता है, वसुओं को प्राप्त कराता है और हमें देव बना देता है।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ध्वस्र व पुरुषन्ति'

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा तना सहस्राणि दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥ ३॥

(१) 'ध्वस्र' वह पुरुष है जो कि काम-क्रोध-लोभ का विध्वंस करता है। 'पुरु+षन्ति' वह है जो कि खूब ही दान देनेवाला है (सन्ति)। हम सोमरक्षण के द्वारा गत मन्त्र के अनुसार ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करके देववृत्ति के बनते हैं। ये देववृत्ति के पुरुष 'ध्वस्र व पुरुषन्ति' होते हैं, वासनाओं का विध्वंस करते हैं, दान की वृत्तिवाले होते हैं। इन **ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः**=ध्वस्र व पुरुषन्ति के **सहस्राणि**=शतशः गुणों को **आदद्महे**=ग्रहण करते हैं। सोमरक्षण से हम 'ध्वस्र व पुरुषन्ति' बन पाते हैं। (२) **सः**=वह 'ध्वस्र व पुरुषन्ति' बननेवाला पुरुष **तरत्**=सब वासनाओं व रोगों को तैरता हुआ **मन्दी**=प्रभु का उपासक बनकर **धावति**=जीवन को शुद्ध बना पाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें 'वासनाओं का विध्वंस करनेवाला व दानवृत्तिवाला' बनाता है।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

त्रिंशतं सहस्राणि

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥ ४॥

(१) **ययोः**=गत मन्त्र में वर्णित 'ध्वस्र व पुरुषन्ति' के **त्रिंशतं सहस्राणि च**=तीसों व हजारों **तना**=शक्तियों के विस्तारों व ऐश्वर्यों को **आदद्महे**=हम ग्रहण करते हैं। **सः**=वह ध्वस्र व वह पुरुषन्ति **तरत्**=सब रोगों व वासनाओं को तैरता हुआ **मन्दी**=ज्ञान दीप्ति से चमकता हुआ व स्तुति करता हुआ **धावति**=गति करता है व अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। (२) 'त्रिंशतं सहस्राणि' का अर्थ '३० हजार दिन पर्यन्त' यह भी है। उस समय मन्त्रार्थ इस प्रकार होगा कि हम ३० हजार दिन पर्यन्त, अर्थात् आजीवन उन शक्तियों के विस्तार को धारण करें जो कि 'ध्वस्र व पुरुषन्ति' को प्राप्त होता है।

भावार्थ—हम वासनाओं का विध्वंस करते हुए व दानवृत्तिवाला बनते हुए शक्तियों का विस्तार करें।

अवत्सार ही अगले सूक्त में भी कहते हैं—

[५९] एकोनषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोजित्-अश्वजित्

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमा भर॥ १॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **गोजित्**=हमारे लिये ज्ञानेन्द्रियों का विजय करनेवाला होकर **पवस्व**=प्राप्त हो, तेरे रक्षण से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तम बनें। इसी प्रकार तू हमारे लिये **अश्वजित्**=उत्तम कर्मेन्द्रियों को जीतनेवाला हो। **विश्वजित्**=तू हमारे लिये सब आवश्यक वसुओं का विजेता है। **रण्यजित्**=सब रमणीय पदार्थों को प्राप्त करानेवाला है। (२) तू **प्रजावत्**=उत्कृष्ट विकासवाले **रत्नम्**=रमणीय तत्त्व को **आभर**=हमारे में सर्वथा भरनेवाला हो। अथवा तू **प्रजावत्**=उत्कृष्ट सन्तान को प्राप्त करानेवाले **रत्नम्**=मणि तुल्य वीर्य को **आभर**=प्राप्त करा।

भावार्थ—सोमरक्षण से उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ सब वसु वरणीय तत्त्व प्राप्त होते हैं। यही उत्कृष्ट सन्तान के प्राप्त करानेवाले वीर्य को देता है।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

धिषणा की प्राप्ति

पव॑स्वाद्भ्यो अदा॑भ्यः पव॒स्वौष॑धीभ्यः। पव॑स्व धि॒षणा॑भ्यः॥ २॥

(१) हे सोम! तू **अदाभ्यः**=हिंसित होनेवाला नहीं। **अद्भ्यः**=जलों से तू हमें **पवस्व**=प्राप्त हो। इसी प्रकार **ओषधीभ्यः पवस्व**=ओषधियों से तू हमें प्राप्त हो। शरीर में सोम के रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम ओषधियों व जलों का ही प्रयोग करें। ये ही 'सोम्य' है, सोमरक्षण के लिये अनुकूल है। मांस आदि मानव के भोजन नहीं हैं। ये हमें राक्षसी वृत्ति का बनाते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमियों को विनष्ट करके हमें नीरोग बनाता है। (२) हे सोम! तू **धिषणाभ्यः**=प्रशस्त बुद्धियों के लिये **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। सुरक्षित सोम बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये हम जल व ओषधियों का ही प्रयोग करें। मांस भोजन से बचें। सुरक्षित सोम हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनायेगा।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दुरित-तरण

त्वं सो॑म॒ पव॑मानो॒ विश्वा॑नि दु॒रिता त॑र। क॒विः सी॑द॒ नि ब॒र्हिषि॑॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला है। **विश्वानि दुरिता**=सब बुराइयों को तू **तर**=तैर जा। सोमरक्षण से सब शरीरस्थ न्यूनतायें दूर हो जाती हैं। (२) **कविः**=क्रान्तकर्मा व क्रान्तप्रज्ञ यह सोम **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **न सीद**=निषण्ण हो। हृदय के वासनाशून्य होने पर ही सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। रक्षित होने पर यह (क) हमें पवित्र बनाता है, (ख) सब दुरितों को दूर करता है, (ग) हमारी बुद्धियों को सूक्ष्म बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'पवित्रता, भद्रता व बुद्धि' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अवत्सारः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रकाश प्राप्ति

पव॑मान॒ स्व॑र्वि॒दो जाय॑मानोऽभवो म॒हान्। इन्दो॒ विश्वाँ॑ अ॒भीद॑सि॥ ४॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **जायमानः**=शरीर में प्रादुर्भूत होता हुआ **स्वः**=प्रकाश को **विदः**=प्राप्त कराता है। और **महान् अभवः**=महान् होता है। वस्तुतः शरीर में सुरक्षित सोम हमें महान् बनाता है। इसके रक्षण से ही हम कोई महान् कार्य कर पाते हैं। (२)

हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **इत्**=निश्चय से **विश्वान्**=शरीर में प्रविष्ट हो जानेवाले रोगों व काम-क्रोध आदि को **अभि असि**=अभिभूत करनेवाला है। सोम हमें नीरोग व निर्मल हृदय बनाता है।

भावार्थ—सोम हमें प्रकाश को प्राप्त कराता है, महान् बनाता है और सब अशुभों को अभिभूत कर लेता है।

अवत्सार ऋषि का यह अन्तिम सूक्त है—

[६०] षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'पवमान' इन्दु

प्र गा॑य॒त्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिम्। इन्दुं॑ स॒हस्र॑चक्षसम्॥ १ ॥

(१) **गायत्रेण**=गायत्र साम के द्वारा इस **पवमानम्**=हमारे जीवन को पवित्र करनेवाले **इन्दुम्**=सोम को **प्रगायत**=प्रगीत करो। इस सोम के गुणों का गान हमें इसके रक्षण के लिये प्रेरित करेगा। वेद में इस सोम का गायन प्रधानतया गायत्री छन्द के मन्त्रों में ही है। यह छन्द भी 'गया: त्राणा:, तान् तत्रे' इस व्युत्पत्ति से प्राणरक्षण का संकेत कर रहा है। सुरक्षित सोम ही प्राणरक्षण का साधन बनता है। (२) उस सोम का गायन करो जो **विचर्षणिम्**=विशेषरूप से हमारा ध्यान करता है (look after) और **सहस्रचक्षसम्**=सहस्रों ज्ञानों को देनेवाला है।

भावार्थ—हम सोम के गुणों का गायन करें, 'यह पवमान है, सहस्रचक्षस्' है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सहस्रचक्षस्-सहस्रभर्णस्

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षस॒मथो॑ स॒हस्र॑भर्णसम्। अति॒ वार॑मपाविषुः ॥ २ ॥

(१) हे सोम! **तम्**=उस **सहस्रचक्षसम्**=शतशः ज्ञानों के देनेवाले **त्वा**=तुझे **अति अपाविषुः**=अतिशयेन पवित्र करने का प्रयत्न करते हैं। पवित्र सोम ही शरीर में सुरक्षित रहता है। वासनाओं से मलिन होते ही यह विनष्ट हो जाता है। (२) यह सोम 'सहस्रचक्षस्' तो है ही, **अथो**=और **सहस्रभर्णसम्**=हजारों प्रकार से हमारा भरण करनेवाला है। **वारम्**=सब अशुभों का निवारण करनेवाला है।

भावार्थ—हम सोम को वासनाओं से मलिन न होने दें। यह सोम ही हमें शतशः ज्ञानों को प्राप्त कराता है, यही हमारा भरण करता है, हमें अशुभों से बचाता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

कलश-धावन

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो असिष्यदत्क॒लशाँ॑ अ॒भि धा॑वति॒ इन्द्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन्॥ ३ ॥

(१) **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला यह सोम **वारान् अति**=सब अशुभों को लाँघकर **असिष्यदत्**=हमारे शरीर में प्रवाहित होता है। वासनाओं को शिकार होने पर यह मलिन होकर विनष्ट हो जाता है। यदि इन वासनाओं को हम पार कर पाते हैं, तो सोम का भी रक्षण करनेवाले होते हैं। उस समय यह सोम हमारे शरीर में ही सुरक्षित होता है। यह सोम **कलशान्**=प्राण आदि सोलह कलाओं के आधारभूत इन शरीरों को **अभिधावति**=शरीर व मन दोनों दृष्टिकोणों से शुद्ध कर डालता है। यह सोम शरीर में व्याधियों को विनष्ट करता है, तो

मानस आधियों को भी यह विनष्ट करनेवाला बनता है। (२) ये सोमकण **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **हार्दि**=हृदय में **आविशन्**=प्रवेश करते हैं। अर्थात् एक जितेन्द्रिय पुरुष को सदा इनके रक्षण का ध्यान होता है। इनके रक्षण की भावना को जगाने के लिये ही वह गायत्र साम के द्वारा इनका गायन करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शारीर व मानस शुद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**अवत्सारः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सिद्धि-शान्ति व विकास

इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे। प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की **राधसे**=सफलता व संसिद्धि के लिये हो। हे **विचर्षणे**=इस इन्द्र का विशेषरूप से ध्यान करनेवाले (विद्रष्टः) सोम! तू **शं पवस्व**=इसके लिये शान्तिकर होता हुआ प्राप्त हो। (२) हे सोम! तू **प्रजावत्**=प्रकृष्ट विकासवाले अथवा उत्कृष्ट सन्तान को प्राप्त करानेवाले **रेतः**=वीर्य को **आभर**=हमारे में पुष्ट कर। सुरक्षित सोम ही सब शक्तियों के विकास का कारण बनता है। इसी के रक्षण से उत्तम सन्तति प्राप्त होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'सिद्धि, शान्ति व विकास' का कारण बनता है।

इस प्रकार सोमरक्षण के लिये कटिबद्ध हुआ-हुआ यह व्यक्ति इस मही (पृथिवी) के भोगों से ऊपर उठता है, 'अमहीयु' बनता है। अंग-प्रत्यंग में शक्तिशाली होता हुआ यह 'आंगिरस' होता है। अगला सूक्त इस 'अमहीयु आंगिरस' का ही है—

तृतीयोऽनुवाकः

[६१] एकषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

निन्यानवे असुर-पुरियों का विध्वंस

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **अया वीती**=(वी प्रजनने) इन शक्तियों के विकास के साथ **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर **परिस्रव**=परिस्रुत हो, गतिवाला हो कि **ते मदेषु**=तेरे से उत्पन्न उल्लासों में निवास करनेवाला **यः**=जो यह इन्द्र है वह **नव नवतीः**=निन्यानवे असुरों की पुरियों को **आ अवाहन्**=समन्तात् सुदूर विनष्ट करनेवाला हो। (२) हमारे जीवनों में शतशः आसुरभाव जागते रहते हैं। कई बार हम इनके ही अधिष्ठान बन जाते हैं। जिस समय हम सोम की महिमा को समझ लेते हैं, उस समय हम सोमरक्षण करते हुए, इन आसुरभावों को विनष्ट करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम शरीर में सोम को रक्षित करें और सब आसुरभावों को मार भगायें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शम्बर-संहार

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम्। अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

(१) गत मन्त्र में निन्यानवे पुरियों के विध्वंस का संकेत था। सोमरक्षण से शक्तिशाली बना

हुआ इन्द्र इन पुरियों का विध्वंस करता है। मानो सोम ही इनका विध्वंस करता हो। हे सोम! तू **सद्यः**=शीघ्र ही इन **पुरः**=शत्रु-पुरियों को विध्वस्त करता है। **इत्थाधिये**=(धी=कर्म) सत्य कर्मों को करनेवाले **दिवोदासाय**=ज्ञान-भक्त पुरुष के लिये, हे सोम! तू **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या रूप आसुरभाव को भी तू विनष्ट करता है। (२) **अध**=अब ईर्ष्या को विनष्ट करके, हे सोम! तू इस दिवोदास को **तुर्वशम्**=शीघ्रता से शत्रुओं को वश में करनेवाला बनाता है तथा **यदुम्**=इसे यत्नशील बनाता है। वस्तुतः सुन्दर जीवन यही है कि हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करनेवाले हों और इसी उद्देश्य से कभी अकर्मण्य न हों।

भावार्थ—सत्यकर्मा ज्ञानभक्त बनकर हम ईर्ष्या से ऊपर उठें। कामादि शत्रुओं का पराजय करनेवाले बनें। सदा पुरुषार्थी हों।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'गोमत् हिरण्यवत्' अश्व

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्। क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

(१) हे **अश्ववित्**=उत्तम इन्द्रियों के प्राप्त करानेवाले **इन्दो**=सोम! तू **नः**=हमारे लिये **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली, **हिरण्यवत्**=(हिरण्यं=वीर्यम्) शक्ति-सम्पन्न **अश्वम्**=इन्द्रियाश्वों को **परिक्षर**=प्राप्त करा। सोमरक्षण से हमें वे उत्तम इन्द्रियाँ प्राप्त हों, जो कि ज्ञान व शक्ति से युक्त हों। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान का प्राप्त करानेवाली हों, तो कर्मेन्द्रियाँ सशक्त हों। (२) हे सोम! इस प्रकार हमारी इन्द्रियों को ठीक बनाकर **सहस्रिणीः इषः**=शतशः ज्ञानों को देनेवाली प्रेरणाओं को प्राप्त करा। सोमरक्षण से शुद्ध हृदय में हमें प्रभु की प्रेरणायें सुन पड़ें। ये प्रेरणायें हमारे लिये ज्ञान के प्रकाश को देनेवाली हों।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें 'ज्ञान व शक्ति' से युक्त इन्द्रियों को प्राप्त करायें। तथा हम अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणाओं को सुननेवाले बनें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम सखित्व-वरण

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः। सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥

(१) हे सोम! **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **अभ्युन्दतः**=शक्ति से सिक्त करते हुए, **पवमानस्य**=जीवन को पवित्र बनानेवाले **ते**=तेरे **सखित्वम्**=मित्रभाव को **वयम्**=हम **आवृणीमहे**=वरते हैं। (२) हम सोम के सखा बनते हैं। यह सोम का सखित्व हमें शक्ति से सिक्त करेगा और पवित्र जीवनवाला बनायेगा।

भावार्थ—सोम हमें शक्ति सिक्त करता है तथा पवित्र बनाता है।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम की ऊर्मियों का अभिक्षरण

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया। तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥

(१) हे सोम! **ये**=जो **ते**=तेरी **ऊर्मयः**=तरंगें **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष की **अभिक्षरन्ति**=ओर प्राप्त होती हैं, **तेभिः**=उन ऊर्मियों से **नः**=हमें **मृडय**=सुखी कर। (२) ये सोम की तरंगें शरीर में व्याप्त होती हैं तो शरीर रोगों व वासनाओं का शिकार नहीं

होता। हम नीरोग व निर्मल हृदय बनते हैं। ऐसा ही जीवन सुखी होता है।

भावार्थ—सोम शरीर में प्रवाहित होकर हमें नीरोग व निर्मल बनाता है। यही जीवन को सुखी बनाने का मार्ग है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'विश्वतः ईशान' सोम

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्। ईशानः सोम विश्वतः॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **नः**=हमें **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **रयिम्**=ज्ञानैश्वर्य को **आभर**=प्राप्त करा। हे सोम! तू **वीरवतीम्**=वीरतावाली **इषम्**=प्रेरणा को प्राप्त करा। सुरक्षित सोम (क) हमें पवित्र करता है। (ख) ज्ञानैश्वर्य को हमारे लिये प्राप्त कराता है। (ग) हमें वीर बनाता है, (घ) प्रभु-प्रेरणा को सुनने के योग्य करता है। (२) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **विश्वतः ईशानः**=शरीर, मन व बुद्धि सभी के दृष्टिकोण से तू ही ईश है। तू ही हमारे शरीर को सशक्त बनाता है, तू ही मन को निर्मल बनाता है, बुद्धि को तू ही तीव्र करता है।

भावार्थ—सोम हमें पवित्र करता हुआ 'रयि, वीरता व प्रेरणा' को प्राप्त कराता है। यह सोम ही 'विश्वतः ईशान' है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'सिन्धुमाता' सोम

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्। समादित्येभिरख्यत॥ ७॥

(१) **एतम्**=इस **उ**=निश्चय से **त्यम्**=प्रसिद्ध सोम को **दश**=दस **क्षिपः**=वासनाओं को परे फेंकनेवाली इन्द्रियाँ **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। इन्द्रियाँ वासनाओं से आक्रान्त नहीं होती, तो सोम शुद्ध बना रहता है। यह सोम **सिन्धुमातरम्**=ज्ञान की नदियों का निर्माण करनेवाला है। सोम से ही तो बुद्धि तीव्र होती है। (२) यह सोम **आदित्येभिः**=आदित्यों से **सं अख्यत**=सम्यक् देखा जाता है। आदित्य वे विद्वान् हैं जो कि 'प्रकृति-जीव-परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये इस सोम के रक्षण का पूरा ध्यान करते हैं। इस सोमरक्षण से ही तो वस्तुतः ये 'आदित्य' बन पाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये इन्द्रियों को वासनाशून्य बनाना आवश्यक है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण के तीन साधन

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ। सं सूर्यस्य रश्मिभिः॥ ८॥

(१) **इन्द्रेण**=एक जितेन्द्रिय पुरुष से **उत**=और **वायुना**=गतिशील कर्मों में लगे हुए पुरुष से **सुतः**=उत्पन्न किया गया यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **सं आ एति**=सम्यक् समन्तात् प्राप्त होता है। सोम को शरीर में व्याप्त करने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं—(क) जितेन्द्रियता (इन्द्रेण), (ख) गतिशीलता (वायुना), पवित्रता (पवित्रे)। (२) सुरक्षित सोम **सूर्यस्य रश्मिभिः**=सूर्य की रश्मियों से **सम्**=संगत होता है। यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें सूर्यसम दीप्तिवाला करता है 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः'।

भावार्थ—जितेन्द्रियता, क्रियाशीलता व पवित्रता के द्वारा सोम का रक्षण करते हुए हम सूर्यसम ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'भग-वायु-पूषा'

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्। चारुर्मित्रे वरुणे च॥ ९॥

(१) **सः**=हे सोम! वह तू **नः**=हमारे लिये **भगाय**=ऐश्वर्य के लिये (ज्ञानैश्वर्य की प्राप्ति के लिये) **वायवे**=(वा गतौ) क्रियाशीलता के लिये तथा **पूष्णे**=शरीर के उचित पोषण के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। तू **मधुमान्**=हमारे जीवन में माधुर्य को उत्पन्न करनेवाला हो। (२) तू **मित्रे**=स्नेह की वृत्तिवाले पुरुष में **च**=और **वरुणे**=द्वेष के निवारण करनेवाले पुरुष में **चारुः**=सुन्दर है। वस्तुतः ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध की भावनाओं के साथ सोम के रक्षण का सम्भव नहीं रहता। ये वासनायें सोम को मलिन कर देती हैं।

भावार्थ—हम राग-द्वेष से दूर रहकर सोम को पवित्र रखें। यह सोम हमारे जीवन में 'ज्ञानैश्वर्य, क्रियाशीलता व पोषण' को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उग्रं शर्म, महि श्रवः

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे। उग्रं शर्म महि श्रवः॥ १०॥

(१) **अन्धसः**=इस आध्यायनीय सोम के द्वारा **ते**=तेरा **उच्चा जातम्**=अत्यन्त उत्कृष्ट विकास हुआ है। इस उत्कृष्ट विकास का स्वरूप यह है कि **दिवि सद्**=द्युलोक में होता हुआ तू **भूमि आददे**=इस भूमि का ग्रहण करता है। द्युलोक 'मस्तिष्क' है। मस्तिष्क में निवास का भाव है 'ज्ञान में विचरण करना'। भूमि 'शरीर' है। इसके ग्रहण का भाव है 'शरीर को दृढ़ बनाना'। एवं यह सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष ज्ञान में विचरण करता हुआ शरीर की दृढ़तावाला होता है। (२) **उग्रं शर्म**=यह तेजस्विता से युक्त आनन्द को प्राप्त करता है और **महि श्रवः**=(मह पूजायाम्) पूजा की भावना से युक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। संक्षेप में यह सोमी पुरुष 'तेजस्वी, सानन्द, पूजा की वृत्तिवाला ज्ञानी' होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हमारा उत्कृष्ट विकास होता है। उत्कृष्ट ज्ञान व दृढ़ शरीर का हमारे में मेल होता है। हमें तेजस्विता से युक्त आनन्द व पूजावृत्ति से युक्त ज्ञान प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

संविभाग पूर्वक ऐश्वर्य का सेवन

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे॥ ११॥

(१) **एना**=इस सोम के द्वारा हम **अर्ये**=उस स्वामी प्रभु में स्थित होते हुए **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **विश्वानि**=सब **द्युम्नानि**=ऐश्वर्यों को (wealth) **सिषासन्तः**=सब में विभाग की कामना करते हुए **आ वनामहे**=सर्वथा सेवित करते हैं। (२) सोमी पुरुष मनुष्यों के सब अभ्युदयों को प्राप्त करता है। इन अभ्युदयों को प्राप्त करके वह गर्ववाला नहीं हो जाता। ब्रह्मनिष्ठ बना रहता है और इन अभ्युदयों को प्रभु का ही मानना है। प्रभु के इन धनों को वह सब के साथ संविभक्त करके ही भोगता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम (क) ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं, (ख) इन ऐश्वर्यों को प्रभु का ही मानते हैं, (ग) संविभाग पूर्वक इनका सेवन करते हैं।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वरिवोवित्' सोम

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव॥ १२॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **वरिवोवित्**=सब धनों का प्राप्त करानेवाला होकर **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर प्रवाहित हो। (२) तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त हो। **यज्यवे**=यज्ञशील पुरुष के लिये प्राप्त हो। **वरुणाय**=द्वेष का निवारण करनेवाले व व्रतों के बन्धन में अपने को बाँधनेवाले के लिये प्राप्त हो। **मरुद्भ्यः**=प्राणसाधनों के लिये प्राप्त हो। वस्तुतः सोमरक्षण के चार साधन हैं—(क) जितेन्द्रियता, (ख) यज्ञशीलता, (ग) निर्द्वेषता व व्रतबन्धन, (घ) प्राणायाम।

भावार्थ—हम 'जितेन्द्रियता, यज्ञशीलता, निर्द्वेषता, व्रतबन्धन व प्राणायाम' के द्वारा सोम का रक्षण करते हुए सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'असुर' सोम

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्। इन्दुं देवा अयासिषुः॥ १३॥

(१) **इन्दुम्**=सोम को **देवाः**=देववृत्तिवाले पुरुष **उ**=निश्चय से **उप अयासिषुः**=समीपता से प्राप्त होते हैं। उस सोम को जो कि **सुजातम्**=उत्तम विकास का साधन है (शोभनं जातं यस्मात्), **अप्तुरम्**=जो कर्मों को त्वरा के साथ करानेवाला है। जिससे शरीर में स्फूर्ति उत्पन्न होती है। (२) **भगम्**=जो शत्रुओं का विदारण करनेवाला है, सोमरक्षण से काम-क्रोध आदि शत्रु भाग जाते हैं। यह सोम **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **परिष्कृतम्**=अलंकृत होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और हम इन ज्ञान की वाणियों से अपने मस्तिष्क को सुभूषित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—देववृत्ति के बनके हम सोम का रक्षण करें। इससे हमारी शक्तियों का विकास होगा, स्फूर्ति मिलेगी, काम-क्रोध आदि का विनाश होगा, ज्ञान से हम दीप्त हो उठेंगे।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'इन्द्रस्य हृदंसनिः'

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव। य इन्द्रस्य हृदंसनिः॥ १४॥

(१) **नः गिरः**=हमारे स्तुति-वाणियाँ **इत्**=निश्चय से **तं वर्धन्तु**=उस सोम का वर्धन करने-वाली हों। उसी प्रकार **इव**=जैसे कि **संशिश्वरीः**=उत्तम दुधार गौवें **वत्सम्**=बछड़े को बढ़ाती हैं। हम सोम का स्तवन करते हुए शरीर में सोम का वर्धन करें। (२) उस सोम का वर्धन करें, **यः**=जो कि **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **हृदंसनिः**=हृदय का सेवन करनेवाला है। एक जितेन्द्रिय पुरुष को यह सोम प्रिय होता है।

भावार्थ—हम सोम का स्तवन करें। सोम हमें प्रिय हो, जिससे हम इसका रक्षण करने की प्रबल कामनावाले हों।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'शं गवे'

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्। वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्॥ १५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **नः अर्ष**=हमें प्राप्त हो। हमें प्राप्त होकर **गवे शम्**=हमारी इन्द्रियों के लिये शान्ति का देनेवाला हो। तू हमारे अन्दर **पिप्युषीम्**=हमारा सब प्रकार से आप्यायन करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को **धुक्षस्व**=प्रपूरित कर। तेरे रक्षण से हम प्रभु की उस प्रेरणा को सुननेवाले बनें, जो कि सब प्रकार से हमारा वर्धन करती है। (२) हे सोम! तू हमारे अन्दर **उक्थ्यम्**=अत्यन्त प्रशंसनीय **समुद्रम्**=ज्ञान के समुद्र को **वर्धा**=बढ़ानेवाला हो। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के तीन लाभ हैं—(क) सब इन्द्रियाँ अविकृत व शान्त होती हैं, (ख) प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है, (ग) ज्ञान की वृद्धि होती है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

तन्यतु (Thunderbolt)

पवमानो अजिजनद्दिवश्चित्रं तन्यतुम्। ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥ १६॥

(१) **पवमानः**=यह हमारे जीवन को पवित्र करनेवाला सोम **ज्योतिः**=उस ज्ञान-ज्योति को **अजीजनत्**=उत्पन्न करता है, जो ज्ञान-ज्योति **वैश्वानरम्**=सब मनुष्यों का हित करनेवाली है और **बृहत्**=वृद्धि की कारणभूत है। (२) सोमरक्षण से वह ज्ञान प्राप्त होता है, जो **दिवः**=द्युलोक से उत्पन्न होनेवाली **चित्रं तन्यतुं न**=अद्भुत अशनि (Thunderbolt) के समान है। यह अशनि अपने अन्दर प्रकाश व गर्जना को लिये हुए है। इसी प्रकार सोमरक्षण से प्राप्त होनेवाला ज्ञान 'प्रकाश को तथा प्रभु-प्रेरणा के रूप में गर्जना को' अपने अन्दर लिये हुए है।

भावार्थ—सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, और हृदय की पवित्रता के कारण अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अ-दुच्छुनः

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः। वि वारमव्यमर्षति॥ १७॥

(१) हे सोम! **पवमानस्य**=जीवन को पवित्र करनेवाले **ते**=तेरा **रसः**=रस (सार) **मदः**=उल्लास को देनेवाला है (मदकरः)। हे **राजन्**=शरीर को दीप्त करनेवाले सोम! तेरा रस **अदुच्छुनः**=सब दुःखों को दूर करनेवाला है (शुनं=सुखं)। रोगकृमि संहार के द्वारा यह जीवन को सुखी करनेवाला है। (२) यह सोम का रस **वारम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले **अव्यम्**=अपना रक्षण करनेवालों में उत्तम पुरुष को ही **वि अर्षति**=विशेषरूप से प्राप्त होता है। सोमरक्षण के लिये वासनाओं से ऊपर उठना आवश्यक ही है।

भावार्थ—वासनाओं से ऊपर उठकर हम सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम (क) आनन्द को देनेवाला व (ख) सब दुःखों को दूर करनेवाला है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दक्षः-द्युमान्

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान्। ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे॥ १८॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **तव रसः**=तेरा सारा **दक्षः**=हमारी शक्तियों के विकास का कारण हो (growth)। यह **द्युमान्**=ज्योतिर्मय होता हुआ **विराजति**=विशेषरूप

से दीप्त होता है। (२) यह सोम उस **विश्वं ज्योतिः**=व्यापक ज्ञान के प्रकाश को करता है, जो कि अन्ततः **स्वर्दृशे**=हमें उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु के दर्शन के लिये समर्थ बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शक्तियों के विकास व ज्ञान-ज्योति का साधन बनता है। अन्ततः हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देवावीः अघशंसहा

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा॥ १९॥

(१) हे सोम! **यः ते**=जो तेरा रस **मदः**=उल्लास का जनक है, **वरेण्यः**=वरने के योग्य है, **तेन**=उस **अन्धसा**=आध्यायनीय, अत्यन्त ध्यान देने योग्य रस से तू हमें **पवस्व**=प्राप्त हो। (२) यह तेरा रस **देवावीः**=देववृत्तिवाले पुरुषों से जाने योग्य होता है (वी गतौ) तथा **अघशंसहा**=(अघशंसैः हन्यते) बुराई का शंसन करनेवालों से नष्ट किया जाता है। देववृत्ति के पुरुष इस सोम के रस का रक्षण करते हैं। अघशंसों में, राक्षसी वृत्तिवालों में इसके रक्षण का भाव नहीं होता, वे इसे भोग-विलास में विनष्ट कर बैठते हैं।

भावार्थ—सोम का रस उल्लास का जनक व वरणीय है। देव इसका रक्षण करते हैं। दैत्य, विनाश।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोषाः अश्वसाः

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे। गोषा उ अश्वसा असि॥ २०॥

(१) यह सोम **अमित्रियम्**=हमारे अमित्र (शत्रु) पक्ष में होनेवाले **वृत्रम्**=वासनारूप ज्ञान-नाशक शत्रु को **जघ्निः**=मारनेवाला है। सोमरक्षण वासना को विनष्ट करता है। (२) वासना को विनष्ट करके यह **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **वाजम्**=शक्ति को **सस्निः**=शुद्ध करनेवाला है। (३) **गोषाः असि**=हे सोम तू हमें उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों को देनेवाला है! **उ**=और **अश्वसाः** असि=उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करानेवाला है। सुरक्षित सोम कर्मेन्द्रियों को सशक्त बनाता है, ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञानग्रहण समर्थ करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) वृत्र (वासना) का विनाश होता है, (ख) वह शक्ति को शुद्ध करता है, (ग) ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को सशक्त बनाता है।

ऋषिः—**अमहीयुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'अरुष' सोम

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः। सीदञ्छ्येनो न योनिमा॥ २१॥

(१) **न**=(सं प्रति) अब, हे सोम! **सूपस्थाभिः**=उत्तम उपस्थानवाली **धेनुभिः**=वेदवाणीरूप धेनुओं से **संमिश्लः**=मिला हुआ **अरुषः भव**=आरोचमान हो। सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। इस दीप्त ज्ञानाग्नि से हम ज्ञान की वाणियों को समझनेवाले बनते हैं। यह समझना ही वेदवाणी रूप धेनुओं का सूपस्थान है। जब हम इन वाणियों का उपस्थान करते हैं, तो सोम को शरीर में सुरक्षित करनेवाले होते हैं। इस प्रकार इन धेनुओं से मिला हुआ यह सोम आरोचमान होता है। (२) हे सोम! तू **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान **योनिम्**=मूल उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **आसीदन्**=स्थित होनेवाला हो। सोम के रक्षण से हमारे सब कर्म उत्तम होते हैं, हम भी सब गति शंसनीय होती

हैं। हम अन्तः प्रभु को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियों को अपनाने से सोम शरीर में सुरक्षित होता है। यह आरोचमान होता है, हमें प्रभु में स्थित करता है।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृत्राय हन्तवे

स प॑वस्व॒ य आवि॒थेन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे। व॒व्रि॒वांसं॑ म॒हीर॒पः ॥ २२ ॥

(१) हे सोम! **सः**=वह तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो, **यः**=जो कि **वृत्राय हन्तवे**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को नष्ट करने के लिये **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **आविथ**=रक्षित करता है। सोम से सबल होकर यह इन्द्र वृत्र के विनाश के लिये समर्थ होता है। (२) उस इन्द्र को यह सोम रक्षित करता है, जो कि **महीः उपः**=महत्त्वपूर्ण कर्मों का **वव्रिवांसम्**=वरण करता है। वस्तुतः इन कर्मों में लगे रहना ही सोमरक्षण का साधन है, कर्मों में लगे रहने से इन्द्रियाँ विषयों में भटकती नहीं।

भावार्थ—सोम को वही रक्षित कर पाता है जो कि कर्मों में लगा रहता है। रक्षित सोम हमें वासना-विनाश के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वीर-ऐश्वर्यशाली-ज्ञानी

सु॒वीरा॑सो व॒यं धना॒ जये॑म सोम मीढ्वः। पु॒ना॒नो व॑र्ध नो॒ गिरः॑ ॥ २३ ॥

(१) हे **मीढ्वः सोम**=सब सुखों का सेचन करनेवाले सोम! **सुवीरासः वयम्**=उत्तम वीर बने हुए हम **धना**=सब धनों का **जयेम**=विजय करें। सोमरक्षण से ही शरीर के सब कोश अपने धन से परिपूर्ण होते हैं। यह सोम ही अन्नमयकोश को तेजस्वी, प्राणमय को वीर्यवान्, मनोमय को बलवान् व ओजस्वी, विज्ञानमय को ज्ञानसम्पन्न (मधुमान्) तथा आनन्दमय को सहस्वान् बनाता है। (२) हे सोम! तू **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **नः**=हमारी **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को **वर्ध**=बढ़ा। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान को बढ़ाता ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) हमें वीर बनाता है, (ख) हमारे सब कोशों को ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है और (ग) हमारी ज्ञानाग्नि का दीपन करता है।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु-विनाश व व्रतपालन

त्वोता॑सस्तवाव॑सा स्याम॑ व॒न्वन्त॑ आ॒मुरः॑। सोम॑ व्र॒तेषु॑ जागृहि ॥ २४ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **तव अवसा**=तेरे रक्षण के द्वारा **त्वा ऊतासः**=तेरे से रक्षित हुए-हुए हम **आमुरः**=हमें विनष्ट करनेवाले शत्रुओं को **वन्वन्तः स्याम**=जीतते हुए (To win) हों। सुरक्षित सोम हमें इस योग्य बनाये कि हम रोगकृमिरूप विनाशक शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले बनें। (२) हे सोम! तू **व्रतेषु जागृहि**=व्रतों में, पुण्य कार्यों में सदा जागरित हो। अर्थात् तेरे रक्षण के द्वारा हम सदा पुण्य कार्यों को करनेवाले बनें।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले हों और व्रतों का पालन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मृधः अपघ्नन्

अप्रघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥

(१) **सोमः**=वीर्यशक्ति **मृधः**=विनाशक रोगकृमि रूप शत्रुओं को **अपघ्नन्**=सुदूर विनष्ट करती हुई **पवते**=हमें प्राप्त होती है। **सोमः**=यह सोम **अराव्णः**=न देने की वृत्तियों को, लोभ आदि वृत्तियों को **अप**=सुदूर विनष्ट करता हुआ हमें प्राप्त हुआ है। (२) यह सोम **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **निष्कृतम्**=पवित्र स्थान को **गच्छन्**=जानता है। अर्थात् यह हमें अन्ततः प्रभु को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम रोगकृमियों व अदानवृत्तियों को नष्ट करता है और हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वीरवद् यशः

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **नः**=हमारे लिये **महः रायः**=महान् धनों को **आभर**=प्राप्त कराओ। वस्तुतः सोम ही सुरक्षित हुआ-हुआ सब कोशों को धनों से परिपूर्ण करता है। हे सोम! तू **मृधः जहि**=नाशक रोगकृमिरूप शत्रुओं को विनष्ट कर। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **वीरवद् यशः रास्व**=वीरतापूर्ण यश को हमारे लिये दे। तेरे द्वारा हम वीर बनें और यशस्वी कार्यों को करनेवाले हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें महान् ज्ञानैश्वर्य को देनेवाला हो, रोगकृमियों को नष्ट करनेवाला हो तथा वीरता व यश को प्राप्त करानेवाला बनें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

राधो दित्सन्तम्

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥

(१) हे सोम! **राधः दित्सन्तम्**=सब ऐश्वर्यों को देने की कामनावाले **त्वा**=मुझे **शतं चन ह्रुतः**=सैंकड़ों भी कुटिलतायें **न आमिनन्**=हिंसित नहीं करती। जब शरीर में सोम सुरक्षित होता है तो यह हमारे लिये अन्नमयादि सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है और उस समय हम सब कुटिल भावों से ऊपर उठ जाते हैं, कुटिलताओं के हम शिकार नहीं होते, छल-छिद्र से रहित हमारा जीवन होता है। (२) हे सोम! **यत्**=जब तू **पुनानः**=हमारे जीवन को पवित्र करता है, तो **मखस्यसे**=हमारे जीवनों को यज्ञिय बनाने की कामनावाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) हमारे सब कोश ऐश्वर्य-सम्पन्न होते हैं, (ख) इन छल-छिद्र से ऊपर उठ जाते हैं, (ग) पवित्र यज्ञिय जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यशस्विता-निर्द्वेषता

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **नः पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **वृषा**=तू हमारे

लिये शक्ति को देनेवाला है। तू **नः**=हमें **जने**=लोगों में **यशसः कृधी**=यशस्वी कर। तेरे द्वारा हमारा जीवन यशवाला बने। (२) **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **अप जहि**=हमारे से दूर कर। सोम के सुरक्षित होने पर हमारा जीवन द्वेष से शून्य होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम यशस्वी व निर्द्वेष बनें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु-मर्षण

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे। सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **अस्य ते सख्ये**=इस तेरी मित्रता में और **तव**=तेरे **उत्तमे द्युम्ने**=उत्कृष्ट ज्ञान के प्रकाश में **वयम्**=हम **पृतन्यतः**=आक्रमण करते हुए शत्रुओं को **सासह्याम**=कुचलनेवाले हों। (२) सोम के रक्षण से हमारे अन्दर वह ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित होती है, जिसमें कि सब वासनायें दग्ध हो जाती हैं।

भावार्थ—सोम की मित्रता में हम सब शत्रुओं का पराजय कर पायें।

ऋषिः—**अमहीयुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रक्षा समस्य नो निदः

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे। रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥

(१) हे सोम! **धूर्वणे**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले के लिये **ते**=तेरे **या**=जो **आयुधा**=आयुध **सन्ति**=हैं, वे **भीमानि**=शत्रुओं के लिये भयंकर हैं और **तिग्मानि**=अत्यन्त तीक्ष्ण हैं। प्रभु ने 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' रूप आयुध हमारे लिये प्राप्त कराये हैं। सोम के सुरक्षित होने पर ये इतने तीव्र बनते हैं कि 'काम-क्रोध-लोभ' रूप शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले होते हैं। (२) हे सोम! सुरक्षित होकर तू **समस्य**=सब **निदः**=निन्दित कर्मों से **नः**=हमें **रक्षा**=बचानेवाला हो। सोम के रक्षित होने पर हमारा जीवन पवित्र बनता है, इन निन्दित कर्मों में नहीं फँसते।

भावार्थ—सोमरक्षण से इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि सभी दीप्त बनते हैं। हम निन्दित कर्मों में नहीं फँसते।

पवित्र जीवनवाले हम 'जमदग्नि' बने रहते हैं, दीप्त जाठराग्निवाले। विषय-विलास ही इस वैश्वानर अग्नि को मन्द करते हैं। इनसे ऊपर उठकर 'जमदग्नि' इस प्रकार सोम का स्तवन करता है—

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सब सौभाग्य

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

(१) **एते**=ये **इन्दवः**=सोमकण **विश्वानि**=सब **सौभगा अभि**=सौभाग्यों का लक्ष्य करके **तिरः**=तिरोहित रूप में, रुधिर में व्याप्त हुए-हुए और अतएव न दिखते हुए रूप में **असृग्रम्**=(सृज्यन्ते) उत्पन्न किये जाते हैं। जब तक ये रुधिर में व्याप्त रहते हैं, तब तक शरीर में सब सौभाग्यों का ये कारण बनते हैं। शरीर में किसी प्रकार के रोग को ये नहीं आने देते, सब इन्द्रियों की शक्तियाँ ठीक बनी रहती है, बुद्धि भी इन्हीं के रक्षण से तीव्र बनती है। (२) ये सोमकण **पवित्रम्**=पवित्र

हृदय को **आशवः**=व्यापनेवाले होते हैं। वस्तुतः इनके रक्षण से ही हृदय पवित्र बनता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोमकण सब सौभाग्यों को प्राप्त कराते हैं तथा हमारे हृदयों को पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दुरितों का दूरीकरण

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः। तना कृण्वन्तो अर्वते॥ २॥

(१) ये सोम **दुरिता**=सब दुरितों को, अशुभग मनों को **पुरु**=खूब ही **विघ्नन्तः**=नष्ट करते हुए **सुगा**=शुभगमनोंवाले होते हैं। सोमरक्षण से हम दुरितों से बचकर शुभों की ओर चलनेवाले होते हैं। (२) ये सोम **तोकाय**=हमारे सन्तानों के लिये भी **वाजिनः**=शक्तिवाले होते हैं। सोमरक्षण से हमारे सन्तान भी सशक्त होते हैं। (३) ये सोम **अर्वते**=इन्द्रियरूप अश्वों के लिये **तना**=शक्तियों के विस्तार को **कृण्वन्तः**=करते हुए होते हैं। सोमरक्षण से सब इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं।

भावार्थ—सोम हमें अशुभ मनों से शुभ मनों की ओर प्रवृत्त करता है।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

संयत-वाक्

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्। इळामस्मभ्यं संयतम्॥ ३॥

(१) ये सोम **गवे**=हमारी इन्द्रियों के लिये **वरिवः**=वरणीय धनों को **कृण्वन्तः**=करते हुए होते हैं। सदा इन इन्द्रियों को ये उत्तम शक्तिवाला बनाते हैं। ये सोम **सुष्टुतिं अभि अर्षन्ति**=उत्तम स्तुति की ओर चलते हैं। सुरक्षित सोम हमें स्तुति-प्रवण बनाते हैं। (२) ये सोम **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **इडाम्**=इस वेदवाणी को **संयतम्**=पूर्णरूप से वशीभूत करते हैं, इस वेदवाणी को हम खूब समझनेवाले बनते हैं। अथवा ये हमारी वाणी को संयत करते हैं, अर्थात् सोम के सुरक्षित होने पर हम संयत-वाक् होते हैं। हमारे मुख से कड़वे शब्द नहीं निकलते।

भावार्थ—सोमरक्षण के तीन लाभ हैं—(क) इन्द्रियों का सशक्त होना, (ख) स्तुति की प्रवृत्ति का उत्पन्न होना, (ग) संयत वाणीवाला बनना।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पिपीलिकामध्यागायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्द-कर्मकुशलता व ज्ञान

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः। श्येनो न योनिमासदत्॥ ४॥

(१) **अंशुः**=सोम **असावि**=शरीर में उत्पन्न किया जाता है। यह **मदाय**=शरीर में रक्षित हुआ आनन्द की वृद्धि के लिये होता है। **अप्सु दक्षः**=यह कर्मों में कुशल होता है, सोमरक्षण करनेवाला पुरुष कर्मों को कुशलता से करता है। यह सोम **गिरिष्ठाः**=वेदवाणी में स्थित होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और हम इन ज्ञान की वाणियों को अच्छी प्रकार समझने लगते हैं। (२) यह सोम **न**=(इदानीं) अब **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला होता हुआ **योनिम्**=सारे ब्रह्माण्ड के प्रभव रूप प्रभु में **आसदत्**=आसीन होता है। हमें प्रभु को यह प्राप्त करानेवाला बनता है। इस सोम के रक्षण से ही तो उस सोम की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम आनन्द, कर्मकुशलता व ज्ञान की प्राप्ति कराता हुआ प्रभु प्राप्ति का

साधन बनता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सात्त्विक अन्न व सोमरक्षण

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः। स्वदन्ति गावः पयोभिः॥ ५॥

(१) जब **गावः**=हमारी इन्द्रियाँ **देववातम्**=देवताओं से प्रार्थित (देवताओं से जाये गये) **शुभ्रं अन्धः**=शुद्ध-सात्त्विक-अन्न को **पयोभिः**=दूध के साथ **स्वदन्ति**=खाती हैं, तो **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवालों से **सुतः**=शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **अप्सु धूतः**=कर्मों में शुद्ध किया जाता है (शोधितः सा०)। (२) सात्त्विक अन्न व दुग्ध के सेवन से उत्पन्न सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। यह सोम कर्मों में शोधित होता है। अर्थात् जब हम कर्मों में लगे रहते हैं, तो वासनाओं के उत्पन्न न होने से सोम शुद्ध बना रहता है।

भावार्थ—सात्त्विक अन्न व दुग्ध का सेवन सोमरक्षण के लिये अनुकूल होता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मधुरस का अलंकरण

आदीमश्वं न होतारोऽशूशुभन्नमृताय। मध्वो रसं सधमादे॥ ६॥

(१) **आत् ईम्**=अब शीघ्र ही उपासक लोग **सधमादे**=(सद् माद्यन्ति अस्मिन्) यज्ञ में **मध्वः रसम्**=इस जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के रस को (सार को) **अशुशुभन्**=शरीर में ही अलंकृत करते हैं, जिससे **अमृताय**=अमृतत्व को प्राप्त कर सकें। इस सोम (रस) के शरीर में सुरक्षित होने पर शरीर में रोगों का प्रवेश नहीं होता। परिणामतः हम असमय में मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। (२) इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित करने का मार्ग यही है कि हम यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें। इन कर्मों में वस्तुतः हम प्रभु के साथ आनन्द का अनुभव कर रहे होते हैं। यज्ञ प्रवृत्त व्यक्ति सब विषय-वासनाओं से ऊपर उठा हुआ प्रभु के सम्पर्क में होता है। इसीलिए यज्ञ को 'सधमाद' कहा गया है। परिणामतः हम सोम का रक्षण भी करते हैं। वासनायें ही तो इसे विनष्ट करती थीं। शरीर में हम सोम को ऐसे ही शोभित करते हैं, **न**=जैसे कि **होतारः**=अश्वप्रेरक (सारथि) लोग **अश्वम्**=अपने अश्व को। सारथि अश्व को बड़ा ठीक रखता है, इसी प्रकार उपासक सोम को। इसी से तो उसकी जीवनयात्रा बड़ी शोभा के साथ पूर्ण होती है।

भावार्थ—हम यज्ञों में प्रवृत्त रहकर सोम को शरीर में ही परिशुद्ध रखें।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मधुश्चुतः धाराः

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये। ताभिः पवित्रमासदः॥ ७॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! **याः**=जो **ते**=तेरी **धाराः**=धारणशक्तियाँ **मधुश्चुतः**=शरीर में माधुर्य को क्षरित करनेवाली, **ऊतये**=रक्षण के लिये **असृग्रम्**=उत्पन्न की जाती हैं, **ताभिः**=उन धाराओं से **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में तू **आसदः**=आसीन हो। (२) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम (क) जीवन में माधुर्य को उत्पन्न करता है। (ख) यह शरीर के रक्षण के लिये होता है, रोगकृमियों के विनाश के द्वारा शरीर को सुरक्षित करता है। यह सोम हृदय की पवित्रता के होने पर शरीर में सुरक्षित होता है।

भावार्थ—पवित्र हृदयवाले पुरुष में सोम का रक्षण होता है। रक्षित हुआ-हुआ यह सोम

शरीर का रक्षण करता है। जीवन में माधुर्य को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अव्यया रोमाणि

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया। सीदन्योना वनेष्वा॥ ८॥

(१) 'रोमं' शब्द (water) पानी के लिये प्रयुक्त होता है। ये जल शरीर में रेतःकणों के रूप में रहते हैं 'आपः रेत्यो भूत्वा'। ये कण 'अव्यया'=शरीर को न नष्ट होने देनेवाले हैं। हे सोम! तेरे ये **अव्यया रोमाणि**=शरीर को न नष्ट होने देनेवाले रेतःकण **तिरः**=शरीर में तिरोहित होकर, रुधिर में व्याप्त होकर रहते हैं। **सः**=वह तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पीतये**=रक्षा के लिये **अर्ष**=प्राप्त हो। (२) तू **वनेषु**=(वन् संभक्तौ) उपासकों में **योनौ**=उस सारे ब्रह्माण्ड के प्रभव (उत्पत्ति-स्थान) प्रभु में **आसीदन्**=स्थित होता है। अर्थात् इस सोमरक्षण के द्वारा ही उपासक प्रभु को प्राप्त होनेवाले होते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम रोगों से बचाकर शरीर का रक्षण करता है और उपासना की वृत्ति को पैदा करके प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

घृतं-पयः

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः। वरिवोविद् घृतं पयः॥ ९॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **त्वम्**=तू **अंगिरोभ्यः**=तेरे रक्षण के द्वारा अंग-प्रत्यंग को रसमय बनानेवालों के लिये **स्वादिष्ठः**=जीवन को अतिशयेन आनन्दयुक्त करनेवाला है। (२) **वरिवः वित्**=सब वरणीय धनों का प्राप्त करानेवाला तू **घृतम्**=(घृ दीप्तौ) ज्ञान की दीप्ति को तथा **पयः**=(ओप्यायी वृद्धौ) शक्ति की वृद्धि को **परिस्रव**=प्राप्त करा। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है और शरीर को नीरोग बनाकर अंग-प्रत्यंग की शक्ति को बढ़ाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम 'ज्ञान व शक्ति' का वर्धन करके जीवन को मधुर बनाता है।

ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

बृहत् आप्यम्

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति। हिन्वान आप्यं बृहत्॥ १०॥

(१) **अयम्**=यह सोम **विचर्षणिः**=विशेषरूप से हमारा द्रष्टा (=ध्यान करनेवाला) होता है। यही तो शरीर को सब रोगों से बचाता है। **हितः**=यह सदा हमारे लिये हितकर होता है। **पवमानः**=हमारे जीवन को पवित्र बनाता है। (२) **सः**=वह सोम **बृहत् आप्यम्**=सदा वृद्धि की कारणभूत (महनीय) मित्रता को, प्रभु की मित्रता को **हिन्वानः**=प्रेरित करता हुआ **चेतति**=जाना जाता है। इस सोमरक्षण के द्वारा ही हमें प्रभु की मित्रता प्राप्त होती है। यह प्रभु की मित्रता 'बृहत्' है, हमारी वृद्धि का कारण बनती है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें पवित्र बनाता हुआ प्रभु की मित्रता को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वृषव्रत' सोम

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा। करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

(१) **एषः**=यह सोम **वृषा**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाला है। **वृषव्रतः**=शक्तिशाली कर्मोंवाला है। इसके रक्षित होने पर हमारे कर्म निर्बल नहीं होते। शक्तिपूर्वक कर्मों को करते हुए हम अवश्य उन कर्मों में सफल होते हैं। **पवमानः**=यह हमारे जीवन को पवित्र बनाता है। **अशस्तिहा**=सब बुराइयों का नाश करता है। (२) यह सोम **दाशुषे**=प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिये **वसूनि करत्**=निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों को करनेवाला होता है। शरीर में सुरक्षित सोम सब वसुओं को जन्म देता है।

भावार्थ—यह सोम हमारे लिये सब सुखों का वर्षण करनेवाला, हमें पवित्र करनेवाला व हमारे जीवन में सब वसुओं को जन्म देनेवाला है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहं (रयिम्)

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्। पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

(१) हे सोम! तू **रयिम्**=ऐश्वर्य को **आपवस्व**=हमारे लिये सर्वथा प्राप्त करा। उस रयि को, जो कि **सहस्रिणम्**=(सहस्) आनन्द का कारणभूत है। **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है। तथा **अश्विनम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है। सोमरक्षण से ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ उत्तम बनती हैं, जीवन आनन्दमय होता है। (२) उस रयि को, हे सोम! तू प्राप्त करा, जो कि **पुरुश्चन्द्रम्**=पालक व पूरक होता हुआ आह्लाद को देनेवाला है तथा **पुरुस्पृहम्**=पालक व पूरक होने के कारण स्पृहणीय है। सोम से प्राप्त कराया गया यह रयि ही 'तेज, वीर्य, बल व ओज, ज्ञान व आनन्द' के रूप में प्रकट होता है और जीवन को स्पृहणीय बना देता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम, शरीर के लिये अद्भुत रयि को देनेवाला होता है। इस रयि के परिणामस्वरूप जीवन उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाला, उत्तम कर्मेन्द्रियोंवाला व आनन्दमय बनता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उरुगायः कविक्रतुः

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः। उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥

(१) **एषः**=यह **स्यः**=यह सोम उल्लिखित मन्त्र के अनुसार रयि को देनेवाला सोम **आयुभिः**=गतिशील पुरुषों से (एति इति) **मर्मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ **परिषिच्यते**=शरीर में चारों ओर अंग-प्रत्यंग में सिक्त होता है। क्रियाशीलता के होने पर हम वासनाओं द्वारा सताये जाने से बचे रहते हैं। वासनाओं के अभाव में सोम शुद्ध बना रहता है। शुद्ध सोम शरीर में ही व्यापनवाला होता है। (२) यह सोम **उरुगायः**=खूब ही शंसनीय होता है, अथवा हमें शंसनीय जीवनवाला बनाता है और **कविक्रतुः**=यह क्रान्तप्रज्ञ होता है। सुरक्षित सोम हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है।

भावार्थ—गतिशीलता के द्वारा शुद्ध बना हुआ सोम शरीर में सिक्त होता है। यह हमें प्रशस्त जीवनवाला व क्रान्तप्रज्ञ बनाता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'शतामघः' (सोम)

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः। इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥

(१) **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मदः**=यह उल्लास का जनक सोम **पवते**=प्राप्त होता है। जितेन्द्रियता सोमरक्षण का साधन है और रक्षित हुआ-हुआ सोम आनन्द व उल्लास को जन्म देता है। (२) यह सोम **सहस्रोतिः**=हजारों प्रकार से हमारा रक्षण करनेवाला है। **शतामघः**=सैंकड़ों ऐश्वर्योंवाला है, यह जीवन के अन्दर शतशः ऐश्वर्यों को जन्म देता है। वस्तुतः अन्नमय आदि सब कोशों को यही उस-उस ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है, यही **रजसः विमानः**=(रजः कर्मणि भारत गी०) सब गति का विशेष मानपूर्वक बनानेवाला है। सोम ही हमें स्फूर्तिमय जीवनवाला बनाता है। **कविः**=यह हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाता है। संक्षेप में यह सोम ही गति व ज्ञान को पैदा करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शरीर का रक्षण करता है, इसे सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण करता है। यही हमें गति व ज्ञान से युक्त करता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विः वसतौ इव

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते। विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥

(१) **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **इह**=इस शरीर में ही **जातः**=प्रादुर्भूत हुआ-हुआ **स्तुतः**=गुणों से स्तवन किया गया यह **इन्दुः**=सोम **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **योनौ**=सब के मूल उत्पत्ति-स्थान प्रभु में धीयते=धारण किया जाता है। जब मनुष्य स्वाध्याय में लगा हुआ इन ज्ञान की वाणियों का ग्रहण करता है, तो यह सोम का रक्षण कर पाता है। इसीलिए सोम को 'गिरा जातः' कहा है। जितेन्द्रिय पुरुष इसके द्वारा प्रभु को प्राप्त करनेवाला बनता है। (२) यह सोम प्रभु में इस प्रकार धारण किया जाता है **इव**=जैसे कि **विः**=एक पक्षी **वसतौ**=अपने निवास-स्थानभूत घोंसलें में स्थापित होता है। यह सोमरक्षण करनेवाला पुरुष ही मानो पक्षी है, प्रभु इसका घोंसला बनते हैं। यही ब्रह्म-निष्ठता है एवं सोमी पुरुष ब्रह्मनिष्ठ होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय में लगे रहने से हम सोम का धारण करते हैं। सोम हमें प्रभु में धारित करता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

चमूषु शक्मनासदम्

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत्। चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥

(१) **पवमानः सोमः**=जीवनों को पवित्र करनेवाला यह सोम **नृभिः**=उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवालों से **सुतः**=पैदा किया हुआ **वाजं इव**=मानो संग्राम में ही **असरत्**=गतिवाला होता है। शरीर में यह रोगकृमियों के संहार के लिये प्रवृत्त होता है, तो मन में यह वासनाओं के विनष्ट करनेवाला होता है। (२) यह सोम **चमूषु**=इन शरीर रूप पात्रों में **शक्मना**=शक्ति के साथ **आसदम्**=आसीन होने के लिये होता है। सुरक्षित हुए-हुए सोम से ही अंग-प्रत्यंग में शक्ति का संचार होता है।

भावार्थ—यह सोम ही शरीर में रोगकृमियों व वासनाओं को संग्राम में पराजित करता है। सोमरक्षणवाला पुरुष रोगों व वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता। यह शरीर रूप पात्र में शक्ति को

भरनेवाला होता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्वस्थ सुन्दर' शरीर-रथ

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे। ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७॥

(१) यह शरीर-रथ 'वात-पित्त-कफ' रूप तीन पृष्ठों (आधारों) वाला होने से 'त्रिपृष्ठ' कहाता है। यह उत्तम 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप स्थिति स्थानोंवाला होने से 'त्रिवन्धुर' कहलाता है, तीन सुन्दर स्थानोंवाला (वन्धुर=beautiful)। इस **त्रिपृष्ठे**=तीन पृष्ठोंवाले, **त्रिवन्धुरे**=तीन सुन्दर स्थानोंवाले **रथे**=शरीर-रथ में **तम्**=उस सोम को **युञ्जन्ति**=युक्त करते हैं। इस सोम को विनष्ट होने से बचाकर शरीर में ही सुरक्षित करते हैं। इसे शरीर-रथ में इसलिए सुरक्षित करते हैं कि **यातवे**=इसके द्वारा वे प्रभु की ओर जाने के लिये समर्थ हों। (२) इस सोम को वे **ऋषीणाम्**=मन्त्रद्रष्टाओं की, ज्ञानी पुरुषों की **सप्त धीतिभिः**=(धीति devotion) सात छन्दों से युक्त वेदवाणियों से होनेवाली उपासनाओं के द्वारा शरीर-रथ में युक्त करते हैं। वस्तुतः प्रभु की उपासना ही सोम को शरीर में सुरक्षित करने का प्रमुख साधन है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम शरीर-रथ को 'त्रिपृष्ठ व त्रिवन्धुर' बनाता है। यह रथ हमें प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर ले चलता है।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम इस शरीर-रथ को दृढ़ व सुन्दर बनायें। सात छन्दों द्वारा होनेवाली उपासनायें ही सोमरक्षण का साधन बनती हैं। ऐसा होने पर यह शरीर-रथ हमें प्रभु की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाजाय यातवे

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे। हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

(१) हे **सोतारः**=सोम का शरीर में उत्पादन करनेवाले पुरुषो! **तम्**=उस **हरिम्**=सब दुःखों का हरण करनेवाले सोम को **हिनोत**=शरीर में ही प्रेरित करो। इसलिए इसे शरीर में प्रेरित करो कि **वाजाय**=यह शरीर में रोगकृमियों से होनेवाले संग्राम को करनेवाला हो तथा **यातवे**=हमें प्रभु की ओर ले चलनेवाला हो। (२) उस सोम का तुम शरीर में प्रेरित करो जो कि **धनस्पृतम्**=सब अन्नमय आदि कोशों के धनों का देनेवाला (grant) व रक्षण करनेवाला है (protect)। **आशुम्**=हमें शीघ्रता से कार्यों को करानेवाला है, और **वाजिनम्**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम के द्वारा हम सब कोशों के धनों को प्राप्त करके, नीरोग व शक्तिशाली बनकर, वासना-संग्राम में विजयी बनें और प्रभु की ओर जानेवाले हों।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

श्री-सम्पन्नता

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥

(१) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **कलशम्**=इस शरीर रूप पात्र में **आविशन्**=प्रवेश करता हुआ **विश्वाः**=सब **श्रियः**=धनों की **अभि अर्षन्**=ओर ले जानेवाला होता है (अभिगमयन् सा०)। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम अन्नमय आदि सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है। (२) इन सब ऐश्वर्यों से युक्त यह **शूरः न**=शूरवीर के समान **गोषु तिष्ठति**=सब

इन्द्रियों पर अधिष्ठातृरूपेण स्थित होता है (गावः इन्द्रियाणि)। सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष जितेन्द्रिय तो होता ही है। इन इन्द्रियों को वश में करना ही सब से बड़ी शूरता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम इसे श्री-सम्पन्न बनाता है। यह सोमरक्षक पुरुष शूरवीर व इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनता है।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देवेभ्यः मधु

आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः। देवा देवेभ्यो मधु॥ २०॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **आयवः**=(एति इति आयुः) गतिशील पुरुष **मदाय**=आनन्द व उल्लास की प्राप्ति के लिये **ते**=तेरी **कं पयः**=आनन्दप्रद आप्यायन शक्ति को **आदुहन्ति**=अपने में प्रपूरित करते हैं। सोमरक्षण का सब से प्रमुख साधन कर्मों में लगे रहना ही है। न खाली हों और न वासनायें हमारे पर आक्रमण करें। वासनाओं के आक्रमण से ही तो सोम का विनाश होता है। इस प्रकार क्रिया में लगे रहकर यदि हम सोम का रक्षण करते हैं, तो जीवन में एक अद्भुत उल्लास को पाते हैं। (२) **देवाः**=हे देववृत्ति के पुरुषो! (दिव् विजिगीषायां) वासनाओं को जीतने की कामनावाले पुरुषो! यह सोम **देवेभ्यः**=सब इन्द्रियों के लिये **मधु**=अत्यन्त सारभूत उत्कृष्ट वस्तु है। यही सब इन्द्रियों को सशक्त बनानेवाला है।

भावार्थ—सोम जीवन में उल्लास को देता है, यह इन्द्रियों को सशक्त बनाता है।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मधुमत्तम-देवश्रुत्तम

आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम्। देवेभ्यो देवश्रुत्तमम्॥ २१॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे जीवो! तुम **नः**=हमारे **सोमम्**=इस सोम को **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **आसृजत**=सर्वथा उत्पन्न करो। हृदय की पवित्रता के होने पर ही यह शरीर में सुरक्षित रहता है। (२) उस सोम को तुम अपने में पैदा करो, जो कि **मधुमत्तमम्**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है तथा **देवेभ्यः**=देववृत्तिवाले पुरुषों के लिये **देवश्रुतमम्**=उस महान् देव की वाणी को, इस ज्ञान की वाणी को अधिक से अधिक सुननेवाला है। अर्थात् इस सोम से प्रथम तो जीवन मधुर बनता है, दूसरे इसका रक्षक पुरुष ज्ञान की रुचि के उत्पन्न होने से प्रभु की वाणी को सुननेवाला होता है।

भावार्थ—हृदय को पवित्र बनाकर सोम के रक्षण से हमारा जीवन मधुर व ज्ञान-प्रवण (ज्ञान की ओर झुकाववाला) बने।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

श्रवसे महे

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे। मदिन्तमस्य धारया॥ २२॥

(१) **एते**=ये **सोमाः**=सोमकण (रेतःकण) **असृक्षत**=उत्पन्न किये जाते हैं। **गृणानाः**=स्तुति किये जाते हुए ये **महे श्रवसे**=महान् ज्ञान के लिये होते हैं। इनके रक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, बुद्धि सूक्ष्म बनती है। यह सूक्ष्म बुद्धि उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनती है। (२) ये सोम **मदिन्तमस्य**=(मादयितृतमस्य) अत्यन्त उल्लास को पैदा करनेवाले अपने रस की **धारया**=धारणशक्ति से उत्कृष्ट ज्ञान का साधन बनते हैं शरीर में सुरक्षित सोम अपनी धारणशक्ति

के द्वारा जहाँ शरीर को स्वस्थ बनाता है, वहाँ मस्तिष्क को खूब दीप्त बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम महान् ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सनद्वाजः

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि। सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥

(१) हे सोम! तू **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **वीतये**=(वी असने) अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये **गव्यानि**=(गावः इन्द्रियाणि) इन ज्ञानेन्द्रियों सम्बन्धी **नृम्णा**=धनों को **अभि अर्षसि**=हमें प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से सब इन्द्रियाँ सशक्त होकर अपने-अपने कार्य को सुन्दरता से करती हैं। उससे ज्ञानवृद्धि होकर हमारा अज्ञानान्धकार विनष्ट होता है। (२) **सनद्वाजः**=दी है शक्ति जिसने ऐसा यह सोम है। इसी से सब इन्द्रियों को अंगों को बल प्राप्त होता है। हे सोम! तू **परिस्रव**=हमारे शरीर में चारों ओर प्रवाहित होनेवाला हो।

भावार्थ—सोम ज्ञानेन्द्रियों के धन को प्राप्त कराता है और कर्मेन्द्रियों को सशक्त बनाता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'ज्ञानाग्नि व जाठराग्नि' का दीपन

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः। गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

(१) हे सोम! तू **उत**=निश्चय से **नः**=हमारे लिये **विश्वाः**=सब **गोमतीः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **अर्ष**=प्राप्त करा। ये प्रेरणायें **परिष्टुभः**=सब ओर से आक्रमण करनेवाली (परि) वासनाओं को रोकनेवाली है (स्तुभ्)। (२) यह सोम **जमदग्निना**=जमदग्नि से **गृणानः**=स्तुति किया जाता है। 'जमद् अग्नि' वह व्यक्ति है जिसकी कि जाठराग्नि (वैश्वानर अग्नि) ठीक रहती हैं, जिसकी अग्नि में मन्दता नहीं आती। वस्तुतः सोमरक्षण के द्वारा ही जमदग्नि बनता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि को भी दीप्त करता है, जाठराग्नि को भी।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें प्रभु-प्रेरणाओं के रूप में वह ज्ञान प्राप्त होता है जो कि वासनाओं के आक्रमण से हमें बचाता है। यह सोम जाठराग्नि को भी ठीक रखता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'अग्रिय' सोम

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः। अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥

(१) हे सोम! तू हमारे लिये **चित्राभिः ऊतिभिः**=अद्भुत रक्षणों के हेतु से **वाचः**=ज्ञान की वाणियों को **पवस्व**=प्राप्त करा। **अग्रियः**=तू हमारी अग्रगति का साधन है। सब उन्नतियों का मूल यह सोमरक्षण ही है। (२) तू **विश्वानि काव्या अभि**=सब प्रभु की वेदवाणियों की ओर हमें ले चल 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। सोमरक्षण के द्वारा दीप्त बुद्धि बनकर हम ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करें।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियों की ओर ले चलता हुआ यह सोम हमें उन्नतिपथ पर ले चलता है, यह 'अग्रिय' है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'विश्वमेजय'

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्। पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

(१) हे **विश्वमेजय**=सब रोगकृमियों व वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले सोम! **त्वम्**=तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। तेरे द्वारा सब रोगकृमियों का विनाश होकर हमें स्वस्थ व सबल शरीर प्राप्त हो तथा वासनाओं का विनाश होकर पवित्र हृदय मिले। (२) तू **अग्रियः**=हमारी उन्नति का साधक है। **वाचः**=ज्ञान की वाणियों को उन पवित्र हृदयों में **ईरयन्**=प्रेरित करता हुआ तू **समुद्रियाः अपः**=ज्ञानैश्वर्य के समुद्र भूत इन वेदों के (रायः समुद्राँश्चतुरः) ज्ञान जलों को हमें प्राप्त करा।

भावार्थ—रोगकृमियों व वासनाओं को कम्पित करके दूर करता हुआ यह सोम हमें ज्ञान-समुद्रभूत वेदों के ज्ञान जलों को प्राप्त कराये।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'स्वलोक धारक' सोम

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे। तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः॥ २७॥

(१) सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाता है, सो सोम को ही यहाँ 'कवि' कहा गया है। हे **कवे सोम**=हमें तीव्र बुद्धिवाला बनानेवाले सोम! **इमा भुवना**=ये सब लोक **तुभ्य महिम्ने**=तेरी महिमा के द्वारा ही **तस्थिरे**=स्थित हैं। शरीर के सब अंग-प्रत्यंग (लोक) इस सोम के द्वारा ही स्वस्थ व सशक्त बने रहते हैं। (२) **तुभ्यम्**=तेरे लिये ही **सिन्धवः**=ज्ञान-समुद्र **अर्षन्ति**=गतिवाले होते हैं। इन सोमकणों के रक्षण से ही सारा ज्ञान का प्रवाह चलता है।

भावार्थ—हे सोम! तेरी महिमा से ही सब अंग-प्रत्यंग दृढ़ बनते हैं। और तेरी महिमा से ही ज्ञान-समुद्रों का प्रवाह चलता है।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'अभि शुक्रां उपस्तिरम्'

प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः। अभि शुक्रामुपस्तिरम्॥ २८॥

(१) हे सोम! **दिवः वृष्टयः न**=द्युलोक से होनेवाली वृष्टियों की तरह **ते**=तेरी **असश्चतः**=(unceasing, not drying up) न शुष्क हो जानेवाली **धाराः**=धारायें **प्रयन्ति**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त होती हैं। जैसे द्युलोक से होनेवाली वृष्टि सब सन्ताप का हरण करनेवाली होती है, इसी प्रकार इस सोम की धारायें शरीर के सब सन्तापों को विनष्ट करती हैं। (२) ये धारायें **शुक्राम्**=अत्यन्त निर्मल **उपस्तिरम्**=आच्छादन का **अभि**=लक्ष्य करके हमें प्राप्त होती हैं। यह 'अत्यन्त निर्मल आच्छादन' प्रभु ही है। 'अमृतोपस्तरणमसि'। यह सोम हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—निरन्तर शरीर में प्रवाहित होनेवाली सोम की धारायें सब सन्तापों का हरण करती हुई प्रभुरूप दीप्त आच्छादन को हमें प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ईशानं वीतिराधसम्

इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम्। ईशानं वीतिराधसम्॥ २९॥

(१) **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **इन्दुम्**=इस सोम को **पुनीतन**=पवित्र करो। यह पवित्र सोम ही ज्ञानदीप्ति का साधन बनकर प्रभु-दर्शन कराता है। उस सोम को पवित्र करो, जो कि **उग्रम्**=अत्यन्त तेजस्वी है, रोगकृमियों के लिये भयकर है। **दक्षाय**=(growth)

उन्नति व विकास के लिये **साधनम्**=साधनभूत है। (२) उस सोम को पवित्र करो, जो कि **ईशानम्**=सब ऐश्वर्यों का स्वामी है, सब अन्नमय आदि कोशों को ऐश्वर्य से परिपूर्ण करनेवाला है। **वीतिराधसम्**=(वी कान्तौ) दीप्त धनोंवाला है।

भावार्थ—हम सोम को पवित्र करें जो कि हमें 'उग्र (तेजस्वी) उन्नत व ऐश्वर्यशाली' बनाता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'पवमानः ऋतः कविः'

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत्। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३० ॥

(१) **सोमः**=सोम **पवित्रं आसदत्**=पवित्र हृदय पुरुष में आसीन होता है। हृदय की पवित्रता के होने पर यह शरीर में सुरक्षित होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह **पवमानः**=हमारे जीवन को पवित्र करता है। **ऋतः**=यह हमारे जीवन को सत्यमय बनाता है। **कविः**=यह हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाता है। (२) शरीर में सुरक्षित होने पर यह सोम **स्तोत्रे**=स्तोता के लिये **सुवीर्यं दधत्**=उत्कृष्ट वीर्य को धारण करता है। इस वीर्य के द्वारा ही यह सोम का स्तवन करनेवाला पुरुष शक्तिशाली बनता हुआ रोगों को भी जीतनेवाला बनता है और वासनाओं से भी ऊपर उठ पाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें 'पवित्र, सत्यमय व क्रान्तप्रज्ञ' बनाता है। हमारे लिये उत्कृष्ट शक्ति को धारण करता है।

इस प्रकार सोमरक्षण से यह व्यक्ति 'निध्रुवि'=नितरां ध्रुव=स्थितप्रज्ञ बनता है, 'काश्यप'=ज्ञानी होता है। इस 'निध्रुवि काश्यप' का ही अगला सूक्त है—

[६३] त्रिषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुवीर्य-ज्ञान

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम्। अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू हमारे लिये **सहस्रिणं रयिम्**=हजारों ऐश्वर्यों को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को प्राप्त करा। (२) **अस्मे**=हमारे लिये **श्रवांसि**=ज्ञानों को **धारय**=धारण करा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे लिये 'रयि, सुवीर्य व ज्ञानों' को धारण कराता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मत्सरिन्तमः

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः। चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥

(१) हे सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **इषम्**=प्रेरणा को, अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को **च**=और **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **पिन्वसे (क्षरसि)**=प्राप्त कराता है। इनको प्राप्त कराके तू **मत्सरिन्तमः**=अतिशयेन आनन्दित करनेवाला होता है। (२) हे **चमूषु**=इन शरीररूप पात्रों में **आनिषीदसि**=समन्तात् स्थित होता है। शरीर में व्याप्त होकर ही यह हमारे लिये आनन्दित करनेवाला होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमारे लिये प्रभु-प्रेरणा को बल व प्राणशक्ति को प्राप्त कराता है और हमारे लिये मादयितृतम होता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'इन्द्र, विष्णु व वायु' के द्वारा सोमरक्षण

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत्। मधुमाँ अस्तु वायवे॥ ३॥

(१) **सुतः सोमः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **इन्द्राय विष्णवे**=इन्द्र व विष्णु के लिये **कलशे अक्षरत्**=शरीर में ही गतिवाला होता है। इन्द्र का भाव है 'जितेन्द्रिय' तथा विष्णु का भाव है 'व्यापक (उदार) हृदयवाला' यज्ञशील। जो जितेन्द्रिय व यज्ञशील बनता है, वही सोम को शरीर में सुरक्षित कर पाता है। (२) यह सोम **वायवे**=(वा गतौ) गतिशील पुरुष के लिये **मधुमान् अस्तु**=अत्यन्त माधुर्यवाला हो। गतिशील व्यक्ति के जीवन में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम उसके जीवन को मधुर बनाता है।

भावार्थ—=हम 'जितेन्द्रिय, यज्ञशील व गतिशील' बनकर सोम को सुरक्षित कर पाते हैं। यह हमारे जीवन को मधुर बनाता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ऋतमय ऋजु' जीवन

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः। सोमा ऋतस्य धारया॥ ४॥

(१) **एते सोमाः**=ये सोमकण **ऋतस्य धारया**=ऋत के धारण के हेतु से **असृग्रम्**=पैदा किये जाते हैं। उत्पन्न हुए-हुए ये सोम हमारे जीवन में ऋत का धारण करते हैं। हमारा जीवन इस सोम से ऋतमय बनता है। (२) ये सोम **आशवः**=हमें शीघ्रता से कार्य करानेवाले, हमारे में स्फूर्ति को देनेवाले होते हैं। ये **ह्वरांसि अति**=हमें सब कुटिलताओं से दूर ले जाते हैं तथा **बभ्रवः**=ये हमारा धारण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—उत्पन्न हुए-हुए सोम हमारे जीवन को ऋतमय व ऋजु बनाते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

आर्य व उदार

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ५॥

(१) शरीरस्थ सोम **इन्द्रं वर्धन्तः**=हमारे अन्दर इन्द्र का वर्धन करते हैं। सोमरक्षण से हमारे अन्दर प्रभु की भावना बढ़ती है। ये सोमकण '**अप्तुरः**'=हमें कर्मों में त्वरा से प्रेरित करते हैं। ये हमारे **विश्वम्**=सम्पूर्ण जीवन को **आर्यम्**=श्रेष्ठ **कृण्वन्तः**=करते हैं। (२) और ये सोम **अराव्णः**=अदानवृत्तियों को **अपघ्नन्तः**=सुदूर विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'प्रभु-प्रवण क्रियाशील आर्य व उदार' बनाता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्द्रं गच्छन्तः

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः। इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः॥ ६॥

(१) **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए ये सोमकण **बभ्रवः**=हमारा धारण करनेवाले होते हैं। ये **इन्दवः**=शक्तिशाली सोम **इन्द्रं गच्छन्तः**=जितेन्द्रिय पुरुष को प्राप्त होते हैं। (२) ये सोम **स्वं रजः**=अपने लोक का **अनु**=लक्ष्य करके **आ अभ्यर्षन्ति**=शरीर में चारों ओर प्राप्त होते हैं। शरीर में सुरक्षित हुए-हुए ही ये स्वस्थान में स्थित रहते हैं। यहाँ स्थित हुए-हुए ये शरीर को 'नीरोग, निर्मल व दीप्त' बनाते हैं और हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य करते हैं। इस प्रकार ये उस इन्द्र की ओर जा रहे होते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष में ये सोम अपने स्थान में ही स्थित रहते हैं, अर्थात् शरीर से निर्गत नहीं होते और इस प्रकार ये हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सूर्य-रोचन

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः। हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

(१) हे सोम! तू **अया**=(अनया) इस **धारया**=धारणशक्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो, **यया**=जिससे कि तू **सूर्यं अरोचयः**=हमारे जीवन-गगन में सूर्यम्=ज्ञानसूर्य को अरोचयः=दीप्त करता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और उससे हमारा ज्ञान का प्रकाश चमक उठता है। (२) हे सोम! इस ज्ञान के प्रकाश के द्वारा तू **मानुषीः अपः**=मनुष्योचित कर्मों को **हिन्वानः**=हमारे में प्रेरित करता है। ज्ञानी बनकर हम यज्ञादि लोकहितकारी कर्मों में ही प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम दीप्त ज्ञानाग्निवाले बनते हैं और सदा मानवोचित कर्मों को ही करते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अन्तरिक्ष से जाना

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥

(१) **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ यह सोम **मनौ अधि**=विचारशील पुरुष में **सूरः**=सूर्य के **एतशम्**=अश्व को **अयुक्त**=जोतता है। सूर्य के अश्व को युक्त करने का भाव यही है कि हमारे जीवन में यह सोम ज्ञान के सूर्य को उदित करता है। (२) यह उदित हुआ-हुआ ज्ञान का सूर्य **अन्तरिक्षेण**=अन्तरिक्ष मार्ग से **यातवे**=जाने के लिये होता है। सोमरक्षण से जब हमें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, तो हम सदा मध्यमार्ग से चलनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञान प्राप्त कराके मध्यमार्ग में चलनेवाला बनाता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु रूप लक्ष्य-स्थान

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे। इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥

(१) **इन्दुः**=यह सोम **उत**=निश्चय से **त्याः**=उन **दश हरितः**=दसों दिशाओं में **यातवे**=जाने के लिये, सब दिशाओं में उन्नति के लिये **सूरः**=सूर्य के अश्व को **अयुक्त**=जोतता है, ज्ञान के सूर्य को उदित करता है। (२) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु ही तुम्हारा लक्ष्य है, **इति ब्रुवन्**=ऐसा कहता हुआ यह सोम इस सूर्य के अश्व को जोतता है। इस ज्ञानसूर्य ने हमें मध्यमार्ग से गतिवाला करके उस प्रभु के समीप प्राप्त कराना है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञानदीप्ति के द्वारा प्रभु के समीप प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वायवे इन्द्राय' मत्सरम्

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम्। अव्यो वारेषु सिञ्चत॥ १०॥

(१) **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **इतः**=इस उत्पत्ति-स्थान से **गिरः**=हे स्तोताओ! **परि सिञ्चत**=शरीर में चारों ओर सिक्त करो। शरीर के अंग-प्रत्यंग को यह शक्तिशाली बनानेवाला हो। (२) उस सोम को तुम सिक्त करो, जो कि **वायवे**=गतिशील पुरुष के लिये तथा **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरम्**=आनन्द के सञ्चार को करनेवाला है। इसलिए तुम इसे सिक्त करो कि यह **अव्यः वारेषु**=(अवेः) रक्षक पुरुष के रोगादि के निवारण को निमित्त बनाता है। हम इसका रक्षण करते हैं। यह हमें रोगों वा मानसविकारों से बचाता है। गतिशीलता व जितेन्द्रियता ही इस सोमरक्षण के साधन है।

भावार्थ—गतिशील व जितेन्द्रिय बनकर हम सोम का रक्षण करते हैं। यह रक्षित सोम हमारे जीवन में उल्लास का कारण बनता है और सब निवारण के योग्य चीजों को हमारे से दूर रखता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'दुष्टर व दूणाश' रयि

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम्। यो दूणाशो वनुष्यता॥ ११॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **सोम**=शरीर के सब ऐश्वर्यों के साधनभूत सोम! तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रयिं विदाः**=उस धन को प्राप्त करा जो कि **दुष्टरम्**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं, अर्थात् जिस रयि को शत्रु आक्रान्त नहीं कर सकते। इस सोम के शरीर में सुरक्षित होने पर हमारे पर रोगादि का आक्रमण नहीं हो सकता। (२) उस रयि को तू हमें प्राप्त करा **यः**=जो कि **वनुष्यता**=हिंसकों से **दूणाशः**=नष्ट नहीं की जा सकती। सोम के सुरक्षित होने पर मन में काम-क्रोध-लोभ आदि दुर्वासनाओं का आक्रमण नहीं हो पाता। सोमी पुरुष कभी वासनाओं का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें वह ऐश्वर्य प्राप्त होता है जो कि शत्रुओं से नष्ट नहीं किया जा सकता।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सब कोशों का ऐश्वर्य

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्। अभि वाजमुत श्रवः॥ १२॥

(१) हे सोम! तू **रयिम्**=उस ऐश्वर्य को **अभि अर्ष**=हमें प्राप्त करा, जो कि **सहस्रिणम्**=(सहस्) सदा आनन्द से युक्त है, 'सहस्' वाला है। यही तो आनन्दमय कोश का ऐश्वर्य है 'सहोसि सहो मयि धेहि'। (२) उस ऐश्वर्य को प्राप्त करा जो कि **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है तथा **अश्विनम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है। यही ऐश्वर्य प्राणमयकोश का है 'प्राणाः वाव इन्द्रियाणि'। (३) हे सोम! तू हमें **वाजं अभि**=बल की ओर ले चल। यह बल ही मनोमयकोश का ऐश्वर्य है 'बलमसि बलं मयि धेहि'। उत और **श्रवः**=ज्ञान की ओर तू हमें ले चल। हमारे विज्ञानमयकोश को ज्ञानैश्वर्य से तू परिपूर्ण कर।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें आनन्द, उत्तम इन्द्रियाँ, शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रकाश-पवित्रता-मधुरता

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः। दधानः कलशे रसम्॥ १३॥

(१) **सोमः**=शरीर में उत्पन्न होनेवाला सोम **सूर्यः देवः न**=सूर्य देव के समान है। सूर्योदय होता है और सारा अन्धकार विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार हमारे जीवन-गगना में भी सोमरक्षण के द्वारा ज्ञान-सूर्य का उदय होता है और सब अज्ञानान्धकार विलुप्त हो जाता है। (२) **अद्रिभिः**=उपासकों से (adore) **सुतः**=उत्पन्न किया गया यह सोम **पवते**=जीवन को पवित्र करता है। यह सोम **कलशे**=सोलह कलाओं के निवास-स्थानभूत इस शरीर में **रसं दधानः**=रस को धारण करता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह जीवन को रसमय (मधुर) बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (१) अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है, (२) जीवन को पवित्र बनाता है, (३) इसमें मधुरता को भरता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

गोमान् वाज

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन्॥ १४॥

(१) **एते**=ये **शुक्राः**=जीवन को शुचि व शक्तिशाली बनानेवाले सोम **ऋतस्य धारया**=(धारा=वाङ्नामसु) सत्य वेदज्ञान की वाणी से **आर्या धामानि**=श्रेष्ठ तेजों को **अक्षरन्**=हमारे में क्षरित करते हैं। ये सोमकण ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें श्रेष्ठ तेजों से युक्त करते हैं। (२) **गोमन्तं वाजम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले (गावः इन्द्रियाणि) बल को ये हमारे में क्षरित करते हैं। हमें ये पवित्र व बल-सम्पन्न बनाते हैं। सुरक्षित सोम से शरीर ही नीरोग नहीं होता, मन भी इससे निर्मल बनता है। एवं यह सोम हमें पवित्र तो बनाता ही है। यह हमें शक्तिशाली भी बनाता है। पवित्र व वासनाओं से अनाक्रान्त जीवनवाला पुरुष शक्ति के रक्षण से बल-सम्पन्न तो होता ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें वेदज्ञान के अनुसार चलाता हुआ पवित्र व शक्ति-सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'दध्याशिरः' सोमासः

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः। पवित्रमत्यक्षरन्॥ १५॥

(१) **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये, **वज्रिणे**=गतिशीलता रूप वज्रवाले के लिये **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए **सोमासः**=ये सोमकण **दध्याशिरः**=(धत्ते, आशृणाति) बल को धारण करनेवाले होते हैं तथा सब बुराइयों को शीर्ण करनेवाले होते हैं। (२) **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को ये **अति अक्षरन्**=अतिशयेन प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये साधन हैं—(क) जितेन्द्रियता, (ख) क्रियाशीलता, (ग)

हृदयता की पवित्रता। सुरक्षित हुए-हुए सोम हमें बल-सम्पन्न व निर्मल बनाते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

माधुर्य-उल्लास-दिव्यता

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ। मदो यो देववीतमः॥ १६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **राये**=सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये, अन्नमय आदि कोशों को तेज आदि सम्पत्तियों से परिपूर्ण करने के लिये **आ प्र अर्ष**=शरीर में समन्तात् प्राप्त हो। रुधिर के साथ सारे शरीर में ही तेरा व्यापन हो। (२) वह तू हमें प्राप्त हो, **यः**=जो कि **मधुमत्तमः**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है। **मदः**=उल्लास का जनक है और **देववीतमः**=अधिक से अधिक दिव्य गुणों को उत्पन्न करनेवाला है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें 'माधुर्य, उल्लास व दिव्यता' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

नदीषु वाजिनम्

तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्॥ १७॥

(१) **आयवः**=गतिशील पुरुष **तम्**=उस सोम को **ईम्**=निश्चय से **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं, इसे वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। जो सोम **हरिम्**=सब दुःखों का हरण करनेवाला है। जो **नदीषु**=शरीर की सब नाड़ियों में (रक्तवाहिनी धमनियों में) **वाजिनम्**=शक्ति का सञ्चार करनेवाला है। इसके नाश से सारा नाड़ी संस्थान दुर्बल पड़ जाता है। (२) उस सोम का शोधन करते हैं, जो कि **इन्दुम्**=शक्ति का संचार करनेवाला है तथा **इन्द्राय मत्सरम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये आनन्द का सञ्चार करनेवाला है।

भावार्थ—गतिशीलता से वासनाओं के आक्रमण के न होने से सोम पवित्र बना रहता है। यह रोगहर्ता, नाड़ियों को सशक्त बनानेवाला व आनन्द का दाता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

गोमान् वाज

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत्। वाजं गोमन्तमा भर॥ १८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **हिरण्यवत्**=ज्योति से युक्त, ज्ञान-ज्योतिवाली, **अश्वावत्**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले **वीरवत्**=उत्तम सन्तानोंवाले ऐश्वर्य को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। हम सोमरक्षण के द्वारा ज्ञान, उत्तम इन्द्रियों व वीर सन्तानों को प्राप्त करें। (२) हे सोम! तू **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजम्**=बल को **आभर**=हमारे में भरनेवाला हो। तेरे द्वारा ज्ञानाग्नि के दीपन से इन ज्ञान की वाणियों को ग्रहण करनेवाले बनें तथा शरीर में शक्ति-सम्पन्न हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'ज्ञान-प्रशस्त इन्द्रियों, वीर सन्तानों व शक्ति' को देनेवाला हो।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वाजयु-मधुमत्तम' सोम

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत। इन्द्राय मधुमत्तमम्॥ १९॥

(१) **वाजे न**=जीवन संग्राम के निमित्त, संग्राम तुल्य इस जीवन में **वाजयुम्**=शक्ति को हमारे साथ जोड़नेवाले इस सोम को **अव्यः**=(अवः) सोमरक्षक पुरुष के **वारेषु**=वासनाओं के

निवारण करने पर **परि सिञ्चत**=शरीर में चारों ओर सिक्त करनेवाले होवो। जब हम वासनाओं से ऊपर उठते हैं, तो सोम को शरीर में सुरक्षित कर पाते हैं। (२) उस सोम को शरीर में सिक्त करो, जो कि **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मधुमत्तमम्**=जीवन को अतिशयेन मधुर बनानेवाला है। शरीर को यह सोम ही सब प्रकार से नीरोग व निर्मल बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें जीवन संग्राम में विजय के लिये शक्ति प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'कवि-मर्ज्य' सोम

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः। वृषा कनिक्रदर्षति॥ २०॥

(१) **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले व्यक्ति, **अवस्यवः**='रोगों व वासनाओं' के आक्रमण से अपने रक्षण की कामनावाले इस सोम का **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक उत्तम कर्मों में लगे रहने के द्वारा (धी=बुद्धि व कर्म) **मृजन्ति**=शोधन करते हैं। उस सोम का शोधन करते हैं, जो कि **कविम्**=हमें क्रान्तप्रज्ञ व सूक्ष्म बुद्धिवाला बनाता है तथा **मर्ज्यम्**=शोधन के योग्य है। सोम का शोधन यही है कि यह वासनाओं से मलिन न हो। इसका साधन यही है कि हम ज्ञानपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त रहें। (२) **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला यह सोम **कनिक्रत्**=प्रभु के गुणों का उच्चारण करता हुआ **अर्षति**=शरीर में गतिवाला होता है। सुरक्षित सोम हमें शक्ति-सम्पन्न व प्रभु-प्रवण बनाता है।

भावार्थ—ज्ञानपूर्वक कर्मों में लगे रहकर हम सोम का शोधन करें। यह हमें शक्ति-सम्पन्न व प्रभु के प्रति प्रीतिवाला बनायेगा।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वृषणं असुरम्

वृषणं धीभिरसुरं सोममृतस्य धारया। मती विप्राः समस्वरन्॥ २१॥

(१) **विप्राः**=अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी लोग **ऋतस्य धारया**=ऋत के, जो भी ठीक है उसके धारण के हेतु से **मती**=मतिपूर्वक **सोमं समस्वरन्**=सोम का स्तवन करते हैं, सोम के गुणों का उच्चारण करते हैं। (२) उस सोम के गुणों का उच्चारण करते हैं, जो कि **वृषणम्**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला है तथा **धीभिः असुरम्**=बुद्धियों के साथ कर्मों को हमारे में प्रेरित करनेवाला है। सोमरक्षण से हम शक्तिसाली बनते हैं। यह सुरक्षित सोम हमें ज्ञानपूर्वक कर्मोंवाला बनाता है।

भावार्थ—सोम के गुणों का स्मरण करते हुए हम इसके रक्षण के द्वारा शक्तिशाली व कर्मशील बनते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वायुं आरोह धर्मणा

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा॥ २२॥

(१) हे **देव**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाले सोम! तू **आयुषक्**=(अनुषक्तं) निरन्तर हमें **पवस्व**=प्राप्त हो **ते मदः**=तेरा उल्लास, तेरे रक्षण से उत्पन्न उल्लास **इन्द्रं गच्छतु**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को प्राप्त हो। (२) हे सोम! तू **धर्मणा**=अपनी धारण शक्ति के द्वारा **वायुं आरोह**=आरोहण करता हुआ निरन्तर गतिशील प्रभु को (वा गतौ) प्राप्त हो। यह सोम हमारे जीवन में पवित्रता

का सञ्चार करता हुआ हमें प्रभु की ओर ले जानेवाला हो। 'वायु' नाम से प्रभु का स्मरण करता हुआ यह सोमरक्षक पुरुष भी निरन्तर गतिशील बनता हुआ अपने जीवन को अधिकाधिक पवित्र करता है।

भावार्थ—हम सोमरक्षण द्वारा पवित्र व उल्लासमय जीवनवाले बनकर प्रभु को प्राप्त हों।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

समुद्रं आविश

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्। प्रियः समुद्रमा विश॥ २३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले! **नितोशसे**=तू निश्चय से हमारे रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करता है। इनको विनष्ट करके तू **श्रवाय्यम्**=अत्यन्त प्रशंसनीय **रयिम्**=(आविश) ऐश्वर्य में प्रवेश करनेवाला हो। (२) **प्रियः**=अन्नमय आदि सब कोशों के ऐश्वर्यों से प्रीणित करनेवाला तू **समुद्रम्**=(स+मुद्) आनन्द के साथ वर्तमान प्रभु में **आविश**=प्रवेश कर। यह सोम हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) शत्रुओं को नष्ट करता है, (ख) उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है, (ग) अन्ततः प्रभु से हमारा मेल करता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'क्रतुवित्' सोम

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः। नुदस्वादेवयुं जनम्॥ २४॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **मृधः**=हमें कतल करने वाले 'काम-क्रोध-लोभ' आदि शत्रुओं को **अपघ्नन्**=सुदूर विनष्ट करता हुआ **पवसे**=हमें प्राप्त होता है। हे सोम! तू इन शत्रुओं को नष्ट करके **क्रतुवित्**=हमें शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करानेवाला है। **मत्सरः**=इस शक्ति व प्रज्ञान के द्वारा हमारे जीवन में आनन्द का संचार करनेवाला है। (२) हे सोम! तू **अदेवयुं जनम्**=उस देव प्रभु को न चाहनेवाले पुरुष को **नुदस्व**=हमारे से दूर प्रेरित कर। अर्थात् हमारी अदेवयु पुरुषों के संग में उठने-बैठने की कामना न हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे शत्रुओं का नाश करता है। हमें शक्ति व आनन्द को प्राप्त कराता है। हमारी रुचि सज्जन संग की होती है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पवमानाः शुक्रास इन्दवः

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः। अभि विश्वानि काव्या॥ २५॥

(१) **सोमाः**=सोमकण **असृक्षत**=हमारे शरीरों में पैदा किये जाते हैं। ये सोमकण **पवमानाः**=हमारे हृदयों को पवित्र करनेवाले हैं। **शुक्रासः**=ये हमें ज्ञान की दीप्ति को प्राप्त कराते हैं और **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनाते हैं। हृदय में 'पवमान', मस्तिष्क में 'शुक्र' तथा हाथों में 'इन्दु'। (२) ये सोमकण हमें **विश्वानि काव्या**=सब ज्ञानों की **अभि**=ओर ले चलते हैं। ज्ञानाग्नि को दीप्त करके ये हमें कवि बनाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'पवित्रता, ज्ञानदीप्ति व शक्ति' की ओर हमें ले चलते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'पवित्र-शुभ्र-निर्द्वेष' जीवन

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः। घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः॥ २६॥

(१) **पवमानासः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले, **आशवः**=हमें शीघ्रता व स्फूर्ति से व्याप्त करनेवाले, **शुभ्राः**=दीप्त, **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले ये सोमकण **असृग्रम्**=उत्पन्न किये जाते हैं। (२) ये सोमकण **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **अपघ्नन्तः**=हमारे से सुदूर विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'पवित्र, शुभ्र, निर्द्वेष' जीवनवाला करते हैं।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

त्रिलोकी का रक्षण

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधि सानवि॥ २७॥

(१) **पवमानाः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले ये सोम! **दिवः परि**=द्युलोक के लक्ष्य से **असृक्षत**=उत्पन्न किये जाते हैं। 'सुरक्षित हुए-हुए ये मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानोज्ज्वल बनाते हैं' इसलिए इनका उत्पादन होता है। (२) **अन्तरिक्षात्**=हृदयान्तरिक्ष के दृष्टिकोण से इनका उत्पादन होता है। उत्पन्न हुए-हुए ये सोमकण हृदयान्तरिक्ष को बड़ा पवित्र बनाते हैं। (३) **पृथिव्याः**=इस शरीररूप पृथिवी के **अधिसानवि**=समुच्छ्रित प्रदेश के निमित्त यह सोम उत्पन्न किया जाता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम हमारे शरीर को खूब उन्नत स्वास्थ्य की स्थिति में रखता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम 'मस्तिष्क, हृदय व स्थूल शरीर' रूप त्रिलोकी को बड़ा ठीक रखता है।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रक्षांसि अपजहि

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्त्रिधः। जहि रक्षांसि सुक्रतो॥ २८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले! तू **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **विश्वाः**=सब **स्त्रिधः**=हिंसक शत्रुओं को **अपजहि**=सुदूर विनष्ट करनेवाला हो। (२) हे **सुक्रतो**=उत्तम शक्ति व प्रज्ञानवाले सोम! तू **रक्षांसि**=राक्षसीभावों को विनष्ट करनेवाला बन।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला हो। इसके रक्षण से राक्षसीभाव हमारे से दूर हों।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

द्युमान् शुष्म (गोमान् वाज)

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम्॥ २९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **रक्षसः**=राक्षसीभावों व रोगकृमिरूप राक्षसों को **अपघ्नन्**=सुदूर विनष्ट करता हुआ तू **अभ्यर्ष**=हमें प्राप्त हो। **कनिक्रदत्**=हमारे अन्दर स्थित हुआ-हुआ तू प्रभु

के गुणों का उच्चारण करनेवाला बन। (२) तू **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय **शुष्मम्**=बल को **आभर**=हमारे में भर। तेरे रक्षण से हमें ज्योति व शक्ति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम रोगकृमियों को नष्ट करे, हमें प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त करे, हमारे लिये ज्योतिर्मय शक्ति को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—**निध्रुविः काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिव्य व पार्थिव वसु

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा। इन्दो विश्वानि वार्या॥ ३०॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **अस्मे**=हमारे लिये **दिव्यानि पार्थिवा**=दिव्य और पार्थिव **वसूनि**=वसुओं को **धारय**=धारण कर। विज्ञान के नक्षत्र व आत्मज्ञान का सूर्य ही दिव्य वसु हैं। पूर्ण स्वास्थ्य ही पार्थिव वसु है। सुरक्षित सोम हमें इन वसुओं को प्राप्त कराता है। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **विश्वानि**=सब **वार्या**=वरणीय वसुओं को प्राप्त करा। तेरे द्वारा हमारा शरीर स्वस्थ हो, मन निर्मल हो तथा बुद्धि दीप्त हो। इस प्रकार यह सोम सब दृष्टिकोणों से हमारे जीवनों को उत्तम निवासवाला बनाये।

भावार्थ—सुरक्षित सोम दिव्य व पार्थिव वसुओं को प्राप्त कराता है। यह सब वरणीय वसुओं का दाता है।

अगले सूक्त में 'काश्यप मारीच' सोम का स्तवन करता है, ज्ञानी वासनाओं को विनष्ट करनेवाला—

[६४] चतुःषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वृषा द्युमान्' सोम

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः। वृषा धर्माणि दधिषे॥ १॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **वृषा**=शक्तिशाली है, हमें शक्ति-सम्पन्न बनाता है। **द्युमान् असि**=तू ज्योतिर्मय है, हमारी ज्ञान-ज्योति को बढ़ानेवाला है। (२) हे **देव**=दिव्य गुणों को हमारे में उत्पन्न करनेवाले सोम! तू **वृषा**=शक्तिशाली है। **वृषव्रतः**=शक्तिशाली कर्मोंवाला है। (३) **वृषा**=शक्तिशाली होता हुआ तू **धर्माणि**=धारणात्मक कर्मों को **दधिषे**=हमारे में धारण करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'शक्तिशाली ज्योतिर्मय' जीवनवाला बनाता है। यह हमें शक्तिशाली कर्मोंवाला बनाता है और धारणात्मक कर्मों में हमें प्रवृत्त करता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'सुख-वर्षक' सोम

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः। सत्यं वृषन्वृषेदसि॥ २॥

(१) हे सोम! **वृष्णः**=सब सुखों के वर्षक **ते**=तेरा **शवः**=बल **वृष्ण्यम्**=सुखवर्षकों में सर्वोत्तम है। **वनम्**=तेरा सम्भजन, तेरा सेवन **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनाकर हमारे लिये सुखवर्षक है। **मदः**=तेरे रक्षण से उत्पन्न उल्लास **वृषा**=हमारे लिये सुखद है। (२) **सत्यम्**=सचमुच, हे **वृषन्**=सुखवर्षक सोम! **इत्**=निश्चय से **वृषा असि**=तू सुखवर्षक है।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम अपने जीवनों को सुखी करें।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऐश्वर्य द्वारों का उद्घाटन

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

(१) **वृषा**=हे सोम! तू हमारे लिये सुखवर्षक है। **अश्वः न**=शक्तिशाली के समान तू **चक्रदः**=उस प्रभु को पुकारता है, हमें शक्तिशाली बनाता हुआ प्रभु के स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **गाः**=ज्ञानेन्द्रियों को **सम्**=हमारे साथ संगत कर। **अर्वतः**=कर्मेन्द्रियों को **सम्**=हमारे साथ संगत कर। सोमरक्षण से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ उत्तम हों। (३) हे सोम! तू **नः**=हमारे **राये**=ऐश्वर्य के लिये **दुरः**=द्वारों को **विवृधि**=खोल डाल। तेरे द्वारा हमारे अन्नमय आदि सब कोश तेजस्विता आदि ऐश्वर्यों से परिपूर्ण बनें।

भावार्थ—सोम हमारा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बलवान् बनाता है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गव्या-अश्वया-वीरया

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥

(१) **प्र वाजिनः**=प्रकृष्ट शक्ति के कारणभूत, **शुक्रासः**=ज्ञानदीप्ति को उत्पन्न करनेवाले **आशवः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले **सोमासः**=सोमकण **असृक्षत**=उत्पन्न किये जाते हैं। (२) ये सोमकण **गव्या**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की कामना से **अश्वया**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की कामना से तथा **वीरया**=उत्तम सन्तानों व वीरत्व की कामना से उत्पन्न किये जाते हैं।

भावार्थ—सोम हमें शक्ति, ज्ञानदीप्ति व स्फूर्ति को प्राप्त करानेवाले हैं। इनके रक्षण से उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, उत्तम कर्मेन्द्रियों तथा वीर सन्तानों की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोम का अलंकरण व शोधन

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥

(१) **ऋतायुभिः**=यज्ञ की कामनावाले पुरुषों से ये सोम **शुम्भमानाः**=अलंक्रियमाण होते हैं। यज्ञों में लगे रहने से, नियमपूर्वक उत्तम कर्मों में व्यापृत रहने से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है और इसे अलंकृत करनेवाला बनता है। ये सोम **गभस्त्योः**=बाहुवों में **मृज्यमानाः**=शुद्ध किये जाते हैं। अभ्युदय व निःश्रेयस के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों में शुद्ध किये जाते हैं। जब हम इन प्रयत्नों में लगे रहते हैं तो विषय-वासनाओं की ओर झुकाव न होने से ये सोम पवित्र बने रहते हैं। (२) ये सोम **वारे**=विषय-वासनाओं का निवारण करनेवाले **अव्यये**=(अ-वि-अय) इधर-उधर न भटकनेवाले पुरुष में **पवन्ते**=प्राप्त होते हैं। सोम उसी में सुरक्षित रहते हैं जो कि अपनी चित्तवृत्ति को विषयों से रोककर इधर-उधर भटकने नहीं देता।

भावार्थ—हम ऋतायु बनकर सोम को शरीर में ही अलंकृत करें। अभ्युदय व निःश्रेयस प्राप्ति की क्रियाओं में लगे हुए इसे शुद्ध बनायें।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'ज्ञान शक्ति व निर्मलता'

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

(१) **ते सोमाः**=वे सोमकण **दाशुषे**=अपना सोमरक्षण के प्रति अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये, सोमरक्षण को ही ध्येय बना लेनेवाले के लिये, **विश्वा वसु**=सब वसुओं को (धनों को) **पवन्ताम्**=प्राप्त करायें। (२) उन वसुओं को, जो कि **दिव्यानि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से सम्बद्ध हैं, **पार्थिवा**=शरीर रूप पृथिवीलोक से सम्बद्ध हैं, और **आन्तरिक्ष्या**=जो हृदयरूप अन्तरिक्षलोक से सम्बद्ध हैं। दिव्य वसु 'ज्ञान' है, पार्थिव वसु 'शक्ति' है तथा आन्तरिक्ष्य वसु 'निर्मलता' है। सोमरक्षण से ही इनकी प्राप्ति होती है।

भावार्थ—हम सोमरक्षण द्वारा 'ज्ञान, शक्ति व निर्मलता' की प्राप्ति करें।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'विश्ववित्' सोम

पव॑मानस्य विश्ववि॒त्प्र ते॒ सर्गा॑ असृक्षत। सूर्य॑स्येव॒ न र॒श्मयः॑॥ ७॥

(१) हे **विश्ववित्**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले सोम! **पवमानस्य**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **ते**=तेरी **सर्गाः**=सृज्यमान धारायें **प्र असृक्षत**=प्रकर्षेण उत्पन्न की जाती हैं। (२) ये तेरी धारायें हमारे लिये **न**=(इदानीं) अब इस जीवन में ऐसी हैं, **इव**=जैसे कि **सूर्यस्य रश्मयः**=सूर्य की किरणें हों। सूर्य की किरणें प्रकाश व प्राणशक्ति को प्राप्त कराती हैं। सोम की धारायें भी ज्ञानाग्नि को दीप्त करती हैं, शरीर को सशक्त बनाती हैं।

भावार्थ—सोम धारायें हमारे जीवनों में सूर्य-किरणों की तरह हैं। ये प्रकाश व प्राण को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

केतुं कृण्वन्

के॒तुं कृ॒ण्वन्दि॒वस्परि॒ विश्वा॑ रू॒पाभ्य॑र्षसि। स॒मु॒द्रः सो॑म पिन्वसे॥ ८॥

(१) हे सोम! तू **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के **केतुं कृण्वन्**=ज्ञान-प्रकाश को करता हुआ **विश्वा रूपा अभि अर्षसि**=सब रूपों की ओर गतिवाला होता है। तू हमारे अंग-प्रत्यंग को रूपवान् बनाता है। (२) हे सोम! **समुद्रः**=(स+मुद्) आनन्द के साथ निवास को करता हुआ तू हमारे जीवनों को आनन्दमय बनाता हुआ तू **परि पिन्वसे**=हमारे लिये सब धनों को प्राप्त कराता है। हमारे सभी कोशों को तू तेज आदि ऐश्वर्यों से परिपूर्ण करता है।

भावार्थ—सोम हमें केतु, रूप व ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'प्रकाश व प्राण' का दाता सोम

हि॒न्वा॒नो वाच॑मिष्यसि॒ पव॑मान॒ विध॑र्मणि। अक्रा॒न्देवो न सूर्यः॑॥ ९॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! तू **हिन्वानः**=शरीर में प्रेरित किया जाता हुआ **वाचं इष्यसि**=इन ज्ञान की वाणियों को हमारे में प्रेरित करता है। जब सोम शरीर में सुरक्षित होता है तो यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करता ही है। (२) **विधर्मणि**=हमारे अंग-प्रत्यंगों के विशिष्ट धारण के निमित्त यह सोम **सूर्यः देवः न**=सूर्यदेव के समान **अक्रान्**=हमारे शरीर में गतिवाला होता है। जैसे सूर्य प्रकाश व प्राण का संचार करता है, उसी प्रकार यह सोम भी मस्तिष्क को प्रकाशमय तथा शरीर को प्राणशक्ति-सम्पन्न करता है।

भावार्थ—सोम हमें ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराता है, हमारे में प्रकाश व प्राणशक्ति का

संचार करता है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्दुः—चेतनः—प्रियः

इन्दु पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती। सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥

(१) **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **पविष्ट**=हमें प्राप्त हो। **चेतनः**=यह हमारे में चेतना को पैदा करनेवाला है। **प्रियः**=प्रीति को, मनःप्रसाद को उत्पन्न करनेवाला है। (२) यह **कवीनां मती**=ज्ञानियों की स्तुति के द्वारा **अश्वम्**=इन्द्रियाश्वों को **सृजत्**=शरीर रथ में युक्त करता है (Put on)। उसी प्रकार **इव**=जैसे कि **रथीः**=एक रथी घोड़े को रथ में जोतता है। सोमरक्षण से मनुष्य सतत क्रियाशील बनता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शरीर में शक्ति को (इन्दु) मस्तिष्क में चेतना को (चेतनः) तथा हृदय में प्रसन्नता को (प्रियः) प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋत की योनि में स्थित होना

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥

(१) हे सोम! **यः**=जो **ते**=तेरी **ऊर्मिः**=तरंग **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **आ देवावीः**=समन्तात् दिव्य गुणों की कामनावाली होती हुई **पर्यक्षरत्**=प्राप्त होती है, वह **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **आसीदन्**=निवासवाली होती है। (२) सुरक्षित सोम हमारे जीवनों में दिव्य गुणों को उत्पन्न करता है और अन्ततः हमें प्रभु को प्राप्त कराता है। ये प्रभु ही ऋत के उत्पत्ति-स्थान हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से दिव्य गुणों को प्राप्त करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मदः—देववीतमः

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः। इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **यः**=वह तू **नः**=हमें **पवित्रे**=इस पवित्र हृदय में **आ**=सर्वथा **अर्ष**=प्राप्त हो। वह तू हमें प्राप्त हो, **यः**=जो कि **मदः**=उल्लास को देनेवाला है और **देववीतम्**=अतिशयेन दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाला है। (२) हे इन्दो! तू **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को प्राप्त कराने के लिये हो तथा **पीतये**=हमारे रक्षण के लिये हो, हमें रोगों के आक्रमणों से बचानेवाला हो।

भावार्थ—सोम उल्लास को पैदा करनेवाला है, दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवित्र हृदय व सूक्ष्म बुद्धि

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

(१) हे सोम! **मनीषिभिः**=बुद्धिमान् पुरुषों से **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ तू **धारण**=अपनी धारणशक्ति के द्वारा **इषे**=प्रभु-प्रेरणा की प्राप्ति के लिये **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। हम तेरे रक्षण से पवित्र हृदयवाले होकर प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाले बनें। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली

बनानेवाले सोम! **रुचा**=ज्ञानदीप्ति के हेतु से **गाः अभि**=इन ज्ञान की वाणियों की ओर **इहि**=तू जानेवाला हो। सोमरक्षण से हमारी बुद्धि सूक्ष्म हो, हम ज्ञान की रुचिवाले बनें। हमारा झुकाव इन ज्ञान की वाणियों की ओर हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम पवित्र-हृदय होकर प्रभु की प्रेरणा को सुनें और दीप्त ज्ञानाग्निवाले होकर ज्ञान की वाणियों की ओर झुकें।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वरिवः-ऊर्जम्

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः। हरे सृजान आशिरम्॥ १४॥

(१) **पुनानः**=पवित्र किये जाते हुए सोम! तू **जनाय**=इस शक्ति-विकास में तत्पर मनुष्य के लिये **वरिवः**=धन को **कृधि**=कर। यह तेरा रक्षण करनेवाला व्यक्ति अन्नमय आदि सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त करे। हे **गिर्वणः**=इन ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाले सोम! तू **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को करनेवाला हो। (२) **हरे**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम! तू **आशिरम्**=समन्तात् वासनाओं के हिंसन को **सृजानः**=उत्पन्न कर। वासनाओं का तू संहार करनेवाला हो।

भावार्थ—पवित्र किया जाता हुआ सोम (वीर्य) हमारे लिये सब कोशों के ऐश्वर्य तथा बल व प्राणशक्ति को करनेवाला हो।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पुनानः-द्युमान्ः

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्। द्युतानोवाजिभिर्यतः॥ १५॥

(१) **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू, हे सोम! **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये हो। दिव्य गुणों को प्राप्त कराता हुआ तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **निष्कृतम्**=पवित्र किये हुए हृदय को **याहि**=प्राप्त हो। वस्तुतः सोमरक्षण से ही हृदय की पवित्रता सिद्ध होती है और हमारे जीवनों में दिव्य गुणों का विकास होता है। जितेन्द्रियता सोमरक्षण का प्रमुख साधन है। (२) हे सोम! तू **द्युतानः**=ज्ञान का विस्तार करनेवाला है, और **वाजिभिः**=(वज् गतौ) गतिशील पुरुषों से **यतः**=संयत किया जाता है। सदा गति में रहनेवाले क्रियाशील पुरुष ही वासनाओं से बच पाते हैं और सोम का रक्षण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—रक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे जीवन को पवित्र व प्रकाशमय बनाता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अच्छा समुद्रम्

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः। धिया जूता असृक्षत॥ १६॥

(१) **प्र हिन्वानासः**=प्रकर्षेण शरीर में प्रेरित किये जाते हुए **इन्दवः**=सोमकण **समुद्रं अच्छा**=उस आनन्दमय प्रभु की ओर हमें ले चलनेवाले होते हैं। हम इन सोमकणों का रक्षण करते हैं, तो ये हमें दिव्य गुणों की ओर ले चलते हुए अन्ततः उस आनन्दमय प्रभु को प्राप्त करानेवाले होते हैं। (२) ये **आशवः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले सोम, हमें कार्यों को स्फूर्ति से करानेवाले सोम **धिया**=बुद्धि के हेतु से **जूताः**=शरीर में प्रेरित हुए-हुए **असृक्षत**=उत्पन्न किये जाते हैं। प्रभु ने इन सोमकणों को इसलिए उत्पन्न किया है कि ये शरीर में स्थित हुए-हुए ज्ञानाग्नि

का ईंधन बनें। हमें सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त करानेवाले हों। इस सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा हम उस आनन्दमय प्रभु का दर्शन कर पायें।

भावार्थ—सामान्यतः सोम का रुधिर में ही व्यापन होता है, वासनाओं की अग्नि ही इसे विनष्ट करनेवाली बनती है। प्रभु ने इन्हें शरीर में इसलिए प्रेरित किया है कि हम सूक्ष्म बुद्धि बनकर प्रभु की ओर जानेवाले हों।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मर्मृजानास आयवः

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा॥ १७॥

(१) **मर्मृजानासः**=शुद्ध करते हुए, **आयवः**=(एति) शरीर में क्रियाशीलता को पैदा करते हुए **इन्दवः**=सोमकण **वृथा**=अनायास ही **समुद्रम्**=उस आनन्दमय प्रभु को **अग्मन्**=प्राप्त होते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम हृदय के दृष्टिकोण से हमें पवित्र बनाता है, शरीर के दृष्टिकोण से गतिशील। (२) इस प्रकार हमें पवित्र व गतिशील बनाते हुए ये सोमकण **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **आ (अग्मन्)**=ले जाते हैं। सोमरक्षण से हमारा जीवन ऋतमय बनता है, ऋत का वर्धन करते हुए हम 'ऋत के योनि' प्रभु को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें हृदय में पवित्र बनाता है, शरीर में गतिशील। ऐसा बनाकर यह हमें प्रभु की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वीरवत् शर्म

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा। पाहि नः शर्म वीरवत्॥ १८॥

(१) हे सोम! तू **अस्मयुः**=हमारे हित की कामना करता हुआ **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **नः**=हमारे **विश्वा वसूनि**=सब वसुओं के **परियाहि**=चारों ओर गतिवाला हो। अर्थात् हमारे वसुओं का रक्षण कर। (२) निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों को हमारे में सुरक्षित करके **नः**=हमारे लिये **वीरवत्**=वीरता से पूर्ण **शर्म**=सुख को **पाहि**=रक्षित कर। हम तेरे द्वारा वीर बनें और सुखी हों।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम सब वसुओं का रक्षण करता है। हमें वीर बनाता है, सुख प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पदं युजान ऋक्वभिः

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः। प्र यत्समुद्र आहितः॥ १९॥

(१) यह **वह्निः**=सब कार्यों का साधक सोम (वह् To carry) **एतशः**=दीप्त होता हुआ, ज्ञानदीप्ति को बढ़ाता हुआ **मिमाति**=हमारे जीवन का निर्माण करता है। यह हमारे **पदम्**=जीवन मार्ग को **ऋक्वभिः**=विज्ञानों के साथ **युजानः**=जोड़ता है, विज्ञान के अनुसार मार्ग पर चलते हुए हम भटकने से बच जाते हैं। (२) न भटकनेवाला यह व्यक्ति आगे और आगे बढ़ता चलता है, **यत्**=जब कि अन्ततः यह **समुद्रे**=उस आनन्दमय प्रभु में **प्र आहितः**=प्रकर्षेण आहित होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन का निर्माण करता है। यह हमारे मार्ग को विज्ञान से युक्त करता है और अन्ततः हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जहाति अप्रचेतसः

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋृतस्य सीदति। जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥

(१) यह **आशुः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाला सोम **यद्**=जब **ऋतस्य**=ऋत के, सत्य के **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय **योनिम्**=उत्पत्ति-स्थान में **आ सीदति**=सर्वथा स्थित होता है तो **अप्रचेतसः**=नासमझों को **जहाति**=यह छोड़ जाता है। (२) समझदार पुरुषों से ज्ञान-यज्ञ आदि में लगे रहने के द्वारा पवित्र किया जाता हुआ यह सोम उन्हें प्रभु को प्राप्त कराता है। नामसझ इस सोम के महत्त्व को न समझने के कारण वासनाओं में इसका विनाश कर बैठते हैं।

भावार्थ—समझदार पुरुष सोमरक्षण से प्रभु को प्राप्त करते हैं। नासमझ शारीरिक भोगों में इसका व्यय कर बैठते हैं।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'प्रचेताः, न कि अविचेताः' बनें

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः। मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥

(१) **वेनाः**=कान्त स्तुतिमय जीवनवाले पुरुष **अभि**=दिन के दोनों ओर प्रातः-सायं **अनूषत**=उस प्रभु का स्तवन करते हैं। यह स्तवन ही उन्हें वासनाओं से बचाता है। (२) **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले समझदार पुरुष **इयक्षन्ति**=यज्ञों को करने की कामनावाले होते हैं। सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहकर ये विषयों के ध्यान से दूर रहते हैं। (३) पर **अविचेतसः**=नासमझ लोग न स्तवन करते हैं, नां ही यज्ञों को करने की कामनावाले होते हैं। अतः ये भोगों में फँसकर वीर्य नाश करते हुए संसार सागर में **मज्जन्ति**=डूब जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन व यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्ति हमें भोगों में फँसने से बचाती है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मरुत्वते इन्द्राय मधुमत्तमः

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **मरुत्वते**=प्रशस्त मरुतों (प्राणों) वाले, प्राणसाधना करनेवाले **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। **मधुमत्तमः**=तू इसके जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है। (२) और अन्ततः **ऋतस्य योनिम्**=उस ऋत के उत्पत्ति-स्थान प्रभु को **आसदम्**=प्राप्त होने के लिये होता है। सोमरक्षण से ही हम दीप्त ज्ञानाग्निवाले सूक्ष्म बुद्धि बनकर प्रभु का दर्शन करते हैं।

भावार्थ—प्राणायाम हमें ऊर्ध्व-रेता बनाता है। इसी से हम प्रभु-दर्शन कर पाते हैं। एवं प्राण साधक जितेन्द्रिय पुरुष के लिये यह सोम मधुमत्तम है।

ऋषिः—**काश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कौन सोम को शुद्ध करते हैं ?

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः। सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥

(१) हे सोम! **तं त्वा**=उस तुझ को **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले **वचोविदः**=स्तुति-वचनों को जाननेवाले **वेधसः**=उत्तम कर्मों के निर्माता पुरुष **परिष्कृण्वन्ति**=परिष्कृत करते

हैं। ये लोग इस सोम को वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। (२) हे सोम! **त्वा**=तुझे **आयवः**=ये गतिशील पुरुष **संमृजन्ति**=सम्यक् शुद्ध करते हैं। गतिशीलता हमें विषय-वासनाओं में फँसने नहीं देती। इस प्रकार सोम शुद्ध बना रहता है।

भावार्थ—'विप्र-वचोविद्-वेधस्-आयु' सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

कौन सोम का पान करते हैं?

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे। पवमानस्य मरुतः॥ २४॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले सोम! **ते रसम्**=तेरे रस को, सार को **मित्रः**=सब के प्रति स्नेहवाला, **अर्यमा**=दान की वृत्तिवाला, **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाला **पिबन्ति**=पीता है। सोम का रक्षण 'मित्र, अर्यमा व वरुण' करते हैं। (२) हे सोम! **पवमानस्य**=पवित्र करनेवाले तेरे रस को **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले पुरुष पीते हैं। प्राणसाधना से ही सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है।

भावार्थ—'मित्र, अर्यमा, वरुण व मरुत्' सोम का पान करते हैं।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

विपश्चितं सहस्त्रभर्णसम्

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि। इन्दो सहस्त्रभर्णसम्॥ २५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **पुनानः**=पवित्र करता हुआ, हमारे हृदयों को निर्मल करता हुआ **विपश्चितं वाचम्**=हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाली प्रभु की वाणी को **इष्यसि**=हमारे में प्रेरित करता है। तेरे रक्षण से हमें प्रभु की वह वाणी सुन पड़ती है, जो कि हमारे ज्ञान का वर्धन करनेवाली है व हमें मार्ग को दिखानेवाली है। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **सहस्त्रभर्णसम्**=सहस्त्रशः भरण करनेवाली वाणी को हमारे में प्रेरित करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से पवित्र हृदय में हम प्रभु की वाणी को सुनते हैं जो कि हमारा मार्गदर्शन करती है और हमारा भरण करती है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मखस्युवम्

उतो सहस्त्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम्। पुनान इन्दवा भर॥ २६॥

(१) **उतो**=और हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू हमारे में **वाचं आभर**=उस वाणी का भरण कर, जो कि **सहस्त्रभर्णसम्**=हजारों प्रकार से हमारा भरण करनेवाली है और **मखस्युवम्**=हमारे साथ यज्ञों को जोड़नेवाली है। (२) **पुनानः**=पवित्र करता हुआ तू हे **इन्दो**=शक्तिशालिन् सोम! **आभर**=हमारा समन्तात् भरण करनेवाला हो। सुरक्षित सोम हमारी सब कमियों को दूर करे।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्रभु की उस वाणी को प्राप्त कराता है जो कि हमारे जीवन को यज्ञशील बनाती है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

समुद्र-प्रवेश

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्। प्रियः समुद्रमा विश॥ २७॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **पुनानः**=पवित्र करता हुआ तू **एषां जनानाम्**=इन लोगों का **प्रियः**=प्रीति को करनेवाला है। सोम के लिये सभी आराधना करते हैं, यह हमें शक्ति देता है, हमारे लिये प्रीतिकर होता है। (२) हे सोम! तू **समुद्रम्**=उस आनन्दमय प्रभु में **आविश**=प्रवेश करनेवाला हो। अन्ततः यह सुरक्षित सोम हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे लिये प्रीतिकर होता है, हमारा प्रभु से मेल कराता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दविद्युतत्या रुचा

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ २८॥

(१) **सोमाः**=शरीर में सुरक्षित सोम **दविद्युतत्या रुचा**=खूब दीप्त होती हुई ज्ञानदीप्ति से युक्त होते हैं। हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें ज्ञानोज्ज्वल बनाते हैं। (२) ये सोम **परिष्टोभन्त्या**=सब रोगों व वासनाओं को रोकते हुए (स्तोभ (To stop)) **कृपा**=सामर्थ्य से युक्त होते हैं। इनके रक्षण से हृदय पवित्र होता है और शरीर नीरोग बनता है। (३) ये सोम **शुक्राः**=हमें दीप्त व निर्मल बनाते हैं और **गवाशिरः**=(गो आ शृ) सब इन्द्रियों के मलों को समन्तात् शीर्ण करनेवाले हैं। हमारी इन्द्रियों को ये पवित्र व सशक्त बनाते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम देदीप्यमान ज्ञान-ज्योति का साधन बनता है। यह उस सामर्थ्य को प्राप्त कराता है, जो कि सब रोगों का निवारण करता है। इन्द्रियों के मलों को यह शीर्ण करता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाजी वाजं अक्रमीत्

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत्। सीदन्तो वनुषो यथा॥ २९॥

(१) **हेतृभिः**=प्राणसाधना द्वारा शरीर में सोम को प्रेरित करनेवालों से **हिन्वानः**=शरीर में प्रेरित किया जाता हुआ, **यतः**=शरीर में संयत किया हुआ **वाजी**=यह शक्ति-सम्पन्न सोम **वाजं आ अक्रमीत्**=संग्राम में गतिवाला होता है। शरीरस्थ रोगकृमियों का संहार करता है और हृदयस्थ वासनाओं को भी विनष्ट करता है। (२) ये सोमकण शरीर में **सीदन्तः**=ऐसे आसीन होते हैं **यथा**=जैसे कि **वनुषः**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले योद्धा। ये रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—शरीर में प्रेरित सोम रोगों व वासनाओं से युद्ध करता हुआ उन्हें पराजित करता है।

ऋषिः—**काश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**यवमध्यागायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दिवः संजग्मानः

ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः। पवस्व सूर्यो दृशे॥ ३०॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **ऋधक्**=(ऋध्नुवन् नि० ४।२५) समृद्धि को प्राप्त करता हुआ तू **स्वस्तये**=हमारे कल्याण के लिये हो। **दिवः**=ज्ञान का **संजग्मानः**=हमारे साथ संगम (मेल) करनेवाला हो। **कविः**=क्रान्तदर्शी-क्रान्तप्रज्ञ हमारी बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाला हो। (२) **सूर्यः**=कर्मों में प्रेरित करनेवाला, शक्ति संचार के द्वारा स्फूर्ति को उत्पन्न करनेवाला तू **दृशे**=ज्ञान के लिये

पवस्व=हमें प्राप्त हो। तूने ही तो हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करना है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है, हमें सूक्ष्म बुद्धि बनाता है।

अगले सूक्त में ऋषि 'भृगु वारुणि जमदग्नि' है, ज्ञान से परिपक्व बुद्धिवाला यह 'भृगु' है, सब दोषों का निवारण करनेवाला 'वारुणि' है, दीप्त जाठराग्निवाला और अतएव स्वस्थ यह 'जमदग्नि' है। इस सोम का शंसन इन शब्दों में करता है—

[६५] पञ्चषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उस्त्रि-स्वसा-जामि-महीयु

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्। महामिन्दुं महीयुवः॥ १॥

(१) **उस्रयः**=(उस्र=going) गतिशील, **स्व-सारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले, **जामयः**=अपने में सद्गुणों को जन्म देनेवाले लोग **सूरम्**=शक्ति-संचार द्वारा कर्मों में प्रेरित करनेवाले **पतिम्**=रोगकृमि विनाश द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=शरीर में ही प्रेरित करते हैं। (२) **महीयुवः**=महनीय शरीर को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले लोग **महाम्**=इस महान् **इन्दुम्**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम को अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। इस सोम के द्वारा ही शरीर शक्तिशाली बनता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण करनेवाले 'उस्त्रि, स्वसृ, जामि व महीयु' होते हैं, गतिशील, आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले, सद्गुणों का विकास करनेवाले, महनीय शरीर की कामनावाले।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रुचा रुचा

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि। विश्वा वसून्या विश॥ २॥

(१) हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **रुचा रुचा**=एक-एक ज्ञानदीप्ति के द्वारा तू **देवः**=प्रकाशमय है। हमारे जीवनों को ज्योतियों से भरनेवाला है। (२) **देवेभ्यः**=इन दिव्य गुणों के द्वारा तू **विश्वा वसूनि**=सब वसुओं को, निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को **परि आविश**=(आवेशय) हमारे में प्रविष्ट करनेवाला हो। दिव्य गुणों के साथ वसुओं का सम्बन्ध है। आसुरभाव वसुओं के विनाशक हैं।

भावार्थ—सोम ज्ञानदीप्तियों से हमारे जीवन को दिव्य बनानेवाला हो।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ **स्वरः—षड्जः**॥

सुष्टुति-वृष्टि

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः। इषे पवस्व संयतम्॥ ३॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! हमें **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति की वृत्ति को **वृष्टिम्**=धर्ममेघ समाधि में होनेवाली आनन्द की वर्षा को **देवेभ्यः दुवः**=देवों के लिये परिचर्या को तथा **संयतम्**=संयम को **आपवस्व**=प्राप्त करा। जिससे **इषे**=हम प्रभु-प्रेरणा के लिये हों, प्रभु की प्रेरणा को सुन सकें। (२) सोमरक्षण से हम (क) प्रभु-स्तवन की ओर झुकते हैं, (ख) समाधि में आनन्द की वृष्टि का अनुभव करते हैं। (ग) माता, पिता, आचार्य व अतिथि रूप देवों की परिचर्या करते हैं, (घ) संयम की वृत्तिवाले होते हैं। ऐसा होने पर हम सदा प्रभु की प्रेरणा को सुनते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम संयमी जीवनवाले बनकर प्रभु-प्रेरणा को सुनें।

ऋषिः—**भुगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वृषा-द्युमान्

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वाध्यः॥ ४॥

(१) हे **पवमान**=हमें पवित्र करनेवाले सोम! तू **भानुना**=ज्ञान के प्रकाश से **वृषा**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाला **असि**=है। **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय, प्रशस्त ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करानेवाले **त्वा**=तुझ को **हि**=ही **हवामहे**=हम पुकारते हैं। तेरी ही आराधना करते हैं। (२) हे पवमान सोम! तेरी आराधना से हम **स्वाध्यः**=(सुकर्मणः, सुष्ठुध्यानवन्तो वा सा०) उत्तम कर्मोंवाले व उत्तम ध्यानवाले बनते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें उत्तम ज्ञानवाला, उत्तम ध्यानवाला व उत्तम कर्मोंवाला बनाता है।

ऋषिः—**भुगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मन्दमान सोम

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध। इहो ष्विन्दवा गहि॥ ५॥

(१) हे **स्वायुध**=उत्तम इन्द्रियों, मन व बुद्धि रूप आयुधोंवाले सोम **मन्दमानः**=हमें आनन्दित करता हुआ तू **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। (२) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **इह उ**=इस शरीर में ही **सु**=उत्तमता से **आगहि**=तू हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम इन्द्रियों, मन व बुद्धि को उत्तम बनाता है।

ऋषिः—**भुगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्रुणा सधस्थमश्नुषे

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः। द्रुणा सधस्थमश्नुषे॥ ६॥

(१) हे सोम! **यद्**=जब **अद्भिः**=कर्मों के द्वारा **परिषिच्यसे**=तू शरीर में ही चारों ओर सिक्त होता है, कर्मों में लगे रहने से, वासनाओं का आक्रमण न होने से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। यह सोम **गभस्त्योः**=बाहुवों में **मृज्यमानः**=सदा शुद्ध किया जाता है। 'बाहृ प्रयत्ने' यज्ञादि कर्मों को प्रयत्नपूर्वक करने में लगे रहने से ही सोम का शोधन होता है। (२) हे सोम! तू **द्रुणा**=(द्रु गतौ) इस गतिशीलता के द्वारा ही अन्ततः **सधस्थम्**=उस परमात्मा के साथ स्थिति को **अश्नुषे**=प्राप्त करता है। सोम शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ हमें गतिशील बनाता है और प्रभु को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—कर्मों में लगे रहने से हम सोमरक्षण द्वारा अन्ततः प्रभु के साथ स्थित होते हैं।

ऋषिः—**भुगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'व्यश्ववत्'

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत। महे सहस्रचक्षसे॥ ७॥

(१) **सोमाय**=इस सोम के लिये **प्रगायत**=खूब ही गायन करो, जो सोम **पवमानाय**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला है। **महे**=जो सोम हमारे जीवनों को महत्त्वपूर्ण बनानेवाला है। **सहस्रचक्षसे**=जो सोम हमें सहस्रों ज्ञानों को देनेवाला है। सोम के गुणों का गायन करेंगे, इसके गुणों का स्मरण करेंगे, तो इसके रक्षण में प्रवृत्त होंगे। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमें 'पवित्र,

महत्त्वपूर्ण व ज्ञानदृष्टिवाला' बनायेगा। (२) **व्यश्ववत्**=हम सोम का गायन उस प्रकार करें, जैसे कि 'व्यश्व' सोम का गायन करता है। विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष 'व्यश्व' है। सोमरक्षण से ही तो यह 'व्यश्व' बना है। हम भी सोम का रक्षण करें और 'व्यश्व' बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'पवित्र, महत्त्वपूर्ण जीवनवाला व ज्ञानदृष्टिवाला' बनाता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वर्ण-मधुश्चुत्-हरि

यस्य॒ वर्णं॑ मधु॒श्चुतं॒ हरिं॑ हि॒न्वन्त्यद्रि॑भिः। इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑॥ ८॥

(१) **यस्य**=जिस सोम के **वर्णम्**=शत्रु-नाशक, **मधुश्चुतम्**=माधुर्य को क्षरित करनेवाले **हरिम्**=दुःखों के हरणकर्ता रस को **अद्रिभिः**=प्रभु की उपासनाओं के द्वारा (adore अद्रि) **हिन्वन्ति**=अपने में प्रेरित करते हैं। उस **इन्दुम्**=सोम को हम **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये और **पीतये**=अपने रक्षण के लिये धारण करें। (२) शरीर में सुरक्षित सोम सब रोगों का वारक है (वर्ण) जीवन को मधुर बनानेवाला है (मधुश्चुतम्) सब कष्टों का हरण करनेवाला है (हरि)। इस सोम के रक्षण से ही हम प्रभु को प्राप्त करते हैं और अपना रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—सोम 'वर्ण-मधुश्चुत्-हरि' है। इसका धारण ही प्रभु प्राप्ति व नीरोगता का साधन है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोम सखित्व वरण

तस्य॑ ते वा॒जिनो॑ व॒यं विश्वा॒ धना॑नि जि॒ग्युषः॑। स॒खि॒त्वमा वृ॑णीमहे॥ ९॥

(१) **तस्य**=उस गत मन्त्र में वर्णित **वाजिनः**=शक्तिशाली **ते**=तेरे **सखित्वम्**=मित्रभाव को **वयम्**=हम **आवृणीमहे**=सर्वथा वरते हैं। इस सोम की मित्रता में ही शक्ति की प्राप्ति है। (२) उस तेरी मित्रता को वरते हैं जो कि **विश्वा धनानि**=सब धनों को **जिग्युषः**=जीतने की कामनावाला है। इस सोम के रक्षण से ही हमें सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शक्ति व सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मरुत्वते च मत्सरः

वृषा॑ पवस्व॒ धार॑या म॒रुत्व॑ते च मत्स॒रः। विश्वा॒ दधा॑न॒ ओज॑सा॥ १०॥

(१) हे सोम! तू **वृषा**=शक्तिशाली है व सब सुखों का वर्षण करनेवाला है। तू **धारया**=अपनी धारण शक्ति के साथ हमें **पवस्व**=प्राप्त हो। **च**=और तू **मरुत्वते**=प्राणसाधना करनेवाले के लिये **मत्सरः**=आनन्द का संचार करनेवाला है। (२) **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **विश्वा**=सब धनों को **दधानः**=तू हमारे अन्दर धारण करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा सुरक्षित सोम आनन्द का संचार करनेवाला है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वाजेषु वाजिनम्

तं त्वा॑ ध॒र्तार॑मो॒ण्यो३: पव॑मान स्व॒र्दृश॑म्। हि॒न्वे वाजे॑षु वा॒जिन॑म्॥ ११॥

(१) हे **पवमान**=हमें पवित्र करनेवाले सोम! **ओण्योः**=द्यावापृथिवी के मस्तिष्क व शरीर के **धर्तारम्**=धारण करनेवाले, **स्वर्दृशम्**=उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति के दिखलानेवाले **तं त्वा**=उस तुझको **हिन्वे**=मैं अपने शरीर में प्रेरित करता हूँ। शरीर में व्याप्त हुआ-हुआ सोम हमारे जीवन को पवित्र बनाता है, मस्तिष्क को ज्ञान से उज्ज्वल करता है और शरीर को दृढ़ बनाता है। अन्ततः यह हमें उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु का दर्श कराता है। (२) **वाजेषु**=संग्रामों में **वाजिनम्**=शक्तिशाली इस सोम को मैं शरीर में प्रेरित करता हूँ। इसी सोम ने रोगकृमियों से संग्राम करना है। इसी ने मन में उत्पन्न हो जानेवाले काम-क्रोध को विनष्ट करता है। अध्यात्म-संग्राम में यह सोमरक्षण ही हमें विजयी बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (क) हमें पवित्र करता है, (ख) हमारे मस्तिष्क व शरीर का धारण करता है, (ग) हमें स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु का दर्शन कराता है, (घ) अध्यात्म-संग्रामों में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अया-विपा (गतिशीलता व स्तुति)

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया। युजं वाजेषु चोदय॥ १२॥

(१) शरीर में सुरक्षित सोम गतिशीलता का कारण बनता है और हमारी चित्तवृत्ति को प्रभु-प्रयण करता है। इसलिए मन्त्र में कहते हैं कि **अया (अय गतौ)**=इस गतिशीलता से तथा **अनया**=इस विपा (विप्=praise) प्रभु के शंसन व स्तवन से **चित्तः**=जाना हुआ तू **हरिः**=सब बुराइयों का हरण करनेवाला होता हुआ **धारया पवस्व**=धारणशक्ति के साथ हमें प्राप्त हो। सोम की प्रसिद्धि यही है कि यह (क) हमें स्फूर्तिवाला बनाता है और (ख) हमें प्रभु के शंसन की वृत्तिवाला बनाता है। (२) हे सोम! तू **युजम्**=अपने इस साथी इन्द्र को, जो निरन्तर सोमपान में प्रवृत्त है, **वाजेषु**=संग्रामों में **चोदय**=प्रेरित कर। एक जितेन्द्रिय पुरुष ही 'इन्द्र' है। यह इन्द्रियों को वश में करके सोम का पान करता है। इस सोम के रक्षण से शक्तिशाली बनकर अध्यात्म-संग्रामों में विजयी बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम (क) गतिशील में, (ख) प्रभुस्तवन की वृत्तिवाले हों, (ग) तथा अध्यात्म-संग्रामों में विजयी बनें।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'विश्वदर्शत-गातुवित्' सोम

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः। अस्मभ्यं सोम गातुवित्॥ १३॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **विश्वदर्शतः**=हमें सब वस्तुतत्त्वों का ज्ञान देनेवाला है। **नः**=हमारे लिये **महीं इषम्**=महनीय प्रभु-प्रेरणा को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। तेरे द्वारा निर्मल हृदय होकर हम प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें। (२) **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये, हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **गातुवित्**=मार्ग का ज्ञान देनेवाली है। इसके रक्षण से ही बुद्धि सूक्ष्म विषयों का विवेक कर पाती है और हम निर्मल हृदय होकर हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुन पाते हैं। इस प्रकार जीवन के मार्ग को हम देखते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सब वस्तुतत्त्वों का ज्ञान देता है और मार्ग का दर्शन कराता है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोम से पूर्ण अतएव स्तुत्य 'शरीर-कलश'

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा। एन्द्रस्य पीतये विश॥ १४॥

(१) हे **इन्दो**=शक्ति को प्राप्त करानेवाले सोम! **कलशाः**=ये 'प्राण' आदि सोलह कलाओं के आधारभूत शरीर **धाराभिः**=धारण-शक्तियों से तथा **ओजसा**=ओजस्विता से **आ अनूषत**=समन्तात्-स्तुति किये जाते हैं यह सब स्तवन वस्तुतः सोम! तेरा ही स्तवन है। यह शरीररूप कलश जब वीर्यरूप सोम से पूरित होता है, तभी इसमें सब अंगों का ठीक प्रकार से धारण होता है और यह ओजस्वितावाला होता है। (२) **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के **पीतये**=रक्षण के लिये **आविश**=तू इसमें प्रवेशवाला हो, अर्थात् तेरा इसके शरीर में ही व्यापन हो।

भावार्थ—यह शरीर-कलश सोम से परिपूर्ण होने पर ही प्रशंसनीय होता है। यह सोम ही इसका रक्षण करता है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'अभिमातिहा' सोम

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः। स पवस्वाभिमातिहा॥ १५॥

(१) **यस्य ते**=जिस तेरे **मद्यम्**=आनन्द को देनेवाले **रसम्**=रस को **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **तीव्रं दुहन्ति**=खूब ही शीघ्रता से अपने में पूरित करते हैं (दुह प्रपूरणे)। **सः**=वह तू **अभिमातिहा**=अभिमान आदि सब शत्रुओं का विनाश करनेवाला होकर **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। (२) प्रभु की उपासना हमें वासनाओं की ओर झुकने से बचाती है। परिणामतः सोम का शरीर में ही रक्षण होता है। यही 'अद्रियों' से सोम का दोहन है। दुग्ध सोम आनन्द व उल्लास का कारण बनता है। शरीर में सुरक्षित यह सोम सब अभिमान आदि अध्यात्म शत्रुओं का विनाश करता है।

भावार्थ—उपासना से सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम अभिमान आदि शत्रुओं को विनष्ट करता है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मेधा-पवित्रता-मध्यमार्ग

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे॥ १६॥

(१) **राजा**=हमारे जीवन का रञ्जन करनेवाला यह सोम 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' **मेधाभिः**=मेधा बुद्धियों के साथ **ईयते**=हमारे अन्दर गतिवाला होता है। यह सोम **मनौ अधि**=विचारशील पुरुष में **पवमानः**=पवित्रता को करनेवाला है। सोम 'राजा' है, यही हमारे जीवनों में आनन्द व उल्लास (रञ्जन) का कारण बनता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमें मेधाबुद्धि से युक्त करता है। तथा हमारे जीवनों को पवित्र करता है। (२) यह सोम 'अन्तरिक्षेण यातवे'=सदा मध्यमार्ग से चलने के लिये होता है। सोमरक्षण से मनुष्य की प्रवृत्ति, अति को छोड़कर, युक्ताहार-विहारवाली व युक्तचेष्ट बनती है।

भावार्थ—सोमरक्षण से 'बुद्धि, पवित्रता व मध्यमार्ग से चलने की वृत्ति' प्राप्त होती है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—ककुम्मतीगायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ व ऐश्वर्य

आ न॑ इन्दो शत॒ग्विनं॒ गवां॒ पोषं॒ स्वश्व्य॑म्। वहा॒ भग॑त्तिमू॒तये॑॥ १७॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **नः**=हमारे लिये **शतग्विनम्**=शतवर्षपर्यन्त जानेवाले (शतंगच्छति) **गवां पोषम्**=ज्ञानेन्द्रियों के पोषण का **आवह**=प्राप्त करा। सोम के रक्षण से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ सौ वर्ष तक सशक्त बनी रहें। (२) **स्वश्व्यम्**=(सु अश्व य) उत्तम कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के समूह को (कर्मों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों के समूह को) प्राप्त करा। तथा **उतये**=हमारे रक्षण के लिये आवश्यक **भगत्तिम्**=(भग-दत्तिम्) ऐश्वर्य के दान को प्राप्त करा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शतवर्षपर्यन्त उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, उत्तम कर्मेन्द्रियों व रक्षण के लिये आवश्यक ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है। सोमरक्षणवाला पुरुष आवश्यक ऐश्वर्य को कमाता ही है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

बल-वेग-वर्चस् व दिव्यता

आ नः॑ सोम॒ सहो॒ जुवो॑ रू॒पं न वर्च॑से भर। सु॒ष्वा॒णो दे॒ववी॑तये॥ १८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **नः**=हमारे लिये **सहः**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले बल को, **जुवः**=कर्मों को शीघ्रता से करनेवाले वेग को **न**=और (न=च) **रूपम्**=तेजस्वी रूप को **आभर**=प्राप्त करा। तू हमारे **वर्चसे**=वर्चस् के लिये हो, उस प्राणशक्ति के लिये हो जो रोगकृमियों का विनाश करती है। (२) **सुष्वाणः**=उत्पन्न किया जाता हुआ तू **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये हो। तेरे शरीर में उत्पन्न व धारण करने से हम दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'बल-वेग-वर्चस् व दिव्यता' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

द्युमत्तमः-रोरुवत्-श्येनः

अर्षा॑ सोम द्यु॒मत्त॑मो॒ऽभि द्रोणा॑नि॒ रोरु॑वत्। सीद॑ञ्छ्ये॒नो न योनि॒मा॥ १९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **द्युमत्तमः**=अतिशयेन ज्योतिर्मयी होती हुई तू **द्रोणानि अभि**=इन शरीर-पात्रों की ओर **अर्ष**=गतिवाली हो। तेरा शरीर में ही व्यापन हो। शरीरस्थ होकर तू **रोरुवत्**=खूब ही उस प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाली हो। सोमरक्षण से प्रभु-स्तवन की वृत्ति तो उत्पन्न होती ही है। (२) तू **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान होता हुआ, शुभकर्मों में प्रवृत्त हुआ-हुआ **योनिम्**=अपने उत्पत्ति-स्थान में ही **आसीदन्**=स्थित होनेवाला हो। सोम शरीर में उत्पन्न होता है, यह शरीर में ही स्थित हो। वस्तुतः तभी यह शंसनीय गतिवाला, प्रशस्त कर्मोंवाला होता है। सोमरक्षण करनेवाला पुरुष कभी अशुभ कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता।

भावार्थ—सोम ज्योतिर्मय, स्तुतिमय व शंसनीय गतिवाला है। 'द्युमत्तमः' से ज्ञानकाण्ड का संकेत है, 'रोरुवत्' से उपासना काण्ड का तथा 'श्येनः' से कर्मकाण्ड का। सोम हमारे तीनों काण्डों को प्रशस्त करता है।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

सोमपायी 'इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् व विष्णु'

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥

(१) **अप्साः**=(अपां संभक्ता) कर्मों का सेवन करनेवाला **सोमः**=सोम **इन्द्राय अर्षति**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त होता है। **वायवे**=क्रियाशील पुरुष के लिये प्राप्त होता है। जितेन्द्रियता के लिये क्रिया में लगे रहना ही साधन है। (२) **वरुणाय**=यह सोम पापों का निवारण करनेवाले के लिये प्राप्त होता है। कर्मों में लगे रहने से पाप दूर ही रहते हैं। पापों में फँसे और सोम का नाश हुआ। **मरुद्भ्यः**=यह सोम मितरावियों के लिये प्राप्त होता है, कर्मशील मितरावी होता ही है। (३) यह सोम **विष्णवे**=व्यापक मनोवृत्तिवाले के लिये प्राप्त होता है। व्यापकता व उदारता ही सब आसुरभावों को दूर रखती है। आसुरभाव दूर रहते हैं, तभी सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ—सोम का पान 'इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् व विष्णु' करते हैं।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

सात्त्विक अन्न, सुपथार्जित धन

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **नः तोकाय**=हमारे सन्तानों के लिये भी **इषम्**=उत्तम अन्नों को **दधत्**=धारण करता हुआ तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **विश्वतः**=सब दृष्टिकोणों से **सहस्रिणम्**=(स हस्) प्रसन्नता परिपूर्ण धन को **आपवस्व**=प्राप्त करा। (२) शरीर में संयत सोम से समय पर उत्पन्न हुए-हुए सन्तान भी सदा उत्तम भावोंवाले होते हैं, वे उत्तम अन्नों के सेवन की ही कामना करते हैं। इस सोम के रक्षण से हम भी उन ऐश्वर्यों को कमानेवाले बनें, जो कि हमारे आनन्द की वृद्धि का कारण हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सात्त्विक विचारोंवाले सन्तानों को जन्म देता है। हम सोमरक्षण से सत्य से धनों को कमाते हुए आनन्द-लाभ करते हैं।

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अर्वावति-परावति-शर्यणावति

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

(१) ये **सोमासः**=जो सोमकण हैं वे **परावति**=सुदूर द्युलोक के निमित्त, इस शरीर में मस्तिष्क ही द्युलोक है, उस मस्तिष्क के निमित्त **सुन्विरे**=उत्पन्न किये जाते हैं। सोम इस मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। (२) **ये**=जो सोमकण हैं वे **अर्वावति**=इस समीप के पृथिवीलोक के निमित्त उत्पन्न किये जाते हैं। इन सोमकणों से ही शरीररूप पृथिवीलोक नीरोग होकर दृढ़ बनता है। (३) **ये वा**=या ये जो सोमकण हैं वे **अदः**=उस **शर्यणावति** (शर्यणो अन्तरिक्षदेशः द० १।८४।१४)=जिसमें वासनाओं का हिंसन किया गया है, उस हृदयान्तरिक्ष के निमित्त उत्पन्न किये जाते हैं। इन सोमकणों के द्वारा हृदय में वासनाओं का संहार होकर पवित्रता का सम्पादन होता है।

भावार्थ—सोमकण मस्तिष्क को ज्ञानाग्निदीप्त, शरीर को सुदृढ़ तथा हृदय को वासना संहारवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

क्रियाशील विद्यार्थी व शक्तियों का विस्तार करनेवाला सद्गृहस्थ

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्। ये वा जनेषु पञ्चसु॥ २३॥

(१) ये सोमकण वे हैं, **ये**=जो **आर्जीकेषु**=विद्या के अर्जन करनेवाले ब्रह्मचारियों के निमित्त (सुन्विरे)=पैदा किये जाते हैं। इन सोमकणों से ही उनका मस्तिष्क विद्यार्जनक्षम बनता है। उन विद्यार्थियों के निमित्त जो कि **कृत्वसु**=खूद क्रियाशील, आलस्य शून्य हैं। आलस्यशून्यता भी तो इन विद्यार्थियों को सोमरक्षण से ही प्राप्त होती है। (२) ये सोमकण वे हैं **ये**=जो **पस्त्यानां मध्ये**=गृहस्थ लोगों के बीच में पैदा किये जाते हैं। इन सोमकणों के संयत करने से ही ये सद्गृहस्थ बन पाते हैं। **वा**=अथवा ये सोमकण वे हैं **ये**=जो **पञ्चसु जनेषु**=पञ्च यज्ञों को करनेवाले लोगों में अथवा (पचि विस्तारे) अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाले लोगों के निमित्त पैदा किये जाते हैं। इन सोमकणों के रक्षण से ही वे गृहों को सुन्दर बना पाते हैं और अपनी शक्तियों का विस्तार कर पाते हैं।

भावार्थ—ये सोमकण विद्यार्थी को विद्यार्जनक्षम व क्रियाशील बनाते हैं तथा एक गृहस्थ को सद्गृहस्थ व शक्तियों का विस्तार करनेवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

देवासः-इन्दवः

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्। सुवाना देवास इन्दवः॥ २४॥

(१) **ते**=वे गत मन्त्रों में वर्णित सोमकण **नः**=हमारे लिये **दिवः परि**=द्युलोक से, मस्तिष्क में स्थित सहस्रारचक्र से **वृष्टिम्**=धर्ममेघ समाधि में होनेवाली आनन्द की वर्षा को **पवन्ताम्**=प्राप्त करायें। सोमकणों का रक्षण समाधि सिद्धि में भी बड़ा सहायक होता है। (२) ये सोमकण **सुवीर्यम्**=उत्पन्न किये जाते हुए ये सोमकण **देवासः**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाले होते हैं, और **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले हैं।

भावार्थ—सोमकणों का रक्षण हमें समाधि के सर्वोच्च आनन्द को प्राप्त करने के योग्य बनाता है। ये हमारे में दिव्यगुणों को पैदा करते हैं और हमें शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ज्ञानाग्नि व जाठराग्नि का रक्षक' सोम

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना। हिन्वानो गोरधि त्वचि॥ २५॥

(१) **हर्यतः**=हमारे लिये दिव्यगुणों को प्राप्त कराने की कामना करता हुआ, **हरिः**=यह दुःखों का हरण करनेवाला सोम **गोः**=ज्ञान की वाणियों के **त्वचि अधि** (त्वच् cover)=रक्षण के निमित्त रक्षक आवरण के निमित्त **हिन्वानः**=शरीर में प्रेरित किया जाता है। शरीर में प्रेरित हुआ-हुआ सोम इन ज्ञानों का रक्षण करता है, सोम के अभाव में ज्ञानाग्नि बुझ जाती है। (२) यह सोम **जमदग्निना**=खूब खानेवाली है जाठराग्नि जिसकी ऐसे पुरुष से, दीप्त जाठराग्निवाले पुरुष से **गृणानः**=स्तुति किया जाता हुआ **पवते**=शरीर में गतिवाला होता है। वस्तुतः सोमरक्षण से ही जाठराग्नि दीप्त रहती है। सोम-विनाश जाठराग्नि की मन्दता का कारण बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का रक्षक आवरण बनता है और जाठराग्नि को दीप्त रखता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शुक्रासः वयोजुवः

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः। श्रीणाना अप्सु मृञ्जत॥ २६॥

(१) **शुक्रासः**=ज्ञानदीप्ति के कारणभूत **वयोजुवः**=आयुष्य को दीर्घकाल तक प्रेरित करनेवाले सोमकण **श्रीणानाः**=हमारी शक्तियों को परिपक्व करते हुए हैं। ये सोमकण **अप्सु**=कर्मों में **प्रमृञ्जत**=शुद्ध किये जाते हैं, कर्मों को करते रहने पर वासनाओं का आक्रमण नहीं होता। सो कर्मों में लगे रहना ही सोमकणों के शोधन का मार्ग है। (२) ये सोमकण **हिन्वानासः**=प्रेरित किये जाते हुए **सप्तयः न**=घोड़ों के समान हैं। जैसे वे घोड़े हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं, उसी प्रकार ये सोमकण भी हमें प्रभु रूप लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं।

भावार्थ—सोम-शुद्धि का साधन कर्त्तव्यपरायणता है। शुद्ध सोम हमें ज्ञानदीप्त, दीर्घ जीवनवाला तथा लक्ष्य-स्थान को प्राप्त करनेवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

कर्मठ ही सोम का रक्षण करते हैं

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये। स पवस्वानया रुचा॥ २७॥

(१) हे सोम! **तं त्वा**=उस तुझ को **सुतेषु**=यज्ञों में **आभुवः**=समन्तात् होनेवाले, अर्थात् सदा यज्ञों में लगे रहनेवाले, श्रेष्ठतम कर्मों में प्रवृत्त लोग, **हिन्विरे**=अपने शरीरों में प्रेरित करते हैं। ऐसा होने पर **देवतातये**=तू दिव्यगुणों के विस्तार के लिये होता है। (२) **सः**=वह तू **अनया रुचा**=इस ज्ञानदीप्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—सोमरक्षण का उपाय 'यज्ञों में लगे रहना' है। रक्षित सोम हमें ज्ञानदीप्ति देता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'सुखद-कार्यसाधक-रक्षक-स्पृहणीय' बल

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे। पान्तमा पुरुस्पृहम्॥ २८॥

(१) हे सोम! हम **अद्य**=आज **ते**=तेरे **दक्षम्**=बल को **आवृणीमहे**=सर्वथा वरते हैं। जो बल, **मयोभुवम्**=कल्याण सुख व नीरोगता को उत्पन्न करनेवाला है। **वह्निम्**=जो हमें लक्ष्य-स्थान पर प्राप्त करानेवाला है। (२) तेरे उस बल को हम वरते हैं जो **पान्तम्**=हमारा रक्षण कर रहा है और **पुरुस्पृहम्**=बहुतों से स्पृहणीय, चाहने योग्य है, अर्थात् जो बल पीड़ित करनेवाला होकर अवाञ्छनीय नहीं हो गया है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम 'सुखद-कार्यसाधक-रक्षक-स्पृहणीय' बल को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'मन्द्र-विप्र-मनीषी' सोम

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्। पान्तमा पुरुस्पृहम्॥ २९॥

(१) हे सोम! उस तुझे हम **आ** (वृणीमहे)=वरते हैं, जो तू **मन्द्रम्**=मद व उल्लास को पैदा करनेवाला है उस तुझे **आ**=वरते हैं जो **वरेण्यम्**=वरने के योग्य है और फिर उस तुझे **आ**=वरते हैं, जो **विप्रम्**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला है और **आ**=उस तुझे वरते हैं जो कि **मनीषिणम्**=उत्कृष्ट बुद्धि को प्राप्त करानेवाला है। (२) **पान्तम्**=जो तू रक्षा करनेवाला है

और **आ** (वृणीमहे)=तेरा वरण करते हैं, जो तू **पुरुस्पृहम्**=बहुतों से स्पृहणीय है, चाहने योग्य है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'उल्लास-पूर्णता व बुद्धि' को प्राप्त कराता है। इसीलिए यह वरेण्यम् व स्पृहणीय होता है, यही हमारा रक्षण करता है।

ऋषिः—**भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

रयि व सुचेतुना

आ र॒यिमा सु॑चे॒तुन॒मा सु॑क्रतो त॒नूष्वा। पान्त॒मा पु॑रु॒स्पृह॑म्॥ ३०॥

(१) हे **सुक्रतो**=उत्तम प्रज्ञान व शक्तिवाले सोम! हम **तनूषु**=अपने शरीरों में तेरे **रयिम्**=ऐश्वर्य को **आ** (वृणीमहे)=सब प्रकार से वरते हैं। तेरे **सुचेतुनम्**=उत्तम प्रज्ञान को **आ**=वरते हैं। (२) तुझे वरते हैं जो कि **पान्तम्**=हमारा रक्षण करता है और **पुरुस्पृहम्**=बहुतों से स्पृहणीय होता है।

भावार्थ—सोम, शरीर में सुरक्षित होने पर 'रयि व उत्तम चेतना' का कारण बनता है।

इस सोम के रक्षण से शतशः वासनाओं का विखनन (नाश) करनेवाले 'शतं वैखानसाः' अगले सूक्त के ऋषि हैं—

[६६] षट्षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सखा सखिभ्यः

पव॑स्व विश्वचर्षणे॒ऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑। सखा॒ सखि॑भ्य॒ ईड्यः॑॥ १॥

(१) हे **विश्वचर्षणे**=सब वस्तुतत्त्वों का दर्शन करनेवाले सोम! **विश्वानि काव्या**=सब काव्यों, ज्ञानों का अभिलक्ष्य करके **पवस्व**=तू हमें प्राप्त हो। तेरे रक्षण से हमारी ज्ञानाग्नि इस प्रकार दीप्त हो कि हम वस्तुतत्त्व को समझनेवाले बनें। (२) तू **सखिभ्यः सखा**=सखाओं के लिये सखा बनता है, जो तेरे मित्र हों उनका तू मित्र होता है। जो तेरा रक्षण करता है, उसका तू रक्षण करनेवाला होता है। **ईड्यः**=तू स्तुति के योग्य है। सोम वस्तुतत्व अत्यन्त प्रशस्त गुणोंवाला होने से स्तुत्य है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारी बुद्धि सूक्ष्म होकर वस्तुतत्त्वों को वह देखनेवाली होती है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दो तेज

ताभ्यां॒ विश्व॑स्य राजसि॒ ये प॑वमान॒ धाम॑नी। प्र॒ती॒ची सो॑म त॒स्थतुः॑॥ २॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले **सोम**=सोम (वीर्यशक्ते) **ये**=जो **धामनी**=तेरे तेज **प्रतीची**=हमारे अन्दर गतिवाले होकर **तस्थतुः**=स्थित होते हैं, शरीर में तेजस्विता के रूप से तथा मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति के रूप से, **ताभ्याम्**=उन तेजों से **विश्वस्य राजसि**=सबका तू दीप्त करनेवाला होता है अथवा सबका तू शासक होता है। शरीर में तेजस्विता के द्वारा तू रोगकृमियों का संहार करके शरीर को अपने शासन में रखता है तथा मस्तिष्क की तेजस्विता से तू काम-क्रोध-लोभ आदि वासनाओं को दग्ध करके मन का शासन करनेवाली मनीषा (बुद्धि) वाला होता है। (२) शरीर में सुरक्षित सोम शरीर को तेजस्विता से युक्त करता है, मस्तिष्क को ज्ञानदीप्ति से। ये दोनों ही तेज एक दूसरे का पूरण करते हुए जीवन में दीप्ति को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सोम शरीर में सुरक्षित होकर तेजस्विता व ज्ञानदीप्ति से पवित्रता का संचार करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पवमान कवि

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः। पवमान ऋतुभिः कवे॥ ३॥

(१) **सोम**=हे सोम! **यानि**=जो **ते**=तेरे **धामानि**=तेज **परि**=शरीर में चारों ओर हैं, उनके द्वारा हे सोम! तू **विश्वतः असि**=चारों ओर फैला हुआ है। (२) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले, **कवे**=शान्तप्रज्ञ-बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले सोम! तू **ऋतुभिः**=(ऋ गतौ) नियमित गतियों के द्वारा शरीर में पवित्रता व बुद्धि दीप्ति को करनेवाला है। सोमरक्षक पुरुष जीवन की गतियों में बड़ा व्यवस्थित होता है। यह नियमितता उसे पवित्र व दीप्त बुद्धिवाला बनाती है।

भावार्थ—हम शरीर में व्याप्त सोम के तेजों से पवित्र व दीप्त बुद्धि बनें।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ऊतये

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या। सखा सखिभ्य ऊतये॥ ४॥

(१) हे सोम! तू **इषः**=प्रभु प्रेरणाओं को **जनयन्**=हृदय की पवित्रता के द्वारा प्रादुर्भूत करता हुआ **विश्वानि वार्या**=सब वरणीय वस्तुओं को **अभिपवस्व**=आभिमुख्येन प्राप्त करानेवाला हो। सोम ही शरीर के सब कोशों के ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है। (२) तू **सखिभ्यः सखा**=सखाओं के लिये सखा होता है जो सोम का रक्षण करते हैं, सोम उनका रक्षण करता है। यह **ऊतये**=उनको रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाला होता है।

भावार्थ—यह सोम (१) हृदय को पवित्र करके हमें प्रभु प्रेरणाओं को सुनाता है, (२) सब वरणीय तेज आदि धनों को प्राप्त कराता है, (३) हमारा रक्षक है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शुक्रासः अर्चयः

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते। पवित्रं सोम धामभिः॥ ५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **दिवः पृष्ठे**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के आधार में **तव**=तेरी **शुक्रासः**=चमकती हुई **अर्चयः**=ज्ञान की ज्वालायें हैं। तेरे रक्षित होने पर तेरे द्वारा ज्ञानाग्नि की ये ज्वालायें चमक उठती हैं। (२) ये ज्वालायें ही वस्तुतः **धामभिः**=अपने तेजों से **पवित्रम्**=पवित्र हृदय को **वितन्वते**=विस्तृत करती हैं। ज्ञानदीप्त होकर के हृदय को पवित्र करता है 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान को दीप्त करता है। दीप्त ज्ञान हृदय को पवित्र करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सप्त सिन्धवः

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते। तुभ्यं धावन्ति धेनवः॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **इमे**=ये **सप्त सिन्धवः**=सात ज्ञान के प्रवाह (स्यन्द् प्रस्रवणे), 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सात ऋषियों से प्रवाहित होनेवाले ज्ञान-प्रवाह, **तव**

प्रशिषम्=तेरी आज्ञा के अनुसार ही **सिस्त्रते**=चलते हैं। सोम ही वस्तुतः इन ज्ञान-प्रवाहों का साधन बनता है। सोम के अभाव में तो ये सब सूख जाते हैं। (२) **तुभ्यम्**=तेरे लिये ही **धेनवः**=ये ज्ञानदुग्ध से प्रीणित करनेवाली वेदवाणी रूप गौवें **धावन्ति**=गतिवाली होती हैं। सोम के शरीर में सुरक्षित होने पर ही मनुष्य की ज्ञान की रुचि होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही सातों ज्ञान-प्रवाहों के प्रसार का कारण बनता है। सोम के सुरक्षित होने पर ही वेदवाणी रूप धेनुएँ हमें प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अक्षिति श्रवः

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः। दधानो अक्षिति श्रवः॥ ७॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **धारया**=अपनी धारण शक्ति से हमें **प्रयाहि**=प्रकर्षेण प्राप्त हो। **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरः**=आनन्द का संचार करनेवाला होता है। (२) यह सोम **अक्षिति**=न नष्ट होनेवाले **श्रवः**=ज्ञान को **दधानः**=धारण करता है। अथवा उस ज्ञान को हमें प्राप्त कराता है, जो अक्षिति=हमारे न नाश का कारण बनता है।

भावार्थ—सोम हमारे शरीर का धारण करता है, मन में आनन्द का संचार करता है, मस्तिष्क में रक्षक ज्ञान को स्थापित करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सप्त जामयः

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः। विप्रमाजा विवस्वतः॥ ८॥

(१) **सप्त**=सात **जामयः**='दो कान, दो आँखें, दो नासिका-छिद्र व मुख' रूप सात ऋषियों से जन्म लेनेवाली ज्ञान नदियाँ **हिन्वतीः**=हमें कर्मों में प्रेरित करती हुईं **त्वा उ**=हे सोम! तुझे ही **धीभिः**=इन ज्ञानपूर्वक होनेवाले कर्मों से **समु अस्वरन्**=सम्यक् स्तुत करती हैं। इन ज्ञानपूर्वक होनेवाले कर्मों में तेरी ही महिमा दिखती है। (२) हे सोम! ये ज्ञान नदियाँ **विवस्वतः**=इस ज्ञान की किरणोंवाले ज्ञानी पुरुष के **आजा**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं के साथ चलनेवाले अध्यात्म-संग्राम में **वि-प्रम्**=विशेषरूप से पूरण करनेवाले तेरा ही स्तवन करती हैं।

भावार्थ—सोम हमारा विशेष रूप से पूरण करनेवाला है। यही ज्ञान-प्रवाहों को जन्म देनेवाला है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'अव्य जीरु अधिश्वण्' हृदय

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि। रेभो यदज्यसे वने॥ ९॥

(१) **अग्रुवः**=आगे बढ़ने की प्रवृत्तिवाले लोग **त्वा**=तुझे **संमृजन्ति**=सम्यक् शुद्ध करते हैं। वे यह समझते हैं कि सारी उन्नति इस सोमरक्षण पर ही निर्भर करती है। इस सोम का रक्षण उस हृदय के होने पर करते हैं जो **अव्ये**=(अव रक्षणे) उत्तमता से रक्षित हुआ है, जिसे वासनाओं के आक्रमण से बचाया गया है। जिसमें **जीरौ**=पाप-वासनाओं को जीर्ण किया गया है, जो हृदय पापों का अभिभव करनेवाला हुआ है। तथा **अधिष्वणि**=जो हृदय खूब ही उस प्रभु के स्वनवाला हुआ है, जिसमें प्रभु के नामों का उच्चारण हो रहा है। वस्तुतः हृदय के ऐसा होने पर ही सोम

का रक्षण होता है। (२) इस सोम का रक्षण तभी होता है **यत्**=जबकि **रेभः**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ तू **वने**=सम्भजन में **अज्यसे**=गतिवाला होता है। निरन्तर प्रभु की उपासना ही वस्तुतः सोमरक्षण का साधन बनती है।

भावार्थ—सोमरक्षण का मुख्य साधन 'निरन्तर प्रभु-स्तवन व आगे बढ़ने की वृत्ति का होना' है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'रोगनाशक ज्ञानवर्धक' सोमधारायें

पर्वमानस्य ते कवेवाजिन्त्सर्गा असृक्षत। अर्वन्तो न श्रवस्यर्वः॥ १०॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ, **वाजिन्**=शक्तिशालिन् सोम! **पवमानस्य**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **ते**=तेरी **सर्गाः**=धारायें **असृक्षत**=उत्पन्न की जाती हैं। इस सोम की धारायें ही हमें दीप्त बुद्धिवाला बनाती हैं, और हमारी शक्ति को बढ़ाती हैं। हृदय को भी यह सोम ही पवित्र करता है। (२) ये सोमधारायें **न**=जैसे **अर्वन्तः**=(अर्व् To kill) सब रोगों व वासनाओं को नष्ट करनेवाली हैं, उसी प्रकार ये **श्रवस्यवः**=हमारे लिये ज्ञान की कामनावाली होती हैं। हमें नीरोग व ज्ञान-सम्पन्न बनाती हैं।

भावार्थ—सोमधारायें रोगनाशक व ज्ञानवर्धक होती हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

आनन्दमयकोश की ओर

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशन्त धीतयः॥ ११॥

(१) **वारे**=जिससे सब वासनाओं का निवारण किया गया है, **अव्यये**=(अवि अय्) 'जो विविध विषयों की ओर नहीं जा रहा', ऐसे हृदय के होने पर **मधुश्चुतं कोशम् अच्छा**=माधुर्य को टपकानेवाले आनन्दयमकोश का लक्ष्य करके सोम धारायें **असृग्रम्**=उत्पन्न की जाती हैं। हृदय की पवित्रता के होने पर ही सोम का रक्षण होता है, और रक्षित सोम आनन्द वृद्धि का कारण बनता है। (२) **धीतयः**=सोम का अपने अन्दर पान करनेवाले लोग **अवावशन्त**=अपने शोधन के लिये इस सोम की सदा कामना करते हैं। ये शरीर में सुरक्षित रहता है, तभी जीवन सर्वथा पवित्र बना रहता है, शरीर रोगों से मलिन नहीं होता, मन वासनाओं से अपवित्र नहीं होता और बुद्धि भी दीप्त बनी रहती है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम आनन्द वृद्धि का कारण बनता है। इसके रक्षण से जीवन पवित्र होता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अच्छ समुद्रम्

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा॥ १२॥

(१) **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोमकण **समुद्रं अच्छा**=(स+मुद्) उस आनन्दमयकोश की ओर गतिवाले होते हैं, उसी प्रकार **न**=जैसे कि **धेनवः गावः**=दुधार गौवें **अस्तम्**=गृह की ओर। सोमकण क्या हैं? ये तो दुधार गौवों के समान हैं। वे गौवें दूध से प्रीणित करती हैं, सोमकण ज्ञानदुग्ध से। हमारे जीवन को ज्ञानमय बना करके ये हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं। (२) अन्ततः, **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के, जो भी ठीक है, उसके उत्पत्ति-स्थान प्रभु को **आ अग्मन्**=ये सर्वथा

प्राप्त होते हैं। हमारे जीवनों को अधिकाधिक पवित्र व ज्ञान-सम्पन्न करते हुए ये हमें प्रभु को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सोमकण शरीर में सुरक्षित होकर हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं, अन्ततः प्रभु को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

महान् रण के लिये

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे॥ १३॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **सिन्धवः आपः**=शरीर में प्रवाहित होनेवाले रेतःकण **नः**=हमें **महे रणे**=इस महत्त्वपूर्ण जीवन-संग्राम के निमित्त **प्र अर्षन्ति**=प्राप्त होते हैं। इन रेतःकणों के द्वारा ही हम इस जीवन-संग्राम में विजयी बनेंगे। (२) हे इन्दो! यह सब तब होता है **यद्**=जब कि **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वासयिष्यसे**=शरीर में वसाया जाता है। जब हम स्वाध्याय में प्रवृत्त होते हैं तो ये सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर शरीर में ही सुरक्षित रहते हैं। उस समय ये रोगकृमियों व लोभ आदि अशुभ-वृत्तियों को भी विनष्ट करके हमें इस महान् जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं।

भावार्थ—शरीर में स्वाध्याय द्वारा सुरक्षित सोमकण हमें जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

यज्ञशीलता व प्रभु-मित्रता

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः। इन्दो सखित्वमुश्मसि॥ १४॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **अस्य**=इस **ते**=तेरी **सख्ये**=मित्रता में, अर्थात् तुझे शरीर में सुरक्षित करते हुए **वयम्**=हम **इयक्षन्तः**=यज्ञादि उत्तम कर्मों की कामनावाले होते हुए, **त्वा ऊतया**=तेरे द्वारा रक्षणवाले हों। (२) हे **इन्दोः**=सोम! तेरे से रक्षित हुए-हुए हम **सखित्वम्**=प्रभु की मित्रता को **उश्मसि**=चाहते हैं।

भावार्थ—शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर (क) हमारी वृत्ति यज्ञ आदि उत्तम कर्मों की ओर झुकती है, (ख) हमारी प्रभु-मित्रता की कामना होती है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान-यज्ञ व प्रभु-प्राप्ति

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे। एन्द्रस्य जठरे विश॥ १५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **महे**=महान् **गविष्टये**(गो इष्टि)=ज्ञान वाणियों के यज्ञ के लिये **आपवस्व**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। तेरे द्वारा ही ज्ञानाग्नि का दीपन होकर यह ज्ञान-यज्ञ चलता है। हे सोम! तू **नृचक्षसे**=उस मनुष्यों के महान् द्रष्टा प्रभु की प्राप्ति के लिये हमें प्राप्त हो। (२) तू **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरे**=जठर में, शरीर में, **आविश**=समन्तात् प्रवेशवाला हो जितेन्द्रियता से ही सोम शरीर में व्याप्त होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान-यज्ञों द्वारा प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सदा विजयी

म॒हाँ अ॑सि सोम॒ ज्येष्ठ॑ उ॒ग्राणा॑मिन्द॒ ओजि॑ष्ठः । युध्वा॒ सञ्छश्व॑ज्जिगेथ ॥ १६ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू महान् **असि**=आदरणीय है। **ज्येष्ठः**=प्रशस्यतम है। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **उग्राणाम्**=शत्रुओं के लिये उग्र (भयंकर) वस्तुओं में **ओजिष्ठः**= ओजस्वितम है। (२) **युध्वा सन्**=शरीर में रोगों व वासनाओं से युद्ध करनेवाला होता हुआ तू **अश्वत्**=सदा **जिगेथ**=विजयी होता है।

भावार्थ—सोम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रशस्यतम वस्तु है। यह हमें युद्ध में सदा विजयी बनाता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ओजीयान्-शूरतर-मंहीयान्

य उ॒ग्रेभ्य॑श्चि॒दोजी॑याञ्छूरे॒भ्य॑श्चि॒च्छूर॑तरः । भू॒रि॒दाभ्य॑श्चि॒न्मंही॑यान् ॥ १७ ॥

(१) **यः**=जो सोम **उग्रेभ्यः**=शत्रुओं के विध्वंसक बलवालों से **चित्**=भी **ओजीयान्**=अधिक ओजस्वी है और **चित्**=निश्चय से **शूरेभ्यः शूरतरः**=सर्वाधिक शूर है, हिंसक है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही शरीर के अन्दर आ जानेवाले रोगकृमियों का संहारक है तथा मन को ओजस्वी बनाता है। (२) शरीर व मन दोनों का स्वस्थ बनाकर यह सोम **चित्**=निश्चय से **भूरि-दाभ्यः**=खूब देनेवालों से भी **मंहीयान्**=अधिक देनेवाला है। यह सोम दातृतम है। शरीर की नीरोगता को तथा मन की निर्मलता को देकर यह बुद्धि की तीव्रता को देनेवाला है।

भावार्थ—यह सोम 'ओजस्वी-शूर व सब उत्तम वसुओं का दाता' है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सख्याय-युज्याय

त्वं सो॑म॒ सूर॒ एष॑स्तो॒कस्य॑ सा॒ता त॒नूना॑म् । वृ॒णी॒महे॑ स॒ख्याय॑ वृ॒णी॒महे॒ युज्या॑य ॥ १८ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **सूरः**=उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाला है (सू प्रेरणे), **इषः आसाता**=प्रेरणाओं को प्राप्त करानेवाला है, हृदय को निर्मल करके प्रभु प्रेरणाओं को तू ही प्राप्त कराता है। **तोकस्य साता**=सब वृद्धियों का तू दाता है, **तनूनाम्**=शरीरों का तू देनेवाला है। शरीरों को यह सोम ही तो नीरोग करता है। (२) तुझे हम **सख्याय**=उस प्रभु से मित्रता के लिये **वृणीमहे**=वरते हैं। **युज्याय**=उस प्रभु से सदा मेल के लिये **वृणीमहे**=वरते हैं। तेरे रक्षण से ही हम उस प्रभु को पानेवाले बनते हैं।

भावार्थ—यह सोम शरीरों को नीरोगता बनाता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पवित्र प्रभु

अग्न॒ आयूं॑षि पवस॒ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः । आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ १९ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप ही **आयूंषि**=हमारे जीवनों को **पवसे**=पवित्र करते हैं। **च**=और आप **नः**=हमारे लिये **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को तथा **इषम्**=प्रेरणा को **आसुव**=प्राप्त करायें आप से कर्त्तव्य की प्रेरणा व बल को प्राप्त करके हम मार्ग पर आगे बढ़ें। (२) आप सब **दुच्छुनाम्**=दुर्गतियों व दुःखों को **आरे**=दूर **बाधस्व**=बाधित करिये, पीड़ित करिये। हमारे से सब

दुःख व दुराचरण दूर हों।

भावार्थ—प्रभु का उपासन ही हमारे जीवनों से सब दुर्गुणों को दूर करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पांचजन्य प्रभु

अ॒ग्निर्ऋषि॑: पव॑मानः पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः। तमी॑महे महाग॒यम्॥ २०॥

(१) **अग्निः**=वे प्रभु अग्रणी हैं, हमें अग्र-स्थान पर प्राप्त करानेवाले हैं। **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा हैं। **पवमानः**=हमें पवित्र करनेवाले हैं। **पाञ्चजन्यः**=पञ्चजन मात्र के लिये हितकर हैं। 'पञ्चजन' मनुष्य को कहते हैं जो 'पाँचो ज्ञानेन्द्रियों व पाँचों कर्मेन्द्रियों' की शक्ति का विकास करता है। वे प्रभु **पुरोहितः**=हमारे सामने आदर्श के रूप से स्थापित हैं, प्रभु में प्रत्येक गुण निरपेक्ष रूप में, निरतिशय रूप में विद्यमान है। उस-उस गुण के अंश को प्राप्त करने का उपासक ने यत्न करना है। (२) **तम्**=उस **महागयम्**=खूब ही गायन के योग्य प्रभु को **ईमहे**=हम उन सब गुणों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का गायन करते हुए हम भी 'अग्नि, ऋषि व पवमान' बनकर 'पांचजन्य' बनने के लिये यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वर्चस्-सुवीर्य-रयि

अग्ने॒ पव॑स्व॒ स्वपा॑ अ॒स्मे वर्चः॑ सु॒वीर्य॑म्। दध॑द्र॒यिं मयि॒ पोष॑म्॥ २१॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **स्वपाः**=उत्तम कर्मोंवाले आप **अस्मे**=हमारे लिये **वर्चः**=तेज व **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **पवस्व**=प्राप्त कराइये। (२) आप **मयि**=मेरे में **पोषं रयिम्**=पालक धन को **दधत्**=धारण करिये। पालन-पोषण के पर्याप्त धन की मुझे कभी कमी न हो।

भावार्थ—हमें प्रभु कृपा से 'वर्चस्-सुवीर्य व पोषण के लिये पर्याप्त धन' की प्राप्ति हो।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सूर्य के समान

पव॑मानो॒ अति॒ स्रिधो॒ऽभ्य॑र्षति सुष्टु॒तिम्। सूरो॒ न वि॒श्वद॑र्शतः॥ २२॥

(१) **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **अति स्रिधः**=सब हिंसक तत्त्वों से हमें ऊपर उठाता है, यह **सुष्टुतिं अभि अर्षति**=उत्तम स्तुति की ओर चलता है। हमें प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। (२) यह सोम **सूरः न**=सूर्य के समान है, सूर्य की तरह हमारे जीवन में से अन्धकार को दूर करता है। **विश्वदर्शतः**=सम्पूर्ण संसार को यह हमें दिखानेवाला है। सम्पूर्ण ज्ञानों को प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ—सोम हमें पवित्र करता है, हिंसक तत्त्वों का शिकार नहीं होने देता, प्रभु-स्तवन की ओर झुकाता है, हमारे जीवन में सूर्य के समान अन्धकार को दूर करके प्रकाश को करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इन्दुः अत्यो विचक्षणः

स म॑र्मृजा॒न आ॒युभि॒: प्रय॑स्वा॒न्प्रय॑से हि॒तः। इन्दु॒रत्यो॑ विचक्ष॒णः॥ २३॥

(१) **सः**=वह **आयुभिः**=गतिशील पुरुषों से **मर्मृजानः**=शुद्ध किया जाता हुआ **इन्दुः**=हमें

शक्तिशाली बनानेवाला सोम **प्रयस्वान्**=सात्त्विक अन्नवाला होता है। सात्त्विक अन्न के सेवन से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम ही **प्रयसे**=प्रकृष्ट उद्योग के लिये **हितः**=हितकर होता है। यह सात्त्विक अन्न से उत्पन्न सोम हमें सात्त्विक कार्यों में प्रवृत्त करता है। (२) **अत्यः**=यह सोम सततगामी अश्व की तरह होता है। हमें शक्तिशाली बनाकर निरन्तर क्रिया में प्रवृत्त करता है। **विचक्षणः**=यह विशिष्ट द्रष्टा होता है। हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके यह हमें वस्तुतत्त्वों का दर्शन कराता है।

भावार्थ—गतिशील बने रहकर हम सोम को पवित्र कर पाते हैं। यह हमें प्रकृष्ट उद्योग में प्रवृत्त करता है। हमें शक्तिशाली, गतिशील व तत्त्वद्रष्टा बनाता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ऋतमय-ज्योतिष्मान्' जीवन

पव॑मान ऋ॒तं बृ॒हच्छु॒क्रं ज्योति॑रजीजनत्। कृ॒ष्णा तमां॑सि॒ जङ्घ॑नत्॥ २४॥

(१) **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **बृहत् ऋतम्**=वृद्धि के कारणभूत ऋत को, सब कार्यों में नियमितता को तथा **शुक्रं ज्योतिः**=देदीप्यमान ज्ञान-ज्योति को **अजीजनत्**=उत्पन्न करता है। सोम रक्षण के द्वारा हमारा जीवन ऋतमय व ज्योतिष्मान् बनता है। (२) यह सोम **कृष्णा तमांसि**=काले अन्धकारों को, घने अज्ञानान्धकारों को **जङ्घनत्**=विनष्ट करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन 'ऋतमय ज्योतिष्मान्' बनता है। अज्ञानान्धकार नष्ट होता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'चन्द्र-जीर-अजिरशोचिष' धारायें

पव॑मानस्य॒ जङ्घ्न॑तो॒ हरे॑श्च॒न्द्रा अ॑सृक्षत। जी॒रा अ॑जि॒रशो॑चिषः॥ २५॥

(१) **पवमानस्य**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **जङ्घ्नतः**=अज्ञानान्धकारों नष्ट करते हुए **हरेः**=सब बुराइयों का हरण करनेवाले सोम की **चन्द्राः**=आह्लाद को पैदा करनेवाली धारायें **असृक्षत**=उत्पन्न की जाती हैं। (२) सोम की ये धारायें **जीराः**=(जृ वयोहानौ) सब रोगकृमियों व वासनाओं को जीर्ण करनेवाली हैं तथा **अजिरशोचिषः**=खूब गतिशील दीप्तिवाली हैं। अर्थात् ये ज्ञानदीप्ति को दीप्त करती हैं और हमें खूब क्रियाशील बनाती हैं।

भावार्थ—सोम की धारायें चन्द्र, जीर व अजिरशोचिष् हैं।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'जीवन की शुभ्रता का साधक' सोम

पव॑मानो र॒थीत॑मः शु॒भ्रेभि॑: शु॒भ्रश॑स्तमः। हरि॑श्च॒न्द्रो म॒रुद्ग॑णः॥ २६॥

(१) **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **रथीतमः**=अतिशयेन उत्तम शरीर-रथवाला है। यह शरीररथ को निर्दोष दृढ़ व प्रकाशमय बनाता है। यह **शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः**=निर्मल गुणों व दीप्तियों से खूब ही निर्मल व दीप्तिवाला है। (२) **हरिः**=सब दुःखों का हरण करनेवाला है। **चन्द्रः**=आह्लाद को पैदा करनेवाला है। तथा **मरुद्गणः**=प्राणों के गणवाला है। सोमरक्षण से ही तो सम्पूर्ण प्राणशक्ति की वृद्धि होती है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को शुभ्र बनाता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वाजसातम' सोम

पव॑मानो॒ व्य॑श्नवद्र॒श्मिभि॑र्वाज॒सात॑मः। दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म्॥ २७॥

(१) **पवमानः**=यह सोम हमारे जीवन को पवित्र करनेवाला है। यह **रश्मिभिः**=ज्ञान की किरणों से इसे **व्यश्नवत्**=व्याप्त करता है। **वाजसातमः**=अधिक से अधिक शक्ति को देनेवाला है। (२) यह सोम **स्तोत्रे**=प्रभु स्तवन करनेवाले के लिये **सुवीर्यं दधत्**=उत्तम शक्ति को धारण करता है।

भावार्थ—सोम जीवन को शक्ति व ज्ञानरश्मियों से व्याप्त करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुनानः

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम्। पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥

(१) **सुवानः**=शरीर में उत्पन्न किया जाता हुआ यह **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **पवित्रम्**=वासनाओं से शून्य **अव्ययम्**=(अ वि अय) विविध विषय-वासनाओं की ओर न जानेवाले हृदय को **अति अक्षाः**=अतिशयेन प्राप्त होता है, पवित्र हृदयवाले पुरुष को लक्ष्य करके क्षरित होता है। (२) **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **इन्दुः**=यह सोम **इन्द्रं आ**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की ओर आनेवाला होता है। हमें प्रभु की ओर ले चलता है। इसी भाव को बाईसवें मन्त्र में 'अभ्यर्षति सुष्टुतिम्' शब्दों से कहा गया है।

भावार्थ—हृदय के पवित्र होने पर सोम सुरक्षित होता है। यह हमें प्रभु की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गवां त्वचि अधिक्रीडति

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः। इन्द्रं मदाय जोहुवत्॥ २९ ॥

(१) **एषः**=यह **सोमः**=सोम (वीर्य) **गवाम्**=ज्ञान की वाणियों के **अधि**=आधिक्येन **त्वचि**=सम्पर्क में **अद्रिभिः**=(adore) उपासनाओं के द्वारा **क्रीडति**=क्रीडावाला होता है। प्रभु की उपासना से ही इस सोम का शरीर में रक्षण होता है। शरीर में रक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें ज्ञान की वाणियों के सम्पर्क में सदा रखता है। (२) यह सोम **मदाय**=आनन्द की प्राप्ति के लिये **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **जोहुवत्**=पुकारता है। सोमरक्षक पुरुष सदा प्रभु के स्तवन की वृत्तिवाला बनता है। इसी में वह आनन्द का अनुभव करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम ज्ञान व उपासना की रुचिवाले बनते हैं। यह सोमी पुरुष प्रभु को पुकारता है और आनन्द का अनुभव करता है।

ऋषिः—**शतं वैखानसाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युम्नवत् पयः

यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः। तेन नो मृळ जीवसे॥ ३० ॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **यस्य**=जिस **ते**=तेरा **द्युम्नवत् पयः**=ज्योतिर्मय ज्ञानदुग्ध **दिवाः**=मस्तिष्करूप द्युलोक से **आभृतम्**=समन्तात् प्राप्त कराया जाता है। **तेन**=उस ज्ञानदुग्ध से **नः**=हमें **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन की प्राप्ति के लिये **मृड**=सुखी कर। (२) सोमरक्षण से मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि दीप्त होती है। इसी से जीवन सुखी होता है। ज्ञान ही जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। यह ज्ञान सोमरक्षण से प्राप्य है।

भावार्थ—सोम शरीर में सुरक्षित होता हुआ उस ज्ञान-ज्योति को प्राप्त कराता है जो हमारे

जीवनों को सुखी करती है।

अगला सूक्त भी भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा सोमस्तवन का प्रतिपादन कर रहा है। प्रारम्भ में शक्ति को अपने में भरनेवाले 'भरद्वाज' कहते हैं—

[६७] सप्तषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'दारयु-मन्द्र-ओजिष्ठ' सोम

त्वं सो॑मासि धा॒र॒युर्म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो अध्व॒रे। पव॑स्व मंह॒यद्र॑यिः॥ १॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **धारयुः असि**=धारण करनेवाला है। **मन्द्रः**=हमारे जीवन को उल्लासमय बनानेवाला है। **ओजिष्ठः**=ओजस्वितम है। सम्पूर्ण ओज का मूल तू ही तो है। (२) **अध्वरे**=इस जीव-यज्ञ में **मंहयद्रयिः**=ऐश्वर्य को देनेवाला होता हुआ तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। जीवन-यज्ञ की उत्तम पूर्ति के लिये सब कोशों की सम्पत्ति को यह सोम ही प्राप्त कराता है। 'तेज-वीर्य-बल व ओज मन्यु तथा सहस्' को प्राप्त कराके यह हमारे जीवन-यज्ञ को सफल करता है।

भावार्थ—सोम ही हमारा धारण करता है। सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराके हमारे जीवन-यज्ञ को सफल करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'नृमादन-मत्सरिन्तम' सोम

त्वं सु॒तो नृ॒माद॑नो दध॒न्वान्म॑त्स॒रिन्त॑मः। इन्द्रा॑य सू॒रिरन्ध॑सा॥ २॥

(१) हे सोम! **त्वम्**=तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **नृमादनः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों को आनन्दित करनेवाला है। **दधन्वान्**=धारण करता हुआ तू **मत्सरिन्तमः**=अतिशयेन उल्लास का संचार करनेवाला है। (२) हे सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **अन्धसा**=सात्त्विक अन्न के द्वारा **सूरिः**=उत्कृष्ठ प्रेरणा को देनेवाला होता है। सात्त्विक अन्न के प्रयोग से उत्पन्न सोम शरीर में सुरक्षित होकर हमें उत्कृष्ट मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है। सोमी पुरुष का झुकाव निम्न मार्ग की ओर जाने का नहीं रहता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारा धारण करता हुआ हमारे जीवन को उल्लासमय बनाता है। सात्त्विक अन्न से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम हमें सात्त्विकता की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**भरद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्युमान् शुष्म

त्वं सु॑ष्वा॒णो अद्रि॑भिर॒भ्य॑र्ष॒ कनि॑क्रदत्। द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॑मुत्त॒मम्॥ ३॥

(१) हे सोम! **अद्रिभिः**=(adore) प्रभु के उपासकों से **सुष्वाणः**=उत्पन्न किया जाता हुआ **त्वम्**=तू **कनिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता हुआ, हमारी वृत्ति को और अधिक प्रभु-प्रवण करता हुआ, **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय **उत्तमं शुष्मम्**=उत्तम बल को **अभ्यर्ष**=हमें प्राप्त करा। (२) प्रभु की उपासना से, विषय-वासनाओं से बचकर, हम सोम का रक्षण करते हैं। यह सोम हमें और अधिक प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। उस समय हमें उत्कृष्ट ज्ञान की ज्योति से युक्त बल की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान व बल को प्राप्त कराता है।

इस ज्योतिर्मय बल को प्राप्त करनेवाला यह व्यक्ति 'कश्यप' है, ज्ञानी है (पश्यकः)। यह सोम-स्तवन करता हुआ कहता है—

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हरिः वाजम् अचिक्रदत्

इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया। हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥

(१) **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **हिन्वानः**=शरीर में प्रेरित किया जाता हुआ **तिरः**=तिरोहित रूप में, छिपे रूप में, **अर्षति**=हमें प्राप्त होता है। रुधिर के अन्दर व्याप्त हुआ-हुआ यह सोम दिखता तो न ही, पर रुधिर में सर्वत्र होता है। इस प्रकार यह उन्हीं **वाराणि**=इन्द्रिय द्वारों को (वाराणिः द्वाराणि) प्राप्त होता है, जो कि **अव्यया**=(अ वि अय्) विविध विषयों की ओर जानेवाले नहीं हैं। जिस समय हम इन्द्रिय द्वारों को विषयों से रोकते हैं, इन्द्रियों को विषयों में नहीं जाने देते, तभी ये सोमकण शरीर में तिरोहित होकर रहते हैं। (२) **हरिः**=यह सब अशुभों का हरण करनेवाला सोम **वाजं अचिक्रदत्**=शक्ति को पुकारता है, अर्थात् जीवन का लक्ष्य शक्ति-सम्पादन को बना देता है। इस सुरक्षित सोम से शक्ति-सम्पन्न होकर हम सब बुराइयों से ऊपर उठते हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों को विषयों में भटकने से बचायेंगे तो सोम हमारे अन्दर तिरोहित रूप में निवास करेगा। यह हमें शक्ति-सम्पन्न बनाकर सब कष्टों से बचायेगा।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गोमान् वाज

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा। वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **अव्यम्**=(अव्+य) विषय-वासनाओं के आक्रमण से अपना रक्षण करनेवालों में उत्तम पुरुष को **वि अर्षसि**=विशेष रूप से प्राप्त होता है। इसे प्राप्त होकर तू **श्रवांसि**=ज्ञानों को **वि (अर्षसि)**=प्राप्त कराता है। **सौभगा**=सब सौभाग्यों को **वि**=विशेषरूप से प्राप्त कराता है। (२) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले **वाजान्**=बलों को **वि**=प्राप्त कराता है। तेरे रक्षण से इन्द्रियाँ प्रशस्त बनती हैं, और शक्ति प्राप्त होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'ज्ञान, सौभाग्य, शक्ति व प्रशस्तेन्द्रियों' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उस रयि को

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्। भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले **सोम**=वीर्यशक्ते! **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=उस ऐश्वर्य को **आभर**=सर्वथा प्राप्त करा। जो **शतग्विनम्**=(शतं गच्छति) शतवर्षपर्यन्त ठीक प्रकार से चलता है, **गोमन्तम्**=जो प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है तथा **अश्विनम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है। हम सोम के द्वारा उस ऐश्वर्य को प्राप्त करें जो (क) हमारे शतवर्षगामी जीवन को प्राप्त कराये, (ख) ज्ञानेन्द्रियों को उत्तम बनाये (ग) तथा कर्मेन्द्रियों को सशक्त करे। (२) यह ऐश्वर्य **सहस्रिणम्**=हमें 'स+हस्' सदा आमोद-प्रमोद से युक्त रखे। इससे हमारा जीवन उल्लासमय बना रहे।

भावार्थ—सोमरक्षण 'दीर्घ-जीवन, उत्तम इन्द्रियों व उल्लास' का कारण बने।

सोमरक्षण से उत्तम इन्द्रियोंवाला यह 'गो-तम' बनता है। यह सोम-स्तवन करता हुआ कहता है—

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पवमानास इन्दवः

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। इन्द्रं यामेभिराशत॥ ७॥

(१) **पवमानासः**=पवित्र करनेवाले ये **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोमकण **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले व्यक्ति को **तिरः**=तिरोहित रूप में **आशवः**=व्याप्त करनेवाले होते हैं। इस पुरुष के रुधिर में ये इस प्रकार व्याप्त होते हैं जैसे कि 'तिलेषु तैलं, दध्नीव सर्पिः'। (२) ये सोमकण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **यामेभिः**=गतियों के द्वारा **आशत**=प्राप्त होते हैं। सोमकणों को शरीर में ही व्याप्त रखने का सर्वोत्तम साधन यही है कि हम सदा क्रियाशील बने रहें।

भावार्थ—सोमकण हमें पवित्र व शक्तिशाली बनाते हैं। क्रियाशीलता द्वारा हम इन्हें अपने में ही व्याप्त करें।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ककुह' सोम

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः। आयुः पवत आयवे॥ ८॥

(१) **सोम्यः**=सोम सम्बन्धी **रसः**=रस **ककुहः**=सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोत्तम रस यही है, यही अपने रक्षक को उन्नति के शिखर पर पहुँचाता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली बनाता है। **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पूर्व्यः**=यह पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम है। (११) **आयुः**=यह जीवन है। **आयवे**=गतिशील पुरुष के लिये **पवते**=प्राप्त होता है। गतिशील पुरुष ही इसका अपने में रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—यह सोम 'इन्द्र, पूर्व्य व आयु' है। यही हमें सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाता है।

ऋषिः—**गोतमः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उस्त्रयः

हिन्वन्ति सूरमुस्त्रयः पवमानं मधुश्चुतम्। अभि गिरा समस्वरन्॥ ९॥

(१) **उस्त्रयः**=(उस्रि=going) गतिशील पुरुष, गतमन्त्र के 'आयवः' **सूरम्**=इन कर्मों में प्रेरित करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। **पवमानम्**=यह सोम पवित्र करनेवाला है, **मधुश्चुतम्**=शरीर में माधुर्य को टपकानेवाला है, यही जीवन को मधुर बनाता है। (२) इस सोम के रक्षण के उद्देश्य से ही प्रशस्तेन्द्रियोंवाले लोग (गोतमाः) **गिरा**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **अभि**=दिन के दोनों ओर प्रातः-सायं, **सं अस्वरन्**=सम्यक् उस प्रभु का स्तवन करते हैं। यह प्रभु-स्तवन ही उन्हें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य करता है।

भावार्थ—'गतिशीलता व प्रभु की उपासना' हमें सोमरक्षण में समर्थ करती है।

इस सोमरक्षण से सब कष्टों से ऊपर उठकर ये 'अत्रि' बनते हैं, आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक कष्टों से ऊपर। ये सोम स्तवन करते हुए कहते हैं—

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः पूषा वा** ॥ छन्दः—**यवमध्यागायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सविता-पूषा

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १० ॥

(१) यह **अजाश्वः**=इन्द्रिय रूप अश्वों को गतिशील व उत्क्षिप्त (नष्ट) मतवाला (अज गतिक्षेपणयो) बनाता हुआ सोम **नः**=हमारा **अविता**=रक्षक हो। इन्द्रियों को पवित्र बनाकर यह हमारा रक्षण करे। यह **यामनि यामनि**=जीवन की प्रत्येक मंजिल में **पूषा**=हमारा पोषण करता है। ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ व संन्यास रूप सभी प्रमाणों में यह हमारा पोषक होता है। (२) यह सोम **नः**=हमें **कन्यासु**=(कन् दीप्तौ) सब दीप्तियों में 'शरीर को तेजस्विता, मन की निर्मलता व बुद्धि की दीप्ति में **आभक्षत्**=भागी बनाये (आभजताम् सा०)।

भावार्थ—सोम (क) इन्द्रियाश्वों को गतिशील निर्मल बनाकर हमारा रक्षण करता है, (ख) सब जीवन के प्रमाणों में पोषक होता है, (ग) सब दीप्तियों में भागी बनाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः पूषा वा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आभक्षत् कन्यासु नः

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ११ ॥

(१) 'कपर्दी' शब्द का अर्थ है 'कस्य परा (पूरणेन) दायति'=मस्तिष्क के पूरण से जो अपना शोधन करता है, मस्तिष्क को ज्ञान से परिपूर्ण करता हुआ जीवन को जो शुद्ध बनाता है, उस **कपर्दिने**=कपर्दी के लिये **अयं सोमः**=यह सोम **घृतं न**=घृत के समान **मधु पवते**=मधु को भी प्राप्त कराता है। सुरक्षित सोम ज्ञानदीप्ति (घृ दीप्तौ) का कारण बनता है और जीवन में माधुर्य को भर देता है। (२) इस प्रकार यह सोम **नः**=हमें **कन्यासु**=सब दीप्तियों में **आभक्षत्**=भागी बनाये।

भावार्थ—ज्ञान को ही अपना ध्येय बना लेने पर हम सोम का रक्षण कर पाते हैं। यह हमें ज्ञान दीप्ति व माधुर्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः पूषा वा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दीप्ति व पवित्रता

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १२ ॥

(१) हे **आघृणे**=ज्ञानदीप्ति से सर्वतः दीप्तिमन् पुरुष! **अयम्**=यह सोम **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **घृतं न**=घृत के समान, ज्ञानदीप्ति के समान **शुचि**=पवित्रता को करता हुआ **पवते**=तेरे में गतिवाला होता है। तुझे ज्ञानदीप्त करता है और पवित्र बनाता है। (२) यह सोम **नः**=हमें **कन्यासु**=सब दीप्तियों में **आभक्षत्**=भागी बनाये।

भावार्थ—स्वाध्याय में लगे रहने से सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम हमें दीप्ति व पवित्रता को प्राप्त कराता है। दीप्ति व पवित्रता को प्राप्त करके यह 'विश्वामित्र' सबके प्रति स्नेहवाला बनता है और इस प्रकार सोम का स्तवन करता है—

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाचो जन्तु-रत्नधा

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया। देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **कवीनाम्** ... मेधावी पुरुषों की **वाचः**=ज्ञानवाणियों

का **जन्तुः**=जन्म देनेवाला है, तू ही उन्हें ज्ञान प्राप्त कराता है। हे सोम! तू **धारया**=अपनी धारणशक्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। (२) हे सोम! तू ही **देवेषु**=दिव्य गुणवाले पुरुषों में **रत्नधा असि**=सब रमणीयताओं का धारण करनेवाला है। सब रत्नों को यह सोम ही जन्म देता है।

भावार्थ—यह सोम शरीर में सुरक्षित होकर ज्ञान की वाणियों को जन्म देना है तथा सब रत्नों का हमारे में धारण करता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'श्येनो वर्म विगाहते'

आ कुलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते। अभि द्रोणा कनिक्रदत्॥ १४॥

(१) यह सोम **कलशेषु**=इन शरीर रूप कलशों में (सोलह कलाओं के निवास के स्थानों में) **आधावति**=समन्तात् गतिवाला होकर शुद्धि को करता है (धाव् गतिशुद्ध्योः)। (२) **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला यह सोम **वर्म विगाहते**=(ब्रह्म वर्म ममान्तरम्) ब्रह्मरूप कवच का अवगाहन करता है, अर्थात् यह सोम हमें उस प्रभु का दर्शन कराता है, जो हमारे कवच के रूप में हैं। (२) यह सोम **द्रोणा अभि**=इन शरीर रूप द्रोण पात्रों की ओर प्राप्त होता हुआ **कनिक्रदत्**=प्रभु का स्तवन करता है। अथवा प्रभु-स्तवन करता हुआ इन पात्रों को प्राप्त होता है। प्रभु-स्तवन ही सोमरक्षण का साधन बनता है।

भावार्थ—सोम हमें शुद्ध करता है, प्रभु को प्राप्त कराता है, हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

कलशे सुतः

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कुलशे सुतः। श्येनो न तुक्तो अर्षति॥ १५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **ते रसः**=तेरा रस **परि असर्जि**=शरीर में सर्वतः सृष्ट होता है। यह सोम रस **कलशे**=इस सोलह कलाओं के निवास स्थान भूत शरीर में ही **सुतः**=उत्पन्न होता है। (२) इस में उत्पन्न हुआ-हुआ यह रस **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान **तक्तः**=शरीर में गतिवाला होता हुआ **अर्षति**=हमें प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस सोम के द्वारा ही यह शरीर 'कलश' बनता है, सब कलाओं का आधार बनता है। यही हमें शंसनीय गतिवाला बनाता है।

इससे शरीर व शरीरस्थ वैश्वानर अग्नि ठीक बनी रहती है, सो सोमरक्षक 'जमदग्नि' बनता है। यह जमदग्नि कहता है—

ऋषिः—**जमदग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिगार्चीविराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मन्दयन्-मधुमत्तमः

पर्वस्व सोम मुदयन्निन्द्राय मधुमत्तमः॥ १६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **मन्दयन्**=हमें आनन्दित करता हुआ अथवा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनाता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो। (२) तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मधुमत्तमः**=अतिशयेन माधुर्य को पैदा करनेवाला है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को आनन्दमय व मधुर बनाता है।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिगार्चीविराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

देववीतये

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथाइव॥ १७॥

(१) ये सोम **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये **असृग्रन्**=उत्पन्न किये गये हैं। इनके रक्षण से सब दिव्यगुणों का विकास होता है। (२) ये सोम **वाजयन्तः**=संग्रामों को करते हुए **रथाः इव**=रथों के समान हैं। जैसे रथ संग्राम-विजय के साधन बनते हैं, इसी प्रकार ये सोम हमें जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं। ये हमें शक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं (वाजयन्तः)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम दिव्यगुणों को जन्म देते हैं और संग्राम में हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**जमदग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिगार्चीविराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मदिन्तमाः

ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत॥ १८॥

(१) **ते**=वे **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम **मदिन्तमाः**=हमें अतिशयेन आनन्दित करनेवाले हैं। (२) **शुक्राः**=हमें शुचि व दीप्त बनानेवाले ये सोम **वायुम्**=गति के द्वारा सब बुराइयों को नष्ट करनेवाले को **असृक्षत**=उत्पन्न करते हैं। हमें ये गतिशील व निर्मल बनाते हैं।

भावार्थ—सोम हमें आनन्दित करनेवाले व गतिशील बनानेवाले हैं।

यह सोमरक्षक पुरुष अतिशयेन उत्तम निवासवाला 'वसिष्ठ' बनता है, और कहता है कि—

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तुन्नः अभिष्टुतः

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥ १९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **ग्राव्णा**=स्तोता से **तुन्नः** (guided=प्रेरित)=प्रेरित किया गया, शरीर के अन्दर ही व्याप्त किया गया तथा **अभिष्टुतः**=प्रातः-सायं स्तुति किया गया तू **पवित्रम्**=इस पवित्र हृदयवाले पुरुष को, इस स्तोता को **गच्छसि**=प्राप्त होता है। (२) इस स्तोता को प्राप्त होने पर **स्तोत्रे**=इस स्तोता के लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **दधत्**=तू धारण करता है। सोम का स्तवन करने से सोम के गुणों का सतत स्मरण होता है इस स्तवन से सोमरक्षण में नीति उत्पन्न होती है। हमारी सब क्रियायें सोमरक्षण के उद्देश्य से होती हैं। सुरक्षित सोम हमारी शक्ति का वर्धन करता है।

भावार्थ—सोम का स्तवन करनेवाला व्यक्ति सोम को शरीर में प्रेरित करता हुआ शक्ति-सम्पन्न बनता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रक्षोहा

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते। रक्षोहा वारमव्ययम्॥ २०॥

(१) **एषः**=यह सोम **तुन्नः**=प्राणायामादि द्वारा शरीर के अन्दर प्रेरित हुआ-हुआ **अभिष्टुतः**=प्रातः-सायं स्तुत होता हुआ **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **अतिगाहते**=अतिशयेन आलोडित

करता है, पवित्र हृदय वाले पुरुष में व्याप्त होता है। (२) यह **वारम्**=सब वासनाओं का निवारण करनेवाले व **अव्ययम्**=विविध विषय-वासनाओं में न जानेवाले पुरुष को प्राप्त होता है और **रक्षोहा**=सब रोगकृमिरूप राक्षसों का तथा राक्षसीभावों का (=आसुरी वृत्तियों का) विनष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ—शरीर में व्याप्त सोम सब रोगकृमिरूप राक्षसों व काम आदि आसुरभावों का विनाशक है।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

इहलोक व परलोक सम्बद्धभय का विनाश

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वि तज्जहि॥ २१॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **यद्**=जो **अन्ति**=इस समीपस्थ लोक-विषयक 'शरीर रोग' आदि का **भयम्**=भय **माम्**=मुझे **इह**=इस जीवन में **विन्दति**=प्राप्त होता है, तू **तत्**=उसे **विजहि**=विनष्ट कर। गत मन्त्र के अनुसार तू 'रक्षोहा' है, इस रोगकृमि रूप राक्षसों को तू विनष्ट कर। (२) **यत् च**=और जो **दूरके**=दूरके, परलोक के विषय में भय मुझे प्राप्त होता है, उस 'काम-क्रोध-लोभ' से आक्रान्त होने के कारण परत्र अशुभ गति के भय को भी तू ही नष्ट कर। काम, क्रोध, लोभ आदि राक्षसीभावों का भी विनाशक तू ही है।

भावार्थ—रोगकृमियों को नष्ट करके सोम ऐहिक भय को समाप्त करता है और काम-क्रोध-लोभ को समाप्त करके आमुष्यिक भय को दूर करता है। सोमरक्षण से उभयलोक का कल्याण होता है।

एवं शरीर मन में पवित्र बना हुआ यह 'पवित्र' कहता है कि—

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'पवित्रता का सम्पादक' सोम

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु नः॥ २२॥

(१) **विचर्षणिः**=विशिष्ट द्रष्टा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें वस्तुतत्त्व का द्रष्टा बनानेवाला **सः**=वह सोम **अद्य**=आज **नः**=हमें **पवित्रेण**=पवित्र हृदय से **पवमानः**=पवित्र करनेवाला हो। पवित्र हृदय को प्राप्त कराके यह हमें पवित्र कर डाले। (२) वह सोम **यः**=जो **पोता**=हमें पवित्र करनेवाला है **सः**=वह **नः**=हमें **पुनातु**=पवित्र करे। सोम शरीर के रोगों को नष्ट करके शरीर शुद्धि का जनक होता है। काम, क्रोध, लोभ आदि को नष्ट करके मानस शुद्धि का कारण बनता है। बुद्धि की मन्दता को दूर करके बुद्धि को भी निर्मल कर डालता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को रोग, क्रोध व बुद्धिमान्द्य आदि मलिनताओं से दूर करे।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अग्नि द्वारा पवित्रीकरण

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः॥ २३॥

(१) हे **अग्ने**=हमें आगे ले चलनेवाले प्रभो! **यत्**=जो **ते**=तेरा **अर्चिषि अन्तरा**=ज्ञान-ज्वालाओं में **विततम्**=फैला हुआ प्रकाश है वह **पवित्रम्**=हमें पवित्र करनेवाला है। (२) यह पवित्र करनेवाला प्रकाश ही **ब्रह्म**=वृद्धि का साधनभूत वेदज्ञान है (बृहि वृद्धौ, 'ब्रह्मवेदः')। **तेन**=उस ज्ञान के द्वारा **नः पुनीहि**=हमें पवित्र कर।

भावार्थ—प्रभु अपने ज्ञान के प्रकाश से हमारे जीवन को पवित्र करें।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ज्ञान व यज्ञों' द्वारा पवित्रता

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वितंतमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः॥ २३॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिवदग्ने॒ तेन॑ पुनीहि नः। ब्र॒ह्म॒स॒वैः पु॑नीहि नः॥ २४॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यत्**=जो **ते**=तेरा **अर्चिवत्**=आकाश की ज्वालावाला अथवा 'अर्च पूजायाम्' पूजा की वृत्ति से युक्त **पवित्रम्**=जीवन को पवित्र बनानेवाला **ब्रह्म**=ज्ञान है, **तेन**=उस पवित्र ज्ञान से **नः**=हमें **पुनीहि**=पवित्र करिये। (२) हे अग्ने! इस वेदज्ञान द्वारा उपदिष्ट **सवैः**=यज्ञों से **नः**=हमें **पुनीहि**=पवित्र करिये। वेदोपदिष्ट यज्ञों को करते हुए हम पवित्र जीवनवाले बनें।

भावार्थ—ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को प्राप्त करें। कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले यज्ञों में प्रवृत्त हों। इस प्रकार हमारा जीवन 'ज्ञान व यज्ञ' के द्वारा पवित्र हो जाये।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**अग्निः सविता वा**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान-यज्ञ

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च। मां पु॑नीहि वि॒श्वतः॑॥ २५॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **सवितः**=प्रेरक प्रभो! आप **पवित्रेण**=जीवन को पवित्र करनेवाले इस ज्ञान से **च**=तथा **सवेन**=वेदोपदिष्ट यज्ञों से **उभाभ्याम्**=ज्ञान व यज्ञ दोनों से **माम्**=मुझे **विश्वतः**=सब दृष्टियों से **पुनीहि**=पवित्र करिये। (२) अकेला ज्ञान व अकेले यज्ञ हमारे जीवनों को पवित्र नहीं कर पाते। यज्ञ रहित ज्ञान व्यर्थ-सा होता है, यह पवित्रता के स्थान में अहंकार का कारण बन जाता है। तथा ज्ञान रहित यज्ञ अत्यन्त अपवित्र व विकृत हो जाते हैं, वे यज्ञ ही नहीं रहते। 'यज्ञ' ज्ञान को सार्थक करते हैं, ज्ञान यज्ञों को पवित्र करता है। ये दोनों मिलकर हमारे जीवनों को सर्वथा पवित्र करते हैं।

भावार्थ—ज्ञान व यज्ञों के समन्वय से हमारा जीवन सर्वतः पवित्र हो।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**अग्निरग्निर्वा सविता च**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

त्रिभिः धामभिः

त्रि॒भिष्ट्वं दे॑व सवित॒र्वर्षि॑ष्ठैः सोम॒ धाम॑भिः। अग्ने॒ दक्षैः॑ पुनीहि नः॥ २६॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **सवितः**=प्रेरक प्रभो! **त्वम्**=आप **त्रिभिः**=तीनों **वर्षिष्ठैः**=अत्यन्त वृद्धतम (बढ़े हुए) **सोमधामभिः**=सोम (वीर्यशक्ति) से जनित तेजों से **नः**=हमें **पुनीहि**=पवित्र करिये। सोमरक्षण से शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ तेज व वीर्य शरीर को नीरोग बनाता है। मन में उत्पन्न हुआ-हुआ ओज व बल हृदय को पवित्र करता है और बुद्धि में उत्पन्न हुआ-हुआ ज्ञान उसे प्रकाशमय बनाता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **दक्षैः**=शरीर, मन व बुद्धि के बलों से (नः पुनीहि) हमें पवित्र जीवनवाला बनाइये।

भावार्थ—प्रभु कृपा से सोमरक्षण के द्वारा हमें शरीर, मन व बुद्धि का बल प्राप्त हो, इससे हमारा जीवन पवित्र बने।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**अग्निर्विश्वे देवा वा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

चारों आश्रमों की पवित्रता

पुनन्तु मां दे॑वज॒नाः पु॒नन्तु॒ वस॑वो धि॒या। विश्वे॑ देवाः पुनी॒त मा॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा॥ २७॥

(१) जीवन के प्रथमाश्रम में **देवजनाः**=माता, पिता व आचार्य रूप देवजन (मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव) **मा**=मुझे **पुनन्तु**=पवित्र करें। माता मेरे चरित्र का निर्माण करे, पिता शिष्टाचार को मुझे सिखाये तथा आचार्य मुझे ज्ञान का भोजन ग्रहण करायें। (२) अब गृहस्थ में **वसवः**=गार्हस्थ्य जीवन में निवास को उत्तम बनानेवाले (वासयन्ति इति वसवः) समय-समय पर उपस्थित होनेवाले अतिथिजन **धिया**=ज्ञानपूर्वक कर्मों के द्वारा **पुनन्तु**=हमें पवित्र करें। 'अतिथि देवो भव' ये विद्वान् अतिथि हमारे लिये देवतुल्य हों, और इनकी समय-समय पर प्राप्त होनेवाली प्रेरणा के अनुसार कर्म करते हुए हम पवित्र जीवनोंवाले बनें। (३) जीवन के तृतीय आश्रम में **विश्वे देवाः**=हे देववृत्ति के पुरुषो! **मा**=मुझे **पुनीत**=पवित्र करो। वानप्रस्थ में मेरा सान्निध्य सब देववृत्ति के पुरुषों से हो। उनके साथ निरन्तर होनेवाली ज्ञानचर्चा मेरे जीवन को पवित्र बनाये। (३) अन्ततः संन्यास में, एकाकी विचरण के नियमवाले इस तुरीयाश्रम में, हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **मा पुनीहि**=आप मुझे पवित्र करिये मैं सदा आपका स्मरण करूँ और पवित्र जीवनवाला बना रहूँ।

भावार्थ—प्रथमाश्रम में देवजन, द्वितीयाश्रम में वसु, तृतीय में विश्वेदेव व तुरीय में सर्वज्ञ प्रभु मेरे जीवन को पवित्र बनायें।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्ज**॥

विश्वेभिः अंशुभिः

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्यं उत्तमं हविः॥ २८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **प्रप्यायस्व**=हमारा तू सब प्रकार से उत्कृष्ट वर्धन कर। तू **विश्वेभिः**=सब **अंशुभिः**=ज्ञान की रश्मियों के द्वारा **प्रस्वन्दस्व**=हमारे शरीरों में प्रकर्षेण गतिवाला हो। (२) **देवेभ्यः**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये तू **उत्तमं हविः**=सर्वोत्तम आदान करने योग्य वस्तु है (हु आदाने, हु दानादानयोः)। पवित्र वस्तु को 'हवि' या 'हव्य पदार्थ' कहते हैं। सोम सर्वोत्तम हवि है। इसके रक्षण से दिव्यगुणों का वर्धन होता है।

भावार्थ—सोम हमारा वर्धन करे। प्रकाश की किरणों के साथ हमें प्राप्त हो। यह सोम दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्ज**॥

प्रभु के समीप उपस्थित होना

उपं प्रियं पनिंप्नतं युवांनमाहुतीवृधम्। अगंन्म बिभ्रंतो नमः॥ २९॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित सोम के रक्षण के लिये **नमः बिभ्रतः**=नमन को धारण करते हुए हम **उप अगन्म**=समीपता से, उपासक के रूप में प्राप्त हों। सदा प्रातः-सायं मन में नम्रता को धारण करते हुए प्रभु की उपासना करें। यह उपासना ही हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनायेगी, (२) उस प्रभु का हम उपासन करें जो **प्रियम्**=हमारी प्रीति का कारण बनते हैं, प्रभु के प्रकाश को हृदय में देखते हुए एक अद्भुत ही आनन्द का हम अनुभव करते हैं। **पनिप्नतम्**=(पन स्तुतौ) वे प्रभु खूब ही स्तुति के योग्य हैं। शब्द प्रभु की स्तुति को सीमित नहीं कर पाते, प्रभु की महिमा वर्णनातीत है, वाचाम् अगोचर है। **युवानम्**=वे प्रभु हमारी सब बुराइयों को हमारे से दूर करके सब अच्छाइयों को हमारे से मिलानेवाले हैं (यु मिश्रणामिश्रणयोः)। **आहुतीवृधम्**=वे प्रभु हमारे जीवनों में आहुति-त्यागवृत्ति को बढ़ानेवाले हैं। स्वयं हविरूप होते हुए वे हमें भी हविर्मय बनने की प्रेरणा देते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें प्रीति को प्राप्त करायेंगे, हमारी बुराइयों को दूर करेंगे, हमारे जीवनों में त्यागभावनाओं को बढ़ायेंगे।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**परउष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

'आखु' को प्रभु प्राप्ति

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम। आखुं चिदेव देव सोम॥ ३०॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु की उपासना करने पर **अलाय्यस्य**=(an assailing enemy) आक्रमण करनेवाले शत्रु का **परशुः**=कुठार **ननाश**=नष्ट हो जाये। जब हम प्रभु की उपासना करते हैं, तो आक्रमण करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं की टक्कर हृदयस्थ प्रभु से ही होती है। प्रभु से टकराकर ये नष्ट हो जाते हैं। इनके अस्त्र प्रभु पर टकराकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हे **देव**=प्रकाशमय **सोम**=शान्त प्रभो! **तम्**=उस अपने उपासक को **आपवस्व**=सर्वथा पवित्र जीवनवाला बनाइये। (२) हे **देव सोम**=प्रकाशमय शान्त प्रभो! आप **आखुं चित् एव**=इस (आ खनति) विषय वासनाओं को उखाड़ देनेवाले इस व्यक्ति को ही निश्चय से प्राप्त होते हैं। विषय वासनाओं से शून्य हृदय वह आसन होता है, जो प्रभु के आसीन होने के लिये उपयुक्ततम है।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हैं, तो हमारे शत्रुओं के अस्त्र कुण्ठित हो जाते हैं। हम 'आखु' बन पाते हैं।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमान्यध्येतृस्तुतिः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'पवित्र भोजन व प्राणायाम' द्वारा रोमरक्षण

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ ३१॥

(१) **यः**=जो व्यक्ति **पावमानीः**=इन पवमान (सोम) विषयक ऋचाओं को **अध्येति**=पढ़ता है व स्मरण करता है, वह जानता है कि ये ऋचायें तो **ऋषिभिः**=ऋषियों से, तत्त्वद्रष्टा पुरुषों से **संभृतं रसं**=धारण किया गया वेद का सार है। ऋचाओं द्वारा सर्वोत्तम उपदेश इन पावमानी ऋचाओं में ही दिया गया है। (२) **सः**=यह व्यक्ति इन ऋचाओं में सोम के महत्त्व को पढ़ करके **सर्वं पूतं अश्नाति**=सब पवित्र भोजन को ही खाता है। सदा सात्त्विक भोजन करता हुआ यह सोम का रक्षण करनेवाला होता है। यह उस भोजन को खाता है जो **मातरिश्वना स्वदितम्**=वायु के द्वारा स्वादवाला बना दिया गया है। प्राणायाम से जाठराग्नि का वर्धन होता है, प्राणायाम से युक्त जाठराग्नि ही भोजन का ठीक से पाचन करती है। एवं, यह भोजन प्राणरूप वायु से ही स्वदित होता है। प्राणायाम शरीर में सोमशक्ति की ऊर्ध्वगति का कारण बनता है।

भावार्थ—हम सोम देवता की इन ऋचाओं को पढ़ें। सोम के महत्त्व को समझें। सोमरक्षण के लिये पवित्र सात्त्विक भोजन करें व प्राणायाम करें।

ऋषिः—**पवित्र वसिष्ठो वोभौ वा**॥ देवता—**पवमान्यध्येतृस्तुतिः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्'

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ ३२॥

(१) **यः**=जो **पावमानीः**=जीवन को पवित्र बनानेवाली इन ऋचाओं को **अध्येति**=स्मरण करता है, वह जानता है कि **ऋषिभिः**=तत्त्वद्रष्टाओं से **संभृतं रसम्**=धारण किया गया यह वेद

का सार है। (२) इस को सदा स्मरण करनेवाले, इसको जीवन में अनूदित करनेवाले **तस्मै**=उस ज्ञानी पुरुष के लिये **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता **क्षीरम्**=क्षीर-दूध, **सर्पिः**=घृत, **मधु**=शहद व **उदकम्**=जल को **दुहे**=प्रपूरित करती है। उसे दूध, घी, शहद व जल की कमी नहीं रहती। वह ऐसे ही सात्त्विक पदार्थों का प्रयोग करता है। इन सात्त्विक पदार्थों का प्रयोग करता हुआ वह पवमान सोम का अपने में रक्षण करता है।

भावार्थ—सोम के महत्त्व को समझकर, सोमरक्षण करनेवाला पुरुष क्षीर, मधु व उदक आदि सात्त्विक पदार्थों का ही प्रयोग करता है।

यह सोमरक्षक पुरुष प्रभु के नामों का उच्चारण करता है (वदति इति वत्सः) प्रभु का 'वत्स' होता है। अपने सत्कर्मों से प्रभु को प्रीणित करनेवाला 'प्री' है, 'वत्सप्री'। यह **भालम्**=प्रकाश को **दनः**=(दानमनसः नि० ६।१२) देने की कामनावाला 'भालन्दन' है। सोमरक्षण से दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनकर प्रकाश को प्राप्त करता है। और उसी प्रकाश को सर्वत्र देने की कामना करता है—

चतुर्थोऽनुवाकः

[६८.] अष्टषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

वेदवाणी रूप गौ का दोहन

प्र दे॒वमच्छा॒ मधु॑मन्त॒ इन्द॒वोऽसि॑ष्यदन्त॒ गाव॒ आ न धे॒नवः॑।
ब॒र्हि॒षदो॑ वच॒नाव॑न्त॒ ऊध॑भिः परि॒स्रुत॑मु॒स्रिया॑ नि॒र्णिजं॑ धिरे॥ १॥

(१) **मधुमन्तः**=अपने अन्दर माधुर्य को लिये हुए, अपने रक्षक के जीवन को मधुर बनाते हुए, **इन्दवः**=सोमकण **देवं अच्छा**=उस महान् देव प्रभु की ओर **असिष्यदन्त**=गतिवाले होते हैं। ये सोमकण हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं। उसी प्रकार, **न**=जैसे कि **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध से प्रीणित करनेवाली **गावः**=ये वेदवाणी रूप गौवें हमें प्रभु की ओर ले चलती हैं। वस्तुतः प्रभु प्राप्ति के मुख्य साधन यही हैं (क) सोमरक्षण, (ख) वेदवाणियों का उपासन। (२) इसलिए **बर्हिषदः**=वासनाशून्य निर्मल हृदय में आसीन होनेवाले **वचनावन्तः**=प्रभु की प्रशस्त स्तुति वाणियोंवाले लोग **उस्रियाः**=ज्ञानदुग्धदात्री वेदवाणी रूप गौवों से **उधभिः परिस्रुतम्**=ऊधस् से परिस्रुत **निर्णिजम्**=जीवन के शोधक ज्ञानदुग्ध को **धिरे**=अपने में धारण करते हैं। 'गां पयो दोग्धि' की तरह यह द्विकर्मक वाक्य है 'उस्रिया निर्णिजं धिरे'। वेदवाणी गौ से ज्ञानदुग्ध को दोहते हैं। यह ज्ञानदुग्ध शुद्ध करनेवाला है, सो 'निर्णिक्' कहलाया है।

भावार्थ—हम सोमरक्षण करें। सोम द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके वेदवाणी रूप गौ से ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

स्तवन व स्वाध्याय द्वारा सोमरक्षण

स रोरु॑वद॒भि पूर्वा॑ अचिक्रददु॒पा॒रुहः॑ श्र॒थय॑न्त्स्वादते॒ हरिः॑।
ति॒रः प॒वित्रं॑ परि॒यन्नु॒रु ज्रयो॒ नि शर्या॑णि दधते दे॒व आ वर॑म्॥ २॥

(१) **सः**=वह सोमरक्षक पुरुष **रोरुवत्**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करता है।

पूर्वाः=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली इन वेदवाणियों का **अभि अचिक्रदत्**=आभिमुख्येन आह्वान करता है, उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। प्रभु-स्तवन व स्वाध्याय द्वारा सोमरक्षण करनेवाले इस व्यक्ति के लिये **हरिः**=यह दुःखों का हरण करनेवाला सोम **उपारुहः**=हमारे पर आरुढ़ हो जानेवाले आसुरभावों को **श्रथयन्**=ढीला करता हुआ **स्वादते**=हमारे जीवनों को मधुर बनाता है। (२) **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **तिरः परियन्**=तिरोहितरूप में रुधिर के साथ चारों ओर प्राप्त होता हुआ, **उरुज्रयः**=महान् विजयी बलवाला (ज्रि To overcome) **शर्याणि**=हिंसितव्यभावों को **निदधते**=नीचे धारण करता है, (न्यङ्क्रोति हिमस्ति सा०) पाँव तले कुचलता है। और **देवः**=यह प्रकाशमय सोम **वरम्**=वरणीय श्रेष्ठभावों को **आदधते**=समन्तात् धारण करता है।

भावार्थ—जब स्तवन व स्वाध्याय से हम सोमरक्षण करते हैं, यह हमारे जीवनों को मधुर बनाता है, हमारे दुर्भावों को दूर करता है, और शुभभावों को सर्वतः विस्तृत करता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अक्षीण शक्तिवाले 'मस्तिष्क व शरीर'

वि यो म॒मे य॒म्या॑ सं॒यती॒ मदः॑ साकं॒वृधा॒ पय॑सा पिन्व॒दक्षि॑ता।
म॒ही अ॑पा॒रे रज॑सी वि॒वेवि॑दद॒भिव्र॒जन्नक्षि॑तं॒ पाज॒ आ द॑दे ॥ ३ ॥

(१) **यः**=जो **मदः**=उल्लास का जनक सोम **यम्या**=युगलभूत **संयती**=(संगच्छमाने) मिलकर चलनेवाले, **साकंवृधा**=साथ-साथ वृद्धि को प्राप्त होनेवाले द्युलोक व पृथिवीलोक को, मस्तिष्क व शरीर को **विममे**=बनाता है। इन्हें **पयसा**=अपने रस से **पिन्वत्**=सींचता है, और इस प्रकार **अक्षिता**=न क्षीण हुए-हुए **मही**=अत्यन्त महत्त्ववाले **अपारे**=अद्भुत शक्तिवाले **रजसा**=द्यावापृथिवी को **विवेविदत्**=हमारे लिये प्राप्त कराता है। (२) **अभिव्रजन्**=शरीर में चारों ओर गति करता हुआ सोम **अक्षितम्**=न क्षीण होनेवाले **पाजः**=बल को **आददे**=स्वीकार करता है। अर्थात् हमारे में यह अक्षीण बल को धारण करता है। सोम से हमारी शक्ति बनी रहती है और जीवन नष्ट नहीं होता।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को अक्षीण शक्ति बनाये रखता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अंशुः यवेन पिपिशे

स मा॒तरा॑ वि॒चर॑न्वा॒जय॑न्न॒पः प्र मेधि॑रः स्व॒धया॑ पिन्वते प॒दम्।
अं॒शुर्यवे॑न पिपिशे य॒तो नृभि॒ः सं जा॒मिभि॒र्नस॑ते॒ रक्ष॑ते॒ शिरः॑ ॥ ४ ॥

(१) **सः**=वह सोम **मातरा**=द्युलोक व पृथिवीलोक में, मस्तिष्क व शरीर में **विचरन्**=गति करता हुआ तथा **अपः**=अन्तरिक्षलोक को (नि० १।३) **वाजयन्**=सबल करता हुआ, हृदय को सबल बनाता हुआ, **मेधिरः**=प्रकृष्ट बुद्धिवाला होता हुआ **स्वधया**=आत्मधारणशक्ति के द्वारा **पदम्**=उस प्राप्त करने योग्य प्रभु को **प्रपिन्वते**=हमारे में बढ़ाता है। सुरक्षित सोम शरीर को सशक्त, मस्तिष्क को दीप्त ज्ञानाग्निवाला तथा हृदय को सबल बनाता है। हमें बुद्धिमान् बनाकर प्रभु प्राप्ति के योग्य करता है। (२) **अंशुः**=प्रकाश की किरणोंवाला यह सोम **यवेन**=बुराइयों के अमिश्रण व अच्छाइयों के मिश्रण से **पिपिशे**=जीवन को अलंकृत कर देता है (To adore)। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से **यतः**=काबू किया हुआ यह सोम **जामिभिः**=सद्गुणों के विकास से

संनसते=सम्यक् गतिवाला होता है और **शिरः रक्षते**=मस्तिष्क का रक्षण करता है। सोमरक्षण से मस्तिष्क का उत्तम रक्षण होता है। वस्तुतः ज्ञानाग्नि का एक मात्र ईंधन सोम ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर, मस्तिष्क व हृदय तीनों को ही सुन्दर बनाता है। यह सब बुराइयों को दूर करके जीवन को सजा देता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दक्ष मन

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥

(१) **कविः**=यह क्रान्तदर्शी सोम हमें क्रान्तप्रज्ञ बनानेवाला सोम **दक्षेण मनसा**=कार्यों को कुशलता से करनेवाले मन से **जायते**=हमारे में प्रादुर्भूत होता है। सुरक्षित सोम हमें 'क्रान्तप्रज्ञ व दक्ष मन वाला' बनाता है। यह सोम **ऋतस्य गर्भः**=ऋत का ग्रहण करनेवाला होता है। **यमा निहितः**=संयम के द्वारा शरीर में स्थापित हुआ-हुआ **परः**=अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। (२) इस सोम के सुरक्षित होने पर **प्रथमम्**=पहले **ह**=निश्चय से **यूना सन्ता**=मस्तिष्क और शरीर सदा युवा से होते हुए, अक्षीण शक्तिवाले होते हुए, न जीर्ण होते हुए **विजज्ञतुः**=प्रकट होते हैं। और फिर **गुहा हितम्**=बुद्धि रूप गुहा में स्थापित **जनिम**=ज्ञान का प्रादुर्भाव **नेमं उद्यतम्**=(In parts) कुछ-कुछ उद्यत होता है। अर्थात् सोमरक्षण से अन्तर्ज्ञान प्रादुर्भूत होने लगता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से बुद्धि का विकास होता है, मन की दक्षता प्राप्त होती है, जीवन ऋतमय बनता है। मस्तिष्क व शरीर अच्छे बनते हैं। हृदय में अन्तर्ज्ञान का प्रादुर्भाव होने लगता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सोम का स्तुति द्वारा शोधन

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥ ६ ॥

(१) **मनीषिणः**=ज्ञानी पुरुष **मन्द्रस्य**=आनन्दकर सोम के **रूपम्**=रूप को **विविदुः**=जानते हैं। मनीषी समझते हैं कि किस प्रकार यह सोम आह्लाद का जनक है। **यद् अन्धः**=यह जो सोम है, इसे **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला पुरुष **परावतः**=सुदूर द्युलोक के हेतु से, मस्तिष्क के हेतु से **अभरत्**=अपने में धारण करता है। इस के रक्षण से ही तो मस्तिष्क का पोषण होता है। (२) **तम्**=उस **सुवृधम्**=उत्तम वृद्धि के कारणभूत **अंशुम्**=सोम को **नदीषु**=स्तुतियों में (नद=स्तोता) **अमर्जयन्त**=सर्वथा शुद्ध करते हैं। स्तुति के द्वारा उस सोम का शोधन करते हैं, जो **उशन्तम्**=हमारे लिये दिव्यगुणों की कामनावाला होता है, हमारे में दिव्यगुणों का वर्धन करता है। **परियन्तम्**=शरीर में रुधिर के साथ चारों ओर गतिवाला होता है। **ऋग्मियम्**=स्तुति के योग्य होता है, अथवा हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—मनीषी लोग स्तुति द्वारा सोम को परिशुद्ध करते हैं। यह उनमें दिव्यगुणों का वर्धन करता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् (स्वाध्याय-स्तुति-यज्ञ)

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥

(१) हे **सोम**=शरीर में 'रस, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मेदस् व वीर्य' इस क्रम से सप्तम स्थान में उत्पन्न हुए-हुए सोम! **त्वाम्**=तुझे **दश**=दस **योषणः**=बुराइयों से पृथक् करनेवाली, अच्छाइयों से संयुक्त करनेवाली चित्तवृत्तियाँ **मृजन्ति**=शुद्ध करती हैं। इन्द्रियों की संख्या दस है। उनके साथ सम्बद्ध चित्तवृत्तियों को भी यहाँ दस कहा गया है। ये शुद्ध होती हैं, तो सोम शुद्ध बना रहता है। यह सोम **ऋषिभिः**=(ऋषिर्वेदा) ज्ञान की वाणियों से, **मतिभिः**=मननपूर्वक होनेवाली स्तुतियों से तथा **धीतिभिः**=धारणात्मक कर्मों से **हितम्**=शरीर में स्थापित किया गया है। मस्तिष्क ज्ञानवाणियों से पूर्ण हो, मन स्तुति में लगा हो तथा शरीर धारणात्मक कर्मों में लगा हो तो वासनाओं का आक्रमण न होने से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। (२) हे सोम! तू **अव्यः**=रक्षकों में उत्तम है। **वारेभिः**=वासनाओं का निवारण करनेवाले, **उत**=और **देवहूतिभिः**=उपासना में उस महान् देव को पुकारनेवाले **नृभिः**=मनुष्यों से **यतः**=शरीर में संयत हुआ-हुआ तू **वाजम्**=बल को **आदर्षि**=सर्वथा प्राप्त कराता है और **सातये**=हमारे लिये प्रभु प्राप्ति के लिये होता है। हमें तू प्रभु के सम्भजन की वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सोमरक्षण के लिये 'स्वाध्याय, स्तवन व यज्ञ' सहायक होते हैं। सुरक्षित सोम हमें शक्ति देता है और प्रभु-प्रणव करता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

रयिषाट् अमर्त्यः

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥ ८ ॥

(१) **मनीषाः**=(मनीषा अस्य अस्ति इति मनीषः) मन की शासिका बुद्धिवाले **स्तुभः**=स्तोता लोग **सोमम्**=सोम को **अभ्यनूषत**=प्रातः-सायं स्तुत करते हैं। सोम के स्तवन से, सोम के गुणों के स्मरण से, सोमरक्षण की प्रवृत्ति उनमें और अधिक उत्पन्न होती है। उस सोम को स्तुत करते हैं, जो **परिप्रयन्तम्**=शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है, **वय्यम्**=कर्मतन्तु का सन्तान करनेवाला होता है, इस सोम के रक्षण से शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न होती है, **सुषंसदम्**=उत्तम संस्थानवाला होता है, सोमरक्षण से अंग-प्रत्यंग की स्थिति ठीक होती है। (२) **यः**=जो सोम **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **मधुमान्**=माधुर्यवाला है। **ऊर्मिणा**=अपनी लहरों द्वारा अथवा (light) प्रकाश के द्वारा **दिवः वाचं इयर्ति**=प्रकाश की वाणी को हमारे में प्रेरित करता है, मस्तिष्क को उज्ज्वल बनाता है। **रयिषाड्**=सब धनों का विजेता है और **अमर्त्यः**=हमें असमय मरने नहीं देता, पूर्ण आयुष्य का कारण बनता है।

भावार्थ—स्वाध्याय व स्तुति से रक्षित सोम जीवन को मधुर बनाता है, ज्ञान की वाणियों को हमारे में प्रेरित करता है, पूर्ण जीवन को देता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अद्भिः गोभिः अद्रिभिः

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुत पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम्॥ ९॥

(१) **अयम्**=यह सोम **दिवः**=ज्ञानों को **इयर्ति**=हमारे में प्रेरित करता है। **सोमः**=सोम (वीर्य) **विश्वं रजः**=सम्पूर्ण अन्तरिक्षलोक को **आपुनानः**=सर्वथा पवित्र करता हुआ, हृदय को निर्मल बनाता हुआ **कलशेषु**=वह कलाओं के आधारभूत इन शरीरों में **सीदति**=स्थित होता है। वस्तुतः सब कलाओं को ठीक रखने का यह सोम ही आधार बनता है। सोम के कारण ही शरीर सकल व स्वस्थ (whole) बना रहता है। (२) यह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **अद्भिः**=कर्मों से, सदा यज्ञादि कर्मों में लगे रहने से **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से, स्वाध्याय में तत्पर होने से तथा **अद्रिभिः**=उपासनाओं से (adore) **मृज्यते**=शुद्ध किया जाता है। **पुनानः**=शुद्ध किया जाता हुआ यह सोम हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनाता है, और **प्रियं वरिवः**=प्रीतिजनक धन को **विदत्**=प्राप्त कराता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (क) ज्ञान को हमारे में प्रेरित करता है, (ख) हृदय को पवित्र बनाता है, (ग) शरीर को सब कलाओं से पूर्ण करता है, (घ) प्रिय धन को प्राप्त कराता है। इस सोम का रक्षण कर्मों में लगे रहने से, स्वाध्याय से तथा उपासना से होता है।

ऋषिः—**वत्सप्रिर्भालन्दनः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अद्वेषे द्यावापृथिवी

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम्॥ १०॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **एवा**=इस प्रकार **परिषिच्यमानः**=शरीर में सर्वत्र सिक्त होता हुआ तू **नः**=हमारे लिये **चित्रतमम्**=अतिशयित ज्ञानवाले **वयः**=जीवन को **दधत्**=धारण करता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ तू ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और हमारे ज्ञान को दीप्त करता है। (२) हम सोमरक्षण के द्वारा **द्यावापृथिवी**=सारे संसार को **अद्वेषे**=द्वेषशून्य रूप में **हुवेम**=पुकारते हैं। वस्तुतः सोमरक्षणवाला पुरुष द्वेषशून्य होता है। हे **देवाः**=देवो! **अस्मे**=हमारे लिये **सुवीरम्**=उत्तम वीरतावाले **रयिम्**=धन को **धत्त**=धारण करिये। हम सोमरक्षण द्वारा वीर व धनों के विजेता बनें।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन 'ज्ञानपूर्ण, निर्द्वेष, धनवाला व वीरतापूर्ण' होता है।

सोमरक्षण के महत्त्व को समझकर सोम का शरीर में रक्षण करनेवाला 'हिरण्यस्तूप' बनता है। (हिरण्यं=वीर्य, स्तूप समुच्छ्राये) वीर्य की शरीर में ऊर्ध्वगति करनेवाला। यह हिरण्यरूप सोम का स्तवन करता हुआ कहता है—

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

बुद्धि-ज्ञान-उत्तम कर्म

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते॥ १॥

(१) **इषुः न धन्वन्**=जैसे धनुष पर बाण **प्रतिधीयते**=धारण किया जाता है, इसी प्रकार सोमरक्षण के होने पर **मतिः**=बुद्धि धारण की जाती है। अर्थात् सोम बुद्धि का वर्धक होता है। इसलिए सोमरक्षण का अत्यन्त महत्त्व है। (२) **न**=जैसे **वत्सः**=बछड़ा **मातुः**=अपनी माता गौ को **ऊधनि**=ऊधस् के प्रति **उपसर्जि**=खुला छोड़ा जाता है, इसी प्रकार वत्स के समान यह सोमरक्षक पुरुष मातृभूत वेदधेनु के ऊधस् के प्रति, ज्ञानदुग्धाधार के प्रति खुला छोड़ा जाता है। यह वेदमाता से खूब ही ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करता है। (३) वेदमाता **अग्रे आयती**=इसकी ओर आगे आती हुई **उरुधारा इव**=विशाल ज्ञानधाराओंवाली होती हुई **दुहे**=खूब ही ज्ञानदुग्ध का पूरण करती है। यह सोमरक्षक खूब ही ज्ञान को प्राप्त करता है। वेदमाता इसे खूब ज्ञानदुग्ध देती है, उसी प्रकार जैसे कि उरुधारा गौ बछड़े को। (४) **अस्य व्रतेषु अपि**=इस प्रभु के व्रतों के पालन के निमित्त भी सोमः=यह सोम **इष्यते**=चाहा जाता है। सोमरक्षण से मनुष्य प्रभु से वेद में प्रतिपादित उत्तम कर्मों को करनेवाला बनता है। सब उत्तम कर्मों के मूल में यह सोमरक्षण है।

भावार्थ—सोमरक्षण से उत्तम बुद्धि प्राप्त करके हम ज्ञान को प्राप्त करते हैं और सदा उत्तम कर्मों को करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

मति-मायुर्य-मधुर वाणी

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति॥ २॥

(१) सोमरक्षण से **मतिः**=बुद्धि **उ**=निश्चय से **उपपृच्यते**=समीपता से हमारे साथ सम्पृक्त होती है। सोमरक्षण बुद्धि का जनक होता है। इससे **मधु सिच्यते**=हमारे जीवन में माधुर्य का सेवन होता है। **आसनि अन्तः**=मुख में **मन्द्राजनी**=आनन्द को उत्पन्न करनेवाली वाणी **चोदते**=प्रेरित होती है। (२) **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **सन्तनिः**=शरीर में सम्यक् विस्तारवाला होता हुआ **मधुमान्**=माधुर्यवाला होता है, **द्रप्सः**=(द्रुत गमनशीलः) दीप्तगतिवाला होता है, शरीर में स्फूर्ति को देता है। **वारम्**=वासनाओं से अपने को बचानेवाले को यह **परि अर्षति**=प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राप्त होता है, **इव**=जैसे कि **प्रघ्नताम्**=शिकारियों का **संतनिः**=सम्यक् विसृष्ट (छोड़ा हुआ) तीर लक्ष्य को प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से बुद्धि व माधुर्य की प्राप्ति होती है तथा मधुरवाणी ही उच्चरित होती है। यह हमें पवित्र करता है, द्रुतगतिवाला (आलस्यशून्य) बनाता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—**निषादः**॥

'वधूयुः-हरिः-मदः' सोमः

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते॥ ३॥

(१) **अव्ये**=अपना रक्षण करनेवाले उत्तम पुरुष में **वधूयुः**=हमारे साथ वेदवाणी रूप वधू को जोड़ने की कामनावाला यह सोम **त्वचि परिपवते**=(त्वच्=touch) प्रभु के सम्पर्क के निमित्त चारों ओर प्राप्त होता है सोम शरीर में व्याप्त होता है, तो यह हमारी बुद्धि को तीव्र करके हमारे साथ वेदज्ञान को जोड़ता है और हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य बनाता है। (२) **ऋतंयते**=ऋत की ओर चलनेवाले पुरुष के लिये, सब कार्यों को ऋत के अनुसार करनेवाले के लिए, यह सोम **अदितेः**=उस अदीना देवमाता के **नप्तीः**=सन्तानों को **श्रथ्नीते**=हमारे साथ बाँधता है (श्रन्थनं=binding)। यह

वेदज्ञान ही अदीना देवमाता है। 'आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्' ये इसके सन्तान हैं। सोम इन सातों को हमारे साथ सम्बद्ध करता है, हमारे जीवन में इन्हें गूँथ देता है। (३) **हरिः**=यह सब रोगों का हरण करनेवाला सोम **अक्रान्**=हमारे शरीर में गति करता है। **यजतः**=यह सोम संगन्तव्य होता है। **संयतः**=शरीर में सम्यक् यत (काबू) हुआ-हुआ **मदः**=उल्लास का जनक होता है। **नृम्णा शिशानः**=हमारे बलों को तीक्ष्ण करता हुआ यह सोम **महिषः न**=अत्यन्त महनीय वस्तु के समान **शोभते**=शोभा को प्राप्त होता है। सब से अधिक महनीय वस्तु सोम ही है।

भावार्थ—सोम हमारे साथ वेदज्ञान को जोड़ता है। वेदज्ञान द्वारा हमें 'आयु-प्राण-प्रजा' आदि रत्नों को प्राप्त कराता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह उल्लास का जनक व शक्तिवर्धक होता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

अत्कं न निक्तम् (दृढ़ कवच के समान)

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत॥ ४॥

(१) **उक्षा**=शरीर को शक्ति से सिक्त करनेवाला **सोमः**=सोम **मिमाति**=प्रभु के स्तुति शब्दों का उच्चारण करता है। 'सोम' रक्षित होने पर, रक्षक को प्रभु-प्रवण बनाता है। यह सोमी पुरुष प्रभु का स्तवन करता हुआ प्रभु के नामों का जप करता है। ऐसा करने पर **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली ये वेदवाणीरूप गौएँ **प्रतियन्ति**=इसकी ओर आती हैं। **देवस्य**=उस प्रभु की ये **देवीः**=दिव्य वाणियाँ **निष्कृतम्**=सोमरक्षण से संस्कृत हृदयवाले पुरुष को **उपयन्ति**=समीपता से प्राप्त होती हैं। (२) यह सोम **अर्जुनम्**=ज्ञान की वाणियों का अर्जन करनेवाले, **वराम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले, **अव्ययम्**=विविध विषयों की ओर न जानेवाले पुरुष को **अति अक्रमीत्**=अतिशयेन प्राप्त होता है। यह **सोमः निक्तम्**=सोम अत्यन्त शुद्ध व पुष्ट **अत्कं न**=कवच के समान **परि अव्यत**=अपने रक्षक को परितः संवृत कर लेता है। इस सोम के कवच से सुरक्षित पुरुष शारीर व मानस व्याधियाँ व आधियाँ आक्रमण नहीं कर पातीं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें प्रभु की दिव्य वाणियाँ प्राप्त होती हैं। यह सोम अध्ययनशील-विषय व्यावृत्त पुरुष का परिपुष्ट कवच बनता है। उसे रोगों से बचाता है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

अमृक्त रुशत् वासस्

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम्॥ ५॥

(१) **हरिः**=दुःखों का हरण करनेवाला **अमर्त्यः**=रोगों से न मरने देनेवाला **निर्णिजानः**=हमारे जीवन को पवित्र व पुष्ट करता हुआ यह सोम हमें **अमृक्तेन**=अहिंसित **रुशता**=चमकते हुए **वाससा**=ज्ञान के वस्त्र से **परिव्यत**=परितः आच्छादित करता है। (२) यह सोम **बर्हणा**=वासनाओं के उद्बर्हण के द्वारा **दिवः पृष्ठम्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के पृष्ठ को (surface को) **निर्णिजे कृत**=शोधन के लिये करता है। मस्तिष्क को दीप्त करनेवाला होता है। यह सोम **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के **नभस्मयम्**=(नभस्=water, आपः=रेतः) रेतःकणों से बने हुए

उपस्तरणम्=आच्छादन को करता है रेत:कणों से बना हुआ आच्छादन शरीर को रोगों के आक्रमण से बचाता है और मस्तिष्क को **तामस**=अन्धकार से आवृत नहीं होने देता। वस्तुत: सोम इन रेत:कणों के द्वारा शरीर को नीरोग व मस्तिष्क को दीप्त बनाता है।

भावार्थ—सोम हमारा आच्छादन बनता है। इससे हमारे पर न रोगों का आक्रमण होता है और न अज्ञानजनित कुविचारों का।

ऋषि:—**हिरण्यस्तूप:**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**जगती**॥ स्वर:—**निषाद:**॥

सूर्यस्य रश्मय: इव

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरास: प्रसुप: साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन॥ ६॥

(१) **सर्गास:**=सृज्यमान सोम **सूर्यस्य रश्मय: इव**=सूर्य की किरणों की तरह **द्रावयित्नव:**=अज्ञानान्धकार को दूर भगानेवाले हैं। **मत्सरास:**=आनन्द का संचार करनेवाले हैं। **प्रसुप:**=शत्रुओं को सुलानेवाले हैं। ये सोमकण **साकम्**=युगपत्, साथ-साथ **ततं तन्तुम्**=विस्तृत तन्तु निर्मित वस्त्र को **परिईरते**=हमारे चारों ओर प्रेरित करते हैं। हमें गत मन्त्र में वर्णित 'अमृक्त, रुशत् वासस्' से आच्छादित करते हैं। सोमकणों के वस्त्र से आच्छादित हुए-हुए हम रोगों व वासनाओं से बचे रहते हैं। (२) **आशव:**=ये शीघ्रता से हमें कार्यों में व्याप्त करनेवाले सोम **इन्द्रात् ऋते**=जितेन्द्रिय पुरुष को छोड़कर **किञ्चन धाम न पवते**=किसी अन्य स्थान में नहीं प्राप्त होते। इन सोम कणों के रक्षण के लिये जितेन्द्रियता आवश्यक है। जितेन्द्रिय पुरुष ही इनका पात्र बनता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता के होने पर सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम सूर्यरश्मियों के समान अन्धकार को दूर करनेवाला व हमारे जीवनों में आनन्द का संचार करनेवाला है।

ऋषि:—**हिरण्यस्तूप:**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**निचृज्जगती**॥ स्वर:—**निषाद:**॥

वाजा: कृष्टय:

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजा: सोम तिष्ठन्तु कृष्टय:॥ ७॥

(१) **सिन्धो: इव**=जैसे नदी के जल **निम्ने**=निम्न प्रदेश में जाते हैं, उसी प्रकार **वृषच्युता:**=(वृषो हि भगवान् धर्म:) धार्मिक पुरुष से शरीर में आसिक्त हुए-हुए ये सोमकण **प्रवणे**=(easer, modesthu humer) सोमरक्षण के लिये उत्सुक नम्र पुरुष में **गातुं आशत**=मार्ग का व्यापन करते हैं, नम्र पुरुष में सुरक्षित होकर रहते हैं। ये सोमकण **आशव:**=उसे शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त करनेवाले होते हैं और **मदास:**=आनन्द व उल्लास का कारण बनते हैं। (२) ये सोम **न: निवेशे**=हमारे गृहों में **द्विपदे**=मनुष्यों के लिये व **चतुष्पदे**=पशुओं के लिये **शम्**=शान्ति को देनेवाले हों। हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **अस्मे**=हमारे लिये **वाजा:**=शक्तिशाली (शक्ति के पुञ्ज) **कृष्टय:**=(A learned man) विद्वान् पुरुष **तिष्ठन्तु**=ठहरें। अर्थात् हमारी इस प्रकार के सशक्त विद्वान् पुरुषों के संग में उठने-बैठने की प्रवृत्ति हो।

भावार्थ—सोम का रक्षण, इनके रक्षण के लिये उत्सुक नम्र (प्रभु-भक्त) पुरुष ही कर पाते हैं। ये सोमकण हमारे घरों को सुन्दर बनाते हैं, क्योंकि इनके रक्षण से सब नीरोग रहते हैं। सोमरक्षण से हमारी रुचि ज्ञानी सशक्त पुरुषों के संग में उठने-बैठने की होती है।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'वसुमत्-हिरण्यवत्-अश्वावत्-गोमत्-यवमत्'

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥ ८ ॥

(१) हे **सोम**=सोम! तू **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **आपवस्व**=प्राप्त करा। जो शक्ति **वसुमत्**=उत्तम वसुओंवाली है, निवास को उत्तम बनानेवाले सब आवश्यक तत्त्वों से युक्त है, **हिरण्यवत्**=ज्योति व वीर्यवाली है, हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाली है (वीर्य ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है), **अश्वावत्**=उत्तम कर्मेन्द्रियोंवाली है, **गोमत्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाली है तथा **यवमत्**= 'बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को हमारे साथ जोड़नेवाली' है (यु मिश्रणा-मिश्रणयोः)। (२) हे सोम! **यूयम्**=तुम **हि**=ही **मम**=मेरे **पितरः**=रक्षक **स्थन**=हो। **दिवः मूर्धानः**=तुम मेरे लिये प्रकाश के शिखर हो, मुझे ऊँचे से ऊँचे ज्ञान को प्राप्त करानेवाले हो। **प्रस्थिताः**=शरीर में प्रकर्षेण स्थित हुए-हुए तुम **वयस्कृतः**=उत्तम आयुष्य को करनेवाले हो। हमारे जीवन को ये सोमकण ही दीर्घ व प्रशस्त बनाते हैं।

भावार्थ—ये सोम हमारा रक्षण करते हुए, प्रकाश को बढ़ाते हुए, हमारे जीवनों को उत्तम बनाते हैं।

सूचना—सुरक्षित सोम अन्नमयकोश को वसु (उत्तम निवास) वाला (नीरोग) बनाते हैं। प्राणमयकोश को हिरण्यवाला (वीर्यवाला) बनाते हैं, इसी से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। मनोमयकोश को **अश्वावत्**=उत्तम कर्मेन्द्रियोंवाला, विज्ञानमयकोश को उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाला तथा आनन्दमयकोश को यव (बुराइयों से रहित, अच्छाइयों से युक्त) बनाते हैं।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सातिं अच्छ, वृष्टिं अच्छ

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथाइव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥

(१) **एते**=ये **सोमाः**=सोमकण **पवमानासः**=पवित्र करनेवाले हैं। **इन्द्रं अच्छ**=जितेन्द्रिय पुरुष की **अच्छ**=ओर इस प्रकार **प्रययुः**=प्राप्त होते हैं, **इव**=जैसे कि **रथाः**=रथ **सातिम्**=संग्राम को प्राप्त होते हैं (सीयते म्रियतेऽस्मिन्निति सातिः संग्रामः)। (२) **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए ये सोमकण **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले **अव्यम्**=अपना रक्षण करनेवालों में उत्तम पुरुष को **अतियन्ति**=अतिशयेन प्राप्त होते हैं। **हरितः**=सूर्य की रश्मियों के समान ये सोमकण **वव्रिं हित्वी**=आवरण को हटाकर, अज्ञान के परदे को दूर करके **वृष्टिं अच्छ**=आनन्द की वृष्टि की ओर हमें ले चलते हैं।

भावार्थ—ये सोम हमें जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं। अज्ञान के आवरण को हटाकर आनन्द की वर्षा को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**हिरण्यस्तूपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुमृडीकः अनवद्यः

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १० ॥

(१) **इन्दो**=हे सोम! तू **बृहते**=वृद्धि (उन्नति) के मार्ग पर चलनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। **सुमृडीकः**=तू उसके जीवन को सुखी करनेवाला हो। **अनवद्यः**=सब अवद्यों (पापों) से उसे ऊपर उठानेवाला हो (न अवद्यं यस्मात्)। **रिशादाः**=सब शत्रुओं का नष्ट करनेवाला हो (रिशतां असिता)। (२) **गृणते**=स्तुति करनेवाले के लिये **चन्द्राणि वसूनि**=आह्लादकर वसुओं को, निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को, **भरा**=तू प्राप्त करा। तेरे सुरक्षित होने पर **देवैः**=दिव्यगुणों से युक्त हुए-हुए (प्रकाश व दृढ़ता युक्त हुए-हुए) **द्यावापृथिवी**=द्युलोक और पृथिवीलोक, मस्तिष्क व शरीर **नः**=हमारा **प्रावतम्**=प्रकर्षेण रक्षण करें। सुरक्षित सोम मस्तिष्क को दीप्त बनाता है और शरीर को दृढ़ करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें निष्पाप व सुखी बनाता है। ये हमें आह्लादकारक वसुओं को प्राप्त कराता है। मस्तिष्क को दीप्त व शरीर को दृढ़ करता है।

यह सोमरक्षक पुरुष निर्दोष जीवनवाला बनकर गतिशील व सबके साथ मिलकर चलनेवाला बनता है, सो 'रेणु' कहलाता है (री=गति, आलिंगन) यह सबके प्रति स्नेहवाला होने से 'वैश्वामित्रः' है। इसीका अगला सूक्त है। यह सोम का प्रशंसन करता हुआ कहता है—

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सप्त धेनवः त्रिः दुदुह्रे

त्रिर॑स्मै स॒प्त धे॒नवो॑ दुदुह्रे स॒त्यामा॒शिरं॑ पू॒र्व्ये व्यो॑मनि।
च॒त्वार्य॒न्या भुव॑नानि नि॒र्णिजे॒ चारू॑णि च॒क्रे यदृ॒तैरव॑र्धत॥ १॥

(१) **अस्मै**=इस सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष के लिये **सप्त धेनवः**=सात छन्दों से युक्त ये वेदवाणी रूप गौवें, **पूर्व्ये व्योमनि**=सर्वोत्कृष्ट हृदयाकाश में **त्रिः**=तीन रूपों से, आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक रूप में **सत्याम्**=सत्य **आशिरं (आश्रृणाति)**=वासनाओं के विनाशक ज्ञान को **दुदुह्रे**=दोहती हैं। ये वेदवाणियाँ उसे वह ज्ञान प्राप्त कराती हैं, जो उसकी वासनाओं को विनष्ट करके उसके जीवन को पवित्र करता है। यह ज्ञान काम-क्रोध को विनष्ट करके उसके अध्यात्म जीवन को शान्त बनाता है। लोभ व मोह से ऊपर उठाकर इसके आधिभौतिक जीवन को उत्तम करता है। मद-मत्सर से दूर करके इसे आधिदैविक दृष्टि से ऊँचा उठाता है। (२) यह सोमरक्षक पुरुष **चत्वारि**=चारों **अन्या**=विलक्षण **भुवनानि**=लोकों को, शरीर के अंगों के, सिर, छाती, पैर व पाँवों के, **निर्णिजे**=शोधन के लिये होता है। सोम, सुरक्षित हुआ-हुआ, शरीर के सब अंगों को सशक्त करता है। **यद्**=जब **ऋतैः**=व्यवस्थित क्रियाओं के द्वारा यह **अवर्धत**=बढ़ता है, उन्नतिपथ पर चलता है तो **चारूणि चक्रे**=यह सब अंगों को सुन्दर बना डालता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है तथा शरीर के सब अंग सुन्दर बनते हैं। वेद से हम अध्यात्म अधिभूत व अधिदेव को समझनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

देवस्य सदः विदुः

स भिक्ष॑माणो अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑ण उ॒भे द्यावा॒ काव्ये॑ना॒ वि श॑श्रथे।
तेजि॑ष्ठा अ॒पो मं॒हना॒ परि॑ व्यत॒ यदी॑ दे॒वस्य॒ श्रव॑सा॒ सदो॑ वि॒दुः॥ २॥

(१) **स**=वह सोमरक्षक पुरुष **अमृतस्य**=नीरोगता के आधारभूत **चारुण:**=जीवन को सुन्दर बनानेवाले इस सोम का **भिक्षमाण:**=याचन करता हुआ, सोमरक्षण के लिये ही प्रभु से आराधना करता हुआ, **उभे द्यावा**=दोनों मस्तिष्क व शरीर रूप द्यावापृथिवी को **काव्येन**=उत्कृष्ट ज्ञान से **विशश्रथे**=(delight repeatedly) निरन्तर आनन्दित करता है। (२) इस सोमरक्षण के द्वारा **तेजिष्ठा:**=अत्यन्त तेजस्विता को धारण करानेवाले **अप:**=रेत:कणों को **परिवत**=चारों ओर से ओढ़नेवाला बनता है। रेत:कणों को अपना कवच बनाता है। **मंहना**=(मंह=To grow, increase, To shine) विकास के दृष्टिकोण से अथवा चमकने के दृष्टिकोण से वह ऐसा करता है। सारी उन्नति व दीप्ति का निर्भर इस सोम पर ही तो है। इस सोम को अपना कवच बनाने पर **यद्**=जब **ई**=निश्चय से ये सोमरक्षक पुरुष **श्रवसा**=ज्ञान प्राप्ति के द्वारा **देवस्य सद:**=उस देव के अधिष्ठान, अर्थात् ब्रह्मलोक को **विदु:**=जान लेते हैं। सोमरक्षण से अपने ज्ञान को बढ़ाते हुए अन्तत: हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सोम (वीर्य) अमृत है, चारु (सुन्दर) है। ये शरीर व मस्तिष्क को दीप्ति से युक्त करता है। इसके द्वारा हम ज्ञान-वृद्धि को करते हुए अन्तत: ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

ऋषि:—**रेणुर्वैश्वामित्र:**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**त्रिष्टुप्**॥ स्वर:—**धैवत:**॥

'केतव:, अमृत्यवोऽदाभ्यास:'

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत॥ ३॥

(१) **ते**=वे सोमकण **अस्य**=इस सोमरक्षक पुरुष के **केतव:**=प्रज्ञान का साधन **सन्तु**=हों। ये सोमकण ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। **अमृत्यव:**=ये सोमकण अ-मृत्यु हैं, इस सोमी पुरुष को रोगरूप मृत्युओं से आक्रान्त नहीं होने देते। **अदाभ्यास:**=ये काम-क्रोध आदि वासनाओं से हिंसित नहीं होते। सोमरक्षक पुरुष इन वासनाओं का शिकार नहीं होता। इस प्रकार **उभे जनुषी अनु**=भौतिक व अध्यात्म दोनों जीवनों के ये बड़े अनुकूल होते हैं। नीरोगता से भौतिक जीवन की सौन्दर्य बना रहता है और मन की निर्वासनता के कारण अध्यात्म जीवन सुन्दर होता है। (२) ये सोमकण वे हैं, **येभि:**=जिनके द्वारा भौतिक जीवन के दृष्टिकोण से **नृम्णा**=बलों का **पुनते**=पवित्रीकरण करते हैं, **च**=और अध्यात्म दृष्टिकोण से **देव्या**=दिव्यगुणों को अपने में प्रेरित करते हैं (प्रेरयन्ति सा०) **आत् इत्**=अब शीघ्र ही **राजानम्**=जीवन को दीप्त करनेवाले इस सोम को **मनना**=मनन के द्वारा **अगृभ्णत**=ग्रहण करते हैं। मनन-चिन्तन व ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ—सोमकण मस्तिष्क के दृष्टिकोण से 'केतव:', शरीर के दृष्टिकोण से 'अमृत्यव:' तथा हृदय के दृष्टिकोण से 'अदाभ्यास:' हैं। ये शरीर में बल को देते हैं तो मन में दिव्यगुणों का धारण करते हैं। मनन द्वारा इनका रक्षण होता है।

ऋषि:—**रेणुर्वैश्वामित्र:**॥ देवता—**पवमान: सोम:**॥ छन्द:—**जगती**॥ स्वर:—**निषाद:**॥

मृज्यमान: दशभि: सुकर्मभि:

स मृज्यमानो दशभि: सुकर्मभि: प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ॥ ४॥

(१) सोम का रक्षण तभी होता है, जब कि सब की सब इन्द्रियाँ उत्तम कर्मों में ही लगी

रहें। **सः**=वह सोम **दशभिः सुकर्मभिः**=(शोभनं कर्म येषां) उत्तम कर्मोंवाली दसों इन्द्रियों से **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता है। यह सोम **सचा**=हमारे अन्दर समवेत होता हुआ, रुधिर में ही व्याप्त होता हुआ, **मध्यमासु**=(मध्ये वासु) हृदयदेश में निवास करनेवाली **मातृषु**=इन वेदरूप माताओं के होने पर **प्रमे**=(प्रमातुम्) वस्तुतत्त्व को जानने के लिये होता है, अर्थात् सोम हमें तत्त्वज्ञान को प्राप्त कराता है। (२) **अमृतस्य**=शरीर को रोगों का शिकार न होने देनेवाले (न मृतं यस्मात्) **चारुणः**=जीवन को सुन्दर बनानेवाले सोम के **व्रतानि**=व्रतों को, सोमरक्षण के नियमों को **पानः**=रक्षित करता हुआ, उन सब नियमों का पालन करता हुआ **नृचक्षाः**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाला यह व्यक्ति **उभे विशौ**=दोनों प्रजाओं को, भौतिक दृष्टिकोण से बलशाली तथा अध्यात्म दृष्टिकोण से दिव्यगुणोंवाली प्रजाओं को **अनुपश्यते**=अनुकूलता से देखता है। अर्थात् यह अपने जीवन में, गतमन्त्र के अनुसार 'नृम्णा-देव्या' बलों व दिव्यगुणों दोनों को प्रेरित करता है।

भावार्थ—इन्द्रियाँ सुकर्मों में लगी रहें तो सोम पवित्र बना रहता है। यह पवित्र सोम हमें तत्त्वज्ञान प्राप्त कराता है। सोमी पुरुष सब मनुष्यों का ध्यान करता है तथा भौतिक व अध्यात्म दोनों जीवनों को सुन्दर बनाता है।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

इन्द्रियाय-धायसे

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः॥ ५॥

(१) **सः**=वह सोम **मर्मृजानः**=शुद्ध किया जाता हुआ, अर्थात् वासनाओं से मलिन न होता हुआ **इन्द्रियाय**=सब इन्द्रियों की शक्ति के लिये होता है। यह **धायसे**=धारण के लिये होता है, शरीर, मन व बुद्धि सभी का यह धारण करता है। **उभे रोदसी अन्तः**=दोनों द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर के अन्दर **हितः**=स्थापित हुआ-हुआ **आहर्षते**=उन्हें आनन्दित करता है, शरीर को स्वस्थ बनाता है और मस्तिष्क को दीप्त करता है। (२) **वृषा**=यह शक्तिशाली सोम **दुर्मतीः**=दुष्ट बुद्धियों को **शुष्मेण**=शत्रुशोषक बल से **विबाधते**=विशिष्ट रूप से बाधित करता है। सोमरक्षण से काम, क्रोध, लोभ आदि के बाधन से दुर्मति विनष्ट होकर हमारे में सुमति का प्रादुर्भाव होता है। यह **शर्यहा इव**=हनन-साधन इषुओं से प्रतिभयों के हनन करनेवाले योद्धा की तरह यह सोम **शुरुधः**=(शुचा रुन्धन्ति) शोकग्रस्त करनेवाली आसुरभावनाओं को **आदेदिशानः**=आह्वान करता हुआ सोम दूर भगाता है (पुनः-पुनः आह्वयन् हन्ति सा०)।

भावार्थ—रक्षित सोम हमारी इन्द्रियों के बल के लिये होता है व धारण के लिये होता है, यह शरीर व मस्तिष्क को शक्तिशाली बनाता है। दुर्मति को दूर करता है और वासनाओं को दूर भगाता है।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

कं अवृणीत सुक्रतुः

स मातरा ददृशान उस्रियो नानदद्देति मरुतामिव स्वनः।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः॥ ६॥

(१) **सः**=वह सोम **उस्रियः न**=मानो प्रकाश ही प्रकाश है (brightness)। यह ज्ञानाग्नि

को दीप्त करता है। **मातरा ददृशानः**=माता-पिता, अर्थात् पृथिवी व द्युलोक (शरीर व मस्तिष्क) का ध्यान करता हुआ **नानदत्**=गर्जना करता हुआ, प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता हुआ **एति**=हमें प्राप्त होता है। यह **मरुतां इव स्वनः**=वायुओं के गर्जन के समान शब्दवाला होता है। सोमरक्षण से शरीर नीरोग बनता है, मस्तिष्क दीप्त होता है तथा हृदय प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला होता है। परिणामतः वाणी प्रभु के स्तोत्रों का ऊँचे-ऊँचे उच्चारण करनेवाली बनती है। (२) यह सोमरक्षण करनेवाला पुरुष **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा होता हुआ **प्रथमम्**=सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले **स्वर्णरम्**=स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले **ऋतम्**=सत्य वेदज्ञान को **जानन्**=जानता हुआ **यत्**=जब होता है तो **प्रशस्तये**=जीवन की प्रशस्ति के लिये **कं अवृणीत**=उस आनन्दस्वरूप परमात्मा का वरण करता है। सोमरक्षक का झुकाव प्रभु की ओर होता है। भोग प्रवण व्यक्ति प्रकृति की ओर जाता है।

भावार्थ—सोम शरीर व मस्तिष्क दोनों को उत्तम बनाता है। हृदय में प्रभु के स्तवनवाला हमें बनाता है। सोमी पुरुष सत्य वेदज्ञान को जानता हुआ प्रभु का वरण करता है।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

हरिणी शृंगे

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥

(१) **सः**=वह सोम **रुवति**=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है। सोमरक्षण से हम प्रभु स्तवन की वृत्तिवाले बनते हैं। **भीमः**=यह शत्रुओं के लिये भयंकर होता है, काम-क्रोध आदि को विनष्ट करता है। **वृषभः**=शक्तिशाली होता है। **तविष्यया**=बल की कामना से **शृंगे**=अपने शृंगों को **शिशानः**=तीव्र करता है। उन शृंगों को, जो **हरिणी**=हमारे सब कष्टों का हरण करनेवाले हैं। ये शृंग ही शरीर के दृष्टिकोण से 'तेजस्विता' तथा मस्तिष्क के दृष्टिकोण से 'ज्ञान' हैं। ये तेजस्विता व ज्ञान हमें सबल बनाते हैं, इनके द्वारा ही रोग व वासना रूप शत्रुओं को पराजित करते हैं। इस प्रकार यह सोम **विचक्षणः**=विशेषरूप से हमारा द्रष्टा होता है, हमारा ध्यान करता है। (२) **सोमः**=यह सोम **सुकृतम्**=अत्यन्त सुसंस्कृत **योनिम्**=शरीर रूप गृह में **आनिषीदति**=सर्वथा स्थित होता है। यह सोम हमारे लिये **गव्ययी**=ज्ञान की वाणियों से बनी हुई **त्वग् भवति**=आवरण होता है। यह 'गव्ययीत्वक्' हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती है। यह सोम **निर्णिक्**=हमारा शोधन व पोषण करनेवाला होता है। **अव्ययी** (अवि-अय्) यह विविध विषयों की ओर न जानेवाला होता है। सोमरक्षण से इन्द्रियाँ विषयों में जाने से रुकती हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञान व तेजस्विता रूप शृंगों को प्राप्त कराता है, जिनसे हम वासनाओं व रोगों के आक्रमण से अपने को बचाते हैं।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

त्रिधातु मधु

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥

(१) **शुचिः**=पवित्र **हरिः**=दुःखों का हरण करनेवाला सोम **अरेपसम्**=निर्दोष **तन्वम्**=शरीर को **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **अव्ये**=अपना रक्षण करनेवाले पुरुष के **सानवि**=मस्तिष्क रूप

शिखर प्रदेश में **न्यधाविष्ट**=निश्चय से गतिवाला होता है। यह 'अव्य' ऊर्ध्वरेता बनता है। इसके शरीर में रेतःकण ऊर्ध्वगतिवाले होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। (२) **मित्राय**=मित्र के लिये **वरुणाय**=वरुण के लिये तथा **वायवे**=वायु के लिये **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक सेवित हुआ-हुआ यह सोम **सुकर्मभिः**=उत्तम कर्मोंवाले पुरुषों से 'त्रिधातु मधु'=तीनों को धारण करनेवाला मधु **क्रियते**=बनाया जाता है। यह सुरक्षित सोम हमें सबके प्रति स्नेहवाला बनाता है, यह हमें द्वेष से दूर करता है तथा क्रियाशील बनाता है (वा गतौ)। इस प्रकार यह सोम हमारे जीवन में 'मित्र, वरुण व वायु' की स्थापना करता है। ऐसा करने से यह 'त्रिधातु मधु' कहलाता है। इस मधु के रक्षण का उपाय यही है कि हम उत्तम कर्मों में लगे रहें।

भावार्थ—सोम शरीर को निर्दोष करता हुआ मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला होता है। यह हमारे जीवनों में 'स्नेह, निर्द्वेषता व क्रियाशीलता' को स्थापित करता हुआ 'त्रिधातु मधु' कहलाता है।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

क्षेत्रावत् के द्वारा अनुशासन

पव॑स्व सोम दे॒ववी॑तये॒ वृषेन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श।
पु॒रा नो॑ बा॒धाद्दु॑रि॒ताति॑ पारय क्षेत्र॒विद्धि॒ दिश॒ आहा॑ विपृच्छ॒ते॥ ९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **हार्दि**=हृदयंगम **सोमधानम्**=सोम के आधारभूत इस शरीर को **विश**=प्रविष्ट हो। हे सोम! तू शरीर में ही व्याप्त होनेवाला हो। तेरी व्याप्ति से यह सोमधान शरीर सुन्दर प्रतीत हो। (२) हे सोम! तू **नः**=हमें **पुरा बाधात्**=पूर्व इसके कि दुरित हमारी पीड़ा का कारण बनें, उन **दुरिता अतिपारय**=दुरितों से दूर ले चल। **हि**=निश्चय से **क्षेत्रवित्**=क्षेत्र को माननेवाला **विपृच्छते**=विविध जिज्ञासाओंवाले पुरुष के लिये **दिशः आह**=दिशाओं का ज्ञान देता है। हे सोम! तू ही हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त बनाकर हमें क्षेत्रवित् बनना है और इस योग्य करता है कि हम औरों के लिये मार्गदर्शन कर सकें।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें दुरितों से दूर ले चलता है। हमें क्षेत्रवित् बनाता है।

ऋषिः—**रेणुर्वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

शूरो न युध्यन्

हि॒तो न सप्ति॑र॒भि वाज॑मर्षेन्द्र॑स्येन्दो ज॒ठर॒मा प॑वस्व।
ना॒वा न सिन्धु॒मति॑ पर्षि वि॒द्वाञ्छूरो॒ न युध्य॒न्नव॑ नो नि॒दः स्पः॥ १०॥

(१) हे **इन्दो**=सोम **हितः सप्तिः न**=प्रेरित किये हुए घोड़े के समान (हितः=प्रहितः) तू **वाजं अभि अर्ष**=संग्राम की ओर चलनेवाला हो। तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरं आपवस्व**=उदर में प्राप्त हो। जितेन्द्रिय पुरुष के शरीर में रहता हुआ तू रोगकृमियों व वासनाओं के साथ संग्राम को करनेवाला हो। इन्हें तूने ही तो समाप्त करना है। (२) **विद्वान्**=हमें ज्ञानी बनाता हुआ तू सब वासनाओं से **अतिपर्षि**=उसी प्रकार पार ले चल **न**=जैसे कि **नावा सिन्धुम्**=नौका से समुद्र को पार करते हैं। **शूरः न**=एक शूर के समान **युध्यन्**=युद्ध करता हुआ **नः**=हमें **निदः**=सब निन्दनीय बातों से **अवस्पः**=(पारय) पार कर। हम सब पापों को युद्ध में पराजित करनेवाले हों।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम एक योद्धा की तरह हमारे रोग व वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करता है।

सोमरक्षण से शक्तिशाली बना हुआ यह 'ऋषभ' कहलाता है। यह सब के प्रति स्नेहवाला होने से 'वैश्वामित्र' है। यह कहता है—

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'द्रोह व रोग' का विनाशक सोम

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे॥ १॥

(१) **शुष्मी**=शत्रुशोधक बलवाला यह सोम **आसदं वेति**=अपने आधारभूत इस शरीर में गतिवाला होता है। यह सोम शरीर में ही व्याप्त होता है। इसकी व्याप्ति से **दक्षिणा आसृज्यते**=(दक्षिणे सरलोदारौ) सरलता व उदारता उत्पन्न होती है। सोमरक्षक पुरुष सरल वृत्ति का व उदार होता है। यह सोम **द्रुहः**=मन में उत्पन्न होनेवाली द्रोह की वृत्तियों से तथा **रक्षसः**=शरीर में उत्पन्न होनेवाले रोगकृमियों से **पाति**=हमारा रक्षण करता है। इस रक्षण कार्य में यह सदा **जागृविः**=जागरणशील (alert) है। (२) **हरिः**=यह सब द्रोहों व रोगों का हरण करनेवाला सोम **नभस्पयः**=द्युलोक के जल को, मस्तिष्क रूप द्युलोक के ज्ञानरूप जल को, **ओपशम्**=शिरोभूषण **कृणुते**=करता है। हमारे मस्तिष्क को ज्ञान से सुभूषित करता है। **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के, **निर्णिजे**=शोधन के लिये **ब्रह्म**=ज्ञान को **उपस्तिरे**=उपस्तीर्ण करता है, बिछाता है। ज्ञान के द्वारा हमारे मस्तिष्क व शरीर का शोधन करनेवाला यह सोम ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मन से द्रोह को दूर करता है, शरीर से रोगों को। यह ज्ञान के द्वारा हमारा शोधन करनेवाला है।

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

तेजस्विता व हृदय की शुद्धता

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना॥ २॥

(१) **शूषः**=शत्रुशोषक बलवाला यह सोम **कृष्टिहा इव**=शत्रुहन्ता योद्धा की तरह **प्र एति**=प्रकर्षेण गतिवाला होता है। **रोरुवत्**=खूब ही प्रभु-स्तवन कराता हुआ यह सोम **अस्य**=इस सोमरक्षक पुरुष के **तम्**=उस **असुर्यं वर्णम्**=प्राणशक्ति-सम्पन्न तेजस्वीरूप को **निरिणीते**=निश्चय से प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से प्रभु-स्तवन की वृत्ति पैदा होती है और तेजस्विता की प्राप्ति होती है। (२) यह सोम **वव्रिम्**=आच्छादन कर लेनेवाली जरा को **जहाति**=छोड़ता है, बुढ़ापे को नहीं आने देता। **पितुः**=उस परमपिता के **निष्कृतम्**=शुद्ध किये हुए हृदयरूप स्थान को **एति**=प्राप्त होता है। हृदय को शुद्ध बनाता है। **तना**=शक्तियों के विस्तार के द्वारा इस हृदय को **उपप्रुतम्**=(समीपगमनशीलं सा०) प्रभु के समीप जाने की वृत्तिवाला तथा **निर्णिजम्**=शुद्ध **कृणुते**=करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से तेजस्विता प्राप्त होती है, बुढ़ापा दूर होता है और हृदय बड़ा परिशुद्ध

बनता है।

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

मोदते-नसते-साधते

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि॥ ३॥

(१) **अद्रिभिः**=उपासकों द्वारा (adore) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **गभस्त्योः**=भुजाओं में **पवते**=गतिवाला होता है। उपासना के द्वारा ये उपासक, वासनाओं से बचकर सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर पाते हैं। यह सुरक्षित सोम भुजाओं में शक्ति का स्थापन करनेवाला होता है। **वृषायते**=यह सोम शक्तिशाली की तरह आचरण करता है। **नभसा**=मस्तिष्करूप द्युलोक के द्वारा तथा **मती**=मननपूर्वक की गयी स्तुति के द्वारा **वेपते**=सर्व शरीर में गतिवाला होता है (सर्वत्र गच्छति सा०) सोम को शरीर में सुरक्षित करने के प्रमुख साधन 'स्वाध्याय और स्तुति' ही हैं। (२) **सः**=यह सोमरक्षक पुरुष **मोदते**=प्रसन्नता का अनुभव करता है, **नसते**=लक्ष्य-स्थान की ओर बढ़नेवाला होता है (go toward) **साधते**=कार्यों को सिद्ध करता है। **गिरा नेनिक्ते**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा जीवन का शोधन करता है तथा **परीमणि**=पालन व पूरण के निमित्त **अप्सु यजते**=सदा कर्मों में संगवाला होता है। यह क्रियाशीलता ही इसे शरीर में नीरोग व मन में वासनाशून्य बनाये रखती है।

भावार्थ—सोम शक्ति देता है, प्रसन्नता प्राप्त कराता है, हमें क्रियाशील बनाता है। ज्ञानाग्नि को दीप्त करके जीवन का शोधन करता है, उत्कृष्ट कर्मों में व्यापृत रखके यह हमारा पालन व पूरण करता है।

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'द्युक्ष-पर्वतावृध-हर्म्यसक्षणि'

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम्।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः॥ ४॥

(१) **सहसः**=शक्ति-सम्पन्न (सहस्विनः) **मध्वः**=सोम के कण **परिसिञ्चन्ति**=उस जितेन्द्रिय पुरुष को शरीर में सर्वत्र सिक्त करते हैं जो कि (क) **द्युक्षं** (क्षि निवासे)=ज्ञान-ज्योति में निवास करता है, (ख) **पर्वतावृधम्**=शरीर को (पर्वत=A rock) एक चट्टान के समान बढ़ाता है (अश्मा भवतु नस्तनूः) तथा (ग) **हर्म्यस्य सक्षणिम्**=(an abode of evil spirits हर्म्य) आसुरभावनाओं के निवास को पराभूत करनेवाला है (सोढारं=सक्षणिम् द०) अर्थात् हृदय को आसुरभावों से शून्य करनेवाला है। वस्तुतः सोमरक्षण से ही यह मस्तिष्क में 'द्युक्ष', शरीर में 'पर्वतावृध' तथा हृदय में 'हर्म्यस्य सक्षणि' बनता है। (२) यह सोमरक्षक वह है **यस्मिन् सुहुतादे**=जिस (सु-हुत-अद्) यज्ञशेष का सेवन करनेवाले में **गावः**=वेदवाणीरूप गौवें **ऊधनि मूर्धन्**=ज्ञानदुग्ध के आधारभूत मस्तिष्क में **वरीमभिः**=हृदय की विशालताओं के साथ **अग्रियम्**=सर्वोत्कृष्ट ज्ञान को **श्रीणन्ति**=परिपक्व करती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष ज्ञान में निवास करनेवाला, शरीर को चट्टान के समान दृढ़ बनानेवाला तथा आसुरभावों का पराभव करनेवाला होता है। इसमें ज्ञान की वाणियाँ हृदय की विशालता के साथ उत्कृष्ट ज्ञान को स्थापित करती हैं।

ऋषिः—ऋषभो वैश्वामित्रः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

शक्ति-दिव्यता-ज्ञान

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन्॥ ५॥

(१) **दश**=दस **स्वसारः**=(स्व-सृ) आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली इन्द्रियाँ, विषयों में न भटकनेवाली इन्द्रियाँ **रथं न**=जीवनयात्रा के लिये रथ के समान जो यह सोम है, उसे **ई**=निश्चयपूर्वक **भुरिजोः**=बाहुओं में **सं अहेषत**=सम्यक् प्रेरित करती हैं। अर्थात् सोम भुजाओं में शक्ति का स्थापन करनेवाला होता है। और अन्ततः **अदितेः**=अदीना देवमाता की **उपस्थे**=गोद में **आजिगात्**=यह आता है। सुरक्षित सोम हमें अदीन व दिव्य गुण-सम्पन्न बनाता है। (२) **यत्**=जब **मतुथा**=मननपूर्वक प्रभु का स्तवन करनेवाले लोग **अस्य अजीजनन्**=इस सोम का अपने अन्दर प्रादुर्भाव करते हैं तो यह सोमरक्षक पुरुष **गोः**=वेदवाणी के **अपीच्यं पदम्**=अन्तर्हित (सुगुप्त) व अतिसुन्दर शब्दों व अर्थों की ओर **उपज्रयति**=समीपता से प्राप्त होता है। अर्थात् इस वेदवाणी को सम्यक् समझनेवाला होता है। वेदवाणी के शब्द 'अपीच्य' (beautiful) सुन्दर हैं, इनका अर्थ (Hidden) सुगुप्त है। सोम रक्षक पुरुष इन दोनों शब्दार्थों का ग्रहण करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से शक्ति व दिव्यता प्राप्त होती है। बुद्धि सूक्ष्म होकर ज्ञान की वाणियों को समझनेवाली होती है। 'शरीर में शक्ति, मन में दिव्यता, मस्तिष्क में ज्ञान'।

ऋषिः—ऋषभो वैश्वामित्रः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—पादनिचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

श्येनो न, अश्वो न

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः॥ ६॥

(१) सोम का रक्षक पुरुष **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान **देवः**=देववृत्तिवाला व प्रकाशमान जीवनवाला होता हुआ यह **योनिम्**=सबके मूल उत्पत्ति-स्थान **सदनम्**=सर्वाधार, **धिया कृतम्**=बुद्धि के द्वारा प्रादुर्भूत किये गये, बुद्धि द्वारा जानने योग्य, **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय प्रभु को **आसदम्**=प्राप्त करने के लिये **एषति**=गतिवाला होता है। (२) **ई**=निश्चय से **प्रियम्**=प्रीति के उत्पन्न करनेवाले इस सोम को **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **आरिणन्ति**=सर्वथा प्रेरित करते हैं। स्वाध्याय द्वारा हृदय को निर्वासन बनाकर सोम को शरीर में सुरक्षित करते हैं। इसी दृष्टिकोण से **अश्वः न**=निरन्तर कर्मों में व्याप्त पुरुष के समान (अशू व्याप्तौ) **यज्ञियः**=यह यज्ञशील व्यक्ति **देवान् अपि एति**=दिव्यगुणों की ओर गतिवाला होता है। कर्मों में लगे रहना ही वासनाओं से बचने का साधन होता है, इसी प्रकार जीवन यज्ञिय व दिव्य बनता है।

भावार्थ—हम शंसनीय गतिवाले होकर प्रभु की ओर चलें। कर्मों में व्याप्ति के द्वारा सोम का रक्षण करते हुए दिव्य गुणों का वर्धन करें।

ऋषिः—ऋषभो वैश्वामित्रः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

यतिः-परायतिः

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति॥ ७॥

(१) सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष **परा व्यक्तः**=पराविद्या (आत्मविद्या) से अलंकृत हुआ-हुआ **अरुचः**=आरोचमान होता है। **दिवः कविः**=ज्ञान के द्वारा क्रान्तदर्शी बना हुआ, वस्तुतत्त्वों को देखनेवाला और अतएव उनमें न फँसनेवाला, **वृषा**=शक्तिशाली होता है। **त्रिपृष्ठः**='ऋग् यजु साम' रूप तीन आधारोंवाला **गाः अभि**=वेदवाणी रूप गौओं की ओर **अनविष्ट**=(नव् गतौ) गतिवाला होता है। (२) **सहस्राणीतिः**=आनन्दमय प्रभु की ओर अपने को ले चलनेवाला, **यतिः**=संयमी, **परायतिः**=विषयों से दूर जानेवाला **रेभः न**=एक स्तोता के समान **पूर्वीः उषसः**=बहुत ही प्रातः-प्रातः (early in the morning) **विराजति**=अपने जीवन को व्यवस्थित करने में लगता है (regulates)। प्रातःकाल उठकर अपने नित्य कृत्यों में प्रवृत्त हो जाता है।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष उत्कृष्ट ज्ञानवाला, विषयों में न फँसा हुआ, ज्ञान-प्रवण व संयमी होता है। यह बहुत ही उषाकाल में प्रबुद्ध होकर अपने नित्य कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है।

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

कर्म-स्तुति-स्वाध्याय

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया॥ ८॥

(१) **अस्य**=इस सोम का **वर्णः**=वरण करनेवाला व्यक्ति **त्वेषं रूपं कृणुते**=दीप्त रूप को बनाता है। सोमरक्षण द्वारा यह तेजस्वी बनता है। **सः**=वह सोम **यत्र आशयत्**=जहाँ निवास करता है, वहाँ **समृता**=संग्राम में **स्रिधः**=हिंसक शत्रुओं को, काम-क्रोध-लोभ आदि को **सेधति**=दूर करता है (=नष्ट करता है)। (२) **अप्सः**=कर्मों का सेवन करनेवाला, निरन्तर कर्मों में लगा हुआ यह सोमरक्षक पुरुष **स्वधया**=आत्मतत्त्व के धारण के हेतु से **दैव्यं जनम्**=देववृत्तिवाले लोगों को **याति**=जाता है। इन देववृत्तिवाले लोगों के सम्पर्क में इसकी चित्तवृत्ति विषय-प्रवण न होकर आत्मतत्त्व की ओर झुकाववाली होती है। यह **सुष्टुती सं नसते**=उत्तम स्तुति के साथ संगत होता है तथा **गोअग्रया**=सृष्टि के प्रारम्भ में ही जानेवाली इस वेदवाणी रूप गौ से **सम्**=संगत होता है। इस वाणी के सम्पर्क में अपने ज्ञान को उत्तरोत्तर बढ़ाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम दीप्त जीवनवाले व जीवन-संग्राम में जीतनेवाले होंगे। कर्मशील व सदा उत्तम संग वाले बनें। सदा स्तुति व स्वाध्याय में प्रवृत्त होंगे।

ऋषिः—**ऋषभो वैश्वामित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'दिव्यः सुपर्णः'

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः॥ ९॥

(१) **सोमः**=वीर्यशक्ति **उक्षा इव**=सेक्ता की तरह बनी हुई, शरीर के अंग-प्रत्यंग को सिक्त करती हुई, **यूथा**=प्राणों व इन्द्रियों के गणों के **परियन्**=चारों ओर गति करती हुई, अर्थात् इनका रक्षण करती हुई, **अरावीत्**=उस प्रभु का स्तवन करती है। अर्थात् सोमरक्षण से हमारे शरीरस्थ सभी इन्द्रियादि के गण ठीक बने रहते हैं और हमारा अन्तःकरण स्तुति-प्रवण होता है, हमारे मुखों से प्रभु के पवित्र स्तोत्र उच्चरित होते हैं। यह सोमरक्षक पुरुष **सूर्यस्य**=ज्ञान-सूर्य की **त्विषीः**=दीप्तियों को **अधि अधित**=आधिक्येन धारण करता है। खूब ज्ञानी बनता है। (२) **दिव्यः**=सदा ज्ञान के प्रकाश में रहनेवाला, **सुपर्णः**=मन का उत्तमता से पालन करनेवाला **क्षां अवचक्षत**=इस पृथिवीरूप

शरीर को सम्यक् देखता है। शरीर का भी पूरा ध्यान करता है। **सोमः**=यह शरीरस्थ सोम (वीर्यशक्ति) **क्रतुना**=ज्ञान व शक्ति के द्वारा **जाः**=उत्पन्न होनेवाले इनको **परिपश्यते**=सब दृष्टिकोणों से ध्यान करती है। यह सोमशक्ति इन्हें मस्तिष्क में 'दिव्य', मन में 'सुपूर्ण' व शरीर में पूर्ण स्वस्थ बनाती है।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें मस्तिष्क में सूर्य के समान ज्ञानदीप्त बनायेगा। हृदय में हम इस सोमरक्षण से पवित्र बनेंगे तथा शरीर में यह सोम ही हमें नीरोग बनायेगा।

शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले 'हरिमन्तः' ही अगले सूक्त के ऋषि हैं। ये सोम-स्तवन करते हुए कहते हैं—

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**हरिमन्तः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सर्वप्रिय वस्तु 'सोम'

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः॥ १॥

(१) **हरिम्**=रोगों का हरण करनेवाले इस सोम को **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं, इसे वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। **अरुषः न**=अत्यन्त आरोचमान-सा होता हुआ **धेनुभिः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणीरूप गौओं के साथ **संयुज्यते**=संयुक्त होता है। सुरक्षित सोम हमारे ज्ञानवर्धन का साधन बनता है। **सोमः**=यह सोम **कलशे**=सोलह कलाओं के आधारभूत इस शरीर में **अज्यते**=अलंकृत होता है। (२) यह सोम **वाचम्**=प्रभु की स्तुतिवाणी को **उदीरयति**=उच्चरित करता है, अर्थात् सोमरक्षण से हमारी स्तुति की वृत्ति बनती है। **मती हिन्वते**=यह सोमरक्षक पुरुष बुद्धिपूर्वक अपने को उन्नतिपथ पर प्रेरित करता है। यह सोम **पुरुष्टुतस्य**=अनन्त स्तुतिवाले उस प्रभु का **कितिचित्**=कितना ही **परिप्रियः**=सब दृष्टिकोणों से प्रिय है। वस्तुतः प्रभु ने यही सर्वोत्तम वस्तु हमें प्राप्त करायी है। इसी के रक्षण से हम प्रभु को भी प्राप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें स्तुतिवाला व बुद्धि से जीवन में चलनेवाला बनाता है। यह सोम प्रभु की सर्वप्रिय वस्तु है। इसके रक्षण से ही हमारा जीवन सुन्दर बनता है।

ऋषिः—**हरिमन्तः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सुगभस्तयो नरः

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु॥ २॥

(१) **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यवाले प्रभु के अत्यन्त प्रिय (परिप्रिय) **सोमम्**=सोम को **यदा**=जब **जठरे**=अपने अन्दर **आदुहुः**=(दुह प्रपूरणे) प्रपूरित करते हैं, तो **बहवः**=बहुत से **मनीषिणः**=बुद्धिमान् पुरुष **साकम्**=मिलकर **वदन्ति**=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं। वस्तुतः एक परिवार में सभी मिलकर बैठें और प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करें तो घर का वातावरण बड़ा सुन्दर बनता है। इस वातावरण में ही वासनाओं से ऊपर उठे रहने के कारण सोमरक्षण का सम्भव होता है। (२) **यत्**=जब **ईं**=निश्चय से **नरः**=मनुष्य **काम्यं मधु**=इस कमनीय (चाहने योग्य) सोम को **सनीडाभिः दशभिः**=इधर-उधर न भटककर अपने नियत कर्मों में एकाग्र (स-नीड) दस इन्द्रियों से **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं तो वे **सुगभस्तयः**=उत्तम ज्ञानरश्मियोंवाले होते हैं। इन्द्रियाँ जब इधर-उधर नहीं भटकतीं,

तो यह सोम शुद्ध बना रहता है। यह शुद्ध सोम शरीर में सुरक्षित होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। 'गभस्ति' शब्द का अर्थ 'हाथ' भी है। ये सोमरक्षक पुरुष उत्तम हाथोंवाले होते हैं, अर्थात् सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं।

भावार्थ—सोम को सुरक्षित करने पर हमारी स्तुति की वृत्ति बनती है। इन्द्रियाँ नियत कर्मों में लगी रहकर एकाग्र बनी रहें तो सोम का रक्षण होता है और हम उत्तम ज्ञान-रश्मियोंवाले व उत्तम कर्मोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**हरिमन्तः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सोमरक्षण द्वारा प्रभु की वाणी का श्रवण

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम्।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः॥ ३॥

(१) सोम का रक्षण करने पर यह सोमरक्षक पुरुष **अरममाणः**=संसार के विषयों में रममाण (फँसा हुआ) न होता हुआ **अति**=इन विषयों को लाँघकर **गाः अभि एति**=ज्ञान की वाणियों की ओर आता है। यह **सूर्यस्य**=उस ज्ञानसूर्य प्रभु की **दुहितुः**=दुहितृभूत इस वेदवाणी के **प्रियम्**=अत्यन्त प्रिय **तिरः**=हृदय-मन्दिर में तिरोहित रूप से वर्तमान **रवम्**=शब्द को **अभि एति**=लक्ष्य करके गतिवाला होता है। इस सोमरक्षक पुरुष का लक्ष्य यह होता है कि यह हृदयस्थ प्रभु से उच्चारित हो रहे इस वेदवाणी के शब्दों को सुन सके। (२) **अस्मै**=इस शब्द के लिये ही यह **जोषम्**=प्रीतिपूर्वक उपासन को **अन्वभरत्**=अपने में भरनेवाला होता है। इस उपासना के द्वारा यह प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करके उन शब्दों को सुननेवाला होता है। इन शब्दों को सुननेवाला यह **विनंगृसः** (विनं कमनीयं स्तोत्रं गृह्णाति इति सा०)=स्तोता **द्वयीभिः**=प्रकृति व आत्मा को ज्ञान देनेवाली, अपरा व परा दो प्रकार की **जामिभिः**=हमारे जीवन में सद्गुणों को जन्म देनेवाली **स्वसृभिः**=आत्मतत्त्व की ओर ले जानेवाली वेदवाणियों से **संक्षेति**=संगत होता है (क्षि गतौ)।

भावार्थ—सोमरक्षण से सांसारिक विषयों में न फँसकर वेद वाणियों से संगत होते हैं।

ऋषिः—**हरिमन्तः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'पुरन्धिवान्-यज्ञसाधनः' सोमः

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः।
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते॥ ४॥

(१) यह **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **नृधूतः**=(नृ नये) प्रगतिशील मनुष्यों से शोधित होता है। वे वासनामल को कम्पित करके दूर करनेवाले होते हैं। **अद्रिषुतः**=उपासकों से यह अपने अन्दर उत्पन्न किया जाता है। **बर्हिषि प्रियः**=वासनाशून्य हृदय के निमित्त यह प्रिय होता है। सोमरक्षण से ही हृदय की पवित्रता सिद्ध होती है। यह सोम **गवां पतिः**=इन्द्रियों का रक्षक होता है। सब इन्द्रियों को अपने कार्य करने की शक्ति इस सोम से ही प्राप्त होती है। **प्रदिवः**=यह प्रकृष्ट ज्ञानवाला होता है, ज्ञानाग्नि का यह सोम ही तो ईंधन बनता है। **ऋत्वियः**=यह 'ऋतौ जातः' जीवन के सब कार्यों के नियमित होने पर विकसित होता है। शरीर में सोम के विकास के लिये जीवन की नियमित गति आवश्यक है, सब कार्यों को ठीक समय पर करने से ही धातुओं का विकास ठीक से होता है। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! यह सोम **पुरन्धिवान्**=प्रशस्त

द्यावापृथिवीवाला है (नि० ३।३०), तेरे शरीर व मस्तिष्क को उत्तम बनानेवाला है। **मनुषः यज्ञसाधनः**=विचारशील पुरुष के सब यज्ञों को यही सिद्ध करनेवाला है। सोम ही तो सब यज्ञों की सिद्धि के लिये शक्ति प्राप्त कराता है। **शुचिः**=यह पवित्र है। **ते**=तेरे लिये **धिया**=बुद्धि के साथ **पवते**=प्राप्त होता है, तेरी बुद्धि को यही तीव्र बनानेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही इन्द्रियों को सशक्त बनाता है, हमारे ज्ञान को बढ़ाता है। यह सोम ही यज्ञों को सिद्ध करने के लिये शक्ति प्राप्त कराता है। मस्तिष्क व शरीर को प्रशस्त करता है।

ऋषिः—**हरिमन्तः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

नृबाहुभ्यां चोदितः

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः ॥ ५ ॥

(१) **नृबाहुभ्यां चोदितः**=प्रगतिशील मनुष्य की बाहुओं से यह प्रेरित होता है, अर्थात् सदा क्रिया में तत्पर रहने से यह शरीर में ही व्याप्त होता है। **धारया**=धारण के हेतु से **सुतः**=यह उत्पन्न किया गया है, इसके धारण से ही शरीर का धारण होता है 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'। हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! यह **सोमः**=सोम (वीर्यशक्ति) **सुतः**=उत्पन्न हुआ **ते पवते**=पवित्रता से तुझे प्राप्त होता है। (२) इस सोम को प्राप्त करके तू **क्रतून्**=प्रज्ञानों व शक्तियों को **आप्राः**=अपने में भरता है। **अध्वरे**=इस जीवन-यज्ञ में **मतीः**=उत्कृष्ट बुद्धियों को **समजैः**=सम्यक् जीतता है। उत्कृष्ट बुद्धियोंवाला तू बनता है। **द्रुषत् वेः न**=वृक्ष पर बैठनेवाले पक्षी की तरह **हरिः**=यह सब रोगों का हरण करनेवाला सोम **चम्वोः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **आसदत्**=आसीन होता है। मस्तिष्क को यह सोम ज्ञानदीप्त बनाता है, तो इस पृथिवीरूप शरीर को यह दृढ़ बनानेवाला होता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता सोमरक्षण का साधन है। जितना-जितना हम आत्मस्वरूप का चिन्तन करेंगे, उतना ही सोम हमारे में स्थिर रहेगा। सोम की स्थिरता हमारे 'प्रज्ञान व शक्ति' को भरती हुई हमारी बुद्धि का वर्धन करेगी।

ऋषिः—**हरिमन्तः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स्तनयन् अक्षित कवि

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥

(१) **कवयः**=क्रान्तप्रज्ञ-तत्त्वद्रष्टा, **अपसः**=कर्मशील, **मनीषिणः**=मन का शासन करनेवाले लोग **अंशुम्**=प्रकाश की रश्मियों को उत्पन्न करनेवाले इस सोम को **दुहन्ति**=अपने में प्रपूरित करते हैं। यह सोम **स्तनयन्तम्**=गर्जना करनेवाला है, प्रभु का स्तवन करनेवाला है, हमें प्रभु-प्रवण बनाता है। **अक्षितम्**=हमें क्षीण नहीं होने देता, सोमरक्षण से हमारी शक्ति ठीक बनी रहती है। **कविम्**=यह हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाता है, हमारी बुद्धि को सूक्ष्म करता है, मन में 'स्तनयन्', शरीर में 'आक्षित' तथा मस्तिष्क में 'कवि' बनाता है। (२) सोम का अपने में दोहन (प्रपूरण) करने पर **ई**=निश्चय से **गावः**=ज्ञान की वाणियाँ व **मतयः**=बुद्धियाँ **संयतः**=परस्पर संगत हुईं-हुईं **संयन्ति**=इस सोमरक्षक को प्राप्त होती हैं। परिणामतः, ये सोमरक्षक पुरुष **ऋतस्य योना**=ऋत

के उत्पत्ति-स्थान, **सदने**=उस सर्वाधार प्रभु में, सब के आशयभूत प्रभु में, **पुनर्भुवः**=फिर प्रकट होनेवाले होते हैं। अर्थात् ये ब्रह्मलोक में निवासवाले होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें 'प्रभु की स्तुति करनेवाला, अक्षीण, क्रान्तदर्शी' बनाता है। इसके रक्षण से हमें ज्ञान व बुद्धि प्राप्त होती हैं (धी=विद्या) तथा अन्ततः हम ब्रह्म के साथ विचरते हैं।

ऋषिः—**हरिमन्तः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

महो दिवो धरुणः

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः॥ ७॥

(१) यह सोम **पृथिव्याः नाभा**=इस शरीर रूप पृथिवी के केन्द्र में होता हुआ, अर्थात् शरीर की सारी शक्तियों का जन्म देनेवाला होता हुआ **महः दिवः धरुणः**=महान् द्युलोक का, मस्तिष्क का **धरुणः**=धारण करनेवाला है। सोम शरीर को सशक्त बनाता है, मस्तिष्क का धारण करता है। **अपां ऊर्मौ**=कर्मों की तरंगों में तथा **सिन्धुषु अन्तः**=ज्ञान-समुद्रों में **उक्षितः**=यह सिक्त होता है। अर्थात् निरन्तर कर्मों में लगे रहना तथा ज्ञान-समुद्र में स्नान करना (=स्वाध्याय में तत्पर रहना) सोमरक्षण का साधन बनता है। (२) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का **वज्रः**=वज्र होता है। इसी के रक्षण से यह सभी रोगादि शत्रुओं का संहार कर पाता है। **वृषभः**=यह हमें शक्तिशाली बनानेवाला है। **विभूवसुः**=यह सोम ही इन्द्र का व्यापक धन है। यह **सोमः**=सोम **चारु**=बड़ी सुन्दरता से **हृदे**=हृदय के लिये **मत्सरः**=आनन्द का संचार करता हुआ **पवते**=प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोम शरीर का केन्द्र में स्थित हुआ-हुआ मस्तिष्क का धारण करनेवाला है। क्रियाशीलता व ज्ञानपरता के द्वारा शरीर में सुरक्षित होता है। यही हमारा शत्रु-संहारक वज्र है, शक्ति को देनेवाला तथा व्यापक धन है। हृदय में सोम ही उल्लास को पैदा करता है।

ऋषिः—**हरिमन्तः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ज्ञान व शक्ति रूप धन

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि॥ ८॥

(१) हे **सुक्रतो**=शोभनप्रज्ञ व शोभनशक्ते सोम! **सः**=वह **तु**=तो **पार्थिवं रजः**=इस पार्थिव लोक को **परिपवस्व**=चारों ओर प्राप्त हो। अर्थात् तेरा शरीर में ही व्यापन हो। तू **स्तोत्रे**=स्तोता के लिये **च**=और **आधून्वते**=वासनाओं को अपने से कम्पित करके दूर करनेवाले के लिये **शिक्षन्**=(धनादिकं प्रयच्छन्) शक्ति व ज्ञान रूप धन को देनेवाला हो। शरीर में व्याप्त हुआ-हुआ सोम हमें सशक्त बनाता है। यही सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर हमारे ज्ञान को बढ़ाता है। (२) हे सोम! तू **नः**=हमें **सादनस्पृशः**=इस शरीर रूप गृह के साथ सम्पर्कवाले **वसुनः**=शक्ति व ज्ञानरूप धन से **मा निर्भाक्**=पृथक् मत कर। हे सोम! हम तेरे रक्षण से **पिशंगं** (पिश् To adorn, decorate)=जीवन को अलंकृत करनेवाले **बहुलं रयिम्**=खूब ही ज्ञान व शक्ति रूप धन को **वसीमहि**=धारण करें।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हमें वह ज्ञान व शक्ति रूप धन प्राप्त हो जो हमारे जीवन को अलंकृत करे।

ऋषिः—हरिमन्तः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

पवित्र 'इन्द्रियाँ व हृदय'

आ तू न॑ इन्दो शतदात्व॑श्व्यं॑ सहस्र॑दातु पशुमद्धिर॑ण्यवत्।
उप॑ मास्व बृहती रे॒वती॒रिषोऽधि॑ स्तोत्रस्य॑ पवमान नो गहि॥ ९॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **नः**=हमारे लिये **तु**=अवश्य **अश्व्यम्**=उस इन्द्रियाश्व समूह को **आ उपमास्व**=सर्वथा बना, जो कि **शतदातु सहस्रदातु**=शतवर्षपर्यन्त सहस्रों वासनाओं को खण्डित करनेवाला हो (दाप् लवने) जो वासनाओं में न फँसे। तथा **पशुमत्**=(कामः पशुः क्रोधः पशुः) प्रशस्त काम व क्रोधवाला हो। प्रशस्त काम-क्रोध वे ही हैं, जो हमारे वश में हों। **हिरण्यवत्**=जो इन्द्रियसमूह प्रशस्त ज्ञान-ज्योतिवाला है 'हिरण्यं वै ज्योति'। (२) हे सोम! तू हमारे लिये **बृहतीः**=वृद्धि की कारणभूत **रेवतीः**=प्रशस्त ज्ञान-धनवाली **इषः**=प्रेरणाओं को (उपमास्व) करनेवाला हो सोमरक्षण से पवित्र हृदय बनकर हम प्रभु की प्रेरणाओं को सुननेवाले बनें, जो प्रेरणायें हमारी वृद्धि का कारण बनें तथा हमारे ज्ञान-धन को प्रशस्त करें। हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **नः**=हमारे लिये **स्तोत्रस्य अधिगहि**=स्तोत्र का आधिक्येन ग्रहण करानेवाला हो। सोमरक्षण के द्वारा हम प्रभु के स्तोत्रों को करने की वृत्तिवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण हमारे इन्द्रियसमूह को वासनाओं से आक्रान्त न होने दे। इससे हम पवित्र हृदय बनकर प्रभु प्रेरणाओं को सुनें। इस सोमरक्षण से हमारी वृत्ति प्रभु-स्तवन की हो।

सोमरक्षण द्वारा इन्द्रियों को व हृदय को पवित्र बनानेवाला 'पवित्र' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पवित्रः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

सत्य की नौकायें

स्रक्वे॑ द्रप्सस्य॑ धम॑तः सम॑स्वरन्नृतस्य॑ योना॑ सम॑रन्त नाभ॑यः।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असु॑रश्चक्र आरभे॑ सत्यस्य॑ नाव॑ः सुकृत॑मपीपरन्॥ १॥

(१) **स्रक्वे**=इस उत्पन्न शरीर में **धमतः**=(Throw away) सब बुराइयों को परे फेंकते हुए **द्रप्सस्य**=सोमकणों का (Drop) **समस्वरन्**=सम्यक् स्तवन करते हैं। इस सोम के गुणों का स्मरण करते हुए व इसका रक्षण करते हुए **नाभयः**=(णह बन्धने) इस सोम को अपने अन्दर बाँधनेवाले **ऋतस्य योना**=ऋत के मूल उत्पत्ति-स्थान प्रभु में **समरन्त**=गतिवाले होते हैं। (२) **सः**=वह सोम **आरभे**=सब कार्यों को ठीक से प्रारम्भ करने के लिये **त्रीन् मूर्ध्नः**=तीन समुच्छित लोकों को **चक्रे**=करता है। शरीर को स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से शिखर पर पहुँचाता है, मन को निर्मलता के शिखर पर ले जाता है तथा मस्तिष्क को ज्ञानदीप्ति के शिखर पर एवं शरीर, मन व मस्तिष्क रूप पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को यह उन्नत करता है। यह सोम इस प्रकार **असुरः**=(असून् राति) सब प्राणशक्तियों का संचार करनेवाला होता है। इस सोम के द्वारा हमारा जीवन असत् से दूर होकर सत् को प्राप्त होता है। अब शरीर में मृत्यु न होकर अमृतत्त्व है, मन में असत् न होकर सत् है, मस्तिष्क में तमस् न होकर ज्योति है ये **सत्यस्य नावः**=सत्य की नौकायें **सुकृतम्**=पुण्यशाली व्यक्ति को **अपीपरन्**=इस भवसागर के पार ले जानेवाली होती हैं।

भावार्थ—सोम ही सब बुराइयों का दूर करनेवाला है, यह ही हमें प्रभु के समीप पहुँचाता है। सोम असत्य को दूर करके हमें 'स्वस्थ शरीर, निर्मल मन व दीप्त मस्तिष्क' प्राप्त कराता है। ये सत्य की नौकायें हमें भवसागर को तैरने में समर्थ करती हैं।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'सम्यञ्चः-महिषाः-सिन्धोः ऊर्मौ'

सम्यक्सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन्॥ २॥

(१) **सम्यञ्चः**=सम्यक् गतिवाले, उत्तमता से कार्यों को करनेवाले, **महिषाः**=प्रभु के पूजक **सम्यक्**=अच्छी प्रकार **अहेषत**=सोम को शरीर में प्रेरित करते हैं। **वेनाः**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाले लोग **सिन्धोः ऊर्मौ**=ज्ञान-समुद्र की तरंगों में इस सोम को **अधि अवीविपन्**=आधिक्येन कम्पित करते हैं। अर्थात् जैसे झाड़कर कपड़े की धूल को अलग किया जाता है, उसी प्रकार ज्ञान-तरंगों में झाड़कर इस सोम को पवित्र किया जाता है। ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता। वासनाएँ ही तो सोम को मलिन करती हैं। (२) **मधोः**=इस सारभूत मधुतुल्य सोम की **धाराभिः**=धारणशक्तियों से **अर्कम्**=उस अर्चनीय प्रभु को **जनयन्तः**=अपने में प्रादुर्भूत करते हुए ये उपासक **इत्**=निश्चय से **इन्द्रस्य**=उस प्रभु की, प्रभु से दी गई **प्रियां तन्वम्**=प्रिय तनु को, शरीर को **अवीवृधन्**=बढ़ाते हैं। इस शरीर को सब शक्तियों से युक्त करते हैं। एवं सोम शरीर को सब शक्तियों से सम्पन्न करता हुआ प्रभु का दर्शन करानेवाला होता है।

भावार्थ—उत्तम कर्मों में लगे रहना व पूजन सोमरक्षण के साधन हैं। स्वाध्याय में लगे रहने से यह सोम पवित्र बना रहता है। सोमरक्षण से प्रभु का दर्शन होता है और यह शरीर सब शक्तियों से सम्पन्न बनता है।

सूचना—मन्त्र में 'सम्यक् शब्द उत्तम कर्मों का संकेत करता है, 'महिषाः' उपासना का तथा 'सिन्धोः ऊर्मौ' ज्ञान का। एवं सोमरक्षण के लिये 'ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों का समन्वय आवश्यक है। ये तीनों क्रमशः Head, hands and heart (मस्तिष्क, हाथों व हृदय) को पवित्र करते हैं।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

वाग्देवी की उपासना व सोमरक्षण

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्॥ ३॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार **पवित्रवन्तः**=पवित्र मस्तिष्क, हृदय व हाथोंवाले लोग **वाचं परि आसते**=ज्ञान की वाणियों का समन्तात् सेवन करते हैं। अर्थात् सदा स्वाध्याय करते हैं। **एषाम्**=इन स्वाध्यायशील लोगों के **व्रतम्**=इस स्वाध्याय के व्रत को **प्रत्नः पिता**=वह सनातन पिता प्रभु **अभिरक्षति**=रक्षित करते हैं। अर्थात् प्रभु कृपा से इनका यह स्वाध्याय का व्रत टूटता नहीं। (२) **वरुणः**=अपने को व्रतों के बन्धन में बाँधनेवाला यह व्यक्ति (वरुणः=पाशी) **महः समुद्रम्**=इस महान् ज्ञान-समुद्र को **तिरः दधे**=अपने में तिरोहित करके धारण करता है। इस प्रकार **धीराः**=ये ज्ञान में रमण करनेवाले व्यक्ति **इत्**=ही **धरुणेषु**=सोम के धारण के होने पर **आरभम्**=उत्तम कार्यों का प्रारम्भ करने के लिये **शेकुः**=समर्थ होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से स्वाध्याय के व्रत के अविच्छिन्न रूप से चलने पर सोम का रक्षण होता है। इस सोमरक्षण के होने पर ही हम किन्हीं भी महत्त्वपूर्ण कार्यों को कर पाते हैं।

ऋषिः—**पवित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सुन्दरतम जीवन

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४ ॥

(१) **सहस्रधारे**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाले उस प्रभु में **दिवः नाके**=प्रकाश के सुखमय लोक में स्थित हुए-हुए **ते**=वे सोमरक्षक पुरुष **अव समस्वरन्**=संसार के विषयों से दूर होकर प्रभु का गुणगान करते हैं। 'सदा प्रभु में स्थित होना तथा स्वाध्याय द्वारा प्रकाशमय लोक में स्थित होने का प्रयत्न करना' ही विषयों से बचने का तरीका है। ये लोग व्यवहार में भी **मधुजिह्वाः**=मधुरवाणीवाले होते हैं कभी कड़वे शब्द नहीं बोलते और **असश्चतः**=कहीं आसक्त नहीं होते। अनासक्त भाव से अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते चलते हैं। (२) ये व्यक्ति **अस्य स्पशः**=इस प्रभु के देखनेवाले होते हैं (स्पश् To perceive clearly) **न निमिषन्ति**=कभी पलक नहीं मारते, अर्थात् सो नहीं जाते, अप्रमत्त रहते हैं। **भूर्णयः**=सदा पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। **पदे पदे**=कदम-कदम पर **पाशिनः**=काम-क्रोध आदि पशुओं को पाश में बाँधनेवाले, **सेतवः सन्ति**=लोगों को भवसागर से पार करने के लिये पुल के समान होते हैं। स्वयं काम-क्रोध को जीतते हैं तथा औरों को ज्ञानोपदेश देकर भवसागर से पार करने में सहायक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-भक्त सदा उपासना व स्वाध्याय में प्रवृत्त होता है। मधुरवाणीवाला, अनासक्त, प्रभु का देखनेवाला, अप्रमत्त व धारणात्मक कर्मों में लगा हुआ होता है। काम-क्रोध को वश में करनेवाला व औरों को ज्ञान देकर तरानेवाला होता है।

ऋषिः—**पवित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'पिता माता' का उपासन

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान्।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥

(१) प्रभु पिता है और वेद (ज्ञान) माता है 'स्तुता मया वरदा वेदमाता'। **ये**=जो लोग **पितुः**=सब के पिता प्रभु का तथा **मातुः**=जीवन के निर्माण करनेवाली वेदमाता का **अधि आ समस्वरन्**=आधिक्येन स्तवन करते हैं, प्रभु की उपासना व वेद के अध्ययन को करते हैं, वे **ऋचा**=इन ज्ञान की वाणियों से (ऋग्वेद=विज्ञान वेद) **शोचन्तः**=दीप्त होते हुए और **अव्रतान्**=न करने योग्य कार्यों को **सन्दहन्तः**=भस्म करते हुए होते हैं। इन पिता माता के उपासकों का जीवन ज्ञान से दीप्त होता है और अपकर्मों से रहित होता है। (२) ये लोग **मायया**=कर्म व प्रज्ञान के द्वारा **भूमनः**=इस पृथिवी से **दिवस्परि**=और द्युलोक से अर्थात् शरीर व मस्तिष्क से **असिक्नीम्**=काली **त्वचम्**=त्वचा को आवरण को, **अपधमन्ति**=दूर कर देते हैं। शरीर व मस्तिष्क के विकारों को दूर करना ही इनकी काली त्वचा को दूर करना है। यह काली त्वचा 'इन्द्र द्विष्टाम्' प्रभु के लिये प्रीतिकर नहीं। अर्थात् विकृत शरीर व विकृत मस्तिष्कवाला व्यक्ति कभी प्रभु का प्रिय नहीं हो सकता।

भावार्थ—हम प्रभु व वेदवाणी के उपासक बनें। ज्ञान से दीप्त व अपकर्मों के दूर करनेवाले हों। शरीर व मस्तिष्क को उज्ज्वल बनायें।

ऋषिः—**पवित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

न तरन्ति दुष्कृतः

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥

(१) 'मा' धातु 'प्रमाता प्रमाण प्रमेय' आदि शब्दों में 'ज्ञान' इस अर्थ की वाचक है। 'मान' है। प्रभु सनातन गुरु होने से 'प्रत्नमान' हैं। **ये**=जो लोग **प्रत्नात् मानात्**=उस गुरुओं के गुरु, सनातन गुरु प्रभु से **अधि आ समस्वरन्**=आधिक्येन खूब ही ज्ञान को प्राप्त करते हैं, वे **श्लोकयंत्रासः**=इन छन्दोबद्ध वेदवाणियों के द्वारा अपने जीवन का नियंत्रण करते हैं। **रभसस्य**=शक्ति के पुञ्ज उस प्रभु का **मन्तवः**=मनन करनेवाले होते हैं। (२) इनके विपरीत **अनक्षासः**=प्रभु को न देखनेवाले **बधिराः**=प्रभु की वाणियों को न सुननेवाले लोग **ऋतस्य पन्थाम्**=सत्य व यज्ञ के मार्ग को **अप अहासत**=सुदूर छोड़नेवाले होते हैं, धर्ममार्ग से ये दूर हो जाते हैं। ये **दुष्कृतः**=अशुभ कर्मों में प्रवृत्त लोग न **तरन्ति**=कभी तैरते नहीं। ये भवसागर में डूबते ही हैं।

भावार्थ—हम हृदयस्थ प्रभु से ज्ञान प्राप्त करें। उस ज्ञान के अनुसार जीवन का नियन्त्रण करें। प्रभु के न देखनेवाले (न ध्यान करनेवाले) प्रभु की वाणी को न सुननेवाले लोग ऋत के मार्ग से विचलित हो जाते हैं। ये दुष्कृत लोग कभी भवसागर को तैरते नहीं।

ऋषिः—**पवित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अद्रुहः-सुदृशः-नृचक्षसः

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥

(१) **सहस्रधारे**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाले **वितते**=सर्वत्र विस्तृत, सर्वव्यापक, **पवित्रे**=पवित्र प्रभु में **वाचम्**=अपनी वाणी को **आपुनन्ति**=सर्वथा पवित्र करते हैं। प्रभु की उपासना के द्वारा वाणी की पवित्रता होती ही है। ये **कवयः**=क्रान्तद्रष्टा-तत्त्वज्ञानी, **मनीषिणः**=मन पर शासन करनेवाली बुद्धिवाले होते हैं। वाणी की पवित्रता इन्हें कवि व मनीषी बनाती हैं। (२) **एषाम्**=इन कवियों व मनीषियों के **रुद्रासः**=प्राण (प्राणा वै रुद्राः जै० ८।२।७) **इषिरासः**=खूब गतिशील होते हैं, अर्थात् इन्हें प्राणशक्ति गतिमय बनाती है। **अद्रुहः**=ये अपनी गतियों के द्वारा किसी का द्रोह नहीं करते। **स्पशः**=प्राणसाधना द्वारा ये प्रभु-दर्शन में प्रवृत्त होते हैं, प्रभु के देखनेवाले होते हैं। **स्वञ्चः**=उत्तम कर्मों द्वारा प्रभु का पूजन करनेवाले होते हैं। **सुदृश**=उत्तम दृष्टिकोणवाले होते हैं। **नृचक्षसः**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाले होते हैं, ये केवल अपने लिये नहीं जीते।

भावार्थ—प्रभु में अपने को पवित्र करनेवाले लोग खूब गतिमय, द्रोहशून्य, उत्तम दृष्टिकोणवाले व सबका ध्यान करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**पवित्रः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ऋतस्य गोपाः न दभाय

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥

(१) **ऋतस्य**=ऋत का, सत्य व यज्ञ का **गोपाः**=रक्षक **न दभाय**=हिंसित नहीं होता। **स सुक्रतुः**=वह उत्तम कर्मों का करनेवाला **हृदि अन्तः**=हृदय के अन्दर भी **पवित्रा**=तीन पवित्र भावनाओं को—'प्रेम, करुणा व त्याग की वृत्ति को' **आदधे**=धारण करता है। इसके हृदय में 'काम' के स्थान में 'प्रेम' होता है, 'क्रोध' के स्थान में 'करुणा' तथा 'लोभ' के स्थान 'त्याग' की भावना होती है। (२) यह ऋत का रक्षक इस बात को नहीं भूलता कि **विद्वान्**=ज्ञानी **सः**=वे **विश्वा भुवनानि**=सब लोकों को **पश्यन्**=देखते हुए प्रभु **अजुष्टान्**=यज्ञादि कर्मों का प्रीतिपूर्वक सेवन न करनेवाले **अव्रतान्**=सब पुण्य कर्मों से रहित व्यक्तियों को **कर्ते**=गढ्ढे में **अवविध्यति**=अवाङ्मुख ताड़ित करते हैं, अर्थात् इन्हें आसुरी योनियों में जन्म देते हैं, असुर्य लोकों में डालते हैं। मनुष्य योनि को न प्राप्त करके ये पशु-पक्षियों की योनि में जाते हैं।

भावार्थ—ऋत (सत्य) के रक्षक के हृदय में 'प्रेम, करुणा व त्याग' होता है। यह इस बात का स्मरण रखता है कि प्रभु अव्रत लोगों को नीच योनियों में जन्म देते हैं।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

कर्तं अवपदाति अप्रभुः

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः॥ ९॥

(१) प्रभु ऋत के तन्तु हैं, सब लोक-लोकान्तरों को अपने प्रोत करनेवाले हैं 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'। ये **ऋतस्य तन्तुः**=ऋत के सूत्र रूप प्रभु **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **विततः**=विस्तृत व व्याप्त होते हैं। पवित्र हृदयवाले पुरुष में प्रभु का निवास होता है। इसकी **जिह्वायाः**=जिह्वा के **अग्रे**=अग्रभाग में भी प्रभु ही **आ (विततः)**=सदा विस्तृत होते हैं, अर्थात् यह जिह्वा से भी सदा प्रभु के नाम का उच्चारण करता है। (२) इस **वरुणस्य**=सब बुराइयों का निवारण करनेवाले प्रभु की **मायया**=प्रज्ञा से **धीराः**=ये धीर पुरुष **तत् समिनक्षन्तः**=प्रभु को ही अपने में व्याप्त करते हुए **आशत**=कर्मों में व्याप्त होते हैं। हृदय में प्रभु का स्मरण करते हुए ही कर्मों को करते हैं। इसी कारण ये अपवित्र कर्मों की ओर नहीं झुकते। **अत्रा**=यहाँ **अ-प्रभुः**=हृदय में प्रभु को न आसीन करनेवाला व्यक्ति **कर्तं अवपदाति**=गढ्ढे में नीचे की ओर जाता है। विषय-वासनाओं में फँसकर यह जीवन को विनष्ट कर लेता है।

भावार्थ—हृदयों में प्रभु स्मरण हो, वाणी में प्रभु का नाम। इस प्रकार हमारे कर्म पवित्र होंगे। प्रभु को भूल जाने पर गढ्ढे में गिरेंगे ही।

प्रभु स्मरण करनेवाला उन्नति के लिये दृढ़-निश्चयी पुरुष 'कक्षीवान्' है। यह कहता है कि—

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

वाजी-अरुषः

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः॥ १॥

(१) **शिशुः न जातः**=उत्पन्न हुए-हुए शिशु के समान उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **वने**=सम्भजन में **अवचक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। जैसे उत्पन्न बालक क्रन्दन करता है, उसी प्रकार शरीर में सोम का विकास होने पर यह सोमी पुरुष प्रभु का स्मरण करनेवाला बनता है।

यद्=जब यह **स्वः सिषासति**=उस स्वयं देदीप्यमान् ज्योति प्रभु को सम्भक्त करने की कामनावाला होता है, तो यह **वाजी**=शक्तिशाली बनता है और **अरुषः**=आरोचमान होता है। (२) यह उपासक **पयोवृधा**=(क्षत्रं वै पयः श० १२।७।३।८) क्षत्र व बल के वर्धक **दिवः**=ज्ञान प्रकाश को दीप्त करनेवाले **रेतसा**=रेतस् से (सोम से) **सचते**=समवेत होता है। सो हम **शम्**=उस सोम से **सुमती**=कल्याणी मति के साथ **सप्रथः शर्म**=सब उत्तम वस्तुओं के विस्तारवाले कल्याण की, विस्तृत कल्याण की **ईमहे**=याचना करते हैं। सोमरक्षण से हमें सद्बुद्धि प्राप्त होगी और हम शक्तियों के विस्तारवाले कल्याण को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—सोम का विकास होते ही हम प्रभु-स्मरण की वृत्तिवाले बनते हैं, शक्तिशाली होते हैं, ज्ञान से आरोचमान होते हैं। सोमरक्षण से ही कल्याणीमति व विस्तृत कल्याण प्राप्त होता है।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'दिवः स्कम्भः-धरुणः' अंशुः

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः॥ २॥

(१) **दिवः**=ज्ञान-प्रकाश का **यः**=जो **स्कम्भः**=धारण करनेवाला, **धरुणः**=शरीर की सब शक्तियों का आधार **स्वाततः**=(सु आ ततः) सम्यक्तया शरीर में चारों ओर व्याप्त है। **आपूर्णः**=सब दृष्टिकोणों से पूर्ण **अंशुः**=यह सोम **विश्वतः पर्येति**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला होता है। (२) **सः**=वह यह सोम **इमे**=इन **मही रोदसी**=महत्त्वपूर्ण द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **यक्षत्**=परस्पर संगत करता है, अर्थात् शरीर व मस्तिष्क दोनों को ही उन्नत करता है। **आवृता**=अपने-अपने कार्य में आवर्तनवाले **समीचीने**=मिलकर चलनेवाले इन मस्तिष्क व शरीर को यह **दाधार**=धारण करता है। यह **कविः**=हमें क्रान्तप्रज्ञ, तत्त्वद्रष्टा बनानेवाला सोम हमारे जीवन में **इषः**=प्रेरणाओं को **सं (दाधार)**=धारण करता है। अर्थात् हमें पवित्र हृदयबनाकर प्रभु-प्रेरणाओं को सुनने के योग्य बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को संगत करता हुआ उन्नत करता है, दोनों को ही उन्नत बनाता है। इन दोनों द्यावापृथिवी को ठीक करके यह हृदयान्तरिक्ष में प्रभु प्रेरणाओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'उस्त्रियः वृषा' (सोमः)

मही प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।
ईशे यो वृष्टेरित उस्त्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः॥ ३॥

(१) **ऋतं यते**=ऋत, अर्थात् सत्य व यज्ञ की ओर जानेवाले के लिये **सुकृतम्**=बड़ी अच्छी प्रकार उत्पन्न किया हुआ **सोम्यं मधु**=यह सोम सम्बन्धी सारभूत पदार्थ **महि प्सरः**=महान् भक्षणीय पदार्थ होती है। सोम का भक्षण, अर्थात् सोम का अपने अन्दर रक्षण ही मनुष्य को ऋत का पालन करने के योग्य बनाता है। इस सोमरक्षण से **अदितेः**=(अ-दिति=खण्डन) स्वास्थ्य का **ऊर्वी गव्यूतिः**=विशाल मार्ग होता है। अर्थात् सोमरक्षण से हम स्वस्थ व दीर्घजीवन को प्राप्त करते हैं। (२) यह सोम वह वस्तु है **यः**=जो **वृष्टेः ईशे**=धर्ममेघ समाधि में आनन्द की वर्षा को प्राप्त करानेवाली है। **इतः**=इधर जीवन में **उस्त्रियः**=(उस्त्र=a ray of light) यह प्रकाश की

रश्मियोंवाला है। **वृषा**=शरीर में शक्ति का संचार करनेवाला है। **अपां नेता**=कर्मों का यह सोम प्रणयन करनेवाला है। **यः**=जो सोम **इतः**=इस लोक से हमारा **ऊतिः**=रक्षण करनेवाला है वह **ऋग्मियः**=स्तोतव्य है। शरीर में रोगों से बचाता हुआ, मन में वासनाओं से बचाता हुआ तथा मस्तिष्क में मन्दता (Dullness) से बचाता हुआ यह सोम स्तुति के योग्य क्यों न हो?

भावार्थ—सोम ही ऋत के अनुयायी के लिये महान् भोजन है, सोम (वीर्य) ही सर्वोत्तम रक्षणीय वस्तु है। यह सोम स्वस्थ दीर्घजीवन को देता है, धर्ममेघ समाधि में यही आनन्द की वृष्टि का कारण होता है। प्रकाश व शक्ति का यही मूल है।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'ऋतस्य नाभिः, अमृतं' (सोम)

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः॥ ४॥

(१) 'नभस्' शब्द जल (water) का वाचक होता हुआ यहाँ रेतःकणों (सोम) का वाचक है 'आपः रेतो भूत्वा०'। **आत्मन्वत् नभः**=यह आत्मज्ञान के प्रकाशवाला सोम (=आत्मज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करानेवाला सोम) **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति को तथा **पयः**=(क्षत्रं वै पयः श० १२।७।३।८) शक्ति को **दुह्यते**=दोहा जाता है। अर्थात् सोम से ज्ञानदीप्ति व शक्ति प्राप्त होती है। यह सोम **ऋतस्य नाभिः**=ऋत का बन्धन करनेवाला है। हमारे जीवनों में सोम ही ऋत का स्थापन करता है। यह सोम **अमृतं विजायते**=हमारे लिये अमृत हो जाता है। (२) **समीचीनाः**=मिलकर सम्यक् गतिवाले **सुदानवः**=सम्यक् वासनाओं का दान (लवन, दाप् लवने), छेदन करनेवाले, वासनाओं को काटनेवाले **नरः**=व्यक्ति ही **तम्**=उस प्रभु को **प्रीणन्ति**=प्रीणित करते हैं। प्रभु इन समीचीन सुदानु पुरुषों से ही प्रसन्न होते हैं। ये **पेरवः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले लोग **हितम्**=प्रभु द्वारा शरीर में स्थापित इस सोम को **अव**=वासनाओं से दूर होकर **मेहन्ति**=इस शरीर रूप पृथिवी में ही सिक्त करते हैं। सोम कणों का यह शरीर में सेचन ही वस्तुतः उन्हें 'पेरु'=अपना पालन व पूरण करनेवाला बनाता है।

भावार्थ—सोम ही हमारे जीवनों में ऋत का स्थापन करता है और हमारी अमरता (नीरोगता) का कारण बनता है, सो पेरु लोग सोम को शरीर में ही सिक्त करते हैं।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ऊर्मिणा सचमानः सोमः अरावीत्

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम्।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे॥ ५॥

(१) **अंशुः**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाला यह सोम **ऊर्मिणा**=(light) ज्ञान के प्रकाश से **सचमानः**=समवेत हुआ-हुआ **अरावीत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता है, स्तवन करता है। सोमरक्षण से जहां ज्ञान बढ़ता है, वहां प्रभु-स्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है। यह सोम **मनुषे**=विचारशील पुरुष के लिये **देवाव्यम्**=दिव्यगुणों के रक्षण में उत्तम **त्वचम्**=त्वचा को, रक्षक आवरण को **पिन्वति**=बढ़ाता है। सोमरक्षण से शरीर को वह कवच तुल्य त्वचा प्राप्त होती है जो उसे रोग आदि से आक्रान्त नहीं होने देती। (२) यह सोमरक्षक पुरुष **अदितेः**=अदीना देवमाता की **उपस्थे**=गोद में रहता हुआ, अदीन व दिव्यगुणोंवाला बनता हुआ, **गर्भं दधाति**=सबके अन्दर

निवास करनेवाले, सबके वर्णरूप उस प्रभु को **दधाति**=धारण करता है। **येन**=जिस प्रभु के धारण से **तोकं च**=पुत्रों को **च**=व **तनयं च**=पौत्रों को भी **आधामहे**=हम धारण करनेवाले बनते हैं। प्रभु का स्मरण हमारे सन्तानों को भी उत्तम बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम (क) प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनते हैं, (ख) हमारा ज्ञान बढ़ता है, (ग) हमारी त्वचा कवच का रूप धारण करती है, (घ) हमारे सन्तान भी उत्तम होते हैं।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'दिवः हविः भरन्ति अमृतं घृतश्चुतः'

स॒हस्र॑धारेऽव॒ ता अ॑स॒श्चत॑स्तृ॒तीये॑ सन्तु॒ रज॑सि प्र॒जाव॑तीः।
चत॑स्रो॒ नाभो॒ निहि॑ता अ॒वो दि॒वो ह॒विर्भ॑रन्त्य॒मृतं॑ घृत॒श्चुतः॑॥ ६॥

(१) **सहस्रधारे**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाले उस प्रभु में **ताः**=उन रेतःकणों को **अव**=तू रक्षित कर। प्रभु की उपासना के द्वारा तू इनका रक्षण कर। **असश्चतः**=विषयों में आसक्त न होती हुई, अतएव **प्रजावतीः**=प्रकृष्ट सन्तानोंवाली प्रजायें **तृतीये रजसि सन्तु**=तृतीय लोक में रहनेवाली हों। यह तृतीय लोक 'स्थूल व सूक्ष्म' शरीरों के बाद 'कारण' शरीर है। यही आनन्दमयकोश है। सोमरक्षक पुरुष इस आनन्दमय लोक में ही निवास करते हैं। (२) इनके जीवन में **चतस्रः**=चारों **नाभः**=ज्ञान के बन्धन **निहिताः**=स्थापित होते हैं, 'ऋग् यजु साम अथर्व' रूप चारों ज्ञानदीप्तियाँ इन्हें प्राप्त होती हैं। **अवः**=(अवति इति) ये ज्ञानदीप्तियाँ ही इनका रक्षण करनेवाली होती हैं (विच् प्रत्यय में यह रूप बना है)। ये **घृतश्चुतः**=ज्ञानदीप्ति का अपने में क्षरण करनेवाले लोग **दिवः हविः**=ज्ञान की हवि को **भरन्ति**=धारण करते हैं। यह हवि ही **अमृतम्**=इनके लिये अमृत होती है।

भावार्थ—प्रभु स्मरण से सोम का रक्षण होता है। सोमरक्षण से ज्ञानवृद्धि होती है ये लोग सदा अनासक्त भाव से कार्य करते हुए सदा आनन्दमयकोश में निवास करते हैं।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

दिवः कवन्धमव दर्षद् उद्रिणाम्

श्वे॒तं रू॒पं कृ॑णुते॒ यत्सिषा॑सति॒ सोमो॑ मी॒ढ्वाँ असु॑रो वेद॒ भूम॑नः।
धि॒या शमी॑ सचते॒ सेम॒भि प्र॒वद्दि॒वस्कव॑न्धमव॒ दर्ष॑दु॒द्रिण॑म्॥ ७॥

(१) यह **सोमः**=सोम **यत्**=जब **सिषासति**=प्रभु सम्भजन की कामनावाला होता है तो **श्वेतं रूपं कृणुते**=श्वेतरूप को बनाता है। अर्थात् यह सोमरक्षण हमें प्रभु-प्रवण व शुद्ध जीवनवाला बनाता है। यह **मीढ्वान्**=हमारे लिये सुखों का सेचन करनेवाला होता है। **असुरः**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाला यह सोम **भूमनः वेद**=बहुत धनों को प्राप्त कराता है (विद् लाभे)। वस्तुतः यह शरीर के सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से युक्त करता है। (२) **सः**=वह सोम ही **इम्**=निश्चय से **धिया**=बुद्धिपूर्वक **प्रवत्**=उत्कृष्ट **शमी**=कर्मों को **अभिसचते**=हमारे साथ समवेत करता है। यह सोम ही **उद्रिणम्**=ज्ञान-जलवाले **दिवः कवन्धम्**=ज्ञान-प्रकाश के मेघ को **अवदर्षत्**=अवदीर्ण करके हमारे जीवनों में ज्ञान-वृष्टि को करता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को शुद्ध बनाता है, हमें उत्कृष्ट कर्मों में प्रेरित करता है तथा

हमारे जीवनों में ज्ञानवृष्टि को करनेवाला होता है।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

कक्षीवान्-शतहिम

अध॑ श्वे॒तं क॒लशं॒ गोभि॑र॒क्तं कार्ष्म॒न्ना वा॒ज्य॑क्रमीत्सस॒वान्।
आ हि॑न्वि॒रे मन॑सा देव॒यन्तः॑ क॒क्षीव॑ते श॒तहि॑माय॒ गोना॑म्॥ ८॥

(१) **अध**=अब **गोभिः अक्तम्**=ज्ञान की वाणियों से प्रकाशित (अलंकृत) **श्वेतं कलशम्**=शुद्ध, कलाओं के आधारभूत शरीर को **ससवान्**=सेवन करता हुआ (संभजन्) **वाजी**=यह शक्तिशाली सोम **कार्ष्मन्**=काष्ठा की ओर, लक्ष्य-स्थान की ओर (सा काष्ठा सा परागतिः) **आ अक्रमीत्**=सर्वथा गतिवाला होता है। सोमरक्षण से शरीर शुद्ध होता है, ज्ञान से हम अलंकृत होते हैं और प्रभु की ओर चलते हैं। (२) **मनसा**=मन से **देवयन्तः**=उस देव (प्रभु) की कामना करते हुए लोग **आहिन्विरे**=इस सोम को अपने अन्दर समन्तात् प्रेरित करते हैं। यह शरीर में प्रेरित सोम की **कक्षीवते**=इस सोमरक्षण के लिये दृढ़ निश्चयी **शतहिमाय**=शतवर्षपर्यन्त गतिवाले (हि-गतौ) पुरुष के लिये **गोनाम्**=ज्ञान की वाणियों को प्रेरित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (क) शरीर को शुद्ध बनाता है, (ख) इसे ज्ञानालंकृत करता है, (ग) प्रभु रूप लक्ष्य की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**कक्षीवान्**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

स्वदस्व इन्द्राय पवमान पीतये

अ॒द्भिः सो॑म पपृचा॒नस्य॑ ते॒ रसोऽव्यो॒ वारं॒ वि प॑वमान धावति।
स मृ॒ज्यमा॑नः क॒विभि॑र्मदिन्तम॒ स्वद॒स्वेन्द्रा॑य पवमान पी॒तये॑॥ ९॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **अद्भिः**=कर्मों के द्वारा **पपृचानस्य**=शरीर से खूब सम्पृत होते हुए **ते रसः**=तेरा रस **अव्यः**=रक्षण में उत्तम है। सोम से बढ़कर रक्षा करनेवाली और कोई वस्तु नहीं। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! आप **वारम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुष को **विधावति**=विशेषरूप से प्राप्त होते हो। (२) **सः**=वह सोम **कविभिः**=क्रान्तदर्शी ज्ञानियों से **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ **मदिन्तमः**=अतिशयेन आनन्दित करनेवाला होता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **स्वदस्व**=जीवन को मधुर बनानेवाला हो और **पीतये**=तू उसके रक्षण के लिये हो।

भावार्थ—सोमरक्षण का साधन है—'कर्मों में लगे रहना', 'ज्ञान प्राप्ति में रत रहना' और 'इस प्रकार वासनाओं का निवारण करना'। यह सोम हमें आनन्दित करता है, जीवन को मधुर बनाता है तथा हमारा रक्षण करता है।

सोमरक्षण के द्वारा यह 'कवि' बनता है, क्रान्तदर्शी तत्त्वद्रष्टा होता है। यह 'कवि' सोम शंसन करता हुआ कहता है—

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'सोम्य' भोजनों का सेवन

अ॒भि प्रि॒याणि॑ पवते॒ चनो॑हितो॒ नामा॑नि य॒ह्वो अधि॒ येषु॒ वर्ध॑ते।

आ सूर्य॑स्य बृह॒तो बृ॒हन्नधि॒ रथं॒ विष्व॑ञ्चमरुहद्विचक्ष॒णः॥ १॥

(१) 'आग्नेय व सोम्य' दो भागों में बटे भोजनों में 'सोम्य भोजन' ही सोमरक्षण के लिये हितकर हैं सो उन्हीं का ग्रहण उचित है। यहाँ मन्त्र में कहते हैं कि **चनो हितः**=(हितानः) हितकर अन्नोंवाला यह सोम **प्रियाणि**=प्रीति के जनक **नामानि** (उदकानि सा० water आदि)=रेतःकणों को (आपः रेतो भूत्वा०) **अभिपवते**=प्राप्त कराता है। **येषु**=जिन रेतःकणों के होने पर **यह्वः**=(यातश्च हूतश्च, यातम् अस्य अस्ति, हूतं अस्य अस्ति) प्रभु की ओर जानेवाला व प्रभु को पुकारनेवाला यह सोमरक्षक पुरुष **अधिवर्धते**=आधिक्येन वृद्धि को प्राप्त करता है। (२) उस समय यह सोमी पुरुष **विचक्षणः**=ज्ञानी बना हुआ **बृहतः सूर्यस्य**=महान् सूर्य के, वृद्धि के कारणभूत ज्ञान के **विष्वञ्च**=सब विविध कर्त्तव्यों में सम्यक् प्रेरित होनेवाले **रथम्**=शरीर रथ पर **अधि-अरुहत्**=आरुढ़ होता है। रक्षित सोम ही ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और शक्तिवर्धन के द्वारा हमें कर्त्तव्य कर्मों के करने में क्षम करता है।

भावार्थ—सोम्य अन्नों के सेवन से हम सोमरक्षण कर पाते हैं। रक्षित सोम रेतःकणों की शरीर में व्याप्त द्वारा ज्ञान व शक्ति का वर्धन करता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सत्यं ब्रूयात्-प्रियं ब्रूयात्

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ नाम तृतीयमधि रोचने दिवः॥ २॥

(१) गत मन्त्र की 'अधि येषु वर्धते' इस पंक्ति का व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि (क) इस सोमी पुरुष को **ऋतस्य जिह्वा पवते**=सत्य की वाणी प्राप्त होती है, यह सदा सत्य ही बोलता है। पर साथ ही, **मधु**=मधुर और **प्रियं वक्ता**=प्रिय बोलता है। **अस्याः धियः पतिः**=प्रभु से दी गयी इस बुद्धि का रक्षण करनेवाला होता है और **अदाभ्यः**=वासनाओं से हिंसित नहीं होता। (२) यह **पुत्रः**=(पुनाति त्रायते) अपने को पवित्र बनानेवाला व अपना रक्षण करनेवाला व्यक्ति **पित्रोः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में, **अपीच्यम्**=अन्तर्हित, अर्थात् शरीर व मस्तिष्क में ही ज्ञानाग्नि के ईंधन के रूप में सुरक्षित किये गये, **दिवः अधिरोचनम्**=ज्ञान को खूब ही दीप्त करनेवाले **तृतीयम्**=वसु-रुद्र से भी ऊपर उठकर आदित्य संज्ञक **नाम**=इन रेतःकणों को **दधाति**=धारण करता है। २५ वर्ष तक के ब्रह्मचर्य में ये रेतःकण 'वसु' हैं, हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हैं। ४४ वर्ष तक के ब्रह्मचर्य में ये 'रुद्र' हो जाते हैं, सब रोगों को दूर भगानेवाले व अमृतत्त्व प्राप्त करानेवाले होते हैं। अब तृतीय ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचर्य में ये 'आदित्य' सब गुणों का आदान करनेवाले होते हैं। इन रेतःकणों का रक्षक सर्वगुणों का आदाता बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष 'प्रिय सत्य बोलता है, बुद्धि का रक्षक होता है, वासनाओं से हिंसित नहीं होता, देदीप्यमान ज्योति को प्राप्त करता हुआ सब गुणों का ग्रहण करनेवाला' बनता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

द्युतानः-त्रिपृष्ठः

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति॥ ३॥

(१) **द्युतानः**=ज्योति का विस्तार करनेवाला सोम **कलशान्**=इन १६ कलाओं के आधारभूत

शरीरों को अब **अचिक्रदत्**=विषयों से पृथक् करके (अब) प्रभु-स्तवनवाला बनाता है (अचिक्रदत्-शब्दायते)। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवालों से **हिरण्यये कोशे**=ज्योतिर्मयकोश में, विज्ञानमयकोश में **आयेमानः**=संयत किया जाता है। अर्थात् शरीर में संयत सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर विज्ञानमयकोश को खूब दीप्त बना देता है, यह 'हिरण्यय' बन जाता है। (२) **ऋतस्य दोहनाः**=ऋत का, सत्य का अपने में प्रपूरण करनेवाले लोग **ईम्**=निश्चय से **अभि अनूषत**=इस सोम का लक्ष्य करके स्तवन करते हैं। सोम का प्रातः-सायं स्तवन उन्हें सोम के रक्षण के लिये प्रेरित करता है। **त्रिपृष्ठः**=प्रातः-सवन, माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन ये तीन सवन जिसके आधार हैं, अर्थात् इन तीनों बाल्य यौवन व वार्धक्य में यज्ञशील बनकर हम सोम का रक्षण कर पाते हैं। यह सोम **उषसः**=उषाओं को **विराजति**=विशिष्टरूप से दीप्त करता है। सोमरक्षण से हमारी उषायें बीतती हैं। सोमरक्षण वस्तुतः हमारे जीवन के दिनों को सुन्दर बनानेवाला है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों में ज्योति को बढ़ाता है। यह हमें प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है और हमारे जीवन के दिनों को दीप्त करता है।

सूचना—'त्रिपृष्ठः' का भाव यह भी लिया जा सकता है कि जो हमारे बाल्य, यौवन व वार्धक्य तीनों का आधार बनता है अथवा जो शरीर, मन व बुद्धि इन तीनों को ठीक रखता है।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

मतिभिः अद्रिभिः सुतः

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे॥ ४॥

(१) **मतिभिः**=मननशील **अद्रिभिः**=उपासकों से (adore) **सुतः**=अपने अन्दर उत्पन्न किया गया **चनो हितः**=हितकर सोम्य अन्नवाला यह सोम **मातरा**=हमारे माता-पिता के समान **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **प्ररोचयन्**=दीप्त करता हुआ यह सोम है। **शुचिः**=यह पवित्र है, हमारे जीवन को पवित्र करनेवाला है। (२) यह **अव्या**=रक्षण में उत्तम **रोमाणि समया**=(रु शब्दे) स्तुति शब्दों के समीप होता हुआ **विधावति**=हमारा विशेषरूप से शोधन करता है। हमें स्तुति की प्रवृत्तिवाला बनाता है और इस प्रकार हमारे जीवन को शुद्ध करता है। इस सोमरक्षण से हमारे जीवन में **दिवे दिवे**=दिन व दिन **मधोः धारः**=माधुर्य की धारा **पिन्वमाना**=वृद्धि को प्राप्त होती है। यह सोम जीवन को अधिकाधिक मधुर बनाता चलता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये साधन हैं, (क) मननपूर्वक प्रभु स्तवन व (ख) सोम्य अन्नों का सेवन। सुरक्षित सोम के लाभ हैं, (क) मस्तिष्क व शरीर की पवित्रता, (ख) दिन व दिन माधुर्य की वृद्धि।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

आहनसः विहायसः मदाः

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम्।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम्॥ ५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **स्वस्तये**=हमारे कल्याण के लिये **परिप्रधन्व**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **आशिरम्**=(आ श्रृ) शरीर में चारों ओर न्यूनताओं को नष्ट करने की शक्ति को **अभिवासय**=बसा।

अर्थात् शरीर, मन व बुद्धि कहीं भी कमी न रह जाये। (२) हे सोम! **ये**=जो **ते**=तेरे **आहनसः**=शत्रुओं को समन्तात् विनष्ट करनेवाले **विहायसः**=महान् **मदाः**=उल्लास हैं, **तेभिः**=उन उल्लासों के हेतु से तू **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **मघं दातवे**=ऐश्वर्य के दान के लिये **चोदय**=प्रेरित कर। ऐश्वर्य के दान में विनियोग से ही ये 'मद' प्राप्त होते हैं। उपभोग में ऐश्वर्य का व्यय होने पर सोमरक्षण का सम्भव नहीं रहता, तज्जनित उल्लासों की तो कथा ही क्या?

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर में शत्रुओं का विनाश करके महान् उल्लास को प्राप्त कराता है। इस उल्लास के लिये अथवा सोमरक्षण के लिये धनों का भोग में व्यय न करते हुए दान में विनियोग आवश्यक है। अगले सूक्त में भी 'कवि' ही 'पवमान सोम' का स्तवन करता है—

[७६] षट्सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कवि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृथापाजांसि कृणुते

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा॥ १॥

(१) **हरिः**=सब बुराइयों का हरण करनेवाला सोम **दिवः धर्ता**=ज्ञान का धारण करनेवाला होता हुआ **पवते**=प्राप्त होता है। यह सोम **कृत्व्यः रसः**=वह रस है जो कि हमें कर्त्तव्यपालन में समर्थ करता है। **देवानां दक्षः**=देवों को यह दक्ष बनाता है, कार्यकुशल बनाता है। **नृभिः अनुमाद्यः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से रक्षण के अनुपात में अनुमाद्य होता है। जितना-जितना वे इसका रक्षण करते हैं, उतना-उतना हर्ष का अनुभव करते हैं। (२) **सत्वभिः**=बलों के हेतु से **सृजानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ यह सोम **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान है। जैसे अश्व निरन्तर गतिवाला होता है, ऐसे ही यह सोमरक्षक पुरुष निरन्तर गतिशील होता है। यह सोम **वृथा**=अनायास ही **नदीषु**=स्तवन करनेवाले पुरुषों में **पाजांसि कृणुते**=बलों को करता है। प्रभु स्तोताओं को यह सोम बल-सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान का धारण करता है, हमें कर्त्तव्यपालन में समर्थ करता हुआ यह दक्षता को प्राप्त कराता है। हमें शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**कवि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

रथिरः गविष्टिषु

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः॥ २॥

(१) यह सोम हमारे जीवनों में **शूरः न**=रथ शूरवीर के समान **गभस्त्योः**=भुजाओं में **आयुधा**=शस्त्रों को **धत्ते**=धारण करता है। शूरवीर शस्त्रों के द्वारा शत्रुओं का शातन करता है, इसी प्रकार यह सोम, शरीरस्थ रोग आदि शत्रुओं का संहार करता है। **स्वः**=स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु को **शिषासन्**=सम्भजन की कामनावाला होता हुआ यह सोम **गविष्टिषु**=ज्ञान-यज्ञों में **रथिरः**=उत्तम रथवाला होता है। शरीर को स्वस्थ बनाता हुआ यह सोम हमें ज्ञानयुक्त करता है। सुरक्षित सोम शरीर में 'शूरः न', मन में 'स्वः सिषासन्' तथा मस्तिष्क में 'रथि गविष्टिषु' है। (२) यह सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **शुष्मम्**=बल को **ईरयन्**=प्रेरित करता है। **अपस्युभिः**=कर्मशील पुरुषों से **इन्दुः**=यह सोम **हिन्वानः**=प्रेरित किया जाता है, कर्मशील पुरुष

ही इसका रक्षण कर पाते हैं। यह **मनीषिभिः**=बुद्धिमान् पुरुषों से **अज्यते**=शरीर में अलंकृत किया जाता है। इस प्रकार सोमरक्षण के तीन साधन हैं—(क) जितेन्द्रियता (इन्द्र), (ख) कर्मशीलता (अपस्यु), (ग) स्वाध्यायशीलता द्वारा बुद्धि को बलवान् बनाना (मनीषी)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शूर-प्रभु का उपासक व ज्ञानी बनाता है। 'जितेन्द्रियता, कर्मशीलता व स्वाध्याय' इसके रक्षण के साधन हैं।

ऋषिः—**कवि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

बुद्धि व बल

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **उर्मिणा**=प्रकाश के द्वारा **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **तविष्यमाणः**=बल का वर्धन करता हुआ **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरेषु**=उदरों में, अंगमध्यों में **आविश**=प्रविष्ट होनेवाला हो। (२) तू **नः**=हमारे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **प्रपिन्व**=प्रकर्षेण वर्धन करनेवाला हो। इस प्रकार वर्धन करनेवाला हो **इव**=जैसे कि **विद्युत्**=बिजली **अभ्रा**=बादलों के वर्धन का कारण होती है। **न**=और (न इति चार्थे) हे सोम! तू **धिया न**=बुद्धि के साथ **शश्वतः**=प्लुत गतिवाले **वाजान्**=बलों को **उपमासि**=निर्मित करता है। हमारे अन्दर बुद्धि व बल को तू स्थापन करता है। 'शश्वतः' शब्द का अर्थ 'बहून्' (अनेक) भी है। यह सोम नानाविध बलों को हमारे अन्दर स्थापित करता है।

भावार्थ—सोम हमारे लिये प्रकाश व बल को देनेवाला है।

ऋषिः—**कवि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'ऋषिषाट्' सोम

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत्।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः॥ ४॥

(१) **विश्वस्य**=सबका **राजा**=दीप्त करनेवाला यह सोम **पवते**=प्राप्त होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी को दीप्त करता है। **ऋषिषाट्**=(ऋषिः च असौ षाट् च) तत्त्वद्रष्टा व शत्रुओं का अभिभव करनेवाला यह सोम **स्वर्दृशः**=स्वयं देदीप्यमान ज्योतिरूप ब्रह्म के दर्शन करनेवाले **ऋतस्य**=सत्यव्रती पुरुष के **धीतिम्**=(मतिं कर्म वा) बुद्धि व कर्म की **अवीवशत्**=कामना करता है। अर्थात् यह सोम हमें प्रभु द्रष्टा व सत्यव्रती बनाता है, हमारे कर्मों को इनके कर्मों जैसा बनाता है। (२) **यः**=जो सोम, **सूर्यस्य**=ज्ञानसूर्य के **आसिरेण**=क्षेपक बल से, मलों को दूर करनेवाली शक्ति से **मृज्यते**=शुद्ध किया जाता है, सदा स्वाध्याय में लगे रहने से यह पवित्र बना रहता है। वह सोम **मतीनां पिता**=हमारी बुद्धियों का रक्षक होता है और **असमष्ट काव्यः**=(अ सम् अष्ट काव्य) अव्याप्त ज्ञानवाला, अर्थात् विशाल ज्ञानवाला होता है। वस्तुतः सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, और हमारी ज्ञानाग्नि को खूब दीप्त करके हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला होता है।

भावार्थ—यह सोम 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी को दीप्त करता है। यह हमारे कर्मों को प्रभुद्रष्टा व सत्यव्रती पुरुषों के कर्म बनाता है। विशाल ज्ञानवाला है।

ऋषिः—कवि॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

'संग्राम विजेता' सोम

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत्।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः॥ ५॥

(१) **वृषा इव**=जैसे एक बैल **यूथा**=गो-समूहों की ओर जाता है, इसी प्रकार हे सोम! तू **कोशं परिअर्षसि**=अन्नमय आदि कोशों को प्राप्त होता है। वस्तुतः उन सब कोशों को तू ही उस-उस ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है। **अपां उपस्थे**=कर्मों की उपासना में **वृषभः**=शक्तिशाली यह सोम **कनिक्रदत्**=प्रभु के स्तोत्रों का खूब ही उच्चारण करता है। अर्थात् सोमरक्षक पुरुष प्रभु-स्मरण के साथ सदा कार्यों में प्रवृत्त रहता है, यह क्रियाशीलता उसकी शक्ति को स्थिर रखती है। (२) हे सोम! **सः**=वह तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवसे**=प्राप्त होता है। **मत्सरिन्तमः**=उसके जीवन में अतिशयेन आनन्द का संचार करता है। हे सोम! तू हमें प्राप्त हो, **यथा**=जिससे कि हम **त्वा उतयः**=तेरे से रक्षित हुए-हुए **जेषाम**=विजयी हों। सोम हमें वह शक्ति प्राप्त कराता है, जिससे कि हम सदा विजयी होते हैं।

भावार्थ—सोम हमें सदा संग्रामों में विजय प्राप्त कराता है। सब कोशों को यही परिपूर्ण करता है। प्रभु-स्मरण के साथ हमें कर्मशील बनाता है, हमारे में आनन्द का संचार करता है।

अगले सूक्त में भी 'कवि' ही सोम का स्तवन करता है—

[७७] सप्तसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—कविः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

वपुषो वपुष्टरः

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः॥ १॥

(१) **एषः**=यह सोम **प्र कोशे**=सर्वोत्कृष्ट आनन्दमय कोश में **मधुमान्**=अत्यन्त माधुर्यवाला होता हुआ **अचिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता है। सोमरक्षण के होने पर माधुर्य व आनन्द की वृद्धि होती है तथा प्रभु-स्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है। यह सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष का **वज्रः**=शत्रु-संहारक अस्त्र बनता है। **वपुषः वपुष्टरः**=सर्वोत्तम वप्ता (बोनेवाला) है, यह सोम हमारे जीवन में सब सद्गुणों के बीजों को बोता है। (२) **ईम्**=निश्चय से सोमरक्षण के होने पर **ऋतस्य**=सत्य वेदज्ञान की **वाश्राः**=वाणियाँ **अभि अर्षन्ति**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होती हैं। ये वाणियाँ **सुदुघाः**=उत्तम ज्ञान का हमारे अन्दर प्रपूरण करनेवाली हैं तथा **घृतश्चुतः**=ज्ञानदीप्ति को व नैर्मल्य को हमारे अन्दर प्रवाहित करनेवाली हैं। ये वाणियाँ हमें इस प्रकार प्राप्त होती हैं, **इव**=जैसे कि **धेनवः**=गौवें **पयसा**=दूध के देने के हेतु से हमें प्राप्त होती हैं। ये गौवें दूध देती हैं, वेदवाणी रूप गौवें ज्ञानदुग्ध को प्राप्त कराती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) जीवन मधुर बनता है, (ख) वृत्ति प्रभु-प्रवण होती है, (ग) शत्रु संहारक शक्ति प्राप्त होती है, (घ) सद्गुणों के बीज बोये जाते हैं, (ङ) सत्य ज्ञान की वाणियाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स मध्वः आयुवते

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥ २ ॥

(१) **सः**=वह **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम सोम **पवते**=प्राप्त होता है। **यम्**=जिस सोम को **दिवः**=(दीव्यति इतिः कः) ज्ञान के प्रकाशवाला, **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला, **इषितः**=प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त व्यक्ति **परि मथायत्**=शरीर में ही मन्थन द्वारा उत्पन्न करता है। वस्तुतः भोजन का आंतों में मन्थन होकर ही रस आदि धातुओं की उत्पत्ति होती है। यह सोम **तिरः रजः**=इस अपने उत्पत्ति लोक में ही तिरोहित होकर रहता है। शरीर में उत्पन्न होता है और शरीर में ही स्थित होता है। (२) **सः**=वह सोम **मध्वः आयुवते**=माधुर्य को हमारे जीवन से मेल करता है। उस समय यह सोमरक्षक पुरुष! **कृशानोः**=दुर्बलों को भी प्राणित करनेवाले (कृशं आनयति) **अस्तुः**=वासनाओं को परे फेंकनेवाले प्रभु से **बिभ्युषा**=भयभीत होनेवाले **मनसा**=मन से **अह**=ही **वेविजानः**=गति व आचरणवाला होता है। सोमरक्षक पुरुष प्रभु से ही डरता है, किसी अन्य से नहीं।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन का पूरण करनेवाला है, यह उसमें माधुर्य का संचार करता है। सोमरक्षक पुरुष अभय होता हुआ केवल प्रभु से भयभीत होता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

महे वाजाय धन्वन्तु गोमते

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते।
ईक्षेण्यासो अह्योऽ न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥

(१) **ते**=वे **उपरासः**=(nearer) हमारे अधिक समीप होते हुए, हमारे अन्दर सुरक्षित होते हुए, **इन्दवः**=सोमकण **नः**=हमारे **पूर्वासः**=पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये सोमकण **महे**=महान् **गोमते**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजाय**=बल के **धन्वन्तु**=प्राप्त हों। इन सोमकणों के रक्षण से हमें ज्ञान व बल प्राप्त हो। (२) **ईक्षेण्यासः**=ये सोम ईक्षणीय, ईक्षण में उत्तम, वस्तुतत्त्व को समझने में उत्कृष्ट हैं, इन्हीं से तो बुद्धि सूक्ष्म होकर सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करती है। **अह्यः न** (a milch cow)=दुधारु गौवें के समान **चावः**=ये सोम सुन्दर हैं। जैसे वे गौवें खूब ही दूध देती हैं, उसी प्रकार ये सोम भी खूब ही ज्ञानदुग्ध को देनेवाले हैं। सोमकण वे हैं, **ये**=जो **ब्रह्मब्रह्म**=प्रत्येक ज्ञान को **जुजुषुः**=सेवन करते हैं और **हविः हविः**=प्रत्येक त्याग का सेवन करनेवाले होते हैं। सोमरक्षण से मस्तिष्क में ज्ञान तथा हृदय में त्याग होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम जहाँ महान् बल को प्राप्त कराते हैं, वहाँ हृदय में त्याग वृत्ति को तथा मस्तिष्क में ज्ञान को स्थापित करते हैं।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

गवां उरुब्जमभ्यर्षति व्रजम्

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः।

इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥

(१) **अयम्**=यह **इन्दुः**=सोम **नः**=हमारे **वनुष्यतः**=हनन की कामनावाले शत्रुओं को **विद्वान्**=जानता हुआ **वनवत्**=उन्हें नष्ट करता है। सोमरक्षण से काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश हो जाता है। यह सोम शत्रु-विनाश करके **सत्राचा**=(सह अञ्चता) आत्मा के साथ गतिवाले, विषयों में इधर-उधर न भटकते हुए, **मनसा**=मन से **पुरुष्टुतः**=खूब ही स्तवनवाला होता है। (२) **इनस्य**=स्वामी के, अपनी इन्द्रियों को वश में करनेवाले के **सदने**=इस शरीर रूप गृह में स्थित यज्ञवेदि तुल्य हृदय-स्थली में **गर्भम्**=सभी के अन्दर रहनेवाले गर्भरूप प्रभु को **यः**=जो **आदधे**=स्थापित करता है, वह सोम **गवाम्**=वेदवाणियों के उस **व्रजम्**=समूह को **अभ्यर्षति**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है, जो **उरुब्जम्**=(उरु अप् ज) विशाल कर्मों को जन्म देनेवाला है। वेदवाणी का अध्ययन करनेवाला कभी संकुचित कर्मों को नहीं करता।

भावार्थ—सोम हमारे हिंसक शत्रुओं को विनष्ट करता है, हमारे मनों को विषयों में भटकने से बचाता है, हमें विशाल कर्मों के करनेवाला वैदिक जीवन देता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'अदब्धः वरुणः' सोमः

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत्॥ ५॥

(१) **दिवः चक्रिः**=हमारे जीवनों में ज्ञान के प्रकाश को करनेवाला यह सोम **पवते**=प्राप्त होता है। यह **रसः**=सोम का (सार) **कृत्व्यः**=हमें कर्तव्य कर्मों के करने में कुशल बनाता है। यह **महान्**=हमें (मह पूजायाम्) पूजा की वृत्तिवाला करता है। **अदब्धः**=वासनाओं से हिंसित नहीं होता। **वरुणः**=सब द्वेष आदि अशुभ-वृत्तियों का निवारण करनेवाला है। (२) **हुरुग्यते**=(हुरुक्-हिरुक् near) प्रभु की उपासना में गति करते हुए के लिये यह सोम **असावि**=उत्पन्न किया जाता है। यह **जनेषु**=संग्रामों में **मित्रः**=हमारा मित्र होता है हमें मृत्यु से बचाता है, अतएव **यज्ञियः**=संगतिकरण योग्य होता है। **अत्यः न**=एक सततगामी अश्व के समान है, यह हमें निरन्तर क्रियाशील बनाता है। **यूथे**=कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों व प्राणों के समूह में **वृषयुः**=शक्ति के सेचन को यह करने की कामनावाला है। ऐसा यह सोम **कनिक्रदत्**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। हमें प्रभु का स्तोता बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सोम हमें वासनाओं से हिंसित नहीं होने देता, यह सब अशुभों का निवारण करनेवाला है। हमें शक्ति देता है, संग्रामों में विजयी बनाता है।

अगले सूक्त में भी 'कवि' ही 'पवमान सोम का शंसन करता है'—

[७८] अष्टसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

राजा सोम

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम्॥ १॥

(१) **राजा**=हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाला यह सोम **वाचं जनयन्**=हमारे हृदयों में प्रभु की वाणी को आविर्भूत करता हुआ **असिष्यदत्**=शरीर में प्रवाहित होता है। **अपः वसानः**=हमें कर्मों से आच्छादित करता हुआ **गाः अभि**=वेदवाणियों की ओर **इयक्षति**=जाता है। हमें

क्रियाशील व ज्ञानरुचिवाला बनाता है। (२) यह सोम **रिप्रं गृभ्णाति**=सब दोषों का निग्रह करनेवाला होता है। **अस्य अविः**=इस सोम का रक्षक पुरुष **तान्वा**=शक्तियों के विस्तार के द्वारा **शुद्धः**=शुद्ध हुआ-हुआ **देवानाम्**=देवों के **निष्कृतम्**=संस्कृत स्थान को **उपयाति**=प्राप्त होता है, अर्थात् देव लोग जैसे यज्ञादि के लिये पवित्र स्थानों में एकत्रित होते हैं इसी प्रकार यह सोमरक्षक पुरुष पवित्र स्थानों में ही उपस्थित होता है, उन पवित्र कार्यों में ही रुचि रखता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हृदय में प्रभु की वाणी सुन पड़ती है, ज्ञान बढ़ता है, दोष दूर होते हैं और रुचि पवित्र कर्मों की ही ओर होती है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सोमरक्षण व राक्षसीभावों का विनाश

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥ २ ॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **इन्द्राय**=प्रभु प्राप्ति के लिये **परिषिच्यसे**=शरीर में समन्तात् सिक्त किया जाता है। शरीर में सिक्त हुआ-हुआ तू इस शरीर को प्रभु का अधिष्ठान बनाता है। **नृचक्षाः**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाला तू **ऊर्मिः**=उत्साह की तरंगों को उत्पन्न करनेवाला है। **कविः**=तू क्रान्तदर्शी है, सुरक्षित सोम बुद्धि को तीव्र करता है और इस प्रकार यह मनुष्य को प्रत्येक तत्त्व के अन्तर्दृष्टिवाला बनाता है। तू **वने**=प्रभु के उपासक में **अज्यसे**=अलंकृत किया जाता है, उपासक के शरीर में सोम सुरक्षित रहता है। (२) **ते**=तेरी **स्रुतयः**=शरीर में गतियाँ **सहस्रम्**=हजारों प्रकार से **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाली **सन्ति**=होती हैं। ये गतियाँ **हि**=निश्चय से **यातवे**=राक्षसों के, राक्षसीभावों के, विनाश के लिये होती हैं (यहाँ 'मशकार्थो धूमः=मशक निवृत्ति के लिये धूआँ है' ऐसा प्रयोग है)। राक्षसीभावों के विनाश के होने पर **अश्वाः**=इन्द्रियाश्व **हरयः**=दुःखों का हरण करनेवाले व **चमूषदः**=शरीररूप चमस में स्थित होनेवाले होते हैं। अर्थात् उस समय इन्द्रियाँ इधर-उधर भटकती नहीं।

भावार्थ—सोमरक्षण से प्रभु प्राप्ति होती है, यह हमें तीव्र बुद्धि, स्वस्थ व पवित्र जीवनवाला बनाता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

समुद्रियाः, अप्सरसः, अन्तः आसीनाः

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥ ३ ॥

(१) **समुद्रियाः**=ज्ञान समुद्र में विचरनेवाले, निरन्तर स्वाध्याय करनेवाले, **अप्सरसः**=कर्मों में विचरनेवाले, यज्ञादि कर्मों में सतत प्रवृत्त, **अन्तः आसीनाः**=बाहर भटकने की अपेक्षा अन्दर हृदय में सब चित्तवृत्तियों को आसीन करनेवाले, अन्दर प्रभु का ध्यान करनेवाले लोग **मनीषिणम्**=बुद्धिवाले, बुद्धि को तीव्र बनानेवाले **सोमम्**=सोम को **अभि अक्षरन्**=अपने शरीर में ही क्षरित करते हैं। सोमरक्षण के तीन उपाय हैं—(क) ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना, (ख) यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहना, (ग) प्रभु के समीप हृदय में बैठना। सोमरक्षण का लाभ है—'बुद्धि की तीव्रता'। (२) **ताः**=वे 'समुद्रिय' व 'अप्सरस्' तथा 'अन्तः आसीन' प्रजायें **ईं**=इस **हर्म्यस्य**=इस शरीर प्रासाद के **सक्षणिम्**=(सच-समवाये) साथ समवाय वाले शरीर में सुरक्षित और (सह-

मर्षणे) शत्रुओं का पराभव करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=बढ़ाता है और **पवमानम्**=इस पवित्र करनेवाले सोम से **अक्षितं सुम्नम्**=अक्षीण सुख की **याचन्ते**=याचना करते हैं, सुरक्षित सोम शत्रुओं का विनाश करता है और हमारे जीवन को सुखी करता है।

भावार्थ—हम ज्ञानरुचि, क्रियाशील, उपासक बनकर सोम का रक्षण करें। यह हमारे शत्रुओं का पराभव करके हमें सुखी करेगा। सब रोगों व वासनाओं का विनाशक यह 'पवमान' है।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सर्वविजयी सोम

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम्॥ ४॥

(१) **सोमः**=यह सोम (वीर्यशक्ति) **नः**=हमारे लिये **गोजित्**=इन्द्रियों का विजय करनेवाला है। इस सोम के रक्षण से सब इन्द्रियों की शक्ति बड़ी ठीक बनी रहती है। **रथजित्**=शरीर रूप रथ को यह जीतनेवाला है, सोमरक्षण ही शरीर को नीरोग बनाता है। **हिरण्यजित्**=यह सोम (हिरण्यं वै ज्योतिः) ज्योति का विजय करनेवाला है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान का वर्धन करता है। ज्ञानवर्धन के द्वारा यह **स्वर्जित्**=सुख का विजय करनेवाला है। अविद्या के कारण ही तो कष्ट थे। विद्या का प्रकाश हुआ और कष्ट गये। यह सोम **अब्जित्**=हमारे लिये कर्मों का विजय करनेवाला होकर **पवते**=प्राप्त होता है, सोमरक्षण से प्राप्त शक्ति हमें क्रियाशील बनाती है। इस प्रकार क्रियाशीलता के द्वारा यह सोम **सहस्रजित्**=हजारों वस्तुओं का हमारे लिये विजय करनेवाला है। (२) यह सोम वह है **यम्**=जिसको **देवासः**=देववृत्ति के व्यक्ति **पीतये चक्रिरे**=शरीर के अन्दर ही पान के लिये करते हैं। **मदम्**=यह उल्लास का जनक है, **स्वादिष्ठम्**=हमारी वाणी में माधुर्य का अतिशयेन सञ्चार करनेवाला है, **द्रप्सम्**=(दृपी हर्षणे) हर्ष को उत्पन्न करता है अथवा (संभृतः प्सानीयो भवति नि० ५।१४) शरीर में धारण किया हुआ भक्षणीय होता है, शरीर में ही व्याप्त करने योग्य होता है। **अरुणम्**=हमें तेजस्वी बनाता है और **मयोभुवम्**=नीरोगता को उत्पन्न करता है।

भावार्थ—शरीर के अंग-प्रत्यंग को ठीक रखने व सब शक्तियों को स्थिर रखने का आधार सोम ही है। इसके धारण में ही जीवन है।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

उर्वी गव्यूति-अभय

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि॥ ५॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **एतानि द्रविणानि**=इन ऊपर के मन्त्र में कहे गये द्रविणों को (=धनों को) **सत्यानि**=सत्य **कृण्वन्**=करता हुआ **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाला होकर **अर्षसि**=शरीर में गतिवाला होता है। **पवमानः**=तू हमारे जीवन को पवित्र करता है। (२) तू **शत्रुं जहि**=हमारे शत्रुओं को विनष्ट करता है वह **अन्तिके**=समीप हो, **च**=या **यः**=जो **दूरके**=दूर हो। समीप के व दूर के सभी शत्रुओं को तू हमारे लिये नष्ट करनेवाला हो। इस प्रकार शत्रुओं का विनाश करके **नः**=हमारे लिये **उर्वीं गव्यूतिम्**=विशाल मार्ग को **च**=और **अभयम्**=निर्भयता को **कृधि**=करिये।

भावार्थ—सोम हमें सब द्रविणों को प्राप्त कराता है, हमारे सब रोग व वासनारूप शत्रुओं का विनाश करता है। हमारे लिये विशालता व निर्भयता को प्राप्त कराता है।

अगले सूक्त का ऋषि भी कवि ही है—

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अचोदसः इन्दवः

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः॥ १ ॥

(१) **अचोदसः**=अप्रेरित, अर्थात् **स्थिर**=वासनाओं से न हिलाये हुए, **इन्दवः**=सोमकण **नः धन्वन्तु**=हमें प्राप्त हों। **प्र सुवानासः**=प्रकर्षेण उत्पन्न किये जाते हुए ये सोम **बृहद् दिवेषु**=प्रभूत ज्योतिवाले, ज्ञान प्रधान मनुष्यों में **हरयः**=ये सब दुःखों का हरण करनेवाले होते हैं। (२) **च**=और इस सोम के रक्षण से **नः**=हमें **इषः**=हृदयस्थ प्रभु से दी गई प्रेरणाएँ **वि-नशन्**=विशेषरूप से प्राप्त हों (नश्=(To reach))। **अरातयः**=न देने की भावनाएँ व **अर्यः**=शत्रुत्व की भावनाएँ **नशन्त**=भाग जाएँ। **नः**=हमें **धियः**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्म **सनिषन्त**=सेवन करें, प्राप्त हों। अर्थात् हम सदा बुद्धिपूर्वक कर्मों को करनेवाले बनें।

भावार्थ—सोम हमारे अन्दर सुरक्षित होकर हमारे रोगादि का हरण करनेवाला हो। इसके रक्षण से पवित्र हृदय में हमें प्रभु प्रेरणाएँ सुनायी पड़ें। अदान की भावना व वासनाएँ दूर हों। हम बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले हों।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अकुटिलता-अस्वार्थ

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि॥ २ ॥

(१) **नः**=हमें **इन्दवः**=ये सोमकण **प्रधन्वन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। ये हमारे लिये **मदच्युतः**=उल्लास को प्राप्त करानेवाले हों, उल्लास से ये हमें आसेचित कर दें। **येभिः**=जिन सोमों से हम **धना**=सब धनों को **वा**=तथा **अर्वतः**=इन इन्द्रियाश्वों को **जुनीमसि**=प्राप्त हों। ये सोम हमें प्राप्त होकर हमारे जीवन को उल्लासमय बनाएँ। (२) ये सोम **यस्य कस्य चित्**=जिस किसी मनुष्य की **परिह्वृतिम्**=कुटिलता को **तिरः**=हमारे से तिरोहित करें। हम एक सांसारिक पुरुष की तरह कुटिल मार्ग से धनार्जन करनेवाले न हों। **वयम्**=हम **धनानि**=धनों को **विश्वधा**=सब के धारण के हेतु से **भरेमहि**=पोषित करें। हमारे धन केवल हमारा ही पोषण करनेवाले न हों।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम धनों का विजय करें। कुटिलता से दूर रहते हुए, सबके धारण के हेतु से ही धनों का सम्पादन करें। सोम का विनाश मनुष्य को कुटिल व स्वार्थी बना देता है।

ऋषिः—**कविः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

शत्रु विनाश

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।

धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः॥ ३ ॥

(१) **उत**=और **हि**=निश्चय से **सः**=वह सोम **स्वस्याः अरात्याः**=अध्यात्म (स्व=आत्मा) शत्रुओं का **अरिः**=अभिगन्ता-आक्रमण करनेवाला होता है, अर्थात् वासनारूप अध्यात्म शत्रुओं को वह विनष्ट करता है। **उत**=और **अन्यस्याः अरात्याः**=आत्मभिन्न शरीर के रोग आदि शत्रुओं का भी **सः**=वह सोम **हि**=निश्चय से **वृकः**=आदान कर लेनेवाला (=उन्हें पकड़कर, समाप्त कर देनेवाला) होता है। (२) **तान् अभि**=उन शत्रुओं के प्रति यह **समरीत**=इस प्रकार प्रबल आक्रमण करनेवाला होता है, **न**=जैसे कि **धन्वन्**=रेगिस्तान में **तृष्णा**=प्यास हमारे पर आक्रमण करती है। हे सोम! **पवमान**=पवित्र करनेवाले वीर्य! तू **दुराध्यः**=इन दुःख से वश में करने योग्य शत्रुओं को **जहि**=नष्ट कर डाल (दुर् राध् य)।

भावार्थ—सुरक्षित सोम आत्मा व शरीर के शत्रुओं को नष्ट करता है। उन पर यह प्रबल आक्रमण करता है और कठिनता से वशीभूत होनेवाले शत्रुओं को भी समाप्त करता है।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

शिखर पर

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः॥ ४॥

(१) **यः**=जो **परमः**=(परः मीयते येन) प्रभु का ज्ञान प्राप्त करनेवाला व्यक्ति है वह हे सोम! **ते**=तेरे **नाभा**=बन्धन के करनेवाले **दिवि**=ज्ञान में **आददे**=तेरा ग्रहण करता है, अर्थात् ज्ञान प्राप्ति में तत्पर होकर तुझे अपने अन्दर बाँधनेवाला बनता है। **ते**=वे तुझे अपने अन्दर बाँधनेवाले **क्षिपः**=वासनाओं व रोगों को अपने से दूर फेंकनेवाले लोग **पृथिव्याः सानवि**=इस शरीर रूप पृथिवी के शिखर पर **रुरुहुः**=आरूढ़ होते हैं, अधिक से अधिक उन्नति कर पाते हैं, इस शरीर को पूर्ण स्वस्थ बना पाते हैं। (२) **अद्रयः**=प्रभु के उपासक (अद्रि=one who adores), हे सोम! **गोः**=इन ज्ञान-वाणियों के **अधि**=आधिक्येन **त्वचि**=सम्पर्क में **त्वा**=तुझे **बप्सति**=खाते हैं, अपने अन्दर ही व्याप्त करते हैं। सोमरक्षण के लिये उपासना व स्वाध्याय ही मुख्य साधन हैं। ये **मनीषिणः**=ज्ञानी पुरुष **हस्तैः**=हाथों से **अप्सु**=कर्मों में लगे रहकर **त्वा**=तुझे **दुदुहुः**=अपने अन्दर प्रपूरित करते हैं। एवं कर्मों में लगे रहना हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाता है और हम सोम का रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि (अद्रयः) उपासनामय हमारा जीवन हो, (गोः त्वचि=in touch) हम सदा ज्ञान के सम्पर्क में हों (अप्सु) कर्मों में लगे रहें। रक्षित सोम हमें द्युलोक व पृथिवीलोक के शिखर पर पहुँचायेगा, अर्थात् हमारे मस्तिष्क व शरीर को उन्नत करेगा।

ऋषिः—**कविः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सोम का 'सुभू सुपेशस्' रस

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः॥ ५॥

(१) **एवा**=गत मन्त्र में वर्णित प्रकार से, हे **इन्दो**=सोम! **ते**=तेरे **सुभ्वम्**=शरीर, मन व बुद्धि को उत्तम करनेवाले (सु-भू) **सुपेशसम्**=अंग-प्रत्यंग की रचना को सुन्दर बनानेवाले **रसम्**=रस को, सार को **प्रथमाः**=अपनी शक्तियों व ज्ञानों का विस्तार करनेवाले **अभि-श्रियः**=प्रातः-सायं

प्रभु का उपासन करनेवाले लोग (श्रि=भज सेवायाम्) **तुञ्जन्ति**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। सोमरक्षण का उपाय है—(क) प्रथम बनना, (ख) अभि-श्री बनना। इसका लाभ यह है कि—(क) शरीर, मन और बुद्धि उत्तम होते हैं, (ख) सर्वांग-सुन्दर-रचनावाला शरीर बनता है। (२) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **निदं निदम्**=जो कुछ निन्दनीय है, उसे **नितारिषः**=नष्ट कर। **ते**=तेरा **शुष्मः**=शत्रु-शोषक बल **आविः भवतु**=प्रकट हो, जो **प्रियः**=प्रीति को देनेवाला तथा **मदः**=उल्लास का जनक है।

भावार्थ—सोमरक्षण वही कर पाता है जो अपना लक्ष्य 'प्रथम स्थान में पहुँचना रखे तथा प्रातः-सायं प्रभु का उपासन करे।' रक्षित सोम सब निन्दनीय तत्त्वों को विनष्ट करता है और प्रीति व उल्लास को प्राप्त कराता है।

सोमरक्षण से अपने निवास को उत्तम बनानेवाला 'वसु' अगले सूक्त का ऋषि है, यह अपने में शक्ति को भरने के कारण 'भारद्वाज' है। यह कहता है कि—

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'ऋतेन देवान् हवते दिवस्परि'

सोम॑स्य॒ धारा॑ पवते नृ॒चक्ष॑स ऋ॒तेन॑ दे॒वान्ह॑वते दि॒वस्परि॑।
बृह॒स्पते॑ र॒वथे॑ना॒ वि दि॑द्युते समु॒द्रासो॒ न सव॑नानि विव्यचुः॥ १॥

(१) **नृचक्षसः**=मनुष्यों को देखनेवाले, उनका ध्यान करनेवाले, **सोमस्य**=सोम की **धारा**=धारणशक्ति हमें **पवते**=प्राप्त होती है। यह सोम **ऋतेन**=ऋत के द्वारा, यज्ञादि कर्मों में हमें प्रवृत्त करने के द्वारा, **दिवः परि**=द्युलोक के ऊपर, अर्थात् ज्ञानशिखर पर हमें पहुँचाकर **देवान् हवते**=देवों को पुकारता है, हमारे अन्दर दिव्य गुणों का धारण करता है। इस सोमरक्षण से—(क) हमारा शरीर यज्ञादि कर्मों में लगता है, (ख) मस्तिष्क ज्ञानवृद्धि में तत्पर होता है, (ग) और हृदय दिव्य गुणों का अधिष्ठान बनता है। (२) सोमरक्षण से जब हृदय दिव्यगुणों का अधिष्ठान बनता है, तो यह **बृहस्पतेः**=उस ज्ञान के स्वामी प्रभु के **रवथेन**=प्रेरणात्मक शब्दों से **विदिद्युते**=चमक उठता है। ये प्रभु प्रेरणा को सुननेवाले व्यक्ति **समुद्रासः न**=ज्ञान के समुद्र से बने हुए **सवनानि**=जीवन के तीनों सवनों को **विव्यचुः**=विस्तृत करते हैं। ये प्रथम २४ वर्ष के प्रातःसवन, अगले ४४ वर्षों के माध्यन्दिनसवन तथा अन्तिम ४८ वर्षों के तृतीयसवन को सुन्दरता से बिताते हुए एक सौ सोलह वर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे हाथों में यज्ञों, मस्तिष्क में ज्ञान तथा हृदय में दिव्यगुणों को स्थापित करता है। उस समय हमारा हृदय प्रभु-प्रेरणा से दीप्त हो उठता है। हम ज्ञान-समुद्र बनकर दीर्घजीवन को बितानेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

अयोहतं योनिम् आरोहसि द्युमान्

यं त्वा॑ वाजिन्न॒घ्न्या अ॒भ्यनू॑षता॒योह॑तं॒ योनि॒मा रो॑हसि द्यु॒मान्।
म॒घोना॒मायुः॑ प्रति॒रन्म॑हि॒ श्रव॒ इन्द्रा॑य सोम पवसे॒ वृषा॒ मदः॑॥ २॥

(१) हे **वाजिन्**=शक्ति-सम्पन्न सोम! **यं त्वा**=जिस तुझ को **अघ्न्याः**=ये अहन्तव्य वेदवाणी रूप गौएं **अभ्यनूषत**=स्तुत करती हैं, वेदवाणी को सदा स्वाध्याय करना ही चाहिए, इसी से

अहन्तव्य कहलाती है। इसमें सोम का स्तवन विस्तार से उपलब्ध होता है। यह सोम **द्युमान्**=ज्योतिर्मय है, ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला है, हे सोम! द्युमान् होता हुआ तू **अयोहतम्**=लोहे से घड़े हुए, अर्थात् अत्यन्त दृढ़ **योनिम्**=इस अपने उत्पत्ति-स्थानभूत शरीर में **आरोहसि**=आरोहण करता है। यह सोम ही तो शरीर को सुदृढ़ बनाता है। (२) **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों के **आयुः प्रतिरन्**=आयुष्य को बढ़ाता हुआ, हे सोम! तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **महि श्रवः**=महनीय ज्ञान को **पवसे**=प्राप्त कराता है। तू **वृषा**=इस इन्द्र को शक्तिशाली बनाता है और **मदः**=उसके जीवन में उल्लास का जनक है।

भावार्थ—वेद सोम की महिमा का गायन करता है। (क) यह शरीर को दृढ़ बनाता है, (ख) मस्तिष्क को ज्योतिर्मय करता है, (ग) जीवन को वीर्य बनाता है, (घ) हमें शक्ति-सम्पन्न करता हुआ उल्लास व आनन्द का जनक होता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमंगलः

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा॥ ३॥

(१) यह **मदिन्तमः**=अतिशयित आनन्द का जनक सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **कुक्षा आ पवते**=कुक्षिदेश में सर्वथा प्राप्त होता है, अर्थात् उसके अन्दर ही सुरक्षित रहता है। वहाँ **ऊर्जं वसानः**=बल व प्राणशक्ति को यह धारित करता है। **श्रवसे**=ज्ञान प्राप्ति के लिये होता है और इस प्रकार **सुमंगलः**=उत्तम कल्याण का कारण बनता है। (२) **प्रत्यङ्**=(प्रति अञ्छति) शरीर के अन्दर ही गतिवाला होता हुआ **सः**=वह सोम **विश्वा भुवना**=शरीर के सब अंगों को **अभि पप्रथे**=विस्तृत शक्तिवाला करता है। **क्रीडन्**=शरीर में ही विहार करता हुआ यह सोम **हरिः**=सब दुःखों का हरण करनेवाला होता है। **अत्यः**=निरन्तर गतिशील होता हुआ यह **स्पन्दते**=शरीर में प्रवाह रहित होता है, अपने रक्षक को यह क्रियाशील बनाता है। **वृषा**=शक्तिशाली होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'उल्लास-शक्ति-ज्ञान व मंगल' का साधक होता है। शरीर में ही विहरण करता हुआ सोम हमारे रोगों का हरण तो करता ही है, यह हमें गतिशील बनाकर शक्ति-सम्पन्न बनाये रखता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'सहस्रजित्' सोम

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित्॥ ४॥

(१) हे सोम! **देवेभ्यः**=देव वृत्तिवाले पुरुषों के लिये **मधुमत्तमम्**=अतिपूण्य के माधुर्य को प्राप्त करनेवाले **तं**=उस **त्वा**=तुझको **दक्षक्षिपः**=दसों इन्द्रियों के विषयों को परे फेंकनेवाले **नरः**=पुरुष **दुहते**=अपने में प्रपूरित करते हैं। उस तुझको, जो तू **सहस्रधारम्**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला है। (२) हे सोम! **नभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से **प्रच्युतः**=भूमि में प्रकर्षेण असेचित किया हुआ तू **ग्रावभिः**=स्तोताओं से **सुतः**=सम्पादित हुआ। **विश्वान् देवान्**=सब दिव्य गुणों को **आपवस्व**=प्राप्त करा। तू ही तो **सहस्रजित्**=हमारे लिये हजारों वसुओं का विजय करनेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम (क) देववृत्ति के बनें, (ख) इन्द्रियों को विषयों में न फँसने दें, (ग) उन्नतिपथ पर चलते हुए प्रभु का साधन करनेवाले बनें। सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम 'मधुमत्तम' है और 'सहस्राधार' है जीवन को मधुर बनाता है, हजारों प्रकार से हमारा धारण करता है, हजारों वसुओं का हमारे लिये विजय करता है, 'सहस्रजित्' है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'मधुमान् वृषभ' सोम

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि॥५॥

(१) हे सोम! **तंत्वा**=उस तुझको **हस्तिनः**=उत्तम हाथोंवाले, **अद्रिभिः**=उपासनाओं के साथ प्राप्त कर्मों में प्रवृत्त होकर **दशक्षिपः**=दसों इन्द्रियों के विषयों को अपने से परे फेंकनेवाले लोग **दुहन्ति**=अपने में प्रपूरित करते हैं। भूमि में सुरक्षित हुआ-हुआ तू **मधुमन्तम्**=अत्यन्त माधुर्यवाला है, **वृषभम्**=जीवन को शक्तिशाली बनानेवाला है। (२) हे सोम! तू **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को तथा **दैव्यं जनम्**=प्रभु की ओर चलनेवाले दैव्यजन को **मादयन्**=आनन्दित करता हुआ, **सिन्धोः ऊर्मि इव**=समुद्र की लहर की तरह **पवमानः**=पवित्र करता हुआ **अर्षसि**=प्राप्त होता है। समुद्र की लहर आती है और समुद्रतट के सारे कूड़े-करकट को बहा ले जाती है। इसी प्रकार सोम सब मलिनताओं को दूर करनेवाला है।

भावार्थ—प्रशस्त हाथोंवाले बनकर, प्रभु स्मरण पूर्वक कार्यों में लगे रहना ही सोमरक्षण का साधन है। यह जीवन को मधुर व शक्तिशाली बनाता है। जीव को पवित्र कर डालता है।

अगला सूक्त भी 'वसु भारद्वाज' का ही है—

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'यश-ज्ञान-आनन्द'

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः॥१॥

(१) **पवमानस्य**=जीवन को पवित्र बनाते हुए **सोमस्य**=सोम की **अर्मयः**=तरंगें **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरम्**=उदर को **प्रयन्ति**=प्रकर्षेण प्राप्त होती हैं। जितेन्द्रिय पुरुष के शरीर में सोम सुरक्षित रहता है। वहाँ ये सोम की तरंगे **सुपेक्षसः**=अंग-अन्यंग का सुन्दर निर्माण करती हैं। (२) **दध्ना**=(धत्ते) चित्तवृत्ति का धारण करनेवाले पुरुष से **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **उन्नीताः**=ये सोमकण शरीर में ऊर्ध्वगतिवाले होते हैं, तब ये सोमकण **यशसा**=यश के साथ **गवां दानाय**=ज्ञान की वाणियों के देने के लिये होते हैं। ये सोम हमारे जीवन में **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए **शूरं**=शक्तिशाली पुरुष को **उद् मन्दिषुः**=खूब उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व चित्तवृत्ति निरोध द्वारा रक्षित सोम (क) शरीर का उत्तम निर्माण करते हैं, (ख) जीवन को यशस्वी बनाते हैं, (ग) हमें ज्ञानदीप्त करते हैं, (घ) उत्कृष्ट आनन्द को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

शक्ति+ज्ञान, अभ्युदय+निःश्रेयस

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत्॥ २॥

(१) **सोमः**=वीर्यशक्ति **हि**=निश्चय से **कलशान् अच्छा**=१६ कलाओं के निवास-स्थान इस शरीर की ओर **असिष्यदत्**=प्रवाहवाली होती है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम अत्यन्त द्रुतगामी अश्व के समान **वोढा**=कार्य का वहन करनेवाला होता है और हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाता है। **रघुवर्तनिः**=शीघ्रता से मार्ग का आक्रमण करनेवाला यह सोम **वृषा**=शक्तिशाली होता है। (२) **अथा**=अब यह सोम **देवानाम्**=इन देववृत्ति के पुरुषों के **उभयस्य**=दोनों **जन्मनः**=विकासों को 'शक्ति ज्ञान' के विकासों को **विद्वान्**=जानता हुआ **अमुतः च यत्**=परलोक का जो निःश्रेयस रूप ऐश्वर्य है, **च**=और **इतः यत्**=इस लोक का 'अभ्युदय' रूप ऐश्वर्य है उन दोनों ऐश्वर्यों को **अश्नोति**=व्याप्त करता है। अर्थात् सोम शक्ति व ज्ञान का प्रादुर्भाव करता हुआ अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाला है। यह शक्ति व ज्ञान का विकास करता हुआ अभ्युदय व निःश्रेयस का साधन बनता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'वसु प्रदाता' सोम

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः॥ ३॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ति! तू **नः**=हमारे लिये **पवमानाः**=पवित्रता को करनेवाली है। **वसु**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को अधिकार हमारे लिये सर्वतः प्राप्त करानेवाली हो, शरीर के अंगप्रत्यंग में उस-उस वसु को प्राप्त करा। हे **इन्दो**=शक्तिशालिन् सोम! तू **महः राधसः**=महनीय धन की शिक्षा दे। **मघवा**=तू सर्वैश्वर्यवाला है। (२) हे **वयोधः**=उत्कृष्ट जीवन को धारित करनेवाले सोम तू **सुचेतुना**=उत्तम ज्ञान के द्वारा **वसवे**=हमारे वसुओं के लिये हो, हमें उत्कृष्ट निवास को प्राप्त कराने के लिये हो। **नः गयम्**=हमारी प्राणशक्ति को **स्मत्**=हमारे से **मा**=मत **परासिचः**=दूर करनेवाला हो हमारी प्राण शक्ति का रक्षण कर।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब वसुओं को प्राप्त कराके हमारे निवास को उत्तम बनाता है। यह हमारी प्राणशक्ति का रक्षक है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सोमरक्षण से सर्वदेव प्राप्ति

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती॥ ४॥

(१) सोमरक्षण के होने पर **नः**=हमारे लिये **सुरातयः**=सब उत्तमताओं को देनेवाले **सजोसः**=परस्पर संगत 'पूषा पवमानः मित्रः व वरुणः'=पूषा आदि देव **आगच्छन्तु**=प्राप्त हों। हम अच्छी प्रकार अपना पोषण करनेवाले हों, पवित्रता को सिद्ध करें, सब के प्रति स्नेहवाले हों, द्वेष

का निवारण करनेवाले हों। (२) इसी प्रकार हमें **त्वष्टा**=त्वष्टा की प्राप्ति हो। हम दीप्तिमय जीवनवाले हों। (त्विष्) अथवा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों (त्वक्ष्)। **सविता**=सविता की हमें प्राप्ति हो? हम ऐश्वर्य का उत्पादन करनेवाले हों। **सुयमा**=उत्तम संयमवाली **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता हमें प्राप्त हो। **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु हमें प्राप्त हो। **मरुतः**=प्राण हमें प्राप्त हों। **वायुः**=गतिशीलता तथा **अश्विनौ**=(सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य व चन्द्र हमें प्राप्त हों। हमारे जीवन में सूर्य व चन्द्र का समन्वय हो। सूर्य 'उष्णता' का प्रतीक है और चन्द्र 'शीतलता' का। हमारे जीवन में दोषों का सुन्दर समन्वय होकर क्रियाशीलता बनी रहे।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारा जीवन सर्वदेवमय बनता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

विश्वमिन्वे द्यावापृथिवी

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त॥ ५॥

(१) **उभे**=दोनों **विश्वमिन्वे**=(मिन्व्) सब से आदरणीय **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क और शरीर **पवमानम्**=हमारे जीवन को पवित्र करनेवाले सोम का **जुषन्त**=सेवन करते हैं। अर्थात् सोमरक्षण के होने पर उत्कृष्ट मस्तिष्क व शरीर प्राप्त होते हैं। **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम, क्रोध आदि को वशीभूत करना, **देवः**=अकारणमयता, **अदितिः**=स्वस्थ्य, विधाता, निर्माण की दिव्यभावना, ये सब सोम के रक्षित होने पर हमारे प्रति प्रीतिवाले होते हैं। (२) **भगः**=ऐश्वर्य, **नृशंसः**=मनुष्यों के द्वारा शंसन (यशोगान), उस **अन्तरिक्षम्**=विशाल हृदय तथा **विश्वेदेवाः**=सब देव इस सोम को सेवित करते हैं, सोमरक्षण के होने पर ये सब शरीर में उपस्थित होते हैं।

भावार्थ—सोम के हमारे जीवन को पवित्र करने पर सब देव हमारे प्रति प्रीतिवाले होते हैं। हमारा जीवन यशस्वी बनता है।

'वसु भारद्वाज' ही अगले सूक्त में कहते हैं—

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

प्रभु की ओर व प्रभु प्राप्ति

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम्॥ १॥

(१) **सोमः**=सोम (वीर्य) **असावि**=शरीर में उत्पन्न किया गया है, **अरुषः**=यह आरोचमान है। **वृषा**=शक्तिशाली है और **हरिः**=सब दुःखों का हरण करनेवाला है। **राजा इव**=यह शरीर में राजा (शासक) के समान है। **दस्मः**=सब दास्यव वृत्तियाँ का विनाश करनेवाला है (दसु उपक्षये)। **गाः अभि**=यह वेदवाणियों की ओर चलता है, अर्थात् सोमरक्षण से वेदवाणियों की ओर झुकाव होता है। **अचिक्रदत्**=यह प्रभु का आह्वान करता है, अर्थात् सोमरक्षक पुरुष का झुकाव प्रभु स्मरण की ओर होता है। (२) **पुनानः**=हमारे जीवन को पवित्र करता हुआ यह सोम **वारम्**=उस वरणीय प्रभु की **पर्येति**=गतिवाला होता है, जो **अव्ययम्**=कभी नष्ट होनेवाले नहीं। **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान होता हुआ यह सोम **घृतवन्तम्**=ज्ञान की प्रीतिवाले **योनिम्**=उस संसार के उत्पत्ति स्थान प्रभु में **आसदम्**=आसीन होने के लिये होता है। संक्षेप में

क्रम यह है कि (क) सोम हमारे जीवन को पवित्र बनाता है, (ख) हम प्रभु की ओर चलते हैं, (ग) प्रशंसनीय गतिवाले होते हैं, (घ) अन्ततः प्रभु में आसीन होते हैं।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को पवित्र करके हमें प्रभु की ओर ले चलता है। अन्ततः यह हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

इन्द्रियदमन (ममहिनं पर्येषि)

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम्॥ २॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **कविः**=क्रान्त होता हुआ **वेधस्या**=उस विधाता प्रभु की प्राप्ति की कामना से **माहिनम् पर्येषि**=(power, dominion) इन्द्रियों के आदित्य को, इन्द्रियों के दमन की शक्ति को प्राप्त करता है। **मृष्ट**=शुद्ध किया गया तू **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान **वाजम् अभि अर्षसि**=शक्ति और गतिवाला होता है। जैसे घोड़े की मालिश होने पर वह तरोताजा होकर शक्तिसम्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार वासनाओं के विनाश के द्वारा परिशुद्ध सोम हमें शक्ति-सम्पन्न बनाता है। (२) शक्तिशाली बनाकर सब **दुरिता**=दुरितों को, अभद्रों को, **अपसेधन्**=दूर करते हुए, हे सोम! तू हमें **मृडयः**=सुखी कर **घृतं वसानः**=ज्ञानदीप्ति को धारण कराता हुआ तू **निर्णिजम्**=शोधन व पुष्टि को **परियासि**=चारों ओर प्राप्त कराता है। इस सोम के रक्षण से शरीर ज्ञानदीप्ति से चमक उठता है, इसका अंगप्रत्यंग निर्मल व पुष्ट हो जाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारी बुद्धि तीव्र होती है, हमारे में प्रभु प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है, हम इन्द्रियदमन करते हुए शक्तिशाली बनते हैं। दुरित दूर होते हैं। प्रकाश के साथ पुष्टि प्राप्त होती है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

वानस्पतिक भोजन व सोमरक्षण

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे॥ ३॥

(१) इस **महिषस्य**=महान् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गो महिमावाले **पर्णिनः**=पालन व पूरण करनेवाले सोम का **पर्जन्यः**=यह बादल ही पिता पितृ स्थानीय है। बादलों से हुई वृष्टि इसे जन्म देनेवाली ओषधियों, वनस्पतियों को उगाती है। वस्तुतः इन ओषधियों वनस्पतियों के सेवन से उत्पन्न सोम ही शरीर में रक्षणीय है। यह सोम **पृथिव्याः नाभा**=पृथिवी की नाभि में तथा **गिरिषु**=पर्वतों पर **क्षयं दधे**=निवास को धारण करता है। इस पृथिवी के क्षेत्रों में तथा पर्वतों पर उत्पन्न वनस्पतियाँ ही इस सोम को जन्म देती हैं। इन शब्दों से भी उसी बात पर बल दिया गया है कि हम वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करें। इनसे उत्पन्न सोम ही हमारे लिये कल्याण कर होगा। (२) **स्वसारः**=(वनस्पतियों के सेवन से उत्पन्न सोम) हमें आत्मतत्त्व की ओर ले चलते हैं। **उत**=और **आपः**=रेतकण (आपः रेतो भूत्वा०) **गाः अभि असरन्**=ज्ञान की वाणियों की ओर गतिवाले होते हैं। यह सोम **वीते अध्वरे**=कान्त यज्ञों के होने पर जीवन में सुन्दर यज्ञात्मक कर्मों के चलने पर **ग्रावभिः संनसते**=स्तोता पुरुषों के साथ संगत होता है। अर्थात् सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम यज्ञात्मक कार्यों में लगे रहें, प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—सोमरक्षण के इच्छुक पुरुष को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि वह वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करे। सुरक्षित सोमरक्षण उसे ज्ञान प्राप्ति व आत्मतत्त्व की ओर ले चलेंगे। यज्ञों में लगे रहना व प्रभु स्तवन भी सोमरक्षण में साधक होते हैं।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सर्वसुख साधक सोम

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि॥ ४॥

(१) **इव**=जैसे **जाया**=पत्नी **पत्यौ**=पति के विषय में **अधिशेव**=अधिक सुख को (शेव, शेवं) प्राप्त कराती है, इसी प्रकार हे सोम, वीर्यशक्ति! तू अपने रक्षक में खूब ही सुख को **मंहसे**=देनेवाला होता है। 'स्वास्थ्य' सुख का मूल यह सोम ही तो है। हे **पज्रायाः गर्भ**=(पज्रा strength) शक्ति को अपने में धारण करनेवाले सोम! तू **शृणुहि**=मेरे से किये गये अपने को स्तवन को सुन। **ते ब्रवीमि**=मैं तेरे लिये इन स्तुतिवचनों को कहता हूँ। इन स्तुतिवचनों के द्वारा स्तोता सोम के महत्त्व को अपने हृदय पर अंकित करता है। (२) हे सोम! तू **वाणीषु अन्तः**=ज्ञान की वाणियों में **चरा**=गतिवाला हो। **सुजीवसे**=हमारे उत्कृष्ट जीवन के लिये, **अनिन्द्यः**=न निन्दित होता हुआ अत्यन्त प्रशस्य होता हुआ तू **वृजने**=शक्ति में **जागृहि**=सदा जागरित हो, हमें तू शक्तिवाला बना।

भावार्थ—सोम शक्ति का धारक है, यह सर्वोत्कृष्ट सुख को प्राप्त कराता है। यही ज्ञान की वाणियों में व शक्ति में विचरण करता है।

ऋषिः—**वसुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'शतसाः सहस्रसाः' सोम

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते॥ ५॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **यथा**=जैसे **पूर्वेभ्यः**=अपना पालन व पूरण करनेवालों के लिये **अमृध्रः**=हिंसा को न करनेवाला है, उन्हें हिंसित नहीं होने देता और **शतसाः**=उन्हें पूरे सौ वर्ष के आयुष्य को देनेवाला है **सहस्रसाः**=और हजारों वसुओं (धनों) को प्राप्त करानेवाला है। ऐसा तू **वाजं पर्ययाः**=शक्ति को हमारे अंगप्रत्यंगों में प्राप्त करानेवाला हो। (२) **एवा**=इसी प्रकार तू **नव्यसे**=अत्यन्त स्तुत्य (नु स्तुतौ) **सुविताय**=सुवित के लिये, सदाचरण के लिये, **पवस्व**=प्राप्त हो। **तव व्रतम् अनु**=तेरे व्रत के अनुपात में ही, अर्थात् जितना-जितना हम तेरा रक्षण करते हैं, उतना-उतना ही **आपः सचन्ते**=व्यापक कर्म हमारे साथ सम्यक् होते हैं। सोमरक्षण के अनुपात में ही हमारे कर्म उद्भूता के लिये हुए व पवित्र होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'दीर्घजीवन, सब जीवनधन (वसु) शक्ति तथा पवित्र कर्मों' को प्राप्त कराता है।

सोमरक्षण से पवित्र जीवनवाला 'पवित्र' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

[८३] त्र्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

तपस्या से सोमरक्षण

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत॥ १॥

(१) हे **ब्रह्मणस्पते**=हमारे जीवनों में ज्ञान के रक्षक सोम! **ते**=तेरा **पवित्रम्**=पावक सामर्थ्य **विततम्**=विस्तृत है। तू शक्ति, मन, व बुद्धि सभी को पवित्र करनेवाला है। **प्रभुः**=तू इस सब पवित्रता के कार्य को करने का सामर्थ्य रखता है। तू **विश्वतः**=सब ओर **गात्राणि पर्येषि**=शक्ति के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त होता है, सब अंगों में व्याप्त होकर तू उनकी दुर्बलता को दूर करके उन्हें सबल बनाता है। (२) **अतप्ततनूः**=जिसने अपने शरीर को तप की अग्नि में नहीं तपाया और अतएव **आमः**=अपरिपक्व है वह **तद्**=उस सोम को न **अश्नुते**=अपने अन्दर व्याप्त नहीं कर पाता। **शृतासः**=तपस्या की अग्नि में परिपक्व होनेवाले लोग ही **इत्**=निश्चय से **वहन्तः**=इस सोम का धारण करते हुए **तत् समाशत**=उसे अपने अन्दर सम्यक् व्याप्त करते हैं (व्याप्नुवन्ति सा०)।

भावार्थ—सोमरक्षण तपस्या के होने पर ही सम्भव है, सुरक्षित सोम सब अंग-प्रत्यंगों को पवित्र करता है।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सुरक्षित सोम द्वारा ज्ञानशिखरारोहण

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा॥ २॥

(१) **तपोः**=तपस्वी पुरुष के **दिवस्पदे**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के स्थान में **पवित्रं विततम्**=यह पवमान सोम विस्तृत होता है। वहाँ मस्तिष्क में ज्ञानशक्ति का ईंधन बनकर यह उसे दीप्त करनेवाला होता है। **शोचन्तः**=दीप्त होते हुए **अस्य**=इस सोम के **तन्तवः**=तन्तु **व्यस्थिरन्**=इस तपस्वी के शरीर में सुस्थिर होते हैं। सोम कणों की निरन्तर सम्बद्ध पंक्ति ही यहाँ सोम के तन्तुओं के रूप में कही गई है। तपस्या से ही इस तन्तु की स्थिरता होती है। (२) **आशवः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त रहनेवाले लोग **अस्य**=इस सोम की **पवीतारम्**=पावन शक्ति को **अवन्ति**=अपने में सुरक्षित करते हैं। और **चेतसा**=संज्ञान के द्वारा **दिवः पृष्ठं अधितिष्ठन्ति**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के शिखर पर आरूढ़ होते हैं।

भावार्थ—तपस्या व क्रियाशीलता के द्वारा सोम का रक्षण होता है। सुरक्षित सोम हमें पवित्र करता हुआ ज्ञानशिखर पर आरूढ़ करता है।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

प्रातः जागरण व स्वाध्याय प्रवृत्ति

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः॥ ३॥

(१) **उषसः अग्रियः**=उषाकालों के आरम्भ में होनेवाला अर्थात् बहुत सबेरे-सबेरे जाग जानेवाला यह **पृश्निः**=आदित्य की तरह ज्ञानज्योति से दीप्त होनेवाला पुरुष **अरूरुचत्**=सोमरक्षण

द्वारा तेजस्विता से दीप्त होता है। **उक्षा**=अपने अन्दर सोम का सेवन करनेवाला, **वाजयुः**=शक्ति को अपने साथ जोड़नेवाला होता है और **भुवनानि बिभर्ति**=शरीर के सब अंग-प्रत्यंगों को व लोकों को धारण करनेवाला होता है, अर्थात् अपने को स्वस्थ बनाता हुआ सभी का धारण करता है। (२) **अस्य**=इस सोम की **मायया**=प्रज्ञा से, सोमरक्षण से उत्पन्न बुद्धि से **मायाविनः**=प्रज्ञावान् पुरुष **ममिरे**=बनाये जाते हैं। सोम ही बुद्धिमानों को बुद्धिमान् बनाता है। इस सोम के ही महत्त्व से **नृचक्षसः**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाले **पितरः**=पालक लोग, पिता बननेवाले लोग, **गर्भम् आदधुः**=गर्भ की स्थापना करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'प्रातः जागरण व स्वाध्याय प्रवृत्ति' सहायक साधन बनते हैं यह सोम ही बुद्धिमानों को बुद्धिमान् व पिताओं को पिता बनाता है।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सोमरक्षण द्वारा दिव्यगुणों का विकास

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत॥ ४॥

(१) **गन्धर्वः**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाला पुरुष ही **अस्य**=इस सोम के **इत्थापदम्**=सत्यमार्ग का, शरीर में ऊर्ध्वगतिरूप मार्ग का **रक्षति**=रक्षण करता है। यह सुरक्षित सोम **देवानाम्**=दिव्यगुणों के **जनिमानि**=प्रादुर्भावों का **पाति**=रक्षण करता है, अर्थात् दिव्यगुणों का विकास करता है। **अद्भुतः**=यह सोम वस्तुतः अनुपम वस्तु है। (२) यह **निधापतिः**=जालों का पति सोम **निधया**=जालों से **रिपुंगृभ्णाति**=काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जकड़ लेता है। अर्थात् सुरक्षित सोम इन वासना रूप शत्रुओं को कैद कर लेता है। यही सोम की पवमानता है, पवित्रीकरण शक्ति है। **सुकृत्तमाः**=उत्तम पुण्यों को करनेवाले लोग **मधुनः भक्षम्**=इस ओषधि वनस्पतियों के भोजन से उत्पन्न हुए-हुए सारभूत सोम के भक्षण को आशत (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम दिव्यगुणों का विकास करता है, काम, क्रोध आदि को कैद-सा करके जीवन को पवित्र बनाता है।

ऋषिः—**पवित्रः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

राजा पवित्ररथः

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत्॥ ५॥

(१) हे **हविष्मः**=उत्तम हविवाले पुरुष! तू **हविः**=दानपूर्वक अदन को तथा **नभः**=प्रकाश को **वसानः**=धारण करता हुआ, अर्थात् त्याग व स्वाध्याय के द्वारा प्रकाशमय जीवनवाला होता हुआ **अध्वरं परियासि**=यज्ञों की ओर जाता है और **महि दैव्यं सद्म**=महान् देव के गृह की ओर जाता है, यज्ञशील बनकर प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर बढ़ रहा होता है। (२) इस सोमरक्षण से तू **राजा**=दीप्त जीवनवाला होता है, **पवित्ररथः**=पवित्र शरीर रूप रथवाला होता है, **वाजम् आरुहः**=तू शक्ति का आरोहण करता है। **सहस्रभृष्टिः**=हजारों शत्रुओं का भूननेवाला होता हुआ, सोमरक्षण द्वारा सब रोग व वासना रूप शत्रुओं को नष्ट करता हुआ, **बृहत् श्रवः**=बहुत अधिक ज्ञान का **जयसि**=विजय करता है।

भावार्थ—सोमरक्षणवाला पुरुष त्याग, स्वाध्याय व यज्ञों को धारण करता हुआ ब्रह्म की ओर चलता है। 'शक्तिशाली व पवित्र' बनकर शत्रुओं का नाश करता हुआ उज्ज्वल जीवनवाला होता है।

यह पवित्र रथ 'प्रजापति' बनता है, सब प्रजाओं का रक्षण करनेवाला होता है और 'वाच्य:' प्रशंसनीय जीवनवाला होता है। यह सोमस्तवन करता हुआ कहता है कि—

[८४] चतुरशीतितमं सूक्तम्

ऋषि:—**प्रजापतिर्वाच्य:** ॥ देवता—**पवमान: सोम:** ॥ छन्द:—**विराड्जगती** ॥ स्वर:—**निषाद:** ॥

देवमादन: विचर्षणि: अप्सा:

पव॑स्व देव॒माद॑नो॒ विच॑र्षणिर॒प्सा इन्द्रा॑य॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑।
कृ॒धी नो॑ अ॒द्य वरि॑व: स्वस्ति॒मदु॑रुक्षि॒तौ गृ॑णीहि॒ दैव्यं॒ जन॑म्॥ १॥

(१) हे सोम! तू **देवमादन:**=देववृत्ति के पुरुषों को आनन्दित करनेवाला है, **विचर्षणि:**=विशिष्ट द्रष्टा है, बुद्धि को तीव्र बनाने के द्वारा वस्तुओं के तत्त्व को दिखानेवाला है, **अप्सा:**=कर्मों का सेवन करनेवाला है। सुरक्षित सोम हमें शक्ति सम्पन्न बनाकर क्रियाशील बनाता है। यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त होता है, **वरुणाय**=द्वेष का निवारण करनेवाले के लिये प्राप्त होता है, **वायवे**=(वा गतौ) गतिशील के लिये प्राप्त होता है। सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम 'जितेन्द्रिय, निर्दोष व क्रियाशील' बनें। (२) हे सोम! **अद्य:**=आज तू **न:**=हमारे लिये **स्वस्तिमत्**=कल्याण से युक्त **वरिव:**=धन को **कृधि**=कर तथा **उरुक्षितौ**=इस विशाल शरीर रूप पृथिवी में **दैव्यं जनम्**=देकर (प्रभु) की ओर चलनेवाले मनुष्य को **गृणीहि**=प्रात:-सायं ज्ञानपूर्वक स्तुति करनेवाला बना। इसके लिये तू ज्ञानोपदेश करनेवाला बन। सोमरक्षण ज्ञानाग्नि को दीप्त करके ज्ञानवर्धन का कारण होता है। सोम शरीर को विशाल व मन को प्रभु की ओर झुकाववाला और अतएव हमें स्तुतिवाला बनाता है। सोमरक्षण से ही ज्ञानाग्नि दीप्त होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये साधन है 'जितेन्द्रियता, निर्द्वेषता व क्रियाशीलता'। सुरक्षित सोम हमारे शरीर व मन दोनों को ही स्वस्थ बनाता है।

ऋषि:—**प्रजापतिर्वाच्य:** ॥ देवता—**पवमान: सोम:** ॥ छन्द:—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

'संचृत व विचृत को करता हुआ' सोम

आ यस्त॒स्थौ भुव॑ना॒न्यम॑र्त्यो॒ विश्वा॑नि॒ सोम॑: परि॒ तान्य॑र्षति।
कृ॒ण्वन्त्सं॒चृतं॑ वि॒चृत॑म॒भिष्ट॑य॒ इन्दु॑: सिषक्त्यु॒षसं॒ न सूर्य॑:॥ २॥

(१) **य:**=जो **सोम:**=सोम (वीर्यशक्ति) **भुवनानि आतस्थौ**=सब अंग-प्रत्यंगों को अधिष्ठित करता है, वह सोम **अमर्त्य:**=हमें रोगों से मरने नहीं देता। वह सोम **तानि विश्वानि**=उन सब अंग-प्रत्यंगों में **परितान्यर्षति**=चारों ओर गतिवाला होता है। (२) सब अंगों में उपस्थित होकर **संचृतम्**=सब अच्छाइयों का संग्रन्थन (connecting together) **कृण्वन्**=करता हुआ और इसी प्रकार **विचृतम्**=बुराइयों का विग्रन्थन करता हुआ **अभिष्टये**=हमारी इष्ट प्राप्ति के लिये होता है। यह **इन्दु:**=सोम हमारा **सिषक्ति**=इस प्रकार सेवन करता है, **न**=जैसे कि **सूर्य:**=सूर्य **उषसम्**=उषा का। उषा को वस्तुत: सूर्य की प्रथम किरणों से ही दीप्ति प्राप्त होती है। हमारे जीवनों में यह सोम सूर्य के समान आता है, यह हमारे सारे अज्ञानान्धकार को दूर करनेवाला होता है।

भावार्थ—सोम हमें सभी अच्छाइयों को मिलाता है, बुराइयों को

हमारे से दूर करता है। यह सोम हमारे जीवन के प्रकाश में सूर्य के समान उदित होता है।

ऋषिः—**प्रजापतिर्वाच्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

विद्युता धारणा

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम्॥ ३॥

(१) **यः**=जो **सोमः**=सोम **ओषधीषु**=ओषधियों में **आसृज्यते**=पैदा किया जाता है, अर्थात् जो सोम वानस्पतिक भोजनों के सेवन से उत्पन्न होता है, वह **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से (सृज्यते) संसृष्ट होता है। यह सोम **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों के **सुम्ने**=(Hymn) स्तोत्रों में **इषयन्**=गति करता हुआ **उपावसुः**=प्रभु की उपासना से सब वसुओं को प्राप्त करनेवाला होता है। सोमरक्षण से दिव्यवृत्ति बनती है, मनुष्य प्रभु-प्रवण बनता है और यह उपासना उसे सब जीवनधनों को प्राप्त करानेवाली होती है। (२) यह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **विद्युता धारया**=विशिष्ट दीप्तिवाली धारणशक्ति से **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह सोम **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय **दैव्यं जनम्**=देव की उपासना में चलानेवाले मनुष्य को **मादयन्**=प्रसन्न करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण में वानस्पतिक भोजन सहायक होता है। सुरक्षित हुआ यह सोम ज्ञानदीप्ति को बढ़ाता है और उल्लास का कारण बनता है।

ऋषिः—**प्रजापतिर्वाच्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'वाचम् इषिराम् उषर्बुधम्'

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम्।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति॥ ४॥

(१) **एषः**=यह **स्यः**=प्रसिद्ध **सोमः**=सोम **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह सहस्रजित् हमारे लिये हजारों धनों का विजय करनेवाला होता है। यह हममें अन्दर **वाचम्**=उस ज्ञान की वाणी को **हिन्वानः**=प्रेरित करता हुआ होता है, जो वाणी **इषिराम्**=हमें प्रेरणा को देनेवाली है और **उषर्बुधम्**=हमें उषाकाल में प्रबुद्ध करनेवाली है। यह प्रभु की वाणी हमें उषाकाल में जागने की प्रेरणा देती है। (२) **इन्दुः**=यह सोम **वायुभिः**=गतिशीलताओं के साथ **समुद्रम् उदियर्ति**=ज्ञान के समुद्र को हमारे अन्दर प्रेरित करता है। सोमरक्षण से हमारा ज्ञान बढ़ता है, और हम उस ज्ञान के अनुसार क्रियाशील जीवनवाले होते हैं। यह **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष का **हार्दि**=हृदय को प्रिय लगनेवाला सोम **कलशेषु सीदति**=सूक्ष्मरूप कलशों में, १६ कलाओं के आधारभूत इन शरीरों में **सीदति**=स्थित होता है। वस्तुतः सुरक्षित सोम ही सब कलाओं का आधार बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब वसुओं का विजय करता है। यह हमारे अन्दर ज्ञान की वाणियों को प्रेरित करता है। हमें प्रातः जागरणशील व गतिशील बनाता है, हमारा सारा जीवन इस सोम के कारण क्रियामय बना रहता है।

ऋषिः—**प्रजापतिर्वाच्यः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'स्वर्चनाः' सोम

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम्।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः॥ ५॥

(१) **गावः**=वेदवाणीरूप गौएँ **पयसा**=अपने ज्ञानदुग्ध से **पयोवृधम्**=आप्यायन (वृद्धि) के बढ़ानेवाले **त्यम्**=उस सोम को **अभिश्रीणन्ति**=अच्छी प्रकार परिपक्व करती हैं। इन ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में लगे रहने से शरीर में सोम का सम्यक् रक्षण होता है। उस सोम को ये ज्ञानवाणियाँ परिपक्व करती हैं, जो **मतिभिः**=बुद्धियों के द्वारा **स्वर्विदम्**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाला है। (२) **धनञ्जयः**=यह सब धनों का विजेता सोम **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह **कृत्व्यः**=कर्तव्य कर्मों के करने में कुशल है, **रसः**=जीवन को रसमय बनाता है। **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला है, सब न्यूनताओं को दूर करता है। **कविः**=क्रान्तदर्शी है, हमारी अन्तर्दृष्टि को तीव्र बनाता है। **काव्येना**=इस अन्तर्दृष्टिवाले ज्ञान के द्वारा यह **स्वर्चनाः**=(सु अर्चना) उत्तम अर्चन करनेवाला है। अथवा (स्वः चनः pleasure) प्रकाशमय आनन्दवाला है, सुरक्षित सोम सम्यक सानन्द को देता है।

भावार्थ—सोम ज्ञान को बढ़ाता है। ज्ञानवृद्धि करता हुआ यह हमारे लिये प्रकाशमय आनन्द को प्राप्त कराता है।

गत मन्त्र के अनुसार सोमरक्षण से 'कवि व स्वर्चनाः' बनकर यह 'वेन' (मेधावी) बनता है, ज्ञान परिपक्व होने से 'भार्गव' कहलाता है, यह सोमशंसन करता हुआ कहता है कि—

[८५] पञ्चाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वेनो भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अष अमीवा भवतु रक्षसासर

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ १ ॥

(१) हे सोम वीर्यशक्ते **सुषुतः**=ओषधियों, वनस्पतियों के भोजन से पैदा हुआ-हुआ तू **इन्द्रायः**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। **रक्षसा सह**=सब आसुरी भावों के साथ **अमीवा**=रोग **अपभवतु**=दूर हो। सोम से रोग व राक्षसीभाव विनष्ट हो जाते हैं। (२) **द्वयाविनः**=अन्दर व बाहिर भिन्न-भिन्न वृत्तिवाले चालाकी व छलादि से भरे व्यक्ति **ते रसस्य**=तेरे रस का **मा मत्सत**=आनन्द प्राप्त करनेवाले न हों। हमारे लिये तो **इन्दवः**=ये सोमकण **इह**=इस शरीर में **द्रविणस्वन्तः**=सब द्रविणों को प्राप्त करानेवाले **सन्तु**=हों। अर्थात् सोमरक्षण से अन्नमय आदि सब कोशों का ऐश्वर्य परिपूर्ण बनें।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब रोग व राक्षसी भाव दूर हों। सब कोशों का ऐश्वर्य प्राप्त हो।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

संग्राम विजय

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥ २ ॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **अस्मान्**=हमें **समर्ये**=इस जीवन संग्राम में **चोदय**=प्रेरित कर। **दक्षः**=तू ही सब उन्नति व सामर्थ्य का कारण है। **देवानाम्**=देववृत्तिवाले पुरुषों का **हि**=निश्चय से **प्रियः मदः**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाला आनन्दजनक **असि**=है। (२) **भन्दनायतः**=स्तुतिशील पुरुष के **शत्रून्**=रोगरूप शत्रुओं को **अभि आ जहि**=आक्रमण करके **सर्वतः**=विनष्ट कर। हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष इस **सोमम्**=सोम को तू **पिब**=अपने अन्दर

पीनेवाला बन। **नः मृधः**=हमारे इन नाशक शत्रुओं को **अवजहि**=विनष्ट कर। सोमरक्षण से रोग तो नष्ट होने ही हैं, वासनाओं का भी इसके द्वारा विनाश होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें जीवन संग्राम में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

आत्मा इन्द्रस्य भवसि

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते॥ ३॥

(१) हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **अदब्धः**=अहिंसित होता हुआ **पवसे**=हमें प्राप्त होता है। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर रोगों व वासनाओं का आक्रमण नहीं हो पाता। यह सोम **मदिन्तमः**=हमें अत्यन्त आनन्दित करनेवाला है। हे सोम! तू **इन्द्रस्यः**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का **आत्मा भवसि**=आत्मा होता है, अर्थात् तेरे बिना तो सब मृत-सा ही है। सोम ही आत्मा है, वह गयी तो बाकी तो एक शव है। तू ही **उत्तमः धासिः**=सर्वोत्तम धारक है। (२) **अस्य भुवनस्य**=इस शरीर रूप लोक के **राजानम्**=दीप्त करनेवाले तुझको ही **बहवः मनीषिणः**=ये बहुत ज्ञानी पुरुष **अभिस्वरन्ति**=स्तुति करते हैं और **निंसते**=प्रीतिपूर्वक तेरे ओर ही आते हैं। इस सोम के बिना इस शरीर राज्य में अन्धकार-ही-अन्धकार है।

भावार्थ—सोम आनन्द का जनक है, वस्तुतः शरीर का आत्मा ही है, धारक है। इसका साधन करते हुए इसके प्रति हम प्रीतिवाले हों।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सहस्रणीथः शतधारः

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः॥ ४॥

(१) शरीर में **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **इन्दुः**=यह सोम **पवते**=प्राप्त होता है। यह **सहस्रणीथः**=हजारों प्रकार से शरीर की क्रियाओं का प्राणयन कर रहा है, प्रत्येक नस नाड़ी में सब क्रियायें इसकी सुस्थिति पर ही निर्भर करती हैं। **शतधारः**=सैकड़ों प्रकार से यह धारण करनेवाला है। **अद्भुतः**=यह शरीर में एक अनुपम तत्त्व है। यह **काम्यं मधु**=चाहने योग्य सम्भूत वस्तु है। (२) हे **मीढ्वः**=सब शक्तियों का सेवन करनेवाले सोम, वीर्यशक्ते! तू **जयन्**=सब रोगों व वासनाओं को पराजित करता हुआ **क्षेत्रम् अभि अर्ष**=हमारे इस शरीर के प्रति प्राप्त होनेवाला हो। हमारे लिये **अपः**=कर्मों का **जयन्**=विजय करता हुआ तू हमें प्राप्त हो। तेरी शक्ति से ही हम सब कर्मों में सफलता का लाभ करें। तू **नः**=हमारे लिये **उरुं गातुम्**=विशाल मार्ग को **कृणु**=कर। तेरे सुरक्षण के होने पर हम सब कार्यों को विशाल हृदयता से करनेवाले हों।

भावार्थ—सोम एक अद्भुत वस्तु है। हजारों प्रकार से यह हमारा धारण कर रहा है। यह हमें नीरोग, क्रियाशील व विशाल हृदय बनाता है।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

अत्यो न सानसिः

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि।

मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः॥ ५॥

(१) हे सोम! **कनिक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ तू **कलशे**=इस शरीर कलश में **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **अज्यसे**=अलंकृत किया जाता है। सोमरक्षण से जहाँ प्रभु-प्रवणता उत्पन्न होती है, वहाँ ज्ञानाग्नि का दीपन होकर ज्ञानवृद्धि होती है। अब तू **अव्ययम्**=उस एक रस-विविधरूपों में न जानेवाले निर्विकार **वारम्**=वरणीय प्रभु को **समया**=समीपता से **वि अर्षसि**=विशेषरूप से प्राप्त होता है। सोमरक्षण हमें प्रभु के समीप पहुँचाता है। (२) इस प्रभु उपासना से वासना विनाश के द्वारा **मर्मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ तू **अत्यः न**=निरन्तर गतिशील अश्व के समान **सानसिः**=संभजनीय होता है, युद्ध विजय के लिये जैसे वह अश्व उपदेश होता है, उसी प्रकार जीवन संग्राम में विजय के लिये यह सोम उपादेय है। हे सोम! तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरे**=शरीर मध्य में **सम् अक्षरः**=सम्यक् क्षरित होनेवाला है। शरीर में सर्वत्र गतिवाला होता हुआ वहाँ-वहाँ की कमियों को तू दूर करनेवाला हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम प्रभुस्तवन की वृत्तिवाले होते हैं, ज्ञान को प्राप्त करते हैं, जीवन संग्राम में विजयी बनते हैं।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'स्वादुः' सोमः

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः॥ ६॥

(१) यह सोम **स्वादुः**=जीवन के सब व्यवहारों को मधुर बनानेवाला है। हे सोम! तू **दिव्याय जन्मने**=दिव्य जन्म के लिये, दिव्यगुणों से युक्त जीवन के लिये, **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **सुहवीतुनाम्ने**=प्रभु के नामों का उत्तमता से उच्चारण करनेवाले इस प्रभु स्तोता **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **स्वादुः**=तू जीवन को मधुर बनानेवाला हो। (२) तू **मित्राय**=सब के प्रति स्नेह करनेवाले, **वरुणाय**=निर्द्वेष पुरुष के लिये **स्वादुः**=जीवन को मधुर बना। अपने रक्षक को मित्र व वरुण बनाकर आनन्दित कर। **वायवे**=क्रियाशील के लिये और **बृहस्पतये**=ज्ञानी के लिये तू स्वादु हो। अपने रक्षक को ज्ञानी व क्रियाशील बनाकर आनन्दित करनेवाला हो। तू **मधुमान्**=मधुवाला है, जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है। **अदाभ्यः**=तू हिंसित होनेवाला नहीं। शरीर में तेरे रक्षित होने पर रोगों व वासनाओं के आक्रमण का सम्भव नहीं।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को दिव्य बनाता है, हमें प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। हमारे में 'स्नेह-निर्द्वेषता-क्रियाशीलता व ज्ञान' को भरकर हमारे जीवन को अहिंसित व मधुर बनाता है।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'मदिरासः' इन्दवः

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाचं ईरते।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः॥ ७॥

(१) **अत्यम्**=निरन्तर गतिशील अश्व के समान क्रियाशील, हमें क्रियाशील बनानेवाले, इस सोम को **दशक्षिपः**=दसों इन्द्रियों के विषयों को अपने से परे फेंकनेवाले लोग **कलशे मृजन्ति**=इस शरीर कलश में शुद्ध करते हैं। विषय वासना ही तो सोम को मलिन करती हैं। **विप्राणाम्**=अपना पूरण करनेवाले पुरुषों की **मतयः**=बुद्धियाँ व **वाचः**=स्तुति वाणियाँ **प्र ईरते**=प्रकर्षेण उद्गत होती

हैं। सोमरक्षण से बुद्धि व स्तुति की वृत्ति उत्पन्न होती है। (२) **पवमानः**=ये पवित्र करनेवाले सोम **सुष्टुतिम् अभि**=उत्तम स्तुतिवाले की ओर **अर्षन्ति**=गतिवाले होते हैं। उत्तम स्तुतिशील पुरुष को प्राप्त होते हैं। **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष में **आविशन्ति**=ये प्रवेश करते हैं। **मदिरासः**=ये आनन्द के जनक होते हैं और **इन्दवः**=उसे शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—विषयों से दूर होने पर सोम शुद्ध बना रहता है। यह 'मति व स्तुति' को हमारे में उत्पन्न करता है। शरीर में व्याप्त होकर शक्ति व आनन्द का कारण बनता है।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

धनन्धनं जयेम

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम्॥ ८॥

(१) **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ, हे सोम! **सुवीर्यं अभि**=उत्तम वीर्य की ओर **अर्ष**=गतिवाला हो हमें तू सुवीर्य को प्राप्त करा। **उर्वीं गव्यूतिम्**=विशाल मार्ग को प्राप्त करा। हम संकुचित मार्ग का आक्रमण करनेवाले न हों। **महि**=महान् **सप्रथः**=विस्मरण वाले **शर्मः**=सुख को तू प्राप्त करा। तेरे द्वारा हमें वह सुख प्राप्त हो जो कि उत्तरोत्तर वृद्धिवाला हो। (२) **नः**=हमारे **अस्य**=इस सोम का **परिषूतिः**=हिंसक **माकिः ईशत**=ईश न बने। काम, क्रोध, लोभ आदि सब वासनायें सोम के विनाश का कारण बनती हैं। वे इस सोम को नष्ट करनेवाली न हों। हे **इन्दो**=सोम! हम **त्वया**=तेरे द्वारा, तेरे से शक्ति को प्राप्त करके **धनं धनम्**=प्रत्येक धन को—'तेज, वीर्य, बल, ओज, विज्ञान व आनन्द' को **जयेम**=जीतनेवाले हों। हम सब धनों के विजेता बनकर जीवन को 'धन्य' बना पायें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही सब धनों के विजय का करानेवाला होता है।

ऋषिः—**वेनो भार्गवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वृषभः विचक्षणः

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः॥ ९॥

(१) शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम **धाम् अधि अस्थात्**=मस्तिष्करूप द्युलोक की ओर स्थितिवाला होता है। मस्तिष्क में यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। **वृषभः**=यह हमें शक्तिशाली बनाता है और **विचक्षणः**=विशेषरूप से द्रष्टा होता है, हमें वस्तुओं के तत्त्व को देखनेवाला बनाता है। यह **कविः**=आनन्दपूर्ण सोम **दिव रोचना**=मस्तिष्करूप द्युलोक के देदीप्यमान ज्ञाननक्षत्रों को **विअरूरुचत्**=विशेषरूप से दीप्तिवाला करता है। (२) **राजा**=जीवन को दीप्त करनेवाला यह सोम **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **अति एति**=अतिशयेन प्राप्त होता है। **रोरुवत्**=प्रभु के नामों का खूब ही उच्चारण करते हुए **दिवः पीयूषम्**=ज्ञान के अमृत को **नृचक्षसः दुहते**=(नृणां द्रष्टारः) मनुष्यों का ध्यान करनेवाले ये सोमकण प्रपूरित करते हैं। सोमरक्षण से वह ज्ञानामृत प्राप्त होता है, जिस ज्ञानामृत का पान करनेवाला प्रभु का स्तोता बनता है। अर्थात् सोम मनुष्य को प्रभु का ज्ञानी भक्त बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह हमें प्रभु का ज्ञानी भक्त बनाता है।

ऋषिः—वेनो भार्गवः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—विराडजगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

मधुजिह्वा असश्चतो वेनाः

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥

(१) **मधुजिह्वाः**=अत्यन्त मधुर वाणीवाले, कभी कड़वा शब्द न बोलनेवाले, **असश्चतः**=स्वयं के विषयों में न फँसनेवाले **वेनाः**=मेधावी पुरुष **दिवः नाके**=प्रकाश के सुखमय लोक के निमित्त प्रकाशमय स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये, **उक्षणम्**=हमारे अन्दर शक्तियों का सेचन करनेवाले, **गिरिष्ठाम्**=ज्ञान की वाणियों में स्थित इस सोम को **दुहन्ति**=अपने में पूरित करते हैं। शरीर में प्रपूरित हुआ-हुआ सोम हमें शक्तिशाली बनाता है और ज्ञान की वाणियों में हमें प्रगतिवाला करता है। (२) **अप्सु द्रप्सम्**=कर्मों में आनन्द का अनुभव करनेवाले (दृपी हर्षणे) **वावृधानम्**=खूब वृद्धि के कारणभूत सोम को अपने में पूरित करते हैं। **समुद्रे**=उस आनन्दमय प्रभु की प्राप्ति के निमित्त इस सोम को पूरित करते हैं। **सिन्धोः ऊर्मा आ (दुहन्ति)**=समन्तात् अपने में पूरित करते हैं।

भावार्थ—हमें मीठा बोलनेवाले, विषयों में अनासक्त, मेधावी बनकर सोम का रक्षण करें। यह हमें पूर्णमय ज्ञान प्राप्त करायेगा। हमें क्रियाशील बनाकर प्रभु की प्राप्ति का पात्र करेगा। हमारा जीवन ज्ञानमय व पवित्र बनेगा।

ऋषिः—वेनो भार्गवः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

बुद्धि+स्तुति+ज्योति+शक्ति व मुक्ति

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्रतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥ ११ ॥

(१) **नाके**=सुखमय लोक में **उपपप्तिवांसम्**=प्राप्त कराते हुए **सुपर्णं**=हमारा उत्तमता से पालन व पूरण करते हुए सोम को **वेनानाम्**=मेधावी पुरुषों की **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **अकृपन्त**=प्राप्त होती हैं (उपकल्पन्ते अभिद्रवन्ति सा०)। मेधावी पुरुष सोम का स्तवन करते हैं, सोम के गुणों का स्मरण करते हैं। ये **स्तुति वाणियां पूर्वीः**=उनका पालन व पूरण करती हैं, इनके कारण सोमरक्षण करते हुए वे शरीर का पालन व मन का पूरण कर पाते हैं। (२) **मतयः**=विचारशील पुरुष **रिहन्ति**=उस सोम का अपने साथ सम्पर्क करते हैं, जो **शिशुम्**=बुद्धि को तीव्र करनेवाला है, **पनिप्रतम्**=हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनाता है, **हिरण्ययम्**=ज्ञान की ज्योतिवाला है, **शकुनम्**=शक्तिशाली बनानेवाला है और **क्षामणि स्थाम्**=(क्षै, destructive) शत्रुसंहार के कार्य में स्थित होनेवाला है।

भावार्थ—हम सोम का साधन करें यह हमें 'बुद्धि-स्तुति-ज्योति व भक्ति' को प्राप्त कराके अन्ततः मुक्ति को प्राप्त करानेवाला होगा।

ऋषिः—वेनो भार्गवः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

विश्वारूपा प्रतिचक्षाणः

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥

(१) **गन्धर्वः**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाला यह सोम **ऊर्ध्वः**=शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला

होता हुआ **नाके**=मोक्ष सुख में **अधि अस्थात्**=स्थित होता है। यह सोम **अस्य**=अपने रक्षक के **विश्वारूपा**=सब रूपों को **प्रतिचक्षाणः**=एक-एक करके देखता हुआ होता है, इसके एक-एक अंग का ध्यान करता है। (२) **भानुः**=दीप्ति को देनेवाला यह सोम **शुक्रेण शोचिषा**=उज्ज्वल ज्ञानदीप्ति के साथ **व्यद्यौत्**=चमकता है। **शुचि**=यह पवित्र सोम **मातरा**=माता पितृभूत **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **प्रारूरुचत्**=खूब दीप्त बना देता है। मस्तिष्क ही द्यावा है, शरीर ही पृथिवी है। सोम मस्तिष्क को ज्ञान से, शरीर को तेजस्विता से दीप्त करनेवाला है। दोनों को दीप्त करके यह हमारा निर्माण (माता) व (पिता) के समान करता है।

भावार्थ—सोम हमारे अंग-प्रत्यंग को ठीक बनाता हुआ मोक्ष को सिद्ध करता है। दीप्त ज्ञान ज्योति को प्राप्त कराता है, मस्तिष्क व शरीर दोनों को दीप्त करनेवाला है।

अगले सूक्त के प्रथम १० मन्त्रों में 'अकृष्टाः' विषयों से अनाकृष्ट 'माषाः' (मष् to kill) काम, क्रोध आदि को नष्ट करनेवाले ऋषि प्रार्थना करते हैं—

पञ्चमोऽनुवाकः

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दिव्यः सुपर्णा मधुमन्तः

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजाइव त्मना।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥ १ ॥

(१) हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **ते**=तेरे **आपूर्वः**=शरीर में व्याप्त होनेवाले **धीजवः**=बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले **मदाः**=उल्लास के जनक इस **रघुजाः इवः**=शीघ्रगतिवाले अश्वों की तरह **त्मना**=स्वयं अनायास ही **प्र अर्षन्ति**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त होते हैं। (२) ये **दिव्याः**=हमारे जीवन को दिव्य बनानेवाले, **सुपर्णाः**=हमारा उत्तमत्ता से पालन व पूरण करनेवाले **मधुमन्तः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **इन्दवः**=सोमकण **मदिन्तमासः**=अतिशयेन आनन्द के जनक हैं। ये सोमकण **कोशम्**=इस शरीर रूप कोश में **परि आसते**=चारों ओर स्थित होते हैं। शरीर के अंग-प्रत्यंगों में व्याप्त होकर उन्हें सुन्दर स्वस्थ व सशक्त बनाते हैं।

भावार्थ—शरीर में व्याप्त होनेवाले सोमकण बुद्धियों को प्रेरित करते हैं। ये हमारे जीवन को 'दिव्य-सुपर्ण व मधुमय' बनाते हैं।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराडजगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

मधुमना ऊर्मयः मदिरासः

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

(१) हे सोम! **ते**=तेरे **मदासः**=उल्लास के जनक **मदिरासः**=मस्ती को लानेवाले **आशवः**=शरीर में व्याप्त होनेवाले रस **प्र असृक्षत**=प्रकर्षेण सृष्ट होते हैं। **यथा**=जैसे **रथ्यासः**=रथवहन में कुशल घोड़े, उसी प्रकार शरीर रथ का वहन करनेवाले ये सोमकण **पृथक्**=अलग-अलग अंग-प्रत्यंग में सृष्ट होते हैं। (२) **न**=जैसे **धेनुः**=गौ **वत्सम्**=बछड़े को **पयसा**=दूध से प्राप्त होती है, उसी प्रकार **इन्दवः**=ये सोमकण **वज्रिणे**=क्रियाशील **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के **अभि**=ओर

प्राप्त होते हैं। ये उसके लिये **मधुमन्तः**=अत्यन्त माधुर्य को लिये हुए होते हैं और **ऊर्मयः**=(ऊर्मि light) ये उसके जीवन में प्रकाश को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोमकण जीवन को मधुर उल्लासमय व प्रकाशमय बनाते हैं।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

इन्द्रियाय धायसे

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम्।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे॥ ३॥

(१) **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान **हियानः**=प्रेरित किया जाता हुआ तू **वाजं अभि अर्ष**=संग्राम की ओर चलनेवाला है। घोड़ा बाह्य संग्रामों में विजय का साधन बनता है, इसी प्रकार यह सोम शरीर के अन्दर रोगवृत्तियों के साथ संग्राम में हमें विजयी बनाता है। **स्वर्वित्**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाला तू **अद्रिमातरम्**=उपासक के निर्माण करनेवाले, हमें उपासनामय-जीवनवाला बनानेवाले **दिवः कोशम्**=विज्ञानमय कोश की ओर तू (आ अर्ष) गतिवाला हो। हमें यह सोम प्रभु का 'ज्ञानी उपासक' बनाता है। (२) **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला तू **पवित्रे**=पवित्र रूप में तथा **अव्यये**=अविनाशी **अधि सानो**=समुचित प्रदेश में, विज्ञानमय कोश में अथवा मस्तिष्क रूप द्युलोक में **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ यह सोम **इन्द्रियाय**=बल के लिये होता है तथा **धायसे**=हमारे धारण के लिये होता है। यह सोम पवित्र हृदय में तथा विज्ञानमय कोश में पवित्र होता है, अर्थात् हृदय में वासनाओं को न आने देने पर तथा स्वाध्याय में लगे रहने पर यह सोम पवित्र बना रहता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह शरीर का धारण करता है और उसे बल सम्पन्न करता है एवं इन्द्रिय को यह सबल बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर में रोगकृमियों के साथ संग्राम में हमें विजयी बनाता है। उपासना व स्वाध्याय से पवित्र बनाया गया सोम हमारा धारण करता है और हमें सबल बनाता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

धीजुवः-दिव्याः

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥ ४॥

पवमानः=हे पवित्र करनेवाले सोम! **ते**=तेरी **आश्विनीः**=शरीर में व्याप्त होनेवाली, शरीर को स्फूर्तियुक्त करनेवाली **धीजुवः**=बुद्धियों को वेगयुक्त करनेवाली, बुद्धियों को बढ़ानेवाली, **दिव्याः**=दिव्य भावनाओं को उत्पन्न करनेवाली धारायें **पयसा**=आप्यायन (वर्धन) के हेतु से **धरीमणि**=इस धारक शरीर में **असृग्रन्**=उत्पन्न की जाती हैं। सोम (वीर्य) शरीर में स्फूर्ति को, बुद्धि में वेग को तथा हृदय में दिव्यता को जन्म देता हुआ हमारा वर्धन करता है। **ऋषयः**=तत्त्वद्रष्टा लोग **स्थाविरीः**=शरीर को स्थिर बनानेवाली सोमधाराओं को **अन्तः**=शरीर के अन्दर **प्र असृक्षत**=प्रकर्षेण उत्पन्न करते हैं। हे **ऋषिषाण**=ऋषियों से सम्भजनीय—शरीर में संरक्षणीय—सोम **ये** जो **वेधसः**=ज्ञानी पुरुष हैं वे **त्वा**=तुझे **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। हृदय में वासनाओं को न उत्पन्न होने देते हुए वे ज्ञानी पुरुष सोम को शुद्ध बनाये रखते हैं।

भावार्थ—समझदार लोग वासनाओं से अपना संरक्षण करते हुए सोम को पवित्र बनाये रखते

हैं। यह पवित्र सोम शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ शरीर को स्वस्थ-बुद्धि को वेगयुक्त व हृदय को पवित्र भावनाओंवाला बनाता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

विश्वस्व भुवनस्य राजसि

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि॥ ५॥

हे **विश्वचक्षः**=सब के दृष्टा, सब का ध्यान करनेवाले सोम! **प्रभोः**=शक्तिशाली **सतः**=होते हुए **ते**=तेरे **ऋभ्वसः**=महान् **केतवः**=प्रकाश **विश्वाधामानि**=सब तेजों को **परियन्ति**=प्राप्त होते हैं। सोम हमारे जीवनों को प्रकाशमय व शक्तिसम्पन्न (तेजस्वी) बनाता है। हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **व्यानशिः**=शरीर में व्यापनवाला तू **धर्मभिः**=धारण के हेतु से **पवसे**=सब अंगों में प्राप्त होता है। **विश्वस्य भुवनस्य**=शरीरस्थ सब भुवन का, अगं-प्रत्यंग का तू **राजसि**=दीपन करनेवाला है, **पति**=और पालन करनेवाला है।

भावार्थ—सोम प्रकाश व शक्ति को प्राप्त कराता हुआ सब अंग-प्रत्यंगों को दीप्त बनाता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'उभयः पवमरानः' सोम

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति॥ ६॥

उभयतः=शरीर व हृदय दोनों स्थानों में **पवमानस्य**=पवित्र करते हुए, शरीर को व्याधि से शून्य तथा मन को आधि से शून्य बनाते हुए **ध्रुवस्य सतः**=शरीर से अविचलित होते हुए सोम की **केतवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाली (कित् निवासे) **रश्मयः**=ज्ञान की किरणें **परियन्ति**=हमें प्राप्त होती हैं। **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **हरिः**=वासनाओं का हरण करनेवाला सोम **पवित्रे**=इस पवित्र हृदय में **अधिमृज्यते**=आधिक्येन शुद्ध किया जाता है, तो **योना**=अपने उत्पत्ति स्थान इस शरीर में **निसत्ता**=निश्चय से स्थिर होनेवाला **कलशेषु**=इन सोलह कलाओं के आधारभूत शरीरों में **सीदति**=स्थित होता है। शरीर में स्थित होने पर यह उसे सोलह कलाओं से सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शरीर को व्याधि शून्य तथा हृदय को आधि शून्य बनाकर इसे ज्ञानरश्मियों से दीप्त करता है, यह सोम उसे सोलह कलाओं से सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'स्वध्वरः-यज्ञस्य केतुः' सोमः

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम्।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत्॥ ७॥

स्वध्वरः=उत्तम हिंसारहित कार्यों में हमें प्रवृत्त करनेवाला **सोमः**=यह सोम (वीर्यशक्ति) **यज्ञस्य केतुः**=यज्ञों का प्रकाशक होता है, हमारे जीवनों को यज्ञमय बनाता है। यह सोम **देवानाम्**=देववृत्तिवाले पुरुषों के **निष्कृतम्**=संस्कृत हृदयरूप स्थान को **उपयाति**=समीपता से प्राप्त होता है। अर्थात् यह सोम देववृत्तिवाले पुरुषों के जीवन में ही सुरक्षित रहता है।

सहस्रधारः=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला यह सोम **कोशं परिअर्षति**=शरीर के कोशों में चारों ओर प्राप्त होता है। शरीर के सब कोशों को वस्तुतः यह उस-उस धन से परिपूर्ण करता है। अन्नमय कोश को यह तेज प्राप्त कराता है, प्राणमय को वीर्य, मनोमय को बल व ओज, विज्ञानमय को ज्ञान प्राप्त कराता हुआ यह आनन्दमय कोश में हमें अद्भुत सहनशक्ति से परिपूर्ण करता है **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला यह सोम **रोरुवत्**=प्रभु के स्त्रोतों का उच्चारण करता हुआ, अपने रक्षक को प्रभुभक्त बनाता हुआ, **पवित्रम्**=पवित्र हृदय को **अत्येति**=अतिशयेन प्राप्त होता है। हृदय की पवित्रता ही सोम को शरीर में सुरक्षित रखती है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को यज्ञमय बनाता हुआ हमारे प्रत्येक कोश को उस-उस धन से परिपूर्ण करता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

महो दिवः धरुणः

राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः॥ ८॥

आत्मज्ञान यदि 'समुद्र' है—'स+मुद्' अद्भुत आनन्द को देनेवाला है, तो विज्ञान अपने नाना रूपों (नद्यः) नदियों के समान है। शरीर में सुरक्षित सोम 'राजा' जीवन को दीप्त करनेवाला है, यह **समुद्रं**=ज्ञान समुद्र को तथा **नद्यः**=विज्ञान की नदियों को **विगाहते**=विलोड़ित करता है। सुरक्षित सोम ज्ञान-विज्ञान को बढ़ानेवाला होता है। यह **अपाम्**=कर्मों की **ऊर्मिम्**=(row, line) पंक्ति को **सचते**=सेवन करता है, अर्थात् सोम हमें शक्ति देकर कर्त्तव्य कर्मों के पूर्ण करने के योग्य बनाता है। यह **सिन्धुषु श्रितः**=यहाँ ज्ञान-विज्ञान की नदियों में आशय करता है, अथवा 'स्यन्दन्ते', निरन्तर क्रियाशील पुरुषों में यह स्थिर होकर रहता है। यह **पवमानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला सोम **अव्ययम् सानु**=अविनाशी ज्ञान-शिखर पर **अध्यस्थात्**=स्थित होता है। यह **पृथिव्याः नाभा**=(अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः) पृथिवी के केन्द्रभूत यज्ञों में स्थित होता है तथा **महः दिवः धरुणः**=महान् स्तुति (दिव् स्तुतौ) का धारण करनेवाला है। यह सोम हमें 'ज्ञानी-यज्ञशील व स्तोता' बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें ज्ञानी-यज्ञ आदि कर्मों में प्रवृत्त तथा साधन की वृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

स्तनयन् अचिक्रदत्

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति॥ ९॥

शरीर में सुरक्षित सोम **दिवः न सानु**=द्युलोक के शिखर के समान मस्तिष्क को **स्तनयन्**=ज्ञान की वाणियों से गर्जित करता हुआ **अचिक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। सोम के रक्षण के होने पर मस्तिष्क ज्ञान की वाणियों से तथा हृदय स्तुति वाणियों से सुभूषित होता है। **द्यौः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक **च**=तथा **पृथिवी**=यह शरीर रूप पृथिवी **यस्य**=जिस सोम के **धर्मभिः**=धारणशक्तियों से धृत होते हैं, वह सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष की **सख्यम्**=मित्रता को **पवते**=प्राप्त होता है। **विवेविदत्**=अतिशयेन ज्ञान को प्राप्त कराता हुआ **सोमः**=सोम

पुनानः=वासना विनाश के द्वारा पवित्र किया जाता हुआ **कलशेषु**=शरीर कलशों में **सीदति**=स्थित होता है।

भावार्थ—सोम शरीर में स्थित हुआ-हुआ मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानवाणियों से गर्जनायुक्त करता है, और हृदय को स्तुतिवाणियों से सुभूषित करता है।

ऋषिः—**अकृष्टा माषाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'देवानां पिता' सोमः

ज्योतिर्यज्ञस्य॑ पवते मधु॑ प्रि॒यं पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता वि॒भूव॑सुः।
दधा॑ति रत्नं॑ स्व॒धयो॑रपी॒च्यं॑ म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्रि॒यो रसः॑ ॥ १० ॥

यह सोम **यज्ञस्य ज्योतिः**=यज्ञ का प्रकाशक है। यह **प्रियं मधु**=प्रीतिजनक मधुर रस को **पवते**=प्राप्त कराता है। **देवानां पिता**=दिव्यगुणों का रक्षक है, **जनिता**=शक्तियों का प्रादुर्भाव करनेवाला है। **विभूवसुः**=व्यापक धनवाला है। यह सोम **स्वधयोः**=द्यावापृथिवी में आत्मा (स्व) को धारण करनेवाले (धा) मस्तिष्क व शरीर में **अपीच्यं**=अन्तर्हित-सुगुप्त रूप से वर्तमान **रत्नम्**=ज्ञान व शक्ति रूप रमणीय धन को **दधाति**=धारण करता है। इस प्रकार **मदिन्तमः**=यह उत्कृष्ट आनन्द को प्राप्त करानेवाला होता है **मत्सरः**=उल्लास का संचार करनेवाला यह सोम **इन्द्रियः**=(इन्द्रियं वीर्यं बलम्) बल का वर्धक है और **रसः**=जीवन को रस (आनन्द) वाला बनाता है।

भावार्थ—सोम के रक्षित होने पर जीवन में यज्ञों का प्रवर्तन होता है, दिव्यगुणों का वर्धन होता है और अंग-प्रत्यंग अपने-अपने धन से युक्त होता है।

इन रेतःकणों का नाम 'सिकता' है। इनको रक्षित करनेवाले ऋषि का भी 'सिकता' कहलाती है, यह निश्चय से प्रभु का उपासन करनेवाली 'निवावरी' है। यह सोमशंसन करते हुए कहती है—

ऋषिः—**सिकता निवावरी** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

मित्रस्य सदनेषु सीदति

अ॒भि॒क्रन्द॑न्क॒लशं॑ वा॒ज्य॑र्षति॒ पति॑र्दि॒वः श॒तधा॑रो विचक्ष॒णः।
हरि॑र्मि॒त्रस्य॒ सद॑नेषु सीदति मर्मृजा॒नोऽवि॑भिः॒ सिन्धु॑भि॒र्वृषा॑ ॥ ११ ॥

अभिक्रन्दन्=प्रातः-सायं प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **वाजी**=शक्ति को देनेवाला यह सोम **कलशं अर्षति**=इस शरीर कलश को प्राप्त होता है। प्रभु स्मरण सोमरक्षण का सर्वोत्तम साधन है। रक्षित सोम हमें शक्तिशाली बनाता है। यह **दिवः पतिः**=ज्ञान का रक्षक होता है, शतधारः=शरीर को शतवर्ष पर्यन्त धारित करनेवाला बनाता है। **विचक्षणः**=यह हमारा विशेष रूप से **द्रष्टा**=ध्यान करनेवाला (look after) होता है। **हरिः**=सब रोगों व मलों का हरण करनेवाला यह सोम **मित्रस्य सदनेषु सीदति**=उस मित्र प्रभु के लोकों में आसीन होता है, अर्थात् यह सोम हमें ब्रह्मलोक की प्राप्ति करानेवाला होता है। **अविभिः**=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाले **सिन्धुभिः**=(स्यन्द्) गतिशील पुरुषों से **मर्मृजानः**=शुद्ध किया जाता हुआ यह सोम **वृषा**=हमारे जीवनों में सुखों का सेचन करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान का व शक्ति का वर्धन करता हुआ अन्ततः ब्रह्मलोक प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

अग्रे अर्षति

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा॥ १२॥

पवमानः=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला यह सोम **सिन्धूनाम्**=(स्यन्दू) निरन्तर क्रियाशील पुरुषों के जीवन में **अग्रे अर्षति**=आगे गतिवाला होता है। शरीर में आगे गतिवाला होता हुआ यह अन्तः मस्तिष्क रूप द्युलोक में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। **वाचः**=(वच् व्यक्तायां वाचि) प्रभु के नामों का (गुणों का) उच्चारण करनेवाले के जीवन में यह सोम **अग्रे**=आगे बढ़ता है। **अग्रियः**=यह शरीर में आगे बढ़नेवाला सोम **गोषु गच्छति**=ज्ञान की वाणियों में गतिवाला होता है, अर्थात् हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला होता है। **अग्रे**=आगे बढ़ता हुआ यह सोम **वाजस्य**=शक्ति के **महाधनम्**=उत्कृष्ट धन को **भजते**=प्राप्त करता है, हमें यह सोम उत्कृष्ट शक्तिवाला बनाता है। **स्वायुधः**=(सु+आयुध) यह सोम 'इन्द्रिय-मन व बुद्धि' रूप सब आयुधों को, जीवन संग्राम के शस्त्रों को उत्तम बनाता है। इसीलिये **सोतृभिः**=सोम का उत्पादन करनेवाले इन पुरुषों से यह **पूयते**=पवित्र किया जाता है। **वृषा**=यह सब अंगों में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम सब अंगों को शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

'मतवान् शकुनः' सोमः

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते॥ १३॥

अयं=यह सोम **यथा हितः**=जैसे-जैसे शरीर में स्थापित होता है, उसी प्रकार **मतवान्**=ज्ञानवाला है तथा **शकुनः**=शक्तिशाली बनानेवाला है। यह **पवमानः**=पवित्र करनेवाला सोम **अव्ये**=(अव्+य) रक्षकों में श्रेष्ठ पुरुष में, सोम का रक्षण करनेवालों में उत्तम पुरुष में **ऊर्मिणा**=प्रकाश की किरणों के साथ **ससार**=गतिवाला होता है (ऊर्मि)। हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **कवे**=आनन्द तत्त्व को समझनेवाले पुरुष! **तव क्रत्वा**=तेरे दृढ संकल्प से, अर्थात् जब तू सोमरक्षण का दृढ़ निश्चय करता है, तो यह **ते**=तेरा **शुचिः सोमः**=पवित्र सोम **रोदसी अन्तरा**=द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर के अन्दर **धियाऽपवते**=अन्नादि के साथ प्राप्त होता है। मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाता हुआ यह तुझे ही सम्पन्न करता है।

भावार्थ—जितना-जितना सोम का रक्षण होता है, उतना ही यह हमें ज्ञान व शक्ति से सम्पन्न करता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

प्रत्न पिता का पूजन

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति॥ १४॥

(१) **दिविस्पृशम्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में स्पर्श करनेवाले **द्रापिम्**=कवच को **वसानः**=आच्छादित करता हुआ **यजतः**=अत्यन्त आदरणीय व संगतिकरण योग्य यह सोम **अन्तरिक्षप्राः**=हृदयान्तरिक्ष का पूरण करनेवाला होता है और **भुवनेषु**=शरीर के सब भुवनों में, अंग-प्रत्यंग में यह **अर्पितः**=अर्पित होता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम कवच का काम करता है, मस्तिष्क को भी सुरक्षित करता है और शरीर को भी रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता। साथ ही यह हृदय को भी वासनाओं के आक्रमण से बचाता है। (२) **स्वः**=प्रकाश को **जज्ञानः**=प्रादुर्भाव करता हुआ यह **नभसा**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से **अभ्यक्रमीत्**=गतिवाला होता है। सोम का मस्तिष्क रूप द्युलोक की ओर गतिवाला होना ही 'ऊर्ध्वरता' बनता है, इस समय यह सोम **अस्य**=इस जीव के **प्रत्नम् पितरम्**=उस सनातन पिता प्रभु का **आविवासति**=पूजन करता है। इस प्रकार यह सोम हमें ब्रह्मलोक में पहुँचानेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर के लिये कवच के समान है। इस कवच के कारण शरीर में रोग नहीं आ पाते, मस्तिष्क में कुविचार नहीं आते, हृदय वासनाओं से हीन अवस्था में नहीं पहुँचाया जाता। मनुष्य प्रभु प्रवण होता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

सोमरक्षण की सर्वप्राथमिकता

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः॥ १५॥

यः=जो सोम **अस्य धाम**=इस जीव के निवास स्थान भूत इस शरीर को **प्रथमम्**=सब से प्रथम **व्यानशे**=व्याप्त करता है, **सः**=वह **अस्य**=इस जीव के **विशे**=प्रभु में प्रवेश के लिये **महिशर्म**=महान् कल्याण को **यच्छति**=देता है। जीव का सर्वप्रथम लक्ष्य यही होना चाहिये कि 'सोम को शरीर में ही सुरक्षित करना है'। अन्य दिव्यगुणों की प्राप्ति सोमरक्षण के बाद ही होती है। क्रम यह है, सोमरक्षण, दिव्यगुणों की प्राप्ति (देवा गमन) प्रभु प्राप्ति व महान् कल्याण। **यत्**=जब **अस्य**=इस सोम का **पदम्**=स्थान **परमे व्योमन्**=उत्कृष्ट हृदयाकाश में होता है, तो यही वह स्थान है **यतः**=जहाँ से कि **विश्वाः संयतः**=सब संग्रामों की ओर **आ संयाति**=यह सोम जाता है। सोम का हृदय में सुरक्षित होने का भाव यही है कि हृदय के वासनाशून्य होने पर ही सोम शरीर में सुरक्षित हो पाता है। वासनाएँ हृदय को छोड़ जाती हैं और सोम उसे अपना अधिष्ठान बनाता है। यहाँ स्थित हुआ-हुआ यह शरीर में सर्वत्र संग्रामों के लिये जाता है। जहाँ भी कहीं किसी रोग के साथ युद्ध के लिये जाना होता है, सोम इसे अपने मूल स्थान से वहीं पहुँचाता है और उन रोगरूप शत्रुओं को विनष्ट करता है।

भावार्थ—हमारा मूल लक्ष्य 'सोमरक्षण' ही होना चाहिये। यह सोम ही सब संग्रामों में विजय का साधन बनता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

प्रभु के आदेश का न तोड़ना

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम्।
मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा॥ १६॥

इन्दुः=सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **निष्कृतम्**=संस्कृत-पवित्र-हृदय की ओर निश्चय से

प्र अयासीत्=प्रकर्षेण गतिवाला होता है। हृदय के पवित्र होने पर सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती ही है। **सखा**=मित्रभूत यह सोम **सख्युः**=उस सबके सखा प्रभु के **संगिरम्**=वेदोपदिष्ट आदेशों को प्रभु की आज्ञाओं को न **प्रमिनाति**=तोड़ता नहीं। सोमरक्षक पुरुष प्रभु की आज्ञाओं में चलता है। सर्वमार्गभ्रम का मूल सोम का विनाश ही है। **इव**=जैसे **मर्यः**=एक मनुष्य **युवतिभिः**=युवतियों से **समर्षति**=मेलवाला होता है, उसी प्रकार **सोमः**=सोम **कलशे**=इस १६ कलाओं के आधारभूत शरीर में **शतयाम्ना**=सौ वर्ष तक गतिवाले **पथा**=मार्ग से **समर्षति**=गतिवाला होता है। 'मर्य इव युवतिभिः' इस उपमा का स्वारस्य इतना ही है कि गति में शक्ति व उत्साह होता है। सोमरक्षण से १०० वर्ष तक शक्ति व उत्साह में कमी नहीं आती।

भावार्थ—हृदय के पवित्र होने पर सोम का रक्षण होता है। सोमरक्षक पुरुष प्रभु के आदेशों का भंग नहीं करता और इसके दीर्घजीवन शक्ति व उत्साह बने रहते हैं।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

स्तवन-मनोनिग्रह-वासना विनाश

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः॥ १७॥

हे सोमकणो! **वः**=तुम्हारा **धियः (ध्यातारः)**=ध्यान करनेवाले, **मन्द्रयुवः**=उस आनन्दमय प्रभु को अपने साथ जोड़नेवाले **विपन्युवः**=स्तोता लोग **पनस्युवः**=सदा स्तुति की कामनावाले होते हुए **संवसनेषु**=उत्तम यज्ञ आदि के आधारभूत ग्रहों में **प्र अक्रमुः**=प्रकर्षेणगतिवाले होते हैं। वस्तुतः सोमरक्षण का उपाय यह है कि प्रभु की उपासना व यज्ञादि कर्मों में लगे रहना। **मनीषाः**=मन का शासन करनेवाले बुद्धिमान् लोग **स्तुभः**=वासनाओं को रोकनेवाले होते हुए **सोमं अभ्यनूषत**=सोम का स्तवन करते हैं। सोम के गुणगान से सोमरक्षण में प्रीति उत्पन्न होती है। सोमरक्षण के लिये मनोनिग्रह व वासनाओं का विनाश आवश्यक है। सोम का रक्षण होने पर **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणी रूप गौवें **ईम्**=निश्चय से **पयसा अभि अशिश्रयुः**=ज्ञानदुग्ध से इस सोमी पुरुष का सेवन करती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के उपाय हैं—'स्तवन-मनोनिग्रह-वासना विनाश'। सोम का लाभ है ज्ञानदुग्ध की प्राप्ति।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

'क्षुमत् वाजवत् मधुमत्' सुवीर्यम्

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्त्रिधम्।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम्॥ १८॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम तू **नः**=हमारे लिये **पवमानः**=पवित्रता को करता हुआ **इषम्**=प्रभु प्रेरणा को **आपवस्व**=प्राप्त करा, जो प्रेरणा **संयतम्**=हमें उत्तम मार्ग से ले चलनेवाली है। **पिप्युषीम्**=हमारा आप्यापन करनेवाली है तथा **अस्त्रिधम्**=हमें हिंसित नहीं होने देती। सोमरक्षण से पवित्र हृदयवाले होकर हम प्रभु प्रेरणा को सुनें यह प्रेरणा हमें सन्मार्ग पर ले चलनेवाली, हमारा वर्धन करनेवाली व हमें हिंसित होने से बचानेवाली होगी। **या**=जो प्रेरणा

असश्रुषी=हमें आसक्त न होने देती हुई **नः**=हमारे लिये **अहन्**=इस जीवनरूपी दिन में **त्रिः**=तीन बार—प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन में **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति का **दोहते**=प्रपूरण करती है। उस उत्तम शक्ति का, जो **क्षुमत्**=ज्ञान के शब्दोंवाली है (क्षुशब्दे) **वाजवत्**=शरीर के बलवाली है तथा **मधुमत्**=मन के माधुर्यवाली है।

भावार्थ—सोम हमें पवित्र बनाकर प्रभु प्रेरणा को सुनाता है, जो प्रेरणा हमें सन्मार्ग पर ले चलती है, हमारा वर्धन करती है और हिंसन नहीं होने देती। यह प्रेरणा ही हमारे जीवन के प्रारम्भ, मध्य व अन्त में, अर्थात् सदा उस उत्तम शक्ति को भरती है जो 'ज्ञान, बल व माधुर्य' वाली है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

'अह्नः उषसः दिवः' प्रतरीता सोमः

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः॥ १९॥

सोमः=सोम **पवते**=प्राप्त होता है। पर सोम **मतीनां वृषा**=हमारे जीवनों में बुद्धियों का वर्षक है। **विचक्षणः**=हमें विद्रष्टा-तत्त्वज्ञानी बनानेवाला है। यह सोम **अह्नः**=दिन का **प्रतरीता**=बढ़ानेवाला है, अर्थात् दीर्घायुष्य का कारण है। **उषसः (प्रतरीता)**=दोषदहन का बढ़ानेवाला है (उषदाहे)। दोषों को जलाकर यह हृदय को पवित्र करनेवाला है। **दिवः (प्रतरीता)**=ज्ञान के प्रकाश का बढ़ानेवाला है। यह सोम **सिन्धूनाम्**=ज्ञान प्रवाहों का **क्राणा**=करनेवाला है। **कलशान् अवीवशत्**=शरीरों को सोलह कलाओं का आधार बनाने की कामना करता है। शरीर को सर्वांग सम्पूर्ण बनाता है। **मनीषिभिः**=विद्वानों से **इन्द्रस्य हार्दि**=एक जितेन्द्रिय पुरुष के हृदय में **आविशन्**=यह प्रवेश कराया जाता है। समझदार लोग जितेन्द्रिय बनकर इस सोम को हृदय की ओर ऊर्ध्वगतिवाला करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमारे 'दीर्घजीवन-निर्दोष व पवित्र हृदय तथा दीप्त मस्तिष्क' का साधन बनता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे'

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे॥ २०॥

मनीषिभिः=विद्वानों से, मन का शासन करनेवालों से यह सोम **पवते (पूयते)**=पवित्र किया जाता है। **पूर्व्यः**=यह पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम है। **कविः**=क्रान्तदर्शी है, हमारी बुद्धियों को सूक्ष्म बनाकर यह हमें तत्त्वद्रष्टा बनाता है। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से **यतः**=काबू किया हुआ यह सोम **कलशान्**=इन शरीर कलशों को **परि अचिक्रदत्**=समन्तात् प्रभु के आह्वानवाला बनाता है। अर्थात् सोमरक्षण से इस शरीर में सतत प्रभुस्मरण होने लगता है, शरीर में सब क्रियाएँ प्रभुस्मरण पूर्वक होती हैं। यह सोम **त्रितस्य**=काम, क्रोध, लोभ को तैरनेवाले के नाम **जनयन्**=यश को पैदा करता हुआ, **मधुक्षरत्**=जीवन में माधुर्य का संचार करता हुआ **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के तथा **वायोः**=गतिशील पुरुष के **सख्याय कर्तवे**=प्रभु के साथ मैत्री को करने के लिये होता है।

भावार्थ—सोम 'पूर्व्य' है, कवि है। यह जितेन्द्रिय गतिशील पुरुष को प्रभु का मित्र बनाता है। अब इसके जीवन में सब क्रियाएं प्रभुस्मरण पूर्वक होने लगती हैं।

ऋषिः—**पृश्नयोऽजाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'सिन्धुभ्यः लोककृत्' अभवत्

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥

अयम्=यह सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **उषसः**=दोषदहन के द्वारा **विरोचयत्**=हमारे जीवनों को दीप्त करता है। **अयं**=यह सोम **सिन्धुभ्यः**=ज्ञान नदियों के प्रवाह के द्वारा निश्चय से **लोककृत्**=आलोक व प्रकाश को करनेवाला होता है। यह सोम हृदय को निर्दोष व मस्तिष्क को ज्ञान दीप्त बनाता है। **अयम्**=यह **त्रिसप्त**=इक्कीस बार **आशिरम्**=समन्तात् दोष विनाश का **दुदुहानः**=प्रपूरण करता हुआ, सब इक्कीस शक्तियों को निर्दोष बनाता हुआ, **सोमः**=सोम **हृदे पवते**=हृदय के लिये गतिवाला होता है, अर्थात् शरीर में ही सुरक्षित होकर ऊर्ध्वगतिवाला होता है। यह **चारु**=बड़ी सुन्दरता से जीवन में **मत्सरः**=आनन्द का संचार करता है।

भावार्थ—सोम पवित्रता व प्रकाश को प्राप्त कराता है। शरीर की सब शक्तियों को निर्दोष बनाता हुआ, शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होकर, हमें आनन्द से परिपूर्ण करता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दिव्य तेज व दिव्य ज्ञान (सूर्यमारोहयः दिवि)

पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥ २२ ॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **दिव्येषु धामसु**=दिव्य तेजों में **पवस्व**=गतिवाला हो। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ तू अलौकिक तेजों को प्राप्त करा। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **कलशे**=इस शरीर कलश में **सृजानः**=सब कलाओं का निर्माण करता हुआ **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **आ (पवस्व)**=प्राप्त हो। **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरे**=उदर में **सीदन्**=बैठता हुआ **कनिक्रदत्**=उस प्रभु के नामों का आह्वान करनेवाला हो। प्रभु का तू साधन करनेवाला हमें बना। **नृभिः यतः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से संयत हुआ-हुआ तू **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **सूर्यम्**=ज्ञान सूर्य को **आरोहयः**=आरूढ़ कर। तेरे द्वारा मस्तिष्क ज्ञानदीप्त हो उठे।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'दिव्य तेज व दिव्य ज्ञान' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

गोत्र-अपावरण

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन्।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥ २३ ॥

अद्रिभिः=उपासकों से **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **पवित्रे**=पवित्र हृदय में **आपवसे**=सर्वथा गतिवाला होता है। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **जठरेषु**=अंग-प्रत्यंगों में **आविशत्**=प्रवेशवाला होता है। इसके शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ प्रत्येक अंग में तू सिक्त होता है। हे **विचक्षण**=हमारा विशेष रूप से ध्यान करनेवाले सोम! **त्वं**

नृचक्षाः=तू सब नरों का द्रष्टा-ध्यान करनेवाला **अभवः**=होता है। अर्थात् तू इन उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों के स्वास्थ्य आदि का ध्यान करता है। हे सोम-वीर्यशक्ते! तू **अंगिरोभ्यः**=तेरे द्वारा अंग-प्रत्यंग में रसवाले अंगिराओं के लिये **गोत्रम्**=अविद्या पर्वत को **अपावृणोः**=खोल डालता है, इस अविद्या पर्वत को विदीर्ण करके इन्हें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमारे स्वास्थ्य का ध्यान करता है, अविद्या पर्वत का भेदन करता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीजगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

स्वाध्यः विप्रासः अवस्यवः

त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम्॥ २४॥

हे सोम-वीर्यशक्ते! **त्वां**=तुझे **पवमानम्**=पवित्र करनेवाले **अनु**=तेरे पीछे, अर्थात् तेरे अनुसार, जितना-जितना तेरा रक्षण करते हैं उतना-उतना **अमदन्**=आनन्दित होते हैं। कौन? **स्वाध्यः**=(सुष्ठुध्याताः) प्रभु का उत्तम उपासन करनेवाले, **विप्रासः**=ज्ञानी व अपना पूरण करनेवाले, तथा **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले। हे **इन्दो त्वाम्**=सोम तुझे **सुपर्णः**=अपना अच्छी प्रकार पालन व पूरण करनेवाला **दिवस्परि**=मस्तिष्करूप द्युलोक को लक्ष्य करके अर्थात् मस्तिष्क को परिष्कृत करने के हेतु से **आभरत्**=शरीर में चारों ओर धारण करता है। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर ही मस्तिष्क स्वस्थ बना रहता है। उस तुझे यह सुपर्ण धारण करता है या अपने में प्राप्त कराता है, जो तू **विश्वाभिः मतिभिः**=सब बुद्धियों से **परिष्कृतम्**=सुशोभित व अलङ्कृत है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्रभुप्रवण करता है, हमारी कमियों को दूर करता है तथा हमारा रक्षण करता है। यह सब बुद्धियों से अलंकृत हुआ-हुआ हमारे ज्ञान को बढ़ाता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

आयवः-महिषाः

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत॥ २५॥

अव्ये=रक्षा करनेवालों में उत्तम (अव् य) **वारे**=वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुष में **ऊर्मिणा**=ज्ञान रश्मियों से **परिपुनानम्**=पवित्र किये जाते हुए **हरिम्**=सर्वदुःखहर्ता सोम को **अभि**=लक्ष्य करके **सप्तधेनवः**=सात छन्दोंवाली ये वेदवाणीरूप गौवें **नवन्ते**=प्राप्त होती हैं। स्वाध्याय से वासनाओं का विनाश होकर सोम पवित्र होता है। सोम के रक्षण होने पर ये वेद धेनुएँ हमारे लिये ज्ञानदुग्ध को देनेवाली होती हैं। **अपाम्**=कर्मों की **उपस्थे**=गोद में **अधि आयवः**=आधिक्येन चलने का तथा **ऋतस्य योनौ**=ऋत के उत्पत्ति स्थान प्रभु में **महिषाः**=पूजा की वृत्तिवाले **कविम्**=इस हमें क्रान्तप्रज्ञ बनानेवाले सोम को **अहेषत**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। सोम को शरीर में ही सुरक्षित करने के लिये आवश्यक है कि हम क्रियाशील हों और उपासना की वृत्तिवाले हों।

भावार्थ—स्वाध्याय द्वारा सोम पवित्र होता है। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम कर्मों में लगे रहें और उपासना की वृत्तिवाले हों।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

विश्वानि कृण्वन् सुपथानि यज्यवे

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति॥ २६॥

इन्द्रः=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ, गत मन्त्र के अनुसार स्वाध्याय कर्म व उपासना द्वारा वासनाओं से आक्रान्त न होने दिया जाता हुआ **मृधः**=शत्रुओं का **अति गाहते**=अतिशयेन विलोडन व मंथन कर देता है। यह सुरक्षित सोम वासनाओं को विनष्ट कर देता है। इस प्रकार यह सोम **यज्यवे**=यज्ञशील पुरुष के लिये **विश्वानि सुपथानि**=सब उत्तम मार्गों को **कृण्वन्**=करता है। सोमरक्षण से यज्ञशील बनकर हम सन्मार्ग का ही आक्रमण करते हैं। यह सोम **गाः कृण्वानः**=ज्ञान रश्मियों को हमारे लिये करता हुआ, **हर्यतः**=चाहने योग्य, **कविः**=क्रान्तिदर्शी, **अत्यः न**=निरन्तर गतिवाले घोड़े की तरह **क्रीडन्**=क्रीडक की मनोवृत्ति से सब कार्यों को करता हुआ **निर्णिजं**=शुचि व परिपुष्ट **वारम्**=जिसमें से सब वासनाओं का वारण किया गया है उस हृदय को **परि अर्षति**=लक्ष्य करके प्राप्त होता है। सोमरक्षण से ज्ञान बढ़ता है, क्रीडक की मनोवृत्ति उत्पन्न होती है तथा हृदय पवित्र व परिपुष्ट बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शत्रुओं का नाश करता है, हमें सन्मार्ग पर ले चलता है, हमारे ज्ञान का वर्धन करता हुआ यह हमें पवित्र करता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

साधन पञ्चक

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥ २७॥

असश्चतः=(Not defeated or overcome) अपराजित हुई-हुई वासनाओं से अनाक्रान्त **शतधाराः**=शतवर्ष पर्यन्त अपना धारण करनेवाली, **अभिश्रियः**=प्रातः-सायं प्रभु का उपासना करनेवाली (श्रि सेवायाम्) **उदन्युवः**=रेतःकण रूप उदक की कामनावाली **ताः**=वे प्रजायें **हरिः**=इस दुःखहर्ता सोम को **अवनवन्ते**=अन्दर ही अन्दर प्राप्त करती हैं। ये प्रजाएँ सोम को शरीर के अन्दर स्थापित करती हैं; **क्षिपः**=वासनाओं को अपने से परे फेंकनेवाले लोग, **दिवः**=प्रकाश के **अधिरोचने**=खूब दीप्त होनेवाले **तृतीये पृष्ठे**=तीर्णतम अथवा 'शरीर व हृदय' से ऊपर तीसरे मस्तिष्क के स्थान में (आधार में) **गोभिः आवृतम्**=ज्ञानरश्मियों से आवृत हुए-हुए इस सोम को **परिमृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। वस्तुतः सोम परिशुद्धि के लिये आवश्यक है कि हम अपने खाली समय का उपयोग स्वाध्याय में करे। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और इस प्रकार सोम का सदुपयोग हो जाता है। इस सोम के द्वारा हम जीवन में सदा तृतीय भूमिका में निवास करनेवाले बन पाते हैं।

भावार्थ—वासनाओं से अनाकान्त होकर, सौ वर्ष तक चलने का संकल्प करके, प्रातः-सायं प्रभु का उपासन करते हुए, सोमरक्षण की प्रबल इच्छावाले बनकर, खाली समय को स्वाध्याय में बिताते हुए हम सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'प्रथमः धामधाः'

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि॥ २८॥

हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **तव**=तेरे **दिव्यस्य रेतसः**=दिव्य रेतस् (शक्तिकण) के द्वारा ही **इमाः**=ये **प्रजाः**=प्रजायें उत्पन्न होती हैं। **त्वम्**=तू ही **विश्वस्य भुवनस्य**=सम्पूर्ण भुवन का **राजसि**=दीप्त करनेवाला है, सब प्राणियों को दीप्त करनेवाला यह सोम ही है। यही अंग-प्रत्यंग को शक्ति प्राप्त कराके उसे दीप्त करता है। हे सोम! **अथ**=अब **इदं विश्वं**=यह सम्पूर्ण विश्व **ते वशे**=तेरे ही वश में है, वस्तुतः सोम के अधीन ही सब उन्नतियाँ हैं। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम **त्वं प्रथमः**=तू ही हमारे जीवनों में सर्वप्रथम स्थान में स्थित है, **धामधाः असि**=तू ही सब तेजों का आधान करनेवाला है।

भावार्थ—सोम ही सब को जन्म देता है, सब को दीप्त करता है, सर्वप्रथम स्थान में स्थित हुआ-हुआ सब तेजों का हमारे में स्थापन करता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'समुद्रः विश्ववित्' सोमः

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः॥ २९॥

हे **कवे**=आनन्दप्रज्ञ सोम! हमें तीव्र बुद्धि को प्राप्त करानेवाले सोम! **त्वम्**=तू **समुद्रः असि**=ज्ञान का समुद्र है अथवा 'सन्मुद्' सदा आनन्द के साथ रहनेवाला है। नीरोगता आदि के द्वारा आनन्द को प्राप्त करानेवाला है। **विश्ववित्**=तू सर्वज्ञ व सब कुछ प्राप्त करानेवाला है (विद् लाभे)। **इमा**=ये **पञ्चप्रदिशः**=ये विस्तृत (पचि विस्तारे) दिशायें इनमें रहनेवाले प्राणी, **तव विधर्मणि**=तेरे विशिष्ट धारण में ही स्थित है। **त्वम्**=तू **द्यां च**=मस्तिष्क रूप द्युलोक को **च**=तथा **पृथिवीं च**=शरीर रूप पृथिवी को **अतिजभ्रिषे**=अतिशयेन धारण करता है। सोम ही मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ रखता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **सूर्यः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में उदित होनेवाला सूर्य **तव ज्योतींषि**=तेरी ही ज्योतियों को (जभ्रिषे) धारण करता है, अर्थात् ज्ञानसूर्य के उदित होने का संभव तेरे ही कारण होता है।

भावार्थ—शरीर में सोम ही हमारी बुद्धि को सूक्ष्म करता है, यही हमारे ज्ञान को बढ़ाता है। मस्तिष्क व शरीर का स्वास्थ्य इसी पर निर्भर करता है। यही सबका धारण करता है, यही सब कुछ प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**सिकता निवावरी**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

रजोगुण का विशिष्टरूप में स्थापन

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ३०॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **रजसः**=रजोगुण के **विधर्मणि**=विशिष्ट रूप से धारण करने के निमित्त होता है। यह सोम का रक्षण ही एक सात्त्विक पुरुष को

रजोगुण के विशिष्ट रूप में धारण के द्वारा क्रियाशील बनाता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **प्रथमाः**=अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाले **उशिजः**=मेधावी पुरुष **त्वां अगृभ्णत**=तेरा ग्रहण करते हैं, तुझे अपने अन्दर सुरक्षित करने का प्रयत्न करते हैं। **इमा विश्वा भुवनानि**=ये सब भुवन **तुभ्य येमिरे**=तेरे लिये ही अपने को देनेवाले होते हैं (यच्छन्त्यात्मानम् सा०) अर्थात् सब भुवन तेरे पर ही आश्रित हैं। सोम ही सब का आधार है व नियामक है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों में रजोगुण का विशिष्टरूप में स्थापन करता है और हमें गतिशील बनाता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषिगणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'शिशु-पनिप्रत'

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्रतम्॥ ३१॥

रेभः=स्तोता हमें प्रभु साधन की ओर झुकानेवाला, यह सोम **वारम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले **अव्ययम्**=(अविअय) विविध विषयों की ओर न जानेवाले पुरुष को **अति**=अतिशयेन **एति**=प्राप्त होता है। **वृषा**=यह शक्ति का सेचन करनेवाला होता है। **वनेषु**=उपासकों में **अवचक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाला होता है। **हरिः**=सब दुःखों का हरण करता है। **धीतयः**=प्रभु का ध्यान करनेवाले व **वावशानाः**=सोमरक्षण की प्रबल कामनावाले **सं अनूषत**=इस सोम का स्तवन करते हैं। इसके गुणों का प्रतिपादन करते हैं। **मतयः**=विचारशील पुरुष **शिशुम्**=(शो तनूकरणे) बुद्धि को तीव्र करनेवाले, **पनिप्रम्**=खूब ही प्रभु का स्तवन करनेवाले इस सोम का **रिहन्ति**=आस्वाद लेते हैं। सोमरक्षण से आनन्द का अनुभव करते हैं। यह सोम बुद्धि को तीव्र बनाता है और मन को प्रभुप्रवण करता है।

भावार्थ—सोम हमारी बुद्धि को तीव्र बनाता है, प्रभु साधन की ओर हमारा झुकाव करता है। इस प्रकार यह हमारे आनन्द का कारण बनता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथाविदे'

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम्॥ ३२॥

सः=वह सोम **सूर्यस्य रश्मिभिः**=ज्ञान सूर्य की किरणों से **परिव्यत**=अपने को आच्छादित करता है सोमरक्षण से ज्ञान दीप्त होता है। यह सोम **यथा विदे**=यथार्थ ज्ञानवाले पुरुष के लिये **त्रिवृतं तन्तुं**=तीनों सवनों में चलनेवाले 'प्रातः, मध्यान्तर व सायं' के सवनों में व्याप्त होनेवाले जीवनतन्तु को **तन्वानः**=विस्तृत करता है। अर्थात् यह सोम दीर्घायुष्य का कारण बनता है। यह सोम हमारे जीवनों में **ऋतस्य**=उस पूर्ण सत्य प्रभु की **नवीयसीः**=अत्यन्त स्तुत्य **प्रशिषः**=आज्ञाओं को **नयत्**=प्राप्त कराता है। इस सोम के रक्षण के द्वारा हम प्रभु की आज्ञाओं के पालन में चल पाते हैं। यह सोम **जनीनां**=इन वेदवाणीरूप प्रभु पत्नियों का **पतिः**=रक्षक है, अथवा शक्तियों के प्रादुर्भाव का रक्षक है। यह सोम अन्ततः **निष्कृतम्**=उस पूर्ण संस्कृत ब्रह्मलोक को **उपयाति**=समीपता से प्राप्त होता है। हमारी मोक्ष प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञानवस्त्र को धारण कराता है, जीवन को दीर्घ करता है, प्रभु की

आज्ञाओं को हमें पालन कराता है, शक्तिविकास करता हुआ मोक्ष का साधन बनता है।

ऋषिः—त्रय ऋषि गणाः ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

राजा सिन्धूनां-उपावसुः

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत्।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥ ३३ ॥

यह सोम **सिन्धूनाम्**=ज्ञान प्रवाहों का **राजा**=स्वामी होता है। **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक का **पतिः**=रक्षक होता हुआ **पवते**=हमें प्राप्त होता है। **कनिक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **ऋतस्य**=यज्ञ के **पथिभिः**=मार्गों से **याति**=गतिवाला होता है। सोमरक्षक के जीवन में प्रभु स्मरण पूर्वक यज्ञ चलाते हैं, यह सदा प्रभुस्मरण पूर्वक उत्तम कर्मों में लगा रहता है। **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला **हरिः**=यह दुःखों का हरण करनेवाला सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **वाचं जनयन्**=(वेद ज्ञान) वाणी को हमारे अन्दर उत्पन्न करता हुआ **उपावसुः**=उपासना के द्वारा सब वसुओं को प्राप्त करानेवाला होता है। सोमरक्षक प्रभु का उपासक बनता है और सब धनों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों में 'ज्ञान+ऋत+उपासना व वसुओं' को प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—त्रय ऋषि गणाः ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'महे वाजाय धन्याय धन्वसि'

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥ ३४ ॥

हे **पवमान**=हमें पवित्र करनेवाले सोम! तू **महि अर्णः**=महनीय (महत्वपूर्ण) ज्ञानजलों को **वि धावसि**=विशेषरूपेण प्राप्त होता है। **सूरः न**=सूर्य के समान **चित्रः**=वाचनीय-पूज्य होता हुआ तू **पव्यया**=पवित्र **अव्ययानि**=अविनश्वर (वेद) ज्ञानों को पानेवाला होता है। **गभस्तिपूतः**=इन ज्ञानरश्मियों से पवित्र हुआ-हुआ तथा **अद्रिभिः नृभिः**=उपासक प्रगति पुरुषों से **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **महे**=महान् **धन्याय**=धनयुक्त अथवा जीवन को धन्य बनानेवाले **वाजाय**=सामर्थ्य के लिये **धन्वसि**=गतिवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञान व शक्ति को प्राप्त कराके हमारे जीवनों को पवित्र करता है।

ऋषिः—त्रय ऋषि गणाः ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'दिवो विष्टम्भः, उपमो विचक्षणः'

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥

हे **पवमान**=हमें पवित्र करनेवाले सोम! तू **इषम्**=प्रभुप्रेरणा व **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति की **अभि**=ओर **अर्षसि**=गतिवाला होता है। सोमरक्षण से हम प्रभुप्रेरणा को सुनने योग्य बनते हैं। उस प्रेरणा को क्रियान्वित करने के लिये बल व प्राणशक्ति को प्राप्त करते हैं। **श्येनः न**=शंसनीय गतिवाले के समान **वंसु**=वासनाओं को पराजित करनेवाले अथवा प्रभु की उपासनावाले (वन् संभजने) **कलशेषु**=इन शरीर कलशों में **सीदसि**=तू स्थित होता है। **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मद्वा**=अतिशय आनन्द को करनेवाला **मदः**=उल्लास का जनक व **मद्यः**=मस्ती को

लानेवाला होता है। **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **दिवः विष्टम्भ**=ज्ञान का धारक है, **उपमा**=उपासना द्वारा प्रभु का ज्ञान प्राप्त करनेवाला है (उपमाति) तथा **विचक्षणः**=विशेषण द्रष्टा है, हमारा ध्यान करनेवाला है। यह सोम ही तो हमारे शरीरों को नीरोग, हृदयों को पवित्र तथा मस्तिष्क को दीप्त बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्रभु प्रेरणा को सुननेवाला बल व प्राणशक्तिवाला शंसनीय गतिवाला उल्लासमय ज्ञानधारक बनाता है यह सब प्रकार से हमारा ध्यान करता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'तवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम्'

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम्।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे॥ ३६ ॥

सप्त=सात 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'=दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख रूप सप्तर्षि **स्व-सारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले होते हुए, **मातरः**=ज्ञान का निर्माण करनेवाले होते हैं और **शिशुं**=बुद्धि को तीव्र करनेवाले **सोमम्**=सोम को **अभि (गच्छन्ति)**=प्राप्त होते हैं। वस्तुतः ज्ञानेन्द्रियों को प्रभु की उपासना व ज्ञान प्राप्ति में लगाना ही सोमरक्षण का प्रमुख साधन है। उस सोम को ये सप्तर्षि प्राप्त होते हैं, जो कि **नवम्**=स्तुत्य है, **जज्ञानम्**=शक्तियों के प्रादुर्भाव को करनेवाला है **जेन्यम्**=विजयशील है, **विपश्चितम्**=ज्ञानी है, हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला है। जो सोम **अपां गन्धर्वम्**=कर्मों की प्रतिपादक ज्ञानवाणियों को धारण करनेवाला है (अपस्=कर्म), **दिव्यम्**=हमें दिव्यवृत्ति का बनानेवाला है, **नृचक्षसम्**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाला है। इस सोम को **विश्वस्य भुवनस्य**=सम्पूर्ण भुवन की **राजसे**=दीप्ति के लिये प्राप्त करते हैं। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम सारे शरीर को दीप्त करनेवाला होता है। शरीर को तेजस्विता से, मन को निर्मलता से तथा बुद्धि को तीव्रता से यह सोम उत्कृष्ट बनाता है।

भावार्थ—जब शरीरस्थ इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगेंगी और प्रभु उपासन में प्रवृत्त होंगी तभी सोम का रक्षण होगा। रक्षित सोम सम्पूर्ण शरीर को दीप्त बनायेगा।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

मधुमद् घृतं पयः

ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः॥ ३७॥

हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **ईशानः**=सम्पूर्ण 'तेज निर्मल्य व दीप्ति' रूप ऐश्वर्योंवाला होता हुआ तू **इमा भुवनानि**=इन प्राणियों को **वीयसे**=प्राप्त होता है। शरीर को तू तेजस्विता देता है, मन को नैर्मल्य प्राप्त कराता हुआ तू बुद्धि को तीव्र करता है। हे इन्दो! तू ही इस शरीररथ में **सुपर्ण्यः**=उत्तमता से जिनका पालन व पूरण हुआ है उन **हरितः**=इन्द्रियों को **युजानः**=युक्त करता है। अर्थात् सोम ही इन्द्रियों को सशक्त व निर्दोष बनाता है। **ताः**=वे इन्द्रियाश्व (सुपर्ण्यः) **ते**=तेरे द्वारा **मधुमत्**=अत्यन्त माधुर्यवाली **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति को तथा **पयः**=शक्ति के आप्यायन को **क्षरन्तु**=अपने में संचरित करें। सोमरक्षण द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान सम्पन्न हो और कर्मेन्द्रियाँ सशक्त बनें। हे सोम वीर्यशक्ते! यह सब विचार कर **कृष्टयः**=श्रमशील मनुष्य **तव**=तेरे **व्रते**=व्रत में **तिष्ठन्तु**=स्थित हों। सोमरक्षण के लिये जो आवश्यक कर्म हैं, उन्हें ये करनेवाले हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है। ज्ञानेन्द्रियों को यह ज्ञान सम्पन्न बनाता है और कर्मेन्द्रियों को यह सशक्त करता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वसुमत्+हिरण्यवत्

त्वं नृचक्षसा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे॥ ३८॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **नृचक्षसाः असि**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाला है। वस्तुतः सोम ही मनुष्यों को रोगों व वासनाओं से बचाता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले, **वृषभ**=शक्ति का सेचन (वृष् सेचने) करनेवाले सोम तू **ताः**=उन प्रजाओं को **विश्वतः**=सब ओर से **विधावसि**=शुद्ध कर देता है। सुरक्षित सोम शरीर मानस व बौद्धिक सभी मलों को दूर कर देता है। **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **वसुमत्**=उत्तम वसुओंवाला होता हुआ तथा **हिरण्यवत्**=उत्तम ज्योतिवाला होता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो शरीर में सुरक्षित सोम वसुओं व हिरण्यों को प्राप्त कराता है, शरीर में वसुओं को, मस्तिष्क में ज्योति को। हे सोम! हम तेरे रक्षण के द्वारा **वयम्**=हम **भुवनेषु**=इन लोकों में **जीवसे**=जीवन के लिये **स्याम**=हों। शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में दीप्तिवाले होते हुए हम दीर्घजीवी हों।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम दीर्घ जीवन व ज्योति का कारण बनता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

गोवित्-वसुवित्-हिरण्यवित्

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते॥ ३९॥

हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू हमें **पवस्व**=प्राप्त हो। तू **गोवित्**=उत्कृष्ट इन्द्रियों को प्राप्त करानेवाला है। **वसुवित्**=निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों-वसुओं को प्राप्त करानेवाला है। **हिरण्यवित्**=(हिरण्यं वै ज्योतिः) ज्योति को प्राप्त करानेवाला है। हे इन्दो! तू **रेतोधा**=शक्ति का आधान करनेवाला होता हुआ **भुवनेषु अर्पितः**=इन प्राणियों में स्थापित किया गया है। हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **त्वम्**=तू **सुवीरः असि**=हमें उत्तम वीर बनानेवाला है। **विश्ववित्**=सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराता है। **इमे विप्राः**=ये ज्ञानी पुरुष **तं त्वा**=उस तुझ को **उपासते**=स्तुत वाणियों के द्वारा उपासित करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'उत्तम इन्द्रियों, वसुओं व ज्योति' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**त्रय ऋषि गणाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'ज्ञानी कर्मनिष्ठ उपासक' बनानेवाला सोम

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत्॥ ४०॥

मध्वः ऊर्मिः=माधुर्य की तरंगरूप यह सोम **वनना**=सेवनीय ज्ञान की वाणियों को **उद् अतिष्ठिपत्**=हमारे में स्थापित करता है। हमें तीव्र बुद्धि बनाकर ज्ञान को प्राप्त कराता है। **अपः वसानः**=कर्मों को धारण करता हुआ हमें क्रियाशील बनाता हुआ **महिषः**=यह उपासनावाला सोम

विगाहते=शरीर कलश में प्रवेश करता है। सोम रक्षित हुआ-हुआ हमें प्रभु की ओर झुकाता है। **राजा**=हमारे जीवनों को व्यवस्थित व दीप्त करनेवाला (regulate दीप्तौ) **पवित्रस्थः**=शरीरस्थ को पवित्र बनानेवाला सोम **वाजं आरुहत्**=संग्राम में आरूढ़ होता है। शरीर में प्रविष्ट होकर यह रोगकृमियों व वासनाओं से संग्राम को प्रारम्भ करता है। वहाँ **सहस्रभृष्टिः**=शतसः मनुष्यों को भून डालनेवाला यह सोम **बृहत् श्रवः**=महान् यज्ञ का **जयति**=विजय करता है। सब शत्रुओं को शीर्ण करके विजयी होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'ज्ञानी कर्मनिष्ठ उपासक' बनाता है। शत्रुओं को शीर्ण करके हमारे जीवन को यशस्वी करता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ब्रह्म प्रजावत्, रयिम् अश्वपस्त्यम्

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्॥ ४१॥

सः=वह **विश्वायुः**=पूर्ण जीवन को प्राप्त करानेवाला सोम **अहर्दिवि**=दिन-रात **विश्वाः**=सब **सुभराः**=उत्तम भरण की साधन भूत **प्रजावतीः**=प्रकृष्ट विकासवाली **भन्दना**=स्तुतियों को **उदियर्ति**=उत्कर्षेण प्रेरित करता है। सोमरक्षण से हमारी वृत्ति प्रभुस्तवन की होती है। यह प्रभुस्तवन हमारे पूर्ण जीवन का कारण होता है, अंग-प्रत्यंग का उत्तम पोषण करनेवाला होता है और सब शक्तियों को विकसित करता है। हे **इन्दो**=सोम! **पीतः**=शरीर के अन्दर पिया हुआ तू **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **ब्रह्म**=उस ज्ञान की **याचतात्**=याचना कर जो **प्रजावत्**=हमारे प्रकृष्ट विकास का कारण बने, तथा **रयिम्**=हमारे लिये धन की याचना कर जो **अश्वपस्त्यम्**=उत्तम अश्वों से युक्त गृहवाला हो। यहाँ 'गृह' यह शरीर है, 'अश्व' इन्द्रियाँ हैं धन वही ठीक है जो इस शरीर व इन्द्रियों को ठीक बनाये रखे।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को स्तुतिमय बनाता है। यह ज्ञान व धन की प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

चेतसा, द्युभिः

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि॥ ४२॥

सः=वह **हर्यतः**=चाहने योग्य-कमनीय **हरिः**=दुःखों का हर्ता **मदः**=उल्लास जनक सोम **अह्नां अग्रे**=दिनों के अग्रभाग में **चेतसा**=चिन्तन के द्वारा तथा **द्युभिः**=ज्ञान दीप्तियों के द्वारा **अनुप्रचेतयते**=अनुकूल प्रकृष्ट चेतना को उत्पन्न करता है। सोमरक्षक पुरुष प्रातः ध्यान व स्वाध्याय की वृत्तिवाला होता है इन ध्यान व स्वाध्याय के द्वारा यह सोम हमारे जीवन में प्रकृष्ट चेतन व ज्ञान को प्राप्त कराता है। **धर्तरि**=धारण करनेवाले के **अन्तः**=अन्दर यह सोम **नराशंसं**= मनुष्यों से प्रशंसनीय **च**=और **दैव्यम्**=दिव्यगुणों के जनक उभयविध **द्वा जना**=दोनों विकास के कारणभूत ऐश्वर्यों को **यातयन्**=प्राप्त कराता हुआ **ईयते**=गति करता है। 'नराशंस ऐश्वर्य' वह है जो सुपथ से कमाया जाकर उत्तम गृह के निर्माण का साधन बनता है। 'दैव्य ऐश्वर्य' ज्ञान है जो सब सद्गुणों के विकास का साधन होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम चिन्तन व स्वाध्याय की वृत्ति को पैदा करता है। सोमरक्षक पुरुष धन को सदा सुपथ से कमाता है और ज्ञान के द्वारा सद्गुणों का अर्जन करता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अञ्जन+व्यञ्जन+समञ्जन

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ४३ ॥

हिरण्यपावाः=(हिरण्यं-वीर्यम्) सोमशक्ति का, वीर्य का अपने अन्दर पान करनेवाले लोग **अञ्जते**=इस शरीर के अंग-प्रत्यंग को शक्ति से अलंकृत करते हैं, **व्यञ्जते**=अपने हृदय को यज्ञिय भावनाओं से शुद्ध करते हैं। **समञ्जते**=ये अपने मस्तिष्क को ज्ञान से सजानेवाले होते हैं। **क्रतुं रिहन्ति**=ये हिरण्यपावा लोग 'शक्ति (kratas, power) यज्ञ व प्रज्ञान' का आस्वादन करते हैं। शरीर को शक्ति से, हृदय को यज्ञ से तथा मस्तिष्क को ज्ञान से अलंकृत करके ये लोग **मधुना अभ्यञ्जते**=माधुर्य से अपने सारे व्यवहार को अलंकृत करते हैं। सबके साथ अत्यन्त मधुरता से वरतते हैं। **आसु**=इन रेतकणों में, अर्थात् इन रेतकणों के सुरक्षित होने पर ये हिरण्यपावा लोग **पशुं गृभ्णते**=उस सर्वद्रष्टा प्रभु का ग्रहण करते हैं, जो प्रभु **उक्षणम्**=हमें शक्ति से सिक्त करते हैं तथा **सिन्धोः**=ज्ञाननदी के **उच्छ्वासे**=उच्छ्वासित होने पर **पतयन्तम्**=हमें प्राप्त होते हैं। जितना-जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना-उतना प्रभु के हम समीप होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हमारा शरीर शक्ति से, हमारा मन यज्ञियभावना से तथा मस्तिष्क प्रज्ञान से सुभूषित होता है। इस सोमरक्षक पुरुष का व्यवहार माधुर्यपूर्ण होता है, और अन्ततः यह प्रभु को पाने का अधिकारी बनता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचम्

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद् वृषा हरिः ॥ ४४ ॥

विपश्चिते=हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाले **पवमानाय**=पवित्र करनेवाले सोम के लिये **गायत**=स्तुति शब्दों का गायन करो। **अन्धः**=यह सोम (अन्धसस्पते-सोमस्यपते श० ९.१.२.४) **महीधारा न**=महत्वपूर्ण धारा के समान **अति अर्षति**=अतिशयेन प्राप्त होता है, जैसे एक जलधारा शरीर को बाहर से पवित्र कर देती है, इसी प्रकार यह सोम अन्दर से पवित्र करनेवाला होता है। **न**=जैसे **अहिः**=साँप **जूर्णां**=जीर्ण **त्वचम्**=त्वचा को **अतिसर्पति**=छोड़कर आगे बढ़ जाता है, उसी प्रकार यह सोम सब मलों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ने का कारण बनता है। यह **वृषा**=शक्तिशाली **हरिः**=सब दुःखों को हरण करनेवाला सोम **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान **क्रीडन्**=क्रीड़ा करता हुआ **असरत्**=गतिवाला होता है। सोमरक्षण से शक्ति सम्पन्न होकर हम आलस्य शून्य होते हैं और क्रीडक की मनोवृत्ति से निरन्तर क्रियाओं में लगे रहते हैं।

भावार्थ—सोम हमें 'ज्ञान-पवित्रता व क्रियाशीलता' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—अत्रिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—आर्चीस्वराड्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

अह्नां विमानः, ओक्यः

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः॥ ४५॥

अग्रेगो=अग्रगति व उन्नतिवाला यह **राजा**=जीवन को दीप्त व व्यवस्थित करनेवाला (दीप्तौ), **अप्यः**=कर्मों में उत्तम सोम **तविष्यते**=स्तुति किया जाता है। यह **भुवनेषु अर्पितः**=शरीर के अंग-प्रत्यंगों में अर्पित हुआ-हुआ **अह्नां विमानः**=दिनों का उत्तम निर्माण करता है, एक-एक दिन को सुन्दर बनाता है तथा हमारे जीवन के दिनों को बढ़ाता है। संक्षेप में यह सोम सुन्दर दीर्घजीवन का कारण बनता है। **हरिः**=यह दुःखों का हरण करनेवाला है। **घृतस्नुः**=ज्ञानदीप्ति को प्रसृत करनेवाला है, ज्ञान प्रवाह को प्रवाहित करनेवाला है। **सुदृशीकः**=उत्तमदर्शनीय है, इसके रक्षण से शरीर तेजस्वी व रम्य बनता है। **अर्णवः**=यह सोम ज्ञान जलवाला है, **ज्योतीरथः**=ज्योतिर्मय रथवाला है, शरीररथ को ज्योतिर्मय बनाता है। यह **राये**=सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य के लिये **पवते**=प्राप्त होता है और **ओक्यः**=इस शरीर रूप गृह के लिये अत्यन्त हितकर है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सुन्दर दीर्घ जीवन को प्राप्त कराता है। शरीर रूप गृह को बड़ा ठीक रखता है।

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

'त्रिधातुः' सोमः

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्रतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः॥ ४६॥

यह **दिवः स्कम्भः**=ज्ञान का स्कम्भ (=आधार) रूप सोम **असर्जि**=शरीर में उत्पन्न किया जाता है यह **उद्यतः**=शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ **मदः**=उल्लास का जनक होता है। **त्रिधातुः**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों को धारण करनेवाला यह सोम **भुवनानि**=शरीर के सब अंगों में **परि अर्षति**=गतिवाला होता है। **मतयः**=विचारशील पुरुष **पनिप्रतम्**=खूब ही प्रभु का स्तवन करनेवाला, स्तुतिवृत्ति को पैदा करनेवाले **अंशुम्**=सोम को **रिहन्ति**=आस्वादित करते हैं। इस सोमरक्षण में वे आनन्द का अनुभव करते हैं। ये सोम के आनन्द को तब अनुभव करते हैं **यदि**=यदि **ऋग्मिणः**=ऋचाओं व विज्ञानोंवाले होते हुए ये वैज्ञानिक पुरुष **गिरा**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **निर्णिजम्**=जीवन को शुद्ध बनानेवाले उस प्रभु को **ययुः**=जाते हैं, उपासित करते हैं। यह विज्ञान व उपासना जीवन को शुद्ध बनाती है। शुद्ध वासनाशून्य जीवन में ही सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय सोमरक्षण के साधन हैं सुरक्षित सोम 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का धारण करनेवाला है।

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

ब्रह्मशक्ति के सूक्ष्मतत्त्वों का ज्ञान

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि॥ ४७॥

हे सोम! **पुनानस्य**=पवित्र किये जाते हुए **ते**=तेरे **संयतः**=सम्यक् शरीर में गति करते हुए (संयत किये गये) **ते**=तेरी **रंहयः**=वेगवती धारण (धारण शक्तियाँ) धारायें **मेष्यः**=सम्पूर्ण संसार को गति देनेवाली ब्रह्मशक्ति के **अण्वानि**=सूक्ष्म तत्त्वों को **प्र अतियन्ति**=खूब प्राप्त होती हैं। अर्थात् सोमरक्षण से उत्पन्न तीव्र बुद्धि के द्वारा संसार संचालिका ब्रह्मशक्ति के तत्त्वों को हम समझने लगते हैं। हे **इन्दो**=सोम! **यद्**=जब **गोभिः**=इन ज्ञानवाणियों के द्वारा **चम्वोः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में तू **समज्यसे**=अलंकृत किया जाता है, अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा वासनाओं से दूर रहकर तेरा रक्षण होता है और तू मस्तिष्क व शरीर को ही अलंकृत करनेवाला होता है, तो **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ **सोम**=हे सोम! तू **कलशेषु**=इन शरीर कलशों में **आसीदसि**=समन्तात्=अंग-प्रत्यंग में स्थित होता है। उनमें स्थित होकर तू उनका धारण करता है, उन्हें शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—पवित्र सोम की शरीर में सुरक्षित धारायें शरीर को स्वस्थ बनाती हैं और मस्तिष्क को सूक्ष्म तत्त्वों के ज्ञान से शोभित करती हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

क्रतुवित् उक्थ्य

पव॑स्व सोम क्रतु॒विन्न॑ उ॒क्थ्योऽव्यो॒ वारे॒ परि॑ धाव॒ मधु॑ प्रि॒यम्।
ज॒हि विश्वा॑न्र॒क्षस॑ इन्दो अ॒त्रिणो॑ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑॥ ४८॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **पवस्व**=तू हमें प्राप्त हो। **नः**=हमारे लिये **क्रतुवित्**='शक्ति यज्ञ व प्रज्ञान' को प्राप्त करानेवाला तू **उक्थ्यः**=स्तुत्य है। **अव्यः**=अतिशयेन रक्षणीय या रक्षकों में उत्तम तू **वारे**=द्वेष आदि का निवारण करनेवाले पुरुष में **प्रियं मधु**=प्रिय माधुर्य को **परिधाव**=समन्तात् प्राप्त करा। इस सोम रक्षक पुरुष के सब व्यवहारों को मधुर बना। हे **इन्दो**=सोम! **विश्वान्**=सब अथवा हमारे न चाहते हुए भी अन्दर घुस आनेवाले (विशन्ति) **अत्रिणः**=हमें खा जानेवाले **रक्षसः**=राक्षसी भावों को **जहि**=विनष्ट कर। हम **सुवीराः**=उत्तम वीर बनते हुए **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **बृहद् वदेम**=खूब ही आपका साधन करें।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को ऋतुमय-मधुर व राक्षसीभावों से शून्य बनाये। हम वीर बनकर ज्ञानयज्ञ में प्रभु की चर्चा करनेवाले हों।

प्रभु चर्चा की कामनावाला 'उशनाः' अगले सूक्त का ऋषि है—

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

संग्राम की ओर

प्र तु द्र॑व॒ परि॒ कोशं॒ नि षी॑द॒ नृभिः॑ पुना॒नो अ॒भि वाज॑मर्ष।
अश्वं॒ न त्वा॑ वा॒जिनं॑ म॒र्जय॒न्तोऽच्छा॑ ब॒र्हीं र॑श॒नाभि॑र्नयन्ति॥ १॥

हे सोम! **तु**=तू निश्चय से **प्र द्रव**=प्रकृष्ट गतिवाला हो। **कोशं परि निषीद**=शरीर के प्रत्येक कोश में स्थित हो। **नृभिः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **वाजं अभि अर्ष**=रोगकृमि आदि के साथ संग्राम में गतिवाला हो। इनके साथ संग्राम करके शरीर को आधि-व्याधि से शून्य कर। **वाजिनं अश्वं न**=शक्तिशाली घोड़े की तरह **त्वा**=तुझे **मर्जयन्तः**=शुद्ध करते हुए **रशनाभिः**=स्तुति वाणियों से (रशना tongue) **बर्हिः अच्छा**=वासना

शून्य हृदय की ओर **नयन्ति**=ले जाते हैं। स्तुति वाणियों के द्वारा पवित्र करते हुए तुझे अपने अन्दर ही सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ—स्तुति द्वारा शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमि आदि के साथ संग्राम करके उन्हें विनष्ट करता है।

ऋषिः—**उशनाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विष्टम्भो दिवः, धरुणः पृथिव्याः

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥ २॥

स्वायुधः=उत्तम 'इन्द्रियों-मन व बुद्धि' रूप आयुधोंवाला **देवः**=जीवन को दिव्य बनानेवाला **इन्दुः**=सोम **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह सोम **अशस्तिहा**=सब बुराइयों को नष्ट करनेवाला है। **वृजनम्**=(energy) शक्ति का यह **रक्षमाणः**=रक्षण करनेवाला है। यह सोम **पिता**=रक्षक है, **देवानां जनिता**=दिव्यगुणों को जन्म देनेवाला है, **सुदक्षः**=उत्तम विकास (growth) का कारण बनता है। **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक का यह थामनेवाला है और **पृथिव्याः धरुणः**=इस शरीररूप पृथिवी का धारण करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब बुराइयों को नष्ट करता है और अच्छाइयों व शक्ति का रक्षण करता है। यह शरीर व मस्तिष्क दोनों का धारण करता है।

ऋषिः—**उशनाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तत्त्वदर्शन

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम्॥ ३॥

यह सोम **ऋषिः**=अतीन्द्रिय द्रष्टा है, हमारी बुद्धियों को तीव्र बनाकर हमें तत्त्वद्रष्टा बनाता है। **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला है। **जनानां पुरः एता**=मनुष्यों का आगे चलनेवाला, अर्थात् मार्गदर्शक है। **ऋभुः**=(उरु भासमानः) खूब ही दीप्त है। **धीरः**=बुद्धि को गतिमय करनेवाला है (धियम् ईरयति)। यह **काव्येन उशनाः**=इस वेदज्ञान रूप काव्य से प्रभु प्राप्ति की कामनावाला होता है। सोमरक्षण से मनुष्य का झुकाव प्रभु प्राप्ति की ओर होता है, प्रभु प्राप्ति के लिये यह प्रभु के वेदरूप काव्य को अपनाता है। **सः**=वह सोमरक्षक पुरुष **चित्**=निश्चय से **आसां गोनाम्**=इन वेदवाणियों का **यत्**=जो **अपीच्यम्**=अन्तर्हित **गुह्यम्**=रहस्यभूत भाव **निहितम्**=स्थापित है, उस **नाम**=(mark, sign, token) संकेत को **विवेद**=जाननेवाला होता है। सोमरक्षण से ही बुद्धि की वह तीव्रता व हृदय की वह शुद्धि प्राप्त होती है जिससे कि हम वेद के इन संकेतों को समझनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से मनुष्य तीव्र बुद्धि बनकर वेदवाणियों के अन्तर्निहित अर्थ को देख पाता है।

ऋषिः—**उशनाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सहस्रसाः शतसाः भूरिदावा'

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥ ४॥

हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **एषः**=यह **स्यः**=वह प्रसिद्ध **सोमः**=सोम **वृष्णे ते मधुमान्**=अपने अन्दर शक्ति कर सेचन करनेवाले तेरे लिये जीवन को मधुर बनानेवाला है। **वृषा**=यह शक्ति का सेचन करनेवाला है। जो भी इस सोम को अपने अन्दर सिक्त करता है, सोम उसे शक्तिशाली बनाता है। यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **परि अक्षाः**=शरीर में चारों ओर क्षरित होता है। **सहस्रसाः**=सहस्र संख्या ऐश्वर्यों को देनेवाला, **शतसाः**=पूर्ण शतवर्ष के जीवन को देनेवाला, **भूरिदावा**=खूब ही शत्रुओं का यह लवन (काटना) करनेवाला है। यह **वाजी**=शक्तिशाली सोम **शश्वत्तमम्**=सदा **बर्हिः**=वासनाशून्य रूप हृदय में **आ अस्थात्**=सर्वथा स्थित होता है। हृदय में वासनाओं के अभाव में सोम का रक्षण होता है। यह सोम हमें सहस्रों धनों को देता हुआ शतवर्ष के जीवन को देनेवाला होता है और काम-क्रोध आदि शत्रुओं को खूब ही काटनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को मधुर बनाता है, यह 'ऐश्वर्य व दीर्घजीवन' को देता है, शत्रुओं को काटता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वाजाय अमृताय

ए॒ते सोमा॑ अ॒भि ग॒व्या स॒हस्रा॑ म॒हे वाजा॑या॒मृता॑य॒ श्रवां॑सि।
प॒वित्रे॑भिः॒ पव॑माना असृग्रञ्छ्रव॒स्यवो॒ न पृ॑त॒नाजो॒ अत्याः॑॥ ५॥

एते सोमाः=ये सोमकण **सहस्रा गव्या अभि**=हजारों ज्ञानवाणियों की ओर गतिवाले होते हैं। इन ज्ञानवाणियों की ओर गतिवाले होते हुए ये सोम **महे वाजाय**=महान् शक्ति के लिये तथा **अमृताय**=अमृतत्त्व (नीरोगता) के लिये होते हैं। **पवित्रेभिः**=पवित्र हृदयवाले पुरुषों से **पवमानाः**=पवित्र किये जाते हुए ये सोम **श्रवांसि असृग्रन्**=ज्ञानों को उत्पन्न करते हैं। इन ज्ञानों से ही हम पवित्र जीवनवाले बनकर शक्तिलाभ करते हैं व अमृतत्त्व (नीरोगता) को पाते हैं। ये सोमकण **अवस्यवः**=ज्ञान प्राप्ति की कामनावाले हैं तथा **पृतनाजः**=संग्राम में गतिवाले **अत्याः न**=अश्वों के समान हैं। (पृतना+अज्)। सोमकण शरीरस्थ रोगकृमियों व मलिन वासनाओं को पराजित करके हमें स्वस्थ व सुन्दर जीवनवाला बनाते हैं।

भावार्थ—सोम ज्ञानवर्धन का कारण होते हैं, शक्ति व नीरोगता को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यत्नशील-रयीश-शक्तिशाली

परि॒ हि ष्मा॑ पु॑रुहू॒तो जना॑नां॒ विश्वास॑र॒द्भोज॑ना पू॒यमा॑नः।
अथा भ॑र श्येनभृत॒ प्रयां॑सि र॒यिं तुञ्जा॑नो अ॒भि वाज॑मर्ष॥ ६॥

यह **पुरुहूतः**=(पुरुहूतं यस्य) पालक व पूरक है आह्वान जिसका, जिसकी प्रकार-याचना हमारे शरीरों का पालन करती है तथा मनों का पूरण करती है, वह **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ सोम-वासनाओं के उबाल से दूर रखा जाता हुए सोम (वीर्य) **जनानां**=लोगों के **विश्वा**=सब **भोजना**=रक्षक धनों को (वसुओं को) **हिष्मा**=निश्चय से **परि असरत्**=प्राप्त कराता है (अन्तर्भावितण्यर्थः 'सृ')। हे **श्येनभृत**=शंसनीय गतिवाले पुरुष से भरण किये गये सोम! तू **अथ**=अब **प्रयांसि**=उद्योगों को **आभर**=हमारे में भर, हमें यत्नशील बना। **रयिं तुञ्जानः**=धनों को देता हुआ तू **वाजं अभि**=शक्ति की ओर **अर्ष**=गतिवाला हो। सोमरक्षण से हम आलस्य शून्य होकर पुरुषार्थ से धनों का अर्जन करें और उनका ठीक प्रयोग करते हुए शक्तिशाली बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सब पालक धनों को प्राप्त कराता है। हमें यत्नशील, रयीश (धन स्वामी) व शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सृष्टः सर्गः न, महिषः न

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा॥ ७॥

एषः=यह **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ **सोमः**=सोम **सृष्टः सर्गः न**=बन्धनमुक्त घोड़े की तरह **अर्वा**=शत्रु संहार को करनेवाला **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष **परि अदधावत्**=चारों ओर गतिवाला होता है। शरीर में व्याप्त होता हुआ यह शरीरस्थ रोगकृमिरूप शत्रुओं का विनाश करता है, अपने **तिग्मे**=तीक्ष्ण **शृंगे**=सींगों को **शिशानः**=तीव्र करते हुए **महिषोः नः**=महिष के समान आरण्य भैंसे के समान **शूरः न**=शूरवीर के समान **सत्वा**=(शत्रूणां सादयिता) शत्रुओं का काम-क्रोध आदि का सादन (विनाश) करनेवाला **गव्यन्**=ज्ञान की वाणियों की कामनावाला होता हुआ **गाः अभि**=इन ज्ञानवाणियों की ओर गतिवाला होता है। सोमरक्षण से ही बुद्धि की तीव्रता होकर हमारी ज्ञान की रुचि बढ़ती है।

भावार्थ—सोम रोगकृमि व काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करता है और हमें ज्ञान की रुचिवाला बनाता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अद्रेः अन्तः कूचित् ऊर्वे सतीः गाः विवेद

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा॥ ८॥

एषा=यह **सोमस्य धारा**=सोम की धारा **परमात्**=उत्कृष्ट मार्ग से **ययौ**=गतिवाली होती है। दक्षिणायन के स्थान में उत्तरायण से जाना है यह सोमधारा की परमगति है। इस उत्कृष्ट मार्ग से जाती हुई यह सोमधारा **अद्रेः अन्तः**=अविद्यापर्वत के अन्दर **कूचित्**=कहीं **ऊर्वे**=बाड़े में, विषयबन्धन में **सतीः**=होती हुई, फँसी हुई **गाः**=इन इन्द्रियों को यह सोमधारा कैद से मुक्त करती है। हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **न**=जैसे **दिवः**=द्युलोक से **अभ्रैः**=बादलों के साथ **स्तनयन्ति**=शब्द करती हुई **विद्युत्**=विद्युत् प्राप्त होती है, उसी प्रकार **ते**=तेरी यह सोमधारा भी प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करती हुई प्राप्त होती है। सोमरक्षण से प्रभु की ओर झुकाव होता ही है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम इन्द्रियों को विषय-बन्धन से मुक्त करता है। सोमरक्षण के होने पर प्रभुस्तवन की प्रवृत्ति होती है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञानवृद्धि व प्रेरणा का

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत्॥ ९॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **इन्द्रेण सरथम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के द्वारा समानरथ में, अर्थात् अपने ही शरीररथ में **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **गोनाम् राशिम्**=वेदवाणियों के समूह को **उत**

स्म=(निश्चय से) अवश्य **परियासि**=प्राप्त होता है। जब सोम शरीर में सुरक्षित होता है, तो बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञान प्राप्त होता है। हे **शचीवः**=शक्तिसंपन्न सोम! **उपष्टुत्**=स्तुति करनेवाला, **जीरदानो**=शीघ्रता से सब बुराइयों का छिन्न करनेवाला (द्राप् लावने) तू **तव**=तेरी **ताः**=उन **बृहतीः**=वृद्धि की कारणभूत **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **शिक्ष**=प्राप्त करा। हम सोमरक्षण से प्रभुस्तवन की ओर झुकते हुए बुराइयों को छिन्न-भिन्न करके हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनते हैं। ये प्रेरणाएं हमारी उन्नति का कारण बनती हैं और हमारा पालन व पूरण करती हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है और हमें पवित्र हृदय बनाकर प्रभु प्रेरणा के सुनने के योग्य बनाता है।

उशना ऋषि का ही अगला सूक्त है—

[८८] अष्टाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**सतःपंक्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

मदाय-युज्याय

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम्॥ १॥

हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **अयं सोमः**=यह सोम **तुभ्यं सुन्वे**=तेरे लिये उत्पन्न किया जाता है, **तुभ्यं पवते**=तेरे लिये ही यह पवित्रता को करनेवाला होता है। **त्वम्**=तू **अस्य पाहि**=इसका रक्षण कर। **त्वं**=तू **ह**=निश्चय से **यं इन्दुम्**=जिस सोम को **चकृषे**=उत्पन्न करता है और जिस **सोमम्**=सोम को **ववृषे**=तू वृत करता है (वृ) अथवा शरीर में सिक्त करता है (वृष्) वह सोम तेरे **मदाय**=उल्लास के लिये होता है और **युज्याय**=प्रभु के साथ मेल के लिये होता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष ही सोम का रक्षण कर पाता है। रक्षित सोम उसे उल्लासयुक्त करता है और प्रभु प्राप्ति के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वसुओं की प्राप्ति के लिये

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त॥ २॥

सः=वह **ईम्**=निश्चय से **भूरिषाट्**=बहुत अधिक भार को सहनेवाले **रथः न**=रथ के समान **अयोजि**=शरीर में युक्त किया जाता है। यह **महः**=महान् सोम **पुरूणि**=पालक व पूरक **वसूनि**=धनों को **सातये**=देने के लिये होता है। शरीर के अन्नमय आदि सब कोशों को यही भरनेवाला होता है। **आत् ईम्**=इस सोम के शरीररथ में संयुक्त होने पर ही **विश्वा**=सब **नहुष्याणि**=मानवहित की बातें **जाता**=प्रादुर्भूत होती हैं। ये सोम **स्वर्षाता**=प्रकाश की प्राप्ति के निमित्त **वने**=उपासक में **ऊर्ध्वा नवन्त**=उत्कृष्ट गतिवाले होते हैं। (वन् संभक्तौ) उपासना के द्वारा सोमकणों की ऊर्ध्वगति होती है और ऊर्ध्वगतिवाले होकर ये सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं और प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम वसुओं (शरीरहित धनों) की प्राप्ति के लिये होते हैं और प्रकाश की प्राप्ति का कारण बनते हैं।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इष्टयामा

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदाइव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

यः=जो सोम **वायुः न**=निरन्तर चलनेवाली वायु के समान **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला है और **इष्टयामा**=लक्ष्य तक पहुँचानेवाला है, वह सोम **नासत्या इव**=प्राणापान की तरह **हवे**=पुकारने पर **आ शम्भविष्ठः**=शरीर में समन्तात् शान्ति को उत्पन्न करनेवाला है। शरीर में सुरक्षित सोम रोगादि को विनष्ट करके शान्ति को उत्पन्न करनेवाला है। **द्रविणोदाः इव**=धनों के देनेवाले की तरह **त्मन्**=अपने अन्दर **विश्ववारः**=सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाला है। सोम सुरक्षित होकर शरीर में सब कोशों को वरणीय धनों से परिपूर्ण करता है। हे सोम! तू **पूषा इव**=सबके पोषक इस सूर्य की तरह **धीजवनः असि**=कर्मों को प्रेरित करनेवाला है (धी=कर्म) जैसे सूर्य सब को कर्मों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है, उसी प्रकार यह सोम हमें स्फूर्तिमय बनाता है।

भावार्थ—सोम इष्ट लक्ष्य स्थान पर हमें पहुँचाता है, रोगादि को शान्त करता है, सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराता है और स्फूर्ति को देकर कर्मों में प्रेरित करता है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

महाकर्माणि चक्रिः दस्यो हन्ता

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥

इन्द्रः न=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभु की तरह **यः**=जो तू **महाकर्माणि**=महान् कर्मों को **चक्रिः**=करनेवाला है वह तू **वृत्राणाम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं का **हन्ता**=विनाश करनेवाला है। हे सोम! तू **पूर्भित् असि**=असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाला है। 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों की पुरियों का विदारण करके तू हमें सशक्त शरीरवाला, निर्मल हृदयवाला तथा परिशुद्ध बुद्धिवाला बनाता है। **पैद्वः न**=निरन्तर गतिशील अश्व की तरह हे सोम! **त्वम्**=तू **हि**=निश्चय से **आहेनाम्नाम्**=अहि नामवाले शत्रुओं का **हन्ता असि**=विनाशक है। इन अहि (वृत्र) नाम का ही नहीं, अपितु **विश्वस्य दस्योः**=सब विनाशक शत्रुओं का तू हन्ता असि=नाश करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्रभु की तरह महान् कार्यों को करनेवाला बनाता है, और वासनाओं को नष्ट करता है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

वासना विनाश व प्रकाश

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥

यः=जो सोम **वने**=वन में **आसृज्यमानः**=उत्पन्न किये जाते हुए **अग्नि न**=अग्नि की तरह **वृथा**=अनायास ही **नदीषु**=स्तोताओं में **पाजांसि**=बलों को **कृणुते**=करता है। अग्नि जैसे उस

वन में सब झाड़ी-झंकाड़ों को भस्म कर देता है उसी प्रकार यह सोम इन स्तोताओं के जीवन में सब वासनाओं व रोगों को भस्म करनेवाला होता है। **युध्वा**=योद्धा **जनः न**=मनुष्य के समान यह सोम **महतः उपब्दिः**=महान् शत्रुओं को भी रुलानेवाला होता है (शब्दयिता सा०) इस प्रकार काम-क्रोध आदि शत्रुओं को समाप्त करके ये **पवमानः**=पवित्र करनेवाला **सोमः**=सोम **ऊर्मिम्**=प्रकाश की किरणों को **इयर्ति**=प्रेरित करता है। (ऊर्मि light)।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर वासना वन का विनाश करके जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

ऋषिः-**उशनाः**॥ देवता-**पवमानः सोमः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

दिव्य कोश

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन्॥ ६॥

एते सोमाः=ये सोम **अभ्रवर्षाः**=मेघों से वृष्ट होनेवाले **दिव्याः कोशासः**=दिव्य कोशों के समान हैं। बादलों से वृष्ट होनेवाले जलों के समान अतिशयेन हितकर हैं। ये **अव्या**=रक्षण सम्बन्धी **वाराणि**=रोगनिवारण आदि कर्मों को **अति**=अतिशयेन करते हैं (अति कुर्षन्ति, उपसर्गस्तु तैर्योग्य क्रियाध्याहारः)। मेघबल के समान ये सोम दिव्य सम्पत्ति हैं। ये हमें नीरोग निर्मल व तीव्र बुद्धि बनानेवाले हैं। **न**=जैसे **नीचीः**=निम्न प्रवाहवाली **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र को **वृथा**=अनायास प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए ये सोम **कलशान् अभि**=सोलह कलाओं के आधारभूत इन शरीरों को लक्ष्य करके **असृग्रन्**=उत्पन्न किये जाते हैं। ये शरीर में प्रविष्ट होकर उसे सोलह कला सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—सोम दिव्य कोश हैं। ये शरीरों को सोलह कला सम्पन्न बनाते हैं।

ऋषिः-**उशनाः**॥ देवता-**पवमानः सोमः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

शुष्मी-अनभिशस्ता-सुमति-पृतनाषाद्

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट्।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः॥ ७॥

हे सोम! **शुष्मी**=शत्रु शोषक बलवाला तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। तू **मारुतं शर्धः न**=प्राणों के बल के समान हमें प्राप्त हो। यह सोम क्या है? यह तो प्राणों का बल है। यह सोम तो **अनभिशस्ता**=आनन्दित **दिव्या विट् यथा**=दिव्य प्रजा के समान है। वस्तुतः सोम ही प्राणों के बल को प्राप्त कराता है और यह सोम ही हमारे जीवन को आनन्दित व दिव्य बनाता है। **आपो न**=जलों के समान तू **नः**=हमारे लिये **सुमतिः भव**=कल्याणी मतिवाला हो। जल शरीर के सब रोगों को दूर करके स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का कारण बनते हैं, इसी प्रकार सोम तीव्र बुद्धि के जनक हैं, वस्तुतः ये ही ज्ञानाग्नि के ईंधन हैं। **सहस्राप्साः**=यह सोम (सहस्) आनन्दमय रूप को प्राप्त करानेवाला है। **पृतनाषाण् न**=शत्रु सैन्य के पराभव करनेवाले के समान यह **यज्ञः**=संगतिकरण योग्य है। सोम का हम शरीर में संगतिकरण करेंगे, तो यह हमारे सब शत्रुओं का पराभव करनेवाला होगा, हमें नीरोग-निर्मल व तीव्र बुद्धिवाला बनायेगा।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें बलवान् बनाता है, हमारे जीवन को आनन्दित करता है, सुमति को देता है और हमारे रोग वासना रूप शत्रुओं का पराभव करता है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'ज्ञानशक्ति पवित्रता व उन्नति' का साधक सोम

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम॥ ८ ॥

हे सोम! **नु**=अब **ते**=तेरे **व्रतानि**=कर्म **राज्ञः वरुणस्य**=राजा वरुण के हैं। वरुण 'प्रचेताः' है, तू भी हमें प्रकृष्ट चेतनावाला बनाता है। यह वरुण 'पाशी' है, तू भी हमारे शत्रुओं को जकड़नेवाला है। हे सोम! **तव धाम**=तेरा तेज **बृहद् गभीरम्**=वृद्धि का कारणभूत व गम्भीर है। सोम की शक्ति शरीर में खूब गहराई तक प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ बनाती है। हे सोम! **त्वं**=तू **प्रियः मित्रः न**=प्रिय मित्र के समान **शुचिः असि**=पवित्र है। हमारे जीवन को सोम पवित्र बनाता है, इस प्रकार यह हमारा हितचिंतक मित्र है। हे सोम! तू **अर्यमा इव**=जितेन्द्रिय पुरुष की तरह **दक्षाय्यः**=(दक्ष to grow) शत्रुओं का हिंसक है और इस प्रकार हमें उन्नत करनेवाला है।

भावार्थ—सोम 'ज्ञान-शक्ति-पवित्रता व शत्रु संहार शक्ति' को देनेवाला है। सम्पूर्ण उन्नति का साधक यह सोम ही है।

अगला सूक्त भी 'उशना' ऋषि का ही है—

[८९] एकोननवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सोमरक्षण के साधन 'स्वाध्याय व ध्यान'

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः॥ १ ॥

स्यः=वह **वह्निः**=(वह प्रापणे) हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाला सोम **पथ्याभिः**=हितकर यज्ञमार्गों से **प्र उ अस्यान्**=(प्रस्यन्दते) गतिवाला होता है। सोमरक्षण से हमारी वृत्ति यज्ञिय बनती है और हम आगे और आगे बढ़ते हुए प्रभु रूप लक्ष्य स्थान पर पहुँचनेवाले होते हैं। यह **पवमानः**=पवित्र करनेवाला सोम **दिवः वृष्टिः न**=आकाश से होनेवाली वृष्टि के समान है। यह **अक्षाः**=शरीर में व्याप्त होता है और वृष्टि के समान शरीर को शुद्ध कर डालता है। **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करता हुआ यह **अस्मे**=हमारे में **न्यसदत्**=निषण्ण होता है। यह सोम **मातु उपस्थे**=वेदमाता की गोद में, ज्ञान की उपासना में और **वने**=उपासना करनेवाले में **आ (सीदति)**=सर्वथा स्थित होता है। अर्थात् सोमरक्षण का साधन यही है कि हम ज्ञान प्राप्ति में लगे रहें और प्रभु की उपासना की वृत्तिवाले बनें।

भावार्थ—स्वाध्याय व ध्यान से सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाता है, यह हमारे जीवनों को पवित्र करता है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

ऋतस्य नावम् अरुहत्

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम्॥ २ ॥

द्रप्सः (दृपी हर्षणे:)=आनन्द का कारणभूत यह सोम **सिन्धूनां राजा**=ज्ञान प्रवाहों का दीप्त करनेवाला है, **वासः अवसिष**=ज्ञानवस्त्र का धारण करानेवाला है। यह सोम ही **रजिष्ठाम्** ऋजुतम=सरलता से युक्त **ऋतस्य नावम्**=यज्ञ की नाव का **अरुहत्**=आरोहण करता है। यह हमारे जीवन को सत्यमय सरल बनाता हुआ यज्ञिय बनाता है। यह सोम **अप्सु**=कर्मों में **वावृधे**=वृद्धि को प्राप्त करता है, अर्थात् कर्मशीलता इसके रक्षण का साधन बनता है। **श्येनजूतः**=शंसनीय गतिवाले से यह शरीर में प्रेरित होता है। अर्थात् उत्तम कर्मों में लगे रहना ही शरीर में सोम को व्याप्त करने का साधन है। ईम्=इस सोम को **पिता**=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाला व्यक्ति **ईम्**=ही **दुहे**=अपने में प्रपूरित करता है। **पितुः जाम्**=सर्वरक्षक पिता प्रभु के प्रादुर्भाव करनेवाले, प्रभु साक्षात्कार के कारणभूत इस सोम को पिता=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाला ही ईम्=निश्चय से दुहे=अपने में प्रपूरित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञानदीप्ति को प्राप्त कराता है। हमें यज्ञिय वृत्तिवाला बनाता है। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम कर्मों में लगे रहकर वासनाओं से अपने को आक्रान्त न होने दें।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सिंहं' सोम

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा॥ ३॥

सिंहम्=शत्रुओं के नाशक, **मध्वः अयासम्**=माधुर्य के प्रेरक, **हरिम्**=मलों का परिहार करनेवाले, **अरुषम्**=(अ-रुष) क्रोधशून्य, **अस्य दिवः**=इस ज्ञान के **पतिम्**=रक्षक सोम को **नसन्त**=शरीर में व्याप्त करते हैं। यह सोम **युत्सु**=संग्रामों में प्रथमः **शूरः**=मुख्य वीर योद्धा हो। **गाः पृच्छते**=यह ज्ञान की वाणियों को जानना चाहता है। सोमरक्षण से बुद्धि की तीव्रता होकर वेदवाणियों के तत्त्व को हम समझने लगते हैं। **अस्य चक्षसा**=इस सोमरक्षण से उत्पन्न ज्ञान के द्वारा ही **उक्षा**=सोम का अपने अन्दर सेचन करनेवाला पुरुष **परिपाति**=अपना सर्वतः रक्षण करता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को नीरोग वासनाशून्य व दीप्त बनाता है। यह सर्वमहान् योद्धा है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

स्वसारः-जामयः-सनाभयः

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम्।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति॥ ४॥

स्वसारः (स्व+सृ)=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले व्यक्ति **उरुचक्रे**=विशाल चक्रवाले **रथे**=इस शरीररथ में, अर्थात् खूब क्रियाशील इस शरीररथ में, इस सोम को **युञ्जन्ति**=युक्त करते हैं, सोम को शरीर में ही सुरक्षित करते हैं। उस सोम को, जो **मधुपृष्ठम्**=माधुर्य का आधार है, **घोरम्**=शत्रुओं के लिये, रोगों व वासनाओं के लिये भयंकर है, **अयासम्**=हमें निरन्तर क्रियाओं में प्रेरित करनेवाला है, **अश्वं**=कार्यमार्गों को शीघ्रता से व्यापनेवाला है और **ऋष्वं**=महान् व दर्शनीय है। इस सोम को **ईम्**=निश्चय से **जामयः**=अपने में सद्गुणों को विकास करनेवाले व्यक्ति

मर्जयन्ति=शुद्ध करते हैं। **सनाभयः**=(सह, नह बन्धने) अपने को प्रभु के साथ जोड़नेवाले व 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' यज्ञशील व्यक्ति **वाजिनम्**=इस शक्तिशाली सोम को **ऊर्जयन्ति**=अपने में बल व प्राणशक्ति का संचार करनेवाला करते हैं। सोमरक्षण से अपने जीवन को बलवान् बनाते हैं।

भावार्थ—आत्मतत्त्व की ओर चलना सद्गुणों को अपने में उत्पन्न करना व यज्ञशील बनना ही सोमरक्षण का साधन है, सुरक्षित सोम हमें सबल बनाता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण व वेदज्ञान

चत॑स्र ईं घृ॒त॒दुहः॑ सचन्ते समा॒ने अ॒न्तर्ध॒रुणे॒ निष॑त्ताः।
ता ईं॑मर्षन्ति॒ नम॑सा पुना॒नास्ता ईं॑ वि॒श्वतः॒ परि॑ षन्ति पू॒र्वीः॥ ५॥

प्रभु सब के समान रूप से धारण करनेवाले हैं, सो वे 'समान धरुण' कहे गये हैं। वेदवाणियों का आधार भी वे प्रभु हैं। उस **समाने धरुणे अन्तः**=उस सब के आधारभूत प्रभु में **निषत्ताः**=स्थित **चतस्र**=चारों **घृतदुहः**=ज्ञानदीप्ति का दोहन करनेवाली वेदवाणियाँ **ईम्**=निश्चय से **सचन्ते**=इस सोम के साथ समवेत होती हैं। अर्थात् सोमरक्षण के होने पर ज्ञान की वाणियाँ प्राप्त होती हैं। **ताः**=वे वेदवाणियाँ **ईम्**=निश्चय से **नमसा**=नम्रता से **पुनानाः**=पवित्र करती हुई **अर्षन्ति**=प्राप्त होती हैं। सोमरक्षण के होने पर वेदवाणियाँ प्राप्त होती हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ हमें नम्र बनाती हैं और हमें पवित्र करती हैं। **ताः**=वे **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली अथवा हमारा पालन व पूरण करनेवाली वेदवाणियाँ **ईम्**=निश्चय से **विश्वतः**=सब प्रकार से **परिषन्ति**=(To conquer) इसके जीवन में वासनाओं को परिभूत करती हैं और ये वेदवाणियाँ ही (To guide, govern) इसके जीवन का शासन करती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारे जीवन में वेदवाणियाँ उपस्थित होती हैं, उनके अनुसार ही हमारा जीवन चलता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'मस्तिष्क शरीर व इन्द्रियों' का धारक सोम

वि॒ष्ट॒म्भो दि॒वो ध॒रुणः॑ पृथि॒व्या विश्वा॑ उ॒त क्षि॒तयो॒ हस्ते॑ अस्य।
अस॑त्त॒ उत्सो॑ गृण॒ते नि॒युत्वा॒न्मध्वो॑ अं॒शुः प॑वत इ॒न्द्रि॒याय॥ ६॥

यह सोम **दिवः विष्टम्भः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक का विशेषरूप से धारण करनेवाला है। **पृथिव्याः धरुणः**=शरीर रूप पृथिवी का धारक है। मस्तिष्क व शरीर दोनों का आधार पर सोम ही है। **विश्वः क्षितयः**=सब भूमियाँ, अर्थात् 'अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय' सभी कोश **उत**=निश्चय से **अस्य हस्ते**=इसी के हाथ में हैं। सोम ही इनको उस-उस ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला है। **उत्सः** (उत्सरभि सर्वे कामाः अस्मात् सा०)=सब वरणीय वस्तुओं का स्रोतभूत यह सोम **गृणते**=स्तुति करनेवाले **ते**=तेरे लिये **नियत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला **असत्**=होता है। सोम के द्वारा ही ये इन्द्रियाश्व शक्तिशाली बनते हैं। यह **मध्वः अंशुः**=माधुर्ययुक्त प्रकाश की किरण ही है। सोम जीवन को मधुर व प्रकाशमय बनाता है। यह **इन्द्रियाय पवते**=(इन्द्रियं वीर्यं) शक्ति के लिये प्राप्त होता है। सब अंग-प्रत्यंगों को यह शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क शरीर व इन्द्रियों का धारण करता है।

ऋषिः—**उशनाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देववीति का साधक सोम

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ ७॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **अवातः**=शरीर से बाहिर न प्रेरित हुआ-हुआ और **वन्वन्**=सब रोगकृमियों का (To hurt, injure) संहार करता हुआ **देववीतिम् अभि**=दिव्यगुणों की प्राप्ति की ओर चलता हुआ **वृत्रहा**=सब वासनाओं का विनष्ट करनेवाला तू **इन्द्राय पवस्व**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त हो तू **महः**=महान् **पुरुश्चन्द्रस्य**=बहुतों के आह्लादक **रायः**=धन का **शग्धि**=हमारे लिये प्रदान कर। तेरे रक्षण के द्वारा हम ऐसे धन को प्राप्त करनेवाले बनें। इस जीवन में हम **सुवीर्यस्य**=उत्तम वीर्य के **पतयः**=रक्षक व स्वामी **स्याम**=हों।

भावार्थ—सोम रक्षित होने पर हमें दिव्यगुणों को प्राप्त कराता है, उत्तम धन की प्राप्ति करानेवाला होता है और हमें शक्तिशाली बनाता है।

दिव्यगुणों, उत्तम धनों व वीर्य को प्राप्त करके हम उत्तम जीवनवाले 'वसिष्ठ' बनते हैं। वसिष्ठ सोम का शंसन करते हुए कहते हैं—

[९०] नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वाज व वसु' का प्रदाता सोम

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः॥ १॥

प्र हन्विानः=प्राणसाधना आदि के द्वारा प्रकर्षेण शरीर में प्रेरित किया जाता हुआ यह सोम **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का **जनिता**=प्रादुर्भाव करनेवाला है। मस्तिष्क को यह दीप्त बनाता है और शरीर को दृढ़ करता है। **रथः न**=जीवनयात्रा के लिये यह रथ के समान है। **वाजं सनिष्यन्**=शक्ति को देता हुआ यह **अयासीत्**=हमें प्राप्त होता है। **इन्द्रं गच्छन्**=जितेन्द्रिय पुरुष को प्राप्त होता हुआ **आयुधा संशिशानः**='इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप जीवन संग्राम के अस्त्रों को तीव्र करता हुआ यह सोम हमारे लिये **विश्वा वसु**=सब धनों को **हस्तयोः आदधानः**=हाथों में धारण किये हुए है। सोमरक्षण से ही अन्नमय आदि सब कोशों का धान प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोम सब शक्तियों व वसुओं का प्रदाता है।

ऋषिः—**उशनाः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'त्रिपृष्ठ-वृषा-वयोधा' सोम

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥ २॥

आङ्गूषाणाम्=(आघोजतां सा०) स्तोताओं को **वाणीः**=वाणियाँ **त्रिपृष्ठम्**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों के आधारभूत, **वृषणम्**=शक्तिशाली, **वयोधाम्**=उत्कृष्ट आयुष्य को धारण करनेवाले सोम का अभिलक्ष्य करके **अवावशन्त**=स्तवन करती हैं। शरीर में सब महिमा वस्तुतः इस सोम की ही है। **वना वसानः**=ज्ञान की रश्मियों का आच्छादित करता हुआ,

ज्ञानरश्मियों के वस्त्रों का ओढ़ाता हुआ **वरुणः न**=सब द्वेषों के निवारण करनेवाले के समान यह सोम **सिन्धून्** (वसानः)=ज्ञान समुद्रों को धारण कराता हुआ **रत्नधाः**=सब रमणीय वस्तुओं का धारण करनेवाला है। यह सोम **वार्याणि विदयते**=सब वरणीय वस्तुओं को हमारे लिये देता है।

भावार्थ—शरीर, मन व बुद्धि का धारक यह सोम हमें शक्तिशाली व उत्कृष्ट जीवनवाला बनाता है। यह ज्ञानरश्मियों को धारण कराता हुआ सब रमणीय वस्तुओं को देता है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अषाढः साह्वान्' सोमः

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून्॥ ३॥

धनानि सनिता=सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्यों का दाता सोम! तू **पवस्व**=हमें प्राप्त है। तू **शूरग्रामः**=शूर समूहोंवाला हो, 'पञ्चप्राण, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ' आदि सब समूह इस सोम के द्वारा शूर बनते हैं। **सर्ववीरः**=सब को वीर बनानेवाला यह सोम है। **सहावान्**=बलवाला **जेता**=सदा विजयी है। **तिग्मायुधः**='इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप आयुधों को तेज बनानेवाला है। **क्षिप्रधन्वा**=शत्रुओं को सुदूर प्रेरित करनेवाले 'प्रणव' रूप धनुषवाला है। सोमरक्षक पुरुष प्रभु को ही अपना धनुष बनाता है और काम-क्रोध आदि शत्रुओं को परे फेंकता है। **समत्सु**=संग्रामों में **अषाढः**=शत्रुओं से पराभूत नहीं होता, **प्रतनासु**=शत्रु सैन्यों में **शत्रून्**=शत्रुओं को **साह्वान्**=पराभूत करनेवाला है।

भावार्थ—सोम हमें वीर बनाता है। सब शत्रुओं का पराभव करता हुआ यह सदा अपराजित है।

ऋषिः—**उशनाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

समीचीने पुरन्धी

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान्॥ ४॥

हे सोम! **उरुगव्यूतिः**=विशाल मार्गवाला, अर्थात् हमें विशालता की ओर ले चलनेवाला तू **अभयानि कृण्वन्**=निर्भयता को करता हुआ **समीचीने**=साथ-साथ गतिवाले **पुरन्धी**=उत्तम धारक द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आपवस्व**=प्राप्त कराता। सोमरक्षण द्वारा हमारा मस्तिष्क व शरीर उत्तम बने। ये दोनों साथ-साथ विकसित शक्तिवाले हों। **अपः**=उत्तम कर्मों के **सिषासन्**=सेवन की इच्छावाला होता हुआ तू **उषसः**=(उष दाहे) दोष दहनों को, **स्वः**=प्रकाश को **गाः**=ज्ञान की वाणियों को और **महः वाजान्**=महनीय बलों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **संचिक्रदः**=आहूत कर, इन बातों को हमारे लिये प्राप्त करानेवाला हो। सोमरक्षण से हम उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, हमारे दोष दग्ध होते हैं, प्रकाश प्राप्त होता है, ज्ञान की वाणियों व शक्तियों का लाभ होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से मस्तिष्क व शरीर का साथ-साथ विकास होता है। उत्तम कर्म ज्ञान व शक्ति प्राप्त होती है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सर्वदेवमय जीवन

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम्।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय॥ ५ ॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **वरुणम्**=द्वेष निवारण करनेवाले को **मत्सि**=आनन्दित कर। सोमरक्षण से ही मनुष्य द्वेष की वृत्ति से ऊपर उठता है और आनन्दित होता है। **मित्रं मत्सि**=तू सब के साथ स्नेह करनेवाले को आनन्दित करता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय शक्तिशाली को व **विष्णुम्**=व्यापक-उदार-मनोवृत्तिवाले को **मत्सि**=आनन्दित करता है। तू **मारुतं शर्धः**=प्राणों के बल को **मत्सि**=आनन्दित करता है। **देवान्**=सब देवों को **मत्सि**=आनन्दित करता है। सुरक्षित सोम प्राणों के बल व दिव्यगुणों की वृद्धि का कारण बनता है। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम **महां इन्द्रम्**=इस पूजा की वृत्तिवाले जितेन्द्रिय पुरुष को तू **मदाय**=आनन्दित करने के लिये होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन सर्वदेवमय बनता है।

ऋषिः—उशनाः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

राजा इव

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभि सदा नः॥ ६ ॥

हे सोम! **एवा**=(इ गतौ) अपनी गतिशीलता से **राजा इव**=राजा की तरह **क्रतुमान्**=शक्ति व कर्मोंवाला तू **अमेन**=अपने बल से **विश्वा दुरिता**=सब दुरितों को, पापों को **घनिघ्नत्**=विनष्ट करता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो। सोम शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला होकर उन सब अंगों को दुरित शून्य करके हमारे जीवन को सुन्दर बनाता है। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू हमें **सूक्ताय वचसे**=मधुर भाषण के लिये **वयः धाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाला हो। सोमरक्षण से मनुष्य सदा शुभ शब्दों को बोलने की वृत्तिवाला बनता है, यह आपे को खोकर नहीं बोलने लगता। हे सोमकणो! **यूयम्**=तुम **स्वस्तिभिः**=उत्तम स्थितियों के द्वारा **सदा**=हमेशा **न पात**=हमारा रक्षण करो।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन को इस प्रकार परिशुद्ध बनाता है, जैसे कि एक राजा राष्ट्र को। यह परिशुद्ध जीवनवाला व्यक्ति तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी बनता है। यह 'कश्यप' नामवाला होता है—पश्यक=द्रष्टा। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

[९१] एकनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सदनानि अच्छ (ब्रह्मलोक की ओर)

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ॥ १ ॥

वक्वा=यह स्तुति करनेवाला हमें, स्तुति की वृत्तिवाला बनानेवाला सोम **यथा रथ्ये आजौ**=जैसे उत्तम रथ के योग्य संग्राम में अश्व उसी प्रकार **असर्जि**=उत्पन्न किया जाता है। सोम की जीवन

संग्राम में विजय का एक मात्र आधार है। यह **धिया मनोता**=बुद्धि से बड़ा मनन करनेवाला और अतएव **प्रथमः**=सर्वमुख्य **मनीषी**=बुद्धिमान् होता है। **दश**=दस **स्वसारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली इन्द्रियाँ **अव्ये**=अपना रक्षण करनेवालों में उत्तम पुरुष में **सदनानि अच्छ वह्निम्**=इस मूलगृहों की ओर ब्रह्मलोक की ओर ले जानेवाले सोम को **अधि सानो**=शिखर पर मस्तिष्क रूप द्युलोक की ओर **अजन्ति**=प्रेरित करती हैं। जब सोम की गति मस्तिष्क रूप द्युलोक की ओर होती है तभी यह हमें ब्रह्मलोक रूप की ओर ले जाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें बुद्धि सम्पन्न बनाता है। जब सोम की गति मस्तिष्क रूप द्युलोक की ओर होती है, तो यह हमें ब्रह्मलोक को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दिव्यजन का प्रजनन

वीतो जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः॥ २॥

दिव्यस्य जनस्य=दिव्यगुण युक्त मनुष्यों के **वीती**=(प्रजनन) विकास के लिये **कव्यैः**=स्तुतिशील **नहुष्येभिः**=मनुष्यों से **अधि सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ यह **इन्दुः**=सोम है। प्रभु का सवन करनेवाले लोग इस सोम को अपने अन्दर उत्पन्न करते हैं, और इसके रक्षण के द्वारा वे एक 'दिव्यजन' का विकास करते हैं, अर्थात् अपने जीवन को दिव्य बना पाते हैं। **यः**=जो सोम **मर्त्येभिः**=मनुष्यों से **प्र मर्मृजानः**=खूब शुद्ध किया जाता हुआ, वासना के उबाल से रहित किया हुआ **अमृतः**=अमृतत्त्व का कारण बनता है। यह सोम **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले पुरुषों से तथा **अविभिः**=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाले पुरुषों से **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा तथा **अद्भिः**=कर्मों के द्वारा (अप=कर्म) शुद्ध किया जाता है। सोम को रक्षित करने के लिये आवश्यक है कि हम प्रगतिशील बनें (नृभिः), वासनाओं से अपना रक्षण करें (अविभिः), ज्ञान की वाणियों को अपनायें (गोभिः) सदा उत्तम कर्मों में लगे रहें (अद्भिः)।

भावार्थ—स्तोता लोग सोम का शरीर में रक्षण करके जीवन को दिव्य बनाते हैं। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम स्वाध्याय व यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहें।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ऋक्वा, वचोवित्, सूरः' सोमः

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति॥ ३॥

वृषा=शक्तिशाली **अंशुः**=प्रकाश की किरणों को प्राप्त करानेवाला सोम **वृष्णे**=अपने अन्दर सोम का सेचन करनेवाले के लिये **रोरुवत्**=खूब ही प्रभु का स्तवन करता है, अर्थात् अपने रक्षक को यह प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। **अस्मै**=इस पुरुष के लिये **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **गोः**=वेदवाणीरूप गौ के **रुशत्**=देदीप्यमान **पयः**=ज्ञानदुग्ध को **ईर्ते**=प्राप्त कराता है। एवं सुरक्षित सोम हृदय में प्रभु स्तवन की वृत्ति को तथा मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति को प्राप्त कराता है। यह **ऋक्वा**=स्तुति करनेवाला सोम **वचोवित्**=ज्ञान वाणियों को जाननेवाला होता है, **सूरः**=यह हमें कर्मों में प्रेरित करता है और **अध्वस्मभिः**=ध्वंस व हिंसन से रहित **सहस्रं पथिभिः**=हजारों मार्गों से **अण्वं वियाति**=उस 'अणोरणीयान्' सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभु की ओर विशेषरूप से जानेवाला

होता है। हिंसनरहित कार्यों में हमें प्रेरित करता हुआ सोम प्रभु की ओर ले जानेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें स्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। हमें ज्ञानदीप्त करता है और उत्तम मार्गों से ले चलता हुआ शुभ दर्शन कराता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'रक्षः सदो-विनाश'

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान्।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम्॥ ४॥

हे **इन्दो**=सोम! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **रक्षसः**=राक्षसों की, राक्षसीभावों की **दृढाचित्**=बड़ी दृढ़ भी **सदांसि**=नगरियों को आवास स्थानों को **रुजः**=छिन्न-भिन्न कर। काम ने इन्द्रियों में, क्रोध ने मन में तथा लोभ ने बुद्धि में जो किले बनाये हैं, उन्हें तू तोड़नेवाला बन। हे सोम! **वाजान्**=हमारे बलों को **वि ऊर्णुहि**=सम्यक् आच्छादित रख। ये बल शत्रुओं से विनष्ट न कर दिये जायें। **ये**=जो भी शत्रु **उपरिष्टात्**=ऊपर से **ये अन्ति**=जो समीपदेश से **दूरात्**=दूर से हमारे पर आक्रमण करते हैं, उन्हें **वृश्च**=काट डाल। **एषाम्**=इन शत्रुओं के **उपनायम्**=नेता को **तुजतावधेन**=हिंसक आयुध से विनष्ट कर काम-क्रोध आदि शत्रुओं का मुखिया यह काम ही है, इस काम को तू विनष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब राक्षसीभावों का विनाश होकर हमारे बलों का रक्षण होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पुरुकृत् पुरुक्षो!

य प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो॥ ५॥

हे **विश्ववारः**=सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले सोम! **सः**=वह तू **प्रत्नवत्**=सदा की तरह, पहले की तरह **नव्यसे**=(नु स्तुतौ) उत्तम स्तुति करनेवाले **सूक्ताय**=मधुर शब्दों को बोलनेवाले मेरे लिये **पथः**=मार्गों को **प्राचः कृणुहि**=अग्रगतिवाला कर। मैं तेरे रक्षण से सदा उन्नति के मार्गों पर आगे बढ़नेवाला बनूँ। हे **पुरुकृत्**=पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले, **पुरुक्षो**=पालक व पूरक शब्दों (ज्ञानों) वाले सोम! **ये**=जो **ते**=तेरे **दुःषहासः**=शत्रुओं से न सहने योग्य **वनुषा**=शत्रु संहार द्वारा **बृहन्तः**=वृद्धि के कारणभूत अंश है **तान्**=उनको हम **अश्याम**=प्राप्त हों। सोम के अंश व कण हमारे शरीर में सर्वत्र व्याप्त हों, इनके द्वारा हम शत्रुओं का संहार करके मार्ग पर आगे बढ़ें।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम उन्नतिपथ पर आगे बढ़ेंगे। इससे शत्रुओं को विनष्ट करके उत्तम कर्मों को करेंगे तथा उत्तम ज्ञान को प्राप्त करेंगे। यह सोम 'पुरुकृत् व पुरुक्षु' तो है ही।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अपः स्वः गाः

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ् नः सूर्यं दृशये रिरीहि॥ ६॥

हे सोम! **एवा**=गतिशीलता के द्वारा **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **अस्मभ्यम्**=हमारे

लिये **अपः**=उत्तम कर्मों को, **स्वः**=प्रकाश को तथा **गाः**=ज्ञान वाणियों को, **तोका**=उत्तम पुत्रों को **तनयानि**=पौत्रों को **भूरि**=खूब ही **रिरीहि**=दे। सोमरक्षण से ही शक्ति के द्वारा क्रियाशीलता व ज्ञान की वाणियों के द्वारा प्रकाश की प्राप्ति का सम्भव होता है। यह सोमरक्षण ही हमें उत्तम सन्तानों की प्राप्ति कराता है। हे सोम! वीर्यशक्ते! **नः**=हमारे लिये **क्षेत्रम्**=इस शरीर रूप क्षेत्र को **शम्**=शान्तिवाला, रोगादि के उपद्रव से शून्य कर। उस **ज्योतींषि**=विशाल ज्योतियों को प्राप्त करा तथा **नः**=हमारे लिये **सूर्यं**=सूर्य को **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **दृशये**=देखने के लिये **रिरीहि**=दे। दीर्घकाल तक हम सूर्य को देखनेवाले बनें, दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'शक्ति ज्ञान, उत्तम सन्तान व दीर्घ जीवन' को देनेवाला होता है।

अगला सूक्त भी 'कश्यप' का ही है—

[९२] द्विनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

श्लोकम्-इन्द्रियम् (आपत्)

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः॥ १॥

सुवानः=उत्पन्न किया जाता हुआ तथा **परिहियानः**=शरीर में चारों ओर प्रेरित किया जाता हुआ यह **हरिः**=सर्वदुःखहर्ता **अंशुः**=सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **सनये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **रथः न**=रथ के समान **सर्जि**=उत्पन्न किया जाता है। जैसे रथ युद्ध में विजय का कारण होता है, उसी प्रकार यह सोम शरीर में विजय का साधन बनता है। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ वासनाओं से मलिन न होता हुआ यह सोम **श्लोकम्**=प्रभुस्तवन को तथा **इन्द्रियम्**=बल को **आपत्**=प्राप्त होता है। शरीर में सुरक्षित होने पर यह हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला तथा बल सम्पन्न बनाता है। यह सोम **प्रयोभिः**=प्रकृष्ट बलों के साथ (प्रयस्) **देवान् प्रति अजुषत**=दिव्य गुणों के प्रति प्रीतिवाला बनाता है। अर्थात् यह सोम हमें प्रयत्नशील व दिव्य वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम विजय प्राप्ति का साधन होता है। यह हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला शक्तिशाली बनाता है। इस से हम क्रियाशील व दिव्य गुण सम्पन्न बन पाते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ऋषयः सप्त विप्राः

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ।
सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः॥ २॥

नृचक्षाः=मनुष्यों का ध्यान करनेवाला यह सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदयवाले पुरुष में **नाम दधानः**=प्रभु के नाम का धारण करता हुआ **अच्छा असरत्**=उस प्रभु की ओर गतिवाला होता है। **कविः**=यह क्रान्तप्रज्ञ सोम हमें सूक्ष्म तत्त्वदर्शी बनानेवाला सोम **अस्य**=इस शरीर के **योनौ**=उत्पत्ति के कारणभूत प्रभु में **सीदन्**=स्थित होता हुआ, अर्थात् प्रभु का स्मरण करता हुआ **चमूषु**=इन शरीरों में इस प्रकार स्थित होता है, **इव**=जैसे कि **होता**=एक यज्ञकर्ता **पुरुष सदने**=यज्ञगृह में स्थित होता है। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर हमारे जीवन में प्रभुस्तवन व यज्ञों का प्रणयन होता है। उस समय **सप्त**=सात 'दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख' रूप सात **ऋषयः**=तत्त्वद्रष्टा **विप्रः**=ज्ञानी **ईम्**=निश्चय से **उप अग्मन्**=समीपता से प्राप्त होते हैं। सोमरक्षण से ये ज्ञानेन्द्रियाँ

स्वकर्मक्षय हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण बनती हैं। ये सचमुच 'ऋषि व विप्र' बन जाती हैं।

भावार्थ—सोम शरीर में सुरक्षित होकर हमें प्रभु स्मरण की वृत्तिवाला बनाकर सदा ब्रह्मनिष्ठ बनाता है। इस सोम से ज्ञानेन्द्रियाँ सशक्त बनकर खूब ही ज्ञानवृद्धि का साधन बनती हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुमेधा गातुवित् विश्वदेव

प्र सु॒मे॒धा गा॑तु॒विद्वि॒श्वदे॑वः॒ सोमः॑ पुना॒नः सद॑ एति॒ नित्य॑म्।
भुव॒द्विश्वे॑षु॒ काव्ये॑षु॒ रन्ता॒नु॒ जना॑न्यतते॒ पञ्च॒ धीरः॑॥ ३॥

यह **सुमेधाः**=उत्तम मेधा को पैदा करनेवाला (शोभना मेधा यस्मात्), **गातुवित्**=मार्ग को जाननेवाला, सदा मार्ग का उपदेश करनेवाला, **विश्वदेवः**=सब दिव्यगुणों को विकसित करनेवाला **सोमः**=सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **नित्यं**=सदा **सदः एति**=अपने घर की ओर आता है, अर्थात् शरीर में ही स्थित होता है। शरीर में स्थित होने पर यह सोम **विश्वेषु काव्येषु**=सब ज्ञानों में **रन्ता**=रमण करनेवाला **भुवत्**=होता है। तथा **धीरः**=बुद्धि को प्रेरित करनेवाला यह सोम **पञ्चजनान्**=पाँच भागों में विभक्त सारे समाज के **अनुयतते**=अनुकूल यत्नवाला होता है। सोम का रक्षण करनेवाला मनुष्य समाज विरोधी क्रियाओंवाला नहीं होता।

भावार्थ—सोम के रक्षित होने पर मनुष्य उत्तम बुद्धिवाला, मार्ग का ज्ञाता, दिव्यगुण सम्पन्न, ज्ञान में रमण करनेवाला, अविरुद्ध क्रियाओंवाला होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सर्वदेवाधिष्ठानता

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एकाद॒शासः॑।
दश॑ स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑ मृ॒जन्ति॑ त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः॥ ४॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **पवमानः**=जीवन को पवित्र बनानेवाले! **तव**=तेरे **निण्ये**=अन्तर्हित होने पर रुधिर में अदृश्य रूप से व्याप्त होने पर **त्ये**=वे **त्रयः एकादशासः**=तीन गुणा ग्यारह, अर्थात् पृथिवीस्थ ग्यारह, अन्तरिक्षस्थ ग्यारह और द्युलोकस्थ ग्यारह, ये तेतीस **विश्वेदेवाः**=सब देव शरीर में स्थित होते हैं। सोमरक्षण के होने पर शरीर में सब देवों की स्थिति होती है। **अव्ये**=अपना रक्षण करनेवाले में उत्तम पुरुष में **दश**=दस इन्द्रियाँ **स्वधाभिः**=आत्मधारण शक्तियों के द्वारा **अधि सानो**=शिखर प्रदेश में, मस्तिष्क रूप द्युलोक में **त्वा मृजन्ति**=तेरा शोधन करती हैं। वासनाओं से अपने को बचानेवाला पुरुष इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में लगाये रखता है और परिणामतः सोम की ऊर्ध्वगति होकर मस्तिष्क रूप द्युलोक में ज्ञानाग्नि का दीपन होता है। इस स्थिति में **सप्त**=सात छन्दों में प्रवाहित होनेवाली और अतएव सात **यह्वीः**=महान् **नद्यः**=ज्ञान की नदियाँ इस सोम को **मृजन्ति**=अतिशयेन शुद्ध कर डालती हैं। वेद चार हैं, सात छन्दों में होने से इन्हें यहाँ सात नदियों के रूप में कहा है। इन सात नदियों में स्नान करने पर सोम भी परिशुद्ध हो जाता है। ज्ञान के द्वारा वासनाओं का भस्मीकरण होकर सोम का शुद्ध होना स्वाभाविक ही है।

भावार्थ—सोम के शरीर में व्याप्त होने पर यह शरीर सर्वदेवाधिष्ठान बनता है। सोम की परिशुद्धि के लिये इन्द्रियों को स्वकार्यतत्पर व ज्ञान प्राप्ति में लगाये रखना आवश्यक है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण व प्रभु प्राप्ति

तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम्॥ ५॥

पवमानस्य=पवित्र करनेवाले सोम का **नु**=अब **तत्**=वह सर्वव्यापक (तनु विस्तारे) **सत्यं**=सत्यस्वरूप प्रभु **अस्तु**=हो, **यत्र**=जिसमें **विश्वे**=सब **कारवः**=स्तोता लोग **संनसन्त**=संगत होते हैं। जिस प्रभु को स्तोता लोग प्राप्त करते हैं, उसे वस्तुतः यह सोम ही उन्हें प्राप्त कराता है। वह परमात्मा इस सोम का होता है, अर्थात् सोमरक्षण से प्राप्त होता है **यत्**=जो **अह्ने**=दिन के लिये **लोकं ज्योतिः**=प्रकाशक ज्योति को **अकृणोत्**=करता है, **मनुं प्रावत्**=ज्ञानशील मनुष्य का रक्षण करता है और इस ज्ञानी मनुष्य को **दस्यवे**=दास्यव वृत्तियों के लिये **अभीके कः**=आक्रमण करनेवाला करता है। इस प्रभु को हम सोमरक्षण के द्वारा ही प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—स्तोताओं को प्राप्त होनेवाला प्रभु वस्तुतः सोमरक्षण के द्वारा ही प्राप्त होता है। ये प्रभु हमारे लिये सूर्य के प्रकाश को करते हैं। ज्ञानी पुरुष का रक्षण करते हैं, और उसे दास्यव वृत्तियों पर आक्रमण करनेवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

होता-राजा-मृगः-महिषः

परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु॥ ६॥

इव=जैसे **होता**=यज्ञशील पुरुष **पशुमान्ति**=गौ आदि पशुओंवाले **सद्म**=गृह को **परि इयानः**=सर्वथा प्राप्त होता है। 'होता' अपने गृह में 'अग्निहोत्री' गौ को रखता ही है, इसी के गोघृत से वह यज्ञादि करता है। **न**=जैसे **सत्यः**=सज्जनों के रक्षण में कुशल राजा **समितीः इयानः**=संग्रामों में गतिवाला होता है। इसी प्रकार **सोमः**=सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **कलशान्**=इन सोलह कलाओं के आधारभूत शरीर को **अयासीत्**=प्राप्त होता है। यह **मृगः न**=(मृग अन्वेषणे) आत्मलोचन करनेवाले के समान **महिषः**=पूजा की वृत्तिवाला सोम **वनेषु**=उपासकों में **सीदन्**=स्थित होता है। यही वस्तुतः हमें उपासना की वृत्तिवाला बनाता है और आत्मान्वेषण की ओर झुकाववाला करता है।

भावार्थ—सोम हमें यज्ञशील, रोगादि से युद्ध करनेवाला, आत्मालोचन व पूजा की वृत्तिवाला बनाता है।

यह व्यक्ति 'नोधा' होता है जो इन्द्रियों को (नव द्वार) वंशीभूत करनेवाला। उनका ठीक से धारण करनेवाला बनता है। यह कहता है—

[९३] त्रिनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**नोधाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अत्यः न वाजी

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी॥ १॥

दश=दस **स्व-सारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली **साकम् उक्षः**=साथ-साथ सोम का अपने में सेचन करनेवाली इन्द्रियाँ **मर्जयन्तः**=इस सोम का शोधन करती हैं। **धीरस्य**=(धिया ईर्ते) बुद्धिपूर्वक गति करनेवाले धीर पुरुष की **धीतयः**=ध्यान वृत्तियाँ **धनुत्रीः**=सोम को शरीर में प्रेरित करनेवाली होती हैं। ध्यान सोम की ऊर्ध्वगति में सहायक होता है। **हरिः**=सब रोगों का हरण करनेवाला यह सोम **सूर्यस्य जाः**=सूर्य के प्रादुर्भावों की ओर **पर्यद्रवत्**=गतिवाला होता है। इस सोम के रक्षण से जीवन में चारों ओर सूर्य का प्रकाश हो जाता है। यह सोम **अत्यः वाजी न**=सततगामी अश्व के समान **द्रोणंननक्षे**=इस शरीर रूप पात्र को प्राप्त होता है। घोड़ा जैसे संग्राम में विजय का साधन बनता है, इसी प्रकार यह सोम यहां विजय का साधन बनता है। सोम ही शरीर को अश्व की तरह क्रियाशील बनाता है।

भावार्थ—आत्मत्त्व की ओर जानेवाली इन्द्रियाँ सोम का शोधन करती हैं। शुद्ध सोम जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

ऋषिः—**नोधाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अद्भिः संदधन्वे, उस्त्रियाभिः संगच्छते

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः॥ २॥

वावशानः=दिव्य गुणों की कामना करता हुआ, **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला, **पुरुवारः**=पालक व पूरक वरणीय वस्तुओंवाला सोम **अद्भिः**=कर्मों के द्वारा इस प्रकार **संदधन्वे**=धारण किया जाता है **न**=जैसे कि **मातृभिः**=माताओं से **शिशुः**=एक सन्तान। निरन्तर कर्मों में लगे रहना ही सोमरक्षण का उपाय है। रक्षित सोम हमारे अन्दर दिव्य गुणों का धारण करता है और हमारे में शक्ति का सेचन करता है। **न**=जैसे **मर्यः**=एक मनुष्य **योषाम् अभि**=स्त्री की ओर जाता है, उसी प्रकार यह सोम **कलशे**=इस शरीर में **निष्कृतं**=परिष्कृत हृदय की ओर **यन्**=जाता हुआ **उस्त्रियाभिः**=प्रकाशों के साथ **संगच्छते**=संगत होता है। सोम के कारण जीवन प्रकाशमय हो उठता है।

भावार्थ—कर्मों में लगे रहने से सोम का धारण होता है और धारित सोम जीवन को प्रकाशमय बना देता है।

ऋषिः—**नोधाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इन्दुः धाराभिः सचते सुमेधाः

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः॥ ३॥

उत=और **इन्दुः**=यह सोम **अघ्न्यायाः**=अहन्तव्य, नित्य स्वाध्याय के योग्य इस वेदवाणी रूप गौ के **ऊधः**=ज्ञानदुग्ध के आधार को **प्रपिप्ये**=आप्यायित करता है। हमारी बुद्धि को यह तीव्र बनाता है और हम उस ऊधस् से अधिकाधिक ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। यह सोम **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धि को देनेवाला होता हुआ **धाराभिः**=अपनी धारण शक्तियों के साथ **सचते**=हमें प्राप्त होता है। उस समय ये **गावः**=वेदवाणी रूप गौवें **पयसा**=अपने ज्ञानदुग्ध के द्वारा **चमुषु**=इन शरीरों में **मूर्धानम्**=मस्तिष्क को **अभिश्रीणन्ति**=चारों ओर से आच्छादित करती हैं। इस प्रकार आच्छादित करती हैं, **न**=जैसे कि **निक्तैः**=शुद्ध **वसुभिः**=वस्त्रों से, ज्ञानवालों से मस्तिष्क को

आच्छादित करती हैं, अर्थात् मस्तिष्क को ज्ञान से परिपूर्ण करती हैं।

भावार्थ—सोम के सुरक्षित होने पर मस्तिष्क ज्ञान की वाणियों से आच्छादित होता है। हमारा जीवन ज्ञानमय बनता है।

ऋषिः—**नोधाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रथिर

स नो॑ दे॒वेभि॑: पवमान र॒देन्दो॑ र॒यिम॒श्विनं॑ वावशा॒नः।
र॒थि॒रा॒यता॑मुश॒ती पुर॑न्धिरस्म॒द्र्य१॒॑गा दा॒वने॒ वसू॑नाम्॥ ४॥

हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **इन्दो**=सोम **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **वावशानः**=हित की कामना करता हुआ **देवेभिः**=दिव्य गुणों के साथ **अश्विनं**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **रयिं**=ऐश्वर्य को **रद**=(प्रपच्छ) दे। सोमरक्षण से हमें वह ऐश्वर्य प्राप्त हो, जो हमारी इन्द्रियों को दूषित करनेवाला न हो तथा दिव्यगुणों से युक्त हो। हे सोम! **रथिरायताम्**=प्रशस्त रथवालों की तरह आचरण करते हुए पुरुषों की **उशती**=हित की कामना करती हुई **पुरन्धिः**=पालक बुद्धि **वसूनां दावने**=उत्तम वसुओं के, धनों के, देने के निमित्त **अस्मद्र्यक्**=हमारे अभिमुख हो। हमें यह 'पुरन्धि' प्राप्त हो, इसके द्वारा हम वसुओं को प्राप्त होनेवाले हों। इन वसुओं के द्वारा हम अपने जीवन को प्रशस्त बना पायें हम रयीश हों 'प्रशस्त शरीर रथ वाले' हों।

भावार्थ—सोम हमें वह ऐश्वर्य व बुद्धि प्राप्त कराये जिससे कि हम प्रशस्त जीवनवाले हों।

ऋषिः—**नोधाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

धियावसु

नू नो॑ र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑ पुना॒नो वा॒ताप्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्रम्।
प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायु॑: प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात्॥ ५॥

हे सोम! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **नः**=हमारे लिये **नू**=निश्चय से **नृवन्तम्**=प्रशस्त मनुष्योंवाले **वाताप्यम्** (वातेन आप्यम्, वा गतौ)=क्रियाशीलता से प्राप्त होनेवाले, **विश्वश्चन्द्रम्**=सबके आह्लादक **रयिम्**=धन को **उपमास्व**=दे। सोमरक्षक काम से उसी धन का अर्जन करते हैं जो सर्वहितकर होता है। हे **इन्दो**=सोम! **वन्दितुः**=प्रभु के स्तोता की **आयुः प्रतारि**=आयु को तू बढ़ानेवाला हो। **प्रातः**=प्रातःकाल ही **मक्षू**=शीघ्र **धियावसुः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों द्वारा वसुओं को प्राप्त करानेवाला यह सोम **जगम्यात्**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम प्रकृष्ट धन को व दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

कण-कण करके बुद्धि का संचय करनेवाला 'कण्व' (मेधावी) अगले सूक्त का ऋषि है। यह सोम के लिये कहता है—

[९४] चतुर्नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'बुद्धि व ज्ञान' का वर्धन

अधि॒ यद॑स्मिन्वा॒जिनी॑व॒ शुभ॒: स्पर्ध॑न्ते॒ धिय॒: सूर्ये॒ न विश॑:।
अ॒पो वृ॑णा॒नः प॑वते कवी॒यन्व्र॒जं न प॑शु॒वर्ध॑नाय॒ मन्म॑॥ १॥

यद्=जब **अस्मिन्**=इस सोम में **धियः**=बुद्धियाँ **अधि स्पर्धन्ते**=स्पर्धावाली होती हैं, 'मैं पहले और मैं पहले' इस प्रकार अहमहनिकया एक दूसरे से पहले प्राप्त होनेवाली होती हैं। **इव**=जिस प्रकार कि **वाजिनीव**=शक्तिशाली घोड़े में **शुभः**=उत्तम रथ स्पर्धावाले होते हैं (शुभ् chariot) और **न**=जैसे **सूर्ये**=सूर्य के विषय में **विशः**=प्रजायें स्पर्धावाली होती हैं कि हमें पहले सूर्य का प्रकाश प्राप्त हो और हमें पहले प्राप्त हो। इसी प्रकार सोम में बुद्धियाँ स्पर्धावाली होती हैं। सोम ही बुद्धियों को दीप्त करनेवाला है। यह **कवीयन्**=हमें क्रान्तप्रज्ञ बनाने की कामनावाला यह सोम **अपः वृणानः**=कर्मों का वरण करता हुआ **मन्म**=ज्ञान को **पवते**=प्राप्त कराता है, **न**=जैसे कि **पशुवर्धनाय**=पशुओं के वर्धन के लिये **व्रजम्**=बाड़े को, एक बाड़े में जैसे पशु सुरक्षित होकर बढ़ते हैं, इसी प्रकार ज्ञान में हमारा वर्धन होता है। यह ज्ञान हमारे कर्मों को पवित्र करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से बुद्धियों का वर्धन होता है, ये बुद्धियाँ हमारे वर्धन का कारण बनती है।

ऋषिः—**कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अमृत का धाम

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम्॥ २॥

द्विता=शरीर व मस्तिष्क दोनों की शक्तियों का विस्तार करनेवाला यह सोम **व्यूर्ण्वन्**=विशेष रूप से हमें आच्छादित करता है, हमें सुरक्षित करता है। यह **अमृतस्यधाम**=नीरोगता का घर है। **स्वर्विदे**=प्रकाश की प्राप्ति के लिये **भुवनानि**=सब लोक **प्रथन्त**=इस सोम का विस्तार करते हैं। सोम शक्ति के विस्तार के अनुपात ही में ज्ञान का विस्तार होता है। **धियः पिन्वानाः**=बुद्धियों का वर्धन करती हुई और **ऋतायन्ती**=ऋत व यज्ञ को प्राप्त करने की कामनावाली प्रजायें **इन्दुम् अभिवावश्रे**=सोम की कामना करती हैं। **न**=जैसे कि **स्वसरे**=गोष्ठ में (सुष्ठ, अस्यन्ते प्रेर्यन्ते गावः अत्र सा०) **गावः**=गौवें **धियः पिन्वानाः**=हमारी बुद्धियों का वर्धन करती हैं, इसी प्रकार शरीर में ये सोम हमारी बुद्धि का वर्धन करते हैं। गोष्ठ में जैसे गौवे हैं, उसी प्रकार शरीर में सोम हैं।

भावार्थ—सोम शरीर व मस्तिष्क दोनों का आच्छादक बनता है। यह अमृत का धाम है।

ऋषिः—**कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

कविः काव्या भरते

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः॥ ३॥

यत्=जब **कविः**=कान्तप्रज्ञ सोम **काव्या**=ज्ञानों को **परिभरते**=हमारे अन्दर धारित करता है, उस समय यह सोम **शूरः**=शत्रुओं के बन्धक **रथः न**=रथ के समान होता है **विश्वा भुवनानि भरते**=सब भुवनों (प्राणियों) का यह भरण करता है। सोम रक्षित होकर हमें तीव्र बुद्धि बनाता है। यह बुद्धि ज्ञान की वर्धक बनती है। हमें यह ज्ञान वासना रूप शत्रुओं के विनाश में सहायक होता है और हमारी सब शक्तियों को ठीक से स्थिर रखता है। यह सोम **देवेषु**=देवों में स्थित **यशः**=यश को **मर्ताय भूषन्**=मनुष्य के लिये भावित करना चाहता है (भाषायितु मिच्छन्)। शरीर में सुरक्षित सोम मनुष्यों को देवों के समान यशस्वी बनाता है। **रायः दक्षाय**=यह

सोम ऐश्वर्यों के वर्धन के लिये होता है और इसीलिये **पुरुभूषु**=पालक व पूरक यज्ञ में यह **नव्यः**=स्तुत्य होता है। यज्ञभूमियों में एकत्रित होने पर सोम का ही संशन होता है। वस्तुतः सोमरक्षण से ही यज्ञिय भावनायें भी उत्पन्न होती हैं।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों में ज्ञान को भरता है। देवों के समान हमें यशस्वी बनाता है और यज्ञस्थलों में यही स्तुत्य होता है।

ऋषिः—**कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

श्री सम्पन्न-जीवन

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ॥ ४॥

यह सोम **श्रिये जातः**=हमारे जीवन में श्री के लिये उत्पन्न हुआ है। **श्रिये**=शोभा के लिये ही **आ**=चारों ओर **निरियाय**=निश्चय से गतिवाला होता है यह सोम **जरितृभ्यः**=स्तोताओं के लिये श्रियम्=शोभा को व **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधाति**=धारण करता है। इस सोम जनित **श्रियम्**=श्री को **वसानाः**=धारण करते हुए लोग **अमृतत्वम्**=अमृतत्व को, नीरोगता को **आयन्**=प्राप्त होते हैं। ये सोम **मितद्रौ**=नपी तुली गतियोंवाले पुरुष में, युक्ताहार विहार पुरुष में **सत्या समिथा**=सत्य (यथार्थ) संग्राम करनेवाले **भवन्ति**=होते हैं। सोम कणों द्वारा रोगकृमियों व वासनाओं पर आक्रमण किया जाता है। इन रोगों व वासनाओं को विनष्ट करके सोम हमारे जीवनों को श्री सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—सोम रोगों व वासनाओं को विनष्ट करते हैं। हमें उत्कृष्ट श्री सम्पन्न जीवन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उरु ज्योतिः

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान्।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून्॥ ५॥

हे सोम! **इषम्**=प्रभु की प्रेरणा को तथा उस प्रेरणा को क्रियान्वित करने के लिये **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **अभ्यर्षः**=प्राप्त करा। **अश्वं**=कर्मेन्द्रियों को, **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करा। **उरु ज्योतिः कृणुहि**=विशाल प्रकाश को तू हमें प्राप्त करा। **देवान् मत्सि**=दिव्य गुणों से युक्त पुरुषों को तू आनन्दित कर। हे **पवमानः**=पवित्र करनेवाले सोम! **तुभ्यम्**=तेरे लिये **विश्वानि हि तानि**=सब ही वे हमारे न चाहते हुए भी अन्दर घुस आनेवाले राक्षसी भाव **सुषहा**=सुगमता से कुचलने योग्य हैं। हे सोम! तू उन **शत्रून्**=शत्रुओं को **बाधसे**=पीड़ित करता है। वस्तुतः सोमरक्षण के होने पर शरीर में रोग ही नहीं, राक्षसीभाव भी समाप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें प्रभु प्रेरणा सुन पड़ती है, उस प्रेरणा को हम क्रियान्वित करने के लिये शक्ति को प्राप्त करते हैं। हमारी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ उत्कृष्ट बनती हैं। विशाल ज्योति को प्राप्त करके हम देव बनते हैं। वासनाओं को कुचल पाते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि 'प्रस्कण्व' हैं, कण्वपुत्र, अर्थात् अत्यन्त मेधावी। यह कहता है—

[९५] पञ्चनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निर्णिजं गाः कृणुते

कनि॑क्रन्ति॒ हरि॒रा सृ॒ज्यमा॑नः॒ सीद॒न्वन॑स्य ज॒ठरे॑ पुना॒नः ।
नृभि॒र्यतः॑ कृणुते नि॒र्णिजं॒ गा अतो॑ म॒तीर्ज॑नयत स्व॒धाभिः॑ ॥ १ ॥

आसृज्यमानः=शरीर में चारों ओर उत्पन्न किया जाता हुआ **हरिः**=दुःखहर्ता सोम **कनिक्रन्ति**=प्रभु के स्तवन के शब्दों का उच्चारण करता है। शरीर में सुरक्षित सोम हमें प्रभुस्तवन की ओर झुकाता है। **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ सोम **वनस्य**=उपासक के **जठरे**=उदर में **सीदन्**=स्थित होता है। अर्थात् वासनाओं के उबाल से शून्य यह सोम उपासक के शरीर में सुरक्षित रहता है। **नृभिः यतः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से संयत किया हुआ सोम **निर्णिजम्**=शोधन व पोषण को तथा **गाः**=ज्ञान की वाणियों को **कृणुते**=करता है। शरीर को यह पुष्ट बनाता है (पोषण), मन को शुद्ध करता है (शोधन) तथा मस्तिष्क को ज्ञान सम्पन्न बनाता है। **अतः**=इस सोम के द्वारा **स्वधाभिः**=आत्मधारणशक्तियों के साथ **मतीः जनयत**=प्रकृष्ट बुद्धियों को उत्पन्न करो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें पुष्ट शरीर वाला, शुद्ध मन वाला तथा ज्ञानदीप्त मस्तिष्क वाला बनाता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**संस्तारपंक्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

देव गुह्यों का आविष्कार

हरिः॑ सृजा॒नः प॒थ्या॑मृ॒तस्येय॑र्ति॒ वाच॑मरि॒तेव॒ नाव॑म् ।
दे॒वो दे॒वानां॒ गुह्या॑नि॒ नामा॒विष्कृ॑णोति ब॒र्हिषि॑ प्र॒वाचे॑ ॥ २ ॥

सृजानः=उत्पन्न किया जाता हुआ **हरिः**=यह दुःखहर्ता सोम **ऋतस्य**=सत्यज्ञान की **पथ्याम्**=इस हितकर मार्ग की दर्शक वेदवाणी को **इयर्ति**=हमारे में प्रेरित करता है। **इव**=जैसे **अरिता**=चप्पुओं को चलानेवाला **नावम्**=नाव को नदी में प्रेरित करता है। **देवः**=यह सोम प्रकाशमय है। **देवानाम्**=सूर्यादि देवों के **गुह्यानि**=रहस्यों को **आविष्कृणोति नाम**=अवश्य प्रकट करता है। सोमरक्षण से तीव्रबुद्धि बनकर हम देवों के रहस्यों को समझनेवाले बनते हैं। इन रहस्यों को यह सोम **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **प्रवाचे**=प्रकृष्ट स्तोता के लिये प्रकट करता है। सोमरक्षण से ही वासनायें विनष्ट होती हैं। हृदय वासना शून्य बनता है। इस निर्मल हृदय में तत्वज्ञान का प्रकाश प्रादुर्भूत होता है।

भावार्थ—सोम हमारे हृदयों में सत्यज्ञान की हितकर वेदवाणी का प्रकाश करता है। हम सोमरक्षण के द्वारा ही तीव्रबुद्धि बनकर सूर्यादि देवों के रहस्यों को जान पाते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

बुद्धि+कर्म+नमन=प्रवेश

अ॒पामि॑वेदू॒र्मय॒स्तर्तु॑राणाः॒ प्र म॑नी॒षा ई॑रते॒ सोम॒मच्छ॑ ।
न॒म॒स्यन्ती॒रुप॑ च॒ यन्ति॒ सं चा च॑ विशन्त्युश॒तीरु॒शन्त॑म् ॥ ३ ॥

अपां ऊर्मयः इव=जलों की लहरों की तरह **मनीषा**=बुद्धियाँ **ततुराणाः**=कर्मों में त्वरा

से प्रेरित करती हुईं **सोमम् अच्छ**=सोम की ओर **इत्**=निश्चय से **प्र ईरते**=प्रकर्षेण गति वाली होती हैं। सोमरक्षक को वे बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो उसे यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाली होती हैं। **च**=और ये ही बुद्धियाँ **नमस्यन्तीः**=प्रभु नमन को करती हुई **उपयन्ति**=प्रभु के समीप प्राप्त होती हैं। **उशतीः**=प्रभु प्राप्ति की कामना वाली होती हुईं ये बुद्धियाँ **उशन्तम्**=उस प्रभु प्राप्ति की कामना वाले पुरुष को **सं विशन्तिः**=सम्यक् प्राप्त होती हैं, **च**=और **आविशन्ति च**=सर्वथा प्रभु को प्राप्त कराती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमें वे बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं जो हमें कर्मों में प्रेरित करती हैं और प्रभु नमन करती हुईं प्रभु में प्रवेश करानेवाली होती हैं। वस्तुतः बुद्धि पूर्वक कर्म करने से और उन कर्मों को नतमस्तक हो प्रभु अर्पण करने से ही तो प्रभु प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शक्ति+ज्ञान+प्रभु प्राप्ति

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे॥ ४॥

तम्=उस **मर्मृजानम्**=अत्यन्त शुद्ध करते हुए, जीवन को पवित्र बनाते हुए, **अंशुम्**=सोम को **महिषं न**=जो अत्यन्त पूज्य के समान है, **दुहन्ति**=अपने में प्रपूरित करते हैं। इस सोम का दोहन **सानौ**=सानु के निमित्त करते हैं, जिससे यह हमें शिखर तक ले जानेवाला हो, उन्नति की चरम सीमा तक इस सोम ने ही तो हमें ले जाना है। उस सोम का अपने में प्रपूरण करते हैं, जो **उक्षणम्**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाला है और **गिरिष्ठाम्**=ज्ञान की वाणियों में स्थित होनेवाला है। यह सोम ही हमें शरीर में शक्ति सम्पन्न बनाता है, तो मस्तिष्क में यह हमें ज्ञानसम्पन्न करता है। इस प्रकार यह हमें उन्नति के शिखर पर ले जाता है। **वावशानं तम्**=प्रभु प्राप्ति की कामना वाले उस सोम को **मतयः**=बुद्धियाँ **सचन्ते**=समवेत होती हैं। सोमरक्षण से प्रभु की ओर झुकाव होता है और बुद्धि की तीव्रता प्राप्त होती है। **त्रितः**=काम-क्रोध-लोभ को तैरनेवाला व्यक्ति **वरुणम्**=इस सब कष्टों का निवारण करनेवाले सोम को **समुद्रे**=उस (स+मुद्) आनन्दमय प्रभु की प्राप्ति के निमित्त **बिभर्ति**=धारण करता है। सोमरक्षण द्वारा ही हम वासनाओं को तैरकर प्रभु को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे में शक्ति का सेचन करता है, हमें ज्ञान वाणियों में प्रतिष्ठित करता है और आनन्दमय प्रभु में धारण करता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

बुद्धि+सौभागाय+सुवीर्य

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम्।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ ५॥

उपवक्ता इव=उपदेष्टा की तरह **होतुः**=उस सृष्टि यज्ञ के होता प्रभु की **वाचम्**=वाणी को **इष्यन्**=उपासक के रूप में प्रेरित करता हुआ **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू हे **इन्दो**=सोम! **मनीषां**=बुद्धि को **विष्या**=हमारे में प्राप्त करानेवाला, प्रतिबद्ध करनेवाला हो (विमुञ्च सा०) **यत्**=जिस समय तू **च**=और **इन्द्रः**=वह सब शत्रुओं का द्रावण करनेवाला प्रभु **क्षयथः**=मेरे में निवास करते हो, तो **सौभगाय**=सौभाग्य के लिये होते हो। हम सोम व इन्द्र की कृपा से

सुवीर्यस्य=उत्तम शक्ति के **पतयः**=स्वामी **स्याम**=हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे हृदयों में प्रभु की वाणी को प्रेरित करता है, बुद्धि को देता है, सौभाग्यवर्धन करता हुआ सुवीर्य का पति बनाता है।

इस सुवीर्य के द्वारा शत्रुओं को पराजित करता हुआ 'प्रतर्दन' अगले सूक्त का ऋषि है, यह 'दैवोदासि' उस प्रभु का दास (भक्त) है। यह सोम शंसन करता हुआ कहता है।

[९६] षण्णवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**प्रतर्दनो दैवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञान-भक्ति-शक्ति

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते॥ १॥

सेनानीः=प्राणों व इन्द्रियादि की सेना का नेता यह सोम **शूरः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला है। **रथानाम्**=इन शरीररूप रथों के **अग्रे**=अग्रभाग में होता हुआ, अर्थात् मस्तिष्क में स्थित होता हुआ, ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ सोम मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, यही इसका शिखर पर पहुँचना है, **गव्यन्**=इन ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणियों को चाहता हुआ **एति**=गति करता है। **अस्य**=इस सोम की **सेना**=प्राण व इन्द्रियाँ मन व बुद्धि रूप सेना **हर्षते**=आनन्दित होती है, विकसित शक्ति वाली होती है। यह **सखिभ्यः**=अपने रक्षक मित्रों के लिये **भद्रान्**=कल्याण कर **इन्द्रहवान्**=प्रभु की पुकारों को **कृण्वन्**=करता हुआ, अर्थात् हम सखाओं को प्रभुस्तुतिप्रवण करता हुआ **रभसानि**=(robust) शक्तिशाली **वस्त्रा**=वस्त्ररूप अन्नमय आदि कोशों को **आदत्ते**=ग्रहण करता है।

भावार्थ—सोम हमे ज्ञान व प्रभु स्तवन की ओर झुकाव वाला करता हुआ शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो दैवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

सुमति की प्राप्ति

सम॑स्य॒ हरिं॒ हर॑यो मृजन्त्यश्वह॒यैरनि॑शितं॒ नमो॑भिः।
आ ति॑ष्ठति॒ रथ॒मिन्द्र॑स्य॒ सखा॑ वि॒द्वाँ ए॑ना सु॒म॒तिं या॒त्यच्छ॑॥ २॥

अस्य=इस जीव के **हरिम्**=दुःखहर्ता सोम को **हरयः**=इन्द्रियाश्व ही **समृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। जो सोम **अश्वहयैः**=इन्द्रियाश्वों की इधर-उधर गति से **अनिशितम्**=तेज व उबाल वाला नहीं कर दिया गया। वह सोम **नमोभिः**=प्रभु नमनों के द्वारा **रथम् आतिष्ठति**=इस शरीर रथ में ही चारों ओर स्थित होता है। यदि इन्द्रियाँ विषयों में इधर-उधर नहीं भटकती और हम प्रभु नमन में प्रवृत्त होते हैं, तो यह सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। **इन्द्रस्य सखा**=उस समय यह सोम इस जितेन्द्रिय पुरुष का मित्र होता है। **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष **एना**=इस सोम के द्वारा **सुमतिं अच्छ**=कल्याणी मति की ओर **याति**=जाता है सोमरक्षण से शुभमति को प्राप्त करता है।

भावार्थ—इन्द्रियाँ जब विषयों में नहीं जाती तो प्रभु नमन करती हुई सोम का रक्षण करती हैं। यह सोम सुरक्षित हुआ हुआ सुमति को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महे प्सरसे

स नो॑ देव देवता॑ते पवस्व महे सो॑म प्सर॑स इन्द्रपानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो॑ वरिवस्या पुनानः॥ ३॥

हे **देव**=प्रकाशमय सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमें **देवताते**=इस दिव्य गुणों के विस्तार वाले जीवनयज्ञ में **पवस्व**=प्राप्त हो। हे सोम, वीर्यशक्ते! तू **इन्द्रपानः**=जितेन्द्रिय पुरुष से पातव्य होता हुआ **महे प्सरसे**=महान सौन्दर्य व ऐश्वर्य के लिये होता है। हे सोम! तू **अपः कृण्वन्**=व्यापक कर्मों को जन्म देता हुआ, **द्याम् वर्षयन्**=द्युलोक से प्रकाश की वृष्टि कराता हुआ **उत**=और **इमाम्**=इस पृथ्वी रूप शरीर को शक्तिवर्षण से सिक्त करता हुआ **नः**=हमें **उरोः**=विशाल हृदयान्तरिक्ष से **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **आवरिवस्या**=ऐश्वर्यदान से सेवित कर। सोमरक्षण से हमारी क्रियाशीलता में वृद्धि होती है, मस्तिष्क दीप्त होकर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराता है, यह शरीर शक्तिसिक्त होता है और हृदय की विशालता जीवन को पवित्र करती है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर महान् सौन्दर्य का कारण बने। इससे शरीर क्रियाशील, मस्तिष्क दीप्त बने व हृदय विशाल हो।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अजीति अहूति

अजी॑तयेऽह॑तये पवस्व स्वस्तये॑ सर्वता॑तये बृहते।
तदु॑शन्ति विश्व॑ इमे सखा॑यस्तदहं व॑श्मि पवमान सोम॥ ४॥

हे सोम! तू **अजीतये**='हम शत्रुओं से पराजित न हो' इसके लिये **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **अहतये**='हम शत्रुओं से विनष्ट न किये जा सकें' इसके लिये हमें प्राप्त हो। इसी प्रकार **स्वस्तये**=कल्याण के लिये, **सर्वतातये**=सब सद्गुणों के विस्तार के लिये तथा **बृहते**=महान् बुद्धि के लिये तू हमें प्राप्त हो। **विश्वे इमे सखायः**=सब ये मेरे मित्र **तद् उशन्ति**=उस अजीति व अहुति की ही कामना करते हैं। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम **अहं**=मैं भी **तद् वश्मि**=वह ही चाहता हूँ। मैं भी यही कामना करता हूँ कि सोमरक्षण के द्वारा मैं शत्रुओं से न जीता जाऊँ, न मारा जाऊँ।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम शरीर में रोगों से अहत रहते हैं और मन में वासनाओं से अपराजित बनते हैं।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'इन्द्र व विष्णु' पद की प्राप्ति

सोमः॑ पवते जनिता म॑तीनां ज॑निता दिवो जनिता पृ॑थिव्याः।
जनिताग्नेर्ज॑निता सूर्य॑स्य जनितेन्द्र॑स्य जनितोत विष्णोः॑॥ ५॥

सोमः=वीर्यशक्ति **पवते**=हमें प्राप्त होती है। यह **मतीनां जनिता**=बुद्धियों का प्रादुर्भाव करनेवाली होती है **दिवः जनिता**=यदि यह मस्तिष्क रूप द्युलोक का प्रादुर्भाव करती है, तो साथ ही **पृथिव्याः जनिता**=शरीर रूप पृथिवी का भी विकास करनेवाली होती है। यह सोमशक्ति **अग्नेः जनिता**=शरीर रूप पृथ्वी पर अग्नि तत्व को पैदा करनेवाली है और **सूर्यस्य जनिता**=मस्तिष्क

रूप द्युलोक में सूर्य को प्रादुर्भूत करती है। शरीर में अग्नितत्त्व से तेजस्विता को जन्म देता है और मस्तिष्क में सूर्य प्रकाश का कारण बनता है। यह सोम **इन्द्रस्य**=सब बल और कर्मों को करनेवाले इन्द्र को **जनिता**=पैदा करता है, **उत**=और **विष्णो**=व्यापक उदार हृदय वाले पुरुष को जनिता उत्पन्न करता है। यह सोम हमें 'इन्द्र व विष्णु' पद को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम शक्ति व प्रकाश को जन्म देता हुआ हमें 'इन्द्र व विष्णु' बनाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ब्रह्मा देवानाम्

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥ ६॥

सोमः=सोम **पवित्रम्**=पवित्र हृदय वाले पुरुष को **रेभन्**=स्तुति करता हुआ **अति एति**=अतिशयेन प्राप्त होता है। यह सोम ही स्तुति की वृत्ति को पैदा करता है। यह सोम **देवानां ब्रह्म**=देवों में ब्रह्मा है, सर्वप्रथम देव है। यह हमें देवों में श्रेष्ठतम बनाता है। **कवीनां पदवीः**=क्रान्तदर्शी ज्ञानियों का मार्गदर्शक है, अर्थात् कवियों का भी कवि है। **विप्राणां ऋषिः**=मेधावियों में ऋषि है, सोम उत्कृष्ट मेधा का जनक है। **मृगाणाम्**=आत्मान्वेषण करने वालों में **महिषः**=पूज्य है। **गृध्राणाम्**=विषयलोलुप इन्द्रियों का यह **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला है। विषयलोलुप इन्द्रिय रूप गृध्रों के लिये यह श्येन हैं, उन्हें समाप्त करनेवाला 'बाज' है। यह इन्द्रियों की विषयलोलुपता को समाप्त करके उन्हें शंसनीय गतिवाला बनाता है। सोमरक्षण से इन्द्रियाँ विषयलोलुपता को छोड़कर शंसनीय गति वाली बनती हैं। यह सोम **वनानां स्वधितिः**=उपासकों में आत्मतत्व को धारण करनेवाला है। अथवा वासनावृक्ष के वनों का कुल्हाड़ा ही है, वासनाओं को छिन्न-भिन्न करके हृदय क्षेत्र को निर्मल करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर व श्रोष्ठतम बनाता चलता है। यह अन्ततः हमें 'ब्रह्मा' बना देता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अन्तः पश्यन्

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥ ७॥

पवमानः=जीवन को पवित्र करता हुआ **सोमः**=सोम **वाचः**=ज्ञान की वाणियों को और **मनीषाः**=बुद्धियों को **प्रावीविषत्**=इस प्रकार प्रेरित करता है, **न**=जैसे कि **सिन्धुः**=समुद्र **ऊर्मिम्**=लहरों को प्रेरित करता है। सोमरक्षण से हमारे जीवन में बुद्धि व ज्ञान की वाणियों का विकास होता है। यह **वृषभः**=शक्तिशाली सोम **गोषु जानन्**=ज्ञान की वाणियों में तत्त्वज्ञान वाला होता हुआ, **अन्तः पश्यन्**=विषय व्यावृत्त होकर अन्तर्मुखी वृत्ति वाला होता हुआ **इमा**=इन **अवराणि**=(न निवारवितुं शक्यानि) **अधर्षणीय वृजना**=बलों का **आतिष्ठति**= अधिष्ठाता होता है। सोम से ज्ञान बढ़ता है, वृत्ति बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी होती है। शत्रुओं से अधर्षणीय शक्ति प्राप्त होती है।

भावार्थ—सोम ज्ञान की वाणियों व बुद्धियों को हमारे में प्रेरित करता है। अधर्मणीय बलों को प्राप्त कराता है। हमें अन्तर्मुखी वृत्ति वाला बनाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वन्वन् अवातः

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्त्ररेता अभि वाजमर्ष।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन्॥ ८ ॥

सः=वह सोम **पृत्सु**=संग्रामों में **वन्वन्**=संग्रामों में शत्रुओं का विजय करता हुआ **अवातः**=(अनभिगतः) शत्रुओं से आक्रान्त न किया जाता हुआ **मत्सरः**=आनन्द का संचार करता है। **सहस्त्ररेताः**=अनन्त शक्ति वाला यह सोम है। तू **वाजम् अभि अर्ष**=शत्रुओं के साथ संग्राम की ओर गतिवाला हो। हे **इन्दो**=सोम! **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवमानः**=पवित्रता को करता हुआ **मनीषी**=प्रशस्त मनीषा वाला है, उत्तम बुद्धि को प्राप्त कराता है। तू **गाः इषण्यन्**=ज्ञान की वाणियों को प्रेरित करता हुआ **अंशोः ऊर्मिम्**=प्रकाश की किरणों की तरंगों को व पंक्तियों को **ईरय**=प्रेरित कर (ऊर्मि=row, line)।

भावार्थ—सोम अपराजित शक्ति वाला होता हुआ शत्रुओं को कुचलता है। बुद्धि का वर्धन करता हुआ ज्ञानरश्मियों की पंक्ति को प्रेरित करता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रण्यः मदाय

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय।
सहस्त्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति॥ ९ ॥

प्रियः=प्रीणित करनेवाला, **कलशे**=शरीर कलश में **देववातः**=देवों से प्रेरित हुआ-हुआ **सोमः**=सोम **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिजिगाति**=चारों ओर गतिवाला होता है। **रण्यः**=यह रमणीय सोम **मदाय**=उसके उल्लास के लिये होता है। **सहस्त्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला, **शतवाजः**=सैकड़ों बलों वाला **इन्दुः**=यह सोम **वाजी न सप्तिः**=शक्तिशाली घोड़े के समान **समना**=संग्राम में **जिगाति**=गतिवाला होता है। संग्राम में रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं को पराजित करता हुआ यह सोम हमारे जीवन को सुन्दर व उल्लासमय बनाता है।

भावार्थ—देव लोग सोम को शरीर में ही प्रेरित करते हैं। यह शक्ति को देता हुआ व शत्रुओं को पराजित करता हुआ, हमारे जीवनों को रमणीय बनाता है व उल्लासमय करता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अभिशस्तिपाः

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः॥ १० ॥

भावार्थ—सः=वह सोम **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करने वालों में उत्तम है। **वसुवित्**=निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्वों को प्राप्त करनेवाला है। **जायमानः**=शक्तियों के प्रादुर्भाव वाला है। **अप्सु मृजानः**=कर्मों में यह शुद्ध किया जाता है, अर्थात् हम कर्मों में लगे रहें, तो वासनाओं से बचे रहने से यह सोम मलिन नहीं हो पाता। **अद्रौ**=(one who adores) उपासक में यह **दुदुहानः**=प्रपूरित होता है। **अभिशस्तिपा**=हिंसक शत्रुओं से यह हमारा रक्षण करनेवाला है। **भुवनस्य राजा**=सब प्राणियों के जीवनों को यह दीप्त करनेवाला है। **पूयमानः**=पवित्र किया

जाता हुआ यह सोम **ब्रह्मणे**=ब्रह्म प्राप्ति के लिये **गातुं**=मार्ग को **विदत्**=प्राप्त कराता है व उस मार्ग का ज्ञान देता है। एवं यह सोम हमें अन्ततः ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—'कर्मशीलता व उपासना' सोमरक्षण के साधन हैं, रक्षित सोम हमारा पूरण करता हुआ, शत्रुओं से बचाता हुआ, हमें ब्रह्म की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

परिधीन् अपेर्णु

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः॥ ११॥

हे **पवमान**=पवित्रता को करनेवाले **सोम**=वीर्यशक्ते! **नः**=हमारे में से **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **पितरः**=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाले **धीराः**=ज्ञानी लोग **त्वया हि**=तेरे द्वारा ही तेरी ही शक्ति से **कर्माणि चक्रुः**=लोक रक्षणात्मक कार्यों को कर पाते हैं। सोमरक्षण ही हमें उत्कृष्ट कार्यों को करने की क्षमता प्रदान करता है। **वन्वन्**=शत्रुओं को हिंसित करता हुआ, **अवातः**=शत्रुओं से अनाकान्त तू **परिधीः**=चारों ओर से घेर लेनेवाले इन राक्षसी भावों को **अपोर्णु**=आच्छादित कर, हमारे से दूर कर। **वीरेभिः अश्वैः**=वीरतापूर्ण इन इन्द्रियाश्वों से **नः**=हमारे लिये **मघवा भवः**=सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करानेवाला हो। सोमरक्षण से ही सबल बनकर कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि उत्तम कर्म करती हैं, तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करनेवाली होती हैं।

भावार्थ—सब उत्तम कर्म सोमरक्षण से ही सम्भव होते हैं। यह सोम राक्षसी भावों को दूर करके हमें वास्तविक ऐश्वर्य प्राप्त कराये।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मनु व इन्द्र' में सोम की स्थिरता

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान्।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि॥ १२॥

हे सोम! **यथा**=जैसे तू **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **अपवथाः**=जाता है (अगच्छः) और उसके लिये **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला होता है, **अमित्रहा**=शत्रुओं का विनाश करनेवाला होता है, **वरिवोवित्**=धन का प्राप्त करानेवाला होता है तथा **हविष्मान्**=प्रशस्त हवि वाला दानपूर्वक अदन वाला होता है, अर्थात् उस विचारशील पुरुष को तू दानपूर्वक अदन वाला बनाता है **एवा**=इसी प्रकार **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **पवस्व**=तू प्राप्त हो। **द्रविणं दधानः**=सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को धारण कराता हुआ **सन्तिष्ठ**=स्थित हो। और **आयुधानि**=इन्द्रियाँ मन व बुद्धिरूप आयुधों को **जनय**=विकसित शक्ति वाला कर।

भावार्थ—सोम 'मनु व इन्द्र' में स्थिर होता है, 'विचारशील जितेन्द्रिय' पुरुष में। ये जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को धारण करता हुआ इन्द्रियों, मन व बुद्धि को विकसित शक्ति वाला करता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'माधुर्य-यज्ञभावना-क्रियाशीलता व आनन्द' की प्राप्ति

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः॥ १३॥

हे सोम! तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **मधुमान्**=तू माधुर्य वाला है, जीवन को मधुर बनाता है। **ऋतावा**=तू हमारे जीवन में ऋत का, यज्ञ का अवन (रक्षण) करता है। **अपः वसानः**=कर्मों को धारण करता हुआ, सदा क्रियाशील होता हुआ **अव्ये**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष में **अधि सानो**=तू ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ शिखर पर पहुँचता है। वहाँ मस्तिष्क रूप द्युलोक को तू ज्ञानसूर्य से दीप्त करता है। अब तू **घृतवान्ति**=दीप्ति व निर्मलता (मलों के क्षरण) वाले **द्रोणानि**=इन शरीर पात्रों में तू **अव**=विषय वासनाओं के उबाल से दूर होता हुआ **सीद**=आसीन हो। **मदिन्तम्**=अत्यन्त आनन्दमय, **मत्सरः**=उल्लास का संचार करनेवाला तू **इन्द्रपानः**=जितेन्द्रिय पुरुष से पातव्य हो। जितेन्द्रिय पुरुष ही सोम का शरीर में व्यापन करता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष से शरीर में व्याप्त किया हुआ सोम 'माधुर्य-यज्ञियभावना-क्रियाशीलता-आनन्द व उल्लास' को देता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति-दिव्यगुण-ज्ञान व दीर्घजीवन

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥ १४ ॥

हे सोम! **शतधारः**=सैकड़ों प्रकार से धारण करनेवाला तू **दिवः वृष्टिम्**=द्युलोक से वर्षा को, मस्तिष्क रूप द्युलोक से होनेवाली आनन्द की वर्षा को **पवस्व**=प्राप्त कर। **सहस्रसाः**=हजारों शक्तियों को प्राप्त करानेवाला तू **देववीतौ**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त **वाजयुः**=शक्ति को हमारे साथ जोड़नेवाला है। **सिन्धुभिः**=ज्ञान प्रवाहों के द्वारा **कलशे**=इस शरीर कलश में **वावशानः**=हमारे हित की कामना करता हुआ **सम्** (गच्छस्व)=संगत हो। **उस्रियाभिः**=ज्ञान किरणों के साथ **नः आयुः**=हमारे आयुष्य को **प्रतिरन्**=दीर्घ करता हुआ **सम्**=संगत हो।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हमें 'शक्ति, दिव्यगुणों, ज्ञान व दीर्घजीवन' की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शत्रुओं को जीतनेवाला' सोम

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ १५ ॥

एषः=यह **स्य**=प्रसिद्ध **सोमः**=सोम (वीर्य) **मतिभिः**=मननपूर्वक किये गये प्रभु के स्तोत्रों से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ, **अत्यःवाजी न**=शक्तिशाली घोड़े के समान **अरातीः तरति इत्**=शत्रुओं को तैर ही जाता है। शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला होता है। यह सोम क्रिया है? यह तो **अदितेः**=इस अदीना देवमाता वेदवाणीरूप गौ के **दुग्धम्**=दोहे हुए **पयः न**=दूध के समान है। **इषिरम्**=यह हमें कर्मों की प्रेरणा देनेवाला है। यह सोम **उरु गातुः इव**=विशाल मार्ग के समान सबसे समादरणीय है। **सुयमः**=सुनियन्तित **वोढा न**=अश्व के समान यह हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शक्तिशाली घोड़े के समान शत्रु विजय का साधन है। ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करानेवाला, हृदय को विशाल मार्ग की ओर प्रेरित करनेवाला तथा सुनियन्त्रित अश्व के समान लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाला है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आचीभुरिक्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

'नामस्मरण-शक्ति-गति और ज्ञान' की ओर

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम॥ १६॥

इस सोम के रक्षण से 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' रूप जीवन संग्राम के आयुध सुन्दर बनते हैं। सो कहते हैं कि **स्वायुधः**=उत्तम आयुधों वाला, **सोतृभिः**=उत्पन्न करने वालों से **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **गुह्यम्**=बुद्धिरूप गुहा में स्थित **चारु**=सुन्दर **नाम**=प्रभु के नाम को **अभ्यर्ष**=(अभिगमय) प्राप्त करा। हम बुद्धिपूर्वक अर्थ का चिन्तन करते हुए प्रभु के नाम का जप करें। **श्रवस्याः**=हमें यशस्वी बनाने की कामना से **सप्तिः इव**=संग्राम में घोड़े की तरह **वाजं अभि**=शक्ति की ओर ले चल। **वायुं अभि**=गतिशीलता की ओर ले चल। हे **देव**=प्रकाशमय **सोम**=वीर्यशक्ते! **गाः अभि**=ज्ञान की वाणियों की ओर ले चल।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें प्रभु के नाम की ओर ले चलता है, हमें प्रभु के नाम के जप को करनेवाला बनाता है, शक्ति, गति और ज्ञान की वाणियों की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

'शिशु-जज्ञान-हर्यत-वह्नि' सोम

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥ १७॥

शिशुम्=बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले (शो तनू करणे), **जज्ञानम्**=शक्तियों का प्रादुर्भाव करनेवाले, **हर्यतम्**=कमनीय इस सोम को प्राण **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। इस **वह्निम्**=हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाले सोम को **मरुतः**=प्राण **गणेन**=अपने समूह से **शुम्भन्ति**=शोभित करते हैं। यह सोम **कविः**=क्रान्तदर्शी-सूक्ष्म बुद्धि वाला है। **गीर्भिः**=इन ज्ञानवाणियों के द्वारा तथा **काव्येन**=वेदवाणीरूप काव्य के द्वारा **कविः सन्**=क्रान्तदर्शी होता हुआ यह **सोमः**=सोम **रेभन्**=प्रभुस्तवन करता हुआ **पवित्रम्**=पवित्र हृदय वाले पुरुष को **अति एति**=अतिशयेन प्राप्त होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमारी बुद्धियों को तीव्र करता है, हमारे सद्गुणों का विकास करता है, कमनीयता का कारण होता है, लक्ष्यस्थान पर पहुँचाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ऋषिमनाः ऋषिकृत्' सोमः

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम्।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥ १८॥

ऋषिमनाः=ऋषियों के मन के समान मन वाला **यः**=जो सोम है वह **ऋषिकृत्**=हमें ऋषि बनाता है **स्वर्षाः**=प्रकाश को प्राप्त कराता है, **सहस्रणीथः** (**नीथाः स्तुतिः**)=शत स्तुतियों वाला है। हमें सदा प्रभुस्तवन की वृत्ति वाला बनाता है। **कवीनाम् पदवीः**=ज्ञानियों के मार्ग को

कान्त बनाता है (वी-कान्ति) यह **महिषः**=(मह पूजयाम्) प्रभु पूजन की वृत्ति वाला **सोमः**=सोम **तृतीयं धाम**='प्रकृति व जीव' से ऊपर उठकर प्रभुरूप तृतीय स्थान को **सिषासन्**=(संभक्तुमिच्छन्) सेवित करने की इच्छा करता हुआ **स्तुप्**=काम-क्रोध-लोभ को रोकनेवाला (To stop) सोम **विराजं अनुराजति**=उस देदीप्यमान प्रभु के अनुसार दीप्ति वाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'ऋषि' बनाता है। प्रभु के समान दीप्ति वाला करता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'श्येनः शकुनः' सोमः

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति॥ १९॥

चमूषत्=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में आसीन होनेवाला सोम **श्येनः**=शंसनीय-गतिवाला है, विचारों की उत्तमता के कारण सदा उत्तम कर्मों वाला होता है। **शकुनः**=हमें शक्तिशाली बनाता हुआ **विभृत्वा**=विशेषरूप से हमारा भरण करता है। **गोविन्दुः**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाला यह सोम **द्रप्सः**=हर्ष का कारण होता है। यह **आयुधानि**='इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' रूप आयुधों का **बिभ्रत्**=धारण करता है। **अपां ऊर्मिम्**=कर्मों के प्रेरक **समुद्रम्**=वेदवाणीरूप ज्ञानसमुद्र को **सचमानः**=सेवन करता हुआ **महिषः**=यह पूजा की वृत्ति वाला सोम **तुरीयं धाम**='जागरित स्वप्न सुषुप्ति' इन तीन से ऊपर समाधिजन्य तुरीय स्थिति को, योगानिद्रा को **विवक्ति**=हमारे जीवनों में व्यक्त करता है, हमारे जीवनों में हम इस सोमरक्षण से उस तुरीयावस्था का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—सोम हमें शंसनीयगतिवाला व शक्तिशाली बनाता हुआ अन्तः तुरीयावस्था को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

'शुद्धि-संपत्ति-शक्ति व ज्ञान' का साधन सोम

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम्।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश॥ २०॥

शुभ्रः मर्यः न=एक स्वच्छ वृत्ति के मनुष्य की तरह **तन्वम्**=शरीर को यह सोम **मृजानः**=शुद्ध करता है सोमरक्षण से शरीर में रोग नहीं रहते, मन में वासना नहीं रहती। इस प्रकार शरीर शुद्ध हो जाता है। **सृत्वा**=संग्राम में गति करनेवाले **अत्यः न**=अश्व के समान यह सोम **धनानां सनये**=अन्नमय आदि कोशों के तेजस्विता आदि धनों की प्राप्ति के लिये होता है। घोड़ा भी संग्राम में विजय को प्राप्त करा के धन लाभ का कारण बनता है। **इव**=जैसे **वृषा**=एक शक्तिशाली वृषभ **यूथा**=गोवृन्द की ओर **परि अर्षन्**=जाता हुआ शब्द करता है, इसी प्रकार यह सोम **कोशम्**=अन्नमय आदि कोशों की ओर जाता हुआ **कनिक्रदत्**=प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **चम्वोः आविवेश**=द्यावापृथिवी में प्रविष्ट होता है। शरीर व मस्तिष्क ही पृथ्वी व द्युलोक हैं। इनमें प्रविष्ट हुआ-हुआ सोम शरीर को शक्ति से तथा मस्तिष्क को ज्ञान से दीप्त बनाता है।

भावार्थ—सोम शरीर को शुद्ध बनाता है। सब अन्नमय आदि कोशों के धनों को प्राप्त कराता है। एक-एक कोश में प्रविष्ट होता हुआ, प्रभुस्मरण की ओर हमारा झुकाव करता हुआ यह सोम

शरीर को सशक्त तथा मस्तिष्क को दीप्त करता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'कनिक्रत्+क्रीडन्'

पव॑स्वेन्दो॒ पव॑मानो॒ महो॑भिः॒ कनि॑क्रद॒त्परि॒ वारा॑ण्यर्ष।
क्रीळ॒ञ्चम्वो३॒॑रा वि॑श पू॒यमा॑न॒ इन्द्रं॑ ते॒ रसो॑ मदि॒रो म॑मत्तु॥ २१॥

हे **इन्दो**=सोम! तू **महोभिः**=अपने तेजों से **पवमानः**=हमें पवित्र करता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो। **कनिक्रदत्**=प्रभु के नामों का स्मरण करता हुआ **वाराणि**=वरणीय धनों को **परि अर्ष**=(अभिगमय) प्राप्त करा। सोम तेजस्विता द्वारा हमें पवित्र करता है, प्रभुस्मरण की ओर हमारा झुकाव करता है, तथा सब वरणीय धनों को प्राप्त कराता है। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ, वासनाओं से मलिन न होता हुआ तू **क्रीडन्**=हमें कीड़क की मनोवृत्ति वाला बनाता हुआ **चम्वोः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **आविशः**=प्रवेश कर। **ते**=तेरा **मदिरः**=आनन्द को देनेवाला **रसः**=रस (सार) **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **ममत्तु**=आनन्दित करे। तेरे रक्षण से उत्पन्न शक्ति जीवन को उल्लासमय बनाये।

भावार्थ—सोम तेजस्विता द्वारा हमें पवित्र करे। वरणीय धनों को प्राप्त कराये। हमें कीड़क की मनोवृत्ति वाला बनाये (sport's man like spirit)।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'साम कृण्वन्–सामन्यः' सोमः

प्रास्य॒ धारा॑ बृह॒तीर॑सृग्रन्न॒क्तो गोभिः॑ क॒लशाँ॒ आ वि॑वेश।
साम॑ कृ॒ण्वन्त्सा॑म॒न्यो॑ विप॒श्चित्क्रन्द॑न्नेत्य॒भि सख्यु॒र्न जा॒मिम्॥ २२॥

अस्य=इस सोम की **बृहतीः**=वृद्धि की कारणभूत **धाराः**=धारायें **प्र असृग्रन्**=प्रकर्षेण सृष्ट होती हैं। **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अक्तः**=कान्त बनाया गया यह सोम **कलशान्**=इन सोलह कलाओं के आधारभूत शरीर में **आविवेश**=समन्तात् प्रवेश करता है। **साम कृण्वन्**=शान्ति को करता हुआ यह सोम **सामन्यः**=(समनम्=संग्राम नाम नि० २.१७) समन में, संग्राम में कुशल है। रोगकृमि आदि को संग्राम में समाप्त करके ही यह शान्ति को प्राप्त कराता है। **विपश्चित्**=यह ज्ञानी है, बुद्धि का वर्धन करके हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला है। **क्रन्दन्**=प्रभु का आह्वान करता हुआ यह **सख्युः**=उस सखा प्रभु की **जामिम्**=पत्नी के समान जो यह वेदवाणी है, इसकी **अभि एति**=ओर यह जानेवाला होता है। सोमरक्षक ज्ञान की ओर झुकाव वाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय की प्रवृत्ति, वासनाओं से बचाकर, हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। यह सोम 'शान्ति-ज्ञान-प्रभुप्रवणता' को देता हुआ हमें वेदवाणी की ओर ले जाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शकुनः व पत्वा

अ॒प॒घ्नन्ने॑षि पवमान॒ शत्रू॑न्प्रि॒यां न जा॒रो अ॒भिगी॑त॒ इन्दुः॑।
सीद॒न्वने॑षु शकु॒नो न पत्वा॒ सोमः॑ पुना॒नः क॒लशे॑षु॒ सत्ता॑॥ २३॥

हे **पवमानः**=पवित्र करनेवाले सोम! **शत्रून्**=रोगकृमियों व काम-क्रोध आदि को **अपघ्नन् एषि**=नष्ट करता हुआ तू प्राप्त होता है। **जारः न**=एक स्तोता की तरह तू **प्रियाम्**=इस प्रभु की

प्रिय वेदवाणी को (एषि) प्राप्त होता है। और **अतएव-अभिगीतः**=स्तुति की वृत्ति वाला होता है और **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनाता है (इन्द् To be powerful) **वनेषु**=उपासकों में **सीदन्**=स्थित होता हुआ तू **शकुनः न**=शक्तिशाली के समान **पत्वा**=निरन्तर गतिशील होता है। हमारे जीवनों को तू क्रियामय बनाता है। यह **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **सोमः**=सोम **कलशेषु सत्ता**=शरीर कलशों में स्थित होनेवाला होता है।

भावार्थ—सोम शत्रुओं का विनाश करता है। हमें वेदवाणी की ओर झुकाता है। शक्तिशाली व क्रियाशील बनाता है।

ऋषिः—**प्रतर्दनो देवोदासिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सुदुघाः सुधाराः' रुचः

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम्॥ २४॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **ते पवमानस्य**=पवित्र करनेवाले **ते**=तेरी **रुचः**=दीप्तियाँ **सुदुघाः**=हमारा उत्तम प्रपूरण करनेवाली हैं तथा **सुधाराः**=उत्तम धारण करनेवाली हैं। ये दीप्तियाँ **योषा इव**=सब बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को मिलानेवाली होती हुई **आयन्ति**=हमें प्राप्त होती हैं। **हरिः**=यह सब रोगों व वासनाओं का हर्ता सोम **आनीतः**=शरीर में चारों ओर प्राप्त कराया हुआ **पुरुवारः**=बहुत वरणीय धनों वाला होता है। **देवयूनाम्**=दिव्यगुणों की कामना वाले पुरुषों के **कलशे**=इस शरीर कलश में यह **अप्सु**=कर्मों में **अचिक्रदत्**=उस प्रभु का आह्वान करता है। अर्थात् सोमरक्षक पुरुष प्रभु का स्मरण करता है और कार्यों में प्रवृत्त रहता है 'मामनुस्मर युध्य च'। यह प्रभुस्मरण पूर्वक कार्यों को करना ही उसे पवित्र जीवन वाला बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से उत्पन्न दीप्तियाँ हमारे में उत्तमताओं को भरती हैं और हमारा धारण करती हैं। सोमरक्षक पुरुष प्रभुस्मरण पूर्वक कार्यों में प्रवृत्त रहता है।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ आदि ऋषि 'पवमान सोम' का ही यशोगान करते हैं—

[९७] सप्तनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रेषा, हेमना

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता॥ १॥

अस्य=इस प्रभु की **प्रेषा**=प्रेरणा से तथा **हेमना**=ज्ञानज्योति से **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ **देवः**=यह दिव्यगुणों को जन्म देनेवाला सोम (वीर्य) **देवेभिः**=देववृत्ति वाले पुरुषों के साथ **रसं समपृक्त**=उस आनन्दमय प्रभु को संपृक्त करता है 'रसौ वै सः' सोमरक्षण के द्वारा देववृत्ति के पुरुष प्रभु को प्राप्त करते हैं, सोम का रक्षण चित्तवृत्ति की एकाग्रता से प्रभु प्रेरणा को सुनने व स्वाध्याय से ज्ञानवृद्धि के द्वारा होता है। **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **रेभन्**=प्रभु का साधन करता हुआ, अपने रक्षक को प्रभु का स्तोता बनाता हुआ **पवित्रम्**=पवित्र हृदयवाले पुरुष को **पर्येति**=शरीर में चारों ओर प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राप्त होता है, **इव**=जैसे कि **होता**=यज्ञशील पुरुष **मिता**=बड़े माप से बनाये हुए **पशुमान्ति**=प्रशस्त पशुओं वाले **सद्म**=यज्ञगृहों को प्राप्त होता है। इन यज्ञगृहों में 'अग्निहोत्री' गौ बंधी होती है, इसके ही दूध से घृत आदि प्राप्त करके यज्ञों

की सिद्धि होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम ध्यान व स्वाध्याय की वृत्ति को अपनायें। इससे हम देव बनेंगे, प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भद्रा वस्त्रा समन्यावसानः

भद्रा वस्त्रा॑ सम॒न्या३ वसा॑नो म॒हान्क॒विर्नि॒वच॑नानि॒ शंस॑न्।
आ व॑च्यस्व च॒म्वोः॑ पू॒यमा॑नो विचक्ष॒णो जागृ॑वि॒र्दे॒ववी॑तौ ॥ २ ॥

हे सोम! तू गतमन्त्र के अनुसार प्रभुस्मरण व स्वाध्याय के द्वारा **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ **चम्वोः**=इन द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **आवच्यस्व**=समन्तात् कहा जाये, शरीर में चारों ओर तेरा प्रवेश हो। वहाँ तू **भद्रा**=कल्याण कर **समन्या**=संग्राम के योग्य **वस्त्रा**=आच्छादक तेजों को **वसानः**=धारण करता हुआ हो। तूने ही तो रोगकृमियों व अशुभवृत्तियों के साथ संग्राम करना है। इस प्रकार **महान्**=तू हमारे जीवन को नीरोग व निष्पाप बनाकर महान् बना। **कविः**=क्रान्तदर्शी बना। **निवचनानि**=नम्रता से बोले जानेवाले स्तुतिवचनों को **शंसन्**=उच्चारित करनेवाला हो, हमें स्तुतिमय जीवन वाला बना। **विचक्षणः**=प्रत्येक वस्तु को बारीकी से देखनेवाला हो और **देववीतौ**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त सदा **जागृविः**=जागरित हो। तू हमें बुद्धिमान् व दिव्यगुणों वाला बना।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम रोगकृमियों के साथ संग्राम के योग्य तेज को प्राप्त कराता है। यह हमारे जीवन को पवित्र व विवेकशील बनाता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यशसां यशस्तरः

समु॑ प्रि॒यो मृ॑ज्यते॒ सानो॒ अव्ये॑ य॒शस्त॑रो य॒शसां॒ क्षैतो॑ अ॒स्मे।
अ॒भि स्व॑र॒ धन्वा॑ पू॒यमा॑नो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ ३ ॥

प्रियः=प्रीति व आनन्द का जनक यह सोम **उ**=निश्चय से **अव्ये**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष में **सानो**=शिखर पर, अर्थात् मस्तिष्क में **सं मृज्यते**=सम्यक् शुद्ध किया जाता है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति ही सोम को वासनाओं से मलिन होने से बचाती है। यह शुद्ध हुआ-हुआ सोम **अस्मे**=हमारे लिये **यशसां यशस्तरः**=उत्तम यशस्वियों में भी यशस्विता का कारण बनता है। **क्षैतः**=इस प्रकार उत्तम निवास व गति का साधक होता है (क्षि निवासगत्योः) हे सोम! तू **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ **धन्वा**=अन्तरिक्ष में, हृदयान्तरिक्ष में **अभिस्वर**=प्रातः-सायं प्रभु-स्तुति के शब्दों का उच्चारण करनेवाला हो। हे सोमकणो! **यूयं**=तुम **सदा**=सब कालों में **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **पात**=रक्षित करनेवाले होवो। इन सोमकणों के द्वारा हम सुरक्षित सुन्दर जीवनवाले बनें।

भावार्थ—सोमरक्षण का यही साधन है कि हम शरीर के शिखर मस्तिष्क में इसे ज्ञानाग्नि का ईंधन बनायें, स्वाध्यायशील हों। सुरक्षित सोम हमें यशस्वी बनाता है, यह हमें प्रभुस्मरण की वृत्ति वाला बनाता है।

ऋषिः—**इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महते धनाय

प्र गा॑यता॒भ्य॑र्चाम दे॒वान्त्सोमं॑ हिनोत मह॒ते धना॑य।
स्वा॒दुः प॑वाते॒ अति॒ वार॒मव्य॒मा सी॑दाति क॒लशं॑ देव॒युर्नः॑॥ ४॥

हे जीवो! **प्रगायत**=खूब ही प्रभु का गायन करो और हम सब **देवान् अभ्यर्चाम**='माता, पिता, आचार्य' आदि देवों का आदर करें, शुश्रूषण करें। इसी प्रकार हम वासना से बच सकेंगे। वासना से ऊपर उठकर **सोमं हिनोत**=सोम को अपने अन्दर प्रेरित करो। यह अन्दर प्रेरित हुआ-हुआ सोम तुम्हारे **महते धनाय**=महान् ऐश्वर्य के लिये होगा। सोम ही तो सब कोशों को ऐश्वर्ययुक्त करता है। यह सोम **स्वादुः**=हमारे जीवनों को मधुर बनानेवाला है यह **वारम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुष को, **अव्यम्**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष को **अति**=अतिशयेन **पवाते**=प्राप्त होता है। **देवयुः**=दिव्यगुणों को हमारे साथ जोड़नेवाला यह सोम **नः कलशम्**=हमारे शरीररूपी कलश में **आसीदाति**=आसीन होता है। शरीर में स्थिर हुआ-हुआ यह सोम ही शरीर की सब कलाओं का साधक होता है। यही इसे 'स-कल' (पूर्ण) बनाता है।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन व माता-पिता, आचार्य आदि देवों का अर्चन हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। क्योंकि इस प्रकार हम वासनाओं से बचे रहते हैं। सुरक्षित सोम हमारे महान् ऐश्वर्य का साधक होता है।

ऋषिः—**इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पूर्वंधाम अनु अगन्

इन्दु॑र्दे॒वाना॒मुप॑ स॒ख्यमा॒यन्त्स॒हस्र॑धारः पवते॒ मदा॑य।
नृ॒भिः स्तवा॑नो॒ अनु॒ धाम॒ पूर्व॒मग॒न्निन्द्रं॑ मह॒ते सौभ॑गाय॥ ५॥

इन्दुः=हमें शक्तिशाली बनानेवाला यह सोम **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों के **सख्यम्**=मित्रता को **उपायन**=प्राप्त होता हुआ, अर्थात् देववृत्ति के पुरुषों से अपने अन्दर सुरक्षित किया जाता हुआ **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला होता है और **मदाय**=आनन्द के लिये **पवते**=प्राप्त होता है। सुरक्षित सोम जीवन में उल्लास का कारण बनता है। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले पुरुषों से **स्तवानः**=स्तुति किया जाता हुआ यह सोम **पूर्वं धाम**=अपने प्राचीन गृह, अर्थात् ब्रह्मलोक की **अनु अगन्**=ओर जानेवाला होता है। जब हम सोम गुणों का शंसन करते हुए सोम का रक्षण करते हैं, तो यह सोम हमें ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला होता है। यह सोम **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **महते सौभगाय**=महान् सौभाग्य के लिये प्राप्त होता है।

भावार्थ—जब हम देववृत्ति को अपना कर सोम का रक्षण करते हैं, तो यह हमें उल्लासमय जीवन वाला बनाता है और अन्ततः प्रभु की प्राप्ति करानेवाला होता है। यह हमारे महान् सौभाग्य का कारण बनता है।

ऋषिः—**इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय

स्तो॒त्रे रा॒ये हरि॑रर्षा पुना॒न इन्द्रं॒ मदो॑ गच्छतु ते॒ भरा॑य।
दे॒वैर्या॑हि स॒रथं॒ राधो॒ अच्छा॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥ ६॥

हे सोम! **हरिः**=सब दुःखों का हरण करनेवाला होता हुआ तू **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **स्तोत्रे**=अपने स्तवन करनेवाले के लिये **राये अर्षा**=ऐश्वर्य के लिये प्राप्त हो। अपने स्तोता को तू ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाला है। **ते मदः**=तेरा मद, तेरे रक्षण से उत्पन्न हुआ-हुआ उल्लास **भराय**=रोगों व वासनाओं से संग्राम के लिये **इन्द्रं गच्छतु**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को प्राप्त हो। हे सोम! तू **देवैः**=दिव्यगुणों के साथ **सरथम्**=समान शरीररूप रथ पर आरूढ़ होकर **राधः अच्छः**=ऐश्वर्य की ओर **याहि**=जा। तू शरीर में सुरक्षित होने पर दिव्यगुणों व ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला हो। हे सोमकणो! **यूयम्**=तुम **सदा**=हमेशा **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**=कल्याणमय स्थितियों के द्वारा **पात**=सुरक्षित करो। इन सोमकणों के रक्षण से हम सदा कल्याणमार्ग के पथिक बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ऐश्वर्य उल्लास व शुभकर्मों को प्राप्त करानेवाला होता है। यह हमें जीवन संग्राम के लिये उल्लासमय बनाता है।

ऋषिः—**वृषगणो वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥ ७॥

उशनाः इव=हमारे हित की कामना करता हुआ-सा यह सोम **काव्यम्**=उत्कृष्ट ज्ञान को **प्र ब्रुवाणः**=हमारे जीवन में करता हुआ होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि तीव्र होकर हमारे उत्कृष्ट ज्ञान का कारण बनती है। **देवः**=यह प्रकाशमय सोम **देवानां जनिमा**=दिव्यगुणों के जन्मों को, दिव्यगुणों के प्रादुर्भाव को **विवक्ति**=हमारे जीवन में कहता है, अर्थात् सुरक्षित हुआ-हुआ यह दिव्यगुणों के विकास का कारण बनता है। **महिव्रतः**=यह महनीय व्रतों वाला होता है। अपने रक्षक को उत्कृष्ट पुण्य कार्यों का करनेवाला बनाता है। **शुचिबन्धुः**=शुचिता व पवित्रता को हमारे साथ जोड़नेवाला होता है। **पावकः**=पवित्र करनेवाला तो यह है ही। **पदा**=अपनी गति से यह सोम **वराहः**=(वरं-वरं आहन्ति, हन्-गतौ) सब उत्कृष्ट वस्तुओं को प्राप्त कराता है। यह सोम **रेभन्**=प्रभु का स्तवन करता हुआ **अभ्येति**=शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है। रुधिर में व्याप्त हुआ-हुआ यह सोम शरीरस्थ रोगकृमियों व वासनाओं को विनष्ट कर देता है।

भावार्थ—यह सोम रक्षित होने पर ज्ञान व दिव्यता को प्राप्त कराता है। महनीय व्रतों वाला, पवित्रता को हमारे साथ जोड़नेवाला है।

ऋषिः—**इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

तृपलं मन्युं अच्छ

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम्॥ ८॥

हंसासः=(हन हिंसागत्योः) पाप का विनाश करनेवाले **वृषगणाः**=(वृष=धर्म) धर्म का सदा परिगान करनेवाले, विचार करनेवाले उपासक **अमात्**=इन काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के भय से कहीं हमें ये आक्रान्त न कर लें इस विचार से, **तृपलम्**=(क्षिप्र प्रहारिणं) इन पर शीघ्र प्रहार करनेवाले **मन्युम्**=ज्ञान के पुञ्ज (मनु अवबोधने) प्रभु की **अच्छ**=ओर **अस्तम्**=अपने घर की ओर **प्र अयासुः**=प्रकर्षेण आनेवाले होते हैं। ये 'इस वृषागण' प्रभु रूप गृह की ओर आते हैं जिससे वहाँ सुरक्षित हुए-हुए वे शत्रुओं से न हों। वहाँ घर में स्थित हुए-हुए **सखायः**=ये

मित्र **साकं**=मिलकर **प्रवदन्ति**=उस प्रभु का गुणगान करते हैं, जो **आंगूष्यम्**=स्तुति के योग्य हैं, **पवमानम्**=स्तोताओं के जीवनों को पवित्र बनानेवाले हैं, **दुर्मर्षम्**=बुरी तरह से काम-क्रोधादि शत्रुओं का मर्षण करनेवाले हैं और **वाणम्**=ज्ञान की वाणियों के स्वामी हैं अथवा संभजनीय हैं। ये प्रभु ही तो हमें शत्रुओं के आक्रमण के भय से बचाते हैं।

भावार्थ—प्रभुस्तवन ही शत्रुभय से बचने का उपाय है।

ऋषिः—**इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

तिग्मशृङ्गः-ऋज्रः

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः॥ ९॥

स=वह सोम **उरुगायस्य**=खूब स्तुत्य प्रभु की **जूतिम्**=(Impulse) प्रेरणा की ओर **रंहते**=जाता है सोमरक्षण से हृदय की पवित्रता होकर प्रभु की प्रेरणा सुन पड़ती है। उस **वृथा**=अनायास **क्रीडन्तम्**=इस सृष्टिरूप क्रिया को करते हुए प्रभु को **गावः**=इन्द्रियाँ **न मिमते**=मापनेवाली नहीं होती। इन्द्रियाँ प्रभु का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती। सोम ही सुरक्षित होने पर बुद्धि को तीव्र करता है और हमें प्रभु की प्राप्ति के योग्य बनाता है। यह **तिग्मशृंगः**=तेज सीगों वाला, अर्थात् तीव्र शत्रुनाशक शक्ति वाला यह सो **परीणसं कृणुते**=(बहुविध तेजः) नाना प्रकार के तेजों को हमारे शरीर में उत्पन्न करता है, अंग-प्रत्यंग को तेजस्वी बनाता है। यह **हरिः**=सब रोगों का हरण करनेवाला सोम **दिवानक्तम्**=दिन-रात **ऋज्रः**=(ऋज्=To earn) हमारे लिये शक्तियों का अर्जन करता हुआ **ददृशे**=दिखता है। सोम ही उस-उस शक्ति को हमारे अन्दर जन्म देता है और हमें नीरोग व निर्मल बनाता है।

भावार्थ—सोम ही हमें प्रभु प्रेरणा की ओर ले जाता है। यह ही सब तेजस्विताओं का संचय करता है। इन तेजों के द्वारा यह हमें नीरोग व निर्मल बनाता है।

ऋषिः—**मन्युर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृजनस्य राजा

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा॥ १०॥

इन्दुः=यह शक्तिशाली सोम **वाजी**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला होकर **पवते**=प्राप्त होता है। यह **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **गोन्योघाः**=(गो नि ओघ) इन्द्रियों में निश्चय से प्राप्त होनेवाले रससमूहवाला है, इस सोम का ही रस सब इन्द्रियों में प्रवाहित होकर उन्हें शक्तिशाली बनाता है। यह **सोमः**=सोम **सहः**=बलकर रस को **इन्वन्**=प्रेरित करता हुआ **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होता है। यह सोम **रक्षः**=रोगकृमियों को व राक्षसी भावों को **हन्ति**=नष्ट करता है। **अरातीः**=शत्रुओं को **परिबाधते**=हमारे से दूर ही रोकता है। यह सोम **वरिवः कृण्वन्**=वरणीय धनों को करता हुआ **वृजनस्य राजा**=बल को हमारे जीवनों में दीप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शक्ति का संचार करता है। रोगकृमियों व मानस दुर्भावों का विनाश करता है।

ऋषिः—**मन्युर्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तिरः रोम पवते

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय॥ ११ ॥

अध=अब यह सोम **मध्वा धारया**=माधुर्ययुक्त धारणशक्ति से **पृचानः**=हमें संपृक्त करता हुआ **तिरः**=अन्तर्हित सोम (रु शब्दे)=शब्द को **पवते**=प्राप्त कराता है। यह अन्तर्हित शब्द ही 'प्रभु प्रेरणा' है। इसे सामन्यतः हम सुन नहीं पाते। सोमरक्षण से पवित्र हृदय वाले होकर हम इसे सुनने के योग्य होते हैं। यह सोम **अद्रिदुग्धः**=(adore=आदृ) प्रभु के उपासकों से अपने में पूरित किया जाता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष की **सख्यम्**=मित्रता को **जुषाणः**=सेवित करता हुआ **देवः**=प्रकाशमयता को देनेवाला होता है (देवः द्योतनात्)। यह **मत्सरः**=आनन्द का संचय करनेवाला सोम **देवस्य**=उस प्रकाशमय जीवनवाले सोमरक्षक पुरुष के **मदाय**=उल्लास के लिये होता है, सोमरक्षण से जीवन उल्लासमय बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन मधुर, उल्लासमय व प्रकाशमय बनता है। सोमरक्षण हमें प्रभु प्रेरणा के सुनने के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**मन्युर्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वेन रसेन पृञ्चम्

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये॥ १२ ॥

यह **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ सोम, वासनाओं के उबाल से मलिन न किया जाता हुआ सोम **प्रियाणि**=सब प्रिय धनों को, जीवनतत्त्वों को **अभिपवते**=प्राप्त कराता है। **देवः**=यह प्रकाशमयता को देनेवाला सोम **देवान्**=सब इन्द्रियों को **स्वेन रसेन**=अपने शक्तिप्रद रस से **पृञ्चन्**=संपृक्त करता है। सब इन्द्रियों को यही बल प्राप्त कराता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **धर्माणि**=धारणात्मक शक्तियों को **ऋतुथा**=समय के अनुसार **वसानः**=धारण कराता है। **दशक्षिपः**=विषय वासनाओं को परे फेंकनेवाली दस इन्द्रियाँ इस सोम को **अव्ये**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष में **सानो**=शिखर पर, मस्तिष्करूप द्युलोक में **अव्यत**=भेजती हैं (गमयन्ति)। वहाँ यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और ज्ञानदीप्त जीवन वाला बनाता है। सोम की ऊर्ध्वगति तभी होती है जब कि इन्द्रियाँ विषयों में न फँसी हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन के प्रियतत्त्वों को प्राप्त कराता है, इन्द्रियों को सशक्त बनाता है, धारकशक्ति को देता है और मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है।

ऋषिः—**उपमन्युर्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृषा शोणः

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम्॥ १३ ॥

यह सोम **वृषा**=सब अंगों में शक्ति का सेचन करनेवाला है, **शोणः**=तेजस्वी है। **गाः अभिकनिक्रदद्**=ज्ञान की वाणियों का हमारे में उच्चारण करता है, यह उन ज्ञान की वाणियों

को हमें सुनने के योग्य बनाता है जो कि प्रभु से हृदयों में उच्चारित हो रही हैं। **नदयन्**=यह हमें प्रभु के स्तुति-वचनों का उच्चारण करनेवाला बनाता हुआ **पृथिवीं उत द्यां एति**=इस शरीररूप पृथिवी व मस्तिष्करूप द्युलोक में प्राप्त होता है। शरीर को यह सशक्त बनाता है, तो मस्तिष्क को दीप्तिमय। इस सोम के रक्षण के होने पर **आजौ**=संग्राम में **इन्द्रस्य इव**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले सेनापति के शब्द की तरह इस सोम का **वग्नुः**=शब्द **आशृण्व**=सर्वतः सुनाई पड़ता है। यह सोम शरीर में रोगकृमियों को व काम-क्रोध आदि आसुरभावों को विनष्ट करनेवाला होता है। यह सोम **इमां वाचम्**=प्रभु की इस वाणी को **प्रचेतयन्**=अच्छी प्रकार हमारे ज्ञान का विषय बनाता हुआ **आ अर्षति**=शरीर में सर्वत्र गतिवाला होता है। सोमरक्षण हमें तीव्र बुद्धि बनाकर प्रभु की वाणी को समझने के योग्य बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शक्ति देता है, प्रभु की प्रेरणा को सुनने के योग्य करता है, हमें प्रभु का स्तोता बनाता है, शरीरस्थ शत्रुओं का नाश करता है और वेदवाणी को समझने योग्य बनाता है।

ऋषिः—**उपमन्युर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रसाय्यः पवमानः

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः॥ १४॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिषिच्यमानः**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में सिक्त होता हुआ तू **रसाय्यः**=जीवन को रसमय बनाता है। **पयसा**=आप्यायन शक्ति से, वर्धन शक्ति से **पिन्वमानः**=शरीर को सिक्त करता हुआ **मधुमन्तम्**=माधुर्ययुक्त **अंशुम्**=प्रकाश की किरण को **ईरयन्**=प्रेरित करता हुआ तू **एषि**=प्राप्त होता है। सोम शरीर में सुरक्षित होने पर जीवन को रसमय-वृद्धशक्ति वाला व माधुर्ययुक्त प्रकाश वाला बनाता है। हे सोम! **पवमानः**=पवित्र करता हुआ तू **सन्तनिं कृण्वन्**=सब शक्तियों के विस्तार को करता हुआ **एषि**=प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोम जीवन को रसमय, शक्ति सम्पन्न, प्रकाशमय व मधुर बनाता है।

ऋषिः—**उपमन्युर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रुशन्तं भरमाणः

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः॥ १५॥

शरीर में जल रेतःकणों के रूप में है। इनका संयम (ग्रहण) करनेवाला व्यक्ति 'उद-ग्राभ' है। हे सोम! **एवा**=(इ गतौ) गतिशीलता के द्वारा **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **मदिरः**=तू मद व उल्लास का जनक है। **उद-ग्राभस्य**=रेतःकणों का ग्रहण व रक्षण करनेवाले के **मदायः**=तू आनन्द के लिये होता है। **वधस्नैः**=अपने हनन साधन आयुधों से तेजस्विता रूप अश्वों से **नमयन्**=तू शत्रुओं को नतमस्तक करनेवाला होता है। वस्तुतः शत्रुओं को नष्ट करते ही तू आनन्द का जनक होता है। रोग व वासना रूप शत्रुओं को नष्ट करके **रुशन्तं वर्णम्**=चमकते हुए रूप को **भरमाणः**=धारण करता हुआ, **गव्युः**=उत्तम इन्द्रियों को हमारे साथ जोड़ने की कामना वाला **परिसिक्तः**=शरीर में चारों ओर सिक्त हुआ-हुआ तू **परि अर्षा**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो।

भावार्थ—सोम का रक्षक पुरुष आनन्दमय जीवन वाला होता है, इसके रोग व वासना रूप

शत्रु नष्ट हो जाते हैं, यह दीप्तरूप को धारण करता है, प्रशस्त इन्द्रियोंवाला होता है।

ऋषिः—**व्याघ्रपाद्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दुरितानि विघ्नन्

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन्।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये॥ १६॥

हे **इन्दो**=सोम! **जुष्ट्वी**=प्रीतिपूर्वक प्रभु का सेवन करता हुआ तू **नः**=हमारे लिये **सुपथा**=उत्तम मार्ग से **वरिवांसि**=धनों को **सुगानि**=सुखेन प्राप्तव्य **कृण्वन्**=करता हुआ **उरौ**=विशाल हृदय में **पवस्व**=प्राप्त हो सोमरक्षण से प्रभुस्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है, सुपथ से ही धनों के अर्जन का विचार बना रहता है, हृदय की विशालता प्राप्त होती है। हे सोम! तू **घनः इव**=लोहमय आयुध से ही मानो **विष्वक्**=सब ओर **दुरितानि**=बुराइयों को **विघ्नन्**=नष्ट करता हुआ, **अव्ये**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष में **ष्णुना**=अपने प्रवाह से **सानो अधि**=शिखर प्रदेश में, मस्तिष्क रूप में **धन्व**=गतिवाला हो। मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर, हे सोम! तू ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला हो।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष प्रभुस्तवन की वृत्ति वाला होता है, सुपथ से ही धनार्जन करता है, विशाल हृदयवाला होता है, दुरितों से दूर रहता है, दीप्त ज्ञानाग्नि वाला बनता है।

ऋषिः—**व्याघ्रपाद्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दिव्यां वृष्टिं अर्ष

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम्।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून्॥ १७॥

सुरक्षित सोम अन्ततः धर्ममेघ समाधि में हमें पहुँचने के योग्य बनाकर दिव्य आनन्द की वर्षा को प्राप्त कराता है। इसी बात को कहते हैं कि हे सोम! तू **नः**=हमारे लिये **दिव्यां वृष्टिम्**=इस दिव्य-अलौकिक वर्षा को **अर्षः**=प्राप्त करा। जो वृष्टि **जिगत्नुं**=हमें गतिशील बनाती है, यह ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अधिक क्रियाशील हो जाता है 'क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः'। **इडावतीम्**=यह वेदवाणी वाली है, इस दिव्य वृष्टि का अनुभव करनेवाला ज्ञान की ओर झुकता है। **शंगयीम्**=यह शान्ति का घर है, हमारे जीवन को शान्त बनाती है। **जीरदानुम्**=शीघ्रता से सब वरणीय वस्तुओं का हमारे लिये दान करती है या हमें उत्कृष्ट जीवन प्राप्त कराती है। हे **इन्दो**=सोम! **इमान्**=इन **अवरान् बन्धून्**=अवर देश में स्थित बन्धुभूत **वायून्**=प्राणों को **विचिन्वन्**=विशेषरूप से संचित करता हुआ **धन्वः**=शरीर में गतिवाला हो। उन प्राणों का संचय करता हुआ तू गतिवाला हो जो **स्तुकः इव**=कुञ्चित केशसमूह के समान **वीता**=सुन्दर है। प्राण उनचास भागों में बँटे हुए हैं, सब के सब बड़े सुन्दर हैं। ये तभी तक सुन्दर है जब तक कि मिलकर इनका कार्य होता रहे। अकेले प्राण का सौन्दर्य उसी प्रकार नहीं रहता जैसे कि एक बाल का। इन प्राणों की शक्ति भी सोमरक्षण से वृद्धि को प्राप्त होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम धर्ममेघ समाधि में प्राप्त होनेवाली दिव्य वृष्टि को प्राप्त कराता है, प्राणों का विशेष रूप से संचय करता है।

ऋषिः—**व्याघ्रपाद्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

पस्त्यावान्

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान्॥ १८॥

हे सोम! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू वासनाओं के उबाल से मलिन न होने दिया जाता हुआ तू **ग्रथितं**=विषयों से जकड़े हुए मुझको **विष्य**=इन बन्धनों से मुक्त कर। **ग्रन्थिं न**=जैसे कि एक गाँठ को खोल देते हैं, इस प्रकार तू मेरी हृदयग्रन्थियों को भिन्न करनेवाला हो। **च**=और हृदयग्रन्थियों को नष्ट करके तू मुझे **ऋतुं गातुम्**=सरल मार्ग **च**=तथा **वृजिनम्**=बल को प्राप्त करा। मैं विषयों से ऊपर उठकर सबल बनकर सरल मार्ग से जीवनयात्रा में आगे बढ़ूँ। **आसृजानः**=शरीर में चारों ओर सृष्ट=प्रेरित होता हुआ तू **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान क्रियाशील होकर **क्रदः**=उस प्रभु के नामों का उच्चारण कर। सोमरक्षण से मेरी प्रवृत्ति प्रभुस्मरण की बने। **हरिः**=तू सब रोगों का हरण करनेवाला हो, **मर्यः**=शत्रुओं का मारनेवाला हो। इस प्रकार **पस्त्यावान्**=इस शरीररूप गृह को प्रशस्त बनाता हुआ तू **देव**=हे प्रकाशमय सोम! **धन्व**=मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हृदयग्रन्थियों को भिन्न करे, सरलता व सबलता को प्राप्त कराये, प्रभु की ओर हमें झुकाये, रोगों को हरें, काम-क्रोध आदि को मारें, इस प्रकार शरीर गृह को उत्तम बनाये।

ऋषिः—**शक्तिर्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुरभिः अदब्धः

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये॥ १९॥

हे **इन्दो**=सोम! **मदाय**=उल्लास की प्राप्ति के लिये सेवित हुआ-हुआ तू **देवताते**=दिव्यगुणों का विस्तार करनेवाले **अव्ये**=रक्षकों में उत्तम पुरुष में **स्नुना**=अपने प्रवाह से **सानो**=शिखर प्रदेश में, मस्तिष्क रूप द्युलोक में **परिधन्व**=गतिवाला हो। वहाँ मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का तू ईंधन बन। **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला, **सुरभिः**=जीवन को सुगन्धित व यशस्वी बनानेवाला, **अदब्धः**=रोगों व वासनाओं से हिंसित न हुआ-हुआ तू **नृषह्ये**=नरों द्वारा शत्रुओं का मर्षण करने योग्य **वाजसातौ**=शक्ति प्राप्ति के साधनभूत संग्राम में **परिस्रव**=हमारे शरीरों में चारों ओर गतिवाला हो। सुरक्षित सोम ही तो रोगों व वासनाओं का संहार करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें अध्यात्म संग्राम में विजयी बनाये। ज्ञानाग्नि को दीप्त करे। हमारे जीवन को यशस्वी करे और उल्लासमय बनाये।

ऋषिः—**शक्तिर्वासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ससृजानासः आजौ

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै॥ २०॥

ये=जो **अरश्मानः**=लगाम से रहित **अरथाः**=रथशून्य **अयुक्ताः**=अबद्ध **अत्यासः न**=घोड़ों

के समान तीव्र गति वाले **आजौ ससृजानासः**=जीवन संग्राम के निमित्त उत्पन्न किये जाते हुए **एते शुक्रासः**=ये शक्तिशाली **सोमाः**=वीर्यकण **धन्वन्ति**=तुम्हें प्राप्त होते हैं। प्रभु ने इन सोमकणों को जीवन संग्राम में विजय के लिये उत्पन्न किया है। ये अत्यन्त तीव्र गति वाले हैं। इनका बन्धन व रक्षण सुगम नहीं है। हे **देवासः**=देववृत्ति के पुरुषो! **तान्**=उनको **पिबध्यै**=पीने के लिये, अपने अन्दर ही सुरक्षित करने के लिये **उपयाता**=प्रभु के समीप प्राप्त होवो, उपासना में बैठो। यह उपासना ही हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोमकण ही जीवन संग्राम में हमें विजयी बनाते हैं। उपासना इनके रक्षण में साधन बनती है।

ऋषिः—**शक्तिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दिव्य जीवन व उत्कृष्ट ऐश्वर्य

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम्॥ २१॥

हे **इन्दो**=सोम! **एवा**=इस प्रकार **नः**=हमारी **देववीतिम्**=दिव्यगुणों की प्राप्ति का **अभि**=लक्ष्य करके **चमूषु**=इन शरीर रूप पात्रों में **नभः अर्णः**=द्युलोक के जल को, मस्तिष्क रूप द्युलोक के ज्ञानजल को **परिस्रव**=प्राप्त करा। सोम ही सुरक्षित होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और ज्ञान को प्राप्त कराके हमारे जीवन में दिव्यगुणों की उत्पत्ति का कारण बनता है। **सोमः**=शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रयिं ददातु**=उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराये जो **काम्यम्**=वस्तुतः चाहने योग्य है, **बृहन्तम्**=वृद्धि का कारण बनता है, **वीरवन्तम्**=वीर सन्तानों वाला व **उग्रम्**=तेजस्वी है। सोमी पुरुष का धन उसके जीवन में अवाञ्छनीय प्रभावों को उत्पन्न नहीं करता, यह उसके सन्तानों को भी विलास में फँसानेवाला नहीं होता। यह सोमी पुरुष स्वयं भी धन का स्वामी, न कि दास, होता हुआ उग्र व तेजस्वी बनता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम ज्ञान को प्राप्त कराके हमें दिव्य जीवन वाला बनाता है तथा उत्कृष्ट ऐश्वर्य को यह प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**कर्णश्रुद्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वेदवाणियों का पति सोम

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम्॥ २२॥

वेनतः=प्रभु प्राप्ति की कामना वाले **मनसः**=विचारशील स्तोता की **वाक्**=वाणी **यत्**=जब निश्चय से **तक्षत्**=वासनाओं को क्षीण कर डालती है, छील देती है, **वा**=अथवा जब यह स्तोता की वाणी **ज्येष्ठस्य**=उस सर्वश्रेष्ठ **क्षोः**=हृदयस्थरूपेण वेदवाणियों को उच्चारण करनेवाले प्रभु के **धर्मणि अनीके**=धारक बल में इस स्तोता को क्षीण वासनाओं वाला करती है। **आत् ईम्**=तब शीघ्र ही **कलशे**=इस शरीर रूप कलश में **वरं आवशानाः**=शुभ की कामना करती हुई **गावः**=ये वेदवाणियाँ **इन्दुम्**=इस सोम को **आयन्**=प्राप्त होती हैं। इस प्रकार प्राप्त होती हैं जैसे कि कोई पत्नी **जुष्टं पतिम्**=प्रीतिपूर्वक सेवित पति को प्राप्त होती है। वेदवाणियाँ पत्नी होती हैं, सोम पति होता है। प्रभु के स्तवन से वासनायें क्षीण होती हैं। उस समय शरीर में सोम के रक्षण का सम्भव होता है। यह सुरक्षित सोम हमें वेदवाणियों की प्राप्ति कराता है। ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर यह

वेदवाणियों के रहस्य को समझना हमारे लिये सुगम कर देता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। इससे सोम का रक्षण होगा। सुरक्षित सोम हमें ज्ञानवाणियों को समझने के योग्य बनायेगा।

ऋषिः—**शक्तिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुमेधाः

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः।
धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम॥ २३॥

दानुदः=दानशील पुरुषों के लिये देनेवाले, **दानुपिन्वः**=इन दानशीलों को धनों से सिक्त करनेवाले **दिव्यः**=प्रकाशमय **सुमेधाः**=(शामेना प्रज्ञा यस्मात्) उत्तम मेधा को देनेवाले प्रभु **ऋताय**=नियमित जीवनवाले पुरुष के लिये **ऋतम्**=सत्य को **प्रपवते**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं। ये प्रभु इस उपासक के लिये **वृजन्यस्य**=बल के **धर्माभुवत्**=धारण करनेवाले होते हैं। **राजा**=वे दीप्त प्रभु **दशाभिः**=दश इन्द्रियों से सम्बद्ध **रश्मिभिः**=लगामों से अर्थात् दसों इन्द्रियों को मन रूप लगाम द्वारा निरुद्ध करने से **भूम**=खूब ही **प्रभारि**=धारण किये जाते हैं। प्रभु का दर्शन तभी होता है, जब कि इन्द्रियों को निरुद्ध किया जाये। विषयों में अनासक्त इन्द्रियों के होने पर आवृत्त चक्षु पुरुष ही उस प्रत्यगात्मा को देख पाता है।

भावार्थ—प्रभु दर्शन के लिये आवश्यक है कि हमारा जीवन नियमित हो (ऋताय) तथा हम इन्द्रियों को निरुद्ध करनेवाले हों।

ऋषिः—**शक्तिर्वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रयिपतिः रयीणाम्

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम्।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः॥ २४॥

पवित्रेभिः=पवित्र हृदय वाले पुरुषों से **पवमानः**=जाया जाता हुआ **नृचक्षाः**=मनुष्यों का ध्यान (रक्षण, चक्षा look after) करनेवाला **देवानाम्**=सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों को **उत**=और इन पिण्डों में निवास करनेवाले **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों का **राजा**=शासक वह प्रभु **द्विता**=(द्वौ तनोति) मस्तिष्क में ज्ञान व शरीर में शक्ति का विस्तार करनेवाला **भुवद्**=होता है। वे प्रभु ही **रयीणां रयिपतिः**=धनों के स्वामी हैं। हे **इन्दः**=शक्तिशाली प्रभु! **चारु**=सुन्दर **सुभृतम्**=उत्तम भरण करनेवाले **ऋतं भरत्**=ऋत को, यज्ञ का भरण करते हैं। इन यज्ञों के द्वारा ही वे उपासकों को सब कल्याणों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस यज्ञ को ही प्राप्त कराया और कहा कि इसके द्वारा तुम फलो-फूलोगे, यह तुम्हारी इष्टकामनाओं को पूर्ण करेगा।

भावार्थ—प्रभु उपासकों को यज्ञशील बनाकर उनके ज्ञान व शक्ति का विस्तार करते हैं। यह यज्ञ ही उनके लिये सब ऐश्वर्यों के देनेवाला होता है।

ऋषिः—**मृळीको वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'द्रविणोवित्' सोम

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः॥ २५॥

हे सोम! **इव**=जैसे युद्ध में **श्रवसे**=विजय के यश के लिये **अर्वान्**=घोड़ों को प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार **सातिम्**=प्रभु प्राप्ति का **अच्छ**=लक्ष्य करके **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के तथा **वायोः**=गतिशील पुरुष के **वीतिम्**=ज्ञान को **अधि अर्ष**=तू प्राप्त हो। अर्थात् जितेन्द्रिय व गतिशील पुरुष के द्वारा तेरा शरीर में ही व्यापन किया जाये जिससे वे इन्द्र व वायु प्रभु को प्राप्त कर सकें। शरीर में सोमरक्षण का ही अन्तिम परिणाम यह है कि ज्ञानाग्नि दीप्त होकर व बुद्धि सूक्ष्म होकर प्रभु का ग्रहण होता है। हे सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये **सहस्रा**=हजारों **बृहतीः**=बुद्धि की कारणभूत **इषः**=प्रेरणाओं को **दाः**=दीजिये। सोमरक्षण से पवित्र हृदय होकर हम प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें। हे **सोम**=वीर्य! तू **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **द्रविणोवित्**=सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला **भवा**=हो। सोमरक्षण से हमारे सब कोश क्रमशः 'तेज, वीर्य, बल व ओज, ज्ञान व सहनशक्ति' से परिपूर्ण होते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रिय व गतिशील पुरुष सोम का रक्षण करते हैं। यह सोम प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है, हमारे हृदयों में इसके रक्षण से प्रभु प्रेरणा सुन पड़ती है, यह सब कोशों को ऐश्वर्ययुक्त करता है।

ऋषिः—**मृळीको वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवाव्यः (सोमाः)

दे॒वा॒व्यो॑ नः परिषि॒च्यमा॑ना॒ः क्षयं॑ सु॒वीरं॑ धन्वन्तु॒ सोमा॑ः।

आ॒य॒ज्यवः॑ सुम॒तिं वि॒श्ववा॑रा॒ होता॑रो॒ न दि॑वि॒यजो॑ म॒न्द्रत॑माः॥ २६॥

देवाव्यः=देववृत्ति के व्यक्तियों को प्रीणित करनेवाले **नः**=हमारे **परिषिच्यमानाः**=शरीर में चारों ओर सींचे जाते हुए **सोमाः**=सोमकण **सुवीरं क्षयम्**=उत्तम वीर पुत्रों वाले गृह को **धन्वन्तु**=प्राप्त करायें। सोमरक्षण से सदा उत्तम वीर सन्तान प्राप्त होते हैं। **सुमतिं आयज्यवः**=ये सोम शुभ बुद्धि को हमारे साथ संगत करनेवाले हैं। **विश्ववाराः**=सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले हैं। **होतारः न**=ये होताओं के समान हैं, वस्तुतः ये ही जीवनयज्ञ को चलानेवाले हैं। **दिवियजः**=प्रकाश में हमारा सम्पर्क करानेवाले व **मन्द्रतमाः**=स्तुत्यतम हैं, अथवा अधिक से अधिक आह्लाद को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'वीर सन्तानों वाले गृह को, सुमति को व ज्ञान के प्रकाश और आनन्द को' प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**मृळीको वासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुष्ठाने रोदसी

ए॒वा दे॑व दे॒वता॑ते पवस्व म॒हे सो॑म॒ प्सर॑से देव॒पानः॑।

म॒हश्चि॒द्धि ष्मसि॑ हि॒ताः स॑म॒र्ये कृ॒धि सु॑ष्ठा॒ने रोद॑सी पुना॒नः॥ २७॥

हे **देव**=प्रकाशमय **सोम**=वीर्य! तू **एवा**=गतिशीलता के द्वारा (इ गतौ) **देवताते**=दिव्यगुणों के विस्तार के निमित्त **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **देवपानः**=देववृत्ति के पुरुषों से तू पातव्य है। **महे प्सरसे**=तू महान् भक्षण के लिये हो, ब्रह्म (महान्) चर्य (भक्षण) के लिये हो। तेरे रक्षण से उत्कृष्ट ज्ञान का भक्षण करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले हैं, यही वास्तविक ब्रह्मचर्य है, ब्रह्म की ओर गति है। हे सोम! **हिताः**=तेरे से प्रेरित हुए-हुए हम **समर्ये**=संग्राम में **महः चित् हि**=महान् भी शत्रुओं को **ष्मसि**=अभिभूत करनेवाले हों। **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **रोदसी**=द्यावापृथिवी

को, मस्तिष्क व शरीर को **सुष्ठाने**=उत्तम स्थितिवाला **कृधि**=कर। सोम के द्वारा मस्तिष्क व शरीर की उत्तम स्थिति हो, मस्तिष्क ज्ञानदीप्ति वाला हो तो शरीर शक्ति सम्पन्न हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम महान् ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला हो। इसके द्वारा संग्राम में हम रोगकृमिरूप शत्रुओं को जीतनेवाले हों। हमारे मस्तिष्क व शरीर उत्तम स्थिति में हों।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सिंहो न भीमः

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान्।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो॥ २८॥

वृषभिः=अपने अन्दर सोम का सेचन करनेवाले पुरुषों से (वृषु सेचने) **युजानः**=शरीर के साथ जोड़ा जाता हुआ तू **अश्वः न क्रदः**=घोड़े के समान उस प्रभु का आह्वान करनेवाला होता है। अर्थात् घोड़े की तरह सदा कर्मों में व्याप्त होता हुआ (अशू व्याप्तौ) तू प्रभु को पुकारता है, अकर्मण्य रहकर प्रभु के नाम की रट नहीं लगाता रहता। **सिंहः न भीमः**=शेर के समान तू शत्रुओं के लिये भयंकर है। **मनसः जवीयान्**=मन से भी अधिक वेगवान् है, सोम से जीवन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है। हे **इन्दो**=सोम! तू ये **रजिष्ठाः**=जो ऋजुतम मार्ग हैं उन **अर्वाचीनैः पथिभिः**=हमें अन्तर्मुखी वृत्ति का करनेवाले, अन्दर की ओर ले चलनेवाले मार्गों से **नः**=हमारे लिये **सौमनसम्**=उत्कृष्ट **मनः**=प्रसाद को **आपवस्व**=प्राप्त करा।

भावार्थ—सोमरक्षण से मनुष्य सरल मार्गों से सब व्यवहारों को करता हुआ मनःप्रसाद को प्राप्त करता है। यह सोम उसे स्फूर्ति देता है, उसके शत्रुओं का विनाश करता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महान् धन का अग्रदूत

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य॥ २९॥

हे सोम! **देवजाताः**=दिव्यगुणों के विकास के लिये उत्पन्न हुई-हुई **शतं धाराः**=सैकड़ों तेरी धारायें **असृग्रन्**=उत्पन्न की जाती हैं। **कवयः**=क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुष **सहस्रः**=हजारों प्रकार से **एनाः**=इन धाराओं को **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। इनके शोधन से ही वस्तुतः वे कवि बन पाते हैं। हे **इन्दो**=सोम! तू **दिवः सनित्रम्**=ज्ञान के धन को **आपवस्व**=सर्वथा प्राप्त करा। तू ही इस **महतः धनस्य**=महान् धन का **पुरः एता असि**=अग्रगन्ता है। तेरे रक्षण व शरीर में व्यापन के पश्चात् ही यह ज्ञान का महान् धन प्राप्त होता है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष सब प्रकार से सोम के शोधन के लिये, इसे वासनाओं के उबाल से मलिन न होने देने के लिये यत्नशील होते हैं। यह सुरक्षित सोम ही उन्हें ज्ञान के महान् धन को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अजीतिम् आपवस्व

दिवो न सर्गा असमृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः।

पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम्॥ ३०॥

अह्नाम्=दिनों में **विवस्वतः** किरणों **सर्गाः न**=रश्मियों की तरह जीवन में सोम की सर्गाः=धारायें-प्रवाह **असमृग्रम्**=उत्पन्न किये जाते हैं। ये सोम के प्रवाह ही ज्ञानरश्मियों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। **धीरः**=(धियं ईरयति) बुद्धि को प्रेरित करनेवाला **राजा**=जीवन को दीप्त करनेवाला सोम **मित्रम्**=अपने सखा को, अपने रक्षण करनेवाले को **न प्रमिनाति**=हिंसित नहीं करता। **क्रतुभिः**=शक्ति व प्रज्ञानों के साथ **यतानः**=यत्न करता हुआ **पुत्रः**=पुत्र **न**=जैसे **पितुः**=पिता के अपरभाव का कारण होता है, इसी प्रकार हे सोम! तू **अस्यै विशे**=इस प्रजा के लिये **अजीतिम्**=अपराभव को **आपवस्व**=प्राप्त करा। सुरक्षित सोम कभी भी हमें रोगों व काम-क्रोध रूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होने देता।

भावार्थ—सोम से हम 'प्रकाशमय, रोगादि से अनाक्रान्त, अपराभूत' जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**पराशर साक्तः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

गानां धाम पवसे

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः॥ ३१॥

हे सोम! **यत्**=जब **पूतः**=पवित्र किया हुआ तू **अव्यान्**=रक्षण करनेवाले **वारान्**=उत्तम पुरुषों को **अत्येषि**=अतिशयेन प्राप्त होता है, तो **ते**=तेरी **मधुमतीः**=माधुर्य को लिये हुए **धाराः**=धारण शक्तियाँ **प्रासृग्रन्**=अतिशयेन उत्पन्न की जाती हैं। तू उन **अव्य**=वासनाओं से अपना रक्षण करनेवाले पुरुषों को मधुर जीवन वाला बनाता है। **पवमान**=हे पवित्र करनेवाले सोम! तू **गोनाम्**=इन्द्रियों के **धाम**=तेज को **पवसे**=प्राप्त कराता है सब इन्द्रियों को यह सोम ही शक्तिशाली बनाता है। **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होता हुआ, हे सोम! तू **अर्कैः**=अपने स्तुत्य तेजों से **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **अपिन्वः**=पूरित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को मधुर बनाता है, इन्द्रियों को तेजस्वी करता है, ज्ञान सूर्य को दीप्त करता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अमृतस्य धाम

कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम्॥ ३२॥

शुक्रः=शुद्ध सोम वासनाओं की मलिनता से रहित सोम **ऋतस्य**=यज्ञ के **पन्थाम्**=मार्ग को **अनुकनिक्रदत्**=अनूदित फिर-फिर उच्चारित करता है। अर्थात् सोमरक्षक पुरुष का जीवन यज्ञमय बनता है। हे सोम! तू **अमृतस्य**=नीरोगता का **धाम**=घर होता हुआ **विभासि**=विशिष्ट शोभा वाला होता है। अपने रक्षक को यह सोम नीरोग व तेजस्वी बनाता है। **मत्सरवान्**=प्रशस्त आनन्द के संचार करनेवाला **सः**=वह तू **इन्द्राय पवसे**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त होता है। तू **कवीनाम्**=क्रान्तदर्शी ज्ञानियों की **मतिभिः**=बुद्धियों के साथ **वाचम्**=ज्ञान की वाणी को **हिन्वानः**=(प्रेरयन्) प्रेरित करता है। सोमरक्षण से बुद्धि सूक्ष्म बनती है और ज्ञान की वृद्धि होती है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को 'यज्ञमय, नीरोग, आनन्दयुक्त व बुद्धि और ज्ञान से सम्पन्न' बनाता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमधानं कलशम् आविश

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम्॥ ३३॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **दिव्यः**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय (दिव्य) बनानेवाला है, **सुपर्णः**=उत्तमता से पालन व पूरण करनेवाला है। **देववीतौ**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त **कर्मणा**=क्रियाशीलता के साथ **धाराः पिन्वन्**=धारण शक्तियों को पूरित करता हुआ तू **अवचक्षि**=सब रोग आदि को दूर भगानेवाला होता है। (to look down upon) इन रोगादि घृणा की दृष्टि से तू देखनेवाला होता है **इन्दो**=हे सोम! तू **सोमधानम्**=प्रभु से सोम के आधार के रूप में बनाये गये **कलशम्**=इस शरीर कलश में **आविश**=तू समन्तात् प्रवेश वाला हो। तू **क्रन्दन्**=प्रभु का आह्वान करता हुआ **सूर्यस्य**=ज्ञानसूर्य की **रश्मिम्**=किरणों को **उप इहि**=प्राप्त कर। तेरे रक्षण द्वारा हमारे जीवन में प्रभुस्तवन व ज्ञान दीप्त हो उठें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम से 'क्रियाशक्ति, दिव्यगुण, प्रभुस्तवन व ज्ञानरश्मियाँ' प्राप्त हों।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तिस्रः वाचः

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥ ३४॥

प्र वह्निः=प्रकर्षेण हमारा वहन करनेवाले, सब का धारण करनेवाले वे प्रभु हृदयस्थ रूपेण **तिस्रः वाचः**='ऋग्, यजु, साम' रूप तीन वाणियों को, विज्ञान कर्म व उपासना के उपदेश को **ईरयति**=हमारे में प्रेरित करते हैं। इस वाणी के **ऋतस्य धीतिम्**=यज्ञों के धारण को तथा **ब्रह्मणः मनीषाम्**=ज्ञानदायिनी बुद्धि को प्रेरित करते हैं। इस ज्ञान की वाणी को सुनने पर **गावः**=सब इन्द्रियाँ **गोपतिं**=इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र को **पृच्छमानाः**=जानने की इच्छा करती हुई **यन्ति**=अन्तर्मुखी गति वाली होती हैं। भटकने को छोड़कर आत्मतत्त्व की जिज्ञासा वाली बनती हैं। उस समय **वावशानाः**=प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामना वाले **मतयः**=मननपूर्वक स्तुति करनेवाले लोग **सोमं यन्ति**=सोम की ओर जाते हैं, सोमरक्षण द्वारा ही तो वे उस 'सोम' शान्त प्रभु को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—प्रभु वेदवाणी द्वारा हम यज्ञों व ज्ञान व उपासना में प्रेरित करते हैं। इससे हमारी इन्द्रियाँ विषयों में न भटक कर आत्मतत्त्व की ओर चलती हैं और हमारी बुद्धियाँ उस सोम 'शान्त प्रभु' को पाने के लिये यत्नशील होती हैं।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

त्रिष्टुभः अर्काः

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते॥ ३५॥

धेनवः=ज्ञानदुग्ध से प्रीणित करनेवाली **गावः**=वेदवाणी रूप गौवें **वावशानाः**=प्रबल कामना वाली होती हुई **सोमं**=उस शान्त प्रभु की ओर **सं नवन्ते**=जाती हैं। ये सब वेदवाणियाँ प्रभु का ही ज्ञान देती हैं। **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **मतिभिः**=मननवाली बुद्धियों से **सोमं पृच्छमानाः**=उस

शान्त प्रभु को जानने की इच्छा करते हुए गति करते हैं। ऐसा होने पर शरीर में **सुतः**=उत्पन्न **सोमः**=वीर्य **पूयते**=पवित्र होता है यह **अज्यमानः**=यह शरीर में ही अलंकृत किया जाता है। इस **सोमम्**=सोम के सुरक्षित होने पर **त्रिष्टुभः**=काम-क्रोध-लोभ सभी को रोकनेवाली **अर्काः**=ये प्रकाशमयी वाणियाँ सं नवन्ते=हमें सम्यक् प्राप्त होती हैं।

भावार्थ—सब वेदवाणियाँ प्रभु की ओर जाती हैं। सोमरक्षण द्वारा ही हम इन्हें प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वर्धया वाचं, जनया पुरन्धिम्

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्॥ ३६॥

हे **सोम**=वीर्य! **एवा**=गतिशीलता के द्वारा (इ गतौ) **परिषिच्यमानः**=शरीर में चारों ओर सिक्त किया जाता हुआ, **पूयमानः**=वासनाओं के उबाल से मलिन न किया जाता हुआ तू **नः स्वस्तिः**=हमारे लिये कल्याण को **आपवस्व**=प्राप्त करा। **बृहता रवेण**=महान् स्व शब्द के हेतु से **इन्द्रं आविश**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को तू प्राप्त हो, इसके शरीर में सर्वत्र प्रवेश वाला हो। तेरे प्रवेश से ही हृदय की पवित्रता होकर हृदयस्थ प्रभु की वाणी सुन पड़ेगी। यह 'आत्मा की आवाज' ही सर्वमहान् शब्द है। यह श्रोता की वृद्धि का कारण बनता है। हे सोम! तू **वाचं वर्धया**=हमारे जीवन में इस ज्ञान की वाणी का वर्धन कर और **पुरन्धिम्**=पालक व पूरक बुद्धि को **जनया**=प्रादुर्भूत कर। सोमरक्षण से ही ज्ञान की वाणियों को हम समझने के योग्य बनते हैं और उत्कृष्ट बुद्धि को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम कल्याण (नीरोगता आदि) का साधक है, हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाता है, इसके रक्षण से ज्ञान की वाणियों को हम समझने लगते हैं, बुद्धि की वृद्धि होती है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

जागृविः विप्रः

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः॥ ३७॥

जागृविः=सदा जागरणशील, निरन्तर रक्षा करनेवाला, **विप्रः**=हमारा विशेष रूप से पूरण करनेवाला **सोमः**=सोम (वीर्य) **मतीनाम्**=मननपूर्वक स्तुति करने वालों के **ऋता**=यज्ञों के द्वारा **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **चमूषु**=इन शरीर रूप पात्रों में **असदत्**=चारों ओर स्थित होता है। स्तवन व यज्ञों में लगे रहने से हमारे पर वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और सोम के रक्षण का सम्भव हो जाता है। सुरक्षित सोम हमारा रक्षण करता है और पूरण करता है। यह सोम वह है **यम्**=जिसको **मिथुनासः**=परस्पर मिलकर कार्य करनेवाले ही **सपन्ति**=स्पृष्ट करते हैं। लड़ने झगड़नेवाले, क्रोधी स्वभाव के पुरुष इस का रक्षण नहीं कर पाते। **निकामाः**=रक्षण की नितरां कामना वाले ही इसका रक्षण करते हैं। **अध्वर्यवः**=यज्ञशील, **रथिरासः**=शरीररथ को उत्तम बनानेवाले **सुहस्ताः**=सदा हाथों से शोभन कर्मों में लगे हुए पुरुष ही इस सोम को शरीर में पीनेवाले होते हैं। सोम को शरीर में सुरक्षित करने का मार्ग यही है कि हम इसके रक्षण की प्रबल कामना

वाले हों और यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारा रक्षण व पूरण करता है। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम सदा उत्तम कर्मों में व्यस्त रहकर वासनाओं से बचे रहें।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धनं कारिणे न, प्रयंसत्

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत्॥ ३८॥

सः=वह सोम (वीर्य) **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **नः**=हमें **सूरे उपधाता**=ज्ञान सूर्य के समीप धारण करनेवाला होता है। **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आ अप्राः**=पूरित करता है, मस्तिष्क को ज्ञान से तथा शरीर को शक्ति से। **सः**=वह सोम **वि आवः**=हमारे जीवन में से ज्ञानसूर्योदय के द्वारा, अन्धकारों को दूर करनेवाला होता है। **यस्य**=जिस सोम की **प्रिया चित्**=निश्चय से प्रिय धारायें **प्रियसासः**=प्रीणित करनेवाली होती हैं, और **ऊती**=रक्षण के लिये होते हैं। **सः**=वह सोम **धनं प्रयंसत्**=धन को ये इस प्रकार दे **न**=जैसे कि **कारिणे**=कर्म करनेवाले के लिये मजदूरी के रूप में धन को देते हैं। हम सोम का रक्षण करने के लिये काम श्रम करें, सोम हम श्रमिकों को पारिश्रमिक के रूप में धन को देगा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन में ज्ञान सूर्य का उदय करता है। शरीर व मस्तिष्क का पूरण करता है, अन्धकार को दूर करता है, हमें आवश्यक धनों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अविद्या पर्वत का ध्वंस

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन्॥ ३९॥

सः=वह **वर्धिता**=हमारी वृद्धि का करनेवाला **वर्धनः**=वृद्धिशील **पूयमानः**=पवित्र होता हुआ **सोमः**=सोम (वीर्य) **मीढ्वान्**=सुखों व शक्तियों का सेचन करनेवाला **नः**=हमें **ज्योतिषा**=ज्योति से **अभि आवीत्**=प्राप्त हो, ज्ञान-ज्योति के द्वारा हमारा रक्षण करनेवाला हो। **येना**=जिस सोम द्वारा प्राप्त ज्योति से **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **पितरः**=रक्षक **पदज्ञाः**=मार्ग को जाननेवाले **स्वर्विदः**=प्रकाश को प्राप्त करनेवाले लोग **गाः अभि**=ज्ञान की वाणियों का लक्ष्य करके **अद्रिं उष्णन्**=अविद्या पर्वत को दग्ध करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से वह ज्योति प्राप्त होती है, जो अविद्या पर्वत को दग्ध करनेवाली होती है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मुख्य रक्षक 'सोम'

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः॥ ४०॥

प्रथमे=अत्यन्त विस्तृत (प्रथ विस्तारे) **विधर्मन्**=विशिष्ट धारण के कर्म में **समुद्रः**=(स मुद्) आनन्द से युक्त यह सोम **अक्रान्**=अन्य सब वस्तुओं को लाँघ जाता है। सोम के समान कोई

अन्य वस्तु धारण करनेवाली नहीं है। यह सोम **प्रजाः जनयन्**=सब प्रजाओं को जन्म देता है, **भुवनस्य राजा**=सम्पूर्ण शरीर-लोक को दीप्त करता है। **वृषा**=यह शक्ति का सेचन करनेवाला सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय वाले पुरुष में **अधि सानो**=समुचित प्रदेश अर्थात् मस्तिष्क रूप द्युलोक में गतिवाला होता है। मस्तिष्क में यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। **अव्ये**=रक्षकों में उत्तम पुरुष में यह **सोमः**=सोम **बृहत् वावृधे**=खूब वृद्धि को प्राप्त करता है। **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ यह सोम **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला होता है।

भावार्थ—सोम ही मुख्य रक्षक है, यही हमारे अंग-प्रत्यंग को दीप्त करनेवाला है। हमें शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

इन्द्रे ओजः, सूर्ये ज्योतिः

म॒हत्तत्सोमो॑ महि॒षश्च॑कारा॒पां यद्गर्भोऽवृ॑णीत दे॒वान्।
अद॑धा॒दिन्द्रे॒ पव॑मान॒ ओजोऽज॑नय॒त्सूर्ये॒ ज्योति॒रिन्दुः॑॥ ४१॥

महिषः=पूजा के योग्य, अत्यन्त आदरणीय **सोमः**=सोम ने **तत् महत् चकार**=वह महान् कर्म किया **यत्**=कि **अपां गर्भः**=कर्मों का धारण करनेवाला होता हुआ **देवान्**=दिव्य गुणों का **अवृणीत**=वरण करता था। सोमरक्षण द्वारा क्रियाशीलता व दिव्यता की प्राप्ति होती है। **पवमानः**=यह पवित्र करनेवाला सोम **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **ओजः अदधात्**=ओजस्विता का स्थापन करता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **सूर्ये**=(सरति) निरन्तर क्रियाशील पुरुष में **ज्योतिः अजनयत्**=प्रकाश को उत्पन्न करता है।

भावार्थ—सोम दिव्यता, ओज व ज्योति को प्राप्त कराता है। मन को दिव्य, शरीर को ओजस्वी व मस्तिष्क को ज्योतिर्मय करता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मत्सि देवान्

मत्सि॑ वा॒युमि॒ष्टये॒ राध॑से च॒ मत्सि॑ मि॒त्रावरु॑णा पू॒यमा॑नः।
मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं दे॒वान्मत्सि॒ द्यावा॑पृथि॒वी दे॑व सोम॥ ४२॥

हे सोम! तू **वायुम्**=गतिशील पुरुष को, निरन्तर कर्त्तव्य कर्मों में लगे हुए पुरुष को **इष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिये **च**=तथा **राधसे**=कार्यों में संसिद्धि के लिये अथवा ऐश्वर्यशक्ति के लिये **मत्सिः**=आनन्दित करता है। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुम को सब के साथ स्नेह करनेवाले निर्दोष पुरुष को **मत्सि**=आनन्दित करता है। सोमरक्षण से ही स्फूर्ति व क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। सोमरक्षण ही हमें सबके प्रति स्नेह व निर्द्वेषता की भावना वाला बनाता है। हे सोम! तू **मारुतं शर्धः**=प्राणों के बल को **मत्सि**=आनन्दित करता है, समृद्ध करता है। **देवान् मत्सि**=दिव्य गुणों को हमारे में बढ़ाता है। हे **देव सोम**=प्रकाशमय सोम (वीर्य) तू **द्यावापृथिवी मत्सि**=द्युलोक व पृथिवीलोक को, मस्तिष्क व शरीर को **मत्सि**=आनन्दित करता है। सोम के द्वारा शरीर ओजस्वी व मस्तिष्क ज्योतिर्मय बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें 'क्रियाशील, स्नेहयुक्त, निर्द्वेष, प्राण-बल-सम्पन्न, दिव्य गुणों वाला तथा दीप्त शरीर व मस्तिष्क वाला' बनाता है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृजिनस्य हन्ता

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥ ४३ ॥

हे सोम! **ऋजुः**=सरल मन वाला तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। सोमरक्षण से हमारी प्रवृत्ति सरल होती है। **वृजिनस्य हन्ता**=यह सोम पाप का नष्ट करनेवाला है। **अमीवाम्**=रोगों को **च**=तथा **मृधः**=काम-क्रोध आदि हिंसक शत्रुओं को **अपबाधमानः**=सुदूर विनष्ट करता हुआ तू हे सोम! **गोनाम्**=इन ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणी रूप गौवों के **पयसा**=ज्ञानदुग्ध से **पयः**=ज्ञान को **अभिश्रीणन्**=अपरा विद्या व परा विद्या दोनों के दृष्टिकोण से (अभि) परिपक्व करता हुआ **त्वम्**=तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष का मित्र होता है। सो **वयम्**=हम **तव सखायः**=तेरे मित्र बनते हैं। तुझे अपनाते हुए हम अपने कल्याण को सिद्ध करते हैं।

भावार्थ—सोम पापों, रोगों व वासनाओं को विनष्ट करता है, ज्ञान को बढ़ाता है। इस प्रकार यह हमारा सच्चा मित्र है।

ऋषिः—**वसुक्रोवासिष्ठः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मध्वः सूदं, वस्वः उत्सम्

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **मध्वः सूदम्**=माधुर्य के झरने को (सूद=spring) **पवस्व**=प्राप्त करा। अर्थात् हमारे जीवन को माधुर्य से युक्त कर। **वस्वः उत्सम्**=वसुओं के स्रोत को तू प्राप्त करा। जीवन के लिये सब आवश्यक तत्त्व ही वसु हैं। उन सब तत्त्वों को जन्म देनेवाला यह सोम है। **च**=और हे सोम! तू **नः**=हमारे लिये **वीरम्**=वीर सन्तानों को **च**=और **भगम्**=ऐश्वर्य को देनेवाला हो। सोमरक्षण करनेवाला पुरुष वीर सन्तानों को प्राप्त करता है और सुपथ से धनार्जन कर पाता है। हे **इन्दो**=शक्तिशाली सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **स्वदस्व**=रुचिकर हो, जितेन्द्रिय पुरुष तेरे रक्षण में ही आनन्द का अनुभव करे। **च**=और **नः**=हमारे लिये **समुद्रात्**=उस आनन्दमय प्रभु से (स+मुद्) **रयिम्**=ज्ञानैश्वर्य को **आपवस्वा**=प्राप्त करानेवाला हो। सोमरक्षण से ही हृदयस्थ प्रभु की वाणी सुन पड़ती है और वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि होती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'माधुर्य, वसु, वीर सन्तान, ऐश्वर्य और ज्ञानैश्वर्य' को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गोभिः अभिः समसरत्

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥ ४५ ॥

सोमः=सोम **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **धारया**=धारणशक्ति के द्वारा **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान **हित्वा**=गतिशील होता है। यह सोम हमें शक्ति सम्पन्न बनाकर गतिशील बनाता है। **सिन्धुः न**=जैसे एक नदी **निम्नम्**=निम्न प्रदेश की ओर जाती है, इसी प्रकार **वाजी**=यह

शक्तिशाली सोम **अभि अक्षाः**=हमारे शरीर में क्षरित होता है। शरीर के अन्दर व्याप्त होता हुआ यह सोम अंग-प्रत्यंग को शक्तिशाली बनाता है, और इस प्रकार हमें गतिशील करता है। **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ यह सोम **वन्यम्**=उपासना में उत्तम (वन्=संभजन) **योनिम्**=शरीरगृह में **आ असदत्**=आसीन होता है। प्रभु की उपासना के होने पर वासनाओं के विनाश से सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के साथ **सम् असरत्**=गतिवाला होता है, तथा **अद्भिः सम्**=कर्मों के साथ गतिवाला होता है। सोमरक्षण से ज्ञान की भी वृद्धि होती है, तथा क्रियाशीलता की भी।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें ज्ञान व क्रिया को शक्ति से प्राप्त कराता है। सोम का रक्षण प्रभु उपासना द्वारा होता है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

धीरः तवस्वान्

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान्।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि॥ ४६॥

हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **एषः**=यह **स्यः**=वह प्रसिद्ध वे **सोमः**=आपको सोम (वीर्य) **चमूषु**=शरीरपात्रों में **पवते**=प्राप्त होता है। **उशते**=सोमरक्षण की कामना वाले मेरे लिये (कामयमानाय) यह सोम **धीरः**=(धियम् ईरयति) ज्ञान को प्रेरित करनेवाला है तथा **तवस्वान्**=प्रशस्त बल वाला है। यह सोम **स्वर्चक्षा**=प्रकाश को दिखानेवाला है, **रथिरः**=शरीर रूप उत्तम रथ वाला है, **सत्यशुष्मः**=सत्य के बल वाला है। मस्तिष्क में ज्ञान के प्रकाश को, मन में सत्य को प्राप्त कराता हुआ यह सोम शरीररथ को उत्तम बनाता है। यह सोम वह है **यः**=जो **देवयतां**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामना वालों का **कामः न**=सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले के समान **असर्जि**=उत्पन्न किया गया है। (कामः—कामदः इव)।

भावार्थ—सोम 'ज्ञान व शक्ति' को प्राप्त कराता है। सब कामनाओं का यह पूर्ण करनेवाला है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रत्नेन वयसा पुनानः

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन्॥ ४७॥

एषः=यह सोम **प्रत्नेन**=प्राचीन (पुराणे) **वयसा**=(Soundness of constitution) शरीर के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ, **दुहितुः**=(दुह प्रपूरणे) सोम का अपने शरीर में पूरण करनेवाले के **वर्पांसि**=रूपों व तेजों को **तिरः दधानः**=(तिरः सतः इति प्राप्तस्य नि० ३.२०) प्राप्त रूप में धारण करता हुआ है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम उत्कृष्ट रूप को प्राप्त कराता है और दीर्घकाल तक इस शरीर को स्वस्थ रखता है। **त्रिवरूथं**=काम-क्रोध-लोभ तीनों का निवारण करनेवाले **शर्म**=कल्याण को **वसानः**=धारण करता हुआ यह सोम **होता इव**=एक यज्ञकर्ता के समान **अप्सु**=कर्मों में **याति**=गतिवाला होता है। यह सोम **समनेषु**=संग्रामों में, व्याकुलता व क्षोभ के क्षेत्रों में **रेभन्**=प्रभु का स्तवन करनेवाला होता है। सोमरक्षक पुरुष जीवन संग्राम में प्रभुस्मरण करता हुआ आगे बढ़ता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से वही वृद्धावस्था में भी शरीर बड़ा ठीक बना रहता है, तेजस्विता कायम रहती है, काम-क्रोध-लोभ का आक्रमण नहीं होता, कर्मशीलता उत्पन्न होती है और प्रभुस्मरण के साथ हम जीवन संग्राम में लगे रहते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मधुमान् ऋतावा

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा॥ ४८॥

हे **देव**=प्रकाशमय **सोम**=वीर्य **नु**=अब **नः**=हमारे लिये **त्वम्**=तू **रथिरः**=शरीररथ को उत्तम बनानेवाला होता हुआ **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। तू **चम्वोः**=इन द्यावापृथिवी के निमित्त मस्तिष्क व शरीर के लिये, **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ हो। तेरी पवित्रता पर ही मस्तिष्क की ज्ञान दीप्ति व शरीर की शक्ति निर्भर करती है। यह सोम **अप्सु स्वादिष्ठः**=कर्मों में अधिक से अधिक आनन्द के देनेवाला है। सोमरक्षण ही क्रियाशील बन पाता है। **मधुमान्**=यह सोम जीवन में माधुर्य का संचार करनेवाला व **ऋतावा**=ऋत का, यज्ञादि उत्तम कर्मों का रक्षक है। सोम वह है **यः**=जो कि **देवः न**=उस प्रकाशमय प्रभु के समान हमें **सविता**=कर्मों में प्रेरित करनेवाला है। **सत्यमन्मा**=सत्यज्ञान वाला है। सोमरक्षण से ही बुद्धि की तीव्रता होकर सत्य ज्ञान प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर मस्तिष्क व शरीर को सुन्दर बनाता है। 'क्रियाशीलता, माधुर्य व ऋत' को प्राप्त कराता है। सत्य ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोम का पान कौन-कौन करते हैं?

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्॥ ४९॥

हे सोम! **गृणानः**=स्तुति किया जाता हुआ तू **वायुं अभिः**=क्रियाशील पुरुष के प्रति **वीती अर्षा**=पान के लिये गतिवाला हो। क्रियाशील पुरुष सोम का रक्षण करनेवाला बनता है। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **मित्रावरुणा अभि**=मित्र और वरुण की ओर प्राप्त हो। सबके प्रति स्नेह व निर्द्वेषता के भाव वाला व्यक्ति तेरा पान करे। **धीजवनम्**=बुद्धि के वेग वाले अर्थात् बुद्धि को खूब बढ़ानेवाले **रथेष्ठाम्**=शरीररथ के अधिष्ठाता बननेवाले **नरम्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य को तू **अभि**=(अर्षा) प्राप्त हो। यह 'धीजवनं रथेष्ठा नर' तेरा पान करनेवाला हो। तू **इन्द्रं**=उस जितेन्द्रिय पुरुष को अभि (अर्ष)=प्राप्त हो, जो कि **वृषणम्**=अपने अन्दर शक्ति का सेचन करता है, और अतएव **वज्रबाहुम्**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए है।

भावार्थ—सोम का पान 'क्रियाशील (वायु), स्नेह की भावना वाला (मित्र) व द्वेष का निवारण करनेवाला (वरुण), बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाला (धीजवन), जितेन्द्रिय (इन्द्र)' पुरुष ही करता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुवसन वस्त्रा

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥

हे सोम! **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ-हुआ **सुवसनानि**=उत्तम आच्छादनवाले **वस्त्रा**=इन अन्नमय कोश आदि वस्त्रों को **अभि अर्षः**=(अभिगमय) प्राप्त करा। अर्थात् तेरे द्वारा ये सब अन्नमय आदि कोश उत्तम बनें। तू हमें **सुदुघाः**=उत्तमता से दोहन के योग्य **धेनूः**=ज्ञानदुग्धदात्री वेदरूप गौवों को **अभि (अर्ष)**=प्राप्त करा। **नः**=हमारे लिये **चन्द्रा**=आह्लाद कर **हिरण्या**=हितरमणीय धनों को **अभि**=प्राप्त करा। जो **भर्तवे**=भरण-पोषण के लिये पर्याप्त हों। हे **देव सोम**=प्रकाशमय वीर्य! हमें **रथिनः**=शरीररथ को उत्तमता से ले चलनेवाले **अश्वान्**=इन्द्रियाश्वों को **अभि (अर्षा)**=प्राप्त करा।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब अन्नमय आदि कोश उत्तम बनते हैं, हमारी बुद्धि वेद धेनुओं से ज्ञानदुग्ध का दोहन करनेवाली बनती है, हम उत्तम धनों को प्राप्त करते हैं, उत्तम इन्द्रियाश्वों वाले होते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिव्य व पार्थिव वसुओं का प्रापण

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥

हे सोम! तू **दिव्या वसूनि**=दिव्य वसुओं को, मस्तिष्क रूप द्युलोक के ज्ञानधन को **नः अभि अर्ष**=हमारे लिये प्राप्त करा। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **विश्वा पार्थिवा**=सब शरीर रूप पृथिवी सम्बन्धी वसुओं को, शक्ति को **अभि (अर्ष)**=प्राप्त करा। मस्तिष्क में तू हमें ज्योतिर्मय, तथा शरीर में हमें शक्ति सम्पन्न बना। हमें तू उस दिव्य व पार्थिव वसु को, ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करा **येन**=जिससे कि हम **द्रविणम्**=धन को **अभि अश्नवाम**=प्राप्त करें। हे सोम! **नः**=हमें **जमदग्निवत्**=जमदग्नि की तरह, जिसकी जाठराग्नि भोजन का ठीक पाचन कर पाती है, उस पुरुष की तरह **आर्षेयम् अभि**=(ऋषौ भवं) वेद में उपदिष्ट ज्ञान की **अभि**=ओर ले चल।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें शरीर के तेज व मस्तिष्क की ज्योति को दे। इनके द्वारा हम जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धन को कमानेवाले हों। हमारी जाठराग्नि ठीक हो और हम ज्ञान की ओर झुकाव वाले हों।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

माँश्चत्व सरसि प्रधन्व

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **अया**=इस **पवा**=अपनी पवित्र करनेवाली धारा से **एना**=इन **वसूनि**=वसुओं को **पवस्व**=प्राप्त करा। **माँश्चत्वे**=अभिमन्यमान अभिमान आदि

शत्रुओं के चातक (विनाशक) **सरसि**=ज्ञानजल में **प्रधन्व**=तू गतिवाला हो। तू हमें उस ज्ञान को प्राप्त करा जो अहंकार आदि शत्रुओं का विनाश कर देता है। हे सोम! तेरी कृपा से **अत्र**=यहाँ हमारे जीवन में **ब्रध्नः चित्**=निश्चय से महान् आदित्य हो। यह सोमरक्षक पुरुष **वातः न जूतः**=वायु के समान सदा कर्म में प्रेरित हो। और **चित्**=निश्चय से **पुरुमेधः**=खूब यज्ञशील हो अथवा पालक व पूरक बुद्धि वाला हो। यह सुरक्षित सोम **तकवे**=गतिशील पुरुष के लिये **नरं दात्**=प्रगतिशील सन्तान को देनेवाला हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम वसुओं को और अभिमान विनाशक ज्ञानधनों को प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से जीवन में ज्ञान सूर्य का उदय होता है, वायु के समान क्रियाशीलता उत्पन्न होती है, बुद्धि की वृद्धि होती है व उत्तम सन्तान मिलती है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

श्रवाय्यस्य तीर्थे

उत नं एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ ५३ ॥

उत=और हे सोम! तू **नः**=हमें **एना पवया**=इस अपनी पवित्र करनेवाली धारा से **अधिश्रुते**=सर्वाधिक प्रसिद्ध **श्रवाय्यस्य तीर्थे**=श्रवणीय ज्ञान के तीर्थभूत-गुरुभूत प्रभु के समीप **पवस्व**=प्राप्त करा। प्रभु निरतिशय ज्ञानवाले हैं, (तन्निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्) वे गुरुओं के भी गुरु हैं (स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्)। सोमरक्षण के द्वारा पवित्र जीवनवाले होकर, हम प्रभु के समीप प्राप्त होते हैं। **नैगुतः** (नीचीनं गवन्ते शब्दायन्ते इति निगुतः शत्रवः, तेषां हन्ता 'नैगुतः')= काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करनेवाला सोम **षष्टिं सहस्रा वसूनि**=साठ हजार धनों को, अनन्त धनों को **रणाय**=शत्रुओं के साथ संग्राम के लिये **धूनवद्**=कम्पित करे, अर्थात् हमारे लिये इस प्रकार प्राप्त कराये **न**=जैसे कि **पक्वं वृक्षम्**=पके हुए फलों वाले वृक्ष को कम्पित करके फलों को प्राप्त कराते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम हमें शत्रु विजय के लिये आवश्यक सहस्रशः धनों को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—सोम हमें तीव्र बुद्धि बनाकर प्रभु को प्राप्त कराता है। तथा सहस्रशः वसुओं को प्राप्त कराके शत्रुओं का विजेता बनाता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृष+नाम

महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥

अस्य=इस सोम के **इमे**=ये **वृषनाम**='शक्ति का सेचन (वृष) और रोग आदि शत्रुओं का नमन' रूप कर्म **मही**=महत्वपूर्ण है और **शूषे**=सुखकर हैं। इसके ये कर्म **मांश्चत्वे**=अभिमान आदि शत्रुओं के विनाश के निमित्त होते हैं, और **पृशने**=(clinging to) चिपट जानेवाले, आसक्ति रूप शत्रुओं के विजय में **वधत्रे**=हिंसनशील होते हैं। सोम शक्ति के सेचन व शत्रुनमन रूप कार्यों के द्वारा हमारे अभिमान व आसक्ति रूप शत्रुओं को विनष्ट करके हमें 'निर्भय व निरहंकार' बनाता है। ऐसा बनकर के ही तो हम शान्ति को प्राप्त करते हैं। सो सोम हमें शान्ति लाभ कराता है। यह सोम **निगुतः**=अशुभ शब्द करनेवाले क्रोध आदि शत्रुओं को **अस्वापयत्**=सुला देता है

च=और **स्नेहयत्**=इनका वध कर देता है। (स्नेहयति destroy, kill) हे सोम! तू **अमित्रान्**=हमारे सब शत्रुओं को **अपाच**=(अप-अच) दूर कर। और **इतः**=हमारे इस जीवन से **अचिता**=यज्ञों में अग्निचयन न करने के भावों को **अप (अच)**=दूर करिये। हम सोमरक्षण से यज्ञशीलता की भावना वाले हों।

भावार्थ—सोम 'शक्ति से धन व शत्रुनमन' रूप कार्यों द्वारा हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हैं। सोमरक्षण हमें यज्ञशील बनाता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मघवद्भ्यः मघवा

सं त्री पवित्रा वितर्तान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥

हे सोम! तू **त्री**=तीनों **पवित्रा**=पवित्र **विततानि**=विस्तृत शक्तियों वाले शरीर, मन व बुद्धि को **समेषि**=सम्यक् प्राप्त होता है। सोमरक्षण से शरीर में उचित अग्नितत्त्व, मन में विद्युत् तत्त्व व मस्तिष्क में सूर्य की स्थिति होती है। **पूयमानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **एकम्**=उस अद्वितीय प्रभु की ओर **अनुधावसि**=क्रमशः गतिवाला होता है। सोमरक्षण से हम प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं। हे सोम! तू **भगः असि**=वस्तुतः भजनीय-सेवनीय है। **दात्रस्य**=देव धन का तू दाता **असि**=देनेवाला है। हे **इन्दो**=सोम! तू **मघवद्भ्यः**=ऐश्वर्य वालों से **मघवा**=ऐश्वर्यवाला है, अर्थात् सर्वाधिक ऐश्वर्यवाला है। सुरक्षित सोम ही सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से युक्त करता है।

भावार्थ—सोम शरीर, मन व बुद्धि को पवित्र करता है, हमें प्रभु की ओर ले चलता है। यह सेवनीय है, सब देव धनों को देनेवाला है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विश्ववित् मनीषी

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥

एषः=यह **सोम**=वीर्य **विश्ववित्**=सर्व पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करनेवाला, **मनीषी**=बुद्धिमान् **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यही ज्ञानादि का ईंधन बनता है, सो सब पदार्थों के ज्ञान का साधन है। बुद्धि की सूक्ष्मता इसी पर निर्भर करती है। यह सोम **विश्वस्य भुवनस्य**=सम्पूर्ण भुवन का, शरीर के अंग-प्रत्यंग का **राजा**=दीप्त करनेवाला है। यह **इन्दुः**=शक्तिशाली सोम **विदथेषु**=ज्ञानयज्ञों के निमित्त **द्रप्सान्**=अपने कणों को (Drops) **ईरयन्**=मस्तिष्क की ओर प्रेरित करता हुआ **वारम्**=वासनाओं को वारण करनेवाले **अव्यं**=रक्षकों में उत्तम पुरुष को **समया**=समीपता से **वि अतियाति**=विशेषतया खूब प्राप्त होता है।

भावार्थ—यह सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। सब पदार्थों के ज्ञान का साधन बनता है। बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। वासनाओं को रोकनेवाले को यह प्राप्त होता है।

ऋषिः—कुत्सः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

कवयो, न गृध्राः

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥ ५७ ॥

महिषाः=परमात्मा का पूजन करनेवाले **अदब्धाः**=वासनाओं से अहिंसित लोग **इन्दुं रिहन्ति**=सोम का आस्वादन करते हैं, सोमरक्षण के आनन्द का अनुभव करते हैं। इस सोमरक्षण के लिये **कवयः**=ज्ञानी पुरुष **पदे रेभन्ति**=उन मुनियों से गन्तव्य प्रभु के विषय में (पद्यते मुनिभिर्यस्मात् तस्मात् पद उदाहृतः) स्तुति शब्दों का उच्चारण करते हैं। **न गृध्राः**=लालची नहीं होते। प्रभुस्तवन की वृत्ति से दूर रहकर लालच में पड़ जाने पर सोमरक्षण का सम्भव नहीं होता। **धीराः**=ज्ञान में रमण करनेवाले धीर पुरुष **दशभिः क्षिपाभिः**=दसों इन्द्रियों को विषयों से पृथक् रखने के द्वारा, दस क्षिपाओं (परे फेंकना) के द्वारा **हिन्वन्ति**=सोम को शरीर में ही प्रेरित करते हैं। इस **अपां रसेन**=जलों के रस रूप सोम से (आपः रेतो भूत्वा०) **रूपम्**=अपने रूप को **समञ्जते**=सम्यक् अलंकृत करते हैं। यह सोम ही तो उन्हें तेजस्वी व ज्ञानदीप्त बनाकर उत्तम रूप प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभुस्तवन द्वारा वासनाओं से हिंसित न होना ही सोमरक्षण का मार्ग है। ज्ञान में प्रवृत्त रहना, लालच से दूर रहना भी सोमरक्षण के लिये आवश्यक है। सुरक्षित सोम हमें तेजोमय ज्ञानदीप्त रूप प्राप्त कराता है।

ऋषिः—कुत्सः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५८ ॥

हे **सोम**=वीर्य! **पवमानेन**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले **त्वया**=तेरे से **वयम्**=हम **भरे**=इस जीवन संग्राम में **शश्वत्**=बहुत प्रकार के **कृतम्**=पुण्य को **विचिनुयाम**=संचित करें। जीवन संग्राम में शत्रुओं को जीतकर पुण्यशाली हों। **मित्रः**=स्नेह की देवता, **वरुणः**=द्वेष निवारण की देवता, **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता व व्रतों को खण्डित न करने की देवता (व्रतपालन का भाव), **सिन्धुः**=(स्यन्दते) निरन्तर कार्यों में प्रवाहित रहने की देवता, **पृथिवी**=शक्तियों की विस्तार की देवता **उत्त**=और **द्यौः**=प्रकाश की देवता ये सब **नः**=हमारे **तत्**=मन्त्र के पूर्वार्ध में कहे गये सोमरक्षण द्वारा जीवन संग्राम में बहुविध पुण्य के चयन के संकल्प को **मामहन्ताम्**=आदृत करें। इन देवों की आराधना से हमारा यह संकल्प पूर्ण हो। सोमरक्षण में 'स्नेह, निर्द्वेषता, व्रतपालन, निरन्तर क्रियाशीलता, शक्ति विस्तार व ज्ञान का प्रकाश' साधन बनते हैं। इनके द्वारा सोमरक्षण करते हुए हम संग्राम में विजयी बनें।

भावार्थ—हम स्नेह आदि के अनुवर्तन से सोम का रक्षण करते हुए जीवन संग्राम में पुण्य का ही संचय करें।

इस जीवन संग्राम को सम्यक् चलानेवाला 'अम्बरीष' (war battle) ही अगले सूक्त का ऋषि है, यह मूर्तिमान् युद्ध ही है। यह 'वार्षागिर' है ज्ञान की वाणियों द्वारा सर्वत्र ज्ञान जल का सेचन करता है। इसीलिये 'ऋजिश्वा' ऋजुमार्ग से आगे बढ़नेवाला 'भरद्वाज' अपने में शक्ति को भरनेवाला

है। यह 'पवमान सोम' का शंसन करता है—

[९८] अष्टनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उत्तम धन

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम्। इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम्॥ १॥

हे **इन्दो**=सोम! **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन (ऐश्वर्य) को **अभ्यर्ण**=प्राप्त करा, जो कि **वाजसातमम्**=अधिक से अधिक बल को देनेवाला हो, **पुरुस्पृहम्**=बहुत ही स्पृहणीय हो अथवा पालक व पूरक होते हुए स्पृहणीय हो (पृपालनपूरणयोः)। उस धन को प्राप्त करा जो **सहस्रभर्णसम्**=हजारों का भरण करनेवाला हो। **तुविद्युम्नम्**=महान् ज्ञान ज्योतिवाला हो, **विभ्वासहम्**=महान् शक्तिशाली भी शत्रुओं का अभिभव करनेवाला हो।

भावार्थ—सोमरक्षण करनेवाला पुरुष धनार्जन करता है। यह धन उसकी बल वृद्धि व ज्ञान वृद्धि का साधन बनता है। यह धन बहुतों से स्पृहणीय, सभी का भरण करनेवाला होता है। यह धन उसे काम आदि शत्रुओं का शिकार नहीं बना देता।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'कवच के समान' यह सोम

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत। इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः॥ २॥

स्यः=वह **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ सोम **रथे**=इस शरीर रथ में **अव्ययम्**=न नष्ट होनेवाले **वर्म न**=कवच के समान **परि अव्यत**=आच्छादित किया जाता है। कवच के समान यह रक्षक होता है। कवच के धारण किये हुए योद्धा शत्रु शरों से शीर्ण शरीर नहीं किया जाता, इसी प्रकार सोमरूपी कवच को धारण करनेवाला रोग आदि से आक्रान्त नहीं होता। **इन्दुः**=यह सोम **द्रुणा**='द्रुगतौ' क्रियाशीलता के द्वारा **अभिहितः**=शरीर में ही स्थापित हुआ-हुआ **हियानः**=शरीर के अन्दर ही प्रेरित किया जाता हुआ **धाराभिः अक्षः**=अपनी धारण शक्तियों के साथ शरीर में संचरित होता है (क्षरति) क्रिया में लगे रहना ही वासनाओं से अनाक्रान्ति का साधन है, और इस प्रकार यह क्रियाशीलता सोमरक्षण का साधन हो जाती है।

भावार्थ—सोमरूपी कवच को धारण करनेवाले को शत्रुओं के बाण भेद सकते हैं।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अव्ये मदच्युतः

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः। धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः॥ ३॥

स्यः=वह **सुवानः**=उत्पन्न किया जाता हुआ **इन्दुः**=सोम **अव्ये**=रक्षण करने वालों में उत्तम पुरुष में **परि अक्षाः**=शरीर में ही चारों ओर संचार वाला होता है। शरीर में व्याप्त यह सोम **मदच्युतः**=उल्लास को टपकानेवाला होता है, जीवन को उल्लासमय बनाता है। **यः**=जो सोम **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **धारा**=अपनी धारणशक्ति के साथ **ऊर्ध्वः**=ऊर्ध्वगतिवाला होता है, वह **न**=(संप्रति) अब **गव्ययुः**=ज्ञान की वाणियों की कामना वाला होता हुआ **भ्राजा**=दीप्ति के साथ **एति**=प्राप्त कराता है। दीप्त ज्ञानाग्नि वाला पुरुष इन ज्ञान की वाणियों को अपनानेवाला बनता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम, उल्लास को प्राप्त कराता है, ऊर्ध्वगतिवाला होकर ज्ञानदीप्ति का कारण बनता है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

'सहस्त्री शतात्मा' रयि

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे। इन्दो सहस्त्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि॥ ४॥

हे **देव**=प्रकाशमय सोम! **सः त्वं हि**=वह तू ही **शश्वते**=(शश् प्लुतगतौ) स्फूर्ति के साथ क्रियाओं में लगे हुये **दाशुषे**=प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये **वसु**=जीवन धन को **विवाससि**=देता है। क्रिया में लगे रहना व प्रभुस्मरण ही सोमरक्षण का साधन है। सुरक्षित सोम इस रक्षक के लिये जीवन के लिये आवश्यक वसुओं को प्राप्त कराता है। हे **इन्दो**=सोम! तू **रयिम्**=उस धन को भी (विवाससि) प्राप्त कराता है जो **सहस्त्रिणम्**=सहस्त्रों की संख्या वाला है, अर्थात् जीवन यात्रा के लिये पर्याप्त है, तथा **शतात्मानम्**=शत वर्ष पर्यन्त हमें गति करानेवाला है (अत सातत्यगमने) जो हमें अन्त तक क्रियाशील बनाये रखता है। वह धन जो कि हमें आलस्य का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम प्रभुस्मरण पूर्वक क्रियाशील पुरुष को वसु सम्पन्न करता है। यह जीवनयात्रा के लिये पर्याप्त व निष्क्रिय न बना देनेवाले धन को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वसु+इष्+सुम्न

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः। नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो॥ ५॥

हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले **वसो**=हमारे जीवन को उत्तम निवास वाला बनानेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपके **अस्य**=इस **पुरुस्पृहः**=बहुतों से स्पृहणीय, खूब ही स्पृहणीय **वस्वः**=सोमरूप धन के, जीवन के उत्तम निवास के कारणभूत सोम के **नि नेदिष्ठतमाः**=निश्चय से अधिकतम हों, समीपता से इसे प्राप्त करनेवाले **स्याम**=हों। हे **अध्रिगो**=अधृतगमन प्रभो! जिन आपकी व्यवस्था में कोई रुकावट नहीं उत्पन्न कर सकता उन आपकी **इषः**=प्रेरणा के हम नेदिष्ठतम=हों। आपकी प्रेरणा को हम सुननेवाले हों। तथा **सुम्नस्य**=आपके स्तवन व आनन्द के हम समीप हों आपका स्तवन करें और आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा जीवन वासना शून्य होकर सोम धन का रक्षण करे। हम प्रभु प्रेरणा को सुननेवाले बनें और अद्भुत आनन्द को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

द्विः पञ्च स्व-सारः (दस बहिनें)

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम्। प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम्॥ ६॥

यह सोम वह है **यम्**=जिसको **द्विः पञ्च**=दस (दो बार पाँच), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व पाँच कर्मेन्द्रियाँ, **स्व-सारः**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली होकर **प्रस्नापयनि**=शुद्ध कर डालती हैं। इन्द्रियाँ विषयों में न जाकर जब अन्तर्मुखी वृत्तिवाली होती हैं, तो सोम शुद्ध बना रहता है, इसे वासनाओं का उबाल मलिन नहीं करता। उस सोम को ये शुद्ध करती हैं, जो **स्वयशसम्**=मनुष्य को अपने कर्मों से यशस्वी बनाता है। **अद्रि-संहतम्**=उपासना के द्वारा (adore) शरीर में सम्यक् गति वाला होता है (हन् गतौ) **प्रियम्**=प्रीति का जनक है। **इन्द्रस्य काम्ये**=जितेन्द्रिय पुरुष से कामना करने योग्य है और **ऊर्मिणम्** प्रकाश वाला है (ऊर्मि=Light) ज्ञानाग्नि को दीप्त करके

हमें ज्ञान के प्रकाश को देनेवाला है।

भावार्थ—आत्मतत्त्व की ओर चलती हुई इन्द्रियाँ सोम को शुद्ध बनाये रखती हैं। यह शुद्ध सोम हमें यशस्वी व प्रकाशमय जीवन वाला बनाता है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मदेन सह

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण। यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति॥ ७॥

त्यम्=उस **हर्यतम्**=सबसे स्पृहणीय कान्त, **हरिम्**=दुःखों व रोगों का हरण करनेवाले, **बभ्रुम्**=धारण करनेवाले सोम को **वारेण**=वासनाओं के निवारण के द्वारा **परिपुनन्ति**=सर्वथा पवित्र करते हैं। सोम शुद्धि के लिये अपने को वासनाओं से बचाना ही एकमात्र उपाय है। उस सोम को पवित्र करते हैं, **यः**=जो **विश्वान् देवान्**=सब देववृत्ति के पुरुषों को **इत्**=ही **मदेन सह**=उल्लास के साथ **परि गच्छति**=शरीर में चारों ओर प्राप्त होता है। सोमरक्षण देववृत्ति वाले पुरुष ही कर पाते हैं। सुरक्षित सोम उल्लास का जनक होता है।

भावार्थ—वासनाओं का निवारण करते हुए देव पुरुष ही सोम का पान करते हैं, यह सुरक्षित सोम जीवन में उल्लास का कारण बनता है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराडनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

दक्ष+श्रवः (बल+ज्ञान)

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम्। यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्१ण हर्यतः॥ ८॥

प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुम **अस्य अवसा हि**=इस सोम के रक्षण से ही **दक्षसाधनम्**=बल व उन्नति के साधनभूत रस का **पान्तः**=रक्षण करते हुए होवो। उस सोम के रक्षण से तुम बल व उन्नति का साधन करो **यः**=जो सोम **सूरिषु**=ज्ञानी स्तोताओं में **बृहत् श्रवः**=उत्कृष्ट ज्ञान को **दधे**=स्थापित करता है, ज्ञानाग्नि को दीप्त करके ज्ञान के उत्कर्ष का कारण बनता है। और **स्वः न**=सूर्य की तरह **हर्यतः**=कान्त-चमकता हुआ अथवा सूर्य की तरह सब से स्पृहणीय है, चाहने योग्य है।

भावार्थ—सोमरक्षण से बल की वृद्धि होती है, उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मानवी रोदसी

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी। देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि॥ ९॥

सः इन्दुः=वह सोम **वाम्**=आप दोनों **मानवी**=मानव हितकारी **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **जनिष्ट**=प्रादुर्भूत करता है। मस्तिष्क व शरीर के विकास के द्वारा यह सोम **यज्ञेषु**=यज्ञों में हमें प्रवृत्त करता है। यज्ञों के निमित्त ही तो सोम शरीर को शक्तिशाली व मस्तिष्क को ज्ञान दीप्त बनाता है। यह **देवः**=प्रकाशमय सोम **देवी**=प्रकाशमय द्यावापृथिवी को ही उत्पन्न करता है, शरीर को तेजोमय व मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करता है। यह तो सोम **गिरिष्ठाः**=ज्ञान की वाणियों में स्थित है, ज्ञान की वृद्धि का कारण बनता है। **तम्**=उस सोम को **तुविष्वणि**=(तुवि much स्वन-शोर) बहुत शोर में, व्यर्थ की बातों में **अस्रेधन्**=हिंसित कर देते हैं। बहुत बोलना सोमरक्षण के अनुकूल नहीं। मौन सोमरक्षण में सहायक होता है। बहुत न बोलकर कर्म में लगे

रहना ही सोमरक्षण का साधन है।

भावार्थ—सोम मस्तिष्क व शरीर दोनों को मानवहितकारी व प्रकाशमय बनाता है। ऐसे बनकर हम यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं। बहुत बोलना व कर्म न करना, सोमरक्षण का विरोधी है।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'इन्द्र-नर-देव' का सोमपान

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे। नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे॥ १०॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **वृत्रघ्ने**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पातवे**=शरीर के अन्दर ही व्याप्त होने के लिये **परिषिच्यसे**=शरीर में चारों ओर सिक्त होता है। अर्थात् सोम का पान (=शरीर में रक्षण) वासना को जीतनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष ही कर पाता है। **दक्षिणावते**=दान की वृत्ति वाले **नरे**=(नृ-ङे) पुरुष के लिये यह सोम शरीर में परिषिक्त होता है। और **सदनासदे**=यज्ञगृह में आसीन होनेवाले **देवाय**=देववृत्ति के पुरुष के लिये तू परिषिक्त होता है। अर्थात् सोम का रक्षण दानशील त्यागी पुरुष कर पाता है और यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में आसीन होनेवाला देव पुरुष कर पाता है।

भावार्थ—सोम का पान तीन व्यक्ति करते हैं, वासना का विजेता जितेन्द्रिय पुरुष, दानशील त्यागी पुरुष तथा यज्ञगृह में आसीन होनेवाला देव पुरुष।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

अपप्रोथन्तः हुरश्चितः

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन्। अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः॥ ११॥

ते=वे **व्युष्टिषु**=(prosperity) ऐश्वर्यों के निमित्त **प्रत्नासः**=सदा से चले आ रहे, अर्थात् सदा ऐश्वर्यों का कारण बनते हुए **सोमाः**=सोमकण **पवित्रे**=पवित्र हृदय वाले पुरुष में **अक्षरन्**=क्षरित होते हैं। इसके शरीर में ही इन सोमों का व्यापन होता है, जो ऐश्वर्यों का साधन बनते हैं। ये सोम **प्रातः**=प्रातःकाल ही **सनुतः**=अन्तर्हित, छिपकर मन में निवास करनेवाली, **हुरश्चितः**=कुटिलता से संचय की वृत्तियों को तथा **तान्**=उन **अप्रचेतसः**=नासमझी व अज्ञान की वृत्तियों को **अपप्रोथन्तः**=निराकृत करते हैं, सुदूर विनष्ट करते हैं। सोमरक्षण से कुटिलभाव व अज्ञान नष्ट होता है।

भावार्थ—पवित्र हृदय वाले पुरुष में रक्षित होकर सोम ऐश्वर्यों का कारण बनते हैं। ये कौटिल्य व अज्ञान को हमारे से दूर करते हैं।

ऋषिः—**अम्बरीष ऋजिष्वा च**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वाजगन्ध्यम्-वाजपस्त्यम्

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः। अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम्॥ १२॥

हे **सखायः**=मित्रो! **यूयं वयं च**=तुम और हम **सूरयः**=ज्ञानी स्तोता बनते हुए **तम्**=उस **पुरोरुचं**=सब से अग्रभाग में दीप्त हो रहे **वाजगन्ध्यम्**=(गन्ध=सम्बन्ध) शक्ति के सम्बन्ध में उत्तम, इस सोम को **अश्याम**=अपने अन्दर व्याप्त करें। शरीर में ही व्याप्त हुआ-हुआ सोम दीप्त का कारण बनता है **वाजपस्त्यम्**=शक्ति के गृहभूत इस सोम को हम सब **सनेम**=प्राप्त करें। सोम ही सब अंग-प्रत्यंगों को सबल बनाता है।

भावार्थ—प्रभुस्तवन व स्वाध्याय को अपनाकर हम सोम का रक्षण करें। यह सोम ही शक्ति

का घर है। यही हमारे सब अंगों को सबल बनाता है।

'प्रभुस्तवन ही सोमरक्षण का मुख्य साधन है' इस तत्त्व का इष्टा 'काश्यप' है। यह स्तोता तो बनता ही है 'रेभ'। साथ ही यह औरों को भी प्रभुस्तवन की प्रेरणा देता है 'सूनु'। ये रेभ और सूनु दोनों ही काश्यप अगले सूक्त के ऋषि हैं—

[९९] नवनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

प्रणवजप व वेदाध्ययन

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम्। शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः॥ १॥

हर्यताय=सब से स्पृहणीय **धृष्णवे**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले इस सोम के लिये, सोम के रक्षण के लिये **पौंस्यं धनुः**=शक्ति के अभिव्यञ्जक प्रणव रूप धनुष का **तन्वन्ति**=विस्तार करते हैं। प्रणव (ओ३म्) का जप वासना विनाश के द्वारा सोम का रक्षक होता है। इस प्रकार यह प्रणव रूप धनुष हमारे जीवनों में शक्ति को प्रकट करता है। **महीयुवः**=प्रभु की पूजा की कामना वाले ये लोग **विषाम् अग्रे**=मेधावियों के अग्रभाग में स्थित होते हुए **शुक्रां निर्णिजम्**=इस देदीप्यमान शोधक वेदवाणी रूप वस्त्र को **असुराय**=इस प्राणशक्ति का संचार करनेवाले सोम के लिये **वयन्ति**=बुनते हैं, अर्थात् वेदवाणी का अध्ययन करते हैं, इस प्रकार वासनाओं से अनाक्रान्त होते हुए सोम का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रणव का जप व वेद का स्वाध्याय सोमरक्षण के सर्वोत्तम साधन है। सुरक्षित सोम रोगकृमिरूप शत्रुओं का धर्षण करता है और हमारे जीवनों में प्राणशक्ति का संचार करता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'क्षपा परिष्कृतः' (सोमः)

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते। यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे॥ २॥

अध=अब **क्षपा**=गतमन्त्र के अनुसार प्रणवजप व वेदाध्ययन से वासनाओं के क्षपण के द्वारा, वासना विनाश के द्वारा **परिष्कृतः**=शुद्ध किया गया यह सोम **वाजान् अभि प्रगाहते**=शक्तियों का आलोडन करता है, शरीर में सब शक्तियों का सञ्चार करता है। यह तब होता है **यद्**=जब कि **ई**=निश्चय से **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणों वाले परिचरणशील यजमान की **धियः**=बुद्धि पूर्वक की जानेवाली क्रियायें **हरिम्**=सब रोगों का हरण करनेवाले सोम को **यातवे**=रोगकृमिरूप राक्षसों के विनाश के लिये **हिन्वन्ति**=शरीर में प्रेरित करती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये वासनाओं का विनाश आवश्यक है। उसके लिये सर्वोत्तम साधन यह है कि प्रभुस्मरण पूर्वक क्रियाओं में लगे रहें। सुरक्षित सोम रोगकृमिरूप शत्रुओं का विनाश करेगा। हमारे में शक्ति का संचार करेगा।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सूरयः आसभिः दधुः (सोम)

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः। यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः॥ ३॥

हम **तम्**=उस सोम को **मर्जयामसि**=शुद्ध करते हैं। प्रणवजप आदि के द्वारा वासनाओं से इसे मलिन नहीं होने देते। **अस्य**=इस सोम का **यः मदः**=जो उल्लास है वह **इन्द्रपातमः**=जितेन्द्रिय पुरुष से ही अतिशयेन पातव्य होता है। **यं**=जिस सोम को **गावः**=तत्त्वज्ञान के प्रति निरन्तर गति

वाले, अर्थों का औरों के लिये प्रकाश करनेवाले (गमयन्ति अर्थान्) **सूरयः**=ज्ञानी लोग **पुरा नूनं च**=पहले और अब भी अर्थात् सदा **आसभिः**=(असनं आसः) वासनाओं को परे फेंकने के द्वारा **दधुः**=धारण करते हैं।

भावार्थ—सोम धारण के लिये वासना विनाश आवश्यक है। शुद्ध हुआ-हुआ सोम जितेन्द्रिय पुरुष के लिये उल्लास के देनेवाला होता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

देवानां नाम बिभ्रतीः

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत। उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥ ४॥

पुनानम्=हमारे जीवनों को पवित्र करते हुए **तम्**=उस सोम को **पुराण्या गाथया**=इस सनातन वेदवाणी के द्वारा **अभ्यनूषत**=स्तुत करते हैं। वेदमन्त्रों में प्रभु द्वारा उपदिष्ट सोम के गुणों का शंसन करते हैं। **उत**=और **उ**=निश्चय से **देवानाम्**=देववृत्ति वाले पुरुषों के **नाम**=यश को अथवा शत्रुओं का नमन करनेवाले, शत्रुओं को झुका देनेवाले बल को **बिभ्रतीः**=धारण करती हुई **धीतयः**=इस सोम के पान की क्रियायें (धेट् पाने) **कृपन्त**=हमें शक्तिशाली बनाती हैं। सोम के गुणों का शंसन करनेवाला व्यक्ति सोम धारण के लिये यत्नशील होता है। धारित सोम इस सोमी पुरुष को दिव्य बल प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम के गुणों का शंसन करते हुए हम सोम के धारण का प्रयत्न करें। यह हमें दिव्य बल यश प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

दूतं न पूर्वचित्तये

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम्। दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः॥ ५॥

अव्यये (अ वि अय)=विविध विषयों में न भटकनेवाले **वारे**=वासनाओं का वारण करनेवाले पुरुष में **उक्षमाणं**=शक्ति का सेचन करते हुए **धर्णसिम्**=शरीर के धारक **तम्**=उस सोम को **पुनन्ति**=पवित्र करते हैं **मनीषिणः**=बुद्धिमान् पुरुष **दूतं न**=ज्ञान का संदेश देनेवाले के समान इस सोम को **पूर्वचित्तये**=पालक व पूरक ज्ञान की प्राप्ति के लिये **आ शासते**=चाहते हैं। इस सोम ही तो ज्ञानाग्नि को दीप्त करके व हृदय को पवित्र करके हमें ज्ञान का सन्देश सुनाता है।

भावार्थ—सोम शक्ति का सेचन करता है, प्रभु के ज्ञान-सन्देश को सुनने के योग्य हमें बनाता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उल्लास शक्ति व बुद्धि

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति। पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः॥ ६॥

सः=वह **सोमः**=सोम **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **मदिन्तमः**=अतिशयेन आनन्द को देनेवाला होता हुआ **चमूषु सीदति**=शरीर रूप पात्रों में स्थित होता है। शरीर में स्थित होता हुआ यह पवित्रता व उल्लास का जनक होता है। **पशौ न**=जैसे पशुओं में उसी प्रकार **रेतः आदधत्**=शक्ति का आधान करता हुआ यह सोम **धियः पतिः**=बुद्धि का रक्षक **वचस्यते**=कहा जाता है। यह सोम रक्षित हुआ-हुआ पशुओं के समान हमें सबल बनाता है, तो साथ ही हमारी बुद्धियों का रक्षक

होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'उल्लास शक्ति व बुद्धि' का जनक है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

महान् कर्मों का अवगाहन

स मृ॒ज्यते सु॒कर्म॑भिर्दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः। वि॒दे यदा॑सु सन्द॒दिर्म॒हीर॒पो वि गा॑हते॥ ७॥

सः=वह सोम **सुकर्मभिः**=उत्तम कर्मों में लगे हुए पुष्पों से **मृज्यते**=शुद्ध किया जाता है। कर्मों में लगे रहना ही हमें वासनाओं से बचाता है, और इस प्रकार सोमरक्षण का साधन हो जाता है। **देवः**=यह प्रकाशमय सोम **देवेभ्यः सुतः**=दिव्य गुणों की उत्पत्ति के लिये उत्पन्न किया गया है। यह सोम **यद्**=जब **आसु**=इन प्रजाओं में **सन्ददिः**=सम्यक् शक्ति व ज्ञान का देनेवाला **विदे**=जाना जाता है, तो यह सोम **महीः अपः**=महत्त्वपूर्ण कर्मों का **विगाहते**=अवगाहन करता है। सोमरक्षक पुरुष महत्त्वपूर्ण कर्मों का करनेवाला होता है।

भावार्थ—उत्तम कर्मों में लगे रहने से ही सोम का रक्षण होता है। सोमरक्षक शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके महान् कर्मों को करनेवाला होता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मत्सरिन्तमः

सु॒त इ॑न्दो प॒वित्र॒ आ नृभि॑र्य॒तो वि नी॑यसे। इन्द्रा॑य मत्स॒रिन्त॑मश्च॒मूष्वा नि षी॑दसि॥ ८॥

हे **इन्दो**=सोम! **नृभिः यतः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से संयत हुआ-हुआ तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **पवित्रे**=पवित्र हृदय वाले इस पुरुष में **आविनीयसे**=सर्वथा ले जाया जाता है। सोम का शरीर में व्यापन ही इसका शरीर में संयम है। हे सोम! **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मत्सरिन्तमः**=अतिशयेन आनन्द को देनेवाला तू **चमूषु**=इन शरीर पात्रों में **आनिषदसि**=चारों ओर विराजता है।

भावार्थ—संयत सोम अतिशयेन आह्लाद का जनक होता है।

'रेभसूनू काश्यपौ' ही अगले सूक्त के भी ऋषि हैं—

[१००] शततमं सूक्तम्

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अद्रुहः—मातरः

अ॒भी न॑वन्ते अ॒द्रुहः॑ प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्। व॒त्सं न पूर्व॒ आयु॑नि जा॒तं रि॑हन्ति मा॒तरः॑॥ १॥

अद्रुहः=द्रोह की वृत्ति से रहित पुरुष **प्रियम्**=इस प्रीति के जनक **इन्द्रस्य काम्यम्**=जितेन्द्रिय पुरुष से चाहने के योग्य इस सोम को **अभिनवन्ते**=प्राप्त होते हैं, इसकी ओर जाते हैं। हृदयों में द्रोह व वैर आदि की भावनायें सोमरक्षण के लिये अनुकूल नहीं होती। **पूर्वे आयुनि**=जीवन के प्रारम्भ में जीवन के प्रारम्भिक भाग अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में **मातरः**=अपने जीवन का निर्माण करनेवाले व्यक्ति **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए इस सोम को **रिहन्ति**=इस प्रकार आस्वादित करते हैं **न**=जैसे कि उत्पन्न हुए-हुए **वत्सम्**=बछड़े को मातरः=धेनुएँ चाटती हैं। धेनुओं का वत्सों के प्रति जैसा प्रेम होता है, इसी प्रकार सोम के प्रति उन व्यक्तियों का प्रेम होता है, जो अपने जीवन का निर्माण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—द्रोह शून्यता सोमरक्षण के लिये आवश्यक है। जीवन का निर्माण करनेवाले व्यक्ति सोम का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्विबर्हसं रयिम्

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्। त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

हे **इन्दो**=शक्तिशाली **सोम**=वीर्य! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **द्विबर्हसम्**=(द्वयोः स्थानयोः परिवृढम् सा०) शरीर व मस्तिष्क दोनों स्थानों में प्रभु भूत (प्रभौ परिवृढः) अर्थात् शरीर को दृढ़ व मस्तिष्क को दीप्त बनानेवाले **रयिम्**=ऐश्वर्य को **आभर**=हमारे में धारण कर। हे सोम! तू **दाशुषः**=अपने को तेरे प्रति दे डालनेवाले, तेरे भक्त, तेरे रक्षक पुरुष के **गृहे**=इस शरीररूप घर में **त्वं**=तू **विश्वानि**=सब **वसूनि**=वसुओं को **पुष्यसि**=पुष्ट करता है। सोम जीवन रक्षण के सब तत्त्वों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम मस्तिष्क को दीप्त व शरीर को सशक्त बनाता है, यह सब वसुओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

मनोयुजं धियम्

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः। त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥

हे **सोम**=वीर्य! शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ **त्वम्**=तू **मनोयुजम्**=मन के योग वाली **धियम्**=बुद्धि को **सृज**=उत्पन्न कर, **न**=जैसे कि **तन्यतुः**=गर्जने वाला मेघ **वृष्टिम्**=वृष्टि को पैदा करता है। सुरक्षित सोम चित्तवृत्ति की शान्ति का कारण बनता है। इस शान्त मन से युक्त बुद्धि अपने व्यापार को उत्तमता से कर पाती है। हे सोम! **त्वम्**=तू ही **पार्थिवा वसूनि**=इस शरीर रूप पृथिवी से सम्बद्ध शक्ति रूप वसुओं को **च**=तथा **दिव्या**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से सम्बद्ध ज्ञानधनों को **पुष्यसि**=पुष्ट करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम पार्थिव व दिव्य वसुओं को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

परि धावति

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति। रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥

यथा=जैसे **जिग्युषः**=विजयशील योद्धा का वाजी=घोड़ा युद्ध में इधर-उधर दौड़ता है, उसी प्रकार हे सोम! **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए **ते**=तेरी **धारा**=धारा **परिधावति**=शरीर में चारों ओर शान्ति करती हुई शोधन करती है। **रंहमाणा**=गति करती हुई यह धारा **अव्ययम्**=(अ वि अव्) विषयों में न भटकनेवाले **वारम्**=वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुष को प्राप्त होती है और यह जीवन संग्राम में **वाजी इव**=घोड़े की तरह **सानसिः**=संभजनीय होती है। घोड़ा जैसे युद्ध में विजय कराता है, इसी प्रकार यह सोम जीवन संग्राम में विजय का साधक होता है।

भावार्थ—सोम का जीवन संग्राम में यही स्थान है, जो युद्ध में एक विजेता योद्धा के लिये घोड़े का।

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

क्रत्वे दक्षाय

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च॥ ५॥

हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन् बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले **सोम**=वीर्य! तू **नः**=हमें **क्रत्वे**=‘शक्ति प्रज्ञान व कर्म’ के लिये तथा **दक्षाय**=सब प्रकार की उन्नति के लिये (दक्ष् To grow) **धारया**=अपनी धारण शक्ति के साथ **पवस्व**=प्राप्त हो। हे सोम! तू **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **इन्द्राय पातवे**=इन्द्र के लिये जितेन्द्रिय पुरुष के लिये, पीने के योग्य होता है। **मित्राय**=सब के प्रति स्नेह वाले पुरुष के लिये होता है, **च**=और **वरुणाय**=द्वेष का निवारण करनेवाले पुरुष के लिये होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ‘शक्ति प्रज्ञान कर्म व वृद्धि’ का कारण बनता है। इसका रक्षण ‘जितेन्द्रिय, सब के प्रति स्नेह वाला, निर्द्वेष’ पुरुष ही कर पाता है।

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

वाजसातमः मधुमत्तमः

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः। इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः॥ ६॥

हे सोम! **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **धारण**=अपनी धारण शक्ति के साथ **पवित्रे**=पवित्र हृदय वाले पुरुष में **वाजसातमः**=अतिशयेन शक्ति को देनेवाला होता हुआ **पवस्व**=प्राप्त हो। हे **सोम**=वीर्य! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये, **विष्णवे**=व्यापक मनोवृत्ति वाले (उदार हृदय) पुरुष के लिये तथा **देवेभ्यः**=देववृत्ति वाले पुरुषों के लिये **मधुमत्तमः**=अतिशयेन माधुर्य को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—जितेन्द्रिय उदार हृदय दिव्य वृत्ति के पुरुष हृदय को पवित्र बनाकर सोम का रक्षण करते हैं। यह उन्हें शक्ति व माधुर्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

विधर्मणि

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः। वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि॥ ७॥

हे **पवमान**=जीवन को पवित्र बनानेवाले सोम! **त्वाम्**=तुझ **हरिम्**=दुःखों व रोगों के हरण करनेवाले को **मातरः**=जीवन का निर्माण करनेवाले, **अद्रुहः**=द्रोह की भावना से रहित पुरुष **रिहन्ति**=आस्वादित करते हैं। अर्थात् तेरे रक्षण में एक अद्भुत आनन्द का अनुभव करते हैं। हे सोम! **विधर्मणि**=विशिष्ट धारणात्मक कार्य के निमित्त तेरा इस प्रकार ये आस्वादन करते हैं, **न**=जैसे कि **जातं वत्सम्**=उत्पन्न हुए-हुए बछड़े को **धेनवः**=नव सूतिका गौ चाटती दिखती हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये अद्रोह आवश्यक है। रक्षित सोम ही धारण करता है।

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

अज्ञानान्धकार-विनाश

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः। शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे॥ ८॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **चित्रेभिः रश्मिभिः**=अद्भुत ज्ञानरश्मियों के द्वारा **महि श्रवः**=महनीय ज्ञान को **यासि**=प्राप्त कराता है (या प्रापणे)। सुरक्षित सोम ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। हे सोम! तू **दाशुषः गृहे**=दाश्वान् के घर में, तेरे प्रति अपना अपना अर्पण

करनेवाले के इस शरीरगृह में **शर्धन्**=शक्तिशाली की तरह आचरण करता हुआ **विश्वानि तमांसि**=सब अन्धकारों को **जिघ्नसे**=समाप्त करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम अज्ञानान्धकार का विनाशक होता है।

ऋषिः—**रेभसूनू काश्यपौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

कवच

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे। प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना॥ ९॥

हे **महिव्रत**=महनीय कर्मों वाले सोम! **त्वम्**=तू **द्यां च**=मस्तिष्क रूप द्युलोक को, **च**=और **पृथिवी**=शरीर रूप पृथिवी को **अतिजभ्रिषे**=अतिशयेन धारण करता है। सोम के सर्वमहान् कर्म ये ही हैं कि यह मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानसूर्य से दीप्त करता है और इस शरीर रूप पृथिवी लोक को तेज की अग्नि से दीप्त करनेवाला होता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **महित्वना**=अपनी महिमा से **द्रापिम्**=कवच को **प्रति मुञ्चथाः**=धारण करता है। इस कवच से रक्षित पुरुष पर न रोग आक्रमण कर पाते हैं, न वासनाएँ।

भावार्थ—रक्षित सोम के महान् कर्म ये हैं कि यह मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है, शरीर को सशक्त करता है, और हमें रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाने के लिये कवचरूप होता है।

अगले सूक्त में प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि 'अन्धीगुः श्यावाश्विः' है। 'अन्धस्' सूक्त दिन-रात के लिये प्रयुक्त होता है (अहर्वा अन्धः, अन्धो रात्रिः)। दिन-रात अर्थात् सदा से गतिशील है वह 'अन्धीगु' है, यह श्यावाश्वि गतिशील इन्द्रियाश्वों वाला है। यह प्रार्थना करता है—

[१०१] एकोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**अन्धीगुः श्यावाश्वि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

दीर्घजिह्व्यम् श्वा अपश्नथन

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे। अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम्॥ १॥

हे **सखायः**=मित्रो! **वः**=तुम्हारे लिये **पुरःजिती**=असुर पुरियों का विजय करनेवाले **अन्धसः**=उत्पन्न रस के लिये **दीर्घजिह्व्यं**=इस दीर्घ जिह्वा वाले **श्वानम्**=स्वयं लोभ रूप कुत्ते को **अपश्नथिष्टन**=दूर हिंसित करो, स्वाद का लोभ ही यहाँ 'दीर्घजिह्व्यं श्वानं' इस शब्द से कहा गया है। स्वाद के वशीभूत हो जाने पर सोम के रक्षण का सम्भव नहीं रहता। यदि स्वाद को जीतकर हम सोम के रक्षण के लिये यत्नशील होंगे तो यह रक्षित सोम हमारे लिये आसुर भावों का पराजय करनेवाला होगा। इन आसुरभावों के विनाश से हमारा जीवन उल्लासमय होगा।

भावार्थ—स्वादेन्द्रिय को जीते बिना सोम के रक्षण का सम्भव नहीं होता। सुरक्षित सोम आसुरभावों का विनाशक होता है।

ऋषिः—**अन्धीगुः श्यावाश्वि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अश्वो न कृत्व्यः

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः॥ २॥

यः=जो सोम है वह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **पावकया**=पवित्रता को करनेवाली **धारया**=अपनी धारण शक्ति से **परिप्रस्यन्दते**=शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है। शरीर में सुरक्षित सोम अंग-प्रत्यंग को पवित्र कर देता है। **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **अश्वः न**=युद्ध में घोड़े के समान जीवन

संग्राम में **कृत्व्यः**=(कर्मणि साधुः) कर्मों में कुशल है। यह सोम ही हमें जीवन संग्राम में विजयी बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम पवित्रता व संग्राम-विजय को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अन्धीगुः श्यावाश्वि**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दुरोषं सोमं

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया। यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः॥ ३॥

नरः=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **तं सोमम्**=उस सोम को **अद्रिभिः**=(adore) उपासनाओं के द्वारा **यज्ञं अभिहिन्वन्ति**=इस जीवन यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं। उपासना के द्वारा सोम सुरक्षित रहता है, वही वस्तुतः जीवन को यज्ञमय बनाता है। उस सोम को ये सुरक्षित करते हैं जो **दुरोषम्**=सब बुराइयों का दहन करनेवाला है। इसलिये इसका रक्षण करते हैं कि **विश्वाच्या धिया**=सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करानेवाली (विश्वं ज्ञानं अंचित्या) बुद्धि के हेतु से। सुरक्षित सोम बुद्धि की तीव्रता व सूक्ष्मता का हेतु बनता है।

भावार्थ—उपासना द्वारा सुरक्षित सोम बुराइयों को दग्ध करके हमें उस तीव्र बुद्धि से प्राप्त कराता है जो सब ज्ञानविज्ञान का ग्रहण करनेवाली होती है।

ऋषिः—**ययातिर्नाहुषः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मधुमत्तमाः—मन्दिनः

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः। पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः॥ ४॥

सुतासः=उत्पन्न हुए-हुए **सोमाः**=सोम **मधुमत्तमाः**=अत्यन्त माधुर्य को लिये हुए हैं, सुरक्षित होने पर ये जीवन को मधुर बनाते हैं। **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये ये **मन्दिनः**=हर्ष को देनेवाले हैं। **पवित्रवन्तः**=पवित्रता को करनेवाले ये सोम **अक्षरत्**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में संचरित होते हैं। हे सोमकणो! **वः मदाः**=तुम्हारे उल्लास **देवान् गच्छन्तु**=इन देववृत्ति वाले पुरुषों को प्राप्त हों। देववृत्ति वाले पुरुष ही सोम का रक्षण कर पाते हैं। वे ही सोम जनित उल्लास का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोमकण 'माधुर्य, हर्ष, पवित्रता व उल्लास' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**ययातिर्नाहुषः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

ओजसा विश्वस्य ईशानः

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्। वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा॥ ५॥

'**इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवते**=प्राप्त होता है' **इति**=यह बात **देवासः**=देववृत्ति के विद्वान् पुरुष **अब्रुवन्**=कहते हैं। सोम जितेन्द्रिय को ही प्राप्त होता है। **ओजसा**=ओजस्विता से **विश्वस्य**=सब का **ईशानः**=स्वामी यह सोम **वाचस्पतिः**=सब ज्ञान की वाणियों का रक्षक है। अर्थात् सोमरक्षण से बुद्धि की तीव्रता होकर जीवन में इन ज्ञानवाणियों का रक्षण होता है। यह सोम **मखस्यते**=यज्ञ की कामना करता है। अर्थात् एक पुरुष यज्ञशील बनता है, तो उसे सोम की अवश्य प्राप्ति होती है। यज्ञशीलता सोमरक्षण में साधन बनती है।

भावार्थ—सोमरक्षण जितेन्द्रिय ही कर पाता है। सुरक्षित सोम ज्ञान को प्राप्त कराता है। इस के रक्षण के लिये यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहना आवश्यक है।

ऋषिः—ययातिर्नाहुषः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

वाचमीङ्खयः

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे॥ ६॥

सहस्रधारः=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला **सोमः**=सोम **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह सोम **समुद्रः**=(स+मुद्) आनन्द से युक्त है। **वाचं ईङ्खयः**=ज्ञान की वाणियों को हमारे में प्रेरित करनेवाला है यह सोम सुरक्षित होने पर आनन्द व ज्ञान के वर्धन का कारण बनता है। **सोमः**=यह सोम **रयीणां पतिः**=सब कोशों के ऐश्वर्यों का रक्षक है। यह **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **इन्द्रस्य सखा**=जितेन्द्रिय पुरुष का मित्र है जितेन्द्रिय पुरुष में ही सोम का निवास होता है। और सुरक्षित होकर यह सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से युक्त करता है। 'तेज-वीर्य-बल व ओज-मन्यु व सहस्' सब इस सोम से ही प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सोम 'सहस्रधार, समुद्र, वाचमींखय, रयिपति व इन्द्र सखा' है।

ऋषिः—नहुषो मानवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

पूषा

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति। पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥ ७॥

अयम्=यह सोम **पूषा**=हमारा पोषण करनेवाला है। **रयिः**=यह वास्तविक ऐश्वर्य है। **भगः**=यह भजनीय-सेवनीय है, सब सौभाग्यों का कारण बनता है। **सोमः**=यह सोम **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **अर्षति**=शरीर में गतिवाला होता है। यह सोम **विश्वस्य भूमनः**=सब प्राणियों का **पतिः**=रक्षक है। यह **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **व्यख्यद्**=तेज व ज्ञान से प्रकाशित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'पूषा रयि व भग' है। यह सब का रक्षक तथा 'मस्तिष्क व शरीर' का प्रकाशक है।

ऋषिः—नहुषो मानवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रियाः घृष्वयः (गावः)

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः। सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः॥ ८॥

उ=निश्चय से **प्रियाः**=प्रीति की जनक **घृष्वयः**=शत्रुओं का घर्षण करनेवाली **गावः**=ज्ञान की वाणियाँ **सम् अनूषत**=मिलकर सोम का स्तवन करती हैं। इन में सोम के गुणों का शंसन है। और वे कह रही हैं कि **सोमासः**=ये सोमकण **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होते हैं। ये सोम ही **पथः कृण्वते**=मार्गों को करते हैं, अर्थात् हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देते। **पवमानासः**=ये पवित्रता को करनेवाले हैं और **इन्दवः**=हमें शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—वेदवाणियाँ स्पष्ट कह रही हैं कि ये सोमकण उल्लास के जनक हैं, पवित्र करनेवाले व शक्ति को देनेवाले हैं।

सूचना—'प्रियाः और घृष्वयः' ये भी 'सोमासः' का विशेषण मानने पर अर्थ यह होगा कि ये सोम प्रीति के जनक हैं और रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं का घर्षण करनेवाले हैं।

ऋषिः—नहुषो मानवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

ओजिष्ठ

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्। यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै॥ ९॥

हे **पवमान**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले सोम! **यः**=जो तेरा **ओजिष्ठः**=ओजस्वितम, हमें अधिक से अधिक शक्तिशाली बनानेवाला रस है **तम्**=उस **श्रवाय्यम्**=(श्रावसे उत्तमम्) ज्ञान-प्रापण में उत्तम, ज्ञानाग्नि के दीपन द्वारा ज्ञानवर्धक रस को **आभर**=हमारे लिये सर्वथा पुष्ट करिये। **सः**=जो रस **पञ्च-चर्षणीः**=पञ्चजनों को, पाँचों यज्ञों से युक्त जनों को **अभि**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है यज्ञशीलता ही मनुष्य को वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाती है। हे सोम! तू हमें उस रस को प्राप्त करा **येन**=जिससे कि **रयिम्**=सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्यों को **वनामहे**=हम प्राप्त करें। इस सोमरस (वीर्यशक्ति) ने ही तो हमें 'तेज, वीर्य, ओजबल, मन्यु व सहस्' को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—हमें वह सोम प्राप्त हो जो कि हमें 'ओजस्वी, ज्ञानी, यज्ञशील व ऐश्वर्ययुक्त' बनाता है।

ऋषिः—**मनुः सांवरणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

स्वाध्यः स्वर्विदः

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः। मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥ १०॥

इन्दवः=हमें शक्तिशाली बनानेवाले **सोमाः**=सोमकण **पवन्त**=प्राप्त होते हैं। ये सोमकण **अस्भ्यम्**=हमारे लिये **गातुवित्तमाः**=अधिक से अधिक मार्ग के प्रापक हैं। सोमरक्षक पुरुष मर्यादित जीवन वाला होता हुआ मार्गभ्रष्ट नहीं होता। ये सोमकण **मित्रः**=हमें प्रमीति से (मृत्यु से) बचानेवाले हैं, **सुवानः**=उत्पन्न किये जाते हुए व शरीर में प्रेरित किये जाते हुए ये **अरेपसः**=हमारे जीवन को निर्दोष बनाते हैं। **स्वाध्यः**=ये उत्तम ध्यानवाले हैं, हमारी वृत्ति को ध्यानयुक्त करते हैं। इस प्रकार **स्वर्विदः**=अन्तःप्रकाश को प्राप्त कराते हैं (स्वः=प्रकाश, विद् लाभे)।

भावार्थ—सोमरक्षण हमारे जीवन को 'मर्यादित, नीरोग व निर्दोष' बनाता है। ये हमें ध्यानवृत्ति वाला बनाकर अन्तःप्रकाश प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**मनुः सांवरणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अभितः वसुविदः

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि। इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः॥ ११॥

अद्रिभिः=उपासकों से (आदृ) **विसुष्वाणासः**=विशेष रूप से शरीर में प्रेरित किये जाते हुए ये सोमकण **गोः**=इस वेदवाणी रूप धेनु के **अधित्वचि**=आधिक्येन सम्पर्क में **चितानाः**=हमें संज्ञान युक्त करते हैं। सोमरक्षण से वेदधेनु का सम्पर्क हमारे साथ बढ़ता है और हमारा ज्ञान वृद्धि को प्राप्त करता है। ये **अभितः**=दोनों ओर ऐहलौकिक व पारलौकिक **वसुविदः**=ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले सोमकण **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **इषम्**=अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को **सम् अश्वरन्**=सम्यक् उच्चारित करते हैं। हमें पवित्र हृदयवाला बनाकर प्रभु प्रेरणा के सुनने के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—अन्तःप्रेरित सोमकणों से बुद्धि की सूक्ष्मता होती है और हम अधिकाधिक ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करते हैं। ये हमें उभयलोक के ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हुए प्रभु प्रेरणा को सुनने का पात्र बनाते हैं।

ऋषिः—**मनुः सांवरणः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सूर्यासो न दर्शतासः

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः। सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते॥ १२॥

एते=ये **पूताः**=पवित्र हुए-हुए **सोमासः**=सोम वासनाओं के आक्रमण से न मलिन हुए-हुए सोमकण **विपश्चितः**=हमें ज्ञानी बनाते हैं। बुद्धि को तीव्र करके ये हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं। **दध्याशिरः**=(दधि च आशीः च) ये धारण करनेवाले हैं (धत्ते) और शरीर में समन्तात् रोगकृमियों को शीर्ण करनेवाले हैं (आशृणान्ति) ये सोमकण **सूर्यासः न**=सूर्यों के समान **दर्शतासः**=दर्शनीय हैं। हमें खूब तेजस्वी व सूर्यसम दीप्त बनाते हैं। सूर्य की तरह ही **जिगत्नवः**=निरन्तर गमनशील हैं। **घृते**=ज्ञानदीप्ति के निमित्त **ध्रुवाः**=ध्रुव साधन हैं। निश्चय से ज्ञानदीप्ति को करनेवाले हैं।

भावार्थ—सोम ज्ञान को बढ़ाते हैं, धारण करते हैं व रोगकृमियों को नष्ट करते हैं। हमें सूर्यसम तेजस्वी बनाते हैं, क्रियाशीलता को उत्पन्न करते हैं, ज्ञानदीप्ति का निश्चित कारण हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अराधसं श्वानम् अपहत

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः। अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥ १३॥

सुन्वानस्य=उत्पन्न किये जाते हुए **अन्धसः**=इस अदनीय=शरीर में ही **धारणीय**=सोम के अर्थात् सोम सम्बन्धी **तद्**=उस **वचः**=वचन को **मर्तः**=मनुष्य **न वृत**=(वृ=Keep away, oppose) अपने से दूर न रखे व इस वचन का विरोध न करे कि हे **भृगवः**=ज्ञान से अपना परिपक्व करनेवाले पुरुषो! **अराधसं**=सिद्धि में विघ्नभूत **श्वानम्**=इस लोभरूप कुत्ते को, विशेषतया स्वाद के लोभ को **अपहत**=अपने से सुदूर भगानेवाले होवो, **न मखम्**=यज्ञ को नहीं। लोभ को दूर करके सदा यज्ञशील बने रहो। स्वाद का लोभ सोमरक्षण का प्रबल विरोधी है। स्वाद सोम का विनाशक है। इसके विपरीत सदा यज्ञशेष को खाने की वृत्ति सोमरक्षण की अनुकूलता वाली है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये मूलभूत बात यह है कि हम स्वाद को जीतकर सदा यज्ञशील बनें, यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**प्रजापतिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

क्रियाशीलता द्वारा सोमरक्षण

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः। सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम्॥ १४॥

जामिः=सब उत्तम वसुओं को जन्म देनेवाला हमारा यह बन्धुभूत सोम **अत्के**=निरन्तर गतिशील पुरुष में **आ अव्यत**=सर्वरक्षा संवृत होता है, सुरक्षित रहता है। उसी प्रकार सुरक्षित रहता है, **न**=जैसे कि **ओण्योः**=रक्षक माता-पिता की **भुजे**=भुजा में **पुत्रः**=पुत्र। रक्षक माता-पिता की भुजा पुत्र का रक्षण करती है। इसी प्रकार क्रियाशीलता सोम का रक्षण करती है। यह सोम **जारः न**=सब शत्रुओं को जीर्ण करनेवाले के समान होता हुआ **योषणाम्**=इस वेदवाणी रूप पत्नी की ओर **सरत्**=गतिवाला होता है। वेदज्ञान को प्राप्त करता हुआ यह **वरः न**=श्रेष्ठ पुरुष के समान **योनिम्**=मूल उत्पत्ति स्थान प्रभु में **आसदम्**=आसीन होने के लिये होता है। सोमरक्षण के द्वारा ज्ञान वृद्धि होकर **अन्ततः**=प्रभु दर्शन होता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता से सोमरक्षण होता है। और सोमरक्षण से ज्ञान वृद्धि होकर प्रभु दर्शन।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दक्षसाधनः

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी। हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम्॥ १५॥

सः=वह सोम **वीरः**=विशेष रूप से शत्रुओं को कम्पित करनेवाला व **दक्षसाधनः**=बल व उन्नति का साधक होता है। यह सोम वह है, **यः**=जो **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **वि तस्तम्भ**=विशेष रूप से थामता है। शरीर को यही तेजस्वी बनाता है और मस्तिष्क को यही ज्ञानदीप्त करता है। **हरिः**=यह सब दुःखों का हरण करनेवाला सोम **पवित्रे**=पवित्र हृदय वाले पुरुष में **अव्यत**=रक्षित होता है। वहां रक्षित हुआ-हुआ यह **वेधाः न**=विधाता के समान शरीरस्थ सब शक्तियों का निर्माणकर्ता के समान होता हुआ **योनिम् आसदम्**=मूल उत्पत्ति स्थान प्रभु में आसीन होने के लिये होता है।

भावार्थ—'हृदय की पवित्रता' सोमरक्षण का साधन बनती है। यह सोम हमारे शत्रुओं को नष्ट करके हमें उन्नत करता है। यह हमारे मस्तिष्क व शरीर को ठीक करता है। सब वसुओं का निर्माण करता हुआ हमें अन्ततः प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

गव्ये अधि त्वचि कनिक्रदत्

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि। कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम्॥ १६॥

अव्यः=रक्षणीय **सोमः**=सोम **वारेभिः**=वासनाओं के निवारण के द्वारा **पवते**=हमें प्राप्त होता है। वासनायें ही तो इसके विनाश का कारण होती हैं। यह सोम **गव्ये**=वेद धेनु से प्राप्त होनेवाले ज्ञानदुग्ध के **अधित्वचि**=आधिक्येन सम्पर्क में **कनिक्रदत्**=प्रभु का आह्वान करता है। सोमरक्षण से ज्ञान बढ़ता है और प्रभु स्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है। **वृषा**=यह सुखों का वर्षण करनेवाला **हरिः**=रोगों का हर्ता सोम **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष **निष्कृतम्**=संस्कृत हृदय को **अभ्येति**=प्राप्त होता है। हृदय की परिशुद्धि सोमरक्षण के लिये आवश्यक है।

भावार्थ—सोमी पुरुष ज्ञान प्राप्त कर के प्रभु का आह्वान करता है। सुखों की वर्षण व दुःखों का हरण यह सोम ही करता है। पवित्र हृदय में यह आसीन होता है।

सोमरक्षण से पवित्र हुआ-हुआ यह पुरुष 'त्रित' बनता है, तीनों 'काम, क्रोध, लोभ' को तैर जाता है। यह कहता है—

[१०२] द्व्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

महीनां शिशुः

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्। विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता॥ १॥

क्राणा=शरीर में सुरक्षित सोम यज्ञों को करनेवाला होता है। सोमरक्षक पुरुष यज्ञिय वृत्ति वाला बनता है। यह **महीनां**=उपासकों की बुद्धि को **शिशुः**=तीव्र करनेवाला होता है (शो तनूकरणे)। **ऋतस्य**=सत्य वेदज्ञान के **दीधितिम्**=प्रकाश को **हिन्वन्**=अपने धारक के हृदय में प्रेरित करता है। इस प्रकार वृत्ति को यज्ञिय बनाकर, बुद्धि को तीव्र करके तथा सत्य ज्ञान की किरणों को प्रकाशित करके यह सोम **विश्वा प्रिया**=सब प्रिय वस्तुओं का **परिभुवत्**=व्यापन करनेवाला होता है **अध**=और अब **द्विता**=शरीर व मस्तिष्क दोनों का विस्तार करनेवाला होता है। यह सोम

शरीर में शक्ति को व मस्तिष्क में दीप्ति को स्थापित करता है।

भावार्थ—सोम हमारी वृत्ति को यज्ञिय बनाता है, बुद्धि को तीव्र करता है, ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराता है, सब प्रिय वस्तुओं का व्यापन करता हुआ शरीर को सबल व मस्तिष्क को ज्योतिर्मय करता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सप्त धामभिः अध प्रियम्

उप॑ त्रि॒तस्य॑ पा॒ष्यो॑३॒॑रभ॑क्त॒ यद् गुहा॑ प॒दम्। य॒ज्ञस्य॑ स॒प्त धाम॑भि॒रध॑ प्रि॒यम्॥ २॥

यत्=जब **त्रितस्य**='काम-क्रोध-लोभ' को तैर जानेवाले त्रित के **पाष्योः**=पाषाणवत् दृढ़ मस्तिष्क व शरीर में और **गुहा**=हृदय रूप गुहा में **पदम्**=स्थान को **उप अभक्त**=समीप से सेवित करता है, अर्थात् शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम जब मस्तिष्क शरीर व हृदय में अपना कार्य करता है तो यह सोमधारक पुरुष **यज्ञस्य**=उस उपासनीय प्रभु के **सप्त धामभिः**=सातों 'भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं' शब्दों से वर्णित 'स्वास्थ्य-ज्ञान-जितेन्द्रियता-हृदय की विशालता-शक्तिविकास-तप व सत्य' रूप तेजों को प्राप्त करता है और **अध**=अब **प्रियम्**=उस प्रिय प्रभु को प्राप्त करनेवाला बनता है। सोमरक्षण के लिये वासनाओं को जीतना आवश्यक है। यह सोम ही सुरक्षित होकर मस्तिष्क हृदय व शरीर को दीप्त निर्मल व सशक्त बनाता है। ऐसी स्थिति में प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलता हुआ यह पुरुष सातों प्रयाणों को तैर करता हुआ प्रभु को पानेवाला बनता है। **यज्ञस्य सप्त धामभिः**=इन शब्दों में योग की सप्त भूमिकाओं का भी संकेत स्पष्ट है। इन सात भूमिकाओं को पार करके यह योगी अपने प्रिय प्रभु को पानेवाला बनता है।

भावार्थ—कामादि शत्रुओं से तैरने वाला, दृढ़ शरीर वाला योग सातों भूमियों को पार कर साधक प्रभु को प्राप्त कर सकता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

त्रीणि धारय

त्रीणि॑ त्रि॒तस्य॒ धार॑या पृ॒ष्ठेष्वेर॑या र॒यिम्। मिमी॑ते अ॒स्य॒ योज॑ना॒ वि सु॒क्रतु॑ः॥ ३॥

हे सोम! तू **त्रितस्य**=काम-क्रोध-लोभ को तैरनेवाले इस पुरुष के **त्रीणि धारय**=शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों का धारण कर, इसे कर्म उपासना व ज्ञान वाला बना। इसके इन 'शक्ति-यज्ञ व ज्ञान' रूप **रयिम्**=ऐश्वर्यों को **पृष्ठेषु**=शिखरों पर **एरयः**=प्रेरित कर। यह सोमी पुरुष शक्ति यज्ञ व ज्ञान रूप ऐश्वर्यों के दृष्टिकोण से बड़ा उन्नत हो। यह **सुक्रतुः**=उत्तम 'शक्ति यज्ञ व प्रज्ञान' वाला पुरुष **अस्य**=इस सोम के **योजना**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में मेल को **वि मिमीते**=विशेष रूप से करनेवाला होता है। जितना-जितना यह सोमरक्षण के लाभ को देखता है, उतना-उतना सोम को अपने साथ जोड़ने की कामना वाला होता है।

भावार्थ—सोम हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों का धारण करता है यह 'शक्ति यज्ञ व प्रज्ञान' रूप ऐश्वर्यों को बढ़ाता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ध्रुवो रयीणाम्

ज॒ज्ञा॒नं स॒प्त मा॒तरो॑ वे॒धाम॑शासत श्रि॒ये। अ॒यं ध्रु॒वो र॑यी॒णां चिके॑त॒ यत्॥ ४॥

जज्ञानम्=शरीर में शक्ति का विकास करते हुए **वेधम्**=(विधाताम्) विशिष्ट रूप से धारण

करनेवाले इस सोम को **सप्त-मातरः**=सात गायत्री आदि छन्दों में होने के कारण सात संख्या वाली वेदमातायें **श्रिये**=शोभा के लिये **आशासत**=उपदिष्ट करती हैं (अनु शासन्ति)। वेदमाता अपने सन्तान भूत जीवों के लिये यही उपदेश करती है कि यह सोम सुरक्षित हुआ-हुआ तुम्हारी शोभा के लिये होगा। **अयम्**=यह सोम ही **यत्**=क्योंकि **रयीणाम्**=सब ऐश्वर्यों का **ध्रुवः**=निश्चित आधार **चिकेत**=जाना जाता है। सारे ऐश्वर्य इस सोम से ही प्रादुर्भूत होते हैं। यही उनका ध्रुव सोम है।

भावार्थ—वेदमाता का यही उपदेश है कि 'सोम का रक्षण करो। यह तुम्हारी श्री का कारण होगा। यही तुम्हें सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेगा'।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

सर्वदेवमय स्पृहणीय जीवन

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः। स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत्॥ ५॥

अस्य व्रते=इस सोमरक्षण के कर्म के होने पर **सजोषसः**=समान रूप से प्रीति वाले **विश्वे देवासः**=सब देव **अद्रुहः**=द्रोहशून्य होते हैं। अर्थात् सोमरक्षण से जीवन सर्वदेवमय बनता है। **यत्**=जब **रन्तयः**=सोमरक्षण में प्रीति वाले होते हुए **जुषन्त**=इस सोम का सेवन करते हैं तो **स्पार्हाः**=स्पृहणीय जीवनवाले **भवन्ति**=होते हैं। वस्तुतः सोमरक्षण ही जीवन को सुन्दर बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन सर्वदेवमय व स्पृहणीय बनता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

कविं मंहिष्ठम्

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन्। कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम्॥ ६॥

यम्=जिस सोम को **ई**=निश्चय से **ऋतावृधः**=ऋत का अपने अन्दर वर्धन करनेवाले लोग **गर्भम्**=गर्भ के रूप में **अजीजनन्**=उत्पन्न करते हैं। शरीर के अन्दर ही स्थित हुआ-हुआ यह सोम **दृशे चारुम्**=दर्शन के लिये अत्यन्त सुन्दर होता है। सोमरक्षण से शरीर तेजस्वी होकर दर्शनीय बन जाता है। उस सोम को ये अपने अन्दर गर्भरूप से करते हैं, जो **किवम्**=उनको क्रान्तदर्शी बनाता है, **महिष्ठम्**=अधिक से अधिक ऐश्वर्यों का देनेवाला है। अतएव **अध्वरे**=इस जीवमय यज्ञ में **पुरुस्पृहम्**=अत्यन्त स्पहणीय है।

भावार्थ—व्यवस्थित जीवन से हम सोम का रक्षण करते हैं। यह सोम हमारे जीवन को दर्शनीय व सुन्दर बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

सशक्त शरीर व दीप्त मस्तिष्क

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा। तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते॥ ७॥

यत्=जब **यज्ञम्**=श्रेष्ठतम कर्मों को **आनुषक्**=निरन्तर **तन्वानाः**=विस्तृत करते हुए यज्ञशील लोग **अञ्जते**=सोम से अपने को अलंकृत करते हैं, तो यह सोम उन द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **त्मना**=स्वयं **अभि**=(गच्छति) प्राप्त होता है, जो **समीचीने**=परस्पर संगत हैं, **यह्वी**=महान् हैं और **ऋतस्य मातरा**=ऋत का निर्माण करनेवाले हैं। सोम शक्ति से परिपुष्ट मस्तिष्क और शरीर ऋत अर्थात् यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का ही निर्माण करते हैं। मनुष्य निरन्तर

यज्ञादि कर्मों में लगा रहे तो वासनाओं से बचा रहता है। इस प्रकार यह सोमरक्षण के योग्य बनता है। सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर दोनों का पोषण करता है। सोम से शरीर सशक्त बनता है तो मस्तिष्क दीप्त। यही दोनों का संगत होना है। सशक्त शरीर व दीप्त मस्तिष्क मनुष्य को महान् बनाते हैं। ये जीवन को अनृत से दूर करके ऋतमय बनाते हैं।

भावार्थ—यज्ञों में लगे रहकर वासनाओं से अनाक्रान्त हम सोम का रक्षण करते हैं। यह हमारे मस्तिष्क व शरीर को दीप्त व सशक्त बनाकर महान् बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ज्ञान के प्रकाश की प्राप्ति

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः। हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे॥ ८॥

हे सोम! तू **क्रत्वा**=प्रज्ञान के द्वारा तथा **शुक्रेभिः**=निर्मल (शुचि) **अक्षभिः**=इन्द्रियों के द्वारा **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से **व्रजं**=अन्धकार समूह को **अप ऋणोः**=दूर कर। सोम ज्ञान को बढ़ाने व इन्द्रियों को निर्मल बनाने के द्वारा मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञान सूर्य से दीप्त कर देता है। यह सोम **प्र अध्वरे**=इस प्रकृष्ट जीवनयज्ञ में **ऋतस्य दीधितिम्**=सत्य ज्ञान के प्रकाश को **हिन्वन्**=प्रेरित करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम प्रज्ञामवृद्धि व इन्द्रियों के नैर्मल्य के द्वारा ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराता है।

सोमरक्षण के द्वारा शरीर को सशक्त व मस्तिष्क को दीप्त बनाता हुआ यह 'द्वित' बनता है। यह दोनों का विस्तार करनेवाला (द्वौ तनोति) आप्त बनता है, प्रभु को प्राप्त करने वालों में उत्तम। यह कहता है—

[१०३] त्र्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्। भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥ १॥

पुनानाय=पवित्र करनेवाले, **वेधसे**=कर्मों के विधाता **सोमाय**=इस सोम के लिये, सोम के रक्षण के लिये **वचः**=स्तुतिवचन **उद्यतम्**=उद्यत हुआ है। प्रभु का स्तवन करने से वृत्ति के ठीक बने रहने के द्वारा सोम का रक्षण होता है। **मतिभिः**=बुद्धियों के द्वारा **जुजोषते**=प्रीणित करनेवाले इस सोम के लिये स्तुति वचनों को इस प्रकार **प्रभर**=धारण कर, **न**=जैसे कि एक कर्मकर्ता के लिये **भृतिम्**=भृति को धारण करते हैं। सोम हमारे लिये बुद्धि का सम्पादन करता है। सो हम सोम का साधन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तवन द्वारा सोम का रक्षण करें। रक्षित सोम हमें पवित्र करता है, हमारे जीवन में यह विधाता के समान होता है, हमें बुद्धियों से युक्त करता है।

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सधस्थता

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति। त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः॥ २॥

वाराणि=द्वेष का व विषयवासनाओं का निवारण जिनसे किया गया है, तथा **अव्यया**=जो विषयों में भटक नहीं रही ऐसी इन्द्रियों को **गोभिः अञ्जानः**=ज्ञान की वाणियों से अलंकृत करता हुआ यह सोम **परि अर्षति**=शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है। सुरक्षित सोम ज्ञान का वर्धक

होता है। **हरिः**=यह सब मलों का हरण करनेवाला सोम **त्री**=तीनों—शरीर, मन व बुद्धि को **पुनानः**=पवित्र करता हुआ **सधस्था**=जीव परमात्मा को साथ-साथ ठहरनेवाला **कृणुते**=करता है। पूर्ण परिशुद्धि होने पर जीव परमात्मा में स्थित होता है ये दोनों सधस्थ हो जाते हैं।

भावार्थ—सोम हमें ज्ञान से अलंकृत करता है, पवित्र करता है, परमात्मा के साथ सहस्थिति को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

आनन्दमय कोश की ओर

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति। अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत॥ ३॥

अव्यये=(अवि अय) विविध विषयों में न भटकनेवाले **वारे**=वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुष में यह सोम **मधुश्चुतं कोशं परि**=आनन्द को संचारित करनेवाले कोश की ओर **अर्षति**=गतिवाला होता है। अर्थात् सोमी पुरुष अन्नमय आदि कोशों से ऊपर उठकर आनन्दमय कोश की ओर चलनेवाला होता है। उस इस सोम को **ऋषीणां**=वेदों की **सप्त वाणी**=सात छन्दों में कही गयी वाणियाँ **अभि नूषत**=स्तुत करती हैं। इन वेद वाणियों में सोम की महिमा का प्रतिपादन हुआ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम अध्यात्मवृत्ति वाले बनकर अन्नमय आदि कोशों से ऊपर उठकर आनन्दमय कोश की ओर गति वाले होते हैं।

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

बुद्धि-दिव्यगुण व नीरोगता

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः। सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः॥ ४॥

यह सोम **मतीनां परिणेता**=बुद्धियों का हमें सब प्रकार से प्राप्त करानेवाला है। **विश्वदेवः**=सब दिव्य गुणों वाला है और **अदाभ्यः**=रोग आदि से हिंसित होनेवाला नहीं। सुरक्षित सोम बुद्धि को बढ़ाता है, दिव्य गुणों का उपजाता है और शरीर को नीरोग बनाता है। यह **सोमः**=सोम (वीर्य) **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **चम्वोः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **विशत्**=प्रवेश करता है शरीर को सशक्त व मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता हुआ यह **हरिः**=सब शारीर व मानस दु:खों का हरण करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम बुद्धि को तीव्र, मन को दिव्य, शरीर को नीरोग बनाता है।

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

दैवीः स्वधाः अनु

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्। पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः॥ ५॥

हे सोम! तू **इन्द्रेण**=जितेन्द्रिय पुरुष के साथ **सरथम्**=इस शरीर रूप समान रथ में **दैवीः स्वधाः अनु**=शरीरस्थ सब देवों की आत्मधारण शक्तियों का लक्ष्य करके **परियाहि**=गतिवाला हो। शरीर में सुरक्षित सोम इन शरीरस्थ देवों का पेय बनता है और इस प्रकार उनकी शक्ति को बढ़ाता है। यही देवों का सोम-पान है। आँख में स्थित सूर्य, नासिका में स्थित वायु व मुख में स्थित अग्नि आदि देव इस सोम से ही शक्ति सम्पन्न बनते हैं। **वाघद्भिः**=धारण करने वालों से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ यह सोम **वाघत**=अंग-प्रत्यंग की शक्तियों को प्राप्त कराता हुआ **अमर्त्यः**=इन धारण करने वालों को नीरोग बनाता है। सोमरक्षण से नीरोगता प्राप्त होती है।

भावार्थ—शरीरस्थ सोम शरीरस्थ सब देवों को शक्ति प्राप्त कराता है। इस प्रकार सब अंगों को सशक्त करता हुआ यह नीरोगता को देनेवाला है।

ऋषिः—**द्वित आप्त्यः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

देवः देवेभ्यः सुतः

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः। व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥

सप्तिः न=युद्ध में सर्पणशील घोड़े के समान यह सोम **वाजयुः**=रोगकृमि आदि शत्रुओं के साथ संग्राम की कामना वाला होता है। **देवः**=प्रकाशमय वह सोम **देवेभ्यः**=शरीरस्थ देवों के लिये **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। इस सुरक्षित सोम से ही सब देवों को शक्ति प्राप्त होती है। यह **परि व्यानशिः**=शरीर में चारों ओर व्याप्त होनेवाला सोम **पवमानः**=पवित्रता को करनेवाला होता है और **विधावति**=शरीर में विशिष्ट गतिवाला होकर उसका शोधन कर डालता है।

भावार्थ—शरीरस्थ सोम 'शक्ति, दिव्यगुणों व पवित्रता' को प्राप्त करानेवाला होता है।

सोमरक्षण से 'ज्ञान व बल' दोनों ही शक्तियाँ 'शिखम्' अर्थात् 'शिखर पर पहुँचनेवाली होती हैं सो इन शक्तियों वाले 'शिखण्डिन्यौ' हैं, ये वस्तुतत्व को देखनेवाले होने से 'काश्यप्यौ' तथा निरन्तर क्रियाशील होने से 'अप्सरसौ' (अप्+सरस्) हैं। अपना पूरण करने से 'पर्वत' हैं— ज्ञानोपदेश से सब के शोधन में प्रवृत्त होने से 'नारद' है (नरसमूहं दायति)। ये कहते हैं—

सप्तमोऽनुवाकः

[१०४] चतुरुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥
छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

घरों में मिलकर उपासना

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत। शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

सखायः=हे मित्रो! **आनिषीदत**=आकर नम्रता से आसीन होवो। मिलकर इस 'हविर्धान' (पूजागृह) में बैठो। **पुनानाय**=सब को पवित्र करनेवाले प्रभु का **गायत**=गुणगान करो। प्रभु का स्तवन चित्तवृत्ति के शोधन के लिये आवश्यक है। **न (संप्रति)**=और अब **यज्ञैः**=इन उपासना यज्ञों से **शिशुम्**=(शो तनूकरणे) तुम्हारी बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले इस सोम को **परिभूषत**=शरीर के अंगों में ही चारों ओर अलंकृत करो। शरीरस्थ यह सोम '**श्रिये**'=शोभा के लिये हो।

भावार्थ—घरों में मिलकर प्रभु-पूजन करते हुए हम वातावरण को धार्मिक बनायें। इस प्रकार उपासनाओं द्वारा सोम का हम शरीर में रक्षण करें जिससे यह शोभा की वृद्धि का कारण बने।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥
छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गयसाधनम्

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्। देवाव्यं१ मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

वत्सं न=जैसे बछड़े को **मातृभिः**=मातृभूत गौवें के साथ संसृष्ट करते हैं, उस माता के समीप बछड़ा सुरक्षित रहता है, इसी प्रकार **ई**=निश्चय से **गयसाधनम्**=प्राणशक्तियों के (गयः प्राणम्) सिद्ध करनेवाले इस सोम को **मातृभिः**=इन वेदमाताओं से **संसृजत**=संसृष्ट करो। यह वेदाध्ययन

(=ज्ञान की प्राप्ति) इन्हें सुरक्षित करनेवाली होगी। उस सोम को ज्ञान प्राप्ति से संसृष्ट करो जो कि **देवाव्यं**=सब दिव्यगुणों का रक्षक हो, **मदम्**=उल्लास का जनक है और **अभि द्विशवसम्**=हमें दोनों ज्ञान व शारीरिक शक्ति के बल को प्राप्त करानेवाला है। सुरक्षित सोम मस्तिष्क को ज्ञान से बलवान् तथा शरीर को शक्ति से बलवान् बनाता है।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से सोम का रक्षण होता है। यह 'प्राणशक्ति, उल्लास, दिव्यगुण व ब्रह्मक्षत्र' का विकास करता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥
छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शर्धाय वीतये

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये। यथा मित्राय वरुणाय शन्तमः ॥ ३ ॥

दक्षसाधनम्=सब उन्नतियों के सिद्ध करनेवाले इस सोम को **पुनाता**=पवित्र करो। **यथा**=जिससे कि वह **शर्धाय**=शत्रुओं के अभिभव के लिये रोगकृमि आदि शत्रुओं के विनाश के लिये तथा **वीतये**=अज्ञानान्धकार के विनाश के लिये होता है। इस सोम को पवित्र करो **यथा**=जिस प्रकार यह **मित्राय**=सब के प्रति स्नेह करनेवाले **वरुणाय**=द्वेष निवारण करनेवाले के लिये **शन्तमः**=अतिशयेन शान्ति को देनेवाला होता है। वस्तुतः सोमरक्षण हमें मित्र व वरुण बनाकर वास्तविक शान्ति प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को उन्नत करता है। शत्रुओं को कुचलता है, अन्धकार को दूर करता है, शान्ति प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥
छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वसुविदम्

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत। गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

हे सोम! **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **वसुविदं त्वा**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले तुझको **वाणीः**=स्तुति वाणियाँ **अभि अनूषत**=स्तुत करती हैं। तेरे गुणों का गायन करती हुई ये वाणियाँ हमें तेरे रक्षण में अधिक और अधिक प्रीतिवाला करती हैं। हम **गोभिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा **ते वर्णं**=तेरे इस चोगे (covering) या आवरण को **अभिवासयामसि**=आच्छादित करते हैं। ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में तत्पर रहने पर हम वासनाओं से बचे रहते हैं और सोम को सुरक्षित कर पाते हैं।

भावार्थ—खाली समय को ज्ञान प्राप्ति में बिताने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और सोम के रक्षण का सम्भव होता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥
छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

देवप्सराः

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि। सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिये, हे **मदानां पते**=सब उल्लासों की रक्षा करनेवाले सोम! **देवप्सराः असि**=देवरूप है। सुरक्षित होने पर हमारे जीवनों

को दिव्य गुणोंवाला बनाता है। तेरे रक्षण से हम देवरूप हो जाते हैं। हे सोम! तू **सख्ये**=मित्र के लिये **सखा इव**=एक मित्र की तरह **गातुवित्तमः भव**=अतिशयेन मार्ग को प्राप्त करानेवाला हो। तेरे रक्षण से तीव्र बुद्धि होकर हम कर्तव्याकर्तव्य विवेक कर सकें। तथा तेरे रक्षण से ही पवित्र हृदय होकर हम अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'उल्लास, दिव्यता व मार्गदर्शक ज्ञान' प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥
छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

सोमरक्षण व पवित्र व्यवहार

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम्। अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः॥ ६॥

हे सोम! तू **अस्मत्**=हमारे से **सनेमि**=शीघ्र ही (१२.४० नि०) **कञ्चित्**=इस अवर्णनीय रूप वाले **अत्रिणम्**=हमें खाजानेवाले **रक्षसं**=राक्षसी भाव को **अपाकृधि**=दूर कर। सोमरक्षण से सब आसुरी वृत्तियों का विनाश होता ही है। हे सोम! तू **अदेवं**=इस देव विरोधी भाव को, **द्वयुम्**=सत्यानृत व्यवहार को **अहः**=कुटिलता व पाप को **नः**=हमारे से **अपयुयोधि**=पृथक् कर।

भावार्थ—सोमरक्षण से सब 'राक्षसी भाव, देव विरोधी वृत्तियाँ, सत्यानृत व्यवहार (double dealing), कुटिलता व पाप' नष्ट हो जाते हैं।

अगले सूक्त के ऋषि भी 'पर्वत व नारद' ही हैं—

[१०५] पञ्चोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**पर्वतनारदौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

यज्ञैः गूर्तिभिः

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत। शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥ १॥

हे **सखायः**=मित्रो! **वः मदाय**=तुम्हारे आनन्द व उल्लास के लिये **पुनानं**=पवित्र करते हुए **तं**=उस सोम को **अभिगायत**=प्रातः-सायं स्तुत करो। इस सोम के गुणों का गान करते हुए सोमरक्षण के लिये प्रवृत्त होवो। **शिशुं न**=(शो तनूकरणे) बुद्धि को सूक्ष्म सा बनानेवाले इस सोम को **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों से तथा **गूर्तिभिः**=(praise) स्तुतियों से **स्वदयन्त**=स्वादवाला बनाते हैं। यज्ञों व स्तवनों से शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम जीवन को स्वादिष्ट व मधुर बनाता है। जीवन में से कड़वाहट को दूर करके यह सोम हमें मधुर व्यवहार व मधुर वाणी वाला बनाता है।

भावार्थ—यज्ञों व स्तवनों के द्वारा सुरक्षित सोम हमारे जीवनों को पवित्र व मधुर बनाता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

मतिभिः परिष्कृतः

सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते। देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः॥ २॥

वत्सः=बछड़ा **इव**=जैसे **मातृभिः**= गौ के साथ **समज्यते**=संगत होता है, इसी प्रकार यह **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **हिन्वानः**=अन्दर प्रेरित किया जाता हुआ **मातृभिः**= वेदवाणीरूप माताओं के साथ संगत होता है। इस प्रकार सुरक्षित सोम ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है। **देवावीः**=यह दिव्य गुणों का रक्षक है, **मदः**=उल्लास का जनक है। **मतिभिः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियों से **परिष्कृतः**=यह परिष्कृत व निर्मल हो जाता है। प्रभु स्तवन ही हमें वासनारूप

मल से बचाता है।

भावार्थ—प्रभु स्तवन द्वारा सोम सुरक्षित रहता है। सुरक्षित सोम ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

मधुमत्तमः

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये। अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः॥ ३॥

अयम्=यह सोम **दक्षाय**=सब प्रकार की उन्नति के लिये **साधनः**=साधन बनता है। **अयम्**=यह **शर्धाय**=रोगकृमि रूप शत्रुओं के संहार के लिये होता है, **वीतये**=यह आसुरभावों के ध्वंस के लिये होता है (वी असने) **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **देवेभ्यः**=देववृत्ति के पुरुषों के लिये **मधुमत्तमः**=अतिशयेन माधुर्य को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'उन्नति का साधन' है, शत्रुओं के संहार के लिये होता है, आसुरभावों को दूर करता है, अतिशयेन माधुर्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

गोमत्-अश्ववत्

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व। शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम्॥ ४॥

हे **सुदक्ष**=उत्तम विकास के साधनभूत **इन्दो**=सोम! **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **नः**=हमारे लिये **गोमत्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों वाले तथा **अश्ववत्**=उत्तम कर्मेन्द्रियों वाले धन को **धन्व**=प्राप्त करा। सोम इन इन्द्रियों को सशक्त बनाता है। हे सोम! मैं **ते**=तेरे **शुचिम्**=दीप्त **वर्णम्**=आवरण को (covering) **गोषु**=ज्ञान की वाणियों के होने पर **अधि दीधरम्**=आधिक्येन धारण करता हूँ। सारे अतिरिक्त समय को स्वाध्याय में बिताता हुआ मैं सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर पाता हूँ यह सुरक्षित सोम मेरे लिये वह आच्छादन बनाता है, जो कि मुझे रोगों का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारा यह आवरण बनता है, जो हमें रोगों से बचाकर शक्तिशाली इन्द्रियों वाला बनाता है।

ऋषिः—**पर्वतनारदौ**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

रुचे भव

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः। सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव॥ ५॥

हे **हरीणां पते**=इन्द्रियाश्वों के रक्षक **इन्दो**=सोम! **सः**=वह तू **देवप्सरस्तमः**=अतिशयेन दीप्त रूप से युक्त है। एक-एक इन्द्रिय को सशक्त बनाकर तू हमें खूब तेजस्वी व दीप्त रूप वाला बनाता है। **इव**=जैसे **सखा**=एक मित्र **सख्ये**=मित्र के लिये हितकर होता है, उसी प्रकार तू **नर्यः**=उन्नतिपथ पर चलने वालों के लिये हितकर हो। वस्तुतः सोमरक्षण ही हमें उन्नतिपथ पर चलने के योग्य बनाता है। हे सोम! तू **रुचे भव**=दीप्ति के लिये हो। सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर हमें ज्ञानदीप्त बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम इन्द्रियों की शक्ति का रक्षण करता है, हमें अधिक से अधिक दीप्त रूप वाला बनाता है, हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है।

ऋषिः—पर्वतनारदौ ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

'अत्री, बाध् व द्वयु' का विनाश

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम्। साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम्॥ ६॥

हे **इन्दो**=सोम! **त्वम्**=तू **अस्मत्**=हमारे से **सनेमि**=शीघ्र ही (सनेमि=क्षिप्रं नि०) **अदेवम्**=देववृत्ति के विरोधी **कञ्चित्**=किसी **अत्रिणम्**=हमें खा जानेवाले राक्षसीभाव को **अप**=(गमय) दूर कर। **परिबाधः**=चारों ओर से पीड़ित करनेवाले काम, क्रोध आदि शत्रुओं को **साह्वान्**=कुचलते हुए, **द्वयुम्**=असत्यानृत-छलकपट युक्त-मायावी व्यवहार को हमारे से दूर कर।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर मनुष्य राक्षसीभावों से ऊपर उठता है, चारों ओर से पीड़ित करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीत पाता है, द्वैतभाव वाले मायायुक्त व्यवहार से दूर रहता है।

अगले सूक्त में प्रारम्भिक व अन्त के मन्त्रों का ऋषि '**अग्नि**'=आगे चलनेवाला है, यह '**चाक्षुषः**' चक्षु से सदा देखकर चलता है। यह सोम का शंसन करता हुआ कहता है—

[१०६] षडुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

स्वर्विदः

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः॥ १॥

इमे=ये **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए **हरयः**=सर्व-रोग-हर सोमकण **वृषणम्**=शक्तिशाली **इन्द्रं**=जितेन्द्रिय पुरुष की **अच्छ**=ओर **यन्तु**=गति वाले हों। जितेन्द्रिय पुरुष ही इनका रक्षण कर पाता है। **जातासः**=उत्पन्न हुए-हुए ये **इन्दवः**=सोमकण **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **स्वर्विदः**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाले होते हैं। ये ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं, बुद्धि को तीव्र बनाते हैं, और इस प्रकार ज्ञान को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष इन सोमकणों का रक्षण करता है। रक्षित सोमकण प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

भराय सानसिः

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः। सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे॥ २॥

अयम्=यह सोम **भराय**=जीवन संग्राम के लिये **सानसिः**=सम्भजनीय है। इसके रक्षण से ही हम जीवन संग्राम में विजयी बन पायेंगे। **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवते**=प्राप्त होता है। **यथा विदे**=यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये **सोमः**=शरीर में सुरक्षित सोम **जैत्रस्य**=उस विजयशील प्रभु का **चेतति**=ज्ञान प्राप्त करता है। सोमरक्षण से यह सोमी पुरुष ज्ञान दीप्ति को प्राप्त करता हुआ प्रभु को जाननेवाला बनता है। यह ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान का कारण बनता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष से सुरक्षित सोम जीवन संग्राम में हमें विजयी बनाता है यह उस विजेता प्रभु का भी ज्ञान प्राप्त कराता है, जिससे हम यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं।

ऋषिः—**अग्निश्चाक्षुषः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ग्राभं गृभ्णीत

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम्। वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित्॥ ३॥

इन्द्रः=जितेन्द्रिय पुरुष **अस्य इत्**=इस सोम के ही **मदेषु**=उल्लासों में, सोमपान से जनित मद में उस **सानसिम्**=सम्भजनीय **ग्राभम्**=ग्रहीतव्य अथवा सारे संसार को ग्रहण करनेवाले प्रभु को **गृभ्णीत**=ग्रहण करता है। सोमरक्षण से ही प्रभु का दर्शन होता है। **च**=और इस सोमरक्षण-जनित मद में **वृषणं**=शक्तिशाली **वज्रं**=क्रियाशीलता रूप वज्र को **संभरत्**=धारण करता है और **अप्सुजित्**=सदा कर्मों में प्रसित हुआ-हुआ विजयी होता है। सोमरक्षक शक्तिशाली बनकर क्रियाशील बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से ही प्रभु सा ग्रहण होता है। यह सोमी पुरुष क्रियाशील होता है।

ऋषिः—**चक्षुर्मानवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

द्युमन्तं शुष्मं

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव। द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम्॥ ४॥

हे **सोम**=वीर्य! **जागृविः**=शरीर रक्षण के लिये सदा जागरित तू **प्रधन्वः**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त हो। हे **इन्दो**=सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर गतिवाला है। इस प्रकार शरीर में व्याप्त हुआ-हुआ तू **द्युमन्तं**=ज्योतिर्मय **शुष्मम्**=शत्रुशोषक बल को **आभरः**=धारण करनेवाला हो। उस बल को जो **'स्वर्विदम्'**=स्वयं प्रकाश प्रभु का प्राप्त करानेवाला है (स्वयं राजते)। प्रभु की प्राप्ति तभी होती है जब कि हम शरीर में शुष्मतया मस्तिष्क में द्युति को स्थापित कर पाते हैं। इन्हें प्राप्त करानेवाला साधन सोम ही है।

भावार्थ—सोम से रक्षित हुए-हुए हम 'ब्रह्म+क्षत्र' सम्पन्न हों और इस प्रकार प्रभुदर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**चक्षुर्मानवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पथिकृद् विचक्षणः

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः। सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः॥ ५॥

हे सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **वृषणम्**=शक्ति का सञ्चार करनेवाले **मदम्**=उल्लास जनक रस को (मद-मदकरं रसं) **पवस्व**=प्राप्त करा। तू **विश्वदर्शतः**=सब दृष्टिकोणों से दर्शनीय है, सुन्दर ही सुन्दर है। **सहस्रयामा**=(सह हस्) उस आनन्दमय प्रभु की ओर ले जानेवाला है। **पथिकृद्**=जीवन में मार्ग का बनानेवाला है। **विचक्षणः**=(सर्वस्य द्रष्टा) सब का द्रष्टा—ध्यान करनेवाला है (look after) सोम ही हमें रोग आदि से बचाता है। यही अशुभ प्रवृत्तियों को हमारे से दूर रखता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शक्ति व आनन्द का वर्धन करता हुआ सुन्दर ही सुन्दर है। यह हमें जीवन में रोग व वासनाओं का शिकार न होने देता हुआ, मार्ग पर ले चलता हुआ, प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**चक्षुर्मानवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गातुवित्तमः-मधुमत्तमः

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः। सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत्॥ ६॥

यह सोम **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **गातुवित्तमः**=अधिक से अधिक उत्तम मार्ग को प्राप्त करानेवाला है। इसके रक्षण से ही जीवन का मार्ग उत्तम बना रहता है। यह सोम **देवेभ्यः**=देववृत्ति वाले पुरुषों के लिये **मधुमत्तमः**=अतिशयेन माधुर्य को लिये हुए होता है। यह जीवन को माधुर्य से सिक्त कर देता है। 'भूयासं मधुसन्दृशः' यह प्रार्थना सोमरक्षण से ही पूर्ण होती है। हे सोम! तू **कनिक्रदत्**=सदा उस प्रभु का आह्वान करता हुआ **पथिभिः**=मार्गों से, मार्ग पर चलने के द्वारा **सहस्र**=सदा आनन्दमय (स हस्र) 'अट्टहास' नाम वाले प्रभु को **याहि**=प्राप्त होनेवाला हो। सुरक्षित सोम हमें प्रभु को प्राप्त कराता है। प्रभु का नाम ही 'अट्टहास' है, वे सदा आनन्दमय हैं। यह सब सृष्टि उस प्रभु की अद्भुत लीला है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें जीवन में मधुर वृत्तिवाला व मार्ग पर चलनेवाला बनकार प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**मनुराप्सवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

देववीतये

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा। आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥

हे **इन्दो**=सोम! तू **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **धाराभिः**=अपनी धारणशक्तियों के साथ **देववीतये**=उस महान् देव प्रभु की प्राप्ति के लिये **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। सोम हमें ओजस्वी बनाकर प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाता है 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'। हे सोम! तू **मधुमान्**=प्रशस्त माधुर्य वाला होता हुआ **नः**=हमारे **कलशं**=इस शरीर रूप कलश में **आसदः**=आसीन हो। इस शरीर की सब कलाओं का रक्षण इस सोम ने ही तो करना है।

भावार्थ—सोम हमें ओजस्वी बनाकर प्रभु को प्राप्त कराये। यह हमें मधुर बनाता हुआ सब कलाओं से युक्त जीवन वाला बनाये।

ऋषिः—**मनुराप्सवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अमृताय कं पपुः

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः। त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥

हे सोम! **तव**=तेरे **द्रप्साः**=(Drops) सोमकण **उदप्रुतः**=(आपः रेतो भूत्वा०) रेतस् (शक्ति) को सारे शरीर में प्राप्त करानेवाले हैं। ये **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **मदाय**=उल्लास के लिये **वावृधुः**=बढ़ाते हैं। इनके रक्षण से जीवन सदा सोत्साह बना रहता है। **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **त्वाम्**=तुझे **अमृताय**=अमृतत्व की प्राप्ति के लिये **कम्**=सुख देनेवाले को **पपुः**=अपने अन्दर ही पीने का प्रयत्न करते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम अमृतत्व व सुख का साधन बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'उल्लास, अमृतत्व व सुख' को देता है।

ऋषिः—**मनुराप्सवः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वृष्टिद्यावः-रीत्यापः

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्। वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

सुतासः=उत्पन्न हुए-हुए **इन्दवः**=सोमकण **पुनानाः**=पवित्र करते हुए **नः**=हमारे लिये **रयिं**=रयि को, सब अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को **आधावता**=प्राप्त कराओ। ये सोम **वृष्टिद्यावः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक को धर्ममेघ समाधि में आनन्द की वर्षा से युक्त करनेवाले हैं। **रीत्यापः**=रेतःकणरूप जलों को शरीर में सर्वत्र प्राप्त करानेवाले हैं (=उदप्रुतः)। **स्वर्विदः**=अन्ततः

उस स्वयं प्रकाशमान प्रभु को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं। धर्ममेघ समाधि में ये ही आनन्द की वृष्टि का कारण बनते हैं। प्रभु को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

वाचः अग्रे

सोमः पुनानः ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥ १०॥

सोमः=सोम (वीर्यशक्ति) **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **ऊर्मिणा**=प्रकाश के साथ **अव्यः (अवेः)**=रक्षक पुरुष के **वारम्**=जिसमें से वासनाओं का निवारण किया गया है, उस हृदय की ओर **विधावति**=विशिष्ट रूप से गतिवाला होता है। यह सोम पवित्र हृदय पुरुष को प्राप्त होता है। उसके जीवन को यह प्रकाशमय बना देता है। **कनिक्रदत्**=खूब ही उस प्रभु का आह्वान करता हुआ यह सोम **पवमानः**=हमें पवित्र बनाता हुआ **वाचः**=इस वेदवाणी से इस के द्वारा कर्तव्य मार्ग को जानता हुआ **अग्रे**=आगे और आगे बढ़ता है।

भावार्थ—सोम जीवन को प्रकाशमय करता है, पवित्र करता है, प्रभु स्तवन की वृत्ति वाला बनाता है। वेदानुकूल मार्ग पर हमें आगे बढ़ाता है।

ऋषिः—**अग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

वने क्रीडन्तम्

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्। अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन्॥ ११॥

धीभि=ज्ञानपूर्वक कर्मों के द्वारा **वाजिनं**=शक्ति का संचार करनेवाले सोम को **हिन्वन्ति**=शरीर में सर्वत्र प्रेरित करते हैं। उस सोम को प्रेरित करते हैं, जो **वने**=उपासक के जीवन में **क्रीडन्तम्**=क्रीडा को करता है, उसके जीवन को क्रीड़क की मनोवृत्ति वाला (sport's man like spirit) बनाता है। **अत्यविम्**=अतिशयेन रक्षक है। इस **त्रिपृष्ठम्**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों के आधारभूत सोम को **मतयः**=मननपूर्वक स्तुति करनेवाले लोग **अभिसमस्वरन्**=सदा प्रातः-सायं स्तुत करते हैं। दिन के प्रारम्भ में भी, तथा दिन की समाप्ति पर रात्रि के प्रारम्भ में भी (अभि) सोम के महत्व का स्मरण करते हुए वे इसे सुरक्षित रखते हैं।

भावार्थ—सोम शक्ति देता है, क्रीडक की मनोवृत्ति को प्राप्त कराता है, रक्षक है, 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का आधार बनता है।

ऋषिः—**अग्निः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

संग्राम विजय व प्रभु वाणी श्रवण

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः। पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत्॥ १२॥

वाजयुः=हमारे साथ शक्ति को जोड़ने की कामना वाला यह सोम **कलशान् अभि**=शरीर रूप कलशों का लक्ष्य करके **असर्जि**=इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है, **न**=जैसे कि **मीढे**=संग्राम में **सप्तिः**=घोड़ा सृष्ट किया जाता है। घोड़े के द्वारा हम संग्राम में विजय पाते हैं, इसी प्रकार इस सोम के द्वारा शरीर के अन्दर चलनेवाले रोगकृमियों के साथ संग्राम में हम विजयी होते हैं। **पुनानः**=पवित्र करता हुआ यह सोम **वाचं जनयन्**=हृदयस्थ प्रभु की वाणी को पैदा करता हुआ **असिष्यदत्**=प्रवाहित होता है। शरीर में व्याप्त सोम के द्वारा हृदय का पवित्रीकरण होकर वहाँ प्रभु की वाणी सुनाई पड़ने लगती है। यही 'वाचं जनयन्' शब्दों का भाव है।

भावार्थ—सोम शरीर में चलनेवाले संग्रामों में विजय प्राप्त कराने के लिये उत्पन्न किया गया है। यह हृदय को पवित्र करके हमें प्रभु की वाणी को सुनाता है।

ऋषिः—**अग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ह्वरांसि अति

पर्वते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या। अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥

हर्यतः=कान्त व स्पृहणीय **हरिः**=रोगहर्ता सोम **रंह्या**=अपने वेग से **ह्वरांसि**=सब कुटिलताओं को **अतिपवते**=लाँघ कर हमें प्राप्त होता है। सोम का शरीर में प्रवेश होता है और जीवन में से कुटिलभाव नष्ट हो जाते हैं। यह सोम **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **वीरवद्यशः**=उत्तम सन्तानों वाले यशस्वी जीवन को **अभ्यर्षन्**=प्राप्त कराता है। सोम गुण स्तवन से सोमरक्षण की रुचि जागरित होती है। इससे जहाँ सन्तान उत्तम होते हैं, हमारा जीवन बड़ा यशस्वी बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से कुटिलभाव नष्ट होते हैं, सन्तान उत्तम होते हैं, जीवन यशस्वी बनता है।

ऋषिः—**अग्निः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

देवयुः

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत। रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥

हे सोम! **देवयुः**=दिव्य भावों को हमारे साथ जोड़ने की कामना वाला तू **अया** (धारा)=अपनी इस धारण शक्ति के साथ **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। वस्तुतः दिव्य गुणों के प्रापण के उद्देश्य से ही **मधोः धाराः**=माधुर्य को उत्पन्न करनेवाले इस सोम की धारायें **असृक्षत**=उत्पन्न की जाती हैं। हे सोम! तू **रेभन्**=प्रभु का स्तवन करता हुआ, अपने रक्षक पुरुष को प्रभु स्तवन की वृत्ति वाला बनाता हुआ तू **विश्वतः**=सब ओर से **पवित्रं पर्येषि**=पवित्र हृदय वाले पुरुष को प्राप्त होता है। हृदय की पवित्रता सोम धारण के लिये आवश्यक है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे व्यवहार को मधुर बनाता है, हमें प्रभु स्तवन की वृत्ति वाला करता है। हमारे साथ दिव्य गुणों का सम्पर्क करता है।

सोमरक्षण से शरीरस्थ सातों ऋषि (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) पूर्ण स्वस्थ होते हैं। सो ये लोग 'सप्तर्षयः' ही कहलाने लगते हैं। ये सोमस्तवन करते हुए कहते हैं—

[१०७] सप्तोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

जीवन यज्ञ में सोम की आहुति

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः। दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

सुतम्=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **इतः**=इस उत्पत्ति स्थल से **परिषिञ्चत**=शरीर में चारों ओर सिक्त करो। **यः सोमः**=यह जो सोम है, वह **उत्तमं हविः**=उत्तम हवि है। यज्ञ में जैसे हवि का प्रक्षेप होता है, उसी प्रकार जीवन-यज्ञ में इस सोम रूप हवि का प्रक्षेप करना चाहिये। इसे नष्ट नहीं होने देना चाहिये। **यः**=जो सोम **दधन्वान्**=हमारा धारण करता है, **नर्यः**=नरहितकारी है, **अप्सु अन्तरा**=सदा कर्मों में इसका निवास है। कर्मों में लगे रहने से ही यह सुरक्षित रहता है। **सोमम्**=इस सोम को **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **सुषाव**=उत्पन्न करता है। प्रभु की उपासना सोमरक्षण की अनुकूलतावाली है।

भावार्थ—उत्पन्न सोम को जीवन–यज्ञ में ही आहुत करना चाहिये। वह धारण करता है, हितकारी है। इसका रक्षण कर्मों में लगे रहने व उपासना के द्वारा होता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

सुरभिन्तरः

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम्॥ २॥

अविभिः=रक्षा करने वालों से **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **नूनम्**=निश्चय से **परिस्रवः**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। **अदब्धः**=यह सोम रोगकृमि व वासना रूप शत्रुओं से हिंसित नहीं होता। **सुरभिन्तरः**=जीवन को अतिशयेन सुगन्धित बनाता है। हे सोम! **त्वा सुते**=तेरे उत्पन्न होने पर **चित्**=निश्चय से **अप्सु मदामः**=कर्मों में आनन्द का अनुभव करते हैं। हम **अन्धसा**=सात्त्विक अन्न के द्वारा तथा **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा इस **उत्तरम्**=अन्य सब धातुओं से उत्कृष्ट सोम को **श्रीणन्तः**=परिपक्व करते हैं। सात्त्विक अन्न 'सोम्य भोजन' कहलाते हैं। ये भोजन सोमरक्षण की अनुकूलता वाले होते हैं। इसी प्रकार ज्ञान की वाणियों में अतिरिक्त समय को बिताने से इस सोम में वासनाओं का उबाल नहीं उत्पन्न होता।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर जीवन रोगादि से अहिंसित व यशस्वी बनता है। शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न होकर कर्मों में आनन्द का अनुभव होता है। इस सोमरक्षण के लिये सात्त्विक अन्न का सेवन व स्वाध्याय साधन हैं।

सूचना—यहाँ 'गोभिः' का अर्थ 'गोदुग्ध' भी किया जा सकता है। तब अर्थ इस प्रकार होगा कि हम 'सात्त्विक अन्न व गोदुग्ध' के सेवन से सोम का परिपाक करते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**द्विपदा विराट्**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

क्रतुः इन्दुः विचक्षणः

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः॥ ३॥

परि सुवानः=शरीर में चारों ओर प्रेरित किया जाता हुआ यह सोम **चक्षसे**=प्रकाश के लिये होता है यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और हमें ज्ञानदीप्त बनाता है। **देवमादनः**=यह देववृत्ति के व्यक्तियों को उल्लासमय जीवन वाला बनाता है। **क्रतुः**=यह 'शक्ति, प्रज्ञान व यज्ञों' का कारण बनता है। **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनाता है। **विचक्षणः**=यह सब का विद्रष्टा है, शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही हमें रोग आदि के आक्रमण से बचाता है।

भावार्थ—शरीर में प्रेरित सोम 'प्रकाश, यज्ञ व शक्ति' का साधन बनता है। यह हमें देववृत्ति का बनाकर उल्लसित करता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

हिरण्ययः उत्सः

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः॥ ४॥

हे **सोम**=वीर्य! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **धारया**=अपनी धारण शक्ति से **अपः वसानः**=कर्मों को धारण करता हुआ **अर्षसि**=प्राप्त होता है। सोम से शरीर में स्फूर्ति व क्रियाशीलता को जन्म मिलता है। **रत्नधाः**=सब रमणीय तत्त्वों का धारण करनेवाला, हे सोम! तू **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के उत्पत्ति स्थान प्रभु में **आसीदसि**=आसीन होता है। हे **देव**=प्रकाशमये

सोम! तू **हिरण्ययः उत्सः**=ज्योतिर्मय स्रोत है। तेरे से ज्योति का प्रवाह निःसृत होता है। वस्तुतः यह सोम ही सम्पूर्ण ज्ञान को उत्पन्न करनेवाला है, यही तो बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'कर्मशीलता' को प्राप्त कराता है। सब रत्नों का धारण करता हुआ प्रभु को प्राप्त कराता है। यह ज्ञान का स्रोत है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

प्रत्नं सधस्थम् आसदत्

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्। आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः॥५॥

ऊधः दिव्यं प्रियं मधु=वेद धेनु के ज्ञान दुग्धाधार से दिव्य प्रीति जनक सारभूत उत्कृष्ट ज्ञानदुग्ध का दोहन करता हुआ यह सोम **प्रत्नम्**=उस सनातन **सधस्थम्**=सारे विश्व की सहस्थिति के स्थानभूत प्रभु को **आसदत्**=प्राप्त करता है उस प्रभु में आसीन होता है जो **आपृच्छ्यम्**=सब के जिज्ञासा का विषय बनते हैं और **धरुणम्**=सबका धारण करनेवाले हैं। सोम बुद्धि को सूक्ष्म बनाके हमें प्रभु का दर्शन कराता है। यह **वाजी**=शक्ति को प्राप्त करानेवाला सोम **अर्षति**=शरीर में गतिवाला होता है। **नृभिः धूतः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों से यह कम्पित करके निर्मल किया जाता है। वासनाओं को कम्पित करके दूर करने से यह सोम निर्मल बना रहता है। **विचक्षणः**=यह विशेषेण सब का द्रष्टा होता है। सोम हमारी नीरोगता आदि का ध्यान करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम ज्ञान धेनु से दिव्य प्रिय सारभूत ज्ञानदुग्ध का दोहन करते हैं, प्रभु में आसीन होते हैं, शक्तिशाली व नीरोग बनते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

विप्रः अंगिरस्तमः

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः॥६॥

हे **सोम**=वीर्य! **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ तू **जागृविः**=सदा जागरित प्रहरी है। तू हमारे पर रोगादि शत्रुओं के आक्रमण को नहीं होने देता। **अव्यः**=रक्षक पुरुष के **वारे**=जिसमें से वासनाओं का वारण किया गया है उस हृदय में **परिप्रियः अभवः**=सर्वथा प्रिय होता है, प्रीणन को करनेवाला होता है। **त्वम्**=तू **विप्रः**=विशेष रूप से पूरण करनेवाला, **अंगिरस्तमः**=अतिशयेन अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाला **अभवः**=होता है। हे सोम! तू **नः यज्ञम्**=हमारे इस जीवन-यज्ञ को **मध्वा**=माधुर्य से **मिमिक्ष**=सीचनेवाला हो। जीवन को मधुर बनानेवाला हो।

भावार्थ—सोम हमारा सावधान प्रहरी है। हमारा पूरण करनेवाला, अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाला व जीवन को मधुर बनानेवाला है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

विप्रः विचक्षणः

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि॥७॥

सोमः=वीर्य **मीढ्वान्**=अंग-प्रत्यंग में शक्ति का सेचन करनेवाला होता हुआ **पवते**=प्राप्त

होता है। यह **गातुवित्तमः**=सर्वोत्तम मार्गदर्शक है। सोमरक्षण वाला पुरुष सदा मार्ग पर चलता है। **ऋषिः**=यह तत्त्वद्रष्टा है, हमें सूक्ष्म बुद्धि बनाकर तत्त्व का दर्शन कराता है। **विप्रः**=विशेषरूप से पूरण करनेवाला है और **विचक्षणः**=विशिष्ट द्रष्टा-ध्यान करनेवाला (looks after) है। हे सोम! **त्वं**=तू **कविः अभवः**=क्रान्तदर्शी होता है। **देववीतमः**=अतिशयेन दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाला है। तू ही **दिवि**=हमारे मस्तिष्क रूप द्युलोक में **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **आरोहयः**=आरूढ करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही शक्ति का सेचन करता हुआ, सब कमियों को दूर करता हुआ, हमें प्रशस्त ज्ञान वाला बनाता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

अश्वया: हरिता मन्द्रया

सोमं उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥८॥

सोमः=वीर्य **उ**=निश्चय से **सोतृभिः**=सोम उत्पादक पुरुषों से **षुवाणः**=उत्पन्न किया जाता हुआ व शरीर में ही प्रेरित किया जाता हुआ **अवीनां**=रक्षकों के **स्नुभिः**=शिखरों के उद्देश्य से रक्षकों को 'स्वास्थ्य नैर्मल्य व बुद्धि की तीव्रता' के शिखरों पर पहुँचाने के उद्देश्य से **अश्वया**=सदा कर्मों में व्याप्त करनेवाली (अक्ष् व्याप्तौ) तथा **हरिता**=अज्ञानान्धकार का हरण करनेवाली **धारया**=धारण शक्ति से **याति**=प्राप्त होता है। सुरक्षित सोम सशक्त बनाकर हमें कर्मव्याप्त करता है, तथा ज्ञानादि को दीप्त करके तीव्रबुद्धि बनाता है और अज्ञानान्धकार को समाप्त करता है (हृ हरणे) इस प्रकार ये हमें शरीर में स्वस्थ मन में निर्मल व बुद्धि में तीव्र बनाता है। अन्ततः यह **मन्द्रया**=आनन्द को देनेवाली **धारया**=धारणशक्ति के साथ हमें **याति**=प्राप्त होता है। यह सोम नीरोगता व अमृतत्व को प्राप्त कराके हमें आनन्दित करता है, प्रभु प्राप्ति का भी यही साधन होता है।

भावार्थ—सोम की धारा हमें सशक्त बनाकर कर्मों में व्याप्त करती है (अश्वया), यह तीव्रबुद्धि को देकर अज्ञानान्धकार का ही हरण करती है (हरिता), तथा नीरोगता व प्रभु प्राप्ति द्वारा आनन्दित करती है (मन्द्रया) एवं यह रक्षकों को तीन शिखरों पर पहुँचाती है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

अनूपे गोमान् गोभिः अक्षाः

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः। समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते॥९॥

रेतःकण ही शरीर में 'आपः' हैं (आपः रेतो भूत्वा० ऐ०)। ये 'आपः' जिसमें अनुगत हुए हैं वह शरीर कलश 'अनूप' है (अनुगताः आपो यस्मिन्)। **अनूपे**=रेतःकणों से युक्त शरीर में **गोमान्**=प्रशस्त इन्द्रियों वाला पुरुष **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **अक्षाः**=व्याप्त होता है अथवा संचरण करता है। इन रेतःकणों से उसकी इन्द्रियाँ प्रशस्त बनती हैं और वह खूब ही ज्ञान को प्राप्त करता है। **सोमः**=यह सोम **दुग्धाभिः**=वेदधेनु से दोही गयी ज्ञान वाणियों के साथ **अक्षाः**=शरीर में संचरण करता है। **संवरणानि**=सब वरणीय धन इस सोम रक्षक पुरुष को **अग्मन्**=इस प्रकार आप्त होते हैं, **न**=जैसे कि नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र को सोमरक्षण से सब ऐश्वर्यों का प्रवाह हमारी ओर होता है। **मन्दी**=यह आनन्द को देनेवाला सोम **मदाय**=अपने रक्षक के जीवन में उल्लास को प्राप्त कराने के लिये **तोशते**=रोगों व वासनारूप शत्रुओं को हिंसित करता है।

भावार्थ—सोम इन्द्रियों को प्रशस्त बनाता है, ज्ञान का वर्धन करता है, सब अन्नमय आदि

कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है, शत्रुओं का संहार करके जीवन को उल्लासमय बनाता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

चम्वोः विशत्

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया। जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे॥ १० ॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **अद्रिभिः**=उपासकों के द्वारा (आ दृ=Those who adore) **आसुवानः**=शरीर में ही चारों ओर प्रेरित किया जाता हुआ **तिरः**=रुधिर में तिरोहित रूप से रहता हुआ **अव्यया**=(अ वि अय) विषयों में इधर-उधर न भटकनेवाले **वाराणि**=जिनसे वासनाओं का निवारण किया गया है ऐसे हृदयों में **विशत्**=प्रवेश करता है। **न**=जैसे **जनः**=कोई व्यक्ति **पुरि**=नगर में प्रवेश करता है, इसी प्रकार यह सोम **चम्वोः**=द्यावापृथिवी में प्रवेश करता है। मस्तिष्करूप द्युलोक को यह दीप्तिमय बनाता है, और शरीर को दृढ़। इन दोनों के मध्य में सब वासनाओं को तिरस्कृत करने के द्वारा यह हृदय को भी पवित्र करनेवाला होता है। इस प्रकार यह **हरिः**=सब मलों का हरण करता है। और **वनेषु**=उपासकों में **सदः** **दधिषे**=अपनी सीट को (स्थान को) धारण करता है। उपासकों के जीवन में ही सुरक्षित होकर यह रहता है।

भावार्थ—शरीर में प्रविष्ट सोम शरीर के द्यावापृथिवी व अन्तरिक्ष अर्थात् मस्तिष्क, शरीर व हृदय तीनों को श्रेष्ठ बनाता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मनीषिभिः विप्रेभिः ऋक्वभिः

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः॥ ११ ॥

सः=वह सोम **मेष्यः**=(मिष् To open the eyes) इस चमकीली—हमारी आँखों को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली, प्रकृति के **तिरः**=तिरोहित-गुप्त **अण्वानि**=सूक्ष्म तत्त्वों को **मामृजे**=हमारे लिये शुद्ध कर देता है। सोमरक्षण के द्वारा हम इस मायामयी प्रकृति के रहस्य को समझने लगते हैं। यह सोम **मीढे**=संग्राम में **सप्तिः न**=समर्पणशील घोड़े के समान होता है। यह **वाजयुः**=हमारे साथ शक्ति को जोड़ने की कामना वाला होता है। इसके द्वारा सशक्त बनकर ही हम जीवन संग्राम में विजयी बनते हैं। यह **पवमानः सोमः**=पवित्र करनेवाला सोम **मनीषिभिः**=विद्वानों से, **विप्रेभिः**=अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुषों से, **ऋक्वभिः**=(ऋच स्तुतौ) पूरण के दृष्टिकोण से ही प्रभु का स्तवन करने वालों से **अनुमाद्यः**=अनुमोदनीय होता है, अर्थात् जितना-जितना वे इसका रक्षण कर पाते हैं, उतना-उतना ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें तीव्रबुद्धि बनाकर प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों को समझने के योग्य बनाता है। यह जीवन संग्राम में हमें शक्तिशाली बनाता है। आनन्द का अनुभव कराता है। बुद्धिमान, अपना पूरण करनेवाले स्तोता ही इसका रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

मदिरो न जागृविः

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥ १२ ॥

हे **सोम**=वीर्य! **देववीतये**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये तू **अर्णसा**=ज्ञानजल के द्वारा **प्रपिप्ये**=आप्यायित किया जाता है, **न**=जैसे कि **सिन्धुः**=समुद्र नदियों के जल से। वस्तुतः ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से सोम के रक्षण का सम्भव होता है, और रक्षित सोम हमारे में दिव्य गुणों का वर्धन करता है। **अंशोः**=ज्ञानरश्मियों के **पयसा**=आप्यायन से **मदिरः न**=अत्यन्त उल्लासयुक्त सा यह सोम **जागृविः**=सदा जागरूक होता है, यह हमारे पर रोग आदि का आक्रमण नहीं होने देता। यह हमें **मधुश्चुतं कोशं अच्छा**=मधु को टपकानेवाले आनन्दमय कोश की ओर ले जाता है।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहने से शरीर में आप्यायित हुआ-हुआ सोम दिव्य गुणों का वर्धन करता है। यह उल्लास को पैदा करता है, सदा जागरूक पहरेदार होकर हमें रोगाक्रान्त नहीं होने देता। आनन्दमय कोश की ओर हमें ले चलता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

अर्जुने अत्के

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

हर्यतः=यह कान्त सोम **अर्जुने**=श्वेतवर्ण वाले, अर्थात् शुद्ध जीवनवाले **अत्के**=निरन्तर क्रियाशील पुरुष में **आ अव्यत**=सर्वतः संवृत व रक्षित किया जाता है। शुद्ध क्रियाशील जीवन सोमरक्षण की अनुकूलता वाला है। **प्रियः**=यह प्रीति का कारण होता है। **सूनुः न**=एक बालक के समान यह **मर्ज्यः**=शोधनीय है। जैसे एक बालक को माता शुद्ध करती है, इसी प्रकार यह सोम हमारे से शुद्ध करने योग्य है। **तम्**=उस सोम को **ईम्**=निश्चय से **अपसः**=क्रियाशील लोग **यथा रथं**=(रक्षस्य योग्यम्) शरीररथ के ही यह योग्य है ऐसा मानकर **नदीषु**=शरीरस्थ नाड़ियों में तथा **गभस्त्योः**=भुजाओं में **आहिन्वन्ति**=समन्तात् प्रेरित करते हैं। रुधिर में व्याप्त होकर यह सोम शरीरस्थ नाड़ियों में प्रवाहित होता है और क्रियाशीलता को उत्पन्न करता हुआ भुजाओं में गतिवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण वही कर सकता है जो कि शुद्ध क्रियाशील जीवन का यापन करता है। क्रियाशील पुरुष ही सोम को शरीर में प्रेरित कर पाते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १४ ॥

सोमासः=शरीरस्थ सोमकण **आयवः**=(इ गतौ) हमारे जीवनों को क्रियाशील बनानेवाले हैं। ये **मद्यम्**=अत्यन्त उल्लासजनक **मदम्**=हर्ष को **अभिपवन्ते**=प्राप्त कराते हैं। **समुद्रस्य**=(स+मुद्) उस आनन्दमय प्रभु के **अधिविष्टपि**=उच्च स्थान में ये हमें पहुँचाते हैं। सोमरक्षण द्वारा ही शारीरिक नीरोगता आदि को प्राप्त करके ऐहिक आनन्द मिलता है और मानस नैर्मल्य के द्वारा प्रभुदर्शन के आनन्द का भी यही साधन बनता है। ये सोम **मनीषिणः**=मनीषा को देनेवाले हैं, मन का शासन करनेवाली बुद्धि को प्राप्त कराते हैं। **मत्सरासः**=हृदयों में आनन्द का संचार करते हैं। तथा **स्वर्विदः**=उस स्वयं प्रकाश प्रभु को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम क्रियाशीलता व उल्लास का जनक होता हुआ 'बुद्धि व मन' को उत्कृष्ट बनाता है और प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

राजा देव ऋतं बृहत्

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्॥ १५॥

पवमानः=पवित्र करता हुआ सोम **ऊर्मिणा**=अपने प्रकाश से, सोमरक्षण द्वारा उत्पन्न ज्ञान से **समुद्रं तरत्**=(कामो हि समुद्रा उ०) इस अनन्त पार वाले काम को तैर जाता है, हमें वासनाओं से यह ऊपर उठाता है। **राजा**=यह जीवन को दीप्त बनाता है। **देवः**=प्रकाशमय है, दिव्यगुणों का जनक है। **ऋतं बृहत्**=यह हमारे जीवन में उत्कृष्ट ऋत को प्राप्त कराता है। सोमरक्षण से जीवन ऋतमय बनता है। यह सोम **मित्रस्य**=सब के प्रति स्नेह वाले, **वरुणस्य**=द्वेष का निवारण करनेवाले पुरुष के **धर्मणा**=धारण के हेतु से **अर्षन्**=शरीर में गतिवाला होता है। उसके मित्र व वरुण के जीवन में यह **बृहत् ऋतं**=उत्कृष्ट ऋत को जीवन की नियमितता को **हिन्वानः**=प्रेरित करता है, बढ़ाता है। सोमरक्षण से पुरुष 'स्नेह व निर्द्वेषता' के भावों को धारण करता हुआ बड़े नियमित जीवन वाला होता है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित हुआ-हुआ हमें वासनाओं से पार ले जाता है, जीवन को 'प्रकाशमय दिव्यगुण सम्पन्न स्नेहयुक्त निर्द्वेष व ऋतमय' बनाता है।

ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥ स्वरः—षड्जः॥

राजा देवः समुद्रियः

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः॥ १६॥

नृभिः=उन्नतिपथ पर चलानेवाले मनुष्यों से **येमानः**=नियम में किया जाता हुआ, संयत होता हुआ यह सोम **हर्यतः**=अत्यन्त स्पृहणीय होता है। **विचक्षणः**=यह विशेषरूप से शरीर का द्रष्टा-ध्यान करनेवाला होता है, इससे शरीर सुरक्षित रहता है। **राजा**=यह हमारे जीवनों को दीप्त बनाता है **देवः**=प्रकाशमय व दिव्यगुण सम्पन्न करता है और **समुद्रियः**=उस आनन्दमय प्रभु की ओर ले जानेवाला है।

भावार्थ—संयत सोम 'हर्यत-विचक्षण-राजा-देव व समुद्रिय' है।

ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—विराड्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

जितेन्द्रियता-प्राणसाधना व क्रियाशीलता

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः। सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः॥ १७॥

सुतः=उत्पन्न हुआ-हुआ **सोमः**=सोम-वीर्य **मरुत्वते**=प्राणों की साधना करनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मदः**=उल्लासजनक होता हुआ **पवते**=प्राप्त होता है। प्राणसाधना व इस साधना द्वारा प्राप्त जितेन्द्रियता सोमरक्षण का साधन बनती है। **सहस्रधारः**=ये हजारों प्रकार से धारण करनेवाला सोम **अव्यम्**=रक्षकों में उत्तम पुरुष को **अति अर्षति**=अतिशयेन प्राप्त होता है। **तम्**=उस सोम को **ईम्**=निश्चय से **आयवः**=गतिशील पुरुष **मृजन्ति**=शुद्ध कर पाते हैं, इसे वासनाओं के उबाल से मलिन नहीं होने देते। क्रियाशीलता से सोम पवित्र बना रहता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण 'जितेन्द्रिय-प्राणसाधक-क्रियाशील' पुरुष ही कर पाते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अपः परिवसानः

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

चमू=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **पुनानः**=पवित्र करता हुआ, **मतिं जनयन्**=बुद्धि को प्रादुर्भूत करता हुआ **कविः**=क्रान्तदर्शी—सूक्ष्म दृष्टि वाला **सोमः**=सोम (वीर्य) **देवेषु**=दिव्यगुणों की वृत्ति वाले पुरुषों में **रण्यति**=(रण् शके) हृदयस्थ प्रभु की वाणी को प्रकट करता है। मानो यह सोम ही उन शब्दों का उच्चारण करता हो। **अपः परि वसानः**=कर्मों को समन्तात् धारण करता हुआ, निरन्तर क्रियाशील बनता हुआ **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **उत्तरः**=सब वासनाओं को तैरनेवाला यह सोम **वनेषु**=सभजनकर्ता उपासकों में **सीदन्**=स्थित होता हुआ **अव्यत**=सुरक्षित किया जाता है व संवृत किया जाता है।

भावार्थ—सोम मस्तिष्क व शरीर को पवित्र करता है। बुद्धि को उत्पन्न करता है, हमारी सूक्ष्म दृष्टि बनाता है। इसके रक्षण से हम क्रियाशील व उत्कृष्ट ज्ञान की वाणियों वाले बनते हैं।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

चारों ओर से घेरनेवाले राक्षसों का विनाश

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥ १९ ॥

हे **सोम**=वीर्य! **अहम्**=मैं **तव**=तेरे **सख्ये**=मित्रता में **रारण**=आनन्द का अनुभव करता हूँ। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **दिवे दिवे**=प्रतिदिन यह सख्य व आनन्द बढ़ता ही चलता है। हे **बभ्रो**=हमारा धारण करनेवाले सोम! **माम्**=मुझे **पुरूणि**=बहुत राक्षसी भाव **नि अव चरन्ति**=नीचे की ओर ले जाते हैं। **तान् परिधीन्**=उन चारों ओर से घेरा डालनेवाले इन राक्षसीभावों को **अति इहि**=तू पार करनेवाला हो। इन राक्षसीभावों से तू ही मुझे ऊपर उठानेवाला हो।

भावार्थ—सोम के रक्षण में ही आनन्द है, यही हमें राक्षसीभावों से पार ले जाता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोम की मित्रता के लिये

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुनाइव पप्तिम ॥ २० ॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **अहम्**=मैं **उत नक्तम्**=चाहे रात हो, **उत दिवा**=चाहे दिन हो, अर्थात् सदा **ते सख्याय**=तेरी मित्रता के लिये **ऊधनि**=वेदवाणी रूप धेनु के ज्ञानादुग्धाधार में निवास करनेवाला बनूँ। सारे अतिरिक्त समय को ज्ञान प्राप्ति में बिताना ही सोमरक्षण का साधन बनता है। हे **बभ्रो**=हमारा भरण करनेवाले सोम! **घृणा**=दीप्ति से **तपन्तं**=चमकते हुए **सूर्यं**=इस ज्ञानसूर्य को **अति पप्तिम**=अतिशयेन हम प्राप्त हों। उस ज्ञान सूर्य को हम प्राप्त हों जो **परः**=(परमस्थानास्थितम् सा०) मस्तिष्क रूप द्युलोक में स्थित है हम **शकुनाः इव**=आकाशमार्ग से जानेवाले पक्षियों के समान हों, पार्थिव भोगों से ऊपर उठें। यह पार्थिव भोगों से ऊपर उठना ही हमें शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—दिन-रात हम अतिरिक्त समय को स्वाध्याय में बितायें। यह स्वाध्याय ही हमें सोमरक्षण में समर्थ करेगा। यह रक्षित सोम हमारे मस्तिष्क रूप द्युलोक में ज्ञान सूर्य के उदय का कारण बनेगा।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

रयि (पिशंग, बहुल, पुरुस्पृह)

मृज्यमा॑नः सुहस्त्य समु॒द्रे वाच॒मिन्वसि। र॒यिं पि॒शङ्गं॑ बहु॒लं पु॑रु॒स्पृहं॒ पवमाना॒भ्य॑र्षसि ॥ २१ ॥

हे **सुहस्त्य**=उत्तम हाथों वाले! अर्थात् हाथों को सदा उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाले सोम! **मृज्यमानः**=शुद्ध किया जाता हुआ वासनाओं के उबाल से मलिन न होने दिया जाता हुआ तू **समुद्रे**=(स-मुद्) आनन्दमय, प्रसादयुक्त हृदयान्तरिक्ष में **वाचम् इन्वसि**=प्रभु की वाणी को प्रेरित करता है। तेरे रक्षण से हृदय में प्रभु की वाणी सुन पड़ती है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **रयिं अभ्यर्षसि**=रयि को, धन को प्राप्त कराता है, जो **पिशंग**=दीप्तियुक्त है, हमें तेजस्वी बनाता है, **बहुलम्**=सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त है और **पुरुस्पृहम्**=बहुतों से स्पृहणीय है। अर्थात् अधिक से अधिक लोगों के हित में विनियुक्त हुआ-हुआ सभी से वाचनीय होता है, सभी से प्रशंसित होता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता सोम को पवित्र बनाये रखती है। सोम हमें प्रभु प्रेरणा को सुनने का पात्र बनाता है। और स्पृहणीय धनों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पवमान वृषा

मृ॒जा॒नो वारे॒ पव॑मानो अ॒व्यये॑ वृ॒षाव॑ चक्रदो॒ वने॑।
दे॒वानां॑ सोम पवमान नि॒ष्कृतं॒ गोभि॑रञ्जा॒नो अ॑र्षसि ॥ २२ ॥

वारे=वासनाओं का निवारण करनेवाले **अव्यये**=(अवि अय) विषयों में न जानेवाले पुरुष में **मृजानः**=शुद्ध किया जाता हुआ **पवमानः**=हमारे जीवन को पवित्र करनेवाला यह सोम **वृषा**=हमारे जीवन में शक्ति का सेचन करता है। तथा **वने**=उपासक में **अवचक्रदः**=वासनाओं व काम आदि शत्रुओं को दूर करके रुलानेवाला होता है (क्रदि रोदने)। काम आदि शत्रुओं को रहने का स्थान नष्ट करके यह रुलाता है। हे **सोम**=वीर्य! **पवमान**=पवित्र करनेवाला तू **गोभिः अञ्जानः**=ज्ञान की वाणियों से अलंकृत किया जाता हुआ **देवानां निष्कृतं**=देववृत्ति के पुरुषों के परिष्कृत हृदय में **अर्षसि**=प्राप्त होता है, ज्ञान की वाणियों के द्वारा शरीर में ही सुरक्षित हुआ-हुआ सोम शरीर की शोभा का कारण बनता है। यह शरीर में तभी स्थिर होता है जब कि हम हृदय को पवित्र व वासनाशून्य बनाने के लिये यत्नशील हों।

भावार्थ—सोम काम आदि शत्रुओं को स्थानभ्रष्ट करके रुलाता है। यह पवित्र हृदय पुरुषों में ही स्थिर होता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति-ज्ञान-प्रभु प्राप्ति व आनन्द

पव॑स्व वाज॒सात॑येऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑। त्वं स॑मु॒द्रं प्र॑थ॒मो वि धा॑रयो दे॒वेभ्यः॑ सोम मत्स॒रः ॥ २३ ॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **वाजसातये पवस्व**=शक्ति की प्राप्ति के लिये हमें प्राप्त हो। तू **विश्वानि**=सब **काव्या**=ज्ञानों को **अभि** (पवस्व)=हमें प्राप्त करानेवाला हो। **प्रथमः**=(प्रथ विस्तारे) शरीर में

विस्तार को प्राप्त हुआ-हुआ **त्वम्**=तू **समुद्रम्**=उस आनन्दमय प्रभु का **विधारयः**=धारण करनेवाला होता है। इस प्रकार **देवेभ्यः**=देववृत्ति वाले पुरुषों के लिये **मत्सरः**=आनन्द का संचार करनेवाला होता है।

भावार्थ—सोम शक्ति व ज्ञान का साधन बनता है। यह प्रभु प्राप्ति व आनन्द का कारण होता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

मतिभिः-धीतिभिः

स तू पंवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या चं सोम धर्मंभिः।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः॥ २४॥

हे **सोम**=वीर्य! **सः**=वह तू **तू**=अवश्य **धर्मभिः**=अपनी धारणशक्तियों के साथ **पार्थिवं रजः**=इस शरीर रूप पार्थिव लोक को **च**=और **दिव्या** (रजः)=मस्तिष्क सम्बन्धी द्युलोक को **परिपवस्व**=प्राप्त हो। तूने ही शरीर व मस्तिष्क का धारण करना है। सो हे **विचक्षण**=विद्रष्टः! विशेषरूप से इन लोकों का धारण करनेवाले सोम! **शुभ्रम्**=वासनाओं से मलिन न हुए-हुए उज्ज्वल **त्वाम्**=तुझको **विप्रासः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी लोग **मतिभिः**=ज्ञान की वाणियों से प्रथम मनन पूर्वक की गई स्तुतियों से तथा **धीतिभिः**=धर्मों से **हिन्वन्ति**=शरीर के अन्दर ही प्रेरित करते हैं और बढ़ाते हैं। इस प्रकार इनका यह स्वाध्याय व स्तवन तथा यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्ति सोमरक्षण का साधन हो जाती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर व मस्तिष्क का रक्षक बनता है। इसका रक्षण स्वाध्याय व स्तवन तथा यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहने से होता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

मरुत्वन्तः मत्सराः

पवंमाना असृक्षत पवित्रमति धारया। मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च॥ २५॥

पवित्रम्=पवित्र हृदय वाले पुरुष **धारया**=अपनी धारणशक्ति से **पवमानाः**=सर्वथा रोगकृमि आदि शत्रुओं के विनाश से पवित्र करते हुए **अति असृक्षत**=अतिशयेन सृष्ट होते हैं। हम वासनाओं से ऊपर उठकर ही सोम का रक्षण कर सकते हैं। सुरक्षित होकर ये हमारे जीवन को पूर्ण पवित्र बनायेंगे। ये सोम **मरुत्वन्तः**=प्रशस्त प्राणों वाले हैं, प्राणशक्ति का वर्धन करते हैं। **मत्सराः**=आनन्द का संचार करनेवाले हैं। **इन्द्रियाः**=बल को देनेवाले हैं (इन्द्रियं वीर्यं बलम्)। **हयाः**=हमें गतिशील बनाते हैं। **मेधाम् अभि**=बुद्धि की ओर ले चलते हैं **च**=और **प्रयांसि**=उत्कृष्ट यत्नशीलता की ओर (प्रयस्) अथवा सात्त्विक अन्नों की ओर। यह सोम हमें सात्त्विक वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—पवित्र हृदय वाले पुरुष में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम प्राणों को प्रशस्त बनाता है, आनन्द का संचार करता है, बल को देता है, हमें गतिशील बनाता है, बुद्धि और श्रमशील वृत्ति को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**सप्तर्षयः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

ज्ञान स्तुति शुद्धि

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम्॥ २६॥

सोतृभिः=उत्पन्न करनेवाले इन सोम के उत्पादक पुरुषों से **हियानः**=शरीर के अन्दर प्रेरित किया जाता हुआ यह **इन्दुः**=सोम **अपः वसानः**=कर्मों को धारण करता हुआ **कोशं परि अर्षति**=आनन्दमय कोश की ओर गतिवाला होता है। **ज्योतिः जनयन्**=यह हमारे जीवनों में ज्ञान की ज्योति को उत्पन्न करता है। **मन्दनाः**=स्तुतियों की **अवीवशत्**=कामना करता है, अर्थात् हमारे अन्दर प्रभु स्तवन की वृत्ति को पैदा करता है। **गाः**=इन ज्ञान की वाणियों को **निर्णिजम् न कृण्वानः**=शोधक के रूप में करता है। सोमरक्षण से दीप्त हुई-हुई ज्ञान की वाणियाँ हमारे जीवनों को शुद्ध करती हैं।

भावार्थ—सोम हमारे जीवनों को ज्ञानमय, स्तुतिप्रवण व शुद्ध करता है।

अगले सूक्त में '**गौरिवीतिः**'=सात्त्विक भोजन वाला, **शक्ति**=शक्ति का पुंज, **उरुः**=विशाल हृदयवाला, **ऋजिष्वा**=सरलमार्ग से गतिवाला, **ऊर्ध्वसद्मा**=ऊपर ब्रह्मलोक में अपना घर बनानेवाला, पार्थिव भोगों में न फँसनेवाला, **कृतयशाः**=यशस्वी जीवन वाला, **ऋणञ्चयः**=रेतःकण रूप जलों का सञ्चय करनेवाला (ऋणं, जलम्) ये ऋषि हैं। ये सोम का शंसन करते हुए कहते हैं—

[१०८] अष्टोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**गौरिवीतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**ककुबुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पव॑स्व मधु॑मत्तम् इन्द्रा॑य सोम क्रतु॒वित्त॑मो॒ मदः॑ । महि॑ द्यु॒क्षत॑मो॒ मदः॑ ॥ १ ॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। तू उसके लिये **मधुमत्तमः**=अतिशयेन माधुर्य को देनेवाला है। **क्रतुवित्तमः**='प्रज्ञान शक्ति व यज्ञों' को प्राप्त करानेवाला है। **मदः**=उल्लासजनक है। तू **महि**=महान् व महनीय है। **द्युक्षतमः**=ज्योति में निवास करानेवाला है। **मदः**=हर्ष को प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता से सुरक्षित सोम 'माधुर्य-प्रज्ञान शक्ति व यज्ञशीलता' को प्राप्त कराता है। ज्ञान में निवास कराता हुआ आनन्द का यह जनक है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

धर्म-प्रकाश-प्रभु प्रेरणा श्रवण

यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विदः॑ ।
स सु॒प्रके॑तो अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषोऽच्छा॒ वाजं॒ नैत॑शः ॥ २ ॥

हे सोम! **यस्य ते पीत्वा**=जिस तेरा पान करके **वृषभः**=अपने अन्दर शक्ति का सेचन करनेवाला यह पुरुष **वृषायते**=अत्यन्त धर्म का आचरण करता है (वृषा हि भगवान् धर्मः), **अस्य पीताः**=इस सोम का पान करनेवाले **स्वर्विदः**=प्रकाश को प्राप्त करनेवाले होते हैं। सोमरक्षण से सशक्त बनकर मनुष्य धर्म की वृत्ति वाला होता है, और यह प्रकाश को प्राप्त करता है। **सः**=वह **सुप्रकेतः**=उत्तम ज्ञान वाला **इषः अभि अक्रमीत्**=प्रभु प्रेरणाओं की ओर इस प्रकार गतिवाला होता है, **न**=जैसे कि **एतशः**=एक अश्व **वाजं अच्छा**=संग्राम की ओर गतिवाला होता है। सोमरक्षण से ज्ञान वृद्धि होकर हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा सुन पड़ती है।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें शक्तिशाली व धर्मप्रवण बनाता है, सोम पान से जीवन प्रकाशमय हो जाता है, ज्ञान को बढ़ाकर यह हमें प्रभु प्रेरणा को सुनने का पात्र बनाता है।

ऋषिः—**शक्तिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पादनिचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

द्युमत्तमः

त्वं ह्य१ङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥

हे **अंग**=गतिशील जीवन को स्फूर्तिमय बनानेवाले **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **त्वं हि**=तू ही **दैव्या जनिमानि**=सब देवों से सम्बद्ध, सब इन्द्रियों से सम्बद्ध शक्ति विकासों को **अमृतत्वाय घोषयः**=अमृतत्व के लिये घोषित करता है। बाह्य जगत् के सब सूर्य आदि देव शरीर में चक्षु आदि इन्द्रियों के रूप में निवास करते हैं। इन देवों की शक्ति का विकास इस सोम के द्वारा ही होता है। सोम से शक्ति सम्पन्न बन सब इन्द्रियाँ अक्षीण शक्ति व अमर बनी रहती हैं। हे सोम! तू ही **द्युमत्तमः**=जीवन को अधिक से अधिक ज्योतिर्मय बनानेवाला है। सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही सब इन्द्रियों की अक्षीण शक्ति व अमर बनाता है यह ही जीवन को ज्योतिर्मय करता है।

ऋषिः—**उरुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

चारुणः अमृतस्य

येना नवग्वो दुध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥ ४ ॥

यह सोम वह है **येन**=जिसके द्वारा **नवग्वः**=स्तुत्य गतिवाला (नु स्तुतौ) **दध्यङ्**=ध्यानशील पुरुष **अप ऊर्णुते**=अज्ञान के आवरण को दूर करता है। **येन**=जिसके द्वारा **विप्रासः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवाले लोग **आपिरे**=उस प्रभु को प्राप्त करते हैं। यह सोम वह है **येन**=जिसके द्वारा **देवानां सुम्ने**=देववृत्ति के पुरुषों के प्रभु स्तवन के होने पर (सुम्न=Hymn) **चारुणः अमृतस्य**=अत्यन्त कल्याणकर अमृतत्व को **आनशुः**=प्राप्त करते हैं तथा जिससे **श्रवांसि**=ज्ञानों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से अज्ञान का आवरण दूर होता है, प्रभु की प्राप्ति होती है, प्रभु स्तवन करते हुए हम मोक्ष को प्राप्त करते हैं, ज्ञानवृद्धि का यह सोमरक्षण कारण बनता है।

ऋषिः—**उरुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

मदिनामः

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः। क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥

एषः=यह **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **स्यः**=वह सोम **अव्यः**=रक्षणीय है। **वारेभिः**=वासनाओं के निवारण के द्वारा यह **पवते**=हमें प्राप्त होता है। **मदिन्तमः**=अतिशयेन उल्लास का जनक है। यह सोम हमारे जीवनों में **अपाम् ऊर्मिः इव**=कर्मों के प्रकाश की तरह (अप्=कर्म, ऊर्मि=प्रकाश) **क्रीडन्**=क्रीड़ा करता हुआ होता है। यह हमें कर्मशील बनाता है, कर्त्तव्य कर्मों के मार्ग का दर्शन कराता है और हमें क्रीडक की मनोवृत्ति वाला बनाता है। हम कर्म करते हैं, पर फल में उलझते नहीं।

भावार्थ—यह सोम 'मदिन्तम' है। हमें कर्तव्य मार्ग का दर्शन कराता है और अनासक्त भाव से कर्म करने की योग्यता प्राप्त कराता है।

ऋषिः—ऋजिष्वाः॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**स्वराट्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

वर्मी इव धृष्णो आरुज

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज॥ ६॥

यः=जो सोम **अश्मनः अन्तः**=पाषाण तुल्य दृढ़ शरीर के अन्दर **अप्याः**=कर्मों के लिये हितकर **उस्रियाः**=प्रकाश की किरणों को तथा **गाः**=इन्द्रियों को **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **निः अकृन्तत्**=वासनारूप वृत्र के आवरण से बाहर करता है (निरच्छिनत्)-वृत्र से इन्हें छुड़ा लेता है। सोमरक्षण से ज्ञानेन्द्रियाँ व प्रकाश की किरणें वासना के आवरण से रहित होती हैं। हे सोम! तू **गव्यम्**=ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी **अश्व्यम्**=कर्मेन्द्रिय सम्बन्धी **व्रजम्**=समूह को **अभितत्निषे**=विस्तृत शक्ति वाला करता है। हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले सोम! **वर्मी इव**=कवचधारी योद्धा के समान तू हमारे शत्रुओं को **आरुज**=समन्तात् भग्न करनेवाला हो।

भावार्थ—सोम शरीर को पाषाण तुल्य दृढ़ बनाता है, उसमें कर्तव्य कर्मों के प्रकाश को प्राप्त कराता है, इन्द्रिय समूह को वासना बन्धन से छुड़ाता है, वासना रूप शत्रुओं को दूर भगाता है।

ऋषिः—ऋजिष्वाः॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

वनक्रक्षम्-उदप्रुतम्

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्। वनक्रक्षमुदप्रुतम्॥ ७॥

आसोत=इस सोम को सर्वथा अपने में उत्पन्न करो, तथा **परिषिञ्चत**=शरीर में चारों ओर सिक्त करो। उस सोम को, जो **अश्वं न**=एक अश्व के समान **स्तोमम्**=स्तव्य है। जैसे एक घोड़ा संग्राम में विजय का कारण बनता है, उसी प्रकार यह सोम जीवन संग्राम में विजय का साधक होता है। यह सोम हमें **अप्तुरम्**=कर्मों में प्रेरित करता है और **रजस्तुरम्**=राजसी भावों को हिंसित करता है, यह सोम **वनक्रक्षं**=उपासकों के जीवन में वासनाओं को कुचलनेवाला है (क्रक्ष् crush) तथा **उदप्रुतम्**=ज्ञानजल को जीवन में गति देनेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण से क्रियाशीलता बढ़ती है, राजसभाव नष्ट होते हैं, वासनाएँ विकीर्ण हो जाती हैं, और ज्ञानजल प्रवाहित होता है।

ऋषिः—**ऊर्ध्वसद्मा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

राजा देवः ऋतं बृहत्

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्॥ ८॥

गतमन्त्र की 'आसोत-परिषिञ्चत' क्रिया ही यहाँ भी अनुवृत्त होती है। उस सोम को उत्पन्न करो और शरीर में चारों ओर सिक्त करो जो **सहस्राधारम्**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला है, **वृषभम्**=शक्ति का सेचन करनेवाला है, **पयोवृधम्**=ज्ञानजल को बढ़ानेवाला है, **प्रियम्**=प्रीति का जनक है और **देवाय जन्मने**=दिव्यगुणों के जन्म के लिये होता है। **यः**=जो सोम **ऋतजातः**=ऋत के निमित्त यज्ञ के निमित्त उत्पन्न हुआ-हुआ **ऋतेन**=इन यज्ञों से **विवावृधे**=विशिष्ट वृद्धि को प्राप्त करता है। **राजा**=दीप्त होता है, **देव**=दिव्यगुण सम्पन्न होता है। यह सोम **बृहत् ऋतम्**=महान् ऋत है। इसी से जीवन में सब यज्ञ व ठीक बातें होती हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन में दिव्यगुणों को जन्म देता है। यह हमें दीप्तिमान् बनाता है। महान् ऋत का कारण बनता है।

ऋषिः—**ऊर्ध्वसद्मा**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुबुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

वि कोशं मध्यमं युव

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः। वि कोशं मध्यमं युव॥ ९॥

हे **देव**=प्रकाशमय! **इषस्पते**=हमारे जीवनों प्रभु प्रेरणाओं के रक्षक सोम! तू हमें **द्युम्नं अभि**=ज्ञान ज्योति की ओर ले चल। तथा **बृहद् यशः**=महान् यश की ओर ले चल। **देवयुः**=दिव्यगुणों को हमारे साथ जोड़ने की कामना वाला यह सोम है। तू **दिदीहि**=हमें दिव्यगुणों व प्रकाश को इस **मध्यमम् कोशम्**=मनोमय कोश को, जिसके एक ओर अन्नमय व प्राणमय है, तथा दूसरी ओर विज्ञानमय व आनन्दमय, उस मध्यम कोश को **वियुव**=सब बुराइयों से पृथक् कर।

भावार्थ—सोमरक्षण से 'ज्योति, यश व दिव्यगुण' प्राप्त होते हैं। इस के रक्षण से मन की पवित्रता सिद्ध होती है।

ऋषिः—**कृतयशाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

जिन्वा गविष्टये धियः

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः॥ १०॥

हे **सुदक्ष**=उत्तम बल वाले सोम **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के निमित्त, मस्तिष्क व शरीर के स्वास्थ्य के लिये **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू **आवच्यस्व**=शरीर में चारों ओर प्राप्त हो। (वंच् To go, arrive at) शरीर के अंग-प्रत्यंग में पहुँचा हुआ तू उन सब को सशक्त बना। तू **विशां वह्निः न**=प्रजाओं के लक्ष्य स्थान पर ले जानेवाले के समान है। **विश्पतिः**=सब प्रजाओं का रक्षक है। **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक से **वृष्टिं**=आनन्द की वृष्टि को **पवस्व**=प्राप्त करा। योगमार्ग में धर्ममेघ समाधि में प्राप्त होनेवाली आनन्द की वृष्टि को तू सिद्ध कर। **अपां रीतिम्**=कर्मों के प्रवाह को तू प्राप्त करा। तेरे रक्षण के द्वारा हम सतत क्रियाशील बनें। **गविष्टये**=आत्मान्वेषण के लिये **धियः**=बुद्धियों को **जिन्वः**=प्रीणित कर। तेरे रक्षण से हमें बुद्धि की वह सूक्ष्मता प्राप्त हो, जो आत्मदर्शन का साधन बनती है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाता है, हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचाता है। आनन्द की वृष्टि का अनुभव कराता है, निरन्तर क्रियाशील बनाकर हमें सूक्ष्म बुद्धिवाला बनाता है जिससे हम प्रभु दर्शन कर सकें।

ऋषिः—**कृतयशाः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**ककुबुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

विश्वा वसूनि बिभ्रतम्

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः। विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥ ११॥

एतम्=इस **उ**=निश्चय से **त्यम्**=उस सोम को **दिवः**=स्वाध्याय द्वारा ज्ञान ज्योति से दीप्त होनेवाले पुरुष **दुहुः**=अपने अन्दर प्रपूरित करते हैं, जो **मदच्युतम्**=आनन्द को प्राप्त करानेवाला है, **सहस्रधारम्**=अनेक प्रकार से धारण करनेवाला है, **वृषभम्**=शक्ति का आसेचन करता है। स्वाध्याय द्वारा सुरक्षित यह सोम **विश्वा वसूनि बिभ्रतम्**=सब वसुओं का शरीर में भरण

करनेवाला है। जीवन के लिये सब आवश्यक तत्त्वों को यह प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम आनन्द को देनेवाला, शक्ति का सेचन करनेवाला व सब निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त करानेवाला है।

ऋषिः—**ऋणञ्चयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

वृषा अमर्त्यः

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा॥ १२॥

वृषा=सब सुखों का वर्षक, **जनयन्**=हमारी शक्तियों का प्रादुर्भाव करता हुआ यह सोम **अमर्त्यः**=अमरण धर्मा **विजज्ञे**=जाना जाता है, यह हमें रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता। **ज्योतिषा**=यह ज्ञान की ज्योति के द्वारा **तमः**=अज्ञानान्धकार को **प्रतपन्**=नष्ट करता है। **सः**=वह **कविभिः**=ज्ञानी पुरुषों से **सुष्टुतः**=सम्यक् स्तुत होता है। ज्ञानी पुरुष इसके गुणों को समझते हैं। यह **निर्णिजं दधे**=शोधन को धारण करता है, जीवन को शुद्ध बनाता है। वह सोम **अस्य दंससा**=अपने शत्रु विनाशक कर्मों के द्वारा **त्रिधातु दधे**='शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों के धारणात्मक कर्म को धारण करता है। यह शरीर को सशक्त बनाता है, मन को पवित्र बनाता है, और मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल करता है।

भावार्थ—यह सोम शरीर में शक्ति का सेचन करके हमें नीरोग बनाता है, ज्ञान ज्योति के द्वारा अन्धकार को दूर करता है शोधन करता हुआ 'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों का धारण करता है।

ऋषिः—**ऋणञ्चयः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वसूनां, रायां, इडानां, सुक्षितीनां' आनेता

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम्। सोमो यः सुक्षितीनाम्॥ १३॥

सः=वह सोम **सुन्वे**=हमारे लिये उत्पन्न किया जाता है **यः**=जो **वसूनाम्**=निवास के लिये सब आवश्यक तत्त्वों का **आनेता**=प्राप्त करानेवाला है। **यः**=जो **रायाम्**=सब ऐश्वर्यों का (आनेताः) प्राप्त करानेवाला है, और **यः**=जो **इडानाम्**=वेद वाणियों को ज्ञान की वाणियों का प्रापक है। वह **सोमः**=सोम उत्पन्न किया जाता है **यः**=जो **सुक्षितीनाम्**=उत्तम निवासों का कारण बनता है। शरीर में हमारा निवास इस सोम के कारण ही ठीक होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम वसुओं को ऐश्वर्यों को, ज्ञान की वाणियों को तथा उत्तम निवासों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**शक्तिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'इन्द्र, मरुत् अर्यमा व भग'

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे॥ १४॥

गतमन्त्र की ही क्रिया यहाँ अनुवृत्त होती है। 'सः सुन्वे'=वह सोम उत्पन्न किया जाता है **यस्य**=जिसका **नः**=हमारे में से **इन्द्रः पिबात्**=जितेन्द्रिय पुरुष पान करता है। **यस्य**=जिसका **मरुतः**=प्राण पान करते हैं, अर्थात् प्राणसाधक पुरुष जिसका पान करता है **वा**=अथवा **यस्य**=जिसका

पान **अर्यमणा**=(अरीन् यच्छति) शत्रुओं का नियमन करनेवाले के साथ **भगः**=(भज सेवायाम्)प्रभु भजन करनेवाला पुरुष करता है वह सोम उत्पन्न किया जाता है **येन**=जिससे कि **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता (द्वेष निवारण) के भावों को हम **आकरामहे**=सिद्ध कर पाते हैं। जिस सोम के द्वारा हम **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को अपने आभिमुख कर पाते हैं जो **महे अवसे**=हमारे महान् रक्षण के लिये होते हैं। प्रभु का दर्शन हमारे सब शत्रुओं का विध्वंस कर देता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'जितेन्द्रियता, प्राणसाधना, शत्रु नियमन व प्रभु भजन' साधन बनते हैं। सुरक्षित सोम से हम 'स्नेह व निर्द्वेषता' को प्राप्त करके प्रभु दर्शन कर पाते हैं।

ऋषिः—**शक्तिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

मदिन्तमः-मधुमत्तमः

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः। पवस्व मधुमत्तमः॥ १५॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **इन्द्राय पातवे**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये पान के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। जितेन्द्रिय पुरुष तेरा पान करनेवाला बने। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **यतः**=संयत हुआ-हुआ तू **स्वायुधः**=उत्तम 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों वाला हो। **मदिन्तमः**=अतिशयेन उल्लास को प्राप्त करानेवाला बन। **मधुमत्तमः**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—जितेन्द्रिय व उन्नतिपथ पर चलने वालों से सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' को उत्तम बनाता है उल्लास व माधुर्य को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—**शक्तिः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

दिवो विष्टम्भ उत्तमः

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः॥ १६॥

हे सोम! तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के इस **हार्दि**=हृदयंगम, अत्यन्त सुन्दर व प्रशंसनीय **सोमधानमः**=सोम के आधारभूत शरीर कलश में **आविश**=इस प्रकार प्रविष्ट हो, **इव**=जैसे कि **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र में प्रविष्ट होती हैं। हे सोम! तू **मित्राय**=सबके प्रति स्नेह वाले, **वरुणाय**=निर्द्वेषता को धारण करनेवाले, **वायवे**=निरन्तर गतिशील पुरुष के लिये **जुष्टः**=प्रेम से सेवित होता है। तू **दिवः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक को **उत्तमः**=सर्वोत्तम **विष्टम्भः**=धारक होता है। सुरक्षित सोम इस मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'जितेन्द्रियता 'स्नेह, निर्द्वेषता व क्रियाशीलता' साधन हैं। यह मस्तिष्क का सर्वोत्तम धारक है।

गतमन्त्र के अनुसार मस्तिष्क के उत्तम धारक सोम का रक्षण करते हुए ये व्यक्ति 'धिष्ण्याः' (धिषणायां साधुः)=उत्तम बुद्धि वाले बनते हैं। इसके द्वारा 'अग्रयः' निरन्तर आगे चलनेवाले होते हैं। **ऐश्वर्यः**=(ईश्वरस्य इमे) ये प्रभु के पूरे विश्वासी आस्तिक बनते हैं। ये कहते हैं—

[१०९] नवोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मित्र-पूषा-भग

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय॥ १॥

हे सोम तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिप्रधन्व**=शरीर रूप पात्र में चारों ओर गतिवाला हो जितेन्द्रियता के द्वारा ही वस्तुतः सोम का रक्षण होता है। यह सोम **मित्राय**=सब के प्रति स्नेह वाले इस व्यक्ति के लिये, **पूष्णे**=अपने शरीर का ठीक से पोषण करनेवाले के लिये तथा **भगाय**=प्रभु का भजन करनेवाले के लिये **स्वादुः**=जीवन को आनन्दमय बनाता है। वस्तुतः सोमरक्षण ही हमें 'मित्र-पूषा व भग' बनाता है। ऐसा बनाने पर जीवन मधुर हो जाता है। जीवन वही है जिसमें कि मेरा किसी के प्रति द्वेष नहीं, शरीर पूर्ण स्वस्थ हों तथा प्रभु भजन की मेरी वृत्ति हो।

भावार्थ—जितेन्द्रियता से मैं सोम का रक्षण कर पाता हूँ। रक्षित सोम मुझे 'स्नेह वाला, स्वस्थ शरीर वाला व प्रभु भजन की वृत्ति वाला' बनाता है। इस प्रकार जीवन आनन्दमय होता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रज्ञान+बल

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः॥ २॥

हे सोम! **सुतस्य ते**=उत्पन्न हुए-हुए तेरा **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **पेयाः**=पान करे। जितेन्द्रियता के द्वारा शरीर के अन्दर ही तेरा रक्षण करे। इस प्रकार यह जितेन्द्रिय पुरुष **क्रत्वे**=प्रज्ञान के लिये तथा **दक्षाय**=बल के लिये हो। **च**=और इस सोमरक्षण के द्वारा **विश्वे देवाः**=सब दिव्य गुण इस जितेन्द्रिय पुरुष को प्राप्त हों। 'इन्द्र' इन सब देवों का अधिष्ठाता हो।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष सोम का पान करता हुआ प्रज्ञान बल व सब दिव्य गुणों को प्राप्त हो।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

शुक्र-दिव्य-पीयूष

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः॥ ३॥

एवा=इस प्रकार हे सोम! **सः**=वह तू **अमृताय**=नीरोगता के लिये हो। **महेक्षयाय**=जीवन में महत्त्वपूर्ण निवास व गति के लिये हो। तेरे रक्षण से रोगरूप मृत्युएँ हमारे से दूर रहें और हम जीवन में महत्त्वपूर्ण कार्यों को कर सकें। हे सोम! **शुक्रः**=अत्यन्त दीप्त-ज्ञान रूप दीप्ति को प्राप्त करानेवाला **दिव्यः**=दिव्यगुणों का वर्धन करनेवाला **पीयूषः**=अमृतत्व के गुण से युक्त तू **अर्ष**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम नीरोग व महत्त्वपूर्ण जीवन को प्राप्त कराता है। यह दीप्त, दिव्य व अमृत है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

विश्वा धाम अभि

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥ ४॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **महान्**=तू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, तेरे द्वारा ही जीवन महत्त्वपूर्ण कार्यों को कर पाता है। तू **समुद्रः**=जीवन को आनन्दमय बनाता है (स+मुद्) **देवानां**

पिता=सब दिव्य गुणों का तू ही रक्षक है। **विश्वा धाम अभि**=सब तेजों की ओर तू हमें ले चल। तेरे रक्षण से अंग-प्रत्यंग तेजस्वी बने।

भावार्थ—सुरक्षित सोम जीवन को 'महत्त्वपूर्ण, आनन्दमय, दिव्यगुणयुक्त व तेजस्वी' बनाता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'शरीर, मस्तिष्क व प्रजा' की अविकृति

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै॥ ५॥

हे **सोम**=वीर्य! **शुक्रः**=हमारे जीवन ज्ञानदीप्त व निर्मल बनानेवाला तू हमें **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। सोमरक्षण से जीवन में आसुरभावों का विनाश होकर दिव्य गुणों का वर्धन होता है। तू **दिवे**=मस्तिष्क रूप द्युलोक के लिये, **पृथिव्यै**=शरीर रूप पृथिवी लोक के लिये, **च**=और **प्रजायै**=शक्तियों के विकास के लिये व सन्तान के लिये **शम्**=शान्ति का देनेवाला हो। सोमरक्षण से मस्तिष्क व शरीर में किसी प्रकार का विकार नहीं होता। सन्तान भी अविकृत अंगोंवाले होते हैं। सोमरक्षण के अभाव में 'शरीर, मस्तिष्क व सन्तान' सभी पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम दिव्यगुणों का वर्धन करता है तथा 'मस्तिष्क, शरीर व सन्तानों' को अविकृति का कारण बनता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शुक्रः पीयूषः

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व॥ ६॥

हे सोम! तू **दिवः धर्ता असि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक का धारण करनेवाला है। **शुक्रः**=हमारे जीवनों को दीप्त व निर्मल बनाता है। **पीयूषः**=तू जीवन के लिये अमृत है। शरीर में किसी प्रकार के रोगों को नहीं आने देता। **सत्ये**=उस सत्य प्रभु प्राप्ति के निमित्त जीवन में सत्य व्यवहार के निमित्त, तथा **विधर्मन्**=विशिष्ट धारण के निमित्त, सब अंग-प्रत्यंगों के स्वास्थ्य के निमित्त **वाजी**=शक्तिशाली तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हों।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही मस्तिष्क का धारण करता है। हमें दीप्ति व अमृतत्व प्राप्त कराता है। हमारे जीवन को सत्यमय बनाता हुआ हमारा धारण करता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

द्युम्नी, सुधारः

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः॥ ७॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **द्युम्नी**=तू ज्योतिर्मय है, हमारे मस्तिष्क को ज्ञानज्योति से भरनेवाला है। **सुधारः**=बहुत अच्छी प्रकार हमारा धारण करनेवाला है। **महाम्**=प्रभु पूजन की वृत्तिवालों का (पूजन करनेवालों का) तथा प्रभुपूजन द्वारा **अवीनाम् अनु**=रक्षकों का, सोम का रक्षण करने वालों का अनुकूलता से **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवाला है। शरीर को तू रोगाक्रान्त

नहीं होने देता और मन में आसुरभावों को नहीं आने देता।

भावार्थ—प्रभु पूजक इस सोम का रक्षण करते हैं। यह उन्हें ज्योति व धारणशक्ति प्राप्त कराता हुआ उनका पालन व पूरण करता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

मन्द्रः स्वर्वित्

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित्॥ ८॥

नृभिः=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **येमानः**=(नियम्यमानः) संयत किया जाता हुआ, **जज्ञान**=शक्तियों का प्रादुर्भाव करता हुआ, **पूतः**=यह पवित्र सोम **विश्वानि**=सब अन्नमय आदि कोशों के तेजस्वता आदि ऐश्वर्यों को **क्षरत्**=प्राप्त कराता है। यह सोम **मन्द्र**=सुख का जनक है तथा **स्वर्वित्**=उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु को प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ—उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य ही सोम का संयम कर पाते हैं। यह संयत पवित्र सोम सब कोशों को ऐश्वर्य सम्पन्न बनाता है तथा उस ज्योतिर्मय प्रभु को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

पुनानः, प्रजाम् उराणः

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः॥ ९॥

इन्दुः=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **पुनानः**=पवित्र करता हुआ तथा **प्रजाम्**=सब शक्तियों के प्रादुर्भाव को **उराणः**=(उरु कुर्वाणः) खूब करता हुआ है। सुरक्षित सोम से जीवन में पवित्रता व शक्तियों का विस्तार उत्पन्न होता है। यह सोम **नः**=हमारे लिये **विश्वानि**=सब **द्रविणानि**=धनों को **करत्**=करे। अन्नमय कोश को यह तेजोरूप ऐश्वर्य से भरे, प्राणमय को वीर्य से, मनोमय को ओज व बल से, विज्ञानमय को ज्ञान से (मन्युः मन अववोधने) तथा आनन्दमय को सहस् से परिपूर्ण करे।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'पवित्रता–शक्तियों के विस्तार तथा सब कोशों के ऐश्वर्य' को प्राप्त कराये।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

प्रज्ञान–बल–ऐश्वर्य

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय॥ १०॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **क्रत्वे**=प्रज्ञान के लिये व **दक्षाय**=बल के लिये **पवस्व**=प्राप्त हो। तेरे रक्षण से ही प्रज्ञान व बल में वृद्धि होती है। **अश्वः न**=तू इस जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के लिये अश्व के समान है। **निक्तः**=शुद्ध किया हुआ तू वासनाओं से मलिन न किया जाता हुआ **वाजी**=शक्तिशाली होता है, इस जीवन संग्राम में हमें विजयी बनाता है और **धनाय**=सब अन्नमय आदि कोशों के धन के लिये होता है।

भावार्थ—सोम हमें प्रज्ञान, बल व ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है। जीवन संग्राम में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

मदाय-द्युम्नाय

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

सोतारः=इस सोम को शरीर में उत्पन्न व प्रेरित करनेवाले साधक लोग ही, हे प्रभो! **ते**=आपके **तम्**=उस **रसम्**=आनन्द को प्राप्त करते हैं और **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होते हैं। प्रभुस्मरण से सोमरक्षण होता है, सोमरक्षण से प्रभु दर्शन होता है और अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। ये साधक **महे द्युम्नाय**=महान् ज्ञान के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये **सोम पुनन्ति**=इस सोम को पवित्र करते हैं। पवित्र हुआ-हुआ वह सोम ही ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से प्रभु प्राप्ति का आनन्द तथा महान् ज्ञान का ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

'शिशु-इन्दु'

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥

शिशुम्=बुद्धियों को तीव्र करनेवाले (शो तनूकरणे) **जज्ञानम्**=शक्तियों का प्रादुर्भाव करनेवाले **हरिम्**=सब रोग आदि का हरण करनेवाले इस सोम को **मृजन्ति**=साधक लोग शुद्ध करते हैं, इसे वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। **पवित्रे**=पवित्र हृदय में, जिस हृदय क्षेत्र से वासनाओं के झाड़ी-झंकाड़ों को उखाड़ दिया गया है, उस हृदय में **सोमम्**=सोम को पवित्र करते हैं। यह सोम **देवेभ्यः**=देववृत्ति वाले पुरुषों के लिये **इन्दुम्**=शक्ति को देनेवाला होता है। यह सोमरक्षण ही वस्तुतः उन्हें देव बनाता है।

भावार्थ—वासनाओं से मलिन न होने दिया जाता हुआ सोम बुद्धि को तीव्र करता है, शक्तियों को प्रादुर्भूत करता है, सब रोगकृमियों का अपहरण करता है, हमें देववृत्ति का बनाता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

मदाय-भगाय

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

अपाम् उपस्थे=कर्मों की गोद में, अर्थात् निरन्तर यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहने पर यह **इन्दुः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला सोम **पविष्ट**=प्राप्त होता है। यह **चारुः**=सुन्दर व कल्याण कर है, **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये है। यह सोम **कविः**=क्रान्तदर्शी होता हुआ, हमें सूक्ष्म व तीव्र बुद्धि वाला बनाता हुआ **भगाय**=ज्ञानैश्वर्य की प्राप्ति के लिये होता है।

भावार्थ—सोम 'इन्दु, चारु व कवि' है यह आनन्द व ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु नाम स्मरण व वासना विनाश

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥

शरीर में सोम के रक्षण को करनेवाला पुरुष **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु के **चारु नाम**=सुन्दर कल्याणकर नाम को **बिभर्ति**=धारण करता है। वस्तुतः यह नाम स्मरण ही हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। **येन**=जिस प्रभु के नाम स्मरण के द्वारा **विश्वानि**=सब **वृत्रा**=ज्ञान पर आवरण के रूप में आ जानेवाली वासनाओं को **जघान**=नष्ट करता है। नाम स्मरण से वासनाएँ नष्ट होती हैं, वासना विनाश से सोम का रक्षण होता है, सोमरक्षण से प्रभु दर्शन होता है।

भावार्थ—'प्रभु नाम स्मरण' सब वासनाओं के विनाश का साधन बनता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

गोभिः श्रीतस्य

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य॥ १५॥

विश्वे=सब **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष ही **अस्य पिबन्ति**=इस सोम का शरीर में पान करते हैं। सोमरक्षण के लिये देववृत्ति अतिशयेन सहायक होती है। सुरक्षित सोम ही उन्हें 'देव' बनाता है। शरीरस्थ इन्द्रियाँ भी देव कहलाती हैं, ये भी इस सोम का पान करती हुई ही शक्तिशाली बनती हैं। ये देव उस सोम का पान करते हैं जो **गोभिः श्रीतस्य**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा परिपक्व होता है (श्रि पाके)। स्वाध्याय में लगे रहने से सोम शरीर में सुरक्षित रहता है और ठीक प्रकार से इसका परिपाक होता है। **नृभिः सुतस्य**=यह उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से उत्पन्न किया जाता है। सदा आगे और आगे बढ़नेवाले पुरुष ही इसको अपने शरीर में उत्पन्न करके परिपक्व करते हैं।

भावार्थ—स्वाध्याय में लगे रहना व उन्नति के मार्ग पर बढ़ना ही सोमरक्षण का साधन हो जाता है। सब देव इस सोम का पान करते हैं।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

पवित्र, वार, अव्य

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम्॥ १६॥

सुवानः=शरीर में प्रेरित किया जाता हुआ यह सोम **सहस्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला है। यह सोम **पवित्रम्**=पवित्र हृदय वाले पुरुष को, **वारम्**=वासनाओं के निवारण करनेवाले को **अव्यम्**=रक्षकों में उत्तम को **तिरः**=रुधिर में तिरोहित रूप से **प्र वि अक्षाः**=प्रकर्षेण विशेष रूप से प्राप्त होता है। रुधिर में व्याप्त हुआ-हुआ यह सोम सम्पूर्ण शरीर को बल प्राप्त कराता है। और अंग-प्रत्यंग का उत्तमता से धारण करता है।

भावार्थ—सोम पवित्र हृदय वाले, वासनाओं का वारण करनेवाले, रक्षकों में उत्तम पुरुष को प्राप्त होता है। यह रुधिर में तिरोहित रूप से रहता हुआ शरीर को हजारों प्रकार से धारण करता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अद्भिः मृजानः, गोभिः श्रीणानः

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः॥ १७॥

सः=वह **वाजी**=शक्ति का देनेवाला सोम **अक्षाः**=शरीर में व्याप्त होता है। और **सहस्त्ररेताः**=अनन्त शक्ति को प्राप्त कराता है (सहस्रं रेतांसि येन)। यह सोम **अद्रिः**=कर्मों के द्वारा **मृजानः**=शुद्ध होता है और **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **श्रीणानः**=परिपक्व किया जाता है। कर्मों में लगे रहने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और सोम इन वासनाओं के द्वारा मलिन नहीं किया जाता। स्वाध्याय के द्वारा इस सोम का ज्ञानाग्नि में परिपाक होता है।

भावार्थ—सोम का शरीर में रक्षण कर्मों में लगाने तथा स्वाध्याय के द्वारा होता है सुरक्षित सोम हमें शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

नभिः येमानः

प्र सो॑म या॒हीन्द्र॑स्य कु॒क्षा नृभि॑र्येमा॒नो अद्रि॑भिः सु॒तः ॥ १८ ॥

हे **सोम**=वीर्य! तू **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **कुक्षा**=उदर में **प्रयाहि**=प्रकर्षेण गतिवाला हो। इस जितेन्द्रिय पुरुष के शरीर में ही तू व्याप्तिवाला हो। **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलानेवाले मनुष्यों से तू **येमानः**=नियम्यमान होता है। इनके सामने निरन्तर आपके बढ़ने की भावना होती है, सो ये सोम का रक्षण करते हैं। **अद्रिभिः सुतः**=प्रभु के उपासकों से यह अपने अन्दर उत्पन्न किया जाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'जितेन्द्रियता, उन्नतिपथ पर चलना व प्रभु का उपासन' साधन बनते हैं।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्राय सोमः सहस्त्राधारः

असर्जि वा॒जी ति॒रः प॒वित्र॒मिन्द्रा॑य सोमः॑ स॒हस्र॑धारः ॥ १९ ॥

वाजी=यह शक्तिशाली सोम **पवित्रम्**=पवित्र हृदय वाले पुरुष में **तिरः असर्जि**=तिरोहित रूप से सृष्ट किया जाता है। पवित्र-हृदय पुरुष में यह रुधिर में व्याप्त रहता है। **सोमः**=यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **सहस्त्रधारः**=हजारों प्रकार से धारण करनेवाला है। शरीर के अन्दर शक्ति व ज्ञान का यह सोम ही स्रोत बनता है। हृदय में दिव्यता को भी यही उत्पन्न करता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष से धारित यह सोम सहस्त्रों प्रकार से उसका धारण करता है।

ऋषिः—**अग्रयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीगायत्री** ॥
स्वरः—**षड्जः** ॥

मदाय

अ॒ञ्जन्त्ये॑नं॒ मध्वो॒ रसे॒नेन्द्रा॑य॒ वृष्ण॒ इन्दुं॒ मदा॑य ॥ २० ॥

मध्वः रसेन=मधु के रस के हेतु से **एनम्**=इस सोम को **अञ्जन्ति**=शरीर में गतिमय करते हैं, शरीर में इसे अलंकृत करते हैं। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम वाणी आदि इन्द्रियों के व्यवहार में माधुर्य का संचार करता है। **इन्दुम्**=सोम को **वृष्णे**=शरीर में सिक्त करनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये यह सोम **मदाय**=उल्लास के लिये होता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम माधुर्य व उल्लास को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

देवेभ्यः—पाजसे

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥

अपः वसानम्=कर्मों को धारण करते हुए **हरिम्**=सब रोगों के हर्ता **त्वा**=तुझ को **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। वस्तुतः कर्मों में लगे रहना ही सोम शुद्धि का साधन है। तुझे **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये तथा **वृथा पाजसे**=अनायास ही शक्ति को प्राप्त कराने के लिये शुद्ध करते हैं। शुद्ध हुआ-हुआ सोम दिव्य गुणों व शक्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—कर्मों में व्यापृति के द्वारा सोम को शुद्ध करते हैं। यह दिव्य गुणों व शक्ति को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तोशते नितोशते

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥ २२ ॥

इन्दुः=यह शक्ति वाली सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **तोशते**=शत्रुओं का वध करता है और **नितोशते**=खूब ही वध करता है। हमारे शत्रुओं का संहार करके यह हमारे उन्नतिपथ को सुगम करता है **श्रीणन्**=ज्ञानाग्नि के द्वारा हमारा यह परिपाक करता है। **उग्रः**=तेजस्वी होता है। तथा **अपः रिणन्**=कर्म को हमारे में प्रेरित करता है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमें शक्ति देकर क्रियाशील बनाता है।

भावार्थ—सोम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करता है। यह हमें ज्ञान परिपक्व करता हुआ तेजस्वी व क्रियाशील बनाता है।

इस प्रकार सोमरक्षण 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को तेजस्वी बनानेवाला यह 'त्र्यरुण' है, सब काम आदि शत्रुओं को अपने से कम्पित करके दूर करनेवाला 'त्रसदस्यु' है, दास्यव भाव इससे भयभीत होकर दूर रहते हैं। अगले सूक्त के ऋषि ये 'त्र्यरुण व त्रसदस्यु' ही हैं। ये प्रार्थना करते हैं—

[११०] दशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वृत्राणि सक्षणिः

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

हे सोम! तू **उ**=निश्चय से **सु**=अच्छी प्रकार **परिप्रधन्व**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। शरीर के अंग-प्रत्यंग में **वाजसातये**=तू शक्ति को देनेवाला हो। सोम ही सब अंगों को सशक्त बनाता है। इस प्रकार शक्ति को प्राप्त कराके तू **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **परिसक्षणिः**=पराभूत करनेवाला हो। **द्विषः तरध्या**=तू सब द्वेष की भावनाओं से तैराने के लिये हो। **ऋणयाः**='ऋण' शब्द 'जल' वाचक है। 'ऋण' का अर्थ 'ऋण' ही करें तो भाव यह होगा कि सोम हमें 'ऋषिऋण, देवऋण व पितृऋण' आदि से मुक्त करता है (ऋणानां यापयिता) रेतःकण

रूप जलों को प्राप्त करानेवाला तू **न ईयसे**=हमें प्राप्त होता है।

भावार्थ—सोम शक्ति प्राप्त कराता है, वासनाओं को पराभूत करता है, द्वेष की भावनाओं को दूर करता है, रेत:कण रूप जलों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वाजान् अभि

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये। वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे॥ २॥

हे **सोम**=वीर्य! **सुतं त्वा हि अनुमदामसि**=उत्पन्न हुए-हुए तेरे अनुपात में ही आनन्द का अनुभव करते हैं। जितना-जितना शरीर में तेरा उत्पादन होता है, उतना-उतना ही जीवन आनन्दमय बनता है। तेरे उत्पादन से हमारा निवास **महे**=महत्त्वपूर्ण **समर्यराज्ये**=(सम् अर्य राज्ये) उत्तम स्वामी वाले इस शरीर राज्य में होता है। सोमरक्षण के होने पर इन्द्रियों का प्रभुत्व न होकर आत्मा का प्रभुत्व होता है। आत्मा 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' का अधिष्ठाता होता है। हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **वाजान् अभि**=सब शक्तियों का लक्ष्य करके **प्रगाहसे**=इस शरीर राज्य का आलोडन करता है। सोम का यहाँ प्रवेश वस्तुतः सब शक्तियों के सञ्चार के दृष्टिकोण से होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के अनुपात में ही जीवन का आनन्द है। यह सोम ही इस शरीर राज्य को आत्माधिष्ठित बनाता है। यही सब शक्तियों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

गोजीरया पुरन्ध्या

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः। गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या॥ ३॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! तू **हि**=निश्चय से **विधारे**=विशिष्ट धारण के निमित्त **सूर्यं अजीजनः**=ज्ञानसूर्य को उदित करता है। सोमरक्षण से मस्तिष्क की पवित्रता होकर ज्ञान प्राप्ति की अनुकूलता होती है। **शक्मना**=हे सोम! तू अपनी शक्ति से **पयः**=(अजीजनः) प्राप्यायन को प्राप्त करानेवाला हो। **गोजीरया**=इन्द्रियों को उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाली **पुरन्ध्या**=पालक बुद्धि के साथ **रंहमाणः**=शरीर में तीव्र गतिवाला होता है।

भावार्थ—सोम ज्ञानसूर्य को उदित करता है। शक्ति से अंगों का अप्यायन करता है, इन्द्रियों को प्रेरित करनेवाली बुद्धि से हमें प्राप्त होता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

अमृतत्व के साधन ऋत का धारण

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः। सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत्॥ ४॥

हे **अमृत**=रोगों से आक्रान्त न होने देनेवाले सोम! तू **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **चारुणः**=सुन्दर **अमृतस्य**=मृत्युरूप रोगों से बचानेवाले **ऋतस्य**=ऋत के यज्ञादि उत्तम कर्मों के व नियमितता (regularly) के **धर्मन्**=धारण के निमित्त **अजीजनः**=प्रकट हुआ है। सोमरक्षण से यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्ति बढ़ती है तथा जीवन नियमित होता है। ये ही बातें मनुष्य को रोगों से आक्रान्त होने से बचाती हैं। हे सोम! तू **सनिष्यदत्**=अमृतता को देता हुआ **सदा**=हमेशा **वाजम् अच्छा**=शक्ति की ओर **असरः**=गतिवाला हुआ है। जीवन में शक्ति को देनेवाला यह सोम ही है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम अमृत के साधन ऋत के धारण के निमित्त उत्पन्न किया गया है। यह अमृतत्व को देता हुआ सदा शक्ति की ओर गतिवाला होता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती**॥
स्वरः—**मध्यमः**॥

ज्ञान स्त्रोत का खनन

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्। शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः॥ ५॥

हे सोम! तू **श्रवसा**=ज्ञान के हेतु से **कञ्चित्**=किसी अद्भुत **अक्षितम्**=(न क्षितं यस्मात्) नाश से बचानेवाले **जनपानं**=लोकों के रक्षक व लोगों से पीने के योग्य **उत्सं न**=स्त्रोत के समान **हि**=ही ज्ञानस्त्रोत को **अभि ततर्दिथ**=खोद डालता है। सोम के द्वारा इस ज्ञानस्त्रोत पर ज्ञानजल को पीते हुए लोग ज्ञान को बढ़ा पाते हैं। सोम ही वस्तुतः इस सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त कराता है जो ज्ञान वृद्धि का कारण बनती है। **नः**=और यह सोम **शर्याभिः**=वासनाओं के संहार के द्वारा **गभस्त्योः**=भुजाओं में **भरमाणः**=शक्ति का भरण करता है। भुजाओं को शक्ति सम्पन्न बनाता हुआ यह सोम हमें उत्तम कर्मों के करने में समर्थ बनाता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमारे जीवन में ज्ञानस्त्रोत को खोल देता है और हमारे में शक्ति का भरण करता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती**॥
स्वरः—**मध्यमः**॥

प्रभु दर्शन व साधन

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत। वारं न देवः सविता व्यूर्णुते॥ ६॥

गतमन्त्र के अनुसार ज्ञानस्त्रोत व शक्ति को प्राप्त करके **आत् ईम्**=अब शीघ्र ही **केचित्**=कुछ **पश्यमानासः**=वस्तुतत्त्वों को देखते हुए, **वसुरुचः**=जीवन में निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों से दीप्त होते हुए **दिव्याः**=दिव्य मनोवृत्ति वाले पुरुष **आप्यं**=उस प्राप्त करने योग्य व सर्वत्र प्राप्त सर्वव्यापक प्रभु को **अभ्यनूषत**=स्तुत करते हैं। **न**=और अब (नः च, संगति) वह **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=सब का प्रेरक प्रभु **वारं**=वरणीय ज्ञान धन को **व्यूर्णुते**=आवरण से रहित करता है। प्रभु इन उपासकों के जीवन में ज्ञान को प्रकाशित करता है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। प्रभु उनके ज्ञानस्त्रोत को आवरण शून्य करते हैं।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

वाजाय श्रवसे

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः। स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय॥ ७॥

हे **सोम**=वीर्य! **त्वे**=तेरे में अर्थात् शरीर में तेरे स्थित होने पर ये सोम धारक पुरुष **प्रथमाः**=विस्तृत शक्तियों वाले होते हैं और **वृक्तबर्हिषः**=हृदय रूप क्षेत्र से वासनारूप घास-फूस को उखाड़नेवाले होते हैं ये **महे वाजाय**=महान् शक्ति के लिये तथा **श्रवसे**=ज्ञान प्राप्ति के लिये **धियं दधुः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों को धारण करते हैं। सोमरक्षण ही इन्हें इस योग्य बनाता है। हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले सोम! **सः**=वह **त्वम्**=तू **नः**=हमें **वीर्याय**=शक्तिशाली कर्मों के लिये **चोदय**=प्रेरित कर। तेरे रक्षण से शक्तिशाली कर्मों को करते हुए हम सदा वासना रूप

शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम 'शक्ति विस्तार, पवित्र हृदय, ज्ञान व वीर्य' को प्राप्त करते हैं, सब शत्रुओं को कम्पित करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

पीयूषं-पूर्व्यम्-उक्थ्यम्

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत। इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन्॥ ८॥

दिवः=ज्ञान ज्योति से दीप्त होनेवाले पुरुष (द्युति) अथवा वासनाओं को जीतने की कामना वाले पुरुष विजिगीष) **दिवः**=ज्ञान के **महः गाहात्**=महान् आलोडन से, अर्थात् गम्भीर स्वाध्याय के द्वारा, उस सोम को **आ निरधुक्षत**=समन्तात् अपने अन्दर प्रपूरित करते हैं, **यत्**=जो **पीयूषम्**=अमृत है, हमें रोगों से मरने नहीं देता। **पूर्व्यम्**=हमारा पालन व पूरण करने वालों में उत्तम है। **उक्थ्यम्**=जो प्रशंसनीय व स्तुत्य है। सोमरक्षण के लिये सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम अपने अतिरिक्त समय का विनियोग स्वाध्याय, गम्भीर अध्ययन में ही करें। ये स्वाध्यायशील पुरुष **इन्द्रं अभि**=जितेन्द्रिय पुरुष का लक्ष्य करके **जायमानम्**=प्रादुर्भूत होते हुए सोम को **समस्वरन्**=स्तुत करते हैं, इसके गुणों का प्रत्यापन करते हैं। इसके गुणों का स्मरण ही उन्हें इसके रक्षण के लिये रुचि वाला बनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण का उपाय 'गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्ति' ही है। यह हमें रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता, पूर्ति को करता है और जितेन्द्रिय पुरुष की शक्तियों का विकास करता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

सब अंगों का अलंकरण

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे॥ ९॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **अध**=अब **यत्**=जो **इमे रोदसी**=ये द्यावापृथिवी हैं, मस्तिष्क व शरीर हैं, **च**=और **इमा विश्वा भुवनाभि**=ये सब भुवन हैं, शरीर के विविध प्रदेश हैं, अंग-प्रत्यंग हैं, इनमें तू **मज्मना**=अपने बल से **विराजसे**=विराजमान होता है। इस प्रकार विराजमान होता है, **न**=जैसे कि **यूथे**=एक गौओं के समूह में **वृषभः**=वृषभ (शक्तिशाली बैल) **निःष्ठाः**=निश्चय से स्थित होता है। जैसे वृषभ सब गौवों में शक्ति का आधान करता है, इसी प्रकार यह सोम मस्तिष्क में, शरीर में तथा शरीरस्थ सब अंग-प्रत्यंगों में शक्ति को स्थापित करता है। इस सोम के द्वारा शक्ति सम्पन्न होकर वे सब अंग शोभायमान होते हैं।

भावार्थ—सोम सब अंगों को शक्ति प्राप्त कराता हुआ उनकी शोभा का कारण बनता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

शतवान: इन्दुः

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः। सहस्रधारः शतवाज इन्दुः॥ १०॥

सोमः=सोम **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **अव्यये**=(अवि अय्) विषय वासनाओं में न भटकनेवाले **वारे**=द्वेष आदि का निवारण करनेवाले में **शिशुः न**=बुद्धि को तीव्र करनेवाले के समान **क्रीडन्**=क्रीडा करता हुआ, सब कार्यों को क्रीडक की मनोवृत्ति से कराता हुआ **अक्षाः**=व्याप्त होता है। सोमरक्षण के लिये हमें अव्यय व वार बनना है। सुरक्षित हुआ-हुआ यह हमें तीव्र

बुद्धि व क्रीडक की मनोवृत्ति वाला बनाएगा। हम संसार की द्वन्द्वात्मक घटनाओं में अव्याकुल होकर चल सकेंगे। **पवमानः**=यह पवित्र करता हुआ सोम **सहस्राधारः**=हमें हजारों प्रकार से धारण करता है। **शतवाजः**=सौ वर्ष के पूर्ण आयुष्यपर्यन्त शक्तिशाली बनायें रखता है और **इन्दुः**=शक्तिशाली होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम बुद्धि को तीव्र करता है, हमें क्रीडक की मनोवृत्ति वाला बनाता है, पूर्ण आयुष्यपर्यन्त शक्तिशाली बनाये रखता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वरिवोवित् वयोधाः

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः। वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः॥ ११॥

एषः=यह **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ (पूयमानः) **इन्दुः**=सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पवते**=प्राप्त होता है। यह **मधुमान्**=प्रशस्त माधुर्य वाला है, जीवन के सब व्यवहारों में माधुर्य का सञ्चार करता है। और **ऋतावा**=ऋतवाला होता है, हमारे जीवन से अनृत को दूर करता है। **स्वादुः**=यह हमारे लिये जीवन को सरस बनाता है और **ऊर्मिः**=हमारे लिये 'प्रकाश' बनता है। यह सुरक्षित सोम ही हृदय को पवित्र करके अन्तःस्थित प्रभु के प्रकाश को प्राप्त कराता है। बुद्धि को तीव्र करके भी यह ज्ञान के प्रकाश का साधन बनता है। **वाजसनिः**=यह शक्ति को देता है। **वरिवः वित्**=सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है और **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन का धारण कराता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम 'माधुर्य, ऋत, आनन्द, प्रकाश, शक्ति, ऐश्वर्य व दीर्घ उत्कृष्ट जीवन' को सिद्ध करता है।

ऋषिः—**त्र्यरुणत्रसदस्यू**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सहमानः स्वायुधः

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि। स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून्॥ १२॥

हे **सोम**=वीर्य! **सः**=वह तू **पवस्व**=हमें प्राप्त हो। **पृतन्यून्**=आक्रान्त शत्रुओं को **सहमानः**=कुचलता हुआ, तू **दुर्गहाणि**=जिनका निग्रह बड़ा कठिन है, ऐसे **रक्षांसि**=राक्षसी भावों को **अपसेधन्**=हमारे से दूर भगाता है। **स्वायुधः**=तू इस जीवन संग्राम के 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप उत्तम आयुधों वाला है। इन आयुधों के द्वारा तू **शत्रून्**=काम-क्रोध व लोभ रूप शत्रुओं को **सासह्वान्**=खूब ही कुचल डालता है। प्रशस्त इन्द्रियाँ काम के वशीभूत नहीं होती। निर्मल मन को क्रोध अशान्त नहीं कर पाता तथा तीक्ष्ण बुद्धि लोभ का शिकार नहीं हो जाती।

भावार्थ—सोम हमें प्राप्त होता है तो हमारे शत्रुओं को कुचल डालता है।

'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों को प्रशस्त बनाता है उत्तम आयुधों वाला यह पुरुष 'अत्रानत' होता है, शत्रुओं से नत नहीं किया जाता। तथा सोमरक्षण के द्वारा अंग-प्रत्यंग में, पर्व-पर्व में शक्ति वाला 'पारुच्छेपि' बनता है। यह सोम शंसन करता हुआ कहता है—

[१११] एकादशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**अनानतः पारुच्छेपिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृदष्टिः** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

विश्वा द्वेषांसि तरति

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः
सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

यह सोम **अया**=(अनया) अपनी इस **हरिण्या**=अज्ञानान्धकारों का हरण करनेवाली **रुचा**=दीप्ति से **पुनानः**=हमारे जीवनों को पवित्र करता हुआ **स्वयुग्वभिः**=आत्मतत्त्व के साथ मेल वाली चित्तवृत्तियों के द्वारा **विश्वा द्वेषांसि**=सब द्वेष की भावनाओं को **तरति**=तैर जाता है। **सूरः न**=सूर्य के समान यह हमारे जीवन में ज्ञान के प्रकाश को करता हुआ सोम **स्वयुग्वभिः**=आत्मा के साथ मेल वाली इन्द्रियों से द्वेष की भावनाओं से पार हो जाता है। वैषयिक रुचि वाली इन्द्रियाँ ही पारस्परिक द्वेष को उपजाती हैं। **सुतस्य**=शरीर में उत्पन्न किये गये इस सोम की **धारा**=धारण शक्ति **रोचते**=हमारे जीवन में दीप्त होती है। यह **पुनानः**=पवित्र करता हुआ सोम **अरुषः**=(अ+रुष) क्रोध शून्य होता है और **हरिः**=हमारे सब कष्टों व रोगों का हरण करता है। ऐसा यह तब करता है **यत्**=जब कि **ऋक्वभिः**=(ऋच् स्तुतौ) ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभुस्तवन होने पर **विश्वा रूपा परियाति**=सब सौन्दर्यों को (रूप=beauty) सर्वतः प्राप्त होता है। **सप्तास्येभिः**='कर्णाविमौ नसिके चक्षणी मुखम्' इन सातों मुख रूप इन्द्रियों से **ऋक्वभिः**' 'ज्ञानपूर्वक स्तुतियों के होने पर शरीर में सुरक्षित सोम सब अंगों को सशक्त बनाकर सौन्दर्य प्रदान करता है।

भावार्थ—इन्द्रिय संयम के द्वारा आत्मतत्त्व के साथ मेल वाली इन्द्रियों से तथा ज्ञानपूर्वक साधन करती हुई इन्द्रियों से शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें अपनी मलहारिणी कान्ति से पवित्र करता है और द्वेषों से दूर करता है।

ऋषिः—**अनानतः पारुच्छेपिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिगष्टिः** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

रोचमानः वयो दधे

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम
ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

हे सोम! **त्वम्**=तू **त्यत्**=उस प्रसिद्ध **वसु**=जीवन धन को, निवास के लिये आवश्यक तत्त्व को **पणीनाम्**=(पण् व्यवहारे स्तुतौ च) प्रभुस्मरण पूर्वक सब व्यवहारों के करनेवाले पुरुषों को **विदः**=प्राप्त करता है। **स्वे**=अपने इस **दमे**=शरीर रूप गृह में **मातृभिः**=इन वेदमाता के ज्ञानदुग्धों के द्वारा **आ सम्मर्जयसि**=चारों ओर सम्यक् शोधन को करता है। सोमरक्षण से ज्ञानदीप्ति होकर हमारे सब व्यवहारों में शुद्धि आ जाती है। **दमे**=इस शरीरगृह में **ऋतस्य धीतिभिः**=ऋत के सत्यज्ञान व यज्ञादि उत्तम कर्मों के धारण से तू शोधन को करता है। सुरक्षित सोम हमें ज्ञानदीप्त करता है और हमारी यज्ञादि कर्मों में रुचि को उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह सोम ऋतधारण के द्वारा हमें शुद्ध करता है। **तद्**=सो **न**=अब (नः संप्रति) **यत्र**=जहाँ जिस शरीरगृह में **धीतयः**=इस सोम का धारण करनेवाले **साम रणन्ति**=प्रभु के स्तुति मन्त्रों का गायन करते हैं, वहाँ यह सोम **त्रिधातुभिः**='इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' इन तीनों का धारण करनेवाली

अरुषीभिः=आरोचमान इन ज्ञानवाणियों से **वयः दधे**=उत्कृष्ट जीवन को हमारे में स्थापित करता है। **रोचमानः**=कान्ति को धारण करता हुआ यह सोम **वयः दधे**=उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त कराता है। (यहाँ 'त्रिधातुभिः' का अर्थ 'प्रकृति, जीव व परमात्मा के ज्ञान को धारण करनेवाली' भी हो सकता है।)

भावार्थ—सोम प्रभुस्तवन पूर्वक व्यवहार करने वालों को वसु प्राप्त कराता है। ज्ञानवाणियों से व ऋतु के धारण से जीवन को शुद्ध बनाता है। प्रभुस्तवन करने वालों की इन्द्रियों, मन व बुद्धि को दीप्त करता हुआ उत्कृष्ठ दीर्घ जीवन का स्थापन करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**अनानतः पारुच्छेपिः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**अष्टिः** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो
दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥

गतमन्त्र के अनुसार सोमरक्षण करनेवाला पुरुष **पूर्वां प्रदिशं अनु**=सृष्टि के प्रारम्भ में दिये गये प्रकृष्ट ज्ञान के अनुसार उत्कृष्ट निर्देशों के अनुसार यह **चेकितत्**=ज्ञानी पुरुष **याति**=गति करता है। **रश्मिभिः**=सूर्य किरणों के साथ ही **संयतते**=पुरुषार्थ के कामों में प्रवृत्त हो जाता है। इसीलिये (क्योंकि यह ज्ञानपूर्वक कर्मों में लगा रहता है) **दर्शतः रथः**=इसका शरीररथ दर्शनीय होता है। **दैव्यः दर्शतः रथः**=इसका यह दर्शनीय रथ उस देव (प्रभु) की ओर ले जानेवाला होता है। **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **पौंस्या**=अत्यन्त पौरुष से युक्त **उक्थानि**=स्तोत्र **अग्मन्**=प्राप्त होते हैं। यह इन्द्र प्रभु स्तोत्रों का उच्चारण करता है और पौरुष में प्रवृत रहता है। ये पौंस्य उक्थ जैत्राय=सदा विजय के लिये होते हैं और उस जितेन्द्रिय पुरुष को **हर्षयन्**=प्रसन्न करते हैं। हे घरों में रहनेवाले दम्पतियो! आप **यत्**=जब इन पौंस्य उक्थों को प्राप्त करते हो, **च**=और **वज्रः**=(वज गतौ) क्रियाशीलता रूप वज्र का ग्रहण करते हो तो **अनपच्युता**=कभी मार्ग से च्युत न होनेवाले **भवथः**=होते हो। **समत्सु**=इन जीवन संग्रामों में काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं से आप **अनपच्युता**=च्युत नहीं किये जाते। संग्राम में विजयी बनकर आप प्रभु को प्राप्त करते हो।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष प्रभु के निर्देशों के अनुसार सूर्योदय से ही कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। इसका शरीर रथ दर्शनीय बनता है और इसे प्रभु की ओर ले चलता है। इसे पुरुषार्थ युक्त स्तोत्र प्राप्त होते हैं। यह विजयी बनता है। घर में क्रियाशीलता रूप वज्र को धारण करनेवाले लोग जीवन संग्रामों में मार्गभ्रष्ट नहीं होते, शत्रुओं से पराजित नहीं होते।

यह संग्राम में अनपच्युत व्यक्ति 'शिशु' तीव्र बुद्धि वाला होता है (श्यो तनूकरणे) तथा आंगिरसः=अंग-प्रत्यंग में रस वाला होता है। यह पवमान सोम का शंसन करते हुए कहता है—

[११२] द्वादशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**शिशुः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोम की कामना

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

इस संसार में **वा उ**=निश्चय से **नः धियः**=हमारी बुद्धियाँ **नानानम्**=नाना प्रकार की हैं। **जनानाम्**=लोगों के **व्रतानि**=कर्म भी **वि**=विविध प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ **तक्षा**=बढ़ई

रिष्टम्=गाड़ी की टूट-फूट को **इच्छति**=चाहता है। जिससे उसकी मरम्मत करके वह अपनी जीविका का उपार्जन करे। **भिषग्**=वैद्य **रुतम्**=रोग को चाहता है कि उसे इलाज का अवसर प्राप्त हो। **ब्रह्मा**=ऋत्विजों का अधिष्ठाता मुख्य ऋत्विज **सुन्वन्तम्**=यज्ञशील पुरुष को चाहता है कि उसे यज्ञ कराने का अवसर प्राप्त हो। इसी प्रकार हे **इन्दो**=शक्तिशाली सोम! तू **इन्द्राय परिस्त्रव**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये प्राप्त हो। सोम जितेन्द्रिय पुरुष की कामना करता है। मानो सोम कहता है कि यह जितेन्द्रिय ही मेरा रक्षण करेगा। रक्षित सोम तक्षा की तरह शरीररथ की टूट-फूट की मरम्मत करेगा। यह (वैद्य) की तरह रोगों को दूर करेगा। तथा ब्रह्मा की तरह हमारे जीवनयज्ञ का सुन्दर सञ्चालन करेगा। यही बुद्धियों व व्रतों का रक्षण करेगा।

भावार्थ—लोगों के विविध ज्ञानों व कर्मों को सिद्ध करनेवाला यह सोम है। यह शरीररथ टूट-फूट की मरम्मत करता है, रोगों का इलाज करता है और जीवनयज्ञ को सुन्दरता से चलाता है।

ऋषिः—**शिशुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

ओषधियाँ, पर्णभस्म व युक्ताभस्म

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम्।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्त्रव॥ २॥

जरतीभिः ओषधीभिः=परिपक्व व रोगों को जीर्ण करनेवाली ओषधियों से, **शकुनानां पर्णेभिः**=पक्षियों के पंखों से तथा **द्युभिः अश्मभिः**=ज्योतिर्मय पाषाणों से (हीरों) **कार्मारः**=क्रियाकुशल व्यक्ति **हिरण्यवन्तम्**=धनवाले पुरुष को **इच्छति**=चाहता है, इनके विक्रय के द्वारा वह अपने को धनी बनाना चाहता है। हे **इन्दो**=शक्तिशाली सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=प्राप्त हो। जैसे वे हिरण्यवान् पुरुष को चाहते हैं, तू इस जितेन्द्रिय की कामना कर। शरीर में कभी रोग आदि आ जाते हैं और सामान्यतः मनुष्य ओषधियों के प्रयोग से, पक्षियों के पंखों की भस्म बनाकर व मुक्ताभस्म आदि के द्वारा अपने को नीरोग बनाने की कामना करता है, इन से ही वह अपने को शक्तिशाली बनाना चाहता है। परन्तु सर्वोत्तम उपाय इस सोम का रक्षण ही है। इसके लिये हम जितेन्द्रिय बनें। यह जितेन्द्रियता सोमरक्षण द्वारा हमारे सब रोगों को विशेषरूप से कम्पित करके दूर करनेवाली होगी, यह तो है ही 'वीर्य' (वि+ईर) विशेष रूप से रोगरूप शत्रुओं को कम्पित करनेवाला।

भावार्थ—हम ओषधियों, पर्णभस्म व मुक्ताभस्मों के प्रयोग से रोगों को दूर करने की अपेक्षा शरीर में सोम (वीर्य) का धारण करें। इसे ही सर्वोत्तम औषध जानें।

ऋषिः—**शिशुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

कार्यक्षमता

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गाइव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्त्रव॥ ३॥

अहं कारुः=मैं स्वयं शिल्पी हूँ। **ततः**=मेरे पिता **भिषग्**=वैद्य हैं। **नना**=माता **उपलप्रक्षिणी**=(उपलभ्यां प्रक्षिणोति धान्यादि), सत्तू को बनाती है, धान्यों को ठीकठाक करके सत्तु आदि का निर्माण करती है। इस प्रकार **नानाधियः**=विभिन्न कर्मों वाले होकर हम **वसूयवः**=वसुओं की कामना वाले होते हैं। इन सब कर्मों को हम **गाः इव**=ज्ञान की वाणियों व इन्द्रियों के अनुसार **अनु तस्थिम**=अनुष्ठित करते हैं। इस ज्ञान व इन्द्रियों की शक्ति के वर्धन के लिये हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=प्राप्त हो, शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। तेरे से

सशक्त बनकर ही तो हम उन सब कार्यों को कर पायें।

भावार्थ—सोमरक्षण ही हमें ज्ञान व इन्द्रियों के बल को बढ़ाकर, उस-उस कार्य को कर सकने की क्षमता प्रदान करता है।

ऋषिः—**शिशुः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

वाः इत् मण्डूक इच्छति

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ४॥

वोढा अश्वः=रथ का वहन करनेवाला घोड़ा **सुखं रथम्**=आराम देनेवाले अच्छे रथ को **इच्छति**=चाहता है। **उपमंत्रिणः**=निमन्त्रण दाता पुरुष **हसनाम्**=निमन्त्रित पुरुष की प्रसन्नता व हास्य को चाहते हैं, वे किसी भी प्रकार उसे क्रुद्ध नहीं होने देना चाहते। **शेपः**=पुंस्प्रजनन **रोमण्वन्तौ भेदौ**=लोमयुक्त दो खण्डों, अर्थात् युवति को चाहता है। **मण्डूकः**=मेंढक **इत्**=निश्चय से **वाः**=जल को चाहता है। हे **इन्दो**=शक्ति को देनेवाले सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=परिस्रुत हो। तेरे द्वारा ही कर्मों में व्याप्त होनेवाले (अश्व) पुरुष का यह शरीररथ **सुखः**=उत्तम इन्द्रियों वाला (सु+ख) बनेगा। तू ही विचारशील (उपमन्त्री) पुरुषों के जीवन को आनन्दमय बनायेगा। तू ही एक शक्तिशाली पुरुष को उत्तम सन्तान की प्राप्ति की कामना वाला करेगा। तू ही जीवन को सद्गुणों से मण्डित करनेवाले पुरुष के लिये (मण्डूक) वरणीय शक्ति को प्राप्त करानेवाला होगा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीररथ को उत्तम बनाता है। जीवन को विचारशील व आनन्दमय बनाता है, उत्तम सन्तति को जन्म देने की योग्यता देता है, जीवन को सद्गुणों से मण्डित करने के लिये वरणीय शक्ति को प्राप्त कराता है।

सोमरक्षण के द्वारा तीव्र बुद्धि वाला यह व्यक्ति 'कश्यप'-पश्यक होता है, वस्तुओं के तत्त्व का द्रष्टा। यह 'मरीचः' होता है, सब वासनाओं को मारनेवाला। यह सोम शंसन करता हुआ कहता है—

[११३] त्रयोदशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

बलं दधानः आत्मनि

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ १॥

(शर्यणा=हिंसा) **शर्यणावति**=इस जीवन में, जिसमें कि निरन्तर रोगों व काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन चल रहा है, **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **सोमं पिबतु**=सोम का पान करे। सोम का पान करता हुआ यह **वृत्रहा**=इस ज्ञान पर आवरणभूत काम आदि शत्रुओं का संहार करनेवाला होगा। **आत्मनि**=अपने में **बलं दधानः**=बल को धारण करता हुआ यह **महत् वीर्यं करिष्यन्**=महान् पराक्रम के कार्यों को करनेवाला होगा। सो, हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=परिस्रुत हो। यह जितेन्द्रिय पुरुष तुझे प्राप्त करके इस जीवन संग्राम में शत्रुओं की शर्यणा (हिंसा) कर सके।

भावार्थ—जीवन संग्राम में सोम ही हमें विजयी बनाता है। इसका रक्षण हमें बल देता है

और हम महान् पराक्रम के कार्यों को कर पाते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋतवाकेन श्रद्धया सत्येन तपसा

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

हे **दिशांपते**=शास्त्र निर्देशों का रक्षण करनेवाले, अर्थात् शास्त्र निर्दिष्ट मार्ग से जीवन को प्रणीत करनेवाले, और इस प्रकार **मीढ्वः**=शक्ति का सेचन करनेवाले **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **आर्जीकात्**=(ऋजीकस्य अयम्, ऋजीक=इन्द्र) इन्द्रलोक की प्राप्ति के हेतु से **आपवस्व**=हमें प्राप्त हो। तेरे द्वारा ही इन्द्रलोक की प्राप्ति का सम्भव हैं। **ऋतवाकेन**=सत्य वेदज्ञान के उच्चारण से, **सत्येन**=सत्य से, **श्रद्धया**=श्रद्धा से तथा **तपसा**=तप से **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ तू हे **इन्दो**=सोम! **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में परिस्रुत हो। सोमरक्षण के लिये 'ज्ञान की वाणियों का उच्चारण, अर्थात् स्वाध्याय, सत्य व्यवहार, श्रद्धा, व तप' साधन बनते हैं। सुरक्षित सोम हमारे जीवनों को शास्त्र निर्देश के अनुसार बनाता है, यह हमें शक्ति सम्पन्न बनाता हुआ प्रभु को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'स्वाध्याय, सत्य, श्रद्धा व तप' साधन हैं। सुरक्षित सोम इहलोक के जीवन को शास्त्र मर्यादा से बद्ध बनाता है और प्रभु की प्राप्ति का साधन होता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

(पर्जन्यो वा उद्गाता श० १२।१।१।३) **पर्जन्यवृद्धम्**=उद्गाता के द्वारा जिसका वर्धन किया जाता है, प्रभु गुणगान करनेवाले से जिसका उत्कर्ष प्रतिपादित किया जाता है **तम्**=उस **महिषम्**=पूज्य प्रभु को **सूर्यस्य दुहिता**=उस प्रकाशमय प्रभु की पुत्री यह वेदवाणी **अभरत्**=हमारे अन्दर प्राप्त करती है। जब हम स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करते हैं तो उस प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। **तम्**=उस प्रभु को **गन्धर्वः**=(गां धारयति) ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले ज्ञानी पुरुष **प्रत्यगृभ्णन्**=ग्रहण करते हैं। सूर्य दुहिता, अर्थात् वेदवाणी के द्वारा, ये गन्धर्व प्रभु का ज्ञान प्राप्त करते हैं। **तं रसम्**=उस आनन्दमय प्रभु को (रसो वैसः) **सोमे**=सोम के सुरक्षित होने पर **आदधुः**=अपने हृदयों में स्थापित करते हैं। सो हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो। तेरे द्वारा ही ज्ञानाग्नि का वर्धन होगा। जिस ज्ञानाग्नि से हम प्रभु के दर्शन के लिये अपने हृदयों को पवित्र कर पायेंगे।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये वेदवाणी, इसके धारण के द्वारा ज्ञानधारण, तथा सोमरक्षण साधन बनते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋत-सत्य-श्रद्धा

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।

श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

हे **ऋतद्युम्न**=सत्य ज्ञानवाले, सत्य ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले, सोम! तू **ऋतं वदन्**=हमारे जीवनों में ऋत को उच्चारित करता है। सोम के रक्षण से सत्य ज्ञान की उत्पत्ति होकर जीवन सत्यमय बन जाता है। हे **सत्यकर्मन्**=सत्य कमो4 वाले, सब क्रियाओं से असत्य को दूर करनेवाले, सोम! तू **सत्यं वदन्**=हमारे जीवनों में सत्य का ही उच्चारण करता है। क्रियाओं को नियमपूर्वक करना 'ऋत' है, और उत्तम क्रियाओं को करना ही 'सत्य' है। हे **राजन्**=जीवनों को दीप्त करनेवाले **सोम**=सोम! तू **श्रद्धां वदन्**=हमारे जीवनों में श्रद्धा को कहनेवाला हो, हमारे जीवनों को श्रद्धामय बना। हमें उस प्रभु में पूर्ण आस्था है। हे **सोम**=सोम! तू **धात्रा**=उस प्रभु के द्वारा, प्रभु स्मरण के द्वारा **परिष्कृतः**=निर्मल किया जाता है। प्रभु स्मरण हमें वासनाओं से बचाता है, और इस प्रकार सोम निर्मल बना रहता है। हे **इन्दो**=निर्मल सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्त्रुत हो। तेरे इस शरीर में धारण के होने पर ही हमारा जीवन 'ऋत, सत्य व श्रद्धा' वाला बन पाएगा।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें सत्य ज्ञान वाला, सत्य कर्मों वाला व श्रद्धामय बनाता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'सत्यमुग्र बृहत्' सोम

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्त्रवन्ति संस्त्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्त्रव ॥ ५ ॥

(सत्यं यथार्थभूतं उद्गूर्णं बलं यस्य) **सत्यमुग्रस्य**=यथार्थभूत उद्गूर्ण (अवृद्ध) बल वाले, **बृहतः**=वृद्धि के कारणभूत सोम के **संस्त्रवः**=प्रवाह **संस्त्रवन्ति**=शरीर में सम्यक् स्तुत होते हैं। **रसिनः**=जीवन में रस का सञ्चार करनेवाले इस सोम के **रसाः**=रस (आनन्द) **संयन्ति**=हमें प्राप्त होते हैं। सुरक्षित सोम 'बल, वृद्धि व रस' का हेतु होता है। हे **हरे**=सब दुःखों का हरण करनेवाले **इन्दो**=सोम! तू **ब्रह्मणा**=ज्ञान की वाणियों द्वारा **पुनानः**=पवित्र किया जाता हुआ **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्त्रुत हो।

भावार्थ—'स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति में लगना' सोम की पवित्रता का जनक होता है। पवित्र सोम 'बल, वृद्धि व रस' का साधक होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

महत्वपूर्ण आनन्दमय जीवन

यत्र ब्रह्मा पवमान च्छन्दस्यां३ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्त्रव ॥ ६ ॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **यत्र**=जिस शरीर में स्थित होकर **ब्रह्मा**=वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति **छन्दस्यां वाचं**=इस सप्त छन्दोमयी वेदवाणी को **वदन्**=उच्चारित करता है। वहाँ **ग्राव्णा**=(प्राणा वै ग्राव्णा श० १४।२।२।३३) प्राणों के द्वारा **सोमे**=सोम के सुरक्षित होने पर **महीयते**=महिमा का अनुभव करता है। प्राणायाम के द्वारा सोम की ऊर्ध्वगति होती है। इस ऊर्ध्वगति के द्वारा शरीर पूर्ण नीरोगता वाला होता है। इस प्रकार सोमरक्षक पुरुष महिमा का अनुभव करता है। यह ब्रह्मा ज्ञानवाणियों में लगे रहकर **सोमेन**=सुरक्षित सोम के द्वारा **आनन्दं जनयन्**=जीवन में आनन्द को उत्पन्न करता है। हे **इन्दो**=सोम तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्त्रुत हो।

भावार्थ—स्वाध्याय व प्राणसाधना द्वारा सोमरक्षण होता है, सुरक्षित सोम हमें महत्त्वपूर्ण आनन्दमय जीवन वाला बनाता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अमृतत्व-अक्षितत्व-ज्योति-स्वः

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥

हे **पवमान**=पवित्र करनेवाले सोम! **माम्**=मुझे **तस्मिन्**=उस **अमृते**=मृत्यु व रोगों से रहित **अक्षिते**=शक्ति क्षय से शून्य **लोके**=लोकालोक में **धेहि**=स्थापित कर, मुझे उस स्थिति में प्राप्त करा **यत्र**=जहाँ **अजस्रं ज्योतिः**=निरन्तर प्रकाश ही प्रकाश है तथा **यस्मिन् लोके**=जिस लोक में **स्वः हितम्**=सुख ही सुख की स्थापना है। सुरक्षित हुआ-हुआ सोम हमें नीरोगता, अक्षीणशक्तिता, ज्योति व सुख= को प्राप्त कराता है, हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो। शरीर में व्याप्त होकर तू इस शरीर लोक को मन्त्र के शब्दों में 'अमृत, अक्षित, अजस्र ज्योतिवाला व स्वः सम्पन्न' बनाता है।

भावार्थ—हे सोम! मृत्यु और रोगों से बचाकर अमृत्व प्रदान कर।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मर्यादा-ज्ञान-शक्ति

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥

हे **इन्दो**=सोम! **माम्**=मुझे **तत्र**=उस लोक में **अमृतं कृधि**=अमर (नीरोग) बना, **यत्र**=जहाँ **वैवस्वतः**=विवस्वान् का पुत्र (विवस्=ज्ञान किरणें) अतिशय ज्ञान सम्पन्न पुरुष **राजा**=शासक है, जीवन को बड़ा व्यवस्थित बनानेवाला है। और **यत्र**=जहाँ **दिवः अवरोधनम्**=ज्ञान का अवरोधन-प्रवेश है। 'अवरोध' शब्द अन्तःपुर के लिये प्रयुक्त होता है। सो जहाँ ज्ञान के देवताओं का ही स्थान है। तथा **यत्र**=जहाँ **अमूः**=वे **यह्वतीः**=महान् **आपः**=रेतःकण रूप जलों का स्थान है। सोमरक्षण ज्ञान वृद्धि के द्वारा जीवन को व्यवस्थित कर देता है, ज्ञान का तो यह अन्तःपुर ही बन जाता है, महत्त्वपूर्ण रेतःकणों को शरीर में व्याप्त करके यह सोमरक्षण हमें अमृतत्व प्राप्त कराता है। सो, हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=परिस्रुत हो, शरीर में चारों ओर व्याप्त होनेवाला हो। शरीर में व्याप्त होकर ही तू हमारे इस शरीर को अमृत बनाएगा।

भावार्थ—सोमरक्षण से शरीर व्यवस्थित ज्ञान सम्पन्न व नीरोग बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

त्रिनाके त्रिदिवे (ब्रह्मलोके)

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥

मोक्ष में आत्मा ब्रह्म के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक विचरता है। इस मोक्ष लोक में यह सोम ही

तो हमें पहुँचाता है। जीवन्मुक्त पुरुष शरीर में होता हुआ भी इसी ब्रह्मलोक में ही मानो विचरण कर रहा होता है, यह इसकी 'ब्राह्मी स्थिति' कहलाती है। हे सोम! **माम्**=मुझे **तत्र**=वहाँ **अमृतम्**=विषयों के पीछे न मरनेवाला, विषयों से उपराम **कृधि**=कर, **यत्र**=जहाँ कि **लोकाः**=लोक **ज्योतिष्मन्तः**=ज्योति वाले हैं, जहाँ अज्ञानान्धकार का विलोप हो गया है। और **यत्र**=जहाँ विषयों से बद्ध न होने के कारण **अनुकामं चरणम्**=इच्छापूर्ण का स्वतन्त्रता के साथ विचरण होता है। उस **दिवः**=प्रकाशमय प्रभु के **त्रिनाके**=तृतीय आनन्दमय लोक के निमित्त (यत्र देवा अमृतम् आनशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त) **त्रिदिवे**=जिसमें 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' तीनों ही प्रकाशमय हैं, उस लोक की प्राप्ति के निमित्त, हे **इन्दो**=सोम! **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=परिस्रुत हो। सोम की व्याप्ति ही उस 'त्रिनाक त्रिदिव' लोकों प्राप्त करानेवाली होती हैं। वहाँ पहुँचकर आनन्द ही आनन्द होता है, निर्द्वन्द्व स्थिति होती है।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें ब्राह्मीस्थिति को प्राप्त कराएगा। इसके द्वारा हम 'त्रिनाक त्रिदिव' लोक में स्वतान्त्रतापूर्वक विचरण करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्वधा च यत्र तृप्तिश्च

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १० ॥

हे **इन्दो**=सोम! **माम्**=मुझे **तत्र**=वहाँ **अमृतं कृधि**=पूर्ण नीरोग स्थिति प्राप्त करा, **यत्र**=जहाँ कि **कामाः**=ये सारे सांसारिक काम्य विषय **निकामाः**=निकाम हो जाते हैं, नीचे दब जाते हैं। इनसे ऊपर उठकर के जब हम कामकामी न रहकर वास्तविक शान्ति को प्राप्त करते हैं। **च**=और **यत्र**=जहाँ **ब्रध्नस्य**=उस महान् आदित्यवर्ण प्रभु का **विष्टपम्**=देदीप्यमान लोक है। इन कामनाओं से ऊपर उठकर जहाँ हम प्रभु में ही विचरण करते हैं। **च**= और हे सोम! तू मुझे वहाँ अमृत कर **यत्र**=जहाँ कि **स्वधा**=आत्मतत्त्व का धारण होता है **च**=और **तृप्तिः**=वास्तविक तृप्ति का अनुभव होता है, जहाँ हम 'आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्मतृप्त' बनते हैं (यत्र चात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते)। हे सोम! इस स्थिति में प्राप्त कराने के लिये तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो।

भावार्थ—सोमरक्षण हमें सांसारिक काम्य पादर्थों की कामना से ऊपर उठाता है, ब्रह्मलोक में पहुँचाता है, आत्मरति, आत्मतृप्त बनाता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कामस्य यत्राप्ताः कामाः

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ११ ॥

हे **इन्दो**=सोम! **माम्**=मुझे **तत्र**=वहाँ **अमृतं कृधि**=अमृतत्त्व प्राप्त करा **यत्र**=जहाँ कि **आनन्दाः च मोदाः च**=समस्त समृद्धियाँ व हर्ष हैं। प्रभु की प्राप्ति ही सर्वमहान् समृद्धि है, इस समृद्धि में ही वास्तविक हर्ष है। जहाँ **मुदः प्रमुदः**=मोद 'प्रमोद' रूप से **आसते**=स्थित होते हैं। अर्थात् जहाँ आनन्द का मापक बहुत ऊँचा हो जाता है। **यत्र**=जहाँ **कामस्य**=इच्छा के **कामाः**=सब इष्ट विषय **आप्ताः**=प्राप्त हो जाते हैं, जहाँ प्रभु प्राप्ति के होने पर सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। उस मोक्षलोक में मुझे अमर बना। इस अमृतत्त्व को प्राप्त कराने के लिये हे **इन्दो**=सोम! तू

इन्द्राय=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=परिस्रुत हो।

भावार्थ—सोमरक्षण ही हमें ब्रह्मलोक को प्राप्त करानेवाला होगा। तत्त्वद्रष्टा 'कश्यप मारीच' ही अगले सूक्त में प्रार्थना करते हैं—

[११४] चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुप्रजाः

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

यः=जो **सोम**=हे सोम! **पवमानस्य**=पवित्र करनेवाले **इन्दोः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम ये तेरे **धामानि**=तेजों को **अनु अक्रमीत्**=अनुक्रमेण प्राप्त करता है, **तम्**=उसी को '**सुप्रजाः**'=शोभन प्रजा वाला व उत्तम विकास वाला **इति**=इस प्रकार **आहुः**=कहते हैं। सोम को सुरक्षित करके सोम के तेजों को धारण करनेवाला पुरुष ही 'सुप्रजा' बनता है। हे **इन्दो**=सोम! **यः**=जो **ते**=तेरी प्राप्ति के लिये **मनः अविधत्**=मन को, दृढ़संकल्प को करता है उस **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=तू शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो। तूने ही शरीर में व्याप्त होकर सब शक्तियों का सम्यक् विकास करना है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये हम दृढ़संकल्प वाले बनें। इस सोम की शक्तियों को धारण करते हुए ही हम 'सुप्रजा' बन पायेंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यो जज्ञे वीरुधां पतिः

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

हे **ऋषे**=तत्त्वद्रष्टः **कश्यप**=ज्ञानी पुरुष! तू **मन्त्रकृताम्**=विचार को करनेवाले (तज्जपः, तदर्थभावनम्) अर्थभावनवर्धक नाम जप को करनेवाले पुरुषों के **स्तोमैः**=स्तुतिसमूहों के साथ **गिरः उद्वर्धयन्**=ज्ञान की वाणियों को बढ़ाता हुआ **राजानम्**=जीवन को दीप्त करनेवाले **सोमम्**=सोम को **नमस्य**=पूज। यह सोम ही तुझे 'ऋषि कश्यप' बनायेगा। यही तेरे में स्तवन व ज्ञान का वर्धन करेगा। हे **इन्दो**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोम! **यः**=जो तू **वीरुधाम्**=सब वनस्पतियों का वनस्पतियों के तुल्य इस पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का (सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिव जायते पुनः) **पतिः**=रक्षक **जज्ञे**=होता है, वह तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्त्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें स्तोता व ज्ञानी बनाता है, यह हमारा रक्षण करता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**पवमानः सोमः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सप्त 'दिशः—होतारः—देवाः'

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

हे **सोम**=वीर्यशक्ते! जो **नानासूर्याः**=विविध सूर्यों वाली **सप्त दिशः**=सात दिशायें हैं। जो

सप्त=सात **ऋत्विजः**=ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाले **होतारः**=होता हैं। तथा **ये**=जो **सप्त**=सात **आदित्याः देवाः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले देव हैं। **तेभिः**=उनके द्वारा **नः अभिरक्ष**=तू हमारा रक्षण कर। यहाँ 'सप्त दिशः' वस्तुतः वेदोपदिष्ट सात मर्यादायें हैं, ये वेद के मानों सात आदेश हैं। इनके अनुसार हमें भिन्न कार्य करने होते हैं। सो इन्हें 'नानासूर्याः' कहा है। 'सरति इति सूर्यः' इन मर्यादाओं के अनुसार सरण ही 'सूर्य' है। इन मर्यादाओं के पालन से जीवन में सात सूर्यों का उदय होता है इनके अभाव में (seven deadly sins) सात पाप हमें घेर लेते हैं—दर्प (Pride) लोभ (covetousness) काम (Lust) क्रोध (anger) उदरम्भरिता (gluttony) ईर्ष्या (envy) और आलस्य (slachness) इन सात पापों के विपरीत (seven gifts of the holy ghosts) सात दिव्य भावनायें हैं—(wisdom) बुद्धि, विद्या (understanding), शुभ प्रेरणा (counsel) दृढ़ता (fortude) ज्ञान (knowledge) दिव्यता (godliness) प्रभु का भय (fear of the Lord)। इन सात दिव्यभावनाओं को प्राप्त करनेवाला 'सोम' ही है। शरीर में जीवनयज्ञ को चलानेवाले सप्तर्षि व सप्त होता 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' हैं। इन्हें सोम ही शक्ति सम्पन्न बनाता है। 'पाँच प्राण, मन व बुद्धि' ही सात आदित्य देव हैं—ये ही सब अच्छाइयों का ग्रहण करते हैं। इन्हें भी सोम ने ही सबल बनाता है। हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर गतिवाला हो। तू हमारे जीवन में इन सात दिशाओं, सात होताओं व सात आदित्य देवों को स्थापित करनेवाला बन।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम सात दिव्यगुणों को हमारे में स्थापित करता है। यह जीवन के सप्तर्षियों को सबल बनाता है। पाँचों प्राणों व मन-बुद्धि को यह शक्ति देता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**पवमानः सोमः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

न वासनाएँ, न रोग

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

१. हे **राजन्**=जीवन को दीप्त बनानेवाले **सोम**=सोम! (वीर्यशक्ते) **यत्**=जो **ते**=तेरे लिए **हवि**=यज्ञशेष के रूप में पवित्र भोजन **श्रृते**=परिपक्व किया जाता है, **तेन**=उससे **नः अभिरक्ष**=तू हमारा रक्षण करने वाला हो, यज्ञशेष के रूप में सात्त्विक भोजन से उत्पन्न हुआ-हुआ सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। और रक्षित हुआ-हुआ सोम हमारा रक्षक करता है। २. हे सोम! **नः**=तेरे से रक्षित हुए-हुए हम लोगों को **अरातीवा**=(अरातित्वान्) शत्रुत्व की भावनाओं वाली ये वासनाएँ **मा तारीन्**=मत पराभूत करें। हम इन वासनाओं के शिकार न हों। **उ**=और **नः**= हमें **किंचन**=कुछ भी रोग आदि **मा आममत्**=मत हिंसित करें—हम किन्हीं भी व्याधियों से पीड़ित न हों। इसलिए हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **परिस्रव**=शरीर में चारों ओर परिस्रुत हो। शरीर में व्याप्त होकर तू वासनाओं व रोगों से हमें बचानेवाला हो।

भावार्थ—सात्त्विक याज्ञिक भोजन से उत्पन्न सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। यह हमें वासनाओं व रोगों से शिकार नहीं होने देता।

॥ इति नवमं मण्डलम् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः

[१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'त्रित आप्त्य'

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात्।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १ ॥

(१) प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि 'त्रित आप्त्य' है, जो 'त्रीन् तनोति' शरीर, मन व बुद्धि इन तीनों का विकास करता है अथवा 'त्रीन् तरति'=काम, क्रोध व लोभ तीनों को तैर जाता है और अतएव तीनों 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक' कष्टों से भी पार हो जाता है वह 'त्रित' सब अशिवों को इसी पार छोड़कर परले पार सब शिव वाजों (शक्तियों) को प्राप्त करने से 'आप्त्य'=प्राप्त करनेवाले उत्तम कहलाता है। (२) यह ऐसा इसलिए बन पाया कि यह **उषसाम्**=उषःकालों के **बृहत् अग्रे**=बड़ा आगे, अर्थात् बहुत ही सबेरे (early in the morning) **ऊर्ध्वः अस्थात्**=ऊपर उठ खड़ा होता है। यह समय 'ब्राह्ममुहूर्त' कहलाता है, यह ब्रह्म के मिलने का समय होता है। इस समय सोते रहना तो अपना बड़ा नुकसान करना है। 'अच्छानक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः' इन शब्दों में वेद कह रहा है कि इस समय प्रभु (अच्छः) तुम्हारी ओर (नक्षि) आते हैं और देदीप्यमान धन प्राप्त कराते हैं। हम सोये ही रह जाएँगे तो प्रभु का स्वागत करके उस द्युमत्तम रयि के प्राप्त करने से वञ्चित ही रह जाएँगे। सो त्रित बहुत ही सबेरे उठता है, वह प्रभु के स्वागत के लिये तैयार होता है। अब यह '**निर्जगन्वान्**'=घर से बाहर लम्बे भ्रमण के लिये निकल खड़ा होता है। यह प्रातः भ्रमण के लाभ को समझता है। उस समय ही खुली शुद्ध वायु में ओजोष के अंश अधिक मात्रा में रहते हैं। इसीलिए देव '**प्रातर्यावाणः**'=प्रातः भ्रमण के लिये जाने के स्वभाव वाले हैं। एक विद्वान् ने अपना अनुभव 'Long walk, long life'='लम्बा भ्रमण, लम्बा जीवन' इन शब्दों में व्यक्त किया है। (३) भ्रमण से लौटकर यह 'त्रित' **तमसः**=अन्धकार को छोड़कर **ज्योतिषा अगात्**=प्रकाश के साथ विचरण करता है। अर्थात् यह स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान की दीप्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। (४) इस प्रकार यह प्रतिदिन **अग्निः**=आगे और आगे बढ़नेवाला होता है। इसके जीवन का सूत्र ही 'ऋषि' हो जाता है। आगे बढ़ना है 'अति समं क्राम' बराबर वालों से लाँघ जाना है यह इसका ध्येय होता है। **रुशता भानुना**=चमकती हुई ज्ञान की दीप्ति से युक्त होकर यह **स्वंगः**=(सु-अगि गतौ) उत्तम गतिवाला होता है। एक-एक अंग से उत्तम क्रियाओं को यह करनेवाला होता है। ज्ञान पूर्वक कर्म करने से इसके सब कार्य बड़े पवित्र होते हैं। यह इन पवित्र कर्मों से **आजातः**=सब दृष्टिकोणों से विकास वाला होता है। 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी में यह शक्तियों को विकसित करता है, और **विश्वा**=सब **सद्मानि**=घरों व कोशों

का **अप्राः**=पूरण करता है। 'युक्ताहार विहार' के द्वारा अन्नमय कोश की कमियों को नष्ट करता है, 'प्राणायाम' इसके प्राणमय कोश का पूरण करता है, 'सत्य' से यह मनोमय कोश को पवित्र करता है 'स्वाध्याय' के द्वारा विज्ञानमय कोश का विकास करता है और कारण शरीर में विचरता हुआ सब प्राणियों के साथ एकत्व के अनुभव से पूर्ण आनन्द में विचरता है। यह 'एकत्वदर्शन' ही आनन्दमय कोश का पूरण है। एवं सब कोशों का पूरण करनेवाला यह सचमुच 'आप्त्य' होता है।

भावार्थ—हमें 'प्रातः उठना, भ्रमण के लिये जाना, स्वाध्याय, आगे बढ़ना, ज्ञानपूर्वक उत्तम क्रियाओं को करना, विकास व सब कोशों का पूरण' यही अपना कार्यक्रम बनाना चाहिये।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराटत्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वानस्पतिक भोजन

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः॥ २॥

(१) **स**=वह गतमन्त्र की सात बातों को अपनानेवाला तू **जातः**=शक्तियों के विकास वाला हुआ है, तू अपने में **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का **गर्भः**=(Joining, union) जोड़नेवाला **असि**=है, तू ने शरीर व मस्तिष्क दोनों की शक्ति का विकास किया है। केवल शरीर व केवल मस्तिष्क का विकास जीव के अधूरेपन का कारण होता है। केवल पृथिवी व केवल आकाश संसार को पूर्ण नहीं बनाता। इसी प्रकार वैयक्तिक जीवन की पूर्ति के लिये शरीर व मस्तिष्क दोनों के विकास को संगम करना आवश्यक है। अन्यथा हम राक्षस व ब्रह्म राक्षस ही बन जाते हैं। इस द्विविध विकास को जोड़नेवाले 'त्रित' से प्रभु कहते हैं कि '**अग्ने**'=हे उन्नति करनेवाले जीव! **चारुः**=शरीर व मस्तिष्क को उन्नति को अपने में संगत करके तू बड़े सुन्दर जीवन वाला हुआ है। इस सुन्दर जीवन का निर्माण तू इसलिये कर पाया है कि **ओषधीषु विभृतः**=ओषधि वनस्पतियों पर ही तेरा पालन-पोषण हुआ है। तेरा भोजन वानस्पतिक ही रहा है—'व्रीहि, यव, माष व तिल' आदि का ही तूने प्रयोग किया है, मांस भोजन ने तेरे मन को क्रूर व राजस नहीं बना दिया। ओषधि-भोजन से तेरे सब दोषों का दहन (उष दाहे) हुआ है इसीलिये तू **चित्रः**=(चित् ज्ञाने) ज्ञान का ग्रहण करनेवाला बना है। 'शिशुः' (शो तनूकरणे)=तूने अपनी बुद्धि को बड़ा सूक्ष्म बनाया है तथा **परि तमांसि**=अन्धकारों का तू वर्जन करनेवाला हुआ है (परेर्वर्जने) और **मातृभ्यः**=तेरे जीवन का निर्माण करनेवाले 'माता-पिता व आचार्यों' से तू **अक्तून्**=ज्ञान की किरणों को **अधिकनिक्रदत्**=आधिक्येन गर्जना करता हुआ **प्रगाः**=प्राप्त हुआ है। उनसे समय-समय पर जिन ज्ञान की वाणियों को तूने सुना, उन्हें बारम्बार उच्चारण करते हुए (अधिकनिक्रदत्) तूने स्मरण कर लिया और इस प्रकार इन्हें अपने जीवन का अंग बना लिया।

भावार्थ—'विकास, शरीर व मस्तिष्क का संगम, जीवन सौन्दर्य, वानस्पतिक भोजन, ज्ञानग्रहण, बुद्धि की सूक्ष्मता, अन्धकार निरसन, ज्ञानवाणियों का जप व स्मरण' इन बातों को अपनाने से हमारा जीवन सफल होता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराटत्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

स्व-अर्चन

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम्।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र॥ ३॥

इत्था=इस प्रकार से, अर्थात् उपरले मन्त्रों में वर्णित प्रकार से जीवन बिताने पर यह त्रित **विष्णुः**=व्यापक उन्नतिवाला होता है (विष् व्याप्तौ), 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी का विकास करता हुआ यह तीन कदमों को रखनेवाला त्रिविक्रम विष्णु होता है। यह **अस्य**=इस त्रित का **परमं**=सर्वोत्कृष्ट विकास होता है। यह **विद्वान्**=ज्ञानी तो बनता ही है, **जातः**=सब शक्तियों का विकास करता हुआ (जन्=प्रादुर्भावे) यह **बृहत् तृतीयम्**=उस महान् तृतीय धाम को **अभिपाति**=जीवन में या जीवन के पश्चात् दोनों ओर सुरक्षित करता है। 'तृतीये धामन् अध्यैरयन्त'=देव लोग तृतीय धाम में विचरते हैं। 'प्राकृतिक भोगों से ऊपर उठना' ही प्रकृति के घर से बाहर आ जाना है 'लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा' से ऊपर उठ जाना ही 'जीव' से ऊपर उठना है। यह 'वित्त लोक व पुत्र' की इच्छाओं से ऊपर उठा हुआ पुरुष तृतीय धाम 'प्रभु' में विचरता है। इस जीवन में ही यह जीवन्मुक्त व ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है और मृत्यु के बाद तो परामुक्ति को प्राप्त करके यह ब्रह्म में विचरता ही है। यही तृतीय धाम का अभिरक्षण है। यह वह स्थिति होती है **यद्**=जब कि **अस्य**=इसके **आसा**=मुख से **पयः**=दूध अर्थात् दूध के समान मधुर शब्द **अक्रत**=निष्पन्न किये जाते हैं। यह मधुर ही शब्द बोलता है, 'गोसनिं वाचम् उदेयम्' इस प्रार्थना को यह जीवन में पूर्णतः अनूदित करता है कि गोदुग्ध की तरह मधुर ही वाणी को मैं बोलूँ। जीवन को ऐसा बनाने के उद्देश्य से ही **सचेतसः**=समझदार लोग **अत्र**=इस मानव जीवन में **स्वम्**=आत्मा को अर्थात् आत्मभूत इस परमात्मतत्त्व को **अभ्यर्चन्ति**=दिन-रात पूजित करते हैं। सदा उस प्रभु का स्मरण करते हैं। यह प्रभुस्मरण ही उनके जीवनों को मधुर बनाये रखता है। प्रभु का उपासक सब प्राणियों में समवस्थित उस प्रभु का दर्शन करता है और सभी के प्रति प्रेम वाला होता है। इसे सब के साथ बन्धुत्व का अनुभव होता है, और यह एकत्व दर्शन ही इसे घृणा से ऊपर उठाकर प्रेमपूर्ण कर देता है।

भावार्थ—हम व्यापक उन्नति करनेवाले हों, विद्वान् व विकसित शक्तियों वाले होकर प्रभुरूप तृतीय धाम में विचरें। हमारे मुख से दुग्धसम मधुर शब्द निकलें और हम समझदार बनकर प्रभु का पूजन करनेवाले हों। प्रभु पूजन को छोड़ प्रकृति में आसक्त हो जाना ही मूर्खता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'योगक्षेमावह' हरि

अत॑ उ त्वा पितु॒भृतो॒ जनि॑त्रीरन्ना॒वृधं॒ प्रति॑ चर॒न्त्यन्नैः॑ ।
ता ईं॒ प्रत्ये॑षि॒ पुन॑र॒न्यरू॑पा॒ असि॒ त्वं वि॒क्षु मानु॑षीषु॒ होता॑ ॥ ४ ॥

अतः उ=इसलिए ही, क्योंकि गतमन्त्र के अनुसार तेरे मुख से सदा दुग्ध के समान आप्यायन (वर्धन) करनेवाले मधुर ही शब्द निकलते हैं, सो **त्वा**=तुझे **पितुभृतः**=अन्नों का धारण करनेवाले **जनित्रीः**=अन्नों को उत्पन्न करनेवाले अथवा माता के समान अन्नों से दूसरों का पालन करनेवाले उत्तम वैश्य लोग **अन्नैः**=अन्नों से **प्रतिचरन्ति**=सेवित करते हैं। वे तेरे लिये सब आश्वयक अन्नों की भेंटों को प्राप्त कराते हैं। वस्तुतः वे तो तुझे ही **'अन्नावृधम्'**=अन्नों का वर्धन करनेवाला जानते हैं। वे यह समझते हैं कि—'न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभिवर्षति' जिस राष्ट्र में इन ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों का निरादर होता है वहाँ यह मित्रवरुण देवता सम्बन्धी पर्जन्य वर्षा को नहीं करता है। हे प्रभो! आप **ताः प्रति**=इन अत्यन्त मधुर भाषण करनेवाली प्रजाओं के प्रति **ईम्**=निश्चय से **एषि**=आते हो। और **पुनः**=फिर आपके आने से ये प्रजाएँ **अन्यरूपा**=विलक्षण ही रूप वाली हो जाती हैं। ये सामान्य लोगों से अत्यन्त भिन्न प्रतीत होते हैं। इनका सामान्य पुरुषों के लिये अत्यन्त

विस्मयकारक होता है, वे इन्हें अतिमानव महापुरुष व प्रभु का अवतार ही कहने लगते हैं। हे प्रभो! **त्वं**=आप इन **मानुषीषु विक्षु**=मानुष-विचारपूर्वक कर्म करनेवाली, दया की वृत्ति वाली प्रजाओं में **होता**=सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले **असि**=हैं। अर्थात् ऐसे पुरुषों का योगक्षेम आप ही चलाते हैं। वस्तुतः सज्जन धनियों के हृदय में प्रेरणा को पैदा करके आप इनकी सब आवश्यकताओं का उनके द्वारा पूरण कराते रहते हैं।

भावार्थ—लोकहित में लगे हुए पुरुषों का योगक्षेम प्रभु उक्त धनिकों के द्वारा कराते रहते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'जन' द्वारा प्रभु का आतिथ्य

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम्।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम्॥ ५॥

गतमन्त्र में प्रभु को 'होता' कहा था, उसी शब्द से प्रभु का स्मरण करते हुए कहते हैं कि हम **तु**=तो उस प्रभु का स्मरण व स्तवन करते हैं जो कि **होतारम्**=वस्तुतः ही सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले हैं, **चित्ररथम्**=हमारे इस शरीर रूप रथ को अद्भुत बनानेवाले हैं। इसी प्रकार हमारा भी यह शरीर रूप रथ जब प्रभु से अधिष्ठित होता है तो इस पर कामादि वासनाओं का आक्रमण नहीं हो पाता। उस समय हमारे जीवन से हिंसारहित उत्तम ही कर्म होते हैं, वे प्रभु **अ-ध्वरस्य**=सब प्रकार की हिंसा से शून्य **यज्ञस्य यज्ञस्य**=प्रत्येक उत्तम कर्म के **केतुम्**=प्रकाशक हैं। प्रभु कृपा से हमारे जीवन में यज्ञों का ही प्रकाश होता है, हम कोई भी अयज्ञिय कर्म नहीं करते। **रुशन्तम्**=वे प्रभु देदीप्यमान हैं, ज्ञान के पुञ्ज हैं। वे प्रभु **मह्ना**=अपनी महिमा से व **श्रित्या**=श्री से **देवस्य देवस्य**=प्रत्येक देव की **प्रत्यर्धिम्**=(ऋध् णिच्-अर्धमति) उस-उस ऋद्धि को प्राप्त करानेवाले हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथिवी व समुद्र ये सब उस प्रभु से ही अपनी महिमा व श्री को प्राप्त करते हैं। उपनिषद् ठीक ही कहती है कि—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' उस प्रभु की दीप्ति से ही यह सब देदीप्यमान हो रहा है। 'तेन देवा देवतामग्र आयन्' उस प्रभु से ही देव-देवता को प्राप्त करते हैं। मनुष्य देवों को भी देवत्व प्रभु कृपा से ही मिलता है, बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज व बलवानों का बल प्रभु ही हैं। इस प्रकार **अग्निम्**=वे प्रभु ही अग्नि हैं, अग्रेणी हैं, वे हम सब को आगे ले चल रहे हैं। मार्गदर्शक व शक्ति को देनेवाले वे प्रभु ही हैं। वे प्रभु **जनानाम्**=अपनी शक्तियों का विकास करने वालों के **अतिथिम्**=अतिथि हैं। प्रभु के स्वागत करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त होता है जो कि अपनी शक्तियों के विकास के लिये प्रयत्नशील हों। हम करें तो कुछ नहीं, बस थोथा कीर्तन ही करते रहें, तो इससे प्रभु थोड़े ही मिल जाएँगे? प्रभु प्राप्ति के लिये तो 'जन' बनना होता है, 'पाँचों प्राणों, ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों' की शक्ति को विकसित करके अपने 'पञ्चजन' इस नाम को चरितार्थ करना होता है।

भावार्थ—हम पञ्चजन बनें, प्रभु हमें प्राप्त होंगे।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुन्दर वस्त्र धारण

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान्॥ ६॥

जीवात्मा से प्रभु कहते हैं कि, **सः**=वह तू **तु**=तो **अध**=अब **पेशनानि**=सुन्दर **वस्त्राणि**=वस्त्रों को **वसानः**=धारण के स्वभाव वाला है। ये 'स्थूल-सूक्ष्म व कारण' शरीर जीव के वस्त्र के समान हैं। गीता के 'वांसासि जीर्णानि०' इस प्रसिद्ध श्लोक में शरीरों को वस्त्रों से ही उपमित किया है। 'वसिष्याहि मिमेध्य वस्त्राण्यूर्जगम्यते' इस मन्त्र में भी शरीर ग्रहण को वस्त्र-धारण ही कहा गया है। प्रगतिशील जीव का यह कर्त्तव्य है कि इन वस्त्रों को सुन्दर बनाये रखे, इन्हें विकृत न होने दे। यह इन वस्त्रों की अविकृति ही आरोग्य है और यह आरोग्य ही सब पुरुषार्थों की नींव होता हुआ सर्वमहान् धर्म है। इस प्रकार शरीर वस्त्रों को शुद्ध रखता हुआ तू **अग्निः**=आगे बढ़नेवाला होता है। इसने सब उन्नतियों के मूल आरोग्य को अपनाया है। यह **अध पृथिव्याः नाभा**=पृथिवी की नाभि में **वसानः** (वसन्)=निवास करता है। 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' इस मन्त्र में यज्ञ को ही पृथिवी की नाभि कहा गया है। इस यज्ञ में ही सब लोक प्रतिष्ठित हैं। यज्ञ के अभाव में न इस लोक का कल्याण है, न परलोक का। 'नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम' (गीता) नाभि में जैसे सब नाड़ियाँ बद्ध होती हैं (नह् बन्धने) इसी प्रकार यज्ञ में सब लोक बद्ध हैं। यज्ञ ही इन सब भुवनों का केन्द्र हैं। यह 'अग्नि' प्रयत्न करता है कि उसका जीवन यज्ञमय बना रहे। 'पुरुषो भव यज्ञः' इस उपनिषद् वाक्य को वह भूलता नहीं। 'इस यज्ञ से ही मैं यज्ञरूप प्रभु की उपासना करता हूँ' (यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः) यह बात वह सदा स्मरण रखता है। यज्ञमय जीवनवाला होकर यह **अरुषः**=(आरोचमानः नि०) ज्ञान से सर्वतः देदीप्यमान होता है, और **जातः**=अपनी शक्तियों का प्रादुर्भाव व विकास करता है। यह **इडायाः पदे**=वेदवाणी के मार्ग में, अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में **पुरोहितः**=सब से आगे निहित होता है, अर्थात् ऊँचे से ऊँचा ज्ञान प्राप्त करता है अथवा जीवन को अधिकाधिक वेदानुकूल बनाता है। इसे प्रभु कहते हैं कि **राजन्**=यह ज्ञान से दीप्त होनेवाले अग्ने! अथवा जीवन को नियमित (Regulated) करनेवाले 'त्रित' तू **इह**=इस मानव जीवन में **देवान्**=दिव्य वृत्ति वाले विद्वानों को **यक्षि**=अपने साथ संगत कर। अर्थात् तेरा उठना-बैठना देववृत्ति वाले ज्ञानियों के साथ ही हो। इस संग ने ही तो तुझे 'सुमनाः' बनाना है 'यथा नः सर्व सज्जनः संगत्या सुमना असत्'। इन ज्ञानियों के सम्पर्क में रहता हुआ तू देवान्=दिव्यगुणों को यक्षि=अपने साथ संगत कर। अर्थात् तेरा जीवन दैवी सम्पत्ति को लिये हुए हो। साथ ही तू शरीर में चक्षु आदि के रूप से रहनेवाले इन सूर्यादि देवों को अपने साथ मेल वाला बना। इनके साथ तेरी अनुकूलता है। इन 'जल, वायु' आदि देवों की प्रतिकूलता में ही अस्वास्थ्य होता है। इन की अनुकूलता में तू स्वस्थ होगा, तेरे ये शरीर रूप वस्त्र निर्मल बने रहेंगे।

भावार्थ—हमारे शरीर रूप वस्त्र स्वास्थ्य के सौन्दर्य वाले हों, हमारा जीवन यज्ञमय हो। हम ज्ञानदीप्त व विकसित शक्ति होकर वेदमार्ग पर आवेगें। देवों से हमारा मेल हो।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्यावापृथिवी का विस्तार

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान्॥ ७॥

प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **हि**=निश्चय से **उभे**=इन दोनों द्यावापृथिवी=मस्तिष्क रूप द्युलोक तथा शरीर रूप पृथिवी को **सदा**=सदा **आततन्थ**=सब प्रकार से विस्तृत करता है, उसी प्रकार **न**=जैसे कि **पुत्रः**=एक पुत्र **मातरा**=अपने माता-पिता के यश को विस्तृत करता है उसी प्रकार प्रस्तुत मन्त्र का ऋषि त्रित भी अपने मस्तिष्क व शरीर की शक्तियों

को फैलानेवाला होता है। यहाँ 'द्यौ पिता, पृथिवी माता' इन शब्दों के अनुसार द्युलोक पिता है और पृथिवीलोक माता है। हमें मस्तिष्क ही उज्ज्वलता तथा शरीर की दृढ़ता से इन्हें यशस्वी बनाना है। हे **यविष्ठ**=बुराई को अपने से दूर करनेवाले तथा अच्छाई को अपने साथ संगत करनेवाले जीव! तू **उशतः**=तेरा हित चाहनेवाले इन देवों के प्रति तू **प्रयाहि**=प्रकर्षेण आनेवाला बन। **अथ**=और हे **सहस्य**=सहस् में उत्तम अर्थात् उत्तम सहनशक्ति वाले जीव तू **इह**=इस जीवन में **देवान्**=दिव्यगुणों को **आवह**=सब प्रकार से प्राप्त करा। देवताओं के सम्पर्क में आने से बुराई दूर होकर अच्छाई के साथ हमारा मेल होता है, हम 'यविष्ठ' बनते हैं हमारी क्रोध आदि की वृत्ति दूर होकर हमारे में सहन की वृत्ति पैदा होती है। हम 'सहस्य' बनते हैं। यह सहस्य बनना ही वस्तुतः धर्म मार्ग में अग्रसर होने का चिह्न है। देव लोग कभी हमें कुछ कटु प्रतीत होनेवाली बात कहते भी हैं तो वह हमारे हित की भावना से ही कही जाती है, सो हमें उसे सहना ही चाहिए।

भावार्थ—हम मस्तिष्क व शरीर दोनों का विकास करें। देवों की ओर जाते हुए जीवन में दिव्यगुणों को बढ़ायें। सूक्त का प्रारम्भ त्रित के जीवन के चित्रण से होता है। यह त्रित प्रातः उठता है। भ्रमण के बाद स्वाधाय में लगता है दिनभर ज्ञानपूर्वक क्रियाओं को करता हुआ अपने सब कोशों की न्यूनता को दूर करता है। (१) वह ज्ञान व स्वास्थ्य का सम्पादन करता है, ओषधियों पर ही शरीर का पोषण करता है। ज्ञानी व तीव्र बुद्धि बनकर ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करता है। (२) व्यापक उन्नतिवाला बनकर मोक्षरूप (ब्रह्मस्थिति) तृतीय धाम में विचरता है, मधुर ही शब्द बोलता है और समझदार होकर प्रभु का अर्चन करता है। (३) ये जहाँ जाता है वहाँ सदा सुकाल रहता है और लोग इसे अन्न की भेंट प्राप्त कराते हैं। (४) यह शरीर रूप वस्त्र को शुद्ध रखता है, यज्ञमय जीवनवाला होता है, अपने साथ दिव्यगुणों को संगत करता है। (६) शरीर व मस्तिष्क दोनों की ही शक्ति का विस्तार करता है। (७) द्वितीय सूक्त में भी इसी त्रित के जीवन का चित्रण करते हुए कहते हैं कि—

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आयजिष्ठ

पि॒प्री॒हि दे॒वाँ उ॑श॒तो य॑विष्ठ वि॒द्वाँ ऋ॒तूँर्ऋ॑तुपते यजे॒ह ।
ये दैव्या॑ ऋ॒त्विज॒स्तेभि॑रग्ने॒ त्वं होतॄ॑णाम॒स्याय॑जिष्ठः ॥ १ ॥

हे **यविष्ठ**=बुराई को अपने से दूर करनेवाले तथा अच्छाई को अपने से संयुक्त करनेवाले जीव! **उशतः**=तेरा हित चाहनेवाले **देवान्**=माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि देवों को **पिप्रीहि**=तू अपने उत्तम कर्मों से प्रीणित करनेवाला बन। उनके कहने में चलता हुआ तू उनकी प्रसन्नता का कारण बन। हृदयस्थ उस महान् देव प्रभु की प्रेरणा को सुन तथा तदनुसार जीवन को चला। **विद्वान्**=इनके सम्पर्क में ज्ञानी बनकर **ऋतुपते**=हे ऋतुओं के पति अर्थात् समयानुसार नियमितता से कार्य करनेवाले जीव! तू **इह**=इस मानव जीवन में **ऋतून् यज**=ऋतुओं की अनुकूलता के लिये यज्ञशील हो। उत्तम कर्मों से माता-पिता आदि को प्रीणित कर, ज्ञानी बन और यज्ञशील हो। अब **ये**=जो **दैव्याः**=देव की ओर चलनेवाले, प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होनेवाले **ऋत्विजः**=ऋतु-ऋतु में यज्ञशील पुरुष हैं **तेभिः**=उनके सम्पर्क में रहता हुआ **त्वम्**=तू **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! **होतॄणाम्**=होताओं में, दानपूर्वक अदन करने वालों में **आयजिष्ठः**=सब प्रकार से सर्वाधिक यज्ञशील हो। वस्तुतः हम जिन भी लोगों के सम्पर्क में आते हैं उन जैसे ही जीवन वाले बन जाते

हैं। अच्छों के सम्पर्क में अच्छे, और बुरों के सम्पर्क में बुरे। यहाँ देव ऋत्विज् लोगों के सम्पर्क में आकर हम भी सर्वाधिक यज्ञशील बनते हैं।

भावार्थ—हम बुराई को अपने से दूर करके तथा अच्छाई को अपने साथ संगत करके माता, पिता, आचार्य आदि देवों को प्रसन्न करें। हमारे सब कार्य समय पर हों। उत्तम लोगों के सम्पर्क में आकर हम उत्तम बनें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्रविणोदा ऋतावा

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन्॥ २॥

गत मन्त्र के अनुसार 'दैव्य ऋत्विज्' लोगों के सम्पर्क में आकर तू **होत्रम्**=होता के कर्म की **वेषि**=कामना करता है, अर्थात् तू चाहता है कि तेरे जीवन से यह 'होता' का काम होता रहे, तू सदा दानपूर्वक अदन करनेवाला बने। (हु दानादनयोः) यह देकर यज्ञशिष्ट को खाना ही होता बनना है। **उत**=और इस होत्र के द्वारा तू **पोत्रं**=पोता=पवित्र करनेवाले के कर्म को वेषि=चाहता है। जितने-जितने अंश में हम होता बनते हैं, उतने ही अंश में हमारे में पोतृत्य, अर्थात् पवित्रता का संचार होता है। होता बनकर ही हम पोता बनते हैं। यह होतृत्व व पोतृत्व को धारण करनेवाला व्यक्ति ही **जनानां**=मनुष्यों में **मन्धाता**=मेधावी **असि**=है। बुद्धिमत्ता होता व पोता बनने में है। समझदार पुरुष कभी भी सारा स्वयं खाकर असुर नहीं बनता। यह **द्रविणोदाः**=धन के देनेवाला होता है। यह धन को सारा स्वयं नहीं हड़प लेता। यज्ञ में विनियुक्त करके बचे हुए का ही अपने लिये व्यय करता है। इस प्रकार दानवृत्ति वाला बनकर यह **ऋतावा**=अपने जीवन में ऋत का **अवन**=रक्षण करता है। जो चीज जिस समय व जिस स्थान पर करनी चाहिये उसका उसी स्थान व उसी समय पर करना 'ऋत' है। इस प्रकार ऋतपूर्वक जीवन बिताते हुए **वयम्**=हम **स्वाहा**=(स्व+हा) स्वार्थ का त्याग **कृणवामा**=करते हैं। सारी खराबियाँ इस स्वार्थ का त्याग न करने से ही तो हैं। **हवींषि**=हवियों को हम करते हैं, अर्थात् हम सदा दानपूर्वक अदन करनेवाले बनते हैं। हमारे जैसा करने पर **देवः**=यह दिव्यगुणों का पुञ्ज **अग्निः**=हमें निरन्तर आगे ले चलनेवाला **अर्हन्**=पूजा के योग्य प्रभु (अर्हः प्रशंसायाम्) वह प्रशस्य प्रभु **देवान् यजतु**=हमारे साथ देवों का संग करे। शारीरिक क्षेत्र में सूर्यादि देवों का हमारे साथ मेल हो सूर्यादि सब देवों का हमारे में अंशावतार है ही। सूर्य चक्षु के रूप में हैं तो वायु प्राणों के रूप में और अग्नि वाणी के रूप में। इन सब देवों का हमारे साथ अनुकूल्य होगा तो हम पूर्ण स्वस्थ होंगे। मानसक्षेत्र में 'देवान्' का अभिप्राय दिव्य गुणों से है। प्रभु कृपा से हमारा मन सब दिव्य गुणों वाला हो। व्यावहारिक क्षेत्र में देववृत्ति वाले विद्वान् लोग ही 'देव' हैं। प्रभु कृपा से हमें सदा इनका संग प्राप्त हो। इनके संग से हम भी इन्हीं की तरह देव बन पायेंगे।

भावार्थ—स्वार्थ त्याग से पवित्र बनते हुए हम मेधावी दाता व ऋतपालक बनें। हम यज्ञशेष को ही खायें और प्रभु हमारे साथ देवों का मेल करें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देव-यान

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति॥ ३॥

गतमन्त्रों के अन्तिम शब्दों के अनुसार देवों के साथ हमारा संग हो। उनकी ज्ञानचर्चाओं से हम विवेक को प्राप्त करें, धर्माधर्म को जानें। तथा **देवानाम्**=उन देवों के **पन्थाम्**=मार्ग को **आ अगन्म अपि**=चलने का भी प्रयत्न करें। देवताओं के मार्ग का अनुसरण करें। **यत् शक्नवाम**=जितना भी कर सकें **तदनु**=उन देवताओं के अनुसार ही **प्रवोढुम्**=कार्यभार को वहन करने के लिये यत्नशील हों। अर्थात् यथाशक्ति हम देवों के मार्ग से ही चलें। उनसे किये जाते हुए कार्यों को ही करें। इस प्रकार देवानुसरण करनेवाला व्यक्ति ही **अग्निः**=अग्रेणी=अपने को अग्रस्थान में प्राप्त करानेवाला होता है। यही **विद्वान्**=ज्ञानी बनता है। **स**=वह **यजात्**=यज्ञशील होता है, **उ**=और **स**=वह **इत्**=निश्चय से **होता**=दानपूर्वक अदन करता है, **सः**=वह **अध्वरान्**=सदा हिंसा रहित कर्मों को **कल्पयाति**=तथा इन हिंसारहित कर्मों को करनेवाला यह **ऋतून्**=ऋतुओं को **कल्पयाति**=शक्तिशाली बनाता है। इसके लिये सारे समय सामर्थ्य को देनेवाले होते हैं। अहिंसा के अनुपात में ही इसकी शक्ति बढ़ जाती है।

भावार्थ—हम देवों के मार्ग पर चलें। यथाशक्ति उनके कर्मों का अनुसरण करें। उन्नतिशील ज्ञानी यज्ञशील व होता बनें। हिंसारहित कर्मों को करते हुए अपने लिये सब कालों को शक्ति सम्पन्न बनाएँ।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

व्रतभंग दोष परिहार

यद्वो व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ देवा॒ अवि॑दुष्टरासः।
अ॒ग्निष्टद्विश्व॒मा पृ॑णाति वि॒द्वान्येभि॑र्दे॒वाँ ऋ॒तुभिः॑ क॒ल्पया॑ति॥ ४॥

हे **देवाः**=देवो! **विदुषां वः**=ज्ञान सम्पन्न आप लोगों के **व्रतानि**=व्रतों को **अविदुष्टरासः**=अज्ञानी से बने हुए **वयम्**=हम **यत्**=जो **प्रमिनाम**=हिंसित करते हैं **तद् विश्वम्**=उस सब को **विद्वान्**=समझदार **अग्निः**=प्रगतिशील व्यक्ति **अपृणाति**=सब प्रकार से पूरित करता है। ज्ञानी लोगों के कुछ व्रत होते हैं। ये ही व्रत योगदर्शन के शब्दों में 'यम-नियम' के रूप में कहे गये हैं। वेद में ये ही व्रत 'ऋत व सत्य' हैं। विद्वान् लोग वैयक्तिक व सामाजिक हित के दृष्टिकोण से इन व्रतों का पालन करते हैं। परन्तु एक नासमझ व्यक्ति क्षणिक आनन्द को महत्त्व देता हुआ इन व्रतों को अपनी अदूरदर्शिता से तोड़ बैठता है। पर जो व्यक्ति समझदार व प्रगतिशील होता है वह एक बार गिर जाने पर भी उठ खड़ा होता है, और प्रायश्चितादि के द्वारा उस व्रतभंग दोष को समाप्त करने के लिये प्रयत्न करता है और उस व्रत में आयी कमी को दूर करता है। ये व्रत में आयी कमी को दूर करने के प्रयत्न वे होते हैं **येभिः**=जिनसे **ऋतुभिः**=नियमित गतियों के द्वारा यह अग्नि अपने जीवन में **देवान्**=दिव्यगुणों को **कल्पयाति**=उत्पन्न करता है अथवा दैवी वृत्तियों को फिर से शक्तिशाली बनाता है। हमारी हृदयस्थली में देवों व असुरों का संग्राम तो निरन्तर चलता है। एक समझदार 'विद्वान्' व्यक्ति ऋतुओं की तरह नियमित गतियों से देवों को शक्तिशाली बनाता है और इस प्रकार आसुरवृत्तियों को पराजित करता है।

भावार्थ—हम मूर्खता से विद्वानों से पालन किये जानेवाले व्रतों को तोड़ बैठते हैं। हम 'विद्वान् व अग्नि' बनकर उन व्रतभंग दोषों को दूर करें और मर्यादित आचरण से (ऋतुभिः) दिव्यवृत्तियों को प्रबलता प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अजानन् व विजानन् का अन्तर

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति॥ ५॥

यत्=जब **मर्त्यासः**=संसार के विषयों के ही पीछे मरनेवाले अथवा मरा-सा जीवन बितानेवाले **पाकत्रा**=(पक्तव्येन) परिपक्क करने के योग्य **मनसा**=मन से युक्त अर्थात् हीन ज्ञान वाले नासमझ तथा **दीनदक्षाः**=आर्थिक शैथिल्य व शरीर की निर्बलता के कारण हीन उत्साह वाले पुरुष होते हैं तो वे **यज्ञस्य न मन्वते**=यज्ञ का विचार नहीं करते। अज्ञानी व क्षीणसामर्थ्य मरे से पुरुषों में यज्ञों की भावना का उदय नहीं होता। उत्तम कर्मों व यज्ञादि का विचार तभी उत्पन्न होता है जब कि मनुष्य परिपक्क बुद्धि व यज्ञादि के लाभों को समझनेवाला होता है तथा आर्थिक व शारीरिक स्थिति के ठीक होने से पूर्ण उत्साह से युक्त होता है। **तत्**=(then) तब **अग्निः**=प्रगतिशील पुरुष **होता**=सदा देकर यज्ञशेष को खाने की मनोवृत्ति वाला, **क्रतुविद्**=यज्ञों के महत्त्व को समझनेवाला, **विजानन्**=विशिष्ट ज्ञानवाला पुरुष **यजिष्ठः**=अधिक से अधिक यज्ञशील होता है और **ऋतुशः**=(ऋतौ) ऋतु-ऋतु में, सदा **देवान् यजाति**=देवयज्ञ करनेवाला होता है आधिदैविक क्षेत्र में यह देवयज्ञ 'अग्निहोत्र' है, अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य तक पहुँचकर सारे देवों को प्राप्त होती है, सम्पूर्ण वायुमण्डल शुद्ध होकर ठीक समय पर वर्षादि के होने से रोगों व अकाल का भय नहीं रहता। आधिभौतिक क्षेत्र में यह देवयज्ञ=विद्वानों का संग व सेवा है। इससे मनुष्य के ज्ञान का वर्धन होता है और जीवन उत्तम बनता है। अध्यात्म में यह देवयज्ञ, 'हृदयस्थ प्रभु के साथ मेल' है। इस मेल से मनुष्य पवित्र व शान्त बनता है। मनुष्य के अन्दर इस देवयज्ञ से एक अतिमानव शक्ति का उद्गम होता है।

भावार्थ—'अजानन्' पुरुष यज्ञों में प्रवृत्त नहीं होता, इस अप्रवृति का कारण आर्थिक दुर्बलता व उत्साह की कमी भी है। विजानन् पुरुष सदा यज्ञशील होता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्पृहणीय अन्न

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः॥ ६॥

जनिता=प्रभु ने **त्वा**=तुझे **जजान**=प्रादुर्भूत किया? किस रूप में? **विश्वेषाम्**=सब **अध्वराणां**=यज्ञों के **हि**=निश्चय से **अनीकम्**=बल के रूप में। अर्थात् तेरे में सब यज्ञों के करने का सामर्थ्य था। अब संसार के विषयों से आकृष्ट होकर हम उस शक्ति को क्षीण कर लेते हैं और हमारे में यज्ञों के करने का सामर्थ्य नहीं रह जाता। **चित्रम्**=(चिती ज्ञाने) प्रभु ने तुझे संज्ञानवाला किया। परन्तु यहाँ संसार में कामवासना ने तेरे उस ज्ञान पर परदा-सा डाल दिया। **केतुम्**=(कित निवासे रोगापनयने च) प्रभु ने तुझे इस मानव शरीर में उत्तम निवास वाला किया और तुझे रोगशून्य जीवनवाला ही उद्भूत किया। परन्तु जीव ने यहाँ विषयों की ओर झुककर अपनी आर्थिक स्थिति को भी क्षीण कर लिया और अपने शरीर को रोगों का घर बना लिया। एवं प्रभु ने तो यज्ञों की शक्ति दी थी, ज्ञान तथा उत्तम निवास तथा रोगशून्य शरीर दिया था। मनुष्य ने अपनी गलतियों से अपने जीवन से यज्ञों को विलुप्त कर दिया, अपने ज्ञान पर कामरूप परदे को

पड़ने दिया, भोगों में धन का दुरुपयोग करके क्षीण धन हो गया तथा विविध रोगों का शिकार बन गया। प्रभु जीव से कहते हैं कि **स**=वह तू अपने जीवन में कमी न आने देने के लिये **इषः**=उन अन्नों को **आ यजस्व**=सब प्रकार से अपने साथ संगत कर। जो अन्न कि **नृवतीः**=उत्तम नरों वाले हैं अर्थात् मनुष्यों को बड़ा उन्नत करनेवाले हैं (नृ नये), जिन अन्नों के सेवन से मनुष्य नर बनता है, अपने को उन्नतिपथ पर आगे ले चलनेवाला। **अनु क्षाः**=(क्षि निवासगत्योः) जो अन्न उत्तम निवास वाले गतिशील व्यक्तियों के अनुकूल हैं अर्थात् जिन अन्नों के सेवन से मनुष्य उत्तम निवास वाला तथा क्रियाशील जीवनवाला बनता है। **स्पार्हाः**=जो अन्न मनुष्य को उन्नति शिखर पर आरूढ़ होने की स्पृहा देनेवाले हैं। **क्षुमतीः**=(क्षु शके) जो अन्न मनुष्य को प्रभु के नामोच्चारण व स्तवन की ओर प्रेरित करते हैं। तथा जो अन्न **विश्वजन्याः**=सब उन्नतियों के लिये हितकर हैं, हमारी सब शक्तियों के विकास के लिये उत्तम हैं। मनुष्य की सब उन्नति व अवनति इस अन्न पर ही निर्भर करती है। तामस अन्न हमें अधोगति की ओर ले जाता है तो सात्त्विक अन्न ही हमारी सब उन्नतियों का कारण बनता है। 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'=आहार की शुद्धि पर ही अन्तःकरण की शुद्धि आश्रय करती है। अन्तःकरण की शुद्धि ही हमें अन्ततः प्रभु दर्शन के भी योग्य बनाती है। एवं प्रस्तुत मन्त्र में उस सात्त्विक अन्न का चित्रण करते हुए कहा गया है कि तुम्हारा अन्न तुम्हें नर बनानेवाला उत्तम निवास व गतिशीलता के अनुकूल स्पृहणीय प्रभुस्तवन की ओर प्रवण करनेवाला तथा सब शक्तियों के विकास के लिये हितकर हो। इस प्रकार के अन्न के सेवन से हमारा वह मूल का शुद्ध रूप बना रहेगा। अर्थात् हम यज्ञशील ज्ञानी उत्तम निवास वाले व नीरोग बने रहेंगे।

भावार्थ—प्रभु ने जीव को यज्ञों के बल वाला ज्ञानी व उत्तम निवास वाला तथा नीरोग बनाया है। यदि हम उत्तम ही अन्नों का सेवन करेंगे तो हमारा यह स्वरूप मलिन न होगा।

ऋषिः—त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

द्युमत् पितृयाण

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि॥ ७॥

गतमन्त्र के अनुसार सात्त्विक भोजन करने पर **यं त्वा**=जिस तुझको **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक तथा पृथिवीलोक तथा **यं त्वा**=जिस तुझको **आपः**=व्यापक अन्तरिक्षलोक (आप व्याप्तौ) **जजान**=विकसित शक्ति वाला करते हैं। द्युलोक का अंश शरीर में मस्तिष्क है। द्युलोक की अनुकूलता के होने पर मस्तिष्क का विकास ठीक से होता है। 'पृथिवी शरीरम्' इस वाक्य के अनुसार पृथिवी अध्यात्म में शरीर है। पृथिवी की अनुकूलता से शरीर ठीक रहता है। जैसे द्युलोक तारों व सूर्य से चमकता है, इसी प्रकार हमारा मस्तिष्क भी विज्ञान के नक्षत्रों व ज्ञान के सूर्य से चमकना चाहिए। जिस प्रकार पृथिवी दृढ़ है, उसी प्रकार हमारा शरीर भी दृढ़ होना चाहिए। 'अश्माभवतु नस्तनूः' हमारा शरीर पत्थर के समान मजबूत हो। इसके बाद हमारा हृदयान्तरिक्ष कुछ व्यापकता-उदारता को लिये हुए होना चाहिए। हृदय जितना विशाल होगा उतना ही ठीक होगा। विशालता ही हृदय को पवित्र करती है। इसी दृष्टिकोण से यहाँ 'आपः' शब्द का प्रयोग है, व्यापक। **यं त्वा**=जिस तुझको **सुजनिमा**=उत्तम विकास के कारणभूत **त्वष्टा**=उस महान् देवशिल्पी, सब दिव्यगुणों का निर्माण करनेवाले प्रभु ने जजान=प्रादुर्भूत शक्तियों वाला बनाया है। प्रभु के स्मरण से मनुष्य की शक्तियों का विकास ही होता चलता है, उसके जीवन में न्यूनता नहीं आती। मनुष्य

प्रभु को भूलता है और विषयासक्त होकर क्षीणशक्ति होता जाता है। वह तू जिसका कि विकास त्रिलोकी ने व त्रिलोकी के नाथ प्रभु ने किया है, **द्युमत्**=ज्योतिर्मय **पितृयाणं पन्थाम्**=पितृयाण मार्ग को **प्रविद्वान्**=खूब अच्छी प्रकार जानता हुआ **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! **समिधानः**=उस प्रभु की ज्योति को अपने अन्दर समिद्ध करता हुआ **अनुविभाहि**=उस प्रभु के अनुसार दीप्ति को प्राप्त करनेवाला है। औरों की रक्षा का मार्ग ही पितृयाण मार्ग है। पिता पुत्रों का रक्षण करता है, ज्ञान देनेवाले आचार्यरूप पितर विद्यार्थियों का रक्षण करते हैं, राज्य-शासन के संचालक राजरूप पितर प्रजारूप पुत्रों का रक्षण करते हैं। इन सब का मार्ग 'पितृयाण' मार्ग है। यह ज्योतिर्मय होना चाहिए (द्युमत्)। ज्ञान की कमी के कारण ही हम रक्षण ठीक से नहीं करने पाते। अज्ञानवश रक्षण करते हुए हानि कर बैठते हैं। साथ ही इस मार्ग में चलते हुए प्रभु को अपने हृदय में समिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तो जहाँ इस मार्ग पर उत्तमता से फल पाते हैं वहाँ प्रभु की दीप्ति से हमारा जीवन भी उसी प्रकार दीप्त हो उठता है जैसे कि लोहशलाका अग्नि में पड़कर अग्नि के समान चमक उठती है।

भावार्थ—हमारा शरीर द्यावापृथिवी व अन्तरिक्ष की अनुकूलता से व प्रभु कृपा से पूर्ण स्वस्थ होकर चमकता है हमें स्वस्थ शरीर होकर पितृयाण मार्ग से चलना चाहिये तथा प्रभु ज्योति को समिद्ध करके प्रभु के समान चमकने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस द्वितीय सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि हम 'आप्रजिक' बनें। अधिक से अधिक यज्ञशील, (१) मेधावी बनकर सदा धन को देनेवाले हों, (२) देवताओं के मार्ग पर चलें, यज्ञशील हों, होता बनें, (३) देवताओं के व्रत को तोड़ें नहीं, (४) परिपक्व बुद्धि वाले व अदीन सत्त्व वाले होकर सदा उत्तमोत्तम यज्ञों को करने का विचार करें, (५) हम सात्त्विक अन्नों के सेवन से सात्त्विक वृत्ति वाले हैं तथा (६) ज्योतिर्मय पितृयाण मार्ग का आक्रमण करते हुए दीप्त जीवन वाले बनें, (७) 'खूब ही चमकें' यह भावना तृतीय सूक्त के प्रारम्भ में देते हैं—

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इन=स्वामी

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन्॥ १॥

गतमन्त्र के अन्तिम शब्दों के अनुसार प्रभु को अपने में समिद्ध करनेवाला **विभाति**=विशेष रूप से चमकता है। इसी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि—**राजन्**=(राजृ दीप्तौ) हे दीप्त जीवन वाले! अथवा (regulated) व्यवस्थित जीवन वाले जीव! तू **इनः**=अपना ईश्वर होता है, इन्द्रियों के वश में न होकर, उनको अपने वश में करनेवाला होता है। **अरतिः**=विषयों के प्रति तू रुचि वाला नहीं होता (अ-रतिः) अथवा तू निरन्तर गतिशील होता है (अरतिः=ऋगतौ) **समिद्धः**=ज्ञान की दीप्ति वाला होता है। ज्ञानदीप्त होकर **रौद्रः**=तू कामादि शत्रुओं के लिये रुद्ररूप धारण करता है, इनको अपने ज्ञान ज्वाला में दग्ध करनेवाला होता है। तू **दक्षाय**=सब प्रकार उन्नति व बलवृद्धि के लिये सुषुमान्=(सुष्ठु शोभते इति सुषुः सोमः सा०) सोम का शरीर में रक्षण करनेवाला **अदर्शि**=जाना जाता है। वस्तुतः इस सोमरक्षण से ही यह 'त्रित' **चिकित्**=विशिष्ट ज्ञानी बनकर **बृहता भासा**=वृद्धि की कारणभूत ज्ञानज्योति से **विभाति**=चमकता है तथा **रुशती**=अकल्याणी (Hurting, displeased) **असिक्नीम्**=कृष्णवर्ण असत्य वाणी को

अपाजन्=अपने से दूर फेंकता हुआ **एति**=यह प्रभु के समीप प्राप्त होता है। 'केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु'=इस प्रार्थना के अनुसार यह ज्ञान को तो दीप्त करता है तथा वाणी को अत्यन्त मधुर बनाता है। 'रुशती' वह अकल्याणी वाक् है जो कि दूसरे के दिल को दुखाती है 'असिक्नी' इसीलिए कि वह शुद्धता को लिए हुए नहीं होती। जो 'इन' है, अपनी इन्द्रियों का स्वामी है। वह कभी भी ऐसी वाणी का प्रयोग नहीं करता।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनें, विषयों के प्रति रुचि वाले न हों, ज्ञानदीप्त होकर वासनादि शत्रुओं के लिए रुद्र बनें। सोमरक्षण द्वारा शक्ति का वर्धन करें। ज्ञान से दीप्त हों, अकल्याणी वाणी से दूर रहें। इस प्रकार प्रभु के समीप हों।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दैवी सम्पत्ति

कृष्णां यदेनी॑म॒भि वर्प॑सा भू॒ज्जन॒यन्योषां॑ बृह॒तः पि॒तुर्जाम्।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं सूर्य॑स्य स्तभा॒यन्दि॒वो वसु॑भिरर॒तिर्वि भा॑ति॥ २॥

गतमन्त्र में 'असिक्नी रुशंती' इन शब्दों में जिस मलिन अकल्याणी वाणी का उल्लेख हुआ था, उसी को प्रस्तुत मन्त्र में 'कृष्णाम् एनी' शब्दों से स्मरण किया गया है। यह गालीगलौच वाली वाणी 'कृष्णा' काली=द्वेष से भरी हुई तो है ही, यह **एनी**=चित्रविचित्र रूप वाली है, नाना रूपों में ये अपशब्द प्रकट हुआ करते हैं। **यद्**=जब सोम का रक्षण करनेवाला **वर्पसा**=अपने तेजस्वी रूप से इस **'कृष्णां एनीम्'**=मलिन नाना रूपों में प्रकट होनेवाली अशुभ वाणी **अभि अभूत्**=अभिभूत कर देता है, अर्थात् अपने जीवन में इस अकल्याणी वाणी को प्रकट नहीं होने देता। तथा **बृहतः पितुः जाम्**=उस महान् पिता प्रभु से उत्पन्न होनेवाली इस **योषाम्**=गुणों का मिश्रण व अवगुणों का अमिश्रण करनेवाली वेदवाणी को **जनयन्**=अपने में प्रादुर्भूत करता है (योषा हि वाक् श० १।४।४।४) तब यह 'त्रित' **सूर्यस्य भानुम्**=ज्ञान के सूर्य की दीप्ति को (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः) **ऊर्ध्वं स्तभायन्**=बहुत उन्नत स्थिति में थामनेवाला होता है, अर्थात् ज्ञान के दृष्टिकोण से उच्चस्थिति में पहुँचता है और यह **अ-रतिः**=विषयों की अभिरुचि से शून्य अथवा 'अर-तिः' निरन्तर क्रियाशील बना हुआ **दिवः वसुभिः**=प्रकाश व दिव्यगुणों की सम्पत्तियों से अर्थात् दैवी सम्पत् से **विभाति**=अपने जीवन को विशेषरूप से शोभायुक्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम अपने जीवन से अशुभ वाणी को दूर करें। शुभ वेदवाणी को अपनाएँ जिससे हमारा ज्ञान भी बढ़े और दुर्गुण दूर होकर दिव्यगुणों की वृद्धि हो।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

भद्र भद्रा के साथ राम की ओर

भ॒द्रो भ॒द्रया॒ सच॑मान॒ आगा॒त्स्वसा॑रं जा॒रो अ॒भ्ये॑ति प॒श्चात्।
सु॒प्र॒के॒तैर्द्युभि॑र॒ग्निर्वि॒तिष्ठ॒न्रुश॑द्भि॒र्वर्णै॑र॒भि रा॒मम॑स्थात्॥ ३॥

गतमन्त्र की समाप्ति 'दिवः वसुभिः विभाति'='दिव्यगुणों की सम्पत्तियों से चमकता है' इन शब्दों के साथ हुई है। उन दिव्य सम्पत्तियों को अपनानेवाला **भद्रः**=यह भद्र व्यक्ति **भद्रया**=(भदि कल्याणे) कल्याणी बुद्धि से **सचमानः**=समवेत हुआ-हुआ **आगात्**=आता है। कल्याणी बुद्धि यही है जो किसी का अशुभ चिन्तन नहीं करती। वस्तुतः सब का भला चाहनेवाला पुरुष ही 'भद्र' पुरुष है। आत्मा रथी है, बुद्धि सारथि है, दोनों का ही भद्र होना आवश्यक है। **पश्चात्**=पीछे अर्थात्

भद्र बुद्धि से समवेत होने पर **जारः**=यह प्रभु का सदा स्तवन करनेवाला, क्योंकि सब स्तोता तो वही है जो कि 'सर्वभूतहिते रताः' है। यह स्तोता **स्वसारम्**=(स्वयं सरति) स्वाभाविकी क्रिया वाले पूर्ण रूप से स्वार्थशून्य क्रिया वाले, उस प्रभु को **अभ्येति**=प्राप्त होता है। जीव की क्रिया नैमित्तिक है, उसमें कुछ न कुछ स्वार्थ का अंश होता है। प्रभु इस सारे संसार को जीव के हित के लिए ही बना रहे हैं, उनकी सब क्रियाएँ जीव के कल्याण के लिये हैं प्रभु को यहाँ 'स्व-सृ' शब्द से इसलिए भी स्मरण किया है कि जीव को गति की शक्ति प्रभु प्राप्त कराते हैं, प्रभु स्वयं गतिमान् हैं, उन्हें कोई और गति देनेवाली शक्ति नहीं है। **जारः**=स्तोता जीव इस स्वयं गतिमान् प्रभु को अभ्येति=प्राप्त होता है। यह **अग्निः**=प्रभु की ओर अग्रेसर होनेवाला जीव! **द्युभिः**=देदीप्यमान **सुप्रकेतैः**=उत्तम प्रकृष्ट ज्ञानों के साथ **वितिष्ठन्**=विशेषरूप से अपने प्रकृताचार में, प्राप्त कर्तव्य में स्थित होता हुआ ('तिष्ठति प्रकृताचारे' व्यास) **रुशद्भिः**=देदीप्यमान ज्ञान ज्योति से युक्त **वर्णैः**=प्रभु के गुणवर्णनों के द्वारा **रामम्**=सर्वत्र रमण करनेवाले उस प्रभु की **अभि**=ओर **अस्थात्**=स्थित होता है। प्रभु की ओर अभिमुख होकर स्थित होनेवाला यह व्यक्ति कभी मार्गभ्रष्ट नहीं होता। 'रुशद्भिः' शब्द ज्ञान की दीप्ति का संकेत करता है तथा 'वर्णैः' प्रभु गुणगान का प्रतिपादन करता है। ज्ञानपूर्वक किया गया कीर्तन हमें प्रभु के समक्ष पहुँचाता है।

भावार्थ—हम भद्र बनें, हमारी बुद्धि कल्याणी हो, ज्ञानपूर्वक कर्तव्यों को हम करनेवाले बनें। ज्ञानपूर्वक प्रभुस्मरण हमें सदा प्रभु की दृष्टि में रखनेवाला हो।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शिव सखा द्वारा मार्गदर्शन

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे॥ ४॥

गतमन्त्र के अनुसार जब हम प्रभु में स्थित होने के लिये यत्नशील होते हैं तो **अस्य**=इस **बृहतः**=सदा से वर्तमान प्रभु की **यामासः** (यान्ति गच्छन्ति)=सब क्रियाएँ **न वग्नून्**=व्यर्थ की बहुत बातें न करनेवाले पुरुषों को **इन्धानाः**=दीप्त करनेवाली होती हैं। बहुत न बोलनेवाले मुनि ही (मौनात्) उस सनातन गुरु से ज्ञान प्राप्ति को प्राप्त कर पाते हैं। जैसे एक आचार्य की सब क्रियाएँ प्रिय अन्तेवासी के ज्ञान की वृद्धि के लिये होती हैं, उसी प्रकार इस प्राचीन आचार्य प्रभु की क्रियाएँ प्रिय भक्त के ज्ञान की वृद्धि के लिए होती हैं। **अग्नेः**=गतिशील जीव के **सख्युः**=मित्र और **शिवस्य**=सदा कल्याण करनेवाले अथवा (शो तनूकरणे) अज्ञानान्धकार को दूर करनेवाले, **ईड्यस्य**=स्तुति के योग्य **वृष्णः**=सब सुखों की वर्षा करनेवाले **बृहतः**=सदा अपने मित्र का वर्धन करनेवाले (अन्तर्भावितण्यर्थो बृहि धातुः) **स्वासः**=उत्तम मुख वाले (स्वास्यस्य) अथवा (सु+आ+अस्=क्षेपणे) सब बुराइयों को हमारे से दूर फेंकनेवाले उस प्रभु की **भामासः**=ज्ञानदीप्तियाँ **यामन्**=इस जीवनयात्रा में **अक्तवः**=ज्ञान की रश्मियों के रूप में **चिकित्रे**=जानी जाती हैं। इन ज्ञान रश्मियों के प्रकाश में हमें जीवनयात्रा का मार्ग ठीक रूप में दिखता है। ये प्रकाश की किरणें हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देती। प्रभु की यह सहायता प्राप्त उन्हीं को होती है जो कि अग्नि=प्रगतिशील हों। आलसी को प्रभु की सहायता नहीं प्राप्त होती। प्रभु 'अग्नि' के ही मित्र हैं सभी देव यत्नशील पुरुष के ही मित्र होते हैं 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः' (God helps those who help themselves) सम्भव है कि संसार के अन्य मित्र तो शक्ति व ज्ञान की कमी के कारण चाहते हुए भी हमारा भला न कर सकें अथवा बुरा कर बैठें, परन्तु ये प्रभु सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होने

से 'शिव' ही 'शिव' हैं, वे सदा हमारा कल्याण करते हैं और प्रभु का कल्याण करने का क्रम यही है कि वे हमारे अज्ञानान्धकार को क्षीण कर देते हैं। सो प्रभु जीव के लिये 'ईड्य' हैं। प्रभु के गुणों का स्मरण करता हुआ जीव अपने लिये एक आदर्श को सदा अपने सामने उपस्थित कर पाता है, और प्रगतिशील होता है। प्रभु का जीव के वर्धन का यही क्रम है। प्रभु जीव के ज्ञान को बढ़ाते हैं, इसी प्रकार वे उस पर सुखों का वर्षण करते हैं व उसको उन्नत करते हैं। प्रभु के मुख से शुभ ज्ञान की वाणियों का ही उच्चारण होता है। प्रभु के मुख से उच्चारित ये प्रेरणाएँ हमारे जीवनों को दीप्त करती हैं। ये ही हमारे जीवनमार्ग को दिखलाने के लिये प्रकाश की किरणें होती हैं।

भावार्थ—हम उस शिव सखा का स्तवन करते हुए उसकी प्रेरणाओं के प्रकाश में मार्ग को देखते हुए जीवनयात्रा में पथभ्रष्ट होने से बचें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु की वाणी

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम्॥ ५॥

यस्य=जिस प्रभु की **भामासः**=ज्ञानदीप्तियाँ **स्वनाः न**=स्वनों के समान हैं, प्रभु का प्रकाश क्या है? यह अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणात्मक वाणी है। इस वाणी को सुनना ही 'अनाहत' है। आघात से उत्पन्न होने के कारण ये सब शब्द 'आहत' कहलाते हैं। ड्रम पर ड्रमष्टिक से आघात करते हैं और शब्द उत्पन्न होता है, हम जो शब्द बोलते हैं वह भी प्रारम्भ में 'मनः कायाग्निमाहन्ति' मन का कायाग्नि पर आघात होने से ही उत्पन्न होता है। यदि **रोचमानस्य**=उस तेजस्विता से चमकनेवाले **बृहतः**=अत्यन्त विशाल **सुदिवः**=उत्तम ज्ञान की ज्योति वाले प्रभु की इन वाणियों को हम सुनते हैं तो ये वाणियाँ **पवन्ते**=हमारे जीवन को पवित्र करनेवाली होती हैं। हमारे जीवनों को पवित्र करके ये वाणियाँ हमें भी उस पिता प्रभु की तरह ही 'रोचमान, बृहत् तथा सुदिव' बनाती हैं। हमारे शरीर नीरोग होकर तेजस्वी होते हैं, हमारे मन निर्मल होकर बृहत् व विशाल होते हैं, हमारी बुद्धियाँ भी निर्मल होकर ज्ञानज्योति से चमक उठती हैं। प्रभु इन **भानुभिः**=ज्ञानदीप्तियों से यह प्रभु की वाणी को सुननेवाला व्यक्ति **द्याम् नक्षति**=द्युलोक की ओर जाता है। पृथिवी से ऊपर उठकर अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से ऊपर उठकर यह द्युलोक में पहुँचता है। यहाँ इस सूर्यसम से आगे बढ़ता हुआ यह उस अमृत अव्ययात्मा ब्रह्म को प्राप्त करता है 'सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा'। 'कौन उस प्रभु को प्राप्त करता है अथवा द्युलोक की ओर जाता है?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **यः**=जो उन ज्ञान दीप्तियों से युक्त होता है जो **ज्येष्ठेभिः**=(उपलक्षिता) हमें ज्येष्ठ बनानेवाली हैं, जिन ज्ञान दीप्तियों से हमारा जीवन श्रेष्ठ बनता है। श्रेष्ठता का अभिप्रायः स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—**तेजिष्ठैः**=ये हमें अत्यन्त तेजस्वी बनाती हैं, **क्रीडुमद्भिः**=युक्ताहार विहार वाला बनाकर ये ज्ञानदीप्तियाँ जहाँ हमें शरीर में नीरोग व तेजस्वी बनाती हैं वहाँ हमारे मनों को भी निर्मल बनाकर ये हमें 'क्रीडुमान्' बनाती है। संसार हमारे लिये एक 'क्रीडु' खिलौना होता है। इस खिलौनेवाले हम होते हैं। हम प्रत्येक घटनाएँ आनन्द का अनुभव करने लगते हैं। पराजय को भी एक खिलाड़ी की मनोवृत्ति से ही ग्रहण करते हैं। हानि-लाभ हमें क्षुब्ध नहीं कर देते। ये ज्ञानदीप्तियाँ **वर्षिष्ठेभिः**=ज्ञानवृद्ध तो हमें बनाती ही हैं। खूब उत्तम ज्ञान को प्राप्त कराके ये हमारे लिए सब सुखों का वर्षण करनेवाली होती हैं। एवं 'तेजिष्ठ क्रीडुमान्

व वर्षिष्ठ' बनकर हम सचमुच ज्येष्ठ बनते हैं, प्रभु की ज्ञानदीप्तियों का यही हमारे पर अनुग्रह है।

भावार्थ—प्रभु का प्रकाश 'आत्मा का शब्द' है (voice of conscious) इसे हम सुनते हैं तो 'रोचमान, बृहत् व सुदिव' बनते हैं, 'तेजिष्ठ, क्रीडुमान्, वर्षिष्ठ' बनकर ज्येष्ठ बनते हैं और द्युलोक को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

जो सुनते हैं

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा॥६॥

गतमन्त्र में प्रभु की वाणी का उल्लेख है। उस वाणी को सामान्यतः हम सुन नहीं पाते। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि **अस्य**=इस प्रभुभक्त के **शुष्मासः**=शत्रु शोषक बल **स्वनयन्**=उस प्रभु की वाणी को स्वनित करते हैं, अर्थात् सुनने योग्य बनाते हैं। जिस समय हम कामादि वासनाओं को नष्ट करते हैं तभी उस अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणाएँ हमें सुन पाती हैं, वासनाओं का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश दिखता है। अपने शत्रु शोषक बल से वासनाओं का शोषण करनेवाला यह व्यक्ति '**ददृशानपवेः**'=(ददृशानः पविः च, दृश् कानच् तथा पू+इ) चीजों को ठीक रूप में देखनेवाला तथा पवित्र जीवनवाला होता है। **जेहमानस्य**=यह सदा गतिशील होता है 'क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः'। यह ददृशान=ठीक रूप में प्रत्येक वस्तु को देखनेवाला पवि=पवित्र तथा जेहमान=गतिशील व्यक्ति वह है **यः**=जो कि **प्रत्नेभिः**=सदा शाश्वत काल से चले आये धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, पुराण-मार्ग का अनुसरण करनेवाले, नये-नये फैशन्स में न बह जानेवाले **रुशद्भिः**=ज्ञान की दीप्तियों से दीप्त **रेभद्भिः**=उत्तम कर्म व ज्ञान के द्वारा प्रभुस्तवन करनेवाले **नियुद्भिः**=शरीररूप रथ में निश्चित रूप से जोते जानेवाले इन्द्रियाश्वों से **देवतमः**=उत्कृष्ट देव बनता है। इसकी कर्मेन्द्रियाँ शाश्वत धर्म के मार्ग पर चलती हैं (प्रत्न), ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानदीप्त होती हैं (रुशत्) तथा इस ज्ञान व कर्म से यह प्रभु का उपासन करता है (रेभद्)। इस प्रकार यह 'देवतम'=उत्कृष्ट देव **अरतिः**=विषयों में न रुचि वाला (अ-रति) तथा सतत क्रियाशील (ऋ०) तथा **विभ्वा**=विभवनशील महान् होता हुआ **विभाति**=विशेष ही रूप से दीप्त होता है। यह 'वायु' आत्मा ही है। 'वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्' यह शरीर के विरोध में 'वायु' शब्द से आत्मा का ही प्रतिपादन है। 'आत्मा' शब्द 'अत सातत्यगमने' से बना है और वायु 'वा गतौ' से। इन्द्रियाँ ही इस आत्मा के घोड़े हैं, इन्हें निश्चित रूप से शरीर रूप रथ में जोतता है सो ये 'नियुत्' हैं।

भावार्थ—जब हम वासनाओं का शोषण करेंगे तभी प्रभु की वाणी को सुन पायेंगे। सुनेंगे तो 'देवतम-अरति व विश्वा' बनेंगे।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रभस्वान्

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः॥७॥

प्रभु जीव से कहते हैं कि **स**=वह 'देवतम-अरति व विश्वा' बननेवाला तू **आ**=सब ओर

से व सब प्रकार से **वक्षि**=देवों को अपने अन्दर प्राप्त कराता है, अर्थात् तू गुणों का कारण करनेवाला बनता है, **च**=और **नः**=हमारी **महि**=पूजा में **आसत्सि**=आकर स्थित होता है (मह् पूजायाम्, भावे क्विप्)। वस्तुतः प्रातः-सायं प्रभु पूजाएँ स्थित होना दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए सहायक है और दिव्यगुणों का वर्धन प्रभु-पूजन की वृत्ति को बढ़ाता है। इस प्रकार प्रभु-पूजन व दिव्यगुणों की प्राप्ति परस्पर उपकारक होते हैं। तू **युवत्योः**=परस्पर विकास वाली **दिवस्पृथि**=मस्तिष्क व शरीर के विषय में **अरतिः**=(ऋ गतौ) निरन्तर क्रियाशील होता है। अर्थात् मस्तिष्क व शरीर के लिये तू सदा प्रयत्न करता है, तू मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल बनाता है तो शरीर को दृढ़ बनाने का प्रयत्न करता है एक की ही उन्नति में नहीं लगा रहता। परन्तु साथ ही '**अरतिः**'=तू इनमें रति व ममता वाला नहीं हो जाता, इनमें तू फँसता नहीं। इस प्रकार बना हुआ तू '**अग्निः**'=अग्रेणी है, अपने को उन्नत करनेवाला है। '**सु-तुकः**'=(तुक् गतौ) उत्तम गतिवाला है, वस्तुतः यह सद् आचरण है। यह तू **सुतकेभिः अश्वैः**=उत्तम गति वाले इन्द्रिय रूप अश्वों से सदा उत्तम क्रियाओं में लगी हुई इन्द्रियों से और क्रियाओं में लगे रहने के कारण ही **रभस्वद्भिः**=रभस्, अर्थात् शक्ति वाली इन्द्रियों से **रभस्वान्**=शक्तिशाली बना हुआ तू **इह**=यहाँ हमारे पास **आगम्याः**=आत्मा वाला बन। शक्तिशाली ही प्रभु को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'=यह आत्मा निर्बलों को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु उसे प्राप्त होता है जो कि—(क) दिव्यगुणों को धारण करता है, (ख) पूजा में प्रातः-सायं स्थित होता है, (ग) शरीर व मस्तिष्क दोनों को उन्नत करता है, (घ) गतिवाला तथा उत्तम गतिवाला बनता है। (ङ) उत्तम गतिशील व शक्तिशाली इन्द्रियों से शक्तिशाली होता है। इस शक्तिशाली को ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

इस सूक्त का प्रारम्भ इस रूप में है कि—ज्ञानदीप्त हों और अकल्याणी वाणी से दूर हों, (१) शुभ वेदवाणी को अपनाएँ जिससे हमारा ज्ञान बढ़े, (२) हम भद्र बनें, सदा कल्याणी बुद्धि को अपनाएँ, (३) प्रभु की प्रेरणा रूप प्रकाश में मार्ग को देखते हुए मार्गभ्रष्ट होने से बचें, (४) प्रभु की प्रेरणा को सुनते हुए 'तेजिष्ठ, क्रीडुमान् व वर्षिष्ठ' बनें, (५) इस प्रभु की वाणी को सुनने से ही हम देवतम अरति व विश्वा बनेंगे, (६) इस प्रेरणा के अनुसार चलते हुए ही 'रभस्वान्' शक्तिशाली होंगे और प्रभु को प्राप्त होने के योग्य हो जाएँगे, (७) इन लोगों के लिये प्रभु इस संसार रूप मरुस्थल में तृषा शान्ति की साधनभूत 'प्रपा' के समान होंगे—

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मरुस्थल में प्रपा

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥ १ ॥

प्रभुभक्त कहता है कि हे प्रभो! **ते प्रयक्षि**=मैं प्रकर्षेण तेरा संग करता हूँ। तेरे साथ मिलने के लिये यत्नशील होता हूँ। **ते**=आपके **मन्म**=इस वेदज्ञान व मन्त्रात्मक स्तुतियों की ओर **प्र इयर्मि**=प्रकर्षेण गति करता हूँ। ज्ञान प्राप्ति के लिये यत्नशील होता हूँ। इन ज्ञानवाणियों के द्वारा आपका स्तवन करता हूँ। **यथा**=जिससे आप **नः**=हमारी **हवेषु**=पुकारों में **वन्द्यः**=अभिवादन व स्तुति के योग्य **भुवः**=हों। हे **प्रत्न राजन्**=सनातन शासक रूप प्रभो! हे **अग्ने**=सब की उन्नति

के साधक प्रभो! **त्वम्**=आप **इयक्षवे**=यज्ञशील व प्रतिदिन प्रातः-सायं आपके सम्पर्क में आनेवाले

और इस प्रकार **पूरवे**=अपने में शक्ति का पूरण करनेवाले मनुष्य के लिये **धन्वन्**=इस संसार रूप मरुस्थल में **प्रपा इव असि**=एक प्याऊ के समान हैं। मरुस्थल में तृषा से व्याकुल हुआ-हुआ पुरुष प्याऊ पर जल को पाकर जैसे अपनी व्याकुलता को दूर कर पाता है, इसी प्रकार इस कष्टबहुल संसार में मनुष्य प्रभु के चरणों में बैठकर शान्ति को अनुभव करता है। संसार मरुस्थल है, तो प्रभु उस मरुस्थल में प्याऊ हैं। इस प्याऊ पर भक्त लोग शान्ति देनेवाले जल का पान करते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील व अपना पूरण करनेवाले बनने पर हम उस प्रभु को इस संसार रूप मरुस्थली में प्याऊ के समान पाते हैं।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उष्ण व्रजं

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन॥ २ ॥

हे प्रभो! **यं त्वा**=जिन आपको **जनासः**=लोग उसी प्रकार प्रवेश करते हैं **इव**=जैसे **गावः**=गौवें **उष्णम् व्रजम्**=शीत शून्य कोसे-कोसे वाड़े में प्रवेश करती हैं। उष्ण व्रज में प्रवेश करके गौवें सरदी के भय से रहित हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रभु में प्रवेश करके हम मृत्यु के भय से रहित हो जाते हैं। हे **यविष्ठ**=सब बुराइयों को दूर करनेवाले तथा सब अच्छाइयों का हमारे साथ सम्पर्क करनेवाले प्रभो! आप **देवानां**=देववृत्ति वाले लोगों के **दूतः**=सन्देश हर हैं। दिव्य वृत्ति वालों को आप ज्ञान का सन्देश प्राप्त करते हैं। **मर्त्यानाम् अन्तः**=मनुष्यों के अन्दर उनके हृदयदेश में **महान्**=पूजा के योग्य आप **रोचनेन**=ज्ञान की दीप्ति के साथ **चरसि**=विचरते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि अपने हृदयदेश में प्रभु का उपासन व ध्यान करें। यह प्रभु का उपासन उन्हें ज्ञानदीप्ति से दीप्त हृदयाकाश वाला बनाएगा।

भावार्थ—प्रभु अपने भक्तों के लिये उसी प्रकार सुखद हैं जैसे कि गौवों के लिए एक कोसा बाड़ा। प्रभु देववृत्ति वालों को ज्ञान सन्देश प्राप्त कराते हैं। मनुष्यों के लिए वे हृदयदेश में उपासित होने पर ज्ञान की रोशनी देनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

चाहता हुआ और चलता हुआ

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः॥ ३ ॥

शिशुं न त्वा=एक बच्चे के समान तुझे **जेन्यं वर्धयन्ती**=(जयशीलं=जि, विकासशीलं वा जन्) जयशील व विकासशील के रूप में बढ़ाती हुई **माता**=यह तेरे जीवन का निर्माण करनेवाली प्रभु रूप माता **सचनस्यमाना**=सदा तेरे सम्पर्क को चाहती हुई **बिभर्ति**=तेरा पोषण करती है। माता जैसे बच्चे का वर्धन करती है, उसी प्रकार प्रभु हमारा वर्धन करते हैं। ये हमें जयशील व विकासशील बनाते हैं। जीवन का निर्माण प्रभु ने ही करना है। ये प्रभु हमारा सम्पर्क कभी छोड़ते नहीं। सांसारिक माता कभी साथ छोड़ भी दे, परन्तु प्रभु हमारा साथ देंगे ही। प्रभु के सम्पर्क में रहनेवाला व्यक्ति 'जेन्य'=जयशील व विकासशील बनता है। जीव से कहते हैं कि **धनोः**=(प्रणवो धनुः) ओंकाररूप धनुष के द्वारा **प्रवता**=निम्न मार्ग से, अर्थात् सदा झुककर नम्रता से चलता हुआ तू **अधियासि**=उस प्रभु तक पहुँचता है। नम्रता ही तेरे उत्थान के कारण हो जाती है। इस उत्थान

में 'ओम्' का जप तेरे लिये सहायक होता है। इस जप से तेरी चित्तवृत्ति ठीक बनी रहती है। **हर्यन्**=(गतिकान्त्योः) उस प्रभु की ओर चलता हुआ और उस प्रभु को चाहता हुआ तू **जिगीषसे**=उस प्रभु को उसी प्रकार प्राप्त करना चाहता है, **इव**=जैसे **अवसृष्टः पशुः**=खुला छोड़ा हुआ पशु अपने गोष्ठ के प्रति आता है। जीव भी बन्धनों से मुक्त हुआ-हुआ प्रभु की ओर जाता है।

भावार्थ—प्रभु सदा साथ देनेवाली माता है, वह हमें जयशील व विकासशील बनाती है। ओम् के जप से नम्रता से चलते हुए हम प्रभु को उसी प्रकार प्राप्त करते हैं जैसे कि बन्धनमुक्त हुआ-हुआ पशु गोष्ठ को प्राप्त होता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मूढ़ों की अमूढ़ से प्रार्थना

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्॥ ४॥

हे **अमूर**=अमूढ़, माया के अधिपति होने से इस माया से मूढ़ न बनाये जानेवाले प्रभो! **चिकित्व**=हे ज्ञान सम्पन्न प्रभो! **मूराः वयम्**=मूर्ख हम लोग, इस माया से मूढ़मति बने हुए हम **महित्वम्**=आपकी महिमा को **न**=नहीं जान पाते हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अंग**=हे सर्व प्रभो! **त्वम्**=आप ही अपनी रस महिमा को **वित्से**=जानते हो। आपकी महिमा हमारे लिए अचिन्त्य है, आपकी महिमा का पार पाना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं। यह अचिन्त्यमहिम प्रभु **वव्रिः**=अत्यन्त सुन्दर रूप वाले होते हुए (वव्रिः रूपनाम नि ३.७) **शये**=हमारे अन्तःकरणों में ही निवास करते हैं। **जिह्वया**=जिह्वा से अर्थात् हृदयस्थ रूपेण उच्चारित वेदवाणी से **अदन्**=हमारे सब मलों को अदन्=खाते जाते हुए अर्थात् समाप्त करते हुए ये प्रभु हमारे जीवनों को उसी प्रकार निर्मल बना देते हैं जैसे कि कोई गौ जिह्वा से बछड़े के शरीर को चाटकर ठीक कर देती है। ये प्रभु **विश्पतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक **सन्**= होते हुए **युवतिम्**=अपने से मिश्रण व सम्पर्क करनेवाली प्रजा को अथवा दुर्गुणों से अपना अमिश्रण व गुणों से मिश्र करनेवाले व्यक्ति को **रेरिह्यते**=खूब मधुर जीवनवाला, स्वादमय जीवनवाला बना देते हैं। जो भी व्यक्ति प्रभु के सम्पर्क में आता है, उसका जीवन मधुर बन जाता है। वह सब प्रजाओं का पति उस परमात्मा को जानता हुआ सब में समदृष्टि होकर प्रेम वाला होता है। इस एकत्व दर्शन वाले को शोक मोह नहीं सताते।

भावार्थ—प्रभु की महिमा प्रभु ही जानते हैं। अचिन्त्य होते हुए भी वे अपने सुन्दरतम रूप से वे प्रभु हमारे हृदयों में ही हैं। ज्ञानवाणियों से वे हमारे जीवनों को पवित्र कर देते हैं। अपने सम्पर्क में आनेवाले के जीवन को वे मधुर बना देते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नव्य जीवनवाला विरल पुरुष

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः॥ ५॥

संसार में मूर्ख तो बहुत हैं समझदार ज्ञानी कोई एक आध ही होता है। इस बात को मन्त्र में इस प्रकार कहते हैं कि **कूचित्**=(कुचित्) कहीं विरल स्थान में ही **सनयासु**=(स-नया) नीति मार्ग पर चलनेवाली प्रजाओं में **नव्यः**=स्तुत्य जीवनवाला व्यक्ति **जायते**=पैदा होता है। माता-पिता

का जीवन नीति सम्पन्न हो, वे न्याय मार्ग पर चलनेवाले हों तो उनका सन्तान उत्तम वातावरण में पलकर प्रशस्त जीवनवाला बनता है। यह व्यक्ति **वने**=प्रभु के संभजन में स्थित होता है (वन्=संभक्तौ) इसकी चित्तवृत्ति भोगप्रवण न होकर प्रभु-प्रवण होती है। यह **पलितः**=पालयिता धर्म के नियमों का पालन करनेवाला होता है। **धूमकेतुः**=(धू कम्पने) इसका ज्ञान सब बुराइयों को कम्पित करके दूर करनेवाला होता है। **अस्नाता**=यह उस प्रभु में स्नान करनेवाला होता है, अर्थात् प्रभु की उपासना इस के जीवन के शोधन का कारण बनती है। यह **आपः**=(रेतः) वीर्यकणों को **प्रवेति**=प्रकर्षेण प्राप्त होता है अर्थात् उन्हें सुरक्षित रखता है, और अतएव **वृषभो न**=वृषभ के समान शक्तिशाली होता है। इस प्रकार के जीवनवाला बन वही पाता है **यम्**=जिसको कि **सचेतसो मर्ताः**=समझदार ज्ञानी पुरुष **प्रणयन्त**=प्रकृष्ट मार्ग पर ले चलनेवाले होते हैं। उत्तम माता, पिता व आचार्य को प्राप्त करनेवाला ही तो ज्ञानी बनता है, माता ने उसे चरित्र सम्पन्न बनाना है, पिता ने उसे शिष्टाचार सिखाना है और आचार्य ने उसे साङ्गोपाङ्ग वेद-ज्ञान देना है। तीनों का सम्मिलित प्रयत्न ही इसे नव्य व स्तुत्य जीवनवाला बनाता है।

भावार्थ—प्रभु प्रवण वृत्ति वाला व्यक्ति विरल ही होता है। उत्कृष्ट जीवन उसीका बनता है जिसे कि योग्य माता, पिता व गुरु प्राप्त हो जाते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दो-चार-दस रस्सियों से बाँधते हैं

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः॥ ६॥

'मनुष्य ज्ञानी क्यों नहीं बन पाता'? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **इव**=जैसे **वनर्गू**=इस शरीर में ही निवास करनेवाले **तनूत्यजा**=शरीर की सब शक्तियों को क्षीण कर डालनेवाले **तस्करा**=उस-उस अवाञ्छनीय कार्य को करनेवाले (तत् तत् करोति इति तस्करः) मन व बुद्धि **दशभि रशनाभिः**=दस इन्द्रिय रूप रस्सियों से **अभ्यधीताम्**=खूब अच्छी तरह धारण कर लेते हैं, जकड़ लेते हैं। मनुष्य को इन इन्द्रियों के व्यसनों में फँसाकर नष्ट कर डालते हैं। जब प्रभु कृपा होती है तो हम तभी इस बन्धन से बच पाते हैं। मन्त्र में कहते हैं कि हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! मुझे बन्धनों से छुड़ाकर आगे ले चलनेवाले प्रभो! **इयम्**=इस वेदवाणी में **नव्यसी**=अत्यन्त स्तुत्य **मनीषा**=बुद्धि व ज्ञान प्राप्त होता है। इसके द्वारा मेरी बुद्धि सद्बुद्धि बनती है। इस मन को काबू करनेवाली मनीषा के द्वारा हे प्रभो! आप **न**=जिस प्रकार रथ को उत्तम घोड़ों से जोतते हैं उसी प्रकार **रथम्**=मेरे इस शरीररूप रथ को **शुचयद्भि अंगैः**=अत्यन्त पवित्र कार्यों में व्याप्त गतिशील इन्द्रियाश्वों से **युक्ष्वा**=युक्त करिये। अर्थात् मेरी इन्द्रियाँ व्यसनों फँसकर मेरे लिये बन्धन होकर उन्नति में विघ्नभूत न हो जाएँ। पवित्र बुद्धि के द्वारा मेरा मन भी पवित्र हो, और मेरी ये इन्द्रियाँ शरीर रूप रथ को त्वरित गति से लक्ष्यस्थान की ओर ले जानेवाले घोड़ों के समान हों।

भावार्थ—हमारे मन व बुद्धि पवित्र हों, हमारी इन्द्रियाँ हमारे लिए बन्धनरज्जु न हो जाएँ।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मनीषा व गीः प्रभु की वाणी

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्।

रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन्॥ ७॥

हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ते ब्रह्म च**=आप का 'ज्ञान' **ते नमः**=आपके प्रति नमन **च**=तथा **इयं**=यह आपकी **गीः**=वेदवाणी **सदम् इत्**=सदा ही **वर्धनी भूत्**=हमारे वर्धन का कारण बने। आपकी कृपा से हम ज्ञान को प्राप्त करें, नतमस्तक हों तथा यह आपकी वेदवाणी हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाली हो। हे **अग्ने**=हे अग्रगति के साधक परमात्मन् **अप्रयुच्छन्**=प्रमादरहित होकर पूर्ण सावधानी से **नः**=हमारे **तनयानि तोका**=पुत्र-पौत्रों को भी **रक्ष**=सब प्रकार के व्यसनों के बन्धनों में पड़ने से बचाइये, **उत**=और **नः**=हमारे **तन्वः**=शरीरों को भी **रक्षा**=सुरक्षित करिये। हमारे मन व बुद्धि, गतमन्त्र के निर्देश के अनुसार, हमारे लिए तस्कर न बन जायें, वे इन्द्रिय रूप रस्सियों से हमें जकड़ कर नष्ट ही न कर डालें।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें ज्ञान, नम्रता व वेदवाणी (स्वाध्याय) प्राप्त कराइये। ये इस जीवनयात्रा में हमारी उन्नति का कारण बनें। हमारा वंश भी पवित्र भावनाओं वाला होकर फले व फूले।

इस सूक्त का प्रारम्भ में प्रभु को संसार रूप मरुस्थली में एक प्याऊ के समान चित्रित करने से हुआ है, (१) वे प्रभु ही शीतार्त मनुष्य के लिये एक कोष्णगृह (कुछ-कुछ गर्म गृह) के समान हैं, (२) माता के समान यह हम शिशुओं का वर्धन करते हैं, (३) पर हम मूढ़ उस माता की महिमा को समझते नहीं, (४) कोई एक आध विरल व्यक्ति ही उस प्रभु की पवित्र धाराओं में स्नान करनेवाला बनता है, (५) सामान्यतः तो मनुष्य बुद्धि व मनरूप चोरों से इन्द्रियरूप रज्जुओं द्वारा बाँधे जाते हैं, (६) प्रभु कृपा होती है तो हमें ज्ञान-नम्रता व प्रभु की यह वेदवाणी प्राप्त होती है और हमें बन्धनमुक्त कर आगे बढ़ानेवाली बनती है, (७) यह ज्ञान व नम्रता हमें सब सम्पत्तियों के आधार उस आनन्दमय प्रभु की ओर ले चलते हैं—

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'धनों के धरुण' प्रभु

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः॥ १॥

एकः=वे प्रभु एक हैं, उन्हें अपने सृष्टि निर्माण आदि कार्यों के लिए किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं। 'न तत्समोऽस्त्य अभ्यधिकः कुतोऽन्यः'=उनके समान भी कोई नहीं, अधिक का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अथवा वे प्रभु (इ गतौ) सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले हैं। **स-मुद्रः**=वे सदा आनन्दमय हैं, हर्ष के साथ हैं। **रयीणां धरुणः**=सम्पूर्ण सम्पत्तियों के कोश व धारण करनेवाले हैं। वे **भूरिजन्मा**=अनन्त पदार्थों को जन्म देनेवाले प्रभु **अस्मत्**=हमारे **हृदः**=हृदयों को **विचष्टे**=वारीकी से देख रहे हैं। हृदयों की अन्तःस्थित होते हुए वे हमारे हृदयों की सब बातों को जानते हैं। **निण्योः**=(अन्तर्हितयोः) अन्नमय कोश के अन्दर स्थापित 'मनोमय व विज्ञानमय' कोशों के **उपस्थे**=समीप वर्तमान वे प्रभु **ऊधः सिषक्ति**=सेवन करते हैं। अर्थात् विज्ञानमय कोश में पहुँचकर ही हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। हे जीव! तू **उत्सस्य**=ज्ञानस्रोत के, मानस के **मध्ये**=मध्य में **निहितम्**=स्थापित व विद्यमान **पदम्**='पद्यते मुनिभिर्यस्मात् तस्मात् पद उदाहृतः'=उस जाने योग्य व प्राप्त करने के योग्य प्रभु के प्रति **वेः**=जानेवाला है तू सदा उस प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चल। हृदय से ही शरीर में सारे रुधिर का अभिसरण चलता है। यह हृदय रुधिर का आधार है, 'पौराणिक साहित्य में इसे मानसरोवर' कहा गया है। इस मानसरोवर में 'हंस' तैरता है। यह

हंस 'हन्ति पाप्मानम्' इस व्युत्पत्ति से परमात्मा ही है। इस प्रभु को हमें प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

भावार्थ—वे आनन्दमय प्रभु ही सब धनों के धरुण हैं। वे ही हमारे ज्ञानकोश को भी भरनेवाले हैं। उस हृदयस्थ प्रभु को जाननेवाले हम बनें।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नाम-स्मरण

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥ २ ॥

गतमन्त्र के अनुसार प्रभु को जाननेवाले **वृषणः**=शक्तिशाली लोग **समानं नीडम्**=प्रभु रूप एक ही आश्रय (घोंसले) में रहनेवाले होते हैं। अर्थात् ये सभी को प्रभु का पुत्र समझते हैं, सो प्रभु को ही सब का घर जानते हैं। प्रभु को पिता के रूप में देखनेवाले तथा सब के साथ अविरोध को रखनेवाले ये शक्तिशाली तो होते ही हैं। ये **महिषाः**=(मह पूजायाम्) प्रभु का पूजक करनेवाले प्रभु-भक्त **अर्वतीभिः**=खूब क्रियाशील इन्द्रिय रूप अश्वों से **संजग्मिरे**=सब के साथ मिलकर चलते हैं। अर्थात् इनकी इन्द्रियों की क्रियाएँ परस्पर विरोधी न होकर अनुकूलता वाली होती हैं 'संगच्छध्वम्' इस पिता से दिये गये उपदेश को ये अपने जीवन में अनूदित करनेवाले होते हैं। **कवयः**=ये तत्त्वज्ञानी पुरुष **ऋतस्य पदम्**=ऋत के मार्ग को **निपान्ति**=निश्चय से अपने जीवन में सुरक्षित करते हैं। जीवन में अनृत से दूर होकर सत्य को ही अपनाते हैं। इनकी सब क्रियाएँ ऋत व ठीक ही होती हैं। सूर्य व चन्द्रमा की तरह ठीक समय व स्थान पर क्रियाओं को करते हुए ये कल्याण के मार्ग का आक्रमण करते हैं। इसलिए कि 'मार्ग से कभी विचलित न हो जाएँ' ये **गुहा**=अपनी हृदयरूप गुफा में **पराणि नामानि दधिरे**=उत्कृष्ट नामों का धारण करते हैं। प्रभु के नाम का स्मरण इन्हें न्यायमार्ग से विचलित होने से बचाता है। वे प्रभु को याद करते हैं और उसके निर्देश के अनुसार 'ऋत' का पालन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हम सबके घर हैं। हम मिलकर चलते हुए प्रभु के सच्चे उपासक बनते हैं। हम हृदयों में प्रभु के नाम का स्मरण करते हुए उसके ही मार्ग पर चलते हैं। न्याय मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मामनुस्मर बुध्य च

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥ ३ ॥

गत मन्त्र के अनुसार प्रभु के घर में वास करनेवाले **शिशुम्**=इस (शो तनुकरणे) तीव्र बुद्धि वाले बालक को **ऋतायिनी**=सत्य वाले तथा **मायिनी**=प्रज्ञा वाले द्युलोक व पृथिवीलोक **संदधाते**=सम्यक्तया धारण करते हैं। 'द्यौष्पिता, पृथिवी माता' इस वाक्य के अनुसार द्युलोक व पृथिवीलोक इसके माता-पिता होते हैं और वे इसके जीवन में सत्य व प्रज्ञा को भरनेवाले होते हैं। द्युलोक व पृथिवी के अन्तर्गत सभी देव इनको सत्य से शुद्ध मनवाला तथा प्रज्ञा से प्रदीप्त मस्तिष्क वाला बनाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार **वर्धयन्ती**=इसका वर्धन करते हुए ये द्युलोक व पृथिवीलोक **मित्वा**=बड़ा माप करके शिशु=इस अपने सन्तान को **जज्ञतुः**=विकसित करते हैं।

इनके अंग-प्रत्यंग बड़े माप करते हुए अनुपातिक व सुन्दर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार सुन्दर मन, मस्तिष्क व शरीर वाले ये व्यक्ति **चरतः ध्रुवस्य**=जंगम व स्थावर **विश्वस्य**=सम्पूर्ण जगत् के **नाभिं**=केन्द्रभूत यज्ञ को (अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः) तथा **कवेः चित् तन्तुम्**=उस क्रान्तदर्शी प्रभु के सब लोकों में ओत-प्रोत सूत्र को (सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्) **मनसा**=मन से **वियन्तः**=विशेष रूप से जानेवाले होते हैं। अर्थात् ये यज्ञशील होते हैं, और सब लोकों में ओत-प्रोत सूत्र रूप प्रभु को मन से स्मरण करते हैं। इनके मन में प्रभु व हाथों में यज्ञ होते हैं।

भावार्थ—प्रभु में निवास करने वालों के 'मन' सत्य वाले, 'मस्तिष्क' प्रज्ञा वाले तथा 'शरीर' सुन्दर व आनुपातिक अंगों वाले होते हैं। ये सर्वलोकहितकारी कर्मों को करते हैं और इनके मन में प्रभु का स्मरण चलता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ऋत की वर्तनि

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम्॥ ४॥

गत मन्त्र के अनुसार **सुजातम्**=उत्तम शक्तियों के विकास वाले इस प्रभु-भक्त को **हि**=निश्चय से **ऋतस्य वर्तनयः**=सत्य व यज्ञ के मार्ग **सचन्ते**=सेवन करते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं, यह यज्ञशील होता है तथा सदा सत्याचरण ही करता है। और **प्रदिवः**=प्रकृष्ट प्रकाश व ज्ञान से युक्त अर्थात् बुद्धि को सात्त्विक बनानेवाले **इषः**=अन्न **वाजाय**=शक्ति की वृद्धि के लिए **सचन्ते**=प्राप्त होते हैं। यह उन्हीं अन्नों का सेवन करता है, जो अन्न इस की बुद्धि को सूक्ष्म बनाकर इसे प्रज्ञान=सम्पन्न करें तथा इस की शारीरिक शक्ति की वृद्धि का कारण हों। **रोदसी**=माता व पिता के स्थानापन्न द्युलोक व पृथिवीलोक, अर्थात् इनमें स्थित सभी प्राकृतिक शक्तियाँ इस व्यक्ति को **अधीवासं**=(अधि=उपरि) उत्कृष्ट निवास से **वावसाने**=आच्छादित करनेवाले होते हैं (वस आच्छादने, आच्छादयित्र्यौ सा०) इसके जीवन को सूर्यादि सभी देव बड़ा उत्तम बनानेवाले होते हैं। ये द्युलोक व पृथिवीलोक **मधूनाम्**=अत्यन्त मधुर जलों के सेचन से उत्पन्न हुए-हुए **घृतै अन्नै**=मलों के क्षरण व दीप्ति वाले (घृ क्षरणदीप्त्योः) अन्नों से अथवा घृतों और अन्नों से इस व्यक्ति को **वावृधाते**=खूब बढ़ाते हैं। शुद्ध जलों से उत्पन्न चारों को खानेवाली व शुद्ध जलों के पीनेवाली (सूयवसाद् भगवती हि भूयाः, शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः) गौवों के दूध से प्राप्त घी भी सात्त्विक होगा और उसके सेवन से इस प्रभु-भक्त की सब शक्तियों का ठीक ही विकास होगा।

भावार्थ—हम सत्य के मार्ग पर चलें, सात्त्विक अन्नों व घृतों का सेवन करें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु के रूप को पाना

सप्त स्वसृरुरुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम्।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य॥ ५॥

'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इस मन्त्र वाक्य के अनुसार 'दो कान, दो नासिका छिद्र दो आँखें व मुख' में सात ऋषि हैं, जो कि प्रत्येक शरीर में प्रभु के द्वारा स्थापित किये गये हैं (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे)। ये सातों ऋषि जब 'स्व' आत्मा की ओर सरण करनेवाले होते हैं तो ये 'स्व-सृ' कहलाते हैं। इन **सप्त स्वसृः**=सातों स्वसाओं को **अरुषीः**=आरोग माताः=खूब

ज्ञान से दीप्त **वावशानः**=चाहता हुआ **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष **मध्वः**=अन्न के सारभूत मधुतुल्य इन सोमकणों को **उज्जभारा**=ऊर्ध्वगतिवाला करता है। ये सोमकण ही ज्ञानाग्नि के समिद्ध करनेवाले बनते हैं। उस समय ये सब ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान की दीप्ति से चमक जाती हैं। इस प्रकार यह ज्ञानदीप्त पुरुष **कम्**=उस आनन्दमय प्रभु को **दृशे**=देखने के लिये समर्थ होता है। प्रभु का दर्शन सूक्ष्म बुद्धि से ही तो होता है 'दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्म्या सूक्ष्मदर्शिभिः'। इन्द्रियों से वे प्रभु ग्राह्य नहीं हैं, सूक्ष्म बुद्धि व पवित्र मन से ही प्रभु को देखना होता है (मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु)। यह विद्वान् पुरुष **अन्तःयेमे**=इन इन्द्रियों व मन को अन्दर ही नियमित करता है। यह चित्तवृत्ति का अन्तः नियमन ही 'योग' है। वशीभूत मन ही द्रष्टा को आत्मस्वरूप में स्थापित करनेवाला होता है। **अन्तरिक्षे**=यह इन्द्रियों का नियमन करनेवाला पुरुष (अन्तराक्षि) मध्यमार्ग में **पुराजाः**=आगे और आगे चलनेवाला होता है (पुरा+अज) वस्तुतः मध्यमार्ग ही मनुष्य की सब उन्नतियों का कारण बनता है। 'अति' सर्वत्र अवनति का कारण बनती है। यह मध्य मार्ग में आगे बढ़नेवाला व्यक्ति **इच्छन्**=चाहता हुआ, प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामना करता हुआ, **पूषणस्य**=उस सबके पोषण करनेवाले प्रभु के **वव्रिम्**=रूप को **अविदत्**=प्राप्त करता है। हमें प्रभु जैसा ही बनने का प्रयत्न करना है। प्रभु 'पूषा' हैं, हमें भी औरों का पोषण करनेवाला बनना है। प्रभु के रूप को प्राप्त करने का यही अभिप्राय है।

भावार्थ—'इन्द्रियों को आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाला बनाना, वीर्य की ऊर्ध्वगति से ज्ञानाग्नि को समिद्ध करना, इन्द्रियों व मन का अन्तर्नियमन, मध्यमार्ग में चलना' ये प्रभु प्राप्ति के साधन हैं जिनसे हम अपने को प्रभु के अनुरूप बनाते हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सात मर्यादाएँ

स॒प्त म॒र्यादाः॑ क॒वय॑स्ततक्षु॒स्तासा॒मेका॒मिद॒भ्यं॑हु॒रो गा॑त्।
आ॒योर्ह॑ स्क॒म्भ उ॑प॒मस्य॑ नी॒ळे प॒थां वि॑स॒र्गे ध॒रुणे॑षु तस्थौ॥ ६॥

गत मन्त्र में वर्णित सप्त ऋषियों के दृष्टिकोण से **कवयः**=ज्ञानियों ने **सप्त मर्यादाः**=सात मर्यादाओं को **ततक्षुः**=बनाया है। उदाहरणार्थ—कानों के लिए यह मर्यादा बनी कि 'सुक्रतौ कर्णौ–भद्रश्रुतौ' कान सदा उत्तम बातों के ही सुननेवाले हों। वाणी के लिए यह मर्यादा हुई कि 'भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः' भद्रवाणी ही बोलने के लिए मनुष्य को भेजा गया है। इस प्रकार बनी हुई **तासाम्**=उन मर्यादाओं में से **एकाम् इत्**=एक को भी **अभि अगात्**=उल्लंघन करके यदि कोई जाता है तो **अंहुरः**=वह पापी होता है। मर्यादा का उल्लंघन ही पाप है। वह व्यक्ति जो कि मर्यादा को पालने का इच्छुक होता है वह **ह**=निश्चय से **आयोः स्कम्भे**=गतिशील, अनालसी पुरुष के आधारभूत प्रभु में **तस्थौ**=स्थित होता है। अर्थात् उस प्रभु को अपना आधार जानता है, जो प्रभु श्रमशील पुरुष के सहारा देनेवाले हैं। आलसी व्यक्ति प्रभु कृपा का पात्र नहीं बनता। यह **उपमस्य**=अत्यन्त समीप स्थित हृदय रूप गुहा में प्रविष्ट उस प्रभु के **नीडे**=आश्रय में स्थित होता है। प्रभु को ही अपना निवास स्थान बनाता है। प्रभु को अपना आश्रय जान वह अभय होता है, **पथां विसर्गे**=मार्गों के प्रकाशभूत (विसर्ग=light, splendour) प्रभु में स्थित होता है। अन्तःस्थित प्रभु सदा ठीक मार्ग का प्रदर्शन करते हैं, प्रेरणा के द्वारा मार्ग का वे प्रतिपादन करते हैं। एवं प्रभु में स्थित होनेवाला व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को भलीभान्ति जानता है। और तभी वह मर्यादाओं का पालन कर पाता है। अन्त में यह '**त्रित**' **धरुणेषु**=मनुष्य का धारण करनेवाले 'मन, बुद्धि व

इन्द्रियों' में स्थित होता है, इनका वह अधिष्ठाता बनता है। इनको अपने वश में करके यह जीवनयात्रा को सुन्दरता के साथ निभाता है। जो इन्द्रियादि को अपने वश में नहीं कर पाता वह इन्हीं से पराजित होकर दोष को प्राप्त होता है।

भावार्थ—हमें सभी इन्द्रियों को वश में करके मर्यादित जीवनवाला बनना है। हम यह समझ लें कि हम पुरुषार्थी होंगे तो प्रभु हमारे मित्र होंगे, प्रभु को अपना आश्रय जानेंगे तो निर्भीक होकर कार्य करेंगे। प्रभु ही हमारे मार्गदर्शक हैं, उन्होंने हमारे धारण के लिए इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि दिये हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सृष्टि का प्रारम्भ

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः॥ ७॥

सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में **असत् च**=यह अव्याकृत जगत् अर्थात् कार्यरूप में न आयी हुई 'प्रकृति', **सत् च**=और सत्ता रूप से रहनेवाला प्रसुप्त-सी अवस्था में पड़ा हुआ 'जीव' ये दोनों **परमे व्योमन्**=सर्वोत्कृष्ट ज्ञान सम्पन्न प्रभु में थे। उस प्रभु में जो कि 'व्योमन्'=वी+ओम्+अन्=सर्वरक्षक होते हुए एक ओर प्रकृति को उठाये हुए हैं तो दूसरी ओर जीव को। प्रकृति 'वी' है, इसमें ही सम्पूर्ण गति होती है, यही विकृत होकर ब्रह्माण्ड के रूप में आती है और यह चमकती है, इसी के कार्यों का जीव उपभोग करता है (वी-गति प्रजनन कान्ति (वादनेषु)। जीव 'अन्' है श्वास लेता है। ये प्रकृति और जीव सदा परमात्मा के आधार से रहते हैं। ये प्रभु प्रलयकाल की समाप्ति पर सृष्टि को जन्म देते हैं जैसे एक किसान भूमि में बीज का वपन करता है, इसी प्रकार प्रभु इस प्रकृति में बीज को बोते हैं और इस ब्रह्माण्ड का जन्म होता है इस जन्म देने के कारण प्रभु 'दक्ष'='सब विकास (growth) को करनेवाले' कहलाते हैं। इस **दक्षस्य**=प्रजापति के **जन्मन्**=विकास की क्रिया को करने पर अर्थात् संसार को बनाने पर **अदितेः उपस्थे**=इस पृथ्वी की गोद में अर्थात् इस भूतल पर सब से प्रथम तो वे प्रभु थे जो कि **ह**=निश्चय से **नः**=हम सब के **अग्निः**=अग्रेणी हैं, आगे ले चलनेवाले हैं और **ऋतस्य**=इस सब सत्यविद्याों की प्रकाशिका वेदवाणी के **प्रथमजाः**=सर्वप्रथम 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिराः' इस ऋषियों के हृदयों में प्रकाश करनेवाले हैं। प्रभु के अतिरिक्त इस संसार में **वृषभः च धेनुः च**=बैल व गौ अर्थात् नर व मादा, वीर्य सेचन में समर्थ 'नर' (वृषभ) तथा दूध पिलाने में समर्थ मादा (धेनुःधेट् पाने), ये जो कि **पूर्वे आयुनि**=भरपूर युवावस्था में थे। न बाल थे और ना ही वृद्ध थे। इनके जीवन में सब आवश्यक तत्त्वों का पूरण हो चुका था (पूर्व पूरणे) अतएव ये अगले सन्तानों को जन्म देने में समर्थ थे। इस प्रकार इस सृष्टि का निर्माण हुआ। 'इस सृष्टि में हमें कैसे चलना है' इस विचार से अगला सूक्त प्रारम्भ होता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें जन्म दिया और वेदज्ञान प्राप्त कराया। उसके अनुसार चलते हुए ही हम आगे बढ़ेंगे।

इस सूक्त के प्रारम्भ में प्रभु को सब धनों का धरुण कहा था, (१) उस प्रभु के नामों को ही हमें हृदय में धारण करना चाहिए, (२) मन में प्रभुस्मरण करते हुए सर्वहितकारी कर्मों में लगे रहना चाहिए, (३) सत्य के मार्ग पर हम चलें और इसके लिए सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करें, (४) इन्द्रियों को आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाला बनाएँ, (५) मर्यादाओं को तोड़ें नहीं, (६) और

वेदवाणी के अनुसार अपने जीवन को बनायें, (७) प्रभु की शरण में ही जीवन को चलायें—

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु की शरण में

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा॥ १ ॥

अयम्=ये प्रभु **स**=वे हैं **यस्य अग्नेः**=जिस अग्रेणी प्रभु के **अवोभिः**=रक्षणों से **शर्मन्**=अपने गृह में अथवा आनन्द में (शर्म सुखानि) **एधते**=वृद्धि को प्राप्त करता है। प्रभु के रक्षण ही हमारा वर्धन करनेवाले हैं, प्रभु के रक्षण से दूर होते ही हम विनष्ट होते हैं। 'वृद्धि कौन प्राप्त करता है?' इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि **जरिता**=स्तोता। प्रभु के गुणों के स्तवन करनेवाला वृद्धि को प्राप्त करता है। यह गुणस्तवन उसके सामने सदा एक ऊँचे लक्ष्य को उपस्थित करता है। **अभिष्टौ**=(यागे कृते) यज्ञों के होने पर ही हम वृद्धि को प्राप्त करते हैं। प्रभु का स्तवन करते हुए, प्रभु के आदेशानुसार, जब हम यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं तभी हमारी वृद्धि होती है। वृद्धि को वह प्राप्त करता है **यः**=जो कि **ज्येष्ठेभिः भानुभिः**=उत्कृष्ट ज्ञानदीप्तियों को प्राप्त करने के हेतु से **ऋभूणां**=तत्त्व द्रष्टा ज्ञानियों को **पर्येति**=परिक्रमा करता है, उनको आदर देता हुआ उनके चरणों में उपस्थित होता है। एवं यह 'स्तोता, यज्ञशील, ज्ञानियों का उपासक' वृद्धि को प्राप्त करता है, और **परिवीतः**=ज्ञान से परिवृत हुआ-हुआ, ज्ञानियों के सम्पर्क से खूब ज्ञान को प्राप्त हुआ-हुआ यह **विभावा**=विशिष्ट ही दीप्ति वाला होता है। इस ब्रह्मनिष्ठ पुरुष की भान्ति अद्भुत ही होती है, यह प्रभु के तेज के अंश से चमक रहा होता है, प्रभु-सा बन गया होता है (ब्रह्म इव)।

भावार्थ—हम स्तोता-यज्ञशील-ज्ञानियों के सम्पर्क में रहनेवाले, ज्ञान से परिवृत बनकर प्रभु के रक्षणों से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ज्ञानदीप्ति व क्रियाशीलता

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः॥ २ ॥

'गत मन्त्र के अनुसार जो व्यक्ति प्रभु के रक्षण में चलता है वह कैसा बनता है?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **यः**=जो **भानुभिः**=ज्ञान की दीप्तियों से **विभाव**=विशेष रूप से ही दीप्तिमान् होता है, **अग्निः**=गतिशील होता हुआ **देवेभिः**=सब दिव्यगुणों से **विभाति**=सुभूषित जीवनवाला होता है। **ऋतावा**=यह सदा ऋत का रक्षण व पालन करता है, इसका कोई भी कार्य अनृत को लिये हुए नहीं होता। **अजस्रः**=यह सतत कार्यों को करनेवाला होता है, 'निरग्नि व अक्रिय' नहीं हो जाता, क्रियाशील बना रहता है। **वह**=जो **सख्या**=उस सखिभूत परमात्मा के साथ **आविवाय**=अपने कर्त्तव्यों की ओर जानेवाला होता है। प्रभु का स्मरण करता है और कर्मशील होता है। अपने लिये इसे कुछ करने को नहीं भी होता तो भी **सखिभ्यः**=अपने मित्रों के कार्यों के लिये यह **अपरिह्वृतः**= अपरिहिंसित व अपरिकान्त होता है। उनके हितसाधन को करता हुआ यह थक नहीं जाता। अनथक रूप से कार्य में उसी प्रकार सदा प्रवृत्त रहता है जैसे कि उसका पिता प्रभु 'स्वाभाविक क्रिया' वाला है। यह इस प्रकार क्रियाशील होता है **न**=जैसे **अत्यः**=एतत

गमनशील **सप्तिः**=घोड़ा। घोड़ा खूब गतिशील है, 'अनध्वा वाजिनां जरा' मार्ग पर न चलना पड़े तो घोड़ा शीघ्र बूढ़ा हो जाता है। इसी प्रकार इस प्रभु-भक्त को भी अ-क्रिया निर्बल करती प्रतीत होती है, वह क्रिया में ही शक्ति का अनुभव करता है।

भावार्थ—उत्कृष्ट ज्ञान की तेजस्विता व क्रियाशीलता ही मनुष्य के जीवन को आदर्श बनाती हैं।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अरिष्ट-रथ

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः॥ ३॥

गत मन्त्र के ही प्रकरण को ही आगे कहते हैं कि प्रभु की शरण में रहनेवाला वह है **यः**=जो **विश्वस्याः**=सम्पूर्ण **देववीतेः**=दिव्यगुणों की प्राप्ति का **ईशे**=ईश होता है, अर्थात् सब दिव्यगुणों को प्राप्त करने में समर्थ होता है। **उषसः व्युष्टौ**=उषःकाल के उदित होने पर **विश्वायुः**=पूर्ण जीवनवाला बना हुआ यह 'त्रित' (मन्त्र का ऋषि) **ईशे**=उन दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए सामर्थ्यवान् होता है। वस्तुतः यह त्रित उषःकाल में अवश्य प्रबुद्ध होकर, पवित्र भावना से प्रभु के स्वागत के लिए उद्यत होता है। ये प्रभु प्रातः आते हैं और जब हम इनका स्वागत करते हैं तो ये हमें द्युमत्तम रयि=अत्यन्त ज्योतिर्मय धनों को प्राप्त कराते हैं। **यस्मिन् अग्नौ**=जिस प्रगतिशील व्यक्ति के जीवन में **मना**=मननीय, ज्ञान को बढ़ानेवाली, बुद्धि की मननशक्ति को दीप्त करनेवाली **हवींषि आ** (हुतानि)=हवियाँ आहुत होती हैं, अर्थात् जो सदा त्याग पूर्वक उपभोग करता है, दूसरे शब्दों में अमृत (यज्ञशेष) का सेवन करता है वह **अरिष्टरथः**=अहिंसित शरीर वाला होता हुआ **शूषैः**=शत्रुओं के शोषक बलों से **स्कभ्नाति**=सब अशुभ वासनाओं के आक्रमणों को रोक देता है। अर्थात् सात्त्विक अन्न के सेवन से तथा यज्ञशेष के रूप में भोजन करने से इसकी बुद्धि व मनोवृत्ति भी बड़ी सात्त्विक बनी रहती हैं और यह वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—सात्त्विक यज्ञशिष्ट भोजन हमें सब दिव्यगुणों की प्राप्ति के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

संमिश्ल

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान्॥ ४॥

गत मन्त्र में वर्णित **शूषेभिः**=शत्रु शोषक बलों से **वृधः**=सदा बढ़नेवाला यह बनता है। वासनाओं का शोषण करके यह सब दृष्टिकोणों से उन्नत होता है। इसकी शरीर की शक्तियों का क्षय नहीं होता, मानस पवित्रता बनी रहती है, और इसका मस्तिष्क खूब उज्ज्वल बनता है। एवं यह इन 'शूषों' से शत्रुओं का शोषण करता हुआ उन्नत ही उन्नत होता चलता है। उन्नत होकर यह **अर्कैः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों से **जुषाणः**=प्रीति पूर्वक प्रभु का उपासन करता है। यह प्रभु का उपासन ही तो वस्तुतः उस शत्रुशोषक बल को प्राप्त कराता है और उस बल के अभिमान से भी बचाता है। इस प्रकार दिव्य उन्नति के साथ नम्र बना हुआ यह **रघुपत्वा**=(लघुगमनः) शीघ्रगतिवाला, अर्थात् कर्मों में आलस्य शून्य हुआ-हुआ **देवाँ अच्छा**=दिव्यगुणों की ओर **जिगाति**=जाता है। यह दिव्यगुणों को प्राप्त करता है। **मन्द्रः**=सदा आनन्दमय स्वभाव वाला होता

है, **होता**=सदा दानपूर्वक अदन करता है, यज्ञशेष को खाता है और **जुह्वा यजिष्ठः**=चम्मच से अथवा दान पूर्वक अदन की वृत्ति से उत्तम यष्टा बनता है, इसका जीवन यज्ञशील होता है। इस प्रकार सुन्दर जीवनवाला बनकर यह **संमिश्लः**=सब के साथ मिलकर चलता है, मिलनसार स्वभाव वाला होता है, औरों के सुख-दुःख में हिस्सा बटाता है। इस प्रकार **अग्नि**=यह प्रगतिशील जीव **देवान्**=दिव्यगुणों वाले ज्ञानी विद्वानों को **आजिघर्ति**=(आहारयति) अपने घर पर प्राप्त कराता है। इस प्रकार इसका यह अतिथियज्ञ चलता है और यह उन अतिथियों की सप्रेरणा से सदा सुन्दर जीवनवाला बना रहता है।

भावार्थ—शत्रुशोषक बलों से चलनेवाला यह सदा आनन्दमय स्वभाव वाला व यज्ञशील तथा मिलनसार होता है।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गीर्भिः नमोभिः

तमुस्त्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम्।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम्॥ ५ ॥

तम्=उस परमात्मा को जो **उस्त्राम्**=(भोगानाम् उत्स्राविणं दातारं सा०) सब भोग्य पदार्थों के देनेवाले हैं, **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, **न रेजमानम्**=कम्पित होनेवाले नहीं हैं, कूटस्थ व निर्विकार है, अर्थात् मनुष्यों की तरह उनकी मित्रता टूट जानेवाली नहीं, **अग्निम्**=जो अग्रेणी हैं, उस प्रभु को **गीर्भिः**=वेद वाणियों के द्वारा तथा **नमोभिः**=नम्रता के द्वारा **आकृणुध्वम्**=अपने अभिमुख करने का प्रयत्न करो, अपनाने के लिये यत्नशील होवो। **यं**=जिस परमात्मा को **विप्रासः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी लोग **मतिभिः**=मननीय स्तोत्रों के द्वारा **गृणन्ति**=साधना करते हैं, अर्थात् बुद्धिमत्ता से प्रभु का स्तवन करते हुए उसके गुणों को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हैं। उस '**जातवेदसम्**'=जातवेदस् को वे स्तुत करते हैं, जो सर्वव्यापक है (जाते जाते विद्यते) सर्वज्ञ है (जातं जातं वेत्ति) तथा सम्पूर्ण धनों को उत्पन्न करनेवाला है (जातं वेदो यस्मात्, वेदस्=wealth)। तथा उस 'सहानां जुह्वम्' की वे स्तुति करते हैं जो शत्रुओं के मर्षण करनेवाले बलों को देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु को ज्ञान वाणियों व नम्रता से अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। वे प्रभु ही सम्पूर्ण धनों के स्वामी हैं व सब आवश्यक भोग्य पदार्थों को देनेवाले हैं।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सब धनों के निधान 'प्रभु'

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व॥ ६ ॥

प्रभु वे हैं **यस्मिन्**=जिन में **विश्वा वसूनि**=सम्पूर्ण धन **संजग्मुः**=संगत होते हैं। सब धनों के आधार वे प्रभु ही हैं **न**=उसी प्रकार जैसे कि **वाजे**=संग्राम में **सप्तीवन्तः अश्वाः**=सर्पणशील घोड़े **एवैः**=अपने गमनों से संगत होते हैं। संग्राम में विजय इन घोड़ों पर ही निर्भर है, इसी प्रकार जीवन संग्राम में भी विजय धनों पर निर्भर होती है। धन अश्वों के समान हैं, अश्वों से संग्राम में विजय मिलती है, धन से संसार में। पर अश्वारोहियों से अधिष्ठित अश्व ही संग्राम में जीतते हैं, इसी प्रकार हम भी धनों पर अधिष्ठित होंगे, धनों के स्वामी होंगे तभी धन हमें विजय प्राप्त

करायेंगे। हम धनों के गुलाम बन जाएँगे तो इन धनों से कुचले जाएँगे। 'एवैः' शब्द इस बात की भी संकेत करता है कि धन वही ठीक है जो कि गतिमय है, जिसको हम यज्ञादि में विनियुक्त करके देवों में प्राप्त कराते रहते हैं। ठहरे हुए घोड़े ने विजय नहीं प्राप्त करनी होती इसी प्रकार तहखानों में बन्द धन हमें विजयी न बनाएगा। हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **इन्द्रवाततमाः**=उस परमैश्वर्य वाले प्रभु की ओर ले चलनेवाले **ऊतीः**=रक्षणों को **अस्मे अर्वाचीनाः**=हमारे अभिमुख प्राप्त होनेवाले **आकृणुष्व**=सर्वथा करिये। हम आपके रक्षण को प्राप्त करके संसार के विषयों की ओर जानेवाले न हों, हमारा झुकाव हे प्रभो! आपकी ओर ही हो। आपको प्राप्त करने पर ये धन तो मिले मिलाये ही हैं, क्योंकि इन धनों के स्वामी तो आप ही हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को प्राप्त करें, प्रभु प्राप्ति में सब धनों की प्राप्ति हो ही जाती है। प्रभुरक्षण के प्राप्त होने पर हम इन धनों में फँस नहीं जाते।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रथमास ऊमाः

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः॥ ७॥

हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अधाहि**=अब ही, अर्थात् गतमन्त्र के अनुसार आप का रक्षण प्राप्त करने पर ही, **मह्ना**=अपनी महिमा से **निषद्या**=हमारे हृदयों में आसीन होकर **सद्यः**=शीघ्र ही **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होते हुए आप **हव्यः**=हमारे से पुकारे जाने योग्य **बभूथ**=होते हैं। जब हम आपके रक्षणों को प्राप्त करते हैं तब अपने हृदयों को निर्मल करके उन्हें आपके बैठने योग्य बनाते हैं। वहाँ हम आपके दर्शन करते हैं, और उसी प्रकार आपको पुकारते हैं जैसे कि एक पुत्र पिता को। **देवासः**=देव वृत्ति के लोग **ते**=आपके **तं केतम् अनु आयन्**=उस ज्ञान के अनुसार गति करते हैं, अर्थात् आपके वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं और उसे जीवन में अनूदित करने का प्रयत्न करते हैं (translate into action)। वस्तुतः जो व्यक्ति इस वेदज्ञान को जीने का प्रयत्न करते हैं वे ही 'देव' बनते हैं। **अधा**=अब, अर्थात् वेद ज्ञान को प्राप्त करने व उसे जीवन में अनूदित करने के बाद ये लोग **प्रथमासः ऊमाः**=प्रथम श्रेणी के रक्षकों के रूप में **अवर्धन्त**=बढ़ते हैं। अर्थात् ये प्रजाओं के उत्तम रक्षक बनते हैं। इनका जीवन अभाव व प्रयोग दोनों (theoretical and practical) में निपुण बनकर प्रजा का अधिक कल्याण सिद्ध कर पाता है। लोग इनके मुखों से बातों को सुनते हैं, उन बातों को ही वे उनके जीवन में देख भी पाते हैं। एवं वे बातें वास्तविक प्रभाव को पैदा करती हैं।

भावार्थ—ज्ञानी लोग हृदय को पवित्र करके उसे प्रभु का निवास बनाते हैं। प्रभु के ज्ञान के अनुसार चलते हैं और प्रजा को शास्त्रीय व विमाता के ज्ञान देनेवाले बनकर प्रजा का रक्षण करते हैं।

सूक्त का प्रारम्भ प्रभु-रक्षण में वृद्धि के प्राप्ति से होता है, (१) हमें उत्कृष्ट ज्ञान की तेजस्विता व क्रियाशीलता प्राप्त होती है, (२) सब दिव्य गुणों को प्राप्त कर के हम 'अरिष्ट-रथ' बनते हैं, (३) शत्रु शोधक बलों से बढ़ते हुए हम सब के साथ मिलजुलकर चलते हैं, (४) उस प्रभु को ही सम्पूर्ण धनों का स्वामी जानते हैं, (५) सब धन उन्हीं में तो संगत हो रहे हैं, (६) इस प्रभु को हम अपने हृदयों में बिठाने का यत्न करते हैं। ऐसा करने पर ही हम उत्तम स्थिति को प्राप्त करेंगे—

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पूर्ण जीवन

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १ ॥

हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नः**=हमें **दिवः**=द्युलोक के दृष्टिकोण से तथा **पृथिव्याः**=पृथिवी के दृष्टिकोण से **स्वस्ति**=उत्तम स्थिति प्राप्त हो। द्युलोक ही यहाँ शरीर में मस्तिष्क है, पृथिवी यह स्थूल शरीर है। हमारा मस्तिष्क भी उच्च स्थिति में हो और हमारा यह शरीर भी पूर्ण नीरोग हो। हे **देव**=सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले प्रभो! **यजथाय**=यज्ञशील के लिये **विश्वायुः धेहि**=पूर्ण जीवन को धारण करिये। यज्ञशील पुरुष के 'शरीर, मन व मस्तिष्क' सभी बड़े सुन्दर होते हैं। और इनके सुन्दर होने पर हमारी यज्ञ की शक्ति बढ़ती है। हे **दस्म**=काम-क्रोधादि सब शत्रुओं को नष्ट करनेवाले प्रभो! हम **तव प्रकेतैः**=आप के प्रकृष्ट ज्ञानों से **सचेमहि**=सम्पृक्त हों। हमें सब उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हों। हे **देव**=सब दिव्यगुणों के पुञ्ज व सब ज्ञानों से दीप्त प्रभो! आप **उरुभिः शंसैः**=विशाल शंसनों के द्वारा, हमारे हृदयों को उदार व विशाल बनानेवाली प्रेरणाओं के द्वारा **नः उरुष्य**=हमारा रक्षण कीजिए। वेद के सब उपदेश हमें बड़ा उदार बनानेवाले हैं, उनके अनुसार 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय'=न कोई छोटा है न बड़ा, सब भाई हैं और उन्हें सौभाग्य के लिए बढ़ना है। 'भूमिः माता पुत्रोहं पृथिव्याः' 'यह भूमि ही मेरी माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ' ये भावना हमें देश की संकुचित सीमा से भी ऊपर उठानेवाली है। 'अयुतोहं' 'मैं सब के साथ हूँ, अपृथक् हूँ' यह भाव हमें सभी में एकत्व दर्शन करानेवाला है।

भावार्थ—हमारा मस्तिष्क व शरीर स्वस्थ हो। पूर्ण जीवन वाले होकर हम यज्ञशील हों। प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करें, उदार बनें।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभुस्मरण पूर्वक 'प्रकृति पदार्थ प्रयोग'

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥ २ ॥

हे **अग्ने**=परमात्मन्! **इमाः मतयः**=ये मेरी बुद्धियाँ **तुभ्यम्**=आपके लिए अर्थात् आपके दर्शन के लिए **जाताः**=विकसित हो गई हैं। प्रभु का दर्शन इन बुद्धियों से ही तो होना है 'दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या'। इस संसार में विचारशील पुरुष **गोभिः**=ज्ञानेन्द्रियों से तथा **अश्वैः**=कर्मेन्द्रियों से **राधः**=सब कार्यों के साधक आपका ही (राध्-असुन् नपुंसक) **अभिगृणन्ति**=स्तवन करते हैं। 'गमयन्ति अर्थान् इति गावः' इस व्युत्पत्ति से 'गौः' ज्ञानेन्द्रियों का वाचक है, तथा 'अश्नुव ते कर्मसु' इस व्युत्पत्ति से 'अश्व' शब्द कर्मेन्द्रियों का ज्ञान की वाणियों का स्वाध्याय यह ज्ञानेन्द्रियों से प्रभु का पूजन है, तथा यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहना कर्मेन्द्रियों से प्रभु-पूजन है। **यदा**=जब **मर्तः**=मनुष्य **ते अनु**=तेरे स्मरण के पश्चात् **भोगम्**=भोग्य पदार्थों को **आनट्**=प्राप्त करता है व भोगता है तो वह पुरुष हे **वसो**=उत्तम निवास देनेवाले प्रभो! **सुजात**=उत्तम विकास वाले प्रभो! **मतिभिः दधानः**=बुद्धियों से धारण किया जाता है। अर्थात् इसकी बुद्धियाँ उन विषयों में न फँसकर अविकृत

बनी रहती हैं और इसका धारण करनेवाली होती हैं। प्रभु को भूलकर जब हम इन सांसारिक विषयों में जाते हैं तो उनमें प्रायः आसक्त हो जाते हैं। परिणामतः हमारी बुद्धि भी वासना के पर्दे से आवृत होकर मन्द प्रकाश वाली हो जाती है और यह हमें प्रभु दर्शन तो दूर रहा, संसार का स्वरूप भी ठीक रूप से नहीं दिखा पाती। इस प्रकार यह बुद्धि उस समय हमारा धारण नहीं कर रही होती।

भावार्थ—वेद के 'उरुशंसों' को सुनकर हमारी बुद्धि ठीक रूप में विकसित होती है और हमें प्रभुदर्शन के योग्य बनाती है, यह हमारा ठीक रूप में धारण करती है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पिता, मित्र, भाई व सखा

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य॥ ३॥

गतमन्त्र के अनुसार प्रभुस्मरण पूर्वक भोग्य पदार्थों के सेवन से जब हमारी बुद्धि अविकृत होकर हमारा धारण करनेवाली होती है तो उस समय संसार को ठीक रूप में देखने के कारण हम **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को ही **पितरं मन्ये**=पिता मानते हैं, वस्तुतः सदा पिता व रक्षक तो वे प्रभु ही हैं। इन सांसारिक पिताओं के द्वारा भी वे प्रभु ही हमारा रक्षण कर रहे होते हैं। **अग्निम्**=उस अग्नि को ही **आपिं मन्ये**=सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करानेवाला मित्र जानता हूँ। **अग्निम्**=उस अग्नि को ही **भ्रातरम्**=मैं भ्राता समझता हूँ और इसके अतिरिक्त उस प्रभु को ही **सदम् इत्**=सदा ही साथ देनेवाला **सख्याम्**=सखा जानता हूँ। हमारे ये सब सम्बन्ध वास्तविकरूप में उस प्रभु के ही साथ हैं, सांसारिक सम्बन्ध तो केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही महत्त्व रखते हैं, इनमें पूर्ण सत्यता नहीं है। मैं उस **बृहतः**=सब वृद्धियों के कारणभूत **अग्नेः**=अग्नि नामक प्रभु के **अनीकम्**=बल को **सपर्यम्**=पूजता हूँ जो बल **दिवि सूर्यस्य**=द्युलोक में स्थित सूर्य के तेज के समान है **शुक्रम्**=यह तेज हमारे जीवनों को शुद्ध व दीप्त तो बनाता ही है, इसी कारण यह **यजतम्**=संगतिकरण योग्य है। वेद में ब्रह्म को स्थान-स्थान में सूर्य से उपमित करने का प्रयत्न है, 'ब्रह्म सूर्यसमं-ज्योतिः'। सूर्य ज्योति हमारे शरीरों को नीरोग करती है तो ब्रह्म ज्योति हमारे मानसों को निर्मल व दीप्त कर देती है।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे वास्तविक पिता, मित्र, भाई व सखा हैं। उनका तेज महान् है, आकाश में सूर्य के समान दीप्त व संगतिकरण योग्य है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

बुद्धि का साधन

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु॥ ४॥

हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **अस्मे**=हमारे लिये **सुनुत्रीः**=सदा संविभाग करनेवाली **धियः**=बुद्धियों को **सिध्राः**=सिद्ध करिये। वस्तुतः प्रभु हमारा रक्षण इसी प्रकार करते हैं कि वे हमें संविभाग वाली बुद्धि प्रदान करते हैं। देवों ने जिसका भी रक्षण करना होता है वे उसकी बुद्धि को स्वस्थ बना देते हैं। बुद्धि का नाम 'मेधा' है 'मे'-मेरा 'धा'-धारण करनेवाली। हे प्रभो! **आप यं**=जिस भी पुरुष को **त्रायसे**=रक्षित करते हैं वह **दमे**=इस शरीर रूप गृह में **नित्यहोता**=सदा होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला बनता है। यह 'नित्यहोतृत्व' ही वस्तुतः उसका प्रभु-पूजन होता है और इसी के

कारण वह विषयों में न फँसकर अपना रक्षण भी कर पाता है। यह धी-सम्पन्न व्यक्ति **ऋतावा**=ऋत का अवन-रक्षण करता है। इसका जीवन सत्य-सम्पन्न होता है। इसके जीवन में सब क्रियाएँ ठीक समय व ठीक स्थान पर होती हैं। **स**=वह **ऋतावा 'रोहिदश्वः'**=वृद्धिशील इन्द्रियरूप अश्वों वाला होता है। इसकी इन्द्रियों की शक्तियाँ क्षीण नहीं होती। यह **पुरुक्षुः**=बहुत अन्न वाला होता है अर्थात् इसे अन्न की कमी नहीं होती और यह अन्न का खूब पाचन कर सकता है। अथवा यह पालक व पूरक (पृ पालनपूरणयोः) अन्न वाला होता है। यह उसी सात्त्विक अन्न का सेवन करता है जो अन्न कि इसके शरीर व मन में कमी को नहीं आने देता। इस प्रकार सात्त्विक अन्न का सेवन करते हुए **अस्मा**=इसके लिये **द्युभिः अहभिः**=दिन-दिन से अर्थात् प्रतिदिन **वामम् अस्तु**=सौन्दर्य ही सौन्दर्य हो। अर्थात् इसके जीवन में दिनदूनी रात चौगुणी उन्नति हो। यह सदा फलता-फूलता चले, इसके जीवन का मार्ग उन्नति का ही हो।

भावार्थ—हमें संविभाग बल और बुद्धि प्राप्त हो, इस बुद्धि का प्राप्त करके हम होता बनें, ऋत का पालन करते हुए इन्द्रियशक्ति को क्षीण न होने दें। पालक व पूरक अन्न का सेवन करते हुए दिन व दिन उन्नति-पथ पर आगे बढ़ें।

ऋषिः—**त्रितः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(अध्वर का जार) प्रेय-श्रेय

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम्।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥

गतमन्त्र के सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाले व्यक्ति **आयवः**=(एति) गतिशील पुरुष **अग्निं**=उस अग्रेणी प्रभु को **अजनन्त**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं और उन पवित्र हृदयों में **न्यसादयन्त**=इस प्रभु को बिठाते हैं, जो प्रभु **द्युभिः हितम्**=ज्ञान की ज्योतियों से स्थापित किया जाता है। अर्थात् प्रभु का प्रकाश बुद्धि की सूक्ष्मता का संपादन करके ज्ञान के वर्धन से ही होता है। **मित्रम् इव प्रयोगम्**=वे प्रभु सदा सच्चे स्नेही की तरह प्रकृष्ट मेल वाले हैं। मित्रता का उत्कर्ष स्वार्थ की क्षीणता के अनुपात में होता है। प्रभु का स्वार्थ क्योंकि शून्य है, तो प्रभु की मित्रता पूर्ण हैं। प्रभु की मित्रता में कभी टूट जाने का भय नहीं। वे प्रभु **प्रत्नम् ऋत्विजम्**=सनातन ऋत्विज हैं। उस-उस ऋतु में ऋतु के अनुकूल पदार्थों का हमारे साथ संगतिकरण करनेवाले हैं। **अध्वरस्य जारम्**=हमारे से किये जानेवाले हिंसा शून्य लोकहितकारी यज्ञात्मक कर्मों के (समापयितारम्) अन्त तक पहुँचानेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही सब यज्ञ पूर्ण हुआ करते हैं। **विक्षु होतारम्**=प्रजाओं में सब आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं प्रभु ही संसार के सब पदार्थों का हमारी उन्नति के लिये निर्माण करते हैं। इस प्रभु को **आयवः**=प्रगतिशील पुरुष अपने हृदयों में प्रकाशित व स्थापित करते हैं। किस प्रकार? **बाहुभ्याम्**=प्रयत्नों से। वह द्विवचन का प्रयोग यह संकेत कर रहा है कि हमारे प्रयत्न केवल शारीरिक उन्नति के लिये न होकर बौद्धिक उन्नति के लिये भी हों। ये प्रयत्न प्रेय व श्रेय दोनों के साधक हों, इनमें इहलोक व परलोक दोनों का स्थान हो, ये अभ्युदाय व निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिए हों। हमारे प्रयत्न प्रकृति व परमात्मा को दोनों को प्राप्त करने के दृष्टिकोण से हो। उनमें प्रकृति विद्या व आत्मविद्या दोनों का स्थान हो। वे व्यक्तिवाद व समाजवाद दोनों दृष्टिकोणों से किये जाएँ।

भावार्थ—वे प्रभु ज्ञान के प्रकाश में दिखते हैं, सच्चे मित्र हैं, सनातन काल से सब कुछ दे रहे हैं, हमारे यज्ञों को पूर्ण करनेवाले हैं। प्रजाओं को सब कुछ देनेवाले हैं। इन प्रभु को प्राप्त

करने के लिये हमें प्रेय व श्रेय दोनों के लिए प्रत्नशील होना है।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवों व महादेव का यजन

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात॥ ६॥

प्रभु से जीव प्रार्थना करता है कि हे **देव**=सब दिव्यगुणों के पुञ्ज, दीप्ति वाले द्योतित करनेवाले प्रभो! आप **स्वयं**=अपने आप ही **दिवि**=ज्ञान के प्रकाश में रहनेवाले **देवान्**=देवों को, दिव्यगुणों को **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। 'दिव्यगुणों का वास' ज्ञान के प्रकाश के ही साथ है। ज्ञान होने पर ही दिव्यगुण पनपते हैं। हे प्रभो! **ते पाकः**=आपका यह पक्तव्य प्रज्ञा वाला **अप्रचेताः**=नासमझ शिष्य **किं कृणवत्**=क्या कर सकता है? अर्थात् प्रभु से अनधिष्ठित जीव में तो कोई शक्ति ही नहीं। हे **देव**=सब दिव्यताओं के अधिष्ठान प्रभो! **यथा**=जैसे **ऋतुभिः**=समय-समय पर **देवान् अयजः**=अपने दिव्य गुणों से हमारा सम्पर्क किया है, **एवा**=इसी प्रकार से **सुजात**=(शोभनं जातं यस्मात्) शोभन विकास को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **तन्वम्**=(आत्मानम् अपि) अपने को भी **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। अर्थात् हमारे साथ जहाँ देवों का यजन हो, वहाँ उस महादेव प्रभु का भी यजन हो। हम दिव्यगुणों को प्राप्त करते हुए प्रभु को पानेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से परिपक्व प्रज्ञा वाले 'प्रचेता' बनकर हम देवों व महादेव के सम्पर्क में निवास करनेवाले बनें।

ऋषिः—**त्रितः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अविता व गोपाः

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वोऽ३ अप्रयुच्छन्॥ ७॥

हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नः**=हमारे **अविता भवा**=रक्षक होइये आपकी कृपा से हमारे शरीरों में किसी प्रकार के रोग न आएँ। **उत**=और **गोपाः भवा**=आप हमारी इन्द्रियों के रक्षक होइये। 'गावः इन्द्रियाणि' गौवें इन्द्रियाँ हैं, प्रभु उन इन्द्रियों रूप गौवें के 'गोपा' हैं, उनकी रक्षा करनेवाले हैं। प्रभु कृपा से ये इन्द्रियाँ विषयपङ्क में नहीं फँसती हैं। इस प्रकार रोगों से व विषयों से बचाकर प्रभो! आप **वयस्कृत्**=हमारे उत्कृष्ट जीवन को करनेवाले होइये **उत**=और **नः**=हमारे में **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करिये। 'वयस्' शब्द का अर्थ 'अन्न' भी है। आप उत्तम अन्न को करनेवाले व हमारे लिये उत्तम अन्न को धारण करनेवाले होइये। **च**=और हे **सुमहः**=उत्तम तेजस्विता वाले प्रभो! **नः**=हमें **हव्यदातिम्**=हव्य के देने को **रास्व**=प्राप्त कराइये। हम सदा हव्य को देकर बचे हुए को ही खानेवाले हों। **उत**=और इस हव्य को देकर यज्ञशेष के खाने की वृत्ति को उत्पन्न करके **अप्रयुच्छन्**=किसी प्रकार का प्रमाद न करते हुए **नः तन्वः**=हमारे शरीरों को **त्रास्व**=रक्षित कीजिये। यज्ञशेष का सेवन हमें भोगवृत्ति से बचाता है और इस प्रकार हमारे शरीरों को रोगों का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—प्रभु हमारे रक्षक हैं। वे हमें उत्कृष्ट अन्न व जीवन प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही हमें हव्य के देने की प्रवृत्ति वाला करते हैं और हमें भोगवाद का शिकार नहीं होने देते।

सूक्त का प्रारम्भ 'विश्वायु बनने से होता है, (१) विश्वायु बनने के लिये हम प्रभुस्मरण पूर्वक

ही प्रकृति के पदार्थों का प्रयोग करें, (२) वे प्रभु ही हमारे पिता, मित्र, भाई व सखा हैं, (३) वे हमें संविभाग वाली बुद्धि प्राप्त कराते हैं, जो कि दिनदूनी रात चौगुणी उन्नति का कारण बनती है, (४) यह उन्नति प्रेय व श्रेय दोनों को सिद्ध करने में है, (५) जब हम पुरुषार्थ करते हैं तो प्रभु-कृपा से हमारे साथ देवों व महादेव का सम्पर्क होता है, (६) वे प्रभु हमारे अविता व गोपा होते हैं, (७) इस प्रभु की कृपा से हम ज्ञान के साथ आगे बढ़ते हैं—

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्रिशिराः त्वाष्ट्रः

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध॥ १॥

प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि 'त्रिशिराः त्वाष्ट्रः' है। शरीर के दृष्टिकोण से यह शिखर पर पहुँचता है, मन की पवित्रता के दृष्टिकोण से यह शिखर पर पहुँचता है और मस्तिष्क के दृष्टिकोण से यह उन्नत होता है। इस प्रकार यह 'त्रिशिराः' तीन सिरों वाला कहलाता है और निर्माण करने के कारण इसका नाम 'त्वाष्ट्र' हो जाता है। यह 'अग्निः'=प्रगतिशील जीव **बृहता**=वृद्धि के कारणभूत **प्रकेतुना**=प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाश से **रोदसी**=द्युलोक व पृथिवीलोक को **आयाति**=प्राप्त होता है। मस्तिष्क ही 'द्युलोक' है, यह शरीर 'पृथिवी' है। 'मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल करना तथा शरीर को स्वस्थ बनाना' यही 'रोदसी' को प्राप्त करना है। **वृषभः**=मस्तिष्क व शरीर दोनों के दृष्टिकोण से शक्तिशाली बनकर यह **रोरवीति**=नित्य प्रभु का स्तवन करनेवाला बनता है। प्रभु के गुण प्रतिपादक नामों का यह स्मरण करता है। **दिवः**=ज्ञान के प्रकाश से **अन्तान्**=परले सिरों को **चित्**=और **उपमान्**=समीप प्रदेशों को यह **उदानट्**=प्रकृष्ट रूप में व्याप्त करता है। ज्ञान के परले सिरे 'आत्मविद्या' हैं तो उरले सिरे ही प्रकृति विद्या है। यह इन दोनों को ही खूब प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। **अपाम् उपस्थे**=(आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों की उपस्थिति में, शरीर में इन रेतःकणों को सुरक्षित करने के द्वारा **महिषः**=(मह पूजायाम्) प्रभु की पूजा करनेवाला यह अग्नि **ववर्ध**=वृद्धि को प्राप्त होता है। यह सब दृष्टिकोणों से उन्नति करता है।

भावार्थ—मनुष्य की उन्नति यही है कि उसका मस्तिष्क ज्ञान से परिपूर्ण हो, 'मन' प्रभु नाम स्मरण में लगा हो, और शरीर 'रेतःकणों' की रक्षा के द्वारा पूर्ण स्वस्थ व नीरोग हो।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सब से प्रथम स्थान में

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत्।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति॥ २॥

गत मन्त्र में वर्णित 'त्रिशिराः' **मुमोद**=आनन्द को प्राप्त करता है, आनन्दमय स्वभाव वाला होता है। **गर्भः**=प्रभु को अपने अन्दर धारण करनेवाला होता है। **वृषभः**=शक्तिशाली होता है, **ककुद्मान्**=शिखर वाला, अर्थात् शरीर, मन व मस्तिष्क की उन्नति के दृष्टिकोण से उन्नत हुआ-हुआ 'त्रिशिराः' अथवा सायण के शब्दों में 'उन्नततेजस्कः'=अत्यन्त तेजस्वी होता है। अस्रेमा (praiseworthy=प्रशंसनीय) इसके जीवन में कोई अप्रशस्त आचरण नहीं होता। **वत्सः**=यह प्रभु का प्रिय होता है, अथवा 'वदति'=प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। और **शिमीवान्**=शान्त

भाव से उत्तम कर्मों को करनेवाला होता है। कर्मों में लगा हुआ **अरावीत्**=प्रभु का स्मरण करता है, प्रभु के नामों का जप करता है। प्रभु नाम स्मरण करता हुआ **स**=वह **देवताति**=दिव्यगुणों के विस्तार वाले यज्ञों में **उद्यतानि कृण्वन्**=उत्साहयुक्त कर्मों को करता हुआ **स्वेषु क्षयेषु**=अपने घरों में **प्रथमः**=सर्वोन्नत स्थिति में **जिगाति**=पहुँचता है। मनुष्य का आदर्श यही होना चाहिए कि 'अति समं क्राम'=मैं बराबर वालों से आगे लाँघ जाऊँ। आगे बढ़ता हुआ प्रथम स्थान में पहुँच पाऊँ।

भावार्थ—प्रभुस्मरण पूर्वक कर्म करते हुए हम निरन्तर आगे बढ़े। कर्ममय जीवनवाले होकर आनन्दित हों।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उन्नति के शिखर पर

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त॥ ३॥

यः=जो **पित्रोः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के **मूर्धानम्**=शिखर को **आ अरब्ध**=पहुँचने के लिए सब प्रकार से यत्न प्रारम्भ करता है। अर्थात् शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखकर शारीरिक उन्नति के शिखर पर पहुँचता है और मस्तिष्क को ऊँचे से ऊँचे ज्ञान से परिपूर्ण करके मस्तिष्क के शिखर पर पहुँचता है। **सूरः** (सूर्यते be firm)=जो दृढ़ वृत्ति वाले लोग, न्याय मार्ग से न विचलित होनेवाले लोग **अर्णः**=अपनी गति को (ऋ गतौ) **अध्वरे**=हिंसा व कुटिलता से रहित यज्ञात्मक कर्मों में **निदधिरे**=निश्चय से स्थापित करते हैं। अर्थात् सदा यज्ञशील होते हैं, **अस्य**=इस अग्रेणी प्रभु के **पत्मन्**=मार्ग में **अरुषीः**=आरोचमानाः=खूब देदीप्यमान तथा **अश्वबुध्नाः**=व्याप्तमूलाः=व्यापक मूल वाली, 'धर्मार्थकाममोक्षणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्' इन शब्दों में वर्णित व्यापक आरोग्य रूप मूल वाली **तन्वः**=तनुओं को, शरीरों को **ऋतस्य योनौ**=ऋत के मूल उत्पत्ति स्थान प्रभु में **जुषन्त**=प्रीति पूर्वक सेवनवाला करते हैं। अर्थात् अपने 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' शरीरों से उस प्रभु का ही सेवन करते हैं जो प्रभु ऋत के उत्पत्ति स्थान हैं। सब प्राकृतिक नियम उस प्रभु से ही उत्पन्न किये जाते हैं, प्रभु 'ऋत के योनि' हैं 'ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत' प्रभु के सेवन व उपासन के लिये वे इन शरीरों को व्यापक आरोग्य रूप मूल वाला बनाते हैं, वे शरीर को, मन को व मस्तिष्क को सभी को स्वस्थ बनाकर प्रभु उपासन में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—हमें चाहिए कि शरीर व मस्तिष्क की उन्नति के शिखर पर पहुँचें। अविचलित भाव से यज्ञनिष्ठ बनें। आरोग्य साधन कर प्रभु उपासन में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सप्त-पदी

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै॥ ४॥

हे **वसो**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले जीव! तू **हि**=निश्चय से **उष उषः**=प्रत्येक उषःकाल में **अग्रम् एषि**=आगे और आगे बढ़ता है। **त्वं**=तू **यमयोः**=परस्पर अवियुक्त-युग्मरूप से रहनेवाले दिन-रात में **विभावा**=विशिष्ट दीप्ति वाला **अभवः**=होता है। गत मन्त्र के अनुसार यह शरीर व मस्तिष्क की उन्नति के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न करता है, सो यह स्वास्थ्य के कारण दीप्त शरीर वाला तथा ज्ञान के कारण दीप्त मस्तिष्क वाला होता है। इसीलिए इसे

'विभावा'=विशिष्ट दीप्ति वाला कहा गया है, इस प्रकार शरीर व मस्तिष्क के दृष्टिकोण से दीप्त हुआ-हुआ **ऋताय**=जीवन में यज्ञ की सिद्धि के लिए **सप्त पदानि दधिषे**=सात कदमों को धारण करता है। विवाह संस्कार में ये सात कदम 'सप्तपदी' के रूप में कहे जाते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण अभ्युदय के लिए ये सात कदम आवश्यक ही हैं। '(क) अन्न को जुटाना, (ख) बल व प्राणशक्ति के वर्धक अन्न का सेवन, (ग) धनार्जन, (घ) स्वास्थ्य की स्थिरता, (ङ) उत्तम सन्तान, (च) दिनचर्या का नियम तथा (छ) परस्पर मित्रभाव' इस सात बातों के होने पर जीवन सुन्दर व यज्ञमय बन पाता है। इन सात कदमों को धारण करनेवाला व्यक्ति **स्वायै तन्वे**=इस अपने शरीर से **मित्रं**=उस मित्रभूत प्रभु को **जनयन्**=प्रकट करनेवाला होता है। यह अपने हृदय में प्रभु के प्रकाश को तो देखता ही है, इसके जीवन की क्रियाओं में लोगों को प्रभु की तेजोज्योति का अंश दिखता है। एवं इसके जीवन से प्रभु का प्रकाश होता है।

भावार्थ—हमें प्रतिदिन आगे बढ़ना है, विशिष्ट दीप्ति वाला बनना है। यज्ञ की सिद्धि के लिए सात कदमों को रखते हुए हम अपने शरीरों से प्रभु की अभिव्यक्ति करें।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋत का रक्षण (सप्तपदी की व्याख्या)

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥ ५ ॥

गत मन्त्र के अनुसार जब हम अपने शरीरों में प्रभु की अभिव्यक्ति कराते हैं तो हे प्रभो! आप हमारे लिये **महः चक्षुः**=तेजस्विता से परिपूर्ण चक्षु होते हैं। अथवा प्रभु हमें तेजस्वी भी बनाते हैं और हमारे लिए मार्गदर्शक भी होते हैं, हमें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान देते हैं। कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान देकर वे **ऋतस्य गोपाः**=ऋत के रक्षक होते हैं। हमारे जीवनों में से अनृत को दूर करके ऋत को परिपुष्ट करते हैं। इस प्रकार **यत्**=जब आप **ऋताय वेषि**=हमारे में ऋत के लिये, ऋत की स्थापना के लिये कामना करते हैं तो **वरुणः भुवः**=द्वेष का निवारण करनेवाले होते हैं। इस द्वेष निवारण के लिये **अपाम्**=(आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों के **न पात्**=न गिरने देनेवाले होते हैं। सुरक्षित वीर्य वाला शूर-वीर पुरुष ही द्वेषादि से ऊपर उठ पाता है। हे प्रभो! इस द्वेष निवारण के लिये ही उस व्यक्ति के लिये **जातवेदः भुवः**=(जातं वेदो यस्मात्) उचित धन को प्राप्त करानेवाले होते हैं (वेदः=wealth)। निर्धनता भी कई अशुभ भावनाओं को जन्म देने का कारण बन जाती है। हे प्रभो! आप **यस्य हव्यं जुजोषः**=जिसके हव्य को सेवन करनेवाले होते हैं उसके लिये **दूतः**=ज्ञान के सन्देश को प्राप्त करानेवाले होते हैं। वस्तुतः एक प्रभु-भक्त धन को प्राप्त करके हव्य का सेवन करता है, त्यागपूर्वक यज्ञशेष का ही उपयोग करता है। यह यज्ञशेष का सेवन ही प्रभु का उपासन है 'हविषा विधेम'=उस आनन्द स्वरूप प्रभु का हवि के द्वारा उपासन करते हैं। इन यज्ञशेष का सेवन करने वालों को ही प्रभु का ज्ञान सन्देश प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे मार्गदर्शक हैं, हमारे जीवन को ऋतमय-वीरतापूर्ण व यज्ञशेष का सेवन करनेवाला बनाते हैं।

सूचना—पिछले मन्त्र के 'सात पदों' का भी प्रस्तुत मन्त्र में संकेत प्रतीत होता है—(१) **भुवः चक्षुर्महः**=तेजस्वतापूर्ण ज्ञान, (२) **ऋतस्य गोपाः**=ऋत का, यज्ञ का रक्षण, (३) **भुवोवरुणः**=द्वेष निवारण, (४) **अपांनपात्**=वीर्यरक्षण, (५) **जातवेदः**=उचित धनार्जन, (६) **दूतः**=ज्ञान सन्देश श्रवण, (७) **हव्यं जुजोषः**=यज्ञशेष के सेवन से प्रभु का आराधन।

ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

स्वर्षा हव्यवाट् जिह्वा

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म्॥ ६॥

हे प्रभो! आप हमारे जीवनों में **यज्ञस्य**=यज्ञात्मक कर्मों का तथा **रजसः**=क्रियाशीलता का (रजः कर्मणि) **नेता भुवः**=प्रणयन करनेवाले होते हैं, **यत्रा**=इन यज्ञात्मक कर्मों के निमित्त ही **शिवाभिः**=कल्याणकर **नियुद्भिः**=इन्द्रियाश्वों से हमें **सचसे**=समवेत-युक्त करते हैं। प्रभु हमें शुभ कर्मों की ओर झुकाव वाली इन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं। 'हम अशुभ कर्मों में न प्रवृत्त हों' इसी उद्देश्य से **मूर्धानम्**=हमारे मस्तिष्क को **दिवि**=प्रकाश में **दधिषे**=हे प्रभो! आप स्थापित करते हो। हमें प्रभु ज्ञान देते हैं, जिससे कि हमारे कर्मों की पवित्रता बनी रहे। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप हमारी **जिह्वाम्**=जिह्वा को **स्वर्षाम्**=प्रकाशमय प्रभु का सेवन करनेवाली उस ज्ञान ज्योति के पुञ्ज प्रभु का नामोच्चारण करनेवाली तथा **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों का ही सेवन करनेवाली **चकृषे**=करते हैं। हमारी जिह्वा ज्ञान के शब्दों व प्रभु के नामों का ही उच्चारण करती है और पवित्र यज्ञशेष का ही सेवन करती है।

भावार्थ—(क) हम क्रियाशील हों और यज्ञों में लगे रहें, (ख) इन्द्रियों को शुभ बनाएँ, (ग) ज्ञान को धारण करे, (घ) प्रभु नामोच्चारण करें और हव्य पदार्थों का ही सेवन करें।

ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रभु का कारण

अ॒स्य त्रि॒तः क्रतु॑ना व॒व्रे अ॒न्तरि॒च्छन्धी॒तिं पि॒तुरे॒वैः पर॑स्य।
स॒च॒स्यमा॑नः पि॒त्रोरु॒पस्थे॑ जा॒मि ब्रु॑वा॒ण आयु॑धानि वेति॥ ७॥

त्रितः='त्रीन् मनोति' धर्म, अर्थ, काम तीनों का उचित रूप में विस्तार करनेवाला अथवा 'त्रीन् तरति', 'काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों को तैर जानेवाला **क्रतुना**=कर्म-संकल्प व प्रज्ञान के द्वारा **अस्य**=इस प्रभु का **वव्रे**=वरण करता है। प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि हम शरीर में कर्मशक्ति सम्पन्न हों, अकर्मण्य को ही अशुभ विचार घेरा करते हैं। मन में उस प्रभु प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प हो और मस्तिष्क प्रज्ञान से उज्ज्वल हो। ऐसा होने पर ही हम प्रभु को प्राप्त कर पाते हैं। यह व्यक्ति **एवैः**=अपनी सब गतियों व क्रियाओं से **परस्य पितुः**=उस परम पिता प्रभु ही **अन्तः**=(हृदयान्तरिक्ष) अन्तःकरण में **धीतिम्**=धारणा को अथवा प्रज्ञा को (नि० १०.४१) **इच्छन्**=चाहता है। इसकी सारी क्रियाएँ इस उद्देश्य से होती हैं कि यह हृदय में प्रभु को धारण कर पाये। यह **पित्रोः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के **उपस्थे**=गोद में, मस्तिष्क व शरीर के मध्य, अर्थात् हृदय में **सचस्यमानः**=उस प्रभु से सम्पर्क को प्राप्त करता हुआ (सच् to be associated) **आयुधानि**=तलवार, तोप, बन्दूक आदि अस्त्रों को **जामि**=(needless repetition) व्यर्थ की पुनरुक्ति-सा **ब्रुवाणः**=कहता हुआ **वेति**=इस संसार यात्रा में चलता है। प्रभु के सम्पर्क के होने पर मनुष्य को इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि उसके लिए इन बाह्य अस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वास्तव में तो सर्वत्र प्रभु दर्शन करने पर उसका किसी से वैर विरोध ही नहीं रहता, सो अस्त्रों का कोई उपयोग ही नहीं रह जाता।

भावार्थ—हम अपने हृदय में प्रभु का वरण करें, क्रियाशीलता के द्वारा हृदय में प्रभु का धारण

करें। प्रभु से हमारा इस प्रकार सम्बन्ध हो कि हमारे लिये ये बाह्य अस्त्र निकम्मे हो जाए।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

असुरों से युद्ध

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः॥ ८॥

सः=वह गत मन्त्र का **त्रितः**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों की शक्तियों का विस्तार करनेवाला **पित्र्याणि**=उस परमपिता प्रभु से प्राप्त होनेवाले **आयुधानि**=ज्ञान रूप अस्त्रों को **विद्वान्**=जाननेवाला, अर्थात् ज्ञानशस्त्र के प्रयोग से वासना रूप शत्रुओं को मारनेवाला, **इन्द्रेषितः**=उस परमैश्वर्यवान् प्रभु से प्रेरित हुआ-हुआ, **आप्त्यः**=दिव्यगुणों को प्राप्त करने वालों में सर्वोत्तम **अभ्ययुध्यत्**=वासनारूप शत्रुओं से मन में तथा रोगरूप शत्रुओं से शरीर में युद्ध करता है। इस युद्ध में विजय प्राप्त करके **त्रिशीर्षाणम्**=शरीर, मन व मस्तिष्क की उन्नति रूप तीन शिखरों वाली **सप्तरश्मि**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन कान, नासिका, आँख व मुख आदि ज्ञानेन्द्रिय रूप सात ऋषियों की ज्ञान किरणों को **जघन्वान्**=खूब ही प्राप्त करता है (हन्=गति), इस प्रकार त्रिविध उन्नति के द्वारा तथा ज्ञानरश्मियों के द्वारा यह **त्रितः**=त्रिविध उन्नति का करनेवाला तथा काम-क्रोध-लोभ तीनों को तैर जानेवाला त्रित **त्वाष्ट्रस्य**=उस निर्माता प्रभु को दी हुई (त्वष्टा एव त्वाष्ट्रः) **गाः**=इन इन्द्रियों को **निः ससृजे**=विषयों के बन्धन से मुक्त करता है। आसुर वृत्तियों ने इन इन्द्रियों को आक्रान्त कर लिया था, पर त्रित इन्द्रियों को असुरों के आक्रमण से बचाता है, उनके बन्धन से छुड़ा लेता है।

भावार्थ—त्रि प्रभु से ज्ञान रूप शस्त्र को प्राप्त करके आसुर वृत्तियों व रोगों से लड़ता है और त्रिविध उन्नति के शिखर पर पहुँचता है। और सप्त ऋषियों की ज्ञानकिरणों को प्राप्त करके इन्द्रियों को विषय बन्धनों से मुक्त करता है।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वासना विच्छेद व त्रिविध उन्नति

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम्।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क्॥ ९॥

सत्पतिः=सदा उत्तम (सत्) कर्मों में लगे रहने के द्वारा अपना रक्षण करनेवाला **इन्द्रः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता जितेन्द्रिय पुरुष **भूरि ओजः उदिनक्षन्तः**=बहुत अधिक शक्ति को व्याप्त करते हुए अर्थात् अतिशक्ति सम्पन्न होते हुए **मन्यमानं**=अपनी शक्ति के गर्व वाले अथवा प्रचण्ड (क्रुध्यमानं सा०) इस काम रूप असुर को **इत्**=निश्चय से **अवाभिनत्**=विदीर्ण करता है। 'काम' को नष्ट करने का सब से सुन्दर उपाय यही है कि 'उत्तम कर्मों में लगे रहना'। इस प्रकार काम को नष्ट करके **चित्**=निश्चय से **त्वाष्ट्रस्य**=उस दिव्यगुणों का निर्माण करनेवाले **विश्वरूपस्य**=व्यापक रूप वाले प्रभु की **गोनाम्**=इन्द्रियों के **त्रीणि**=तीन **शीर्षाणी**=शिखरों को **आचक्राणः**=करने के हेतु से **परावर्क्**=इन आसुर वृत्तियों को सुदूर छिन्न-भिन्न कर देता है। इन्द्रियों के तीन शिखर 'ज्ञान, कर्म व उपासना' हैं। इनके दृष्टिकोण से उन्नत होने के लिए वासनाओं का विच्छेद आवश्यक है। यहाँ 'ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ' इस प्रकार इन्द्रियों की द्विविधता के साथ तीन शिखरों का समन्वय निम्न सूत्र से स्पष्ट हो जाता है—'ज्ञान+कर्म=उपासना'। ज्ञान पूर्वक कर्म करना ही उपासना है।

एवं उपासना भी ज्ञान-कर्म के ही अन्तर्गत हो जाती है। एवं द्विविध इन्द्रियों से हम तीन शिखरों का आक्रमण करते हैं। परन्तु यह सब होता तभी है जब कि वासनाओं का हम विच्छेद करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—अत्यन्त प्रबल 'काम' रूप शत्रु के नष्ट होने पर ही हम 'त्रिशिरा: त्वाष्ट्र' बन पाते हैं।

सूक्त का प्रारम्भ 'त्रिशिरा:' की व्याख्या से होता है, इसके मस्तिष्क में ज्ञान है, मन में प्रभु स्मरण, शरीर में रेत:कणों की व्याप्ति, (१) वह सदा प्रसन्न रहता है, कर्ममय जीवनवाला बनकर आनन्दित होता है, (२) यह आरोग्य साधन करके प्रभु उपासन में प्रवृत्त रहता है, (३) अभ्युदय की प्राप्ति के लिये यह 'अन्न-बल-धन-स्वास्थ्य-सन्तान-समयपालन व मित्रभाव रूप सात कदमों को रखता है, (४) प्रभु कृपा से हमारा जीवन ऋतमय बनता है, (५) हम हव्यपदार्थों का सेवन करते हैं, (६) प्रभु स्मरण के होने पर बाह्य अस्त्र हमारे लिये पुनरुक्त व व्यर्थ से हो जाते हैं, (७) हम इन्द्रियों को विषय-बन्धन से मुक्त कर पाते हैं, (८) प्रचण्ड कामरूप शत्रु का संहार करते हैं, (९) इस कामरूप शत्रु के संहार रूप महान् कार्य में जलों का समुचित प्रयोग हमारे लिये अतिसहायक होता है—

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषि:—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्र: सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष:** ॥ देवता—**आप:** ॥ छन्द:—**गायत्री** ॥
स्वर:—**षड्ज:** ॥

जल व नीरोगता

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन। म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से॥ १ ॥

(१) **आप:**=जल **हि**=निश्चय से **स्था:**=हैं **मयोभुव:**=कल्याण व नीरोगता को उत्पन्न करनेवाले। अर्थात् जलों के समुचित प्रयोग से हम अपने शरीरों को पूर्णतया नीरोग बना पाते हैं। **ता:**=वे जल **न:**=हमें **ऊर्जे**=बल व प्राणशक्ति में **दधातन**=धारण करें। जलों का समुचित प्रयोग यह है कि—(क) हम स्नान के लिये ठण्डे पानी का प्रयोग स्पञ्जिंग के रूप में (घर्षण स्नान के रूप में) करें और पीने के लिये यथासम्भव गरम का। (ख) प्रात: जीभ व दाँतों को साफ करने के बाद जितना सम्भव हो उतना पानी पीयें, यही हमारी (Bed tea) हो। (ग) भोजन में थोड़ा-थोड़ा करके बीच-बीच में कई बार पानी लें 'मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि'। (२) इस प्रकार जलों का प्रयोग करने पर ये जल **महे**=हमारे महत्त्व के लिये हों, शरीर के भार को कुछ बढ़ाने के लिये हों। जलों के घर्षण स्नान आदि के रूप में प्रयोग से शरीर का उचित भार बढ़ता है। भारी शरीर कुछ हल्का हो जाता है और हल्का शरीर उचित भार को प्राप्त करता है। (३) **रणाय**=(रणशब्दे) जल का उचित प्रयोग शब्द शक्ति के विकास के लिये होता है। वाणी में शक्ति आ जाने से हम 'पर्जन्य निनदोपम:' मेघगर्जना के समान गम्भीर ध्वनि वाले बनते हैं। (४) **चक्षसे**=जलों के ठीक प्रयोग से ये दृष्टिशक्ति की वृद्धि के कारण बनते हैं। भोजन के बाद गीले हाथों के तलों से आँखों को कुछ मलना, प्रात: ठण्डे पानी के छींटे देना आदि प्रयोग दृष्टिशक्ति को बढ़ाते हैं, उष:पान तो निश्चय से इसके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

भावार्थ—जल 'नीरोगता, बल व प्राणशक्ति, महत्त्व (भार: शब्दशक्ति व दृष्टिशक्ति' के वर्धक हैं।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

कामयमान माताओं के समान

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ २॥

(१) हे जलो! **यः**=जो **वः**=तुम्हारा **शिवतमः**=अत्यन्त कल्याण करनेवाला **रसः**=रस है, **नः**=हमें **इह**=इस जीवन में **तस्य**= उसका **भाजयत**=भागी बनाओ। 'भज सेवायाम्'=हमें उस रस का उसी प्रकार सेवन कराओ **इव**=जिस प्रकार **उशतीः**=बालक के हित की कामना करती हुई **मातरः**=माताएँ बच्चे को स्तन्य=(दूध) का पान कराती हैं। (२) बच्चा माता के दूध का पान करके जैसे नीरोग व पुष्ट शरीर वाला होता है, उसी प्रकार हम जलों के रस का सेवन करते हुए नीरोगता व पुष्टि को प्राप्त करते हैं। (३) यहाँ स्तन्यपान की उपमा देकर यह संकेत किया गया है कि जलों को धीमे-धीमे पीना चाहिए, उनका रस लेने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने पर ही जल गुणकारी होते हैं।

भावार्थ—जलों का रस हमारे लिये उसी प्रकार पुष्टिकर व नीरोगता को देनेवाला है जैसे कि हितकामना वाली माता का दूध बच्चे के लिये।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

जननशक्ति

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ ३॥

(१) हे **आपः**=जलो! **यस्य क्षयाय**=जिस रस के निवास के हेतु से आप **जिन्वथ**=हमें प्रीणित करते हो, दोषों को दूर करके तृप्ति व प्रसन्नता का अनुभव कराते हो, **वः**=आपके **तस्मा**=उस रस के लिये **अरं गमाम**=हम खूब जायें, अर्थात् उस रस को खूब ही प्राप्त करने का प्रयत्न करें। जलों में एक रस है जो कि हमारे जीवन को नीरोग, निर्मल व सशक्त बनाकर हमें प्रसन्नता का अनुभव कराता है। हम उस रस को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करें। (२) हे **आपः**=जलो! आप **च**=और **नः**=हमें **जनयथा**=विकसित शक्ति वाला करो। अथवा जननशक्ति से युक्त करो। वस्तुतः यहाँ यह संकेत स्पष्ट है कि जलों का समुचित प्रयोग वन्ध्यात्व को तथा नपुंसकत्व को नष्ट करता है।

भावार्थ—जल अपने रसों से हमें प्रीणित करते हैं तथा हमारी शक्तियों का विकास करनेवाले हैं।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

इच्छा-आक्रमण-विजय

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ ४॥

(१) **देवीः**=(दिव्=विजिगीषा) रोगों को जीतने की कामना वाले **आपः**=जल **नः**=हमारे लिये **अभिष्टये**=रोगों पर आक्रमण के लिये (अभिष्टि=attack) और इस प्रकार **पीतये**=हमारे रक्षण के लिये **भवन्तु**=हों। रोग विनाश के द्वारा ये जल **शम्**=शान्ति को देनेवाले हों। (२) यहाँ यह क्रम ध्यान देने योग्य है—'इच्छा-आक्रमण-विजय'। जल रोगों को जीतने की इच्छा करते

हैं (देवी:), रोगों पर आक्रमण करते हैं (अभिष्टये) और उन रोगों को शान्त कर देते हैं (शं) रोग शान्ति द्वारा ये जल हमारा रक्षण करते हैं (पीतये) (३) **शं-योः**=उत्पन्न रोगों का ये जल शमन करनेवाले हों (शं) तथा अनुत्पन्न रोगों का पृथक् करण करनेवाले हों, उनको हमारे से दूर ही रखनेवाले हों। 'शं' शब्द चिक्तिसा-cure व अपनयन का संकेत करता है और **योः**=रोगों को रोकने-prevention उत्पन्न ही न होने देने का। इस प्रकार ये जल रोगों का इलाज व रोकना दोनों ही काम करते हैं-(curative इलाज करनेवाला) भी हैं (preventive-अवरोधक) भी। ऐसे ये जल **नः**=हमारे **अभिस्रवन्तु**=दोनों ओर बहें। हम स्नान के रूप में इनका बाह्य प्रयोग करें और आचमन के रूप में अन्तः प्रयोग। इस प्रयोग में यह सूत्र हमें सदा ध्यान रहे कि 'अन्दर गरम और बाहर ठण्डा'। पीने में गरम पानी का तथा स्नान में ठण्डे का उपयोग हो। ठण्डे पानी का उपयोग त्वचा को सशक्त बनाता है, और गरम पानी का पीना पाचन को ठीक रखता है।

भावार्थ—जल हमारे रोगों को जीतने की कामना करते हैं, वे रोगों पर आक्रमण करते हैं और उन्हें शान्त कर देते हैं। ये जल उत्पन्न रोगों को शान्त करनेवाले तथा अनुत्पन्नों को दूर रखनेवाले हैं।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**वर्धमाना गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

वार्यों के ईशान

ईशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम्। अ॒पो या॑चामि भेष॒जम्॥ ५॥

(१) ये जल **वार्याणाम्**=वरणीय, चाहने योग्य आरोग्य आदि धनों के **ईशानाः**=ईशान व स्वामी हैं, अर्थात् आरोग्य आदि धनों को देनेवाले हैं। और इस प्रकार **चर्षणीनाम्**=कामशील मनुष्यों के **क्षयन्तीः**=(क्षि निवासगत्योः) उत्तम निवास व क्रियाशीलता के कारण हैं। ये जल शरीर में हमारे निवास को उत्तम बनाते हैं तथा नीरोगता व शक्ति को प्राप्त कराके हमारे जीवन को बड़ा क्रियाशील रखते हैं। (२) इन **अपः**=जलों को मैं **भेषजम्**=औषध को **याचामि**=माँगता हूँ। ये जल वस्तुतः सब रोगों के चिकित्सक हैं, उन्हें शान्त करने व दूर रखनेवाले हैं। इनसे हम औषध की याचना करते हैं। ये सुप्रयुक्त होकर हमें नीरोग करें।

भावार्थ—ये जल आरोग्य के ईशान हैं, हमारे निवास को उत्तम बनाकर हमें क्रियाशील बनाते हैं।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

विश्व-भेषज

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा। अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुवम्॥ ६॥

(१) **सोमः**=सोम शक्ति के पुञ्ज प्रभु ने **मे**=मेरे लिये **अब्रवीत्**=यह प्रतिपादन किया है कि **अप्सु अन्तः**=जलों के अन्दर **विश्वानि भेषजः**=सम्पूर्ण औषध हैं। सब रोग जलों के ठीक प्रयोग से चिकित्सित हो सकते हैं। कोई भी रोग ऐसा नहीं जो कि इन जलों के लिये असाध्य हो। 'जल घातने' इस धातु से बना हुआ 'जल' शब्द ही इस बात का संकेत कर रहा है कि ये सब रोगों का **घात**=विनाश करनेवाले हैं। (२) प्रभु का 'सोम' नाम से स्मरण भी यहाँ भी व पूर्ण है, ये जल ही वस्तुतः 'आपः रेतो भूत्वा०' रेतःकण बनकर शरीर में प्रविष्ट होते हैं और ये हमें सोम (semen) शक्ति सम्पन्न बनाते हैं। यह सोम शक्ति ही रोगों का विनाश करती है। (३)

प्रभु ने **च**=यह भी प्रतिपादित किया है कि **अग्निं विश्वशंभुवम्**=अग्नि सब रोगों को शान्त करनेवाली है। इस प्रकार 'अप्सुः व अग्निं' शब्द 'जलों में अग्नि' को सब रोगों का शामक व भेषज कर रहे हैं। इन शब्दों में पीने के लिये गरम जल के प्रयोग का संकेत स्पष्ट है।

भावार्थ—गरम जल ही पीना चाहिए, यह हमारे सब रोगों को शान्त करेगा।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**प्रतिष्ठा गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दीर्घकाल तक सूर्य-दर्शन

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम। ज्योक्च सूर्यं दृशे॥ ७॥

(१) हे **आपः**=जलो! आप **मम तन्वे**=मेरे शरीर के लिये **वरूथम्**=रोगों का निवारण करनेवाले **भेषजम्**=औषध को **पृणीत**=(पूरयत) पूरित करो। अर्थात् जलों के यथायोग से मेरे शरीर में रोगों का प्रवेश न हो सके। (२) **च**=और इस प्रकार हमारी नीरोगता का कारण बनकर ये जल **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **सूर्यं दृशे**=हमारे सूर्य-दर्शन के लिये हों। अर्थात् हम दीर्घजीवी बनें।

भावार्थ—जल रोगनिवारण के द्वारा दीर्घजीवन के लिये होते हैं।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'दुरित-द्रोह-आक्रोश व अनृत' (नाश)

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥ ८॥

(१) हे **आपः**=जलो! **यत् किञ्च**=जो कुछ भी **मयि दुरितम्**=मेरे में अशुभ आचरण आ जाता है। **इदम्**=इसको **प्रवहत**=आप बहा कर दूर कर दो। जल शरीर के मलों व रोगों को ही दूर करें, यह बात नहीं है। ये जल मानस मलों को भी, क्रोधादि को दूर करनेवाले हैं। इनके ठीक प्रयोग से स्वस्थ शरीर में मन भी स्वस्थ होता है। (२) **यद्वा**=और जो **अहम्**=मैं **अभिदुद्रोह**=किसी के प्रति द्रोह की भावना को करता हूँ, उसे भी आप बहा दो। (२) **यद्वा**=और जो **शेपे**=मैं क्रोधवश किसी को शाप देता हूँ, गाली आदि देता हूँ, उस सब आक्रोश को ये जल मेरे से दूर करें। (४) **उत**=और **अनृतम्**=सब अनृत को भी ये जल हमारे से दूर करें। हमारा सब व्यवहार ऋत को लिये हुए हो।

भावार्थ—जलों के समुचित प्रयोग से हम 'दुरित-द्रोह-आक्रोश व अनृत' से बचें।

ऋषिः—**त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

पयस्वान् अग्नि

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा॥ ९॥

(१) **अद्य**=आज मैं **आपः**=जलों को **अनु अचारिषम्**=शास्त्रों के अनुकूल सेवित करता हूँ। **रसेन समगस्महि**=हम जलों के रस से संगत होते हैं। वस्तुतः जलों के पीने का ठीक तरीका यही है कि उन्हें रस लेकर पिया जाए। इसी विधि को 'आचमन करना' कहते हैं। (२) हे **पयस्वान् अग्ने**=अग्निदेव! प्रशस्त जलों वाला तू **आगहि**=हमें प्राप्त हो। अर्थात् हम गरम पानी का ही प्रयोग करें। (३) **तम्**=उस गरम पानी का प्रयोग करनेवाले **मा**=मुझे **वर्चसा**=वर्चस् व

दीप्ति से **संसृज**=संसृष्ट कर। यह गरम जल का प्रयोग सब प्रकार के रोगों से हमें मुक्त करे और वर्चस्वी बनाये।

भावार्थ—हम जलों का प्रयोग रस लेते हुए करें। यह गरम जल का प्रयोग हमें वर्चस्वी बनाये।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार है कि जल कल्याणजनक हैं, बल व प्राणशक्ति को देनेवाले हैं, (१) इनके रस से हमारी शक्तियों का विकास होता है, (२) ये उत्पन्न रोगों को शान्त करते हैं, अनुत्पन्न को दूर रखते हैं, (३) इनमें सब औषध हैं, (४) गरम जल सब रोगों को शान्त करता है, (५) दीर्घजीवन को देता है, (६) 'दुरित-द्रोह-आक्रोश व अनृत' को भी नष्ट करता है, (७) हमें वर्चस्वी बनाता है, (८) इस वर्चस्विता के अविनाश के लिये ही गृहस्थ के मूल सिद्धान्त का प्रतिपादन कराते हैं।

इस सूक्त के ऋषि 'यम व यमी' हैं। यम का अर्थ है 'आत्मसंयम वाला'। यम के इस संयम की परीक्षा के लिये ही यमी यम से विवाह का प्रस्ताव करती है—

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

सन्तान का महत्त्व

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः॥ १॥

(१) यमी यम से कहती है कि **उ चित्**=निश्चय से **सखायम्**=मित्रभूत तुझ को **सख्या**=मित्रभाव से **आववृत्याम्**=(आवर्तयामि सा०) आवृत्त करती हूँ। 'पति पत्नी' परस्पर एक-दूसरे के सखा हैं, सप्तपदी के सातवें कदम में कहते हैं कि 'सखे सप्तपदी भव'। मित्रभाव से आवृत करने का अभिशय यही है कि तू मुझे पति रूप से प्राप्त हो। (२) इसलिए मैं तुझे पतिरूप से चाहती हूँ कि **पुरुचित्**=इस अत्यन्त विस्तृत **अर्णवम्**=संसार समुद्र को **जगन्वान्**=गया हुआ पुरुष **तिरः**=अन्तर्हित हो जाता है। टैनिसन एक स्थान पर लिखते हैं कि 'From great deep to the great deep he goes' मनुष्य एक महान् समुद्र से आता है, और थोड़ी-सी देर इस स्थल इस मध्य पर रहकर, दूसरे विस्तृत समुद्र में चला जाता है। न मनुष्य के आने का पता है, न जाने का; 'कहाँ से आया, कहाँ गया' यह सब अज्ञात ही है। सो मनुष्य मृत्यु पर संसार समुद्र में लीन हो जाता है और उसका कुछ पता नहीं कि वह कहाँ गया। (३) इस बात का ध्यान करके ही **प्रतरं दीध्यानः**=इस विस्तृत समुद्र का विचार करता हुआ **वेधाः**=बुद्धिमान् पुरुष **अधिक्षमि**=इस पृथ्वी पर **पितुः नपातम्**=पिता के न नष्ट होने देनेवाले सन्तान को **आदधीत**=आहित करता है। अर्थात् एक सन्तान को जन्म देता है और अपने इस नश्वर शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उस सन्तान के रूप में बना ही रहता है। इसीलिए वह प्रार्थना भी करता है कि 'प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम'—हे प्रभो! हम सन्तानों के द्वारा अमर बने रहें। (४) यमी की युक्ति संक्षेप में यह है कि—(क) इस विशाल संसार-समुद्र में मनुष्य कुछ देर के बाद तिरोहित हो जाता है। (ख) सन्तान के रूप में ही उसका चिह्न बचा रहता है। (ग) सो सन्तान प्राप्ति के लिये तू मुझे पत्नी के रूप में चाहनेवाला हो और मेरे में सन्तान का आधान कर।

भावार्थ—मनुष्य सन्तान के रूप में ही बना रहता है सो 'सन्तान प्राप्ति के लिये यम यमी की कामना करे' यह स्वाभाविक ही है।

ऋषिः—यमो वैवस्वतः॥ देवता—यमी वैवस्वती॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—गान्धारः॥

समीप सम्बन्ध की हानियाँ

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन्॥ २॥

(१) गत मन्त्रोक्त यमी की बात का उत्तर देते हुए यम कहता है कि सन्तान प्राप्ति के लिये पुरुष और स्त्री का मित्रभाव ठीक ही है, परन्तु **ते सखा**=सहोत्पन्न होने से तेरा मित्र मैं **एतत् सख्यम्**=इस पति पत्नी रूप मित्रता को **न वष्टि**=नहीं चाहता हूँ। **यत्**=क्योंकि **सलक्ष्मा**=समान लक्षणों वाली कन्या सन्तानोत्पत्ति के लिये **विषुरूपा**=बहुत ही विरूप होती है (विषमरूपा सा०) अर्थात् भाई बहिन के इतने समीप सम्बन्ध में सन्तान विरूप ही उत्पन्न होती है। प्राकृतिक क्षेत्र में 'धन विद्युत्' 'धन विद्युत्' से दूर भागती है, ऋण की ओर आकृष्ट होती है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के लिये भी 'सलक्ष्मत्व' हानिकर है। दूर के सम्बन्ध ही ठीक होते हैं। (२) **महस्पुत्रासः**=तेजस्विता के द्वारा (पुनाति त्रायते) अपने को पवित्र करनेवाले व रक्षित करनेवाले, **असुरस्य वीराः**=उस प्राणशक्ति के देनेवाले प्रभु के वीर पुत्र, **दिवः धर्तारः**=प्रकाश व ज्ञान के धारण करनेवाले व्यक्ति इस समीप सम्बन्ध का **उर्विया**=खूब ही **परिख्यन्**=निषेध करते हैं। (३) वस्तुतः 'यह मई स्पुत्रासः, असुरस्य वीराः तथा दिवः धर्तारः' इन शब्दों से यह संकेतित हो रहा है कि समीप सम्बन्धों का परिणाम यह होता है कि—(क) हमारी तेजस्विता का क्षय होता है, क्योंकि यह सम्बन्ध भोगवृत्ति को प्रधानता देने पर ही होता है। (ख) हम प्रभु के पुत्र न होकर प्रकृति के पुत्र हो जाते हैं, प्राकृतिक भोगों में पड़कर प्राणशक्ति को क्षीण कर बैठते हैं। (ग) हमारे ज्ञान में भी कमी आ जाती है। इन कारणों से 'तेजस्वी-प्रभु-भक्त-ज्ञानी' लोग इस समीप सम्बन्ध का प्रबल निषेध करते हैं।

भावार्थ—समीप सम्बन्ध विकृत सन्तानों को जन्म देने के कारण बनते हैं। इनके कारण हमारी तेजस्विता-प्राणशक्ति व ज्ञान में भी हीनता आती है।

ऋषिः—यमी वैवस्वती॥ देवता—यमो वैवस्वतः॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—गान्धारः॥

सन्तान के लिये वीर्यदान की अनिन्द्यता

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः॥ ३॥

(१) यम के इस समीप सम्बन्ध को न स्वीकार करने पर यमी फिर कहती है कि **ते**=वे **अमृतासः**=भोगवृत्ति से ऊपर उठे हुए, भोगों में न फँसनेवाले, इनके पीछे न मरनेवाले 'अ-मृत' पुरुष भी **एतत्**=इस पति-पत्नी सम्बन्ध को **घा उशन्ति**=चाहते ही हैं। प्रभु की अमैथुनी मानस-सृष्टि में उत्पन्न हुए-हुए प्रभु के अमृत पुत्रों ने क्या इस सम्बन्ध की कामना नहीं की। (२) वे तो इस सम्बन्ध को और पत्नी में सन्तान के आधान को **एकस्य मर्त्यस्य**=एक मनुष्य के **चित्**=निश्चय से **त्यजसम्**=त्याग को समझते हैं। सन्तान निर्माण के लिये यह वीर्य का दान तो सचमुच एक महान् त्याग है। (३) इसलिए हे यम! **ते मनः**=तेरा मन **अस्मे मनसि**=हमारे मन में **निधायि**=निहित हो। अर्थात् तू मेरी कामना करनेवाला हो, मुझे पत्नी रूप से चाहनेवाला बन।

(४) **जन्युः**=सन्तान को जन्म देनेवाला **पतिः**=मेरा पति बनकर **तन्वं आविविश्याः**=मेरे शरीर में प्रवेश कर। 'तद्धि जायाया जायात्वं यदस्यां जायते पुनः', जाया का जायात्व यही है कि इसमें पुरुष पुनः जन्म लेता है। सन्तान के रूप में पिता ही दुबारा उत्पन्न होता है। उसके शरीर के एक अंश से ही पुत्र के शरीर का निर्माण होता है। सो पुत्र के रूप में वह शरीर की दृष्टि से भी जीवित ही बना रहता है। (५) 'जन्युः' शब्द इस भाव को सुव्यक्त कर रहा है कि सन्तान को जन्म देनेवाला 'काम' निन्दनीय नहीं है। 'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः' इन शब्दों में यह काम परमेश्वर की ही विभूति है और इसलिए अवाञ्छनीय नहीं है।

भावार्थ—प्रभु के अमृत पुत्र भी परस्पर पति-पत्नी भाव को चाहते ही हैं, यह तो एक महान् त्याग है। सन्तान को जन्म देने के लिये यह सम्बन्ध अनिन्द्य है।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः**॥ देवता—**यमी वैवस्वती**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

उत्कृष्ट बन्धुत्व

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ॥ ४॥

(१) यम उत्तर देता हुआ कहता है कि **यत्**=जिस बात को **पुरा**=इससे पहली सृष्टि में **कत् ह न चकृमा**=कभी भी नहीं किया है **नूनम्**=अब निश्चय से **ऋता वदन्तः**=सत्यों को ही अपने जीवन से कहते हुए हम **अनृतं**=अनृत को **रपेम**=कहें? अर्थात् हम अपने जीवन में उस बात को जो कि सत्य नहीं है क्यों आने दें? यह ठीक नहीं है। (२) सृष्टि के प्रारम्भ में पुरुष **गंधर्वः**=वेद वाणी का धारण करनेवाला है तथा **अप्सु**=कर्मों में निवास वाला है अर्थात् कर्मशील है, **च**=और **योषा**=स्त्री भी **अप्या**=कर्मों में उत्तमता से लगी रहनेवाली है, वस्तुतः इसीलिए तो वह 'योषा' है, गुणों को अपने से संपृक्त करनेवाली तथा दोषों को अपने से दूर करनेवाली। **सा**=वह 'ज्ञान का धारण व कर्मशीलता' ही **नः**=हम सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले (स्त्री-पुरुषों) का **नाभिः**=(णह बन्धने) बन्धन है, हमें परस्पर बाँधनेवाली बात है। **तत्**=वह ही **नौ**=हम दोनों का भी **परमं जामि**=सर्वोत्कृष्ट बन्धुत्व है। 'पति-पत्नी' बनने से ही तो बन्धुत्व नहीं होता?

भावार्थ—पिछली सृष्टि में भी भाई-बहिन कभी पति-पत्नी के समीप सम्बन्ध में सम्बद्ध नहीं हुए। सदा ऋत का आचरण करते हुए हमें अनृत को अपनाना शोभा नहीं देता 'ज्ञानधारण व क्रियामय जीवन' ही पुरुष-स्त्री का सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध है। वही भाई-बहिन का परम बन्धुत्व है।

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

'सम्बन्ध-निर्माता' प्रभु

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः॥ ५॥

(१) यमी फिर यम की परीक्षा लेती हुई कहती है कि **जनिता**=हम सब को जन्म देनेवाले उस प्रभु ने **गर्भे नु**=गर्भ में ही साथ-साथ जन्म देने से **नौ**=हम दोनों को **दम्पती**=पति-पत्नी **कः**=बनाया है। वे प्रभु **देवः**=पूर्ण ज्ञानमय हैं, **त्वष्टा**=वे ही सब सम्बन्धों का निर्माण करनेवाले हैं, **सविता**=सब प्रेरणाओं के देनेवाले हैं, **विश्वरूपः**=और उन प्रेरणाओं को देकर इस संसार

को रूप प्राप्त करानेवाले हैं। (२) ज्ञानमय होने से उस प्रभु के निर्मित सम्बन्धों में गलती हो सो बात नहीं। उनकी प्रेरणायें ठीक ही हैं और उन्होंने संसार को ठीक ही रूप दिया है। **अस्य व्रतानि**=इस सविता देव के व्रतों को **नकिः प्रमिनन्ति**=कोई भी हिंसित नहीं करते हैं। प्रभु की व्यवस्था को कोई तोड़नेवाला नहीं है। (३) **नौ**=हम दोनों के **अस्य**=इस सम्बन्ध को **पृथिवी उत द्यौः**=पृथिवी और द्युलोक अर्थात् सारा संसार **वेद**=जानता है। 'हमारा यह सम्बन्ध कोई छिपा हुआ व पापमय हो' ऐसी बात नहीं है।

भावार्थ—हमारे इस पति-पत्नी सम्बन्ध को तो करनेवाले हमारे पिता प्रभु ही हैं, यह स्पष्ट बात है, 'कोई छिपी हुई पापमय बात हो' सो नहीं।

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

प्रारम्भिक दिन की बात

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन्॥ ६॥

(१) उत्तर देता हुआ यम कहता है कि **अस्य प्रथमस्य अह्नः**=इस पहले दिन की बात को **कः वेद**=परमात्मा ही जानता है। **ईम्**=निश्चय से **कः ददर्श**=उस दिन की बात को तो प्रभु ही देखते हैं और **इह**=सृष्टि के इस प्रारम्भ समय में **कः प्रवोचत्**=वह अनिरुक्त (अनिर्वचनीय महिमा वाले) प्रजापति ही ज्ञान का प्रवचन करते हैं। उस समय की बात मनुष्य अनुमान से ठीक-ठीक नहीं जान पाता। और अगले सृष्टिक्रम में तो निश्चय से पति-पत्नी का सम्बन्ध दूर-दूर ही होता है। (२) **मित्रस्य**=सब के साथ स्नेह करनेवाले **वरुणस्य**=द्वेषादि का निवारण करनेवाले उस प्रभु का **धाम**=तेज **बृहत्**=बहुत अधिक है अथवा सभी प्राणियों की वृद्धि का कारण है। (३) यहाँ 'मित्र वरुण' शब्दों से प्रभु का स्मरण संकेत कर रहा है कि वेद का मूलभूत उपदेश 'प्रेम व निर्द्वेषता' ही है। **उ**=और वे **कत्**=(कं तनोति) सुख का विस्तार करनेवाले प्रभु ही **ब्रवः**=सृष्टि के प्रारम्भ में हमें उपदेश देते हैं, वे हमारे पिता ही नहीं, गुरु भी हैं। हम सब उनके शिष्य हैं, वे प्रभु **नॄन्**=सब उन्नतिशील मनुष्यों को **वीच्या**=हृदय तरंगों से अर्थात् भावनाओं से **आहनः**=आहत करते हैं (हन् गतौ) हमारे जीवनों को गतिमय बनाते हैं। भावनाओं के अभाव में हमारा जीवन गतिशून्य होता। प्रभु ने काम व भाव को 'वेदाधिगम व वैदिक कर्मयोग' के अनुष्ठान के लिये ही हमारे हृदयों में रखा है। (काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः) इस काम को अपवित्र न होने देने के लिये ही ज्ञान है एवं ज्ञान व भाव मिलकर हमारे जीवनों व सम्बन्धों को सुन्दर बनाते हैं।

भावार्थ—पहले दिन की बात को तो प्रभु ही जानते हैं। प्रभु का तेज अनन्त है। उनका मौलिक उपदेश यही है कि हम प्रेम व निर्द्वेषता से चलें। वे प्रभु ही हमें ज्ञान देते हैं और वे ही हमारे हृदयों को भावान्वित करते हैं।

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मोह (अलग होने की घबराहट)

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा॥ ७॥

(१) **यमस्य**=तुझ यम का **कामः**=प्रेम (मोह) **यम्यं मा**=मुझ यमी के प्रति **आगन्**=प्राप्त हो। **समाने योनौ**=समान ही घर में **सहशेय्याय**=साथ-साथ निवास के लिये कामना हो। अर्थात्

हमें अलग-अलग न होना पड़े। (२) यह ठीक है कि प्रभु ने कुछ ऐसी व्यवस्था की है समान रुधिर मिलकर, कुछ गुणों में नवीनता उत्पन्न न होकर, ह्रास ही होता है। इसलिए मनुष्य को दूर-दूर ही सम्बन्ध करने पड़ते हैं और इस प्रकार भिन्न-भिन्न घर परस्पर गुंथ जाते हैं। यदि ऐसा न होता तो मोहवश व्यक्ति एक ही घर में सीमित हो जाते, समाज की भावना का पोषण ही न हो पाता। भाई-बहिन का सम्बन्ध यदि उन्हें एक ही घर में सीमित कर देता है तो एक स्थान पर बहिन का सम्बन्ध होना तथा दूसरे स्थान पर भाई का सम्बन्ध होना कमजकम तीन घरों को मिला देता है। (३) पर यहाँ यमी यम की परीक्षा लेती हुई उसे प्रेम के नाते प्रेरित करती है कि हे यम! तूम मेरी कामना कर। और मैं **जाया इव**=पत्नी की तरह **पत्ये**=पति के रूप में तेरे लिये **तन्वं**=अपने शरीर को **रिरिच्याम्**=(विविच्यां, प्रकाशयेयम्) प्रकाशित करूँ। अर्थात् हम परस्पर पति-पत्नी के रूप में हों। **चित्**=और निश्चय से **विवृहेव**=हम धर्म-अर्थ व काम रूप पुरुषार्थों के लिये उद्योग करें। **रथ्या चक्रा इव**=जैसे रथ के दो पहिये रथ को उद्दिष्ट स्थल पर पहुँचानेवाले होते हैं उसी प्रकार हम पति-पत्नी इस जीवन रथ के दो पहियों के समान हों और जीवन को सफल बनायें।

भावार्थ—हे यम! क्या तुझे मेरे प्रति प्रेम नहीं? हमारा आपस में प्रेम स्वाभाविक है हम पति-पत्नी बनकर धर्म, अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों को सिद्ध करते हुए जीवन को सफल करें।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः**॥ देवता—**यमी वैवस्वती**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

देवों के चर

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं वि वृह रथ्येव चक्रा॥ ८॥

(१) यम उत्तर देता हुआ कहता है कि 'यह समझना कि हमारा यह सम्बन्ध छिपा रहेगा' ठीक नहीं है। मनुष्यों को न भी पता लगे, सूर्यादि देव तो हमारे इन कर्मों को देखते ही हैं। 'आदित्यचन्द्रावनलानिलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्' 'सूर्य, चाँद, अग्नि, वायु, द्युलोक, पृथिवीलोक, जल, हृदय, यम, दिन, रात, दोनों सन्ध्याकाल तथा धर्म' ये सब मनुष्य के वृत्त को देख रहे हैं। ये **एते**=जो ये **देवानां स्पशः**=देवों के गुप्तचर मनुष्यों के आचरण को देखते हुए, **इह चरन्ति**=यहाँ विचरण करते हैं **न तिष्ठन्ति**=न तो खड़े होते हैं, **न निमिषन्ति**=न पलक मारते हैं। अर्थात् ये देव अन्तर्हित हुए-हुए हमारे सब कार्यों को जान रहे हैं। (२) इसलिये हे **आहनः**=गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाली (हन्=गति, हिंसा) मेरी बहिन! **मद् अन्येन**=मेरे से भिन्न व्यक्ति के साथ **तूयम्**=शीघ्र **याहि**=तू इस जीवनयात्रा में गतिशील हो, **तेन**=उसी के साथ **विवृह**=तू धर्म, अर्थ व काम रूप पुरुषार्थ के लिये उद्योग कर। उसी के साथ मिलने पर तुम दोनों **रथ्या चक्रा इव**=रथ के पहियों के समान जीवन यात्रा में आगे और आगे बढ़नेवाले होवो।

भावार्थ—हमारे प्रत्येक कर्म को देव देख रहे हैं। सो हम समीप सम्बन्धों को दूर रखकर दूर सम्बन्धों को ही बनाकर धर्मार्थ काम को सिद्ध करनेवाले हों।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः**॥ देवता—**यमी वैवस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सुदूर-सम्बन्ध

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि॥ ९॥

(१) गत मन्त्र से यम 'मत् अन्येन'=इन शब्दों में अपने से भिन्न किसी श्रेष्ठ पुरुष से अपनी बहिन के सम्बन्ध को चाहता है। यम प्रार्थना करता है कि उसकी बहिन **रात्रीभिः अहभिः**=दिन-रात **अस्मा**=अपने इस पति के लिये **दशस्येत्**=आराम को देने की इच्छा वाली हो। (२) उसकी बहिन व उसके पति पर **सूर्यस्य चक्षुः**=सूर्य की आँख **मुहुः**=बारम्बार **उन्मिमीयात्**=खुले, अर्थात् इनका जीवन दीर्घ हो। (३) **दिवा पृथिव्या**=जैसे द्युलोक पृथिवीलोक के साथ **मिथुना**=परस्पर **सबन्धू**=साथ-साथ समान बन्धुत्व वाले होते हैं, इसी प्रकार ये भी बन्धुत्व वाले हों। द्युलोक व पृथिवीलोक कितने दूर-दूर हैं, इसी प्रकार यम भी चाहता है कि इसकी बहिन सुदूर सम्बन्ध वाली हो। मेरे से भी बहिन की दूरी कोई प्रेम को कम थोड़ा कर देगी, दूरी तो प्रेम को बढ़ा ही देती है 'distance enhances love' (४) **यमीः**=संयत जीवन वाली मेरी बहिन **यमस्य**=मुझ यम के **अजामि**=(अभ्रातरं) असम्बद्ध व्यक्ति को अर्थात् किसी सुदूर गोत्र वाले को ही **बिभृयात्**=भर्तृरूपेण ग्रहण करे। अर्थात् दूर ही कहीं सम्बन्ध वाली हो।

भावार्थ—पत्नी दिन-रात पति के सुख का ध्यान करे, परस्पर मेल व प्रेम से ये दीर्घजीवी हों। द्युलोक व पृथिवीलोक जिस प्रकार परस्पर दूरी पर हैं, इसी प्रकार सम्बन्ध दूरी पर ही हों। दूर गोत्र में ही सम्बन्ध हो।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः**॥ देवता—**यमी वैवस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उत्कृष्ट युग

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥ १०॥

(१) यम चाहता है कि **घा**=निश्चय से **ताः**=वे **उत्तरा युगानि**=उत्कृष्ट युग=समय **आगच्छान्**=आयें **यत्र**=जहाँ **जामयः**=बहिनें **अजामि**=(अभ्रातरं) न भाई को ही, न रिश्तेदार को ही, सूदर गोत्र वाले को ही **कृणवन्**=पतिरूपेण स्वीकार करें। वस्तुतः सुदूर सम्बन्धों से ही उत्कृष्ट सन्तानों का निर्माण होता है, और एक समाज उत्कृष्ट युग में पहुँचती है। (२) हे यमि! तू **वृषभाय**=एक शक्तिशाली श्रेष्ठ पुरुष के लिये **बाहुम्**=अपनी भुजा को **उपबर्बृहि**=उपबर्हण व तकिया बनानेवाली हो। अर्थात् उस श्रेष्ठ पुरुष व तेरा सम्बन्ध परस्पर प्रेम पूर्ण हो। हे **सुभगे**=उत्तम भाग्य वाली **मत् अन्यं**=मेरे से विलक्षण पुरुष को ही **पतिम् इच्छस्व**=पति के रूप में वरण करनेवाली हो।

भावार्थ—सुदूर सम्बन्ध में ही सौभाग्य व सौन्दर्य है। यह सुदूर सम्बन्ध ही एक राष्ट्र में उत्कृष्ट युग को लाने का कारण बनता है।

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

संरक्षण व सुस्थिति

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि॥ ११॥

(१) यमी परीक्षा लेती हुई फिर कहती है कि **यत्**=यदि **अनाथं भवाति**=बहिन अनाथ-नाथ व रक्षक से रहित हो जाती है तो **किं भ्राता असत्**=वह कुत्सित भाई ही होता है। भाई को तो बहिन का सदा रक्षक होना चाहिए। और **यत्**=जो **निर्ऋतिः**=दुर्गति व कष्ट **निगच्छात्**=प्राप्त हो तो वह **किं स्वसा**=कुत्सित ही तो बहिन है। अर्थात् हे यम! तू मेरा सदा

रक्षक हो, और मैं तुझे सदा सुख के पहुँचानेवाली बनूँ। ऐसा ही हमारा सम्बन्ध बना रहे। (२) **काम-मूता**=(मव बन्धने) प्रेम भाव से बद्ध हुई-हुई **एतत्**=यह बात **बहु**=फिर-फिर **रपामि**=मैं कहती हूँ कि **तन्वा**=अपने शरीर से **मे तन्वम्**=मेरे शरीर को **संपिपृग्धि**=तू सम्यक् संपृक्त करनेवाला हो। हम एक दूसरे की कमी को दूर करनेवाले हों, परस्पर पूरक हों।

भावार्थ—पति पत्नी का रक्षण करता है, पत्नी पति को सुस्थिति प्राप्त कराती है। परस्पर प्रेमभाव से युक्त होकर वे एक दूसरे की न्यूनताओं को दूर करनेवाले होते हैं। 'पति पत्नी' वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः**॥ देवता—**यमी वैवस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सुख-समृद्धि-सम्पन्नता

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्॥ १२॥

(१) यम उत्तर देता हुआ कहता है कि मैं **वा उ**=निश्चय से **ते तन्वा**=तेरे शरीर से **न संपपृच्याम्**=अपने शरीर को संपृक्त नहीं कर सकता, क्योंकि **यः**=जो भी भाई होकर **स्वसारं निगच्छात्**=बहिन के प्रति पतिभाव से प्राप्त होता है उसे **पापं आहुः**=ज्ञानी पुरुष पापी कहते हैं। सो इस सम्बन्ध में मैं तेरा नाथ व तू मेरी सुस्थिति का कारण थोड़े ही होगी? सो भाई के रूप में रहता हुआ ही मैं तेरा उत्तम रक्षक होऊँगा, और **स्वसा**=के रूप में ही तू मेरी उत्तम स्थिति का कारण बनेगी। (२) **मद् अन्येन**=मेरे से विलक्षण पुरुष के साथ ही **प्रमुदः कल्पयस्व**=प्रकृष्ट आनन्दों को साधनेवाली तू हो, अर्थात् घर को तू सुख-समृद्धि-सम्पन्न बनानी वाली हो। (३) **ते भ्राता**=तेरे सदा सुख को प्राप्त कराने की कामना वाला मैं तेरा भाई हे **सुभगे**=उत्तम भाग्य वाली! **एतत्**=इस पति रूप सम्बन्ध को **न वष्टि**=नहीं चाहता है। मैं तेरा भाई ही रहता हुआ तेरे सौभाग्यवर्धन की कामना वाला हूँगा।

भावार्थ—हम सुदूर सम्बन्धों को स्थापित करते हुए घरों को सुख-समृद्धि-सम्पन्न बनाएँ। फलते-फूलते हमारे घर आमोद-प्रमोद से भरपूर हों।

ऋषिः—**यमी वैवस्वती**॥ देवता—**यमो वैवस्वतः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

कक्ष्या और युक्त या बेल और वृक्ष

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्॥ १३॥

(१) सम्पूर्ण कई परीक्षा में उत्तीर्ण होते हुए अपने भाई को देखकर हृदय में प्रसन्न होती हुई यमी कहती है कि **बत उ बत असि**=(Joy or satisfaction तथा wonder or surprise) अरे भाई! तू तो मेरे हृदय को आनन्दित व आश्चर्यित करनेवाला है। (२) मैंने अभी तक **ते मनः**=तेरे मानसभावों को **हृदयं च**=व दिल की गहराई (दृढ़ि आस्तिकभाव) को **न एव अविदाम**=नहीं ही जाना था। आज तेरी महत्ता को समझ बड़ी प्रसन्नता हुई है। (३) यह ठीक ही है कि **अन्या किल**=निश्चय से मेरे से विलक्षण अर्थात् सुदूर गोत्र वाली ही कोई कन्या **त्वां परिष्वजाते**=तेरा आलिंगन करे। उसी प्रकार आलिंगन करे **इव**=जैसे कि **कक्ष्या**=कमर में बाँधी जानेवाली रज्जु **युक्तम्**=अपने से सम्बद्ध घोड़े को आलिंगित करती है अथवा **इव**=जैसे **लिबुजा**=बेल **वृक्षम्**=वृक्ष को आलिंगित करती है। तेरा अपनी पत्नी से सम्बन्ध तुझे शक्तिशाली बनानेवाला हो उसी प्रकार

जैसे कक्ष्या घोड़े को कसी हुई कमर वाला बनाती है। और तू पत्नी का उसी प्रकार सहारा हो तथा उसकी उन्नति का कारण बन जैसे कि वृक्ष बेल का।

भावार्थ—सुदूर सम्बन्ध के होने पर पत्नी पति की शक्ति व उत्साह के वर्धन का कारण बने और पति पत्नी का आश्रय व वर्धक हों।

ऋषिः—**यमो वैवस्वतः** ॥ देवता—**यमी वैवस्वती** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

परस्पर प्रेम व सुभद्रा संवित्

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्॥ १४॥

(१) यम भी बहिन के लिये मंगल कामना करता हुआ कहता है कि **यमि**=संयत जीवन वाली **त्वम्**=तू **उ**=निश्चय से **अन्यम्**=अपने से विलक्षण रुधिरादि धातुओं वाले पुरुष को ही **परिष्वजाते**=आलिंगन कर तथा **त्वां उ**=तुझे भी **अन्यः**=तेरे से विलक्षण धातुओं वाला पुरुष ही **सुपरिष्वजाते**=सम्यक् आलिंगन करे। उसी प्रकार **इव**=जैसे कि **लिबुज**=बेल **वृक्षम्**=वृक्ष को आलिंगन करती है। (२) **त्वम्**=तू **तस्य मनः**=उसके मन की **वा**=निश्चय से **इच्छा**=चाहनेवाली बन, **वा स**=और वह भी **तव**=तेरे मन को चाहनेवाला हो। तुम्हारा परस्पर प्रेम हो, तुम एक दूसरे के भावों को आदृत करनेवाले होवो, तुम्हारा परस्पर ऐकमत्य हो। (३) **अधा**=और अब, इस प्रकार पति के साथ प्रेम व ऐकमत्य वाली होकर **सुभद्रां संविदम्**=कल्याणी बुद्धि को (understanding) अथवा परस्परैक्यमतिता को (Agreement) **कृणुष्व**=तू करनेवाली हो। अर्थात् तुम्हारे घर में शुभ विचार व सामञ्जस्य ही बना रहे।

भावार्थ—पति पत्नी का परस्पर प्रेम हो। घर में सदा 'सुभद्रा-संवित्' बनी रहे।

इस सम्पूर्ण सूक्त में यमी यम की परीक्षा लेती हुई उसे समीप सम्बन्ध के लिये प्रेरित करती है। परन्तु यम उस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर दूर सम्बन्धों के महत्त्व को सुव्यक्त करता है। और प्रसंगवश 'घर को किस प्रकार सुन्दर बनाना चाहिए' इस बात का भी संकेत करता है। इस सुन्दर घर में 'किस प्रकार यज्ञादि में जीवन को बिताना चाहिए' इसका निर्देश करते हैं।

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

यज्ञ और वर्षा

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून्॥ १॥

(१) प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि 'आंगि'=(अगि गतौ) क्रियाशील व्यक्ति है जो कि हविर्धानः=हवि का धारण करनेवाला है, यज्ञ करके यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाला है। यह इस बात को समझता है कि **वृषा**=वृष्टि का करनेवाला वह प्रभु **यह्वः**=महान् है (यह्व इति महतो नामधेयम्) अथवा 'यातश्च हूतश्च'=वे प्रभु जाने जाते हैं और पुकारे जाते हैं। अर्थात् जब मनुष्य संसार में अन्य शरण को नहीं देखता, उस समय प्रभु का ही सहारा ढूँढ़ता है और प्रभु की ही ओर जाता है और उसे पुकारता है। वे प्रभु '**अदाभ्यः**'=अहिंसित हैं, अपने कार्यों के अन्दर किसी से पराभूत नहीं होते। वे 'वृषा-यह्व व अदाभ्य' प्रभु **दिवः दोहसा**=द्युलोक के दोहन से **वृष्णे**=औरों पर सुखों की वर्षा करनेवाले, स्वार्थ से ऊपर उठे हुए यज्ञशील पुरुष के लिये **अदितेः**=अखण्डित याग क्रिया

से, अर्थात् निरन्तर यज्ञादि के द्वारा **पयांसि**=जलों का **दुदुहे**=दोहन व पूरण करते हैं। द्युलोक रूप गौ को प्रभु दोहते हैं, उस दोहन से वृष्टिजल रूप दूध प्राप्त होता है। (२) वस्तुतः **वरुणः**=हमारे सब कष्टों का निवारण करनेवाले **स**=वे प्रभु **यथा**=क्योंकि **धिया**=ज्ञानपूर्वक कर्मों से **विश्वम्**=सब आवश्यक पदार्थों को **वेद**=प्राप्त कराते हैं। इसलिए **स**=वह **यज्ञियः**=यज्ञशील पुरुष **यज्ञियान् क्रतून्**=यज्ञ करने योग्य ऋतुओं का लक्ष्य करके **यजतु**=यज्ञ करे। प्रभु प्रार्थना को पुरुषार्थ के उपरान्त ही सुनते हैं। अर्थात् प्रार्थना ही करते जाएँ और पुरुषार्थ न करें तो वह प्रार्थना व्यर्थ ही जाती है। सो हम कर्मशील बनें। कर्म भी समझदारी से करने चाहिएँ। 'धिया' शब्द ज्ञान व कर्म का वाचक होकर 'समझदारी से ही कर्मों के करने का' संकेत कर रहा है। समझदारी से कर्म करने का अभिप्राय यही है कि ऋतु व समय के अनुसार कर्म किया जाए। (३) सब से बड़ी बुद्धिमत्ता यही है कि मनुष्य अत्यन्त स्वार्थी बनकर अपने मुख में ही आहुति न देता रहे। 'स्वेषु आस्येषु जुह्वतः चेरुः'=अपने ही मुखों में आहुति देनेवाले तो असुर हो जाते हैं। हम असुर न बनकर 'देव' बनें। देव 'वृषा' होते हैं, औरों पर सुखों का वर्षण करनेवाले होते हैं। इस वृषा के लिये प्रभु ही वर्षण करते हैं, और सब अन्नादि ठीक उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—हम ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करनेवाले बनें। यह यज्ञक्रिया 'अदिति' हो, अखण्डित हो। हमारे यज्ञ प्रतिदिन नियमितरूप से चलें।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

स्तवन व वेदज्ञान

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति॥ २॥

(१) एक घर में गृहिणी घर का केन्द्र होती है, वही घर को बनाती है, बच्चों का निर्माण करती है। उसकी एक-एक क्रिया बच्चों के चरित्र पर प्रभाव डालनेवाली होती है। सो वह **रपत्**=प्रातः उठकर प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करती है। यह स्तोत्रोच्चारण घर के सारे वातावरण को सुन्दर बनाता है। बच्चों में भी इस से भक्तिभाव का उदय होता है। (२) **गन्धर्वीः**=यह (गांधारयति) वेदवाणी का धारण करती है। स्वाध्याय को जीवन का नियमित अंग बनाती है। (३) **अप्या**=(अप्सु साध्वी) कर्मों में यह उत्तम होती है। वेदज्ञान के अनुसार कर्मों में लगी रहती है। यह इस बात को समझती है कि अकर्मण्यता अलक्ष्मी का कारण होती है। (४) **च**=और इस कर्मशीलता के कारण ही यह **योषणा**=अवगुणों से अपने को पृथक् करनेवाली तथा गुणों से अपने को संपृक्त करनेवाली होती है। (५) गृहपति भी प्रार्थना करता है कि **नदस्य मे**=स्तवन करनेवाला जो मैं, उस मेरे **मनः**=मन को **नादे**=प्रभुस्तवन के होने पर **अदितिः**=अखण्डित यागक्रिया अथवा वे अविनाशी प्रभु **परिपातु**=सुरक्षित करें। प्रभुस्तवन में लगा हुआ मेरा मन वासनाओं के आक्रमण से आक्रान्त न हो। (६) **नः**=हम सब को **अदितिः**=वे अविनाशी प्रभु **इष्टस्य मध्ये**=यज्ञों के बीच में **निधातु**=स्थापित करें। प्रभु कृपा से हम सदा यज्ञ-यागों में प्रवृत्त रहें। (७) 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' ऋषियों से सनातन वेदज्ञान का दोहन करनेवाला **नः**=हमारा **ज्येष्ठः**=सबसे बड़ा **प्रथमः**=प्रथम स्थान में स्थित **भ्राता**=भाई अर्थात् ब्रह्मा ('ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव') **विवोचति**=हमें विशिष्ट रूप से वेदज्ञान देता है।

भावार्थ—आदर्श घर वही है जिसमें कि पति-पत्नी प्रभु का स्तवन करनेवाले व यज्ञशील हैं। प्रभु कृपा से उनका मन यज्ञप्रवण बना रहता है। और वे आचार्यों से वेदज्ञान प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'भद्रा-क्षुमती-यशस्वती-स्वर्वती' उषा

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्॥ ३॥

(१) **सा उ चित् नु उषा**=और अब वह उषा निश्चय से **मनवे**=समझदार पुरुष के लिये **उवास**=उदित होती है अथवा अन्धकार को दूर करती है। कैसी यह उषा? (क) **भद्रा**=(भदि कल्याणे सुखे च) कल्याण व सुख को देनेवाली, (ख) **क्षुमती**=(क्षु शब्दे) प्रार्थना व स्तुति के शब्दों वाली। अर्थात् जिसमें एक भक्त कल्याण कर कर्मों को ही करता है और प्रभु की प्रार्थना करता हुआ प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। (ग) **यशस्वती**=यह उषा हमारे लिये कीर्ति वाली हो। अर्थात् हम इसके अन्दर ऐसे ही कार्यों को करें जो कि हमारे यश व कीर्ति का कारण बनें। (घ) **स्वर्वती**=यह उषा प्रकाश वाली होती है। अर्थात् इस समय स्वाध्याय को करते हुए हम अपने ज्ञान के प्रकाश को बढ़ानेवाले हों। (२) ऐसा उषाकाल हमारे लिये तभी उदित होता है **यद्**=जब कि हम **ईम्**=निश्चय से **उशन्तम्**=हमारे हित की कामना वाले, **उशताम्**=उन्नति की कामना वाले पुरुषों के **अनुक्रतुं**=संकल्प व पुरुषार्थ के अनुसार **अग्निम्**=अग्रगति के साधक **होतारम्**=हमें उन्नति के लिये सब पदार्थों के प्राप्त करानेवाले उस प्रभु को **विदथाय**=ज्ञान प्राप्ति के लिये **जीजनन्**=हम अपने हृदयों में आविर्भूत करते हैं। वस्तुतः जब हम अपने हृदयों में उस प्रभु के प्रकाश को देखने का दृढ संकल्प व पुरुषार्थ करते हैं तभी हम प्रभु को देख पाते हैं और उसी ही समय हमारे लिये उषाकाल सचमुच 'भद्र-क्षुमान्-यशस्वान् व स्वर्वान्' होते हैं। इस प्रकार के उषाकालों को बना सकनेवाला पुरुष ही 'मनु'=सुभद्र है।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति की प्रवल कामना व पुरुषार्थ वाले हों। तब हमारे लिये प्रत्येक उषा भद्र ही भद्र होगी।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

आर्या विशः

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत॥ ४॥

(१) गत मन्त्र में प्रभु के आविर्भाव का उल्लेख था। **अध**=इस प्रभु के प्रकाश को होने पर **श्येनः**=(श्यैङ् गतौ) यह गतिशील **विः**=जीव रूप पक्षी **इषितः**=प्रभु से प्रेरणा को दिया हुआ **त्यम्**=उस **द्रप्सम्**=हर्ष के कारणभूत सोम को **अध्वरे आभरत्**=अपने इस हिंसाशून्य जीवनयज्ञ में पोषित करता है जो सोम **विश्वम्**=शरीर में शक्ति को प्राप्त करानेवाला है, महान् (great) बनानेवाला है तथा **विचक्षणं**=विशिष्ट प्रकाश को प्राप्त करानेवाला है, मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि को दीप्त करके प्रकाश को भरनेवाला है। (२) यहाँ सोमरक्षण के उपायों का संकेत इस रूप में हुआ है कि मनुष्य श्येनः=गतिशील बने तथा विः=ऊँची उड़ान लेनेवाला हो, अपने सामने कोई ऊँचा लक्ष्य रखे। ऐसा होने पर ही वह वासनाओं से बचकर सोम का रक्षण कर पायेगा। सोमरक्षण के लाभ 'विश्वं व विचक्षणं' शब्दों से स्पष्ट है कि यह शरीर में हमें शक्ति देती है और मस्तिष्क में प्रकाश। (३) इस प्रकार सोम के शरीर में भरण के बाद **यद्**=जब **ई**=निश्चय से **आर्याविशः**=श्रेष्ठ प्रजाएँ **द्रप्सम्**=सब दुःखों व पापों के नष्ट करनेवाले अथवा दर्शनीय, **अग्निम्**=अग्रणी-उन्नतिपथ

पर ले चलनेवाले, **होतारम्**=सब आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करानेवाले प्रभु को **वृणते**=वरती हैं। **अध**=तो इसके बाद **धीः**=ज्ञानपूर्वक कर्म **अजायत**=उत्पन्न होता है। आर्य पुरुष ज्ञानपूर्वक कर्मों को ही करते हैं। उनके कर्मों में पवित्रता के होने का यह भी कारण है कि वे प्रभु का ही वरण करते हैं। प्रकृति में फँसने पर ही मनुष्य का मन संसार की माया से आवृत होकर सत्य के स्वरूप को नहीं देख पाता। परमात्मा की शरण में जानेवाले व्यक्ति माया को तैर जाते हैं और उनके कर्मों में सत्यता का प्रकाश होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हम शक्ति व प्रकाश को प्राप्त करें। आर्य लोग प्रभु का ही वरण करते हैं, सो उनके कार्य पवित्र होते हैं।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ससवान्

सदा॑सि र॒ण्वो यव॑सेव॒ पुष्य॑ते होत्रा॑भिरग्ने॒ मनु॑षः स्व॒ध्व॒रः।
विप्र॑स्य वा॒ यच्छ॑शमा॒न उ॒क्थ्यं१॒ वाजं॑ सस॒वाँ उ॑प॒यासि॒ भूरि॑भिः॥ ५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप सदा **रण्वः असि**=सदा रमणीय हो। आप उसी प्रकार सुन्दर हो **इव**=जैसे कि **पुष्यते**=पुष्ट होनेवाले के लिये **यवसा**=यवादितृण धान्य सुन्दर होते हैं। जो किसी प्रकार की हानि न करके मनुष्य को नीरोग ही नीरोग बनानेवाले हैं। इसी प्रकार प्रभु का सान्निध्य मनुष्य की अध्यात्म उन्नति के लिये अत्यन्त हितकर है। जौ शरीर के लिये, प्रभु का स्मरण मन के लिये समान रूप से हितकर हैं। (२) **होत्राभिः**=दानपूर्वक अदन की क्रियाओं से **मनुषः**=विचारशील पुरुष अथवा विचारपूर्वक क्रियाओं को करनेवाला व्यक्ति **स्वध्वरः**=उत्तम हिंसाशून्य कर्मों वाला होता है। (३) **यत्**=जब **शशमानः**=प्रभु का स्तवन करता हुआ अथवा प्रगतिवाला खूब क्रियाशील व्यक्ति **विप्रस्य**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले व्यक्ति के **उक्थ्यं**=प्रशंसनीय **वाजम्**=बल को प्राप्त होता है। अर्थात् प्रभुस्तवन से और क्रियाशीलता से वह प्रशंसनीय बल प्राप्त होता है जो कि हमारी सब न्यूनताओं को दूर करने में सहायक होकर हमें 'विप्र' बनाता है। (४) इस 'विप्र' के लिये कहते हैं कि तू **ससवान्**=(सस्यवान्) वानस्पतिक भोजनों का सेवन करनेवाला बनकर **भूरिभिः**=धारण व पोषण की क्रियाओं से (भृ=धारण पोषणयोः) अर्थात् लोक संग्रहात्मक कार्यों से **उपयासि**=प्रभु के समीप प्राप्त होता है। प्रभु को प्राप्त करने के लिये दो बातें आवश्यक हैं—(क) वानस्पतिक भोजन को अपनामा तथा (ख) अधिक से अधिक प्राणियों के हित में प्रवृत्त होना।

भावार्थ—मनुष्य दानपूर्वक अदन करता हुआ जीवन को यज्ञमय बनाता है। प्रभुस्तवन व क्रियाशीलता को अपनाकर प्रशस्त बल को प्राप्त करता है। शाकाहारी व लोकहितकारी बनकर प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

जारः—असुरः

उदी॑रय पि॒तरा॑ जा॒र आ भग॒मिय॑क्षति हर्य॒तो हृ॒त्त इ॑ष्यति।
विव॑क्ति॒ वह्निः॑ स्वप॒स्यते॑ म॒खस्त॑वि॒ष्यते॒ असु॑रो॒ वेप॑ते म॒ती॥ ६॥

(१) **पितराः**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **उदीरय**=उत्कृष्ट गति प्राप्त करा। अर्थात् मस्तिष्क व शरीर दोनों को उन्नत कर। द्युलोक मस्तिष्क है और पृथिवीलोक शरीर। ये दोनों

माता व पिता के रूप में वर्णित होते हैं 'पृथिवी माता'। 'माता च पिता च' इस प्रकार विग्रह होने पर, एकशेष होकर, 'पितरौ' यही प्रयोग होता है। (२) **जारः**=(जरतेः स्तुतिकर्मणः) प्रभु का स्तोता **भगं**=भग को **आ इयक्षति**=सब प्रकार से अपने साथ संगत करता है। जीवन के प्रारम्भिक काल में 'ऐश्वर्यसाधक विज्ञान व धर्म' को वह अपने में दृढ़ करता है, इसके जीवन का मध्य 'यश व श्री' के साथ संगत होता है और जीवन का चरम भाग 'ज्ञान व वैरागमय' होता है। इस प्रकार उस भगवान् के सम्पर्क में आकर यह भी 'भग' वाला बनता है। (३) **हर्यतः**=(हर्य गतिकान्त्योः) उस प्रभु की ओर जानेवाला और उस प्रभु की ही कामना वाला यह **हृत्तः**=हृदय से, हृदयस्थ उस प्रभु से **इष्यति**=प्रेरणा को प्राप्त करता है। (४) **वह्निः**=उस प्रेरणा को धारण करनेवाला यह व्यक्ति उस प्रेरणा को अपने जीवन से कहता है। अर्थात् उस प्रेरणा के अनुसार कार्य करता है। प्रेरणा को कार्य में अनूदित करता है। (५) इस **स्वपस्यते**=उत्तम (सु) कर्मों (अपस्) को अपनाने के लिये इच्छा करते हुए (यं) और इस प्रकार **तविष्यते**=दिव्यगुणों की वृद्धि की इच्छा वाले पुरुष के लिये (तु=वृद्धौ) यह जीवन **मखः**=यज्ञ बन जाता है। इसका जीवन ही यज्ञमय बन जाता है। (६) **असुरः**=(अस्यति) सब अशुभों को अपने से परे फेंकनेवाला यह **मती**=बुद्धि से **वेपते**=दुरितों को कम्पित करके दूर कर देता है। इसका जीवन पवित्र ही पवित्र हो जाता है।

भावार्थ—हम मस्तिष्क व शरीर की उन्नति करें। प्रभुस्तवन से भग का अपने जीवन में संगमन करें। हृदयस्थ प्रभु की वाणी को सुनें। उसके अनुसार कार्य करें। हमारा जीवन यज्ञमय हो जाए और हम बुद्धिपूर्वक कार्य करते हुए सब दुरितों को दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्युमान्-अमवान्

यस्ते॑ अग्ने सुम॒तिं मर्तो॒ अक्ष॒त्सह॑सः सूनो॒ अति॒ स प्र शृ॑ण्वे।
इषं॒ दधा॑नो॒ वह॑मानो॒ अश्वै॒रा स द्यु॒माँ अम॑वान्भूषति॒ द्यून्॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=(अगि गतौ गतिः ज्ञानम्) सर्वज्ञ व **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यः मर्तः**=जो भी मनुष्य **ते**=आपकी **सुमतिम्**=कल्याणी बुद्धि को **अक्षत्**=(अश्नुते) व्याप्त करता है अर्थात् प्राप्त करता है, **सः**=वह **अति**=सर्वलोकातिग **प्रशृण्वे**=ख्याति को प्राप्त करता है। उसकी कीर्ति त्रिलोकी को भी लाँघ जाती है, यह अत्यन्त यशस्वी जीवनवाला होता है। (२) **इषं दधानः**=प्रभु की प्रेरणा को धारण करता हुआ, **अश्वैः**=इन्द्रियों से उस प्रेरणा को **वहमानः**=क्रियारूप में लाता हुआ, **सः**=वह पुरुष **आ द्युमान्**=सब ओर से प्रकाशमय जीवनवाला अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट ज्ञान की ज्योतिवाला तथा **अमवान्**=बल वाला होता हुआ **द्यून् भूषति**=अपने दिनों को अलंकृत करता है, अर्थात् अपने जीवन के एक-एक दिन को यह सुन्दर बनाता है। (३) मन्त्रार्थ से यह बात स्पष्ट है कि प्रभु की प्रेरणा संक्षेप में यही है कि 'ज्ञानी बनो और कर्म में लगे रहने के द्वारा शक्ति का सम्पादन करो'। ज्ञानपूर्वक कर्म करना ही वेद का सार है। यही ब्रह्म व क्षत्र के विकास का मार्ग है। प्रभु की प्रेरणा को सुनकर यह ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला पुरुष अपने जीवन के एक-एक दिन को सुन्दर बनाता है और ज्योतिर्मय तथा बलशाली होता है।

भावार्थ—प्रभु की प्रेरणा को सुनकर हम ज्योतिर्मय शक्ति-सम्पन्न जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

संहतिः=मेल

यद॑ग्न ए॒षा समि॑तिर्भवा॑ति दे॒वी दे॒वेषु॑ यज॒ता य॑जत्र।
रत्ना॑ च॒ यद्वि॒भजा॑सि स्वधावो भा॒गं नो॒ अत्र॒ वसु॑मन्तं वीतात्॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=हमारी उन्नतियों के साधक प्रभो! **यजत**=(यज=संगतिकरण) मेल के द्वारा हमारा त्राण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब **एषा**=यह **समितिः**=संहतिः=मेल **भवाति**=होता है, अर्थात् जब हम परस्पर मिलकर चलते हैं, जो मिलकर चलना **देवी**=(विजिगीषा) हमारी सब बुराइयों को जीतने की कामना वाला है अर्थात् जिस मेल से सब दुर्गतियाँ दूर होती हैं, जो मेल **देवेषु**=देव पुरुषों में सदा निवास करता है 'येन देवा न वियन्ति, ते च विच्छिद्यन्ते मिथः'। **यजत्रा**=जो मेल हमें एक दूसरे का आदर करना सिखाता है (यज=पूजा) तथा जिस मेल से हम परस्पर मिलकर चलते हुए एक दूसरे का कल्याण कर पाते हैं **च**=और **यद्**=जब (२) हे **स्वधावः**=(स्व+धाव) आत्मतत्त्व का शोधन करनेवाले प्रभो! अथवा (स्वधा+व) अन्नों वाले प्रभो! आप हमें **रत्ना**=उत्तमोत्तम रमणीय वस्तुओं को **विभजासि**=प्राप्त कराते हैं तो **नः**=हमें **अत्र**=इस मानव जीवन में **वसुमन्तम्**=उत्तम निवास के देनेवाले **भागम्**=भजनीय धनों को **वीतात्**=(आगमय) प्राप्त कराइये। (३) वस्तुतः मेल के होने पर सब उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति होती है, हम शत्रुओं को जीत पाते हैं (देवी) रमणीय धनों को, यह परस्पर का मेल ही, हमें प्राप्त कराता है। परिणामतः हमारा निवास उत्तम होता है।

भावार्थ—हम परस्पर मेल वाले हों, जिससे सब प्रकार से हमारा निवास उत्तम हो।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु की प्रेरणा

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥ ९॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **सदने**=इस शरीर रूप गृह में **सधस्थे**=मिल करके बैठने के स्थान हृदय में **नः श्रुधी**=हमारी बात को सुन। अर्थात् हृदय सधस्थ है, वहाँ आत्मा व परमात्मा दोनों ही का निवास है। हृदयस्थ प्रभु जीव को सदा प्रेरणा देते हैं। जीव को चाहिए कि उस प्रेरणा को सुने। प्रेरणा को सुनने में ही उसका कल्याण है। (२) प्रभु विशेष रूप से कहते हैं कि **रथं युक्ष्वा**=तू अपने रथ को जोत। यह तेरा रथ खड़ा ही न रह जाए। अर्थात् तू सदा क्रियाशील हो। (३) **अमृतस्य द्रवित्नुम्**=यह तेरा रथ अमृत का द्रावक हो। अर्थात् तू सदा मधुर शब्दों का ही बोलनेवाला हो, तेरा सारा व्यवहार ही मधुर हो। (४) **नः**=हमारे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आवह**=सब प्रकार से धारण करनेवाला हो। तेरा शरीर स्वस्थ हो और मस्तिष्क दीप्त हो। ये तेरा शरीर व मस्तिष्क 'देवपुत्रे' हों, दिव्यगुणों के द्वारा अपने को पवित्र रखनेवाले व सुरक्षित करनेवाले हों (देवैः पुनाति त्रायते) (५) **इह**=तू अपने इस जीवन में **देवानाम्**=दिव्य गुण-सम्पन्न विद्वानों का **अपभूः**=निरादर करनेवाला व अपने से दूर करनेवाला **माकिः स्याः**=मत हो। अर्थात् तू सदा सत्संग करनेवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु की प्रेरणा को सुनें। प्रभु प्रेरणा दे रहे हैं कि—(क) क्रियाशील बनो, (ख) तुम्हारी वाणी व व्यवहार अमृत तुल्य हो, (ग) शरीर व मस्तिष्क को उत्तम बनाओ, (घ) सदा सत्संग की रुचि वाले बनो।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हम ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करनेवाले बनें—(१) हम साधन व वेदज्ञान को अपनाएँ, (२) हमारा प्रत्येक उषाकाल भद्र हो, (३) हम प्रभु का वरण करनेवाले आर्य बनें, (४) शाकाहारी व लोकहितकारी बनकर प्रभु को पाने के अधिकारी हों, (५) हृदयस्थ प्रभु की वाणी को सुनें, (६) प्रेरणा को सुनकर ज्ञानवान् व बलवान् बनें, (७) ज्ञान के परिणाम स्वरूप हमारा परस्पर मेल हो, (८) हम सदा सत्संग में रुचि वाले हों, (९) ऋत व सत्य को अपनाकर शरीर व मस्तिक को सुन्दर बनायें।

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—हविर्धान आङ्गिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

ऋत व सत्य

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन्॥ १॥

(१) अध्यात्म में **द्यावा क्षामा**='द्युलोक व पृथिवीलोक' का अभिप्राय मस्तिष्क व शरीर ही है 'मूर्ध्नो द्यौः, पृथिवी शरीरम्'। जैसे द्युलोक, सूर्य व नक्षत्रों से चमकता है, उसी प्रकार हमारा मस्तिष्क ब्रह्मविद्या के सूर्य से और विज्ञान के नक्षत्रों से चमकता हुआ हो। जैसे पृथिवी दृढ़ है उसी प्रकार हमारा शरीर भी दृढ़ होना चाहिए। **ह**=निश्चय से **द्यावाक्षामा**=मस्तिष्क व शरीर **प्रथमे**=मनुष्य के सब से प्रथम स्थान में है। मनुष्य का मौलिक कर्तव्य यही है कि वह मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करे। यदि हमारी शक्ति रुपया कमाने में ही अथवा व्यर्थ की कीर्ति को पाने में ही व्ययित हो गई और हमने शरीर व मस्तिष्क की उपेक्षा की तो यह हमारे जीवन की सब से बड़ी गलती होगी। (२) ये शरीर व मस्तिष्क क्रमशः **ऋतेन**=ऋत से, प्रत्येक कार्य को ठीक समय पर करने से तथा **सत्यवाचा**=सत्यवाणी से अर्थात् असत्य को सदा अपने से दूर रखने से **अभिश्रावे भवतः**=सदा अन्दर बाहर प्रशंसनीय होते हैं। शरीर व मस्तिष्क के ठीक होने पर हम घर में भी और बाहर भी कीर्ति को पाते हैं। शरीर का ठीक कहना 'ऋत' पर निर्भर करता है। 'प्रत्येक भौतिक क्रिया ठीक समय पर हो', यही 'ऋत' है। विशेषतः खाना-पीना व सोना-जागना तो अवश्य समय पर होना चाहिए। मस्तिष्क की पवित्रता के लिये 'सत्यं पुनातु पुनः शिरसि' इस ब्राह्मण वाक्य के अनुसार सत्य वाणी परम सहायिका है। (३) इस प्रकार शरीर के दृढ़ तथा मस्तिष्क के उज्ज्वल होने पर हम प्रभु के प्रिय होते हैं एक स्वस्थ व योग्य सन्तान ही पिता को प्रिय होता है और वे **देवः**=सब दिव्यगुणों के पुञ्ज प्रकाशमय प्रभु **यद्**=जब **मर्तान्**=हम मनुष्यों को **यजथाय**=अपने साथ सम्पर्क के लिये **कृण्वन्**=करते हैं तो वे **प्रत्यङ्**=हमारे अन्दर ही हृदयान्तरिक्ष में (inner, interior) **सीदत्**=विराजमान होते हुए **होता**=हमें सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले होते हुए **स्वम्**=अपनी **असुम्**=प्राणशक्ति को अथवा सब असुरों को दूर फेंकनेवाली शक्ति को **यन्**=प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम ऋत व सत्य के द्वारा शरीर को दृढ़ व मस्तिष्क को उज्ज्वल बनायें। प्रभु के प्रिय बनकर, प्रभु सम्पर्क में आकर अन्तःस्थित प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न हों। यही हमारा मूल-कर्तव्य है।

ऋषिः—हविर्धान आङ्गिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथमः चिकित्वान्

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान्॥ २॥

(१) प्रभु ऋत व सत्य का पालन करनेवाले जीव से कहते हैं कि **देवः**=शरीर से अजीर्ण व मस्तिष्क से दीप्त बननेवाला तू **ऋतेन**=इस ऋत के पालन से, व्यवस्थित जीवन से **देवान् परिभूः**=सब दिव्यगुणों को शरीर में चतुर्दिक् भावित करनेवाला हो। तेरे शरीर में यथास्थान उस-उस देवता की स्थिति हो। (२) तू **प्रथमः**=शरीर व मस्तिष्क को उत्तम बनाने वालों में सर्वाग्रणी

व **चिकित्वान्**=समझदार होता हुआ **नः**=हमारे **हव्यम्**=हव्य को **वहा**=वहन करनेवाला हो। अर्थात् तेरा जीवन यज्ञमय हो। तू सदा यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाला बन, देकर बचे हुए को खानेवाला हो (हु दानादनयोः) (३) **धूमकेतुः**=(धू=कम्पने, केत=ज्ञान) तू ज्ञान के द्वारा वासनाओं को कम्पित करके अपने से दूर करनेवाला हो। (४) **समिधा**=ज्ञान की दीप्ति से **भाऋजीकः**=दीप्ति का अर्जन करनेवाला बन। अथवा 'ऋजुदीप्तिः'=सरल ज्ञान की दीप्ति वाला हो। (५) **मन्द्रः**=तेरा जीवन सदा प्रसन्नता-पूर्ण हो। **नित्यः होता**=तू सदा देनेवाला बन। वस्तुतः हम जितना देते हैं, उतना ही हमारा जीवन आनन्दमय होता है। (६) **वाचा यजीयान्**=ज्ञान की वाणी से तू सदा उस प्रभु का पूजन करनेवाला हो अथवा ज्ञान की वाणियों से अपना संग करनेवाला हो। अर्थात् सदा स्वाध्यायशील हो।

भावार्थ—प्रभु का आदेश है कि हे जीव! दिव्यगुणों को धारण कर, यज्ञशील हो, ज्ञान के द्वारा वासनाओं को कम्पित करनेवाला हो, ऋजुदीप्ति-सदा प्रसन्न-नित्य होता तथा ज्ञान की वाणियों से संगत करनेवाला हो।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

गोदुग्ध व वनस्पति

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः॥ ३॥

(१) मनुष्य **देवस्य**=उस दिव्यगुणों के पुञ्ज प्रभु का **स्वावृक्**=उत्तमता से आवर्जन करनेवाला होता है। एक मनुष्य का झुकाव प्रभु की ओर होता है **यद्**=जब **ई**=निश्चय से **गोः अमृतम्**=गौ का अमृत तुल्य दुग्ध तथा **अतः गोः जातासः**=इस पृथ्वी से (गौ=भूमि) उत्पन्न वानस्पतिक भोजन **उर्वी**=इन द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **धारयन्त**=धारण करते हैं। अर्थात् जब एक मनुष्य गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजनों का सेवन करता है तो उसका शरीर व मस्तिष्क दोनों बड़े उत्तम बनते हैं। और इस मनुष्य का झुकाव प्राकृतिक भोगों की ओर न होकर प्रभु की ओर होता है। (२) जब मनुष्य का झुकाव प्रभु की ओर होता है तो **तत्**=तब **विश्वेदेवाः**=सब दिव्यगुण **ते यजुः**=तेरे सम्पर्क को (यज=संगतिकरण) **अनुगुः**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। (३) प्रभु की ओर झुकाव होने पर दिव्यगुण प्राप्त होते ही हैं, **यत्**=क्योंकि **एनी**=श्वेत-शुद्ध-शुक्त वेदवाणी **दिव्यम्**=दिव्य व अलौकिक **घृतम्**=ज्ञान-दीप्ति को तथा **वा**=(वार्) रोगों के निवारण को **दुहे**=पूरित करती है (वारणं वाः)। वेदवाणी ज्ञान को तो प्राप्त कराती ही है, यह वाणी मनुष्य की वृत्ति को सुन्दर बनाकर, उसे वासनाओं से ऊपर उठाकर, नीरोग भी बनाती है। यह वरदा वेदमाता 'आयुः=प्राणं' आयुष्य व प्राण को देनेवाली तो है ही।

भावार्थ—जब गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजन हमारे शरीर व मस्तिष्क को धारण करते हैं तो हमारा झुकाव प्रभु की ओर होता है, हमें दिव्यगुण प्राप्त होते हैं और ज्ञान की वाणी हमारे में ज्ञान-दीप्ति व नीरोगता को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्यावापृथिवी का माधुर्य

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे।

अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम्॥ ४॥

(१) **अपः**=कर्मों के **वर्धाय**=(वर्धनम् वर्धः) वर्धन के लिये **वाम्**=आप दोनों द्युलोक व पृथिवीलोक को **अर्चामि**=मैं पूजित करता हूँ। ये मेरे शरीर व मस्तिष्क **घृतस्नू**=घृत का स्रावण करनेवाले हों। (घृत=दीप्ति) मस्तिष्क में ज्ञान की दीप्ति हो। (घृत=मलक्षरण) शरीर मलों के क्षरण वाला हो, मलों के क्षरण से यह शरीर नीरोग हो। (२) **द्यावाभूमी**=ये ज्ञानदीप्त मस्तिष्क तथा क्षरित मलों वाला शरीर **रोदसी**=(क्रन्दसी) प्रभु का आह्वान करनेवाले होते हुए **मे शृणुतम्**=सदा मेरी बात सुननेवाले हों, अर्थात् मेरी अधीनता में हों, मेरे आज्ञावर्ती हों। अथवा ये प्रभु प्रेरणा को सुननेवाले हों। (३) **यद्**=जब **द्यावः**=ज्ञानी स्तोता (दिव्=द्युतिस्तुति) ज्ञानी भक्त, **अहा**=प्रतिदिन **असुनीतिम् अयन्**=प्राणों के मार्ग पर चलते हैं, अर्थात् उस जीवनमार्ग को अपनाते हैं जो प्राणशक्ति का वर्धन करनेवाला है तो **अत्र**=इस जीवन में **नः**=हमें **पितरा**=द्यावापृथिवी (द्यौष्पिता पृथिवी माता) मस्तिष्क व शरीर **मध्वा**=माधुर्य से **शिशीताम्**=संस्कृत कर दें। अर्थात् हमारी एक-एक क्रिया जहाँ माधुर्य के लिये हुए हो वहाँ हमारा ज्ञान भी माधुर्यपूर्ण हो तथा मधुरता से ही दूसरों तक पहुँचाया जाये। वस्तुतः द्यावाभूमी का माधुर्य से पूर्ण होना ही जीवन के विकास की पराकाष्ठा है। इनको ऐसा बनाना ही इसका अर्चन है।

भावार्थ—हमारे मस्तिष्क व शरीर ज्ञान-दीप्ति व क्षरित मलों वाले हों। हम प्राणरक्षण के मार्ग से चलें तथा अपने को मधुर बनायें।

ऋषिः—**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यशो-बलम् (श्लोकः+वाजः)

किं स्वि॑न्नो॒ राजा॑ जगृहे॒ कद॒स्याति॑ व्र॒तं च॑कृमा॒ को वि वे॑द।
मि॒त्रश्चि॒द्धि ष्मा॑ जुहुरा॒णो दे॒वाञ्छ्लोको॒ न या॒ताम॑पि॒ वाजो॒ अस्ति॑॥ ५॥

(१) वह **राजा**=देदीप्यमान (राज दीप्तौ) ब्रह्माण्ड का शासक प्रभु **किं स्वित्**=क्या **नः जगृहे**=हमारा ग्रहण करेगा? जैसे पिता पुत्र को गोद में लेता है उसी प्रकार क्या वे प्रभु हमें गोद में लेंगे? (२) **कत्**=कब (कदा) **अस्य**=इस प्रभु के **अतिव्रतम्**=तीव्र व्रतों को **चकृमा**=हम कर पाएँगे? अर्थात् उस पिता प्रभु की प्राप्ति के लिये साधनभूत महान् यम-नियम आदि व्रतों का हम कब पूर्णतया पालन कर सकेंगे? इन बातों को तो **कः**=वह अनिर्वचनीय (शब्दातीत) प्रजापति प्रभु ही **विवेद**=जानते हैं। 'हमारे कर्म प्रभु प्राप्ति के योग्य कब होंगे'? यह बात तो प्रभु के ही ज्ञान का विषय हो सकती है। ज्यों ही हमारे कर्म उस योग्यता के होंगे त्यों ही प्रभु हमें अपनी गोद में अवश्य ग्रहण करेंगे। (३) वे प्रभु **चित् हि ष्मा**=निश्चय से **मित्रः**=(प्रमीतेः जायते) मृत्यु व रोगों से बचानेवाले हैं, और **देवान्**=देववृत्ति वाले लोगों को **जुहुराणः**=स्नेह पूर्वक अपने समीप पुकारनेवाले हैं (स्निग्धमाह्वयमानः सा०)। जब हम देव बनते हैं, तो हमें उस पिता का स्नेह प्राप्त होता ही है। (४) परन्तु जब तक हम उस योग्यता को नहीं भी प्राप्त कर पाते तब तक **न**=(संप्रति) वर्तमान काल में **याताम्**=गतिशील हम लोगों का **श्लोकः**=यश और **वाजः अपि**=बल भी **अस्ति**=होता ही है। अर्थात् जब तक हम पूर्णरूप से देव नहीं बन जाते तब तक प्रभु कृपा से हमें गतिशीलता के द्वारा यशस्वी बल तो प्राप्त हुआ-हुआ ही रहे। इस यशस्वी बल को प्राप्त करके हम देव बनने के लिये अग्रेसर होंगे।

भावार्थ—हम देव बनकर प्रभु स्नेह के पात्र हों। गतिशील बनकर यशस्वी बल वाले हों।

ऋषिः—हविर्धान आङ्गिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

नाम-स्मरण की दुष्करता

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार हम यशस्वी बल वाले होकर अविच्छिन्न प्रयत्न से देव बनेंगे और प्रभु के प्रिय होंगे। परन्तु हमारा यह प्रयत्न, प्रभु को भूल ही गये तो अवश्य विच्छिन्न हो जाएगा। सो हमें चाहिए कि प्रभु का स्मरण अवश्य रखें। यह बात ठीक है कि **अत्र**=यहाँ इस संसार में **अमृतस्य नाम**=उस अविनाशी प्रभु का नाम **दुर्मन्तु**=स्मरण करना कठिन है। (२) कठिन इसलिए है **यत्**=क्योंकि **सलक्ष्मा**=यह उत्तम लक्षणों वाली (लक्ष्मभिः सहिता) प्रकृति **विषुरूपा भवाति**=विविध सुन्दर रूपों वाली होती है। यह हिरण्मयी प्रकृति हमारे ध्यान को आकृष्ट करती है और हमें प्रभु से दूर ले जाती है। इसकी चमक हमें प्रभु नाम को विस्मृत करा देती है। वर्तमान में इस देह को धारण करके हम भी देही व साकार बने हुए हैं, प्रकृति है ही साकार। सो यह प्रकृति वर्तमान में हमारी 'सलक्ष्मा' है। हमारा झुकाव इस प्रकृति की ओर ही होता है और परिणामतः हमारे लिये प्रभु नाम-स्मरण बड़ा दुष्कर हो जाता है। (३) यदि आश्चर्यवत् **यः**=जो कोई मनुष्य **यमस्य**=उस नियन्ता प्रभु के **सुमन्तु**=उत्तम मनन योग्य नाम का **मनवते**=(अवबुध्यते) मनन करता है। **अग्ने**=हे अग्रेणी **ऋष्व**=दर्शनीय व जानने योग्य प्रभो! **तम्**=उस नाम-स्मरण करनेवाले को **अप्रयुच्छन्**=प्रमाद रहित होते हुए आप **पाहि**=रक्षित करते हो। यह स्तोता आप की रक्षा का पात्र होता है। (४) वस्तुतः यह कितने सौभाग्य का दिन होगा जब कि हम प्रभु नाम-स्मरण में लीन होंगे और प्रभु हमारी रक्षा कर रहे होंगे। यह प्रभु का स्तोता गतमन्त्र के 'याताम्' शब्द के अनुसार खूब क्रियाशील होता है। उस-उस क्रिया को करता हुआ प्रभु को भूलता नहीं, अपने को प्रभु का निमित्त जानता हुआ उन कर्मों का गर्व भी नहीं करता। यही व्यक्ति है जो कि प्रभु की रक्षा का पात्र होता है।

भावार्थ—प्रकृति की चमक के कारण यहाँ प्रभु नाम-स्मरण कठिन अवश्य है, परन्तु जब हम उस नाम का स्मरण कर पाते हैं तो प्रभु के द्वारा रक्षणीय होते हैं।

ऋषिः—हविर्धान आङ्गिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

क्रियाशीलता व ज्ञान की उपासना

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार प्रभु के रक्षण में चलनेवाले **देवाः**=देववृत्ति के लोग **यस्मिन्**=जिस समय प्रभु की गोद में रहते हुए, **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **मादयन्ते**=हर्ष का अनुभव करते हैं, अर्थात् सदा ज्ञान-प्रधान जीवन बिताते हैं। (२) **विवस्वतः**=सूर्य के **सदने**=निवास-स्थान द्युलोक में **धारयन्ते**=अपना धारण करते हैं। 'द्युलोक' शरीर में मस्तिष्क है, सो जो लोग अपने को मस्तिष्क में धारित करते हैं, अर्थात् हृदय-प्रधान व भावुक वृत्ति के नहीं होते, समझदार=(sensible) तो होते हैं परन्तु बहुत महसूस कर जानेवाले=(sensitive) नहीं हो जाते। (३) **सूर्ये**='सूर्यः चक्षुर्भूत्वा०' अपनी आँखों में **ज्योतिः अदधुः**=प्रकाश को धारण करते हैं अर्थात् इनकी आँखों में सदा वह चमक होती है जो कि इनके मानस प्रसाद व उत्साह का संकेत करती है। (४) **मासि**=(चन्द्रमा

मनो भूत्वा०, मास्=(the moon) अपने मनों में **अक्तून्**=प्रकाश की किरणों को धारण करते हैं, अर्थात् हृदयस्थ प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। (५) तो इस लोक-समाज में **अजस्रा**=(अ+जस्=छोड़ना) कर्मों को सदा करनेवाले पति-पत्नी **द्योतनिम्**=ज्ञान की ज्योति का **परिचरतः**=सदा उपासन करते हैं। अर्थात् आदर्श लोकों के घरों में 'क्रियाशीलता व ज्ञान की उपासना' निरन्तर चलती है।

भावार्थ—हम ज्ञानयज्ञों में आनन्द लें, सदा समझदारी से चलें, हमारी आँखों में ज्योति हो, मन में आह्लाद। क्रियाशील हों व ज्ञान के उपासक।

ऋषिः-**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता-**अग्निः**॥ छन्दः-**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

निष्पापता व प्रभु-दर्शन

यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत्॥ ८॥

(१) **यस्मिन्**=जिस परमात्मा की उपासना के होने पर **देवाः**=देववृत्ति के लोग **मन्मनि**=ज्ञानस्वरूप में **संचरन्ति**=विचरण करते हैं; जो ज्ञानस्वरूप प्रभु **अपीच्ये**=अन्तर्हित हैं, हृदय रूप गुहा में स्थित होते हुए भी हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनते। **अस्य**=इस परमात्मा के स्वरूप को **वयम्**=हम **न विद्म**=नहीं जानते हैं। (२) परमात्मा हमारे हृदयों में ही हैं। ऐसा होते हुए भी वे हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनते। हम प्रातः-सायं वर्षों प्रभु का उपासन करते हैं और उसको पूरा-पूरा जानते नहीं इसी से प्रभु को यहाँ 'अपीच्य' शब्द से स्मरण किया है। ये प्रभु **नः मित्रः**=हमारे मित्र हैं। **अदितिः**=(अविद्यमाना दितिर्यस्मात्) अपने उपासक के स्वास्थ्य को न नष्ट होने देनेवाले हैं। 'मित्रः' रूप में उपासक को पापों से बचाते हैं, 'अदिति' रूप में रोगों से नष्ट नहीं होने देते। एवं प्रभु हमें आधि-व्याधियों से सुरक्षित करनेवाले हैं। (३) ये **सविता**=सब उत्तम प्रेरणाओं को देनेवाले **देवः**=ज्ञान प्रकाश के पुञ्ज प्रभु **अनागान्**=निरपराध जीवन वाले हम लोगों को **वरुणाय**=द्वेष-निवारण के लिये **वोचत्**=उपदेश दें। हमारा जीवन द्वेष शून्य होगा तभी हम प्रभु का साक्षात्कार कर पायेंगे।

भावार्थ—प्रभु हमारे मित्र हैं। निर्द्वेषता से ही हम प्रभु का साक्षात्कार कर पायेंगे।

ऋषिः-**हविर्धान आङ्गिः**॥ देवता-**अग्निः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

मधु-सन्दृशता

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥ ९॥

(१) ११.९ पर इस मन्त्र की व्याख्या हो चुकी है। इसका सामान्य अर्थ इस प्रकार है—'प्रभु हमें प्रेरणा दें' इस बात को सुनकर प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू इस **सदने**=शरीररूप गृह में **सधस्थे**=मिलकर बैठने के स्थान हृदय में **नः श्रुधी**=हमारी बात को सुन। (२) **रथं युक्ष्व**=तू इस शरीर रूप रथ को जोत। तेरा यह रथ गतिशून्य न हो। (३) इस अपने रथ को **अमृतस्य द्रवित्नुम्**=अमृत का द्रावक बना। अर्थात् तेरे सब कार्य माधुर्य को लिये हुए हों। (४) **देवपुत्रे**=दिव्यगुणों व ज्ञान के प्रकाश से अपने को पवित्र व सुरक्षित करनेवाले **नः रोदसी**=हमारे मस्तिष्क व शरीर को **आवह**=धारण कर। (५) **इह**=इस जीवन में तू **देवानाम्**=पवित्र जीवन वाले विद्वानों का **अपभूः**=निरादर करनेवाला **माकिः**=मत **स्याः**=हो।

सदा सत्संग को करनेवाला बन।

भावार्थ—हम क्रियाशील बनें। हमारा व्यवहार मधुर हो। सदा हमें देवों का संग प्राप्त हो।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हम ऋत व सत्य के पालन शरीर व मस्तिष्क को सुन्दर बनाएँ, (१) हम सर्वाग्रणी व समझदार बनने का प्रयत्न करें, (२) गोदुग्ध व वनस्पति का ही सेवन हों, (३) हम मधुर बनें, (४) यशस्वी बल वाले हों, (५) प्रभु नाम-स्मरण दुष्कर है, परन्तु उसे करना तो है ही, (६) हम क्रियाशील हों व ज्ञान के उपासक हों, (७) निष्पापता से प्रभु-दर्शन करनेवाले हों, (८) सदा सत्संग में चलें, (९) नमन के द्वारा प्रभु से ज्ञान को प्राप्त करें।

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—**विवस्वानादित्यः**॥ देवता—**हविर्धाने**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञान का सम्पर्क

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥ १॥

(१) **वाम्**=आप दोनों के साथ **पूर्व्यम्**=सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले **ब्रह्म**=ज्ञान को **नमोभिः**=नमन के द्वारा **युजे**=संगत करता हूँ। घर के अन्दर मुख्य पात्र 'पति-पत्नी' ही हैं। जब ये प्रातः-सायं उस प्रभु का आराधन करते हैं तो इन्हें वह 'पूर्व्य ब्रह्म' प्राप्त होता है। अथर्व० में कहा है कि 'येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः'=इनके घरों में उस ज्ञान का प्रकाश होता है जिससे देव विरुद्ध दिशाओं में नहीं जाते, जिस ज्ञान से वे परस्पर द्वेष नहीं करते और जो ज्ञान पुरुषों में ऐकमत्य को पैदा करनेवाला है। (२) आप लोगों को **सूरेः**=उस हृदयस्थ प्रेरक (षू प्रेरणे) प्रभु का **श्लोकः**=यशोगान व स्तवन **विएतु**=विशेषरूप से उसी प्रकार प्राप्त हो **इव**=जैसे **पथ्या**=हमें पथ्य भोजन प्राप्त होते हैं। ये पथ्य भोजन जैसे शरीर को स्वस्थ करनेवाले होते हैं उसी प्रकार प्रभु का यशोगान मानस स्वास्थ्य को देनेवाला होता है। प्रभु-स्तवन से हृदयों में वासनाओं का प्रादुर्भाव नहीं होता। (३) उस 'सूरि'=प्रेरक प्रभु की वाणी को **विश्वे**=सब **शृण्वन्तु**=सुनें। सुननेवाले ही तो उस **अमृतस्य**=अमृत प्रभु के **पुत्राः**=पुत्र होते हैं। ये उस अमृत प्रभु की प्रेरणा को सुनते हुए 'आत्मानं पुनन्ति जायन्ते च' अपने को पवित्र करते हैं और अपना रक्षण करते हैं। ये वे होते हैं **ये**=जो कि **दिव्यानि धामानि**=उस प्रभु दिव्य प्रभु के तेजों को **आतस्थुः**=अपने में स्थित करते हैं, उन तेजों के अधिष्ठाता बनते हैं। इनका अन्नमय कोश 'तेजस्विता' वाला, प्राणमयकोश 'वीर्य' वाला, मनोमयकोश 'ओज व बल' वाला, विज्ञानमयकोश 'मन्यु' वाला तथा आनन्दमयकोश 'सहस्' वाला होता है और इस प्रकार ये सब ओर दिव्य धामों से देदीप्यमान दिखते हैं। प्रभु के इन तेजों से देदीप्यमान ये पुरुष 'विवस्वान्'=प्रकाश की किरणों वाले 'आदित्यः' सूर्य ही हो जाते हैं। 'विवस्वान् आदित्य' ही इन मन्त्रों के ऋषि हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-नमन के द्वारा वेदज्ञान को प्राप्त करें, प्रभु का यशोगान ही हमारा पथ्य हो, हम प्रभु की वाणी को सुनें, और प्रभु के सच्चे पुत्र बनकर दिव्य तेजों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विवस्वानादित्यः**॥ देवता—**हविर्धाने**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

विदाने-स्वासस्थे

यमेइव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः॥ २॥

(१) गत मन्त्र के पति पत्नी से ही कहते हैं कि **यमे इव**=एक जोड़ी की तरह सदा साथ रहनेवाले **यतमाने**=गृह को स्वर्ग बनाने के लिये प्रयत्न करते हुए **यदा एतम्**=जब आप गतिशील होते हो। अर्थात् जब पति-पत्नी में कुछ भी विरोध नहीं होता। पूर्ण अविरोध वाले से जब ये गृह की उन्नति के लिये प्रयत्न में लगते हैं। (२) **वाम्**=आप दोनों को **मानुषा**=मनुष्यों का हित करनेवाले अथवा विचारपूर्वक कर्म करनेवाले **देवयन्तः**=उस देव को अथवा दिव्यगुणों को अपनाने की कामना वाले **प्रभरन्**=जब सदा उत्तम भावनाओं से भरते हैं, (३) तो आप **उ**=निश्चय से **स्वं लोकम्**=अपने लोक में **आसीदतम्**=आसीन होवो। अर्थात् घर को ही आप अपना स्थान समझो। सच्ची बात तो यह है कि प्रतिक्षण मन्दिर में ही रहनेवाले भी न बन जाओ। घर पर रहते हुए घर को अच्छा बनाने का प्रयत्न करो। समाज के ध्यान में कहीं बच्चों की तरफ से बेध्यानी न हो जाए। (४) **विदाने**=नैतिक स्वाध्याय व सत्संग से ज्ञानी बनते हुए **स्वासस्थे**=स्वस्थ शरीर रूप शोभन निवास स्थान वाले आप दोनों **नः**=हमारे **इन्दवे**=ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये **भवतम्**=समर्थ होवो। अर्थात् आपका शरीर स्वस्थ हो, मस्तिष्क ज्ञानपूर्ण हो, आप दोनों प्रभु के तेज के अंश से देदीप्यमान बनो।

भावार्थ—घर में पति-पत्नी एक होकर चलें, उन्हें देव पुरुषों से प्रेरणा प्राप्त होती रहे। घर में रहते हुए वे ज्ञानी व स्वस्थ बनें। प्रभु के तेजस्व को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विवस्वानादित्यः** ॥ देवता—**हविर्धाने** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पञ्च पदारोहण व चतुष्पद्यनुगमन

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥ ३ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु के ऐश्वर्य में अपने को **रुपः**=आरोपित करनेवाला मैं **पञ्च पदानि**=पाँचों गन्तव्य यज्ञों का **अन्वरोहम्**=आरोहण करता हूँ। अर्थात् गृहस्थ के लिये करने योग्य पाँचों यज्ञों को मैं नित्य प्रति करनेवाला बनता हूँ। मैं इस बात को नहीं भूलता कि 'अपंचयज्ञो मलिम्लुचः'=पाँचों यज्ञों को न करनेवाला गृहस्थ चोर ही है। (२) मैं **चतुष्पदीम्**='ऋग्, यजु, साम, अथर्व' रूप चार कदमों वाली इस वेदवाणी को **व्रतेन**=ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा **अन्वेमि**=क्रमशः प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ। बिना व्रत के तो ज्ञान प्राप्ति का सम्भव ही नहीं है। मैं व्रत को अपनाता हूँ, और व्रत के द्वारा इस चतुष्पदी वेदवाणी का ग्रहण करता हूँ। (३) **एताम्**=इस वेदवाणी को **अक्षरेण**=उस अविनाशी प्रभु के द्वारा **प्रतिमिमे**=अपने अन्दर पूर्णरूप से निर्माण करता हूँ। वस्तुतः वेदार्थ की पूर्ण ज्ञान तो प्रभु ध्यान से ही होता है। प्रभु का ध्यान हमें मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषि बनाता है। (४) **ऋतस्य नाभौ**=ऋत के, यज्ञ के अथवा नियमितता-(regularity) के बन्धन में (णह बन्धने) **अधिसंपुनामि**=मैं अपने को खूब ही पवित्र करता हूँ। यज्ञशीलता से तथा सब क्रियाओं को ठीक समय व ठीक स्थान पर करने से मैं अपने जीवन को पवित्र करता हूँ।

भावार्थ—हम पाँचों यज्ञों को करें। स्वाध्याय का व्रत लेकर वेदज्ञान को प्राप्त करें। प्रभु-ध्यान से इस वेदवाणी का साक्षात्कार करें। यज्ञों व नियम परायणता से जीवन को पवित्र करें।

ऋषिः—**विवस्वानादित्यः** ॥ देवता—**हविर्धाने** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्थान व पतन

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार ऋत के बन्धन में अपने को बाँधनेवाले पुरुष अपने जीवन को पवित्र करते हैं। ये पवित्र जीवन वाले व्यक्ति ही देव कहाते हैं। देव बन जाने के बाद हमें कहीं उस देवत्व का गर्व न हो जाए। हम देव बनकर कहीं पतित न हो जाएँ। यह पतन प्रभु की ओर से नहीं होता, हमारी ही स्वाभाविक अल्पता इस पतन का कारण हुआ करती है। मन्त्र में कहते हैं कि **देवेभ्यः**=इन देव लोकों के लिये **कं मृत्युम्**=किस मृत्यु का **अवृणीत**=प्रभु वरण करते हैं? वस्तुतः मनुष्य की स्वाभाविक न्यूनता ही उसे देव बन जाने के बाद भी मृत्यु की ओर ले जा सकती है। सो देवत्व प्राप्त करने के समय अधिक सावधानी की आवश्यकता है। (२) इसी प्रकार **प्रजायै**=सामान्य लोगों के लिये **कम्**=किस **अमृतम्**=अमृतत्व को न **अवृणीत**=उस प्रभु ने वरण नहीं किया? प्रभु ने तो वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति को अमृतत्व प्राप्ति के लिये आवश्यक सभी साधनों को प्राप्त कराया ही है। व्यक्ति ही उनका सदुपयोग नहीं करता और परिणामतः अमृतत्व प्राप्ति से वञ्चित रह जाता है। (३) परन्तु जो व्यक्ति इन अमृतत्व प्राप्ति के ठीक साधनों का प्रयोग करता हुआ उन्नतिपथ पर आगे बढ़ता है और उन्नत होता हुआ ऊर्ध्व दिशा का अधिपति 'बृहस्पति' बनता है, उस **बृहस्पतिं ऋषिम्**=वेदज्ञान के पति तत्त्वद्रष्टा को वे प्रभु यज्ञं **अकृण्वत**=(यज संगतिकरणे) अपने साथ मेल वाला करते हैं। उस समय यह बृहस्पति 'शरीर' होता है और प्रभु उसके 'अन्तरात्मा'। (४) **यमः**=ये अन्तःस्थित सर्वनियन्ता प्रभु **प्रियां तन्वम्**=अपने प्रिय शरीरभूत इस बृहस्पति को **प्रारिरेचीत्**=सब दोषों से रिक्त कर देते हैं। अर्थात् इसके जीवन को पवित्र व निर्दोष बना देते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने हमें सब उन्नति के साधन प्राप्त कराये हैं। हम ज्ञानी व तत्त्वद्रष्टा बनकर प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु हमें निर्दोष बनाएँगे।

ऋषिः—**विवस्वानादित्यः**॥ देवता—**हविर्धाने**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'शिशु' व 'मरुत्वान्'

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम्।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः॥ ५॥

(१) पिछले मन्त्र के 'प्रारिरेचीत्' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि **सप्त**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'=दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख ये सातों **क्षरन्ति**=मल का क्षरण करके निर्मल हो जाते हैं। परन्तु ये मल का क्षरण करनेवाले किसके लिये होते हैं? (क) **शिशवे**=(शो तनूकरणे) बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले के लिये। जो स्वाध्याय के द्वारा बुद्धि को निरन्तर सूक्ष्म बनाने का प्रयत्न करता है, उसकी इन्द्रियाँ निर्मल बनती हैं। (ख) **मरुत्वते**=प्राणों की साधना करनेवाले के लिये। प्राण-साधना से इन्द्रियों के दोष दूर होते ही हैं। जो भी व्यक्ति बुद्धि को सूक्ष्म करने का प्रयत्न करता है तथा प्राणों की साधना करता है उसकी इन्द्रियाँ निर्मल बनती ही हैं। (२) **पुत्रासः**=प्रभु के पुत्र **पित्रे**=अपने पिता परमात्मा के लिये **ऋतं अपि अवीवृतन्**=ऋतकामी वरण करते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये ऋत का पालन आवश्यक है। 'ठीक समय पर कार्य करना तथा सत्य व्यवहार करना' ही ऋत है। इस ऋत के पालन करनेवाले को ही प्रभु प्राप्त होते हैं। (३) इस प्रकार ऋत का पालन करनेवाले **उभे इत्**=पति-पत्नी दोनों ही **अस्य**=इस प्रभु के होते हैं। **उभयस्य**=शरीर व मस्तिष्क दोनों के ही **राजतः**=शासन करनेवाले होते हैं। **उभे यतेते**=ये दोनों गृह को स्वर्ग बनाने के लिये यत्न करते हैं। **उभयस्य पुष्यतः**='अभ्युदय व निःश्रेयस' दोनों का ही पोषण करनेवाले होते हैं। प्रकृति विद्या व आत्मविद्या दोनों को ही पढ़ते

हैं। अपने जीवन में ये 'व्यक्तिवाद व समाजवाद' दोनों का ही पोषण करते हैं। ये प्रेय व श्रेय दोनों का ही ये पोषण करते हैं।

भावार्थ—शिशु व मरुत्वान् की इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं। ऋत का पालक प्रभु का प्रिय होता है। ऐसे पति-पत्नी अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों को सिद्ध करनेवाले होते हैं।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से होता है कि प्रभु नमन से हमारे साथ ज्ञान का सम्पर्क होता है। (१) हम ज्ञानी व स्वस्थ बनते हैं, (२) हम यज्ञशील व स्वाध्याय के व्रती हों, (३) हम प्रभु के प्रिय शरीर बनें, (४) अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों का ही पोषण करें, (५) इसके लिये शासक नियामक प्रभु का पूजन करें।

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**यमः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

राजा यम का उपासन

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥ १॥

(१) **प्रवतः**=(प्रकृष्ट कर्मवतः) उत्कृष्ट कर्मों वाले, **महीः**=(मह् पूजायाम्+इ) पूजा व उपासना करने वालों को **अनु**=अनुकूलता से **परेयिवांसम्**=सुदूर स्थानों से भी प्राप्त होनेवाले प्रभु को **हविषा**=हवि के द्वारा पूजित करनेवाले होवो। प्रभु अज्ञानियों के लिये दूर से दूर होते हैं। वे ही प्रभु 'पश्यत्स्विस्वहैव निहितं गुहायाम्' ज्ञानियों के लिये यहाँ शरीर में ही हृदय-गुहा के भीतर निहित होते हैं। अज्ञानियों के लिये दूर हैं, ज्ञानियों के लिये वे यहीं हृदय-गुहा में निहित, समीपतम हो जाते हैं। इस प्रकार हृदयगुहा में प्रभुदर्शन के लिये आवश्यक है कि हम उत्कृष्ट कर्मों में लगे रहें (प्रवत्) तथा प्रातः-सायं उस 'एकतत्त्व'=अद्वितीय सत् प्रभु का उपासन करनेवाले हों (महि) (२) वे प्रभु ही इन **बहुभ्यः**=अनेकों उपासकों के लिये **पन्थाम्**=जीवनमार्ग को **अनुपस्पशानम्**=अनुकूलता से दिखलानेवाले होते हैं। 'सोम्यानां भृमिरसि'=वे प्रभु इन शान्त सोम्य स्वभाव वाले उपासकों को अज्ञानवश विरुद्ध दिशा में जा रहे हों तो, मुख मोड़कर ठीक दिशा में चलानेवाले होते हैं। (३) वे प्रभु **वैवस्वतम्**=ज्ञान की किरणों वाले हैं। अपने उपासकों के हृदयों को इन ज्ञान किरणों से उज्ज्वल करनेवाले हैं। इस ज्ञान के प्रकाश में ही ये उपासक पथभ्रष्ट नहीं होते। (४) **जनानां संगमन**=ये प्रभु लोगों के एकत्रित होने के स्थान है। इस प्रभु में अधिष्ठित होने पर सब मनुष्य परस्पर एकत्व का अनुभव करते हैं। 'एक ही प्रभु के हम सब पुत्र हैं' यह भावना उन्हें परस्पर बाँधनेवाली होती है। (५) वे प्रभु **यमम्**=हृदय में स्थित होकर सब का नियमन करनेवाले हैं तथा **राजानम्**=सूर्य, चन्द्र व तारे आदि सभी लोक-लोकान्तरों की गति को व्यवस्थित (regulated) करनेवाले हैं। (६) इस प्रभु का उपासन हवि के द्वारा होता है। दानपूर्वक अदन ही उस प्रभु की सच्ची उपासना है। यज्ञशेष का सेवन करता हुआ पुरुष 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस प्रभु निर्देश का पालन करता है और प्रभु का प्रिय होता है।

भावार्थ—उत्कृष्ट कर्मों वाले उपासकों को प्रभु प्राप्त होते हैं। इन विनीत उपासकों को ही प्रभु मार्गदर्शन करते हैं। वे प्रभु ज्ञान की किरणों वाले हैं। हमें परस्पर एकत्व का अनुभव करानेवाले हैं। नियामक व शासक प्रभु का पूजन यही है कि हम यज्ञशेष का सेवन करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**यमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मार्ग का आक्रमण

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ २ ॥

(१) **प्रथमः यमः**=(प्रथविस्तारे) सम्पूर्ण जगत् में विस्तृत अर्थात् उस सर्वव्यापक व सर्वनियामक प्रभु ने **नः**=हमें **गातुम्**=मार्ग का **विवेद**=ज्ञान दिया है। **उ**=निश्चय से **एषा गव्यूतिः**=यह मार्ग **अपभर्तवा**=अपहरण के लिये **न**=नहीं होता। अर्थात् उस सर्वव्यापक (प्रथमः) सर्वनियामक (यमः) प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर चलने से हम इस संसार में विषयों से आकृष्ट नहीं हो जाते। (२) यह वह मार्ग है **यत्रा**=जिस पर **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पूरण करनेवाले **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में लगे हुए लोग **परेयुः**=चले हैं। वस्तुतः इस प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर चलने से ही वे अपना पूरण कर पाये हैं। इस मार्ग ने उनके जीवनों में न्यूनताओं को नहीं आने दिया। (३) **एना**=इस मार्ग से चलने के द्वारा **जज्ञानाः**=(जनी प्रादुर्भावे) अपनी शक्तियों का प्रादुर्भाव व विकास करनेवाले लोग ही **पथ्याः**=(पथि साधवः) उत्तम मार्ग पर चलनेवाले होते हैं और **अनुस्वाः**=उस प्रभु के अनुकूल व प्रिय होते हैं।

भावार्थ—प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर ही चलना चाहिए। यही मार्ग हमारे पूरण व विकास के लिये होता है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**यमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मातली-यम-बृहस्पति'

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥ ३ ॥

(१) यह **मातली**=समझदार-बुद्धिमान्-पुरुष **कव्यैः**=पितरों को, वृद्ध माता-पिता को दिये जानेवाले अन्नों से **वावृधानः**=धर्म मार्ग पर खूब बढ़नेवाला होता है। एक समझदार व्यक्ति सदा माता-पिता को श्रद्धा व आदर से भोजन कराने के बाद ही स्वयं भोजन करता है। इस माता-पिता के श्राद्ध को ही वह प्रत्यक्ष-धर्म मानता है। माता-पिता की श्रद्धापूर्वक की गई सेवा से ही वह 'आयु, विद्या, यश व बल' में वावृधान होता है। (२) **यमः**=संयमी पुरुष **अंगिरोभिः**=(ये अंगाराः आसन् ते अंगिरसोऽभवन्) अंग-प्रत्यंग में रसों के द्वारा **वावृधानः**=बढ़ता है। इसके अंग सूखे काठ की तरह मृत से नहीं हो जाते। संयम इसकी शक्तियों की वृद्धि व स्थिरता का कारण बनता है। (३) **बृहस्पतिः**=उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करनेवाला 'ब्रह्मणस्पति' **ऋक्वभिः**=विज्ञानों के द्वारा बढ़नेवाला होता है। अर्थात् यह सतत स्वाध्याय से अपने ज्ञान का वर्धन करता हुआ उन्नतिपथ पर अग्रेसर होता है और सर्वोच्च दिशा का अधिपति बनता है। (उर्ध्वा दिग् बृहस्पति-रधिपतिः) यह विज्ञान उसे उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचानेवाला होता है। (४) ये वे व्यक्ति हैं **ये च**=और जो **देवान् वावृधु**=देवताओं को बढ़ाते हैं, **यान् च**=और जिनको **देवा वावृधुः**=देव बढ़ाते हैं। अर्थात् यज्ञादि के द्वारा ये लोग देवों को तृप्त करते हैं और वृष्टि के द्वारा देव इनका सम्भावन करते हैं। (५) इनमें **अन्ये**=कई **स्वाहा**=(स्व+हा) स्वार्थ त्याग के द्वारा, अपनी सम्पत्तियों का यज्ञों में विनियोग करते हुए **मदन्ति**=आनन्द व हर्ष का अनुभव करते हैं। तथा **अन्ये**=दूसरे संसार के विषयों से विरत हुए-हुए **स्व-धया**=आत्मतत्त्व के धारण से मदन्ति=आनन्द का अनुभव करते हैं।

योगमार्ग पर चलते हुए समाधि की स्थिति में पहुँचकर अपने अन्दर ही अवर्णनीय आनन्द को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम समझदार बनकर माता-पिता को श्रद्धा से भोजनादि प्राप्त कराएँ, संयमी बनकर अंग-प्रत्यंग में रस वाले हों, बृहस्पति बनकर विज्ञानों का अध्ययन करें। यज्ञशील हों, आत्मचिन्तक। देवों को देकर सदा यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**यमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यम का प्रस्तर

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥ ४॥

(१) हे **यम**=संयमी पुरुष! **हि**=निश्चय से **इमं प्रस्तरम्**=इस पत्थर के समान दृढ़ शरीर में **आसीद**=बैठ, निवास करनेवाला बन। शरीर को दृढ़ बनाना मनुष्य का मौलिक कर्तव्य है। जिस प्रकार बाग की चारदिवारी का मजबूत होना अत्यावश्यक है, उसी प्रकार शरीर का दृढ़ होना आवश्यक है। इस शरीर की दृढ़ता के लिये साधन 'यम' शब्द से संकेतित हो रहा है, मनुष्य संयमी बनेगा तभी शरीर को दृढ़ बना पायेगा। संयम द्वारा शरीर के दृढ़ होने पर ही मनुष्य मन व बुद्धि की उन्नति कर सकता है। (२) इस मानस व बौद्धिक उन्नति के लिये **अंगिरोभिः**=(अगि गतौ) गतिशील **पितृभिः**=पालनात्मक कर्मों में लगे हुए व्यक्तियों से **संविदानः**=मिलकर तू ज्ञानचर्चा करनेवाला बन। आलसियों के साथ तेरा उठना-बैठना न हो, और ना ही तोड़-फोड़ के कामों में रुचि वालों के साथ तू मिल-जुल। क्योंकि जैसों के साथ तेरा संग होगा वैसा ही तो तू बनेगा। इसी दृष्टिकोण से यह प्रार्थना है कि 'यथा नः सर्व इज्जनः संगत्या सुभना असत्'=सत्संग से हमारे सब लोग उत्तम मन वाले हों। (३) सत्संग से सुमन बने हुए **त्वा**=तुझ को **कविशस्ताः**=उस महान् कवि-आनन्ददर्शी प्रभु से उपदिष्ट **मन्त्राः**=ज्ञान की वाणियाँ **आवहन्तु**=जीवन के मार्ग में ले चलनेवाली हों। अर्थात् तेरा जीवन का कार्यक्रम श्रुति के अनुकूल हो। 'मंत्रश्रुत्यं चरन्नसि'=मन्त्रों में जैसा हम सुनते हैं, उसके अनुसार हम जीवन को चलानेवाले हों। (४) हे **राजन्**=इन वेदवाणियों के अनुसार व्यवस्थित जीवन (regulated)। वाले पुरुष! तू **एना**=इस **हविषा**=हवि के द्वारा **मादयस्व**=आनन्द का अनुभव कर। अर्थात् तुझे देकर के बचे हुए को खाने में आनन्द का अनुभव हो। तू सदा हवि का सेवन करनेवाला बन। इस हवि के सेवन से ही तो वस्तुतः तू प्रभु का उपासक बनता है।

भावार्थ—संयम से इस शरीर को पत्थर के समान दृढ़ बनावें, गतिशील व रक्षणात्मक कार्यों में लगे हुए पुरुषों के साथ हमारा संग हो। वेदज्ञान के अनुसार हम जीवन को बनायें। हवि के सेवन में आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**यमः**॥ छन्दः—**पानिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सत्संग व यज्ञ में स्थिति

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥ ५॥

(१) हे **यम**=संयमी पुरुष! तू इस जीवन में **अंगिरोभिः**=सदा क्रियाशील जीवन वाले और अतएव अंग-प्रत्यंग में रस वाले, **यज्ञियेभिः**=यज्ञशील व संगतिकरण योग्य,

वैरूपैः=विशिष्ट तेजस्वी रूप वाले पुरुषों के साथ **आगहि**=आनेवाला हो, ऐसे पुरुषों के साथ ही तेरा उठना-बैठना हो। उन्हीं के साथ **मादयस्व**=तू आनन्द का अनुभव कर। (२) इन 'अंगरिस्-यज्ञिय-वैरूप' पुरुषों के संग से तेरा जीवन भी यज्ञमय व वासनाओं से ऊपर उठा हुआ हो। तू **अस्मिन् यज्ञे**=इस यज्ञमय जीवन में तथा **बर्हिषि**=वासना शून्य हृदय में (उद् बृह=उखाड़ना) उस हृदय में, जिसमें से कि वासनाओं को उखाड़ दिया गया है, **आनिषद्य**=स्थित होकर **विवस्वन्तम्**=ज्ञान की किरणों वाले प्रभु को **हुवे**=प्रकारनेवाला हो, **यः ते पिता**=जो तेरे पिता हैं। वस्तुतः हमें यही चाहिए कि हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाएँ, हृदय को वासनाशून्य करें। इन्हीं में स्थित होकर प्रभु का उपासन करें।

भावार्थ—हमारा संग सदा उत्तम हो, जीवन यज्ञमय हो, और हम प्रभु का उपासन करने (पुकारने) वाले हों।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुमति व सौमनस

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ६॥

(१) **नः**=हमारे **पितरः**=पालन करनेवाले (=Guardians) **अंगिरसः**=(अगि गतौ) गतिशील हैं और अतएव अंग-अंग में रस वाले हैं। वे **नवग्वाः**=स्तुत्य गति वाले हों (नु स्तुतौ) और इसी कारण नवदशक पर्यन्त जानेवाले अर्थात् नब्बे वर्ष की दीर्घ आयु तक पहुँचनेवाले हैं। **अथर्वाणः**=वे अपनी इस जीवन यात्रा में (न+थर्व) न डाँवाडोल होनेवाले हैं तथा सदा (अथ अर्वाङ्) आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने दोषों को दूर करनेवाले हैं। **भृगवः**=(भ्रस्ज पाके) ज्ञान से अपने को परिपक्व करनेवाले हैं। और अतएव **सोम्यासः**=अत्यन्त सोम्य व विनीत हैं। ज्ञान का परिणाम विनीतता के रूप में होना ही चाहिए। (२) ऐसे पितरों के ही सम्पर्क में हमें रहना चाहिए। ये 'यज्ञिय'=संगतिकरण योग्य हैं। इनके सम्पर्क में आकर इन जैसे ही हम बनेंगे। **तेषां यज्ञियानाम्**=उन संगतिकरण योग्य पितरों की **वयम्**=हम **सुमतौ**=कल्याणी मति में तथा **भद्रे सौमनसे**=कल्याणकर उत्तम मन में **स्याम**=हों। हम भी उन पितरों की तरह 'सुमति व सौमनस' वाले हों। वस्तुतः इन पितरों ने ही निर्माण करना होता है। जैसे पितर होंगे, वैसे ही तो 'पुत्र' भी बनेंगे। (३) पितरों की विशेषताएँ 'अंगिरस्-नवग्व-अथर्वा-भृगु व सोम्य' इन शब्दों से सूचित हुई हैं। अन्नमयकोश के दृष्टिकोण से ये अंगिरस्=अंग-अंग में रस व शक्ति वाले हैं। प्राणमयकोश में प्रत्येक इन्द्रिय की प्रशंसनीय गति वाले=नवग्व हैं। मनोमयकोश में अथर्व=न ढाँवाडोल होनेवाले मन वाले 'स्थिरधी' हैं। विज्ञानमयकोश में 'भृगु'=परिपक्व ज्ञान वाले हैं और अन्ततः आनन्दमयकोश में अत्यन्त 'सोम्य' हैं, उस 'सोम'=शान्त प्रभु के साथ निवास करनेवाले हैं।

भावार्थ—इन पितरों के सम्पर्क में आकर इनकी 'सुमति व सौमनस' को प्राप्त करके हम भी ऐसे ही बनने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः पितरो वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यम और वरुण=संयम व निर्द्वेषता

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥ ७॥

(१) **यत्रा**=जिस मार्ग पर **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पूरण करनेवाले **पितरः**=रक्षक लोक **परेयुः**=उत्कृष्टता से चलते हैं उन्हीं **पूर्व्येभिः**=पूरण करने में उत्तम अर्थात् सब न्यूनताओं को दूर करनेवाले **पथिभिः**=मार्गों से **प्रेहि**=चल और इन्हीं मार्गों से ही **प्रेहि**=चल। हमें चाहिए यही कि हम अपने पितरों के उत्तम मार्ग पर ही चलने का प्रयत्न करें। (२) प्रभु जीव से कहते हैं कि तू अपने मार्गदर्शन के लिये **यमं**=यम को **च**=और **वरुणं देवं**=वरुण देव को **पश्यासि**=देख। यम के जीवन की विशेषता 'जीवन का नियन्त्रण' है और 'वरुण' द्वेष का निवारण करनेवाला, द्वेषशून्य सब के प्रति प्रेमपूर्ण है। इनको देखने का अभिप्राय यह है कि हम भी नियन्त्रित जीवन वाले व द्वेषशून्य बनें। (३) **उभा**=ये दोनों नियन्त्रित जीवन वाले तथा द्वेषशून्य व्यक्ति **राजाना**=चमकनेवाले होते हैं (राज् दीप्तौ)। इनका जीवन दीप्त होता है, और **स्वधया मदन्ता**=(स्व+धा) आत्मतत्त्व के धारण से हर्ष का अनुभव करते हैं। 'यम' बनकर ये पूर्ण स्वस्थ होते हैं और स्वास्थ्य की दीप्ति से चमकते हैं तथा 'वरुण' व निर्द्वेष होने के कारण ये अपने हृदय में आत्मप्रकाश को देखते हैं और इस प्रकार आत्मतत्त्व के धारण से आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—हमारा मार्ग वही हो जो यम व वरुण का है। संयम हमें स्वास्थ्य की दीप्ति दे, और निर्द्वेषता हमें प्रभु का प्रकाश देखने के योग्य बनाकर आनन्दित करे। यम हमारे शरीरों को पवित्र करे और वरुण मनों को। संयमी बनकर हम व्याधियों से बचें और वरुण बनकर आधियों से ऊपर उठें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः पितरो वा** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

फिर घर की ओर

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥

(१) प्रभु जीव को निर्देश करते हैं कि **पितृभिः**=पालनात्मक कर्मों में लगे हुए पुरुषों के साथ **संगच्छस्व**=तू संगति करनेवाला हो। इनके संग में आकर तू भी निर्माणात्मक कार्यों की प्रवृत्ति वाला ही होगा। (२) **यमेन सम्**=(गच्छस्व) संयमी पुरुषों के साथ तेरा मेल हो। यह इसलिए आवश्यक है कि इनके सम्पर्क में तेरा जीवन भी संयमी बन पाएगा। (३) **परमे व्योमन्**=इस उत्कृष्ट हृदयान्तरिक्ष में तू **इष्टापूर्तेन** (संगच्छस्व)=इष्ट और आपूर्त की भावना से युक्त हो। तेरा वृत्ति यज्ञात्मक कर्मों की हो तथा तू वापी-कूप-तड़ाग आदि लोकहित की चीजों के निर्माण की वृत्ति वाला हो। (४) **अवद्यं हित्वाय**=सब निन्दनीय अशुभ कर्मों को छोड़कर **पुनः**=फिर **अस्तम्**=अपने घर, ब्रह्मलोक में **एहि**=आनेवाला बन। (५) इसी दृष्टिकोण से तू **सुवर्चाः**=उत्तम वर्चस् वाला बनकर **तन्वा**=विस्तृत शक्तियों का शरीर से **संगच्छस्व**=संगत हो। तेरा शरीर पूर्ण स्वस्थ हो और तू अपने शरीर की शक्तियों का विस्तार करनेवाला बन। बीमार व क्षीण शक्ति शरीर से हम जीवनयात्रा को क्या पूर्ण कर पायेंगे और किस प्रकार मोक्ष में पहुँच सकेंगे?

भावार्थ—हमारा सम्पर्क संयमी निर्माणात्मक कार्यों में लगे पुरुषों के साथ हो। हमारे हृदयों में भी यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने का संकल्प हो। अशुभ से दूर होकर हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करें। यात्रा की पूर्ति के लिये स्वस्थ शरीर वाले हों।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः पितरो वा** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यात्रा का अवसान

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।

अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ९ ॥

(१) गत मन्त्र के 'हित्वायावद्यं' का ही व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि **अपेत**=सब दुरितों से दूर होने के लिये यत्न करो **वीत (वि इत)**=विशिष्ट मार्ग पर चलो। **च**=और **वि-सर्पत**=विशेषरूप से गतिशील बनो। **अतः**=इसी दृष्टिकोण से **पितरः**=रक्षक लोग **अस्मै**=इसके लिये **लोकम् अक्रन्**=प्रकाश को प्राप्त कराते हैं। पितरों से आलोक को प्राप्त करके ये अशुभ से दूर होते हुए शुभ मार्ग का ही आक्रमण करते हैं। (२) इस प्रकार **अहोभिः**=(अ+हन्) एक-एक क्षण के सदुपयोग के द्वारा, समय को नष्ट न करने के द्वारा, **अद्भिः**=(आपः=रेतः) रेतःकणों की रक्षा के द्वारा तथा **अक्तुभिः**=ज्ञान की रश्मियों के द्वारा **व्यक्तम्**=विशेषरूप से अलंकृत **अवसानम्**=जन्म-मरण चक्र के अन्त को **अस्मै**=इस साधक के लिये **यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु **ददाति**=देते हैं, इसको जन्म-मरण चक्र से मुक्त कर देते हैं। एवं स्पष्ट है कि मोक्ष प्राप्ति का साधन यही है कि हम जीवन को बड़ा अलंकृत व सुशोभित बनाएँ। जीवन को अलंकृत करने के लिये—(क) समय को व्यर्थ न जाने दें, (ख) रेतःकणों का रक्षण करें, (ग) प्रकाश की किरणों को प्राप्त करें। सदा उत्तम कर्मों में लगे रहने से ही वीर्यरक्षण होता है और उससे ज्ञानाग्नि समिद्ध होकर हमारा जीवन प्रकाशमय होता है। इस प्रकाश से जीवन सुशोभित होगा तभी हम मोक्ष के अधिकारी होंगे।

भावार्थ—हम पितरों से प्रकाश को प्राप्त करके सदा उत्तम कर्मों में लगे रहने से शक्ति के रक्षण के द्वारा ज्ञानाग्नि को समिद्ध करें। यही हमारे मोक्ष का मार्ग है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**श्वानौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दो श्वा

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥ १०॥

(१) जीवन के अन्दर काम-क्रोध उन दो श्वानों (=कुत्तों) के समान हैं जो कि **सारमेयौ**=सरमा के पुत्र हैं। सृगतौ से 'सरमा' शब्द बनता है। ये बड़े चञ्चल हैं, काम-क्रोध का स्थिरता से सम्बन्ध नहीं है। **श्वानौ**=(श्वि वृद्धौ) ये निरन्तर बढ़नेवाले हैं। काम-क्रोध बढ़ते ही जाते हैं। काम उपभोग से शान्त होने की बजाय इस प्रकार बढ़ता चलता है जैसे कि हवि के द्वारा अग्नि। **चतुरक्षौ**=ये चार आँखों वाले हैं, सदा सावधान हैं। इन्हें ज़रा-सा मौका मिला और इन्होंने हमारे पर आक्रमण किया। हम स्वयं भी सदा सावधान रहेंगे, और उत्तम कर्मों में लगे रहेंगे तभी इनसे बच सकेंगे। **शबलौ**=ये रंगबिरंगे हैं। नाना रूपों में ये प्रकट होते हैं। (२) प्रभु कहते हैं कि **साधुना पथा**=उत्तम मार्ग से इनको **अतिद्रव**=लाँघ जा। सदा उत्तम कर्मों में लगे रहना ही वह उपाय है जिससे कि हम काम-क्रोध को जीत पाते हैं। (३) **अथा**=और **सु-विद-त्रान्**=उत्तम ज्ञान के द्वारा त्राण करनेवाले **पितॄन्**=पितरों के **उपेहि**=समीप आनेवाला हो। इनका सत्संग तुझे ज्ञान की रुचि वाला तथा उत्तम कर्मों को करनेवाला बनाएगा। (४) तू उन पितरों के समीप उपस्थित हो **ये**=जो कि **यमेन**=उस सर्वनियन्ता प्रभु के **सधमादं मदन्ति**=साथ आनन्द का अनुभव करते हैं। इन प्रभु के उपासकों के सम्पर्क से तेरी भी वृत्ति प्रभु उपासना की होगी। 'सुविदत्रान्' शब्द ज्ञान का संकेत करता है, 'पितॄन्'=रक्षणात्मक कर्मों का, और 'यमेन सधमादं' उपासना का। एवं हमारा सम्पर्क ऐसे ही लोगों के साथ हो जो कि ज्ञानी-कर्मतत्पर व उपासक हैं। ये ही आदर्श पितर हैं। इनके सम्पर्क से ही हम काम-क्रोध रूप यम के श्वानों को लाँघ जायेंगे।

भावार्थ—हम उत्तम पितरों के सम्पर्क से ज्ञानी बनकर, सुपथ से चलते हुए, काम-क्रोध को जीतनेवाले बनें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**श्वानौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उपादेय 'काम-मन्यू' (स्वस्ति व अनमीव)

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥ ११ ॥

(१) हे **यम**=सर्वनियन्ता प्रभो! **यौ**=जो **ते**=आपके **श्वानौ**=(श्वि गतिवृद्ध्योः) गति द्वारा वृद्धि के कारणभूत **रक्षितारौ**=हमारे जीवन की रक्षा करनेवाले, **चतुरक्षौ**=सदा सावधान, **पथिरक्षी**=मार्ग के रक्षक व **नृचक्षसौ**=(Look after=चक्ष्) मनुष्यों का पालन करनेवाले काम व क्रोध हैं, **ताभ्याम्**=उन देवों के लिये **एनम्**=इस पुरुष को **परिदेहि**=प्राप्त कराइये। **च**=और हे **राजन्**=संसार के शासक व व्यवस्थापक प्रभो! इन रक्षक काम व क्रोध के द्वारा **अस्मै**=इस पुरुष के लिये **स्वस्ति**=उत्तम स्थिति को, कल्याण को **च**=तथा **अनमीवम्**=नीरोगता को **धेहि**=धारण करिये। (२) 'काम-क्रोध' प्रबल हुए तो ये मनुष्य को समाप्त कर देनेवाले हैं। काम उसके शरीर को जीर्ण करता है तो क्रोध उसके मन को अशान्त बना देता है। ये ही 'काम-क्रोध' सीमा के अन्दर बद्ध होने पर मनुष्य के रक्षक व पालक (रक्षितारौ नृचक्षसौ) हो जाते हैं। काम उसे वेदाधिगम (=ज्ञान प्राप्ति) व वैदिक कर्मयोग उत्तम कर्मों में लगाकर (काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः मनु) **स्वस्ति**=उत्तम स्थिति प्राप्त कराता है। और मर्यादित क्रोध ही मन्यु है (यह मन्यु उसे उपद्रवों से आक्रान्त नहीं होने देता) इस प्रकार ये काम व मन्यु उस 'यम राजा' के द्वारा हमारे कल्याण के लिये हमारे में स्थापित किये जाते हैं। चाहते हुए हम आगे बढ़ते हैं (काम्य) और जैसे फुँकार मारता हुआ साँप सब प्राणियों से किये जानेवाले उपद्रवों से जैसे बचा रहता है, उसी प्रकार हम भी उचित क्रोध को अपनाकर 'अनमीव' बने रहते हैं।

भावार्थ—सामान्यतः अतिमर्याद रूप में विनाशक काम-क्रोध हमारे लिये संयत रूप में होकर 'स्वस्ति व अनमीव' को सिद्ध करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**श्वानौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'भद्र असु'=उत्तम जीवन

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥ १२ ॥

(१) गत मन्त्रों में वर्णित काम-क्रोध **उरूणसौ**=बड़ी नाक वाले हैं। सेवन से ये बढ़ते ही जाते हैं। **अ-सु-तृपौ**=ये कभी अच्छी तरह तृप्त हो जाएँ, सो बात नहीं है। 'भूय एवाभिवर्धते'=ये तो उत्तरोत्तर बढ़ते ही चलते हैं। **उदुम्बलौ (उद् बलौ)**=अत्यन्त प्रबल हैं। इनको जीतना सुगम नहीं है। और अपराजित हुए-हुए ये **यमस्य दूतौ**=यम के दूत हैं, हमें मृत्यु के समीप ले जाते हैं। ये दोनों दूत **जना अनु चरतः**=सदा मनुष्यों के पीछे चलते हैं। अर्थात् ये हमारे अन्दर स्वाभाविक रूप से रखे हुए हैं। (२) अब यदि ये प्रबल हो जाएँ तो ये हमें समाप्त कर देते हैं, और यदि हम प्रबल बनकर इनको अपने वश में रखें तो ये हमारे सेवक होते हैं और हमारा कल्याण करनेवाले बन जाते हैं। प्रबल जीवित रूप में ये हमें सोने की (gold) तरह समाप्त करनेवाले होते हैं। तथा भस्मीभूत हुए-हुए ये स्वर्णभस्म की तरह हमारे जीवन का कारण बनते हैं। सो हम इन्हें ज्ञानचक्षु से भस्मीभूत करनेवाले हों जिससे **तौ**=ये काम व क्रोध **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **पुनः**=फिर **अद्य**=आज **इह**=यहाँ **भद्रं असुम्**=शुभ जीवन को **दाताम्**=प्राप्त कराएँ और हम **दृशये सूर्याय**=

दीर्घकाल तक सूर्य दर्शन करनेवाले व दीर्घजीवी हो सकें। गत मन्त्र के अनुसार स्वस्ति व अनमीव को प्राप्त करके पूर्ण शतवर्ष के जीवन वाले हों।

भावार्थ—काम-क्रोध अत्यन्त प्रबल हैं, परन्तु हमारे लिये तो ये वशीभूत हुए-हुए भद्र जीवन को दें जिससे हम दीर्घकाल तक सूर्य दर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**यमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

यम की प्राप्ति

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ १३॥

(१) **यमाय**=उस सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिये **सोमं सुनुत**=सोम का अपने में उत्पादन करो। प्रभु 'यम' हैं, मनुष्य भी 'यम'=संयमी बनकर ही उस प्रभु का सच्चा उपासक बन पाता है। यह संयमी पुरुष सोम का सम्पादन करनेवाला होता है। (२) **यमाय**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **हविः जुहुता**=हवि के देनेवाले बनो। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'=उस सुखस्वरूप देव का हवि के द्वारा ही तो हम पूजन करते हैं, यज्ञशेष का सेवन ही हवि का स्वीकार करना है। हम सदा पाँचों यज्ञों को करके यज्ञशेष को ग्रहण करें। (३) **यमम्**=उस सर्वनियन्ता प्रभु को **ह**=निश्चय से **यज्ञः**='देवपूजा-संगतिकरण व दान' इन धर्मों का पालन करनेवाला ही **गच्छति**=प्राप्त होता है। वह उस यम को प्राप्त होता है जो कि **अग्निदूतः**=उस अग्नि नामक प्रभु का दूत बनता है, संदेशवाहक बनता है। प्रभु से दिये गये ज्ञान को जो सर्वत्र प्रचारित करनेवाला होता है। और **अरंकृतः**=अपने जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करता है, अपने जीवन को सद्गुणों से अलंकृत किये बिना वह औरों में ज्ञान का प्रचार कर भी तो नहीं सकता।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) हम सोम का सम्पादन करें, (ख) ज्ञान का प्रसार करनेवाले बनें, (ग) अपने जीवन को सद्गुणों से मण्डित करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**यमः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

घृतवत् हवि

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥ १४॥

(१) **यमाय**=उस सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिये **घृतवत्**='मलों के क्षरण व ज्ञान की दीप्ति' वाली **हविः जुहोत**=हवि के देनेवाले बनो। अर्थात् प्रभु प्राप्ति के लिये मन में से राग-द्वेष आदि मलों को दूर करो, मस्तिष्क को, स्वाध्याय द्वारा ज्ञान से दीप्त करो तथा सदा यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनो। (२) इस प्रकार मन की निर्मलता, मस्तिष्क की दीप्ति, तथा यज्ञशेष के सेवन रूप त्याग से प्रभु की प्राप्ति तो होती है। **च**=साथ ही, इस संसार में **प्रतिष्ठत**=प्रतिष्ठा को भी पावो। ये कर्म, विशेषतः दान हमारी प्रतिष्ठा का भी कारण बनता है। (३) **स**=वे प्रभु **नः**=हमें **देवेषु**=देवताओं में होनेवाले **दीर्घम् आयुः**=दीर्घ जीवन को **आयमत्**=दें जिससे **प्रजीवसे**=हम जीवन को प्रकृष्ट व उत्तम बना पायें। साधना के लिये भी दीर्घ जीवन सहायक होता है। 'दीर्घ जीवन' देवताओं को प्राप्त होता है। वह दीर्घ जीवन हमें भी प्राप्त हो, और उस जीवन में हम देव बनने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) हम निर्द्वेष हों, (ख) दीप्त-ज्ञान वाले हों, (ग) त्याग की वृत्ति वाले हों। इस साधना के लिये हमें दीर्घ जीवन प्राप्त हो।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**यमः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ऋषि-नमस्कार

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥

(१) **यमाय**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियमन करनेवाले, **राज्ञे**=संसार को व्यवस्थित (regulated) करनेवाले उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **मधुमत्तमं हव्यम्**=अत्यन्त माधुर्य से युक्त हव्य को **जुहोतन**=अपने में आहुत करो। अर्थात् हम मधुरतम वाणी का ही प्रयोग करें, और सदा त्यागपूर्वक उपभोग करें, यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें। (२) इस प्रभु की प्राप्ति के लिये ही हम उन **ऋषिभ्यः**=प्रभु का साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानियों के लिये **इदं नमः**=इस नमस्कार को करते हैं जो ज्ञानी **पूर्वजेभ्यः**=हमारे पूर्वज हैं, आयुष्य में भी हमारे से बड़े हैं, **पूर्वेभ्यः**=अपना पूरण करनेवाले हैं, और **पथिकृद्भ्यः**=हमारे लिये मार्ग को बनानेवाले हैं। इन ऋषियों का अनुसरण करते हुए हम पथभ्रष्ट नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि हम (क) अत्यन्त मधुर बनें, (ख) हव्य का ही सेवन करें, (ग) मार्गदर्शक ज्ञानियों का सत्कार करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**यमः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

त्रि-कद्रुक

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत्। त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥

(१) मन्त्र का ऋषि 'वैवस्वत यम' अर्थात् ज्ञान की किरणों वाला संयमी पुरुष **त्रिकद्रुकेभिः**=(कदि आह्वाने) तीनों कालों में प्रभु के आह्वान के साथ **पतति**=चलता है, प्रातः, मध्याह्न व सायं तीनों समय प्रभु की प्रार्थना करता है। अथवा जीवन के प्रातःसवन में, प्रथम २४ वर्षों में, जीवन के माध्यान्दिन सवन में, मध्यम ४४ वर्षों में, और जीवन के सायन्तन सवन, अन्तिम ४८ वर्षों में यह प्रभु प्रार्थना से अपने को पृथक् नहीं करता। (२) 'ज्योतिः गौः आयुः' नामक तीन याग विशेष 'त्रिकद्रुक' कहलाते हैं। यह यम इन यागों को करता हुआ जीवन में चलता है। यह स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान-ज्योति का सम्पादन करता है, प्राण-साधना द्वारा गौओं अर्थात् इन्द्रियों को बड़ा शुद्ध बनाता है और क्रियाशीलता के द्वारा दीर्घजीवन को प्राप्त करता है अथवा उत्तम आयुष्यवाला होता है। (३) इसके जीवन में **षड् ऊर्वीः**='द्यौश्च पृथिवी च आपश्च ओषधयश्च ऊर्क् च सूनृता च' द्युलोक अर्थात् ज्ञानदीप्त मस्तिष्क, पृथिवी अर्थात् विस्तृत शक्ति सम्पन्न शरीर, आपः=अर्थात् रेतस् (आपः रेतो भूत्वा), ओषधयः=अर्थात् दोषों का दहन करनेवाले सात्त्विक अन्न, ऊर्क्=बल और प्राणशक्ति और सूनृता=प्रिय सत्यभक्ति का वाणी, ये छः ऊर्वियाँ **आहिताः**=स्थापित होती हैं, (४) **एकम्**=शरीर में केन्द्र स्थान में स्थापित सब से महत्त्वपूर्ण साधन मन (हृदय) **इत्**=निश्चय से **बृहत्**=बड़ा व विशाल होता है, (५) और अन्त में **त्रिष्टुप्**=काम-क्रोध-लोभ तीनों को रोक देना, **गायत्री** (गयाः प्राणाः तान् तत्रे)=प्राणों का रक्षण, **छन्दांसि**=पापों का छादन अर्थात् बुरी वृतियों का दूरीकरण **ता सर्वा**=वे सब बातें **यमे**=इस संयमी पुरुष में **आहिता (वि)**=स्थापित होती हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु स्मरण के साथ चलें। हमारे शरीर व मस्तिष्क दोनों ही ठीक हों, जल व ओषधियों का हम प्रयोग करें, प्राणशक्ति व सूनृत वाणी वाले हों। हमारा मन विशाल हो। काम-क्रोध-लोभ को रोकें। प्राणों का रक्षण करें। पापों से अपने को दूर रखें।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से होता है कि नियामक प्रभु का हम हवि के द्वारा उपासन करें,

(१) सदा प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर चलें, (२) हम स्वार्थ त्याग वाले व आत्मतत्त्व का धारण करनेवाले बनें, (३) हमारा शरीर प्रस्तर तुल्य हो, (४) सत्संगों व यज्ञों में हमारी स्थिति हो, (५) सत्संग से सुमति व सौमनस की हमें प्राप्ति हो, (६) हम संयमी व द्वेषशून्य बनें, (७) बुराई को छोड़कर अपने घर ब्रह्मलोक की ओर चलें, (८) प्रभु कृपा से हमारी यात्रा पूर्ण हो, (९) उत्तम मार्ग से चलते हुए हम काम-क्रोध को लाँघ जाएँ, (१०) काम-क्रोध को वशीभूत करके हम कल्याण व नीरोगता को प्राप्त करें, (११) वशीभूत काम-क्रोध से हमें उत्तम जीवन प्राप्त हो, (१२) प्रभु प्राप्ति के लिये हम जीवनों को सद्गुणालंकृत करें, (१३) निर्मल मन वाले, ज्ञानदीप्त मस्तिष्क वाले तथा त्याग पूर्वक उपभोग वाले बनें, (१४) मार्ग-दर्शक ऋषियों के लिये नतमस्तक हों, (१५) सदा प्रभु स्मरण के साथ जीवन में चलें, (१६) हमें पितरों का रक्षण प्राप्त हो।

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अवर-पर-मध्यम पितर

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ १॥

(१) इन मन्त्रों का ऋषि **'यामायनः'**=यम पुत्र अर्थात् अत्यन्त संयमी जीवनवाला **'शंखः'**=शान्त इन्द्रियों वाला है। यह प्रार्थना करता है कि हमारे जीवनों में **अवरे पितरः**=सब से प्रथम स्थान में प्राप्त होनेवाले माता-पिता रूप पितर **उदीरताम्**=उत्कृष्ट गति वाले हों। वे हमारे जीवनों में चरित्र व शिष्टाचार की स्थापना के लिये यत्नशील हों। (२) **उत्**=और **मध्यमाः**=मध्यम श्रेणी के पितर अर्थात् हमारे जीवनों के मध्यकाल में शिक्षा के द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले आचार्य (उदीरताम्) ज्ञान प्रदान की क्रिया में सदा सचेष्ट हों। (३) **उत्**=और **परासः**=जीवन के परभाग में हमारे घरों में प्राप्त होनेवाले अतिथि रूप पर पितर सदा सत्प्रेरणा देते हुए (उदीरताम्) उत्कृष्ट गति वाले हों। (४) 'मातृ देवो भव-पितृ देवो भव-आचार्य देवो भव-अतिथि देवो भव' इन उपनिषद् के शब्दों में इन्हीं पितरों का उल्लेख है। ये सब के पितर **सोम्यासः**=अत्यन्त सोम्य स्वभाव के हों। स्वयं सोम्य होकर ही ये हमें सोम्य बना पाएँगे। (५) **ये**=जो पिता **असुं ईयुः**=प्राणशक्ति को प्राप्त हैं अर्थात् जीवित हैं, जीवनी शक्ति से परिपूर्ण हैं, और **अवृकाः**=लोभ से रहित हैं, **ऋतज्ञाः**=ऋत को जाननेवाले हैं, यज्ञशील हैं, **ते**=वे **पितरः**=पितर **हवेषु**=हमारी प्रार्थना व पुकार के होने पर **नः अवन्तु**=हमारा रक्षण करें। एवं पितरों के लक्षण ये हैं कि वे (क) प्राणशक्ति-सम्पन्न हैं, (ख) लोभरहित हैं, (ग) ऋतज्ञ हैं, यज्ञशील हैं, (घ) सोम्य हैं।

भावार्थ—सोम्य, प्राणशक्ति-सम्पन्न, निर्लोभ व यज्ञशील पितर हमारे जीवनों में हमारा रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पितरों के लिये नमस्कार

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥ २॥

(१) **अद्य**=आज **पितृभ्यः इदं नमः अस्तु**=पितरों के लिये यह नमस्कार हो। **ये**=जो पितर **पूर्वासः**=अपना पूरण करनेवाले हैं **ये उ**=और जो **परासः**=उत्कृष्ट जीवन वाले हैं। अथवा जो

हमारे जीवनों में **द्यूर्वासः**=पहले **ईयुः**=आते हैं **ये उ परासः**=और जो हमारे जीवनों के पिछले भागों में आते हैं। अर्थात् माता, पिता, आचार्य व अतिथि इन सबके लिये हम नमस्कार करते हैं। (२) उन पितरों के लिये हम नमस्कार करते हैं **ये**=जो कि **पार्थिवे रजसि**=इस पार्थिवलोक में **आनिषताः**=सर्वथा उपविष्ट हैं अर्थात् इस शरीर पर जिनका पूर्ण प्रभुत्व है। (३) **ये वा**=और जो **नूनम्**=निश्चय से **सुवृजनासु**=उत्तमता से, पूर्णरूप से पाप का वर्जन करनेवाली प्रजाओं में हैं, जिनकी गिनती निष्पाप धार्मिक लोगों में होती है।

भावार्थ—शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व वाले निष्पाप पितरों के लिये हमारा नमस्कार हो।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुविदत्र व बर्हियद् पितर

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः॥ ३॥

(१) **अहम्**=मैं **सुविदत्रान्**=उत्तम ज्ञान के द्वारा रक्षण करनेवाले **पितॄन्**=पितरों को **आ अवित्सि**=सर्वथा प्राप्त होऊँ। माता, पिता, आचार्य व अतिथि ये सब ज्ञान के द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले हों। **च**=और परिणामतः मैं **न-पातम्**=न गिरने को, अर्थात् धर्ममार्ग में स्थिरता को प्राप्त करूँ। **च**=तथा **विष्णोः विक्रमणम्**=विष्णु के विक्रमण को भी मैं प्राप्त करूँ। 'स्वस्थ शरीर, निर्मल मन व दीप्त मस्तिष्क' होऊँ। शरीर का स्वास्थ्य ही पृथिवीलोक का विजय है, मन की निर्मलता अन्तरिक्षलोक का विजय है और मस्तिष्क की दीप्ति द्युलोक का। यह त्रिविध विजय ही विष्णु के तीन विक्रमण हैं। (२) मैं उन पितरों को प्राप्त करूँ **ये**=जो **बर्हिषदः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले हैं और जो **स्व-धया**=आत्मतत्त्व के धारण के हेतु से **पित्वः**=अन्न के **सुतस्य**=परिणाम भूत सोम के वीर्य को **भजन्त**=भागी बनते हैं। वीर्य के रक्षण के उद्देश्य से प्रभु का उपासन करते हैं। अथवा आत्मतत्त्व के धारण के लिये वीर्य का रक्षण करते हैं। वीर्यरक्षण से ज्ञानाग्नि व बुद्धि दीप्त होकर प्रभु के साक्षात्कार का कारण बनती है। **ते**=वे पितर **इह**=इस जीवन में **आगमिष्ठाः**=हमें प्राप्त हों।

भावार्थ—हमें उन पितरों की प्राप्ति हो जो कि ज्ञान के द्वारा हमारा रक्षण करें, यज्ञशील हों, प्रभु प्राप्ति के उद्देश्य से वीर्य का रक्षण करनेवाले हों। इनके सम्पर्क से हम भी मार्गभ्रष्ट न होते हुए शरीर, मन व मस्तिष्क की उन्नति रूप तीन कदमों को रखनेवाले हों।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शान्ति-निर्भयता व निर्दोषता

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्१्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात॥ ४॥

(१) **बर्हिषदः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले **पिताः**=रक्षक लोगो! **अती**=हमारे रक्षण के हेतु से **अर्वाक्**=आप हमें समीपता से प्राप्त होइये। **इमा हव्या**=इन हव्य पदार्थों को हम **वः चकृमा**=आपके लिये संस्कृत करते हैं। **जुषध्वम्**=आप उन वस्तुओं का प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। वस्तुतः 'माता-पिता की सेवा करना, उनको खिलाकर ही खाना' यह पितृयज्ञ है और यही एक गृहस्थ का प्रत्यक्ष धर्म है। ये पितर अपने क्रियात्मक उदाहरण से हमारे जीवनों में यज्ञ को प्रेरित करते हैं। स्वयं यज्ञशील होते हुए वे हमें यज्ञशील बनाते हैं। (२) हे पितरो! **ते**=वे आप लोग

शन्तमेन=अत्यन्त शान्ति को देनेवाले **अवसा**=रक्षण से **आगत**=हमें प्राप्त होइये। **अथा**=और **नः**=हमारे लिये **शंयोः**=शान्ति को तथा भयों के यावन (पृथक् करण) को, और **अरपः**=निर्दोषता को **दधात**=धारण करिये।

भावार्थ—हमें पितरों का आदर करना चाहिए। ये यज्ञशील पितर हमारा रक्षण करते हुए हमें 'शान्ति-निर्भयता व निर्दोषता' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पितरों का आगमन

उप॑हूताः पि॒तर॑ः सो॒म्यासो॑ ब॒र्हि॒ष्ये॑षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑।
त आ ग॑मन्तु॒ त इ॒ह श्रु॑व॒न्त्वधि॑ ब्रुवन्तु॒ तेऽव॒न्त्व॒स्मान्॥ ५॥

(१) हमारे से **सोम्यासः**=अत्यन्त विनीत स्वभाव वाले निरभिमान **पितरः**=पितर **उपहूताः**=पुकारे गये हैं। हमने प्रभु से प्रार्थना की है कि हमें सोम्य पितर प्राप्त हों। इन्हें हमने **बर्हिषि**=यज्ञ के निमित्त पुकारा है। स्वयं यज्ञशील होते हुए ये हमें भी यज्ञमय जीवनवाला बनाते हैं। हम इन यज्ञों के निमित्त इन्हें पुकारते हैं जो **एषु प्रियेषु निधिषु**=ये हमारे प्रिय निधि हैं। यज्ञ कोई घाटे का सौदा नहीं है, यह तो एक प्रिय धन का विनियोग है। 'देहि मे ददामि ते' हम अग्नि को देते हैं, अग्नि हमें देता है। 'अग्निहोत्रं स्वयं वर्षं' अग्निहोत्र तो स्वतः सिद्ध वर्षा है। अग्निहोत्र से वर्षा होकर खूब अन्न की उत्पत्ति होती है। अग्नि अन्नाद है तो आद्य अन्न को प्राप्त भी कराती है। एवं यज्ञ हमारे प्रिय निधि हैं। इन्हीं यज्ञों की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने के लिये हम उन पितरों को चाहते हैं जो कि यज्ञशील होते हुए अत्यन्त सोम्य व विनीत हैं। (२) **ते**=वे पितर **इह**=यहाँ हमारे घरों में **आगमन्तु**=आयें। **ते**=वे **इह**=यहाँ **श्रुवन्तु**=हमारी समस्याओं को सुनें और **ते**=वे **अस्मान्**=हमें **अधिब्रुवन्तु**=आधिक्येन उपदेश दें। इस अर्थ में स्पष्ट है कि पितर घरों में आते हैं और वे हमें उपदेश व परामर्श देकर हमारी समस्याओं को सुलझाने के लिये यत्नशील होते हैं। वैदिक मर्यादा के अनुसार पुत्र के सन्तान को देखकर पिता, जो लगभग ५१ साल के हैं, वानप्रस्थ बन जाते हैं। इनके भी पिता, जो लगभग ७६ वर्ष के हैं, वे भी वन में हैं, और इनके भी पिता, जो लगभग १०० वर्ष के हैं, वे भी सम्भवतः वन में अभी जीवित ही हैं। एवं ये 'पिता, पितामह और प्रपितामह' वनों में रहनेवाले पितर हैं। जब कभी इनके सन्तान किन्हीं घर की समस्याओं को सुलझाने के लिये इन्हें आमन्त्रित करते हैं तो ये आते हैं, सन्तानों की बात को सुनते हैं और उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिये उन्हें उचित उपदेश व आदेश देते हैं। यही 'पितरों का आना व सन्तानों द्वारा उनके उचित आदर का होना' वैदिक श्राद्ध है। यह जीवित पितरों के साथ ही सम्बद्ध है। इसीलिये प्रपितामह से ऊपर जो पितर हैं, जो समान्यतः १२६ वर्ष के होने चाहिएँ, उनका वेद में उल्लेख ही नहीं, उनके जीवित होने का सम्भव कम ही है।

भावार्थ—हम वनस्थ पिता, पितामह, प्रपितामह आदि को आमन्त्रित करें। वे आकर हमें उपदेश व परामर्श दें।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यज्ञ का उपदेश

आच्या॒ जानु॑ दक्षिण॒तो नि॒षद्ये॒मं य॒ज्ञम॒भि गृ॑णीत॒ विश्वे॑।
मा हिं॑सिष्ट पितर॒ः केन॑ चिन्नो॒ यद्व॒ आग॑ः पुरु॒षता॒ करा॑म॥ ६॥

(१) पिछले मन्त्र के अनुसार पितर घरों पर आयें और **जानु आच्य**=घुटनों को संगत रूप में पृथ्वी पर स्थापित करके अर्थात् घुटने मिलाकर भूमि पर स्थित होकर, **दक्षिणतः निषद्य**=दक्षिण की ओर बैठकर अर्थात् हमारे दाहिने बैठकर, **विश्वे**=सब पितर **इमं यज्ञं अभिगृणीत**=इस यज्ञ का हमें उपदेश करें। घुटने मिलाकर भूमि पर बैठने से वात पीड़ायें सामान्यतः नहीं होतीं। ये होती प्रायः बड़ी ही उमर में हैं। सो पितरों के लिये यह आसन उपयुक्ततम है। आदर देने के लिये हम इन पितरों को दक्षिणपार्श्व में बिठाते हैं। ये पितर हमें यज्ञों का उपदेश करें। (२) घर पर आये हुए पितरों के विषय में कुछ हम गलती भी कर बैठें तो हम चाहते हैं कि वो पितर हमारे से अप्रसन्न न हो जाएँ। हे **पितरः**=मान्य पितरो! **पुरुषता**=एक अल्पज्ञ पुरुष के नाते **यत्**=जो भी **वः**=आपके विषय में **आगः**=अपराध **कराम**=कर बैठें उस **केनचित्**=किसी भी अपराध से **नः**=हमें **माहिंसिष्ट**=हिंसित मत करिये। आप हमारे से रुष्ट न हों, आप की कृपा हमारे पर बनी ही रहे।

भावार्थ—पितर आयें संगतजानुक होकर वे हमारे दाहिने बैठें और हमें कर्तव्य कर्मों का उपदेश दें।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पुत्रों को सत्परामर्श

आसी॑नासो अरु॒णीना॑मु॒पस्थे॑ र॒यिं ध॑त्त दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य।
पु॒त्रेभ्यः॑ पितर॒स्तस्य॒ वस्वः॒ प्र य॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात॥ ७॥

(१) गत मन्त्र में वनस्थ 'पिता, पितामह व प्रपितामह' आदि पितरों के घर पर आने का संकेत था। ये पितर सन्तानों के आमन्त्रण पर उनकी समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से घरों पर आते हैं। ये पितर **अरुणीनाम्**=(अरुणो गाव उपसाम्) उषाकालों की अरुण किरणों के प्रकाश के होने पर **उपस्थे आसीनासः**=उपासना में आसीन होते हैं। इस प्रकार प्रातः प्रभु उपासन में आसीन होनेवाले पितरो! **दाशुषे मर्त्याय**=अपना समर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये **रयिं धत्त**=ऐश्वर्य को धारण करिये। यदि घर में भाई परस्पर संघर्ष में आ जायें और न्यायालय में एक दूसरे को अभियुक्त करने पर तुल जायें, तो घर की सम्पत्ति की इति श्री ही हो जाए। सन्तानों के पुकारने पर पितर आते हैं। पुत्र उनके प्रति अपना अर्पण कर देते हैं कि 'जो कुछ पिताजी निर्णय करेंगे वह ठीक है'। इस प्रकार प्रतिज्ञा-पत्र लिख देनेवाले सन्तान ही 'दाश्वान् मर्त्य' हैं। इन्होंने पिताजी पर सब कुछ छोड़ दिया है। (२) ऐसा होने पर हे **पितरः**=पितरो! आप **पुत्रेभ्यः**=सन्तानों के लिये **तस्य**=उस **वस्वः**=धन का **प्रयच्छत**=दान करो जो कि न्यायालयों में ही समाप्त हो जाना था। यदि ये पितर निर्णय न कर देते घर का सारा धन अभियोग में ही व्ययित हो जाता। (३) इस प्रकार पितरों के निर्देश से धन का अपव्यय होने से तो बचाव हुआ ही, साथ ही भाइयों के मेल बने रहने से घर की शक्ति भी बढ़ गई। सो कहते हैं कि **ते**=वे आप **इह**=इस घर में **ऊर्जम्**=बल व प्राण शक्ति को **दधात**=धारण करिये। एक और एक मिलकर ये भाई ग्यारह हो गये हैं। एवं पितरों ने घर को श्री व शक्ति सम्पन्न बना दिया है।

भावार्थ—पितर प्रातः ही प्रभु उपासन में बैठते हैं। ये सन्तानों के कलहों को समाप्त करके घर में 'वसु व ऊर्ज' की स्थापना करते हैं।

ऋषिः—शङ्खो यामायनः॥ देवता—पितरः॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

रमण व प्रतिकाम अदन

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥ ८॥

(१) **ये**=जो **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पूरण करनेवाले, गृहस्थ में रागादि के रूप में उत्पन्न हो गई कमियों को दूर करके संन्यास की तैयारी करनेवाले **पितरः**=हमारे पितर **सोम्यासः**=अत्यन्त सोम्य स्वभाव के हैं, **सोमपीथं अनूहिरे**=सोम के पान का धारण करनेवाले हैं। अर्थात् शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले हैं। **वसिष्ठाः**=काम-क्रोध को वशीभूत करके अत्यन्त उत्तम निवास वाले बने हैं। (२) **तेभि**=इन पितरों के साथ **यमः**=नियन्त्रण में रहनेवाला विद्यार्थी से **रराणः**=क्रीड़ा करता हुआ, क्रीड़ा-क्रीड़ा में ही सब कुछ सीखता हुआ, **हवींषि उशन्**=हवियों को चाहता हुआ, **उशद्भिः**=हित को चाहनेवाले आचार्यों के साथ **प्रतिकामम्**=जब-जब शरीर को इच्छा से, अर्थात् आवश्यकता का अनुभव हो, तब-तब **अत्तु**=भोजन को खाये। (३) यहाँ दो बातें स्पष्ट है—पहली तो यह कि पढ़ाने का प्रकार इतना रुचिकर हो कि विद्यार्थियों को पढ़ाई खेल-सी प्रतीत हो। दूसरी बात यह कि हम भोजन तभी करें जब कि शरीर को आवश्यकता हो। और वह भी त्यागपूर्वक। यज्ञ करके यज्ञशेष को खाने से 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस शास्त्र का प्रमाण हो जाता है। और साथ ही शरीर नीरोग बना रहता है।

भावार्थ—हमें पितर रोचकता से ज्ञान के देनेवाले हों। हम हवि की कामना करें। आवश्यकता के अनुसार ही हम खानेवाले बनें।

ऋषिः—शङ्खो यामायनः॥ देवता—पितरः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

पितरों के लक्षण

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः॥ ९॥

(१) पितर वे हैं **ये**=जो कि **तातृषुः**=श्रमणमात्र के हित के लिये अत्यन्त पिपासित होते हैं, **देवत्रः जेहमानाः**=देवों में क्रमशः जानेवाले होते हैं, अर्थात् निरन्तर दैवी सम्पत्ति के अर्जन में लगे हैं। **होत्राविदः**=अग्निहोत्र को खूब समझनेवाले हैं। **अर्कैः**=मन्त्रों के द्वारा **स्तोमतष्टांसः**=प्रभु स्तोत्रों को करनेवाले हैं। (२) प्रभु कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तुम इन **सुविदत्रेभिः**=उत्तम ज्ञान के द्वारा त्राण करनेवाले, **सत्यैः**=सदा सत्य को अपनानेवाले, **कव्यैः**=(कवेर्यद स्वार्थे) क्रान्तदर्शी तत्त्वज्ञानी, **घर्मसद्भिः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले **पितृभिः**=पितरों के द्वारा **अर्वाङ्**=हमारे सम्मुख **आयाहि**=प्राप्त हो। अर्थात् इन पितरों के सम्पर्क में आकर ही आगे और आगे बढ़ता हुआ जीव प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—पितर वे ही हैं जो लोकहित के लिये प्रबल कामना वाले, यज्ञशील, प्रभुस्तवन, परायण, ज्ञानी, सत्यवादी, तत्त्वदर्शी हैं। इनके सम्पर्क में आनेवाला ही, पुरुष ज्ञानी बनकर प्रभु को प्राप्त करता है।

ऋषिः—शङ्खो यामायनः॥ देवता—पितरः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

देववन् घर्मसत् पितर

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः॥ १०॥

(१) पितर वे हैं **ये**=जो **सत्यासः**=सदा सत्य को बोलनेवाले हैं। **हविरदः**=हवि को ही खानेवाले हैं, **हविष्पाः**=हवि का ही पान करनेवाले हैं। इनका खाना-पीना सदा हविरूप होता है। पवित्र भोजन वाले तो ये होते ही हैं, उस भोजन को भी ये यज्ञशेष के रूप में ही सेवन करते हैं। (२) ये पितर **इन्द्रेण**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के साथ और **देवैः**=दिव्यगुणों के साथ **सरथं दधानाः**=समान ही रथ को धारण करते हैं। अर्थात् ये अपने इस शरीर रूप रथ में प्रभु को स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं और दिव्य गुणों के धारण करनेवाले बनते हैं। (३) हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **देववन्दैः**=देव का वन्दन करनेवाले अर्थात् प्रभु की उपासना करनेवाले, **परैः**=उत्कृष्ट जीवन वाले, **पूर्वैः**=अपना पूरण करनेवाले, न्यूनताओं को दूर करने के लिये यत्नशील, **घर्मसद्भिः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले **पितृभिः**=पितरों के सम्पर्क में रहता हुआ, उनके द्वारा **सहस्त्रम्**=(स-हस्) प्रसन्नतापूर्वक **आयाहि**=हमारे समीप प्राप्त हो।

भावार्थ—प्रभु के उपासक-यज्ञशील पितरों के सम्पर्क में उन्नति करते हुए हम मनःप्रसाद को प्राप्त करें और प्रभु को पायें।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

अग्निष्वात्त पितर

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन॥ ११॥

(१) **अग्निषु आत्ताः**=अग्नियों के विषय में जिन्होंने खूब ज्ञान प्राप्त किया है, अग्नि आदि देवों का वैज्ञानिक अध्ययन किया है, ऐसे **पितरः**=पितरो! **इह**=हमें इस जीवन में **आगच्छत**=प्राप्त होइये! (२) **सदःसदः**=प्रत्येक सभा में **सदत**=आप आकर बैठिये। **सुप्रणीतयः**=उत्तम प्रकृष्ट मार्ग से आप हमें ले चलनेवाले हैं। आपके ही प्रणयन में हम मार्ग पर आगे बढ़ते हुए लक्ष्य-स्थान पर पहुँचनेवाले होंगे। (३) आप **बर्हिषि**=इन यज्ञों में **प्रयतानि**=पवित्र **हवींषि**=हवियों को **अत्त**=खानेवाले बनिये। आपका भोजन पवित्र हो और यज्ञशेष के रूप में हो। (४) **अथा**=और आप **रयिम्**=धनों को, जो कि धन **सर्ववीरम्**=सम्पूर्ण वीरता से युक्त है, **दधातन**=धारण करिये। धन के साथ सब अंगों का सबल होना भी आवश्यक है। पितर अपने सन्तानों को सत्परामर्श के द्वारा सब प्रकार के झगड़ों से बचाकर सशक्त व सधन बनाते हैं। इन पितरों के अभाव में पारस्परिक कलह से धन भी नष्ट होता है और शक्ति भी। सो पितरों का यह कर्तव्य होता है कि वे अपने सन्तानों को परस्पर मेल से चलने का पाठ पढ़ायें।

भावार्थ—अग्निष्वात्त पितरों से हमें अग्नि आदि देवों का ज्ञान प्राप्त हो। सभाओं में इनके सदुपदेशों से हमारा मार्ग सुन्दर हो। हम भी इनकी तरह यज्ञों में तत्पर होकर पवित्र हवियों का रक्षण करनेवाले बनें। धन के साथ शक्ति का धारण करनेवाले हों।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अग्नि' की दिनचर्या

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि॥ १२॥

(१) हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **त्वम्**=तू **ईळितः**=(ईडा संजाता अस्य इति, ईडा+इतच्)=उपासना वाला बनता है प्रातःकाल उठकर सबसे प्रथम तू प्रभु का उपासन करता है। वस्तुतः हमें जीवन

के प्रत्येक दिन को प्रभु के उपासन से ही प्रारम्भ करना चाहिये तथा दिन की समाप्ति व रात्रि का प्रारम्भ भी प्रभु उपासन से ही होना चाहिए। (२) उपासन के बाद तू नैत्यिक स्वाध्याय के द्वारा **जातवेदः**=(जातः वेदो यस्य) विकसित ज्ञानवाला बनता है। उपासना की तरह स्वाध्याय में भी हमें किसी प्रकार से भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। (३) स्वाध्याय के बाद तू **सुरभीणि**=सुगन्धित **हव्यानि**=हव्य पदार्थों को **कृत्वी**=सम्यक् बनाकर के **अवाट्**=अग्नि के लिये प्राप्त कराता है। अर्थात् शुद्ध सुगन्धित गोघृत व उत्तम सामग्री से तू नैत्यिक अग्निहोत्र को करता है। (४) अब अग्निहोत्र कर चुकने पर तू **पितृभ्यः प्रादाः**=अपने वृद्ध माता-पिता के लिये भोजन को देता है। और **ते**=वे पितर **स्वधया**=आत्म-धारण के हेतु से अर्थात् शरीर के धारण के लिये आवश्यक मात्रा में **अक्षन्**=उस भोजन को खाते हैं। (५) इस प्रकार पितृयज्ञ को करके हे **देव**=दिव्य गुणों से सम्पन्न अग्ने! **त्वम्**=तू भी **प्रयता**=पवित्र **हवींषि**=देवयज्ञ व पितृयज्ञ से अवशिष्ट हव्य पदार्थों को **अद्धि**=सेवन करनेवाला बन। यह यज्ञशेष तेरे लिये अमृत हो, अमृत का सेवन करता हुआ तू सचमुच 'देव' बन।

भावार्थ—एक आर्यपुरुष की दिनचर्या का क्रम 'उपासना, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ व स्वयं भी यज्ञशेष का सेवन' है। इस क्रम का अनुष्ठान करता हुआ वह देव बनता है।

ऋषिः—**शङ्खो यामायनः**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पितृ-यज्ञ

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उं च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व॥ १३॥

(१) **ये**=जो **च**=और **पितरः**=पितर **इह**=यहाँ घर पर ही हैं, **ये च**=और जो वनस्थ हो जाने के कारण **इह न**=यहाँ घर पर नहीं हैं। **यान् च**=और जिनको **विद्म**=हम अच्छी प्रकार जानते हैं, क्योंकि उनसे हमने अध्ययन किया है सो वे आचार्य तो हमारे परिचित हैं ही। **यान् उ च**=और जिनको निश्चय से **न प्रविद्म**=हम नहीं जानते, अर्थात् जो 'यत्र सायं गृहमुनि' घूमते-घामते आज हमारे घर पर आ उपस्थित हुए हैं, जिनसे हमारा पूर्व परिचय नहीं है, सब अतिथियों का परिचय सम्भव भी तो नहीं। (२) परन्तु परिचित हों व अपरिचित, इस समय तो, हे **जातवेदः**=नैत्यिक स्वाध्याय के द्वारा विचारशील पुरुष **त्वं वेत्थ**=आप जानते ही हो कि **ते यति**=वे जितने हैं। उनकी संख्या को आप सम्यक् जानते ही हो। आप **स्वधाभिः**=अन्नों के द्वारा **सुकृतम्**=बड़ी सुन्दरता से समादित **यज्ञम्**=पितृयज्ञ का **जुषस्व**=सेवन करें। अर्थात् उन सब पितरों को बड़े आदर से आप भोजन कराएँ। यह पितृयज्ञ भी पंच महायज्ञों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसके होने पर घरों में सदाचार की प्रेरणा सदा प्राप्त होती रहती है और किसी प्रकार के पतन की आशंका नहीं रहती। (३) जो पितर वनस्थ भी होते हैं वे समय-समय पर सन्तानों से आमन्त्रित होने पर घरों पर आते हैं, और उन सन्तानों की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। आचार्यों को भी ये कभी-कभी आमन्त्रित करते ही हैं और संन्यासी तो घूमते-फिरते अतिथिरूपेण आ ही जाते हैं। इन सब पितरों को स्वधा के द्वारा तृप्त करना ही पितृयज्ञ है।

भावार्थ—घर में आये हुए पितरों का अन्न द्वारा सत्कार करना 'पितृयज्ञ' है। प्रत्येक गृहस्थ का यह आवश्यक कर्तव्य है।

ऋषिः—शङ्खो यामायनः॥ देवता—पितरः॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

'असुनीति' का अध्ययन

ये अ॒ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते।
तेभिः॑ स्व॒राळसु॑नीतिमे॒तां य॑थाव॒शं त॒न्वं॑ कल्पयस्व॥ १४॥

(१) **ये**=जो पितर **अग्निदग्धा**=अग्निदग्ध हैं, अर्थात् अग्निविद्या में परिपक्व ज्ञान वाले व निपुण हैं, जिन्होंने अग्नि आदि देवों का ज्ञान प्राप्त किया है। **ये**=अथवा जो **अनग्निदग्धाः**=अग्निविद्या में निपुण नहीं भी हैं, अर्थात् जिन्होंने इन अग्नि आदि देवों का ज्ञान प्राप्त नहीं किया। आत्मचिन्तन में व समाज-स्वभाव के अध्ययन में लगे रहकर जो विज्ञान की शिक्षा को बहुत महत्त्व नहीं दे पाये। ये सब पितर जो कि **दिवः मध्ये**=ज्ञान के प्रकाश में **स्वधया**=(स्व+धा) आत्मतत्त्व के धारण से **मादयन्ते**=अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हैं। **तेभिः**=उन पितरों से **स्वराट्**=आत्मशासन करनेवाला तू **एतां असुनीतिम्**=इस प्राण विद्या को **कल्पयस्व**=सिद्ध कर। प्राणविद्या को सिद्ध करके **यथावशम्**=इच्छा के अनुसार अर्थात् जैसा चाहिए वैसा **तन्वम्**=शरीर को कल्पयस्व=शक्तिशाली बना। (२) पितरों को यहाँ दो भागों में बाँटा है—(क) एक तो वे हैं जिन्होंने प्रकृतिविद्या का खूब अध्ययन किया है। उन्हें ही यहाँ 'अग्निदग्ध' कहा गया है, (ख) दूसरे वे हैं जिन्होंने समाजशास्त्र व अध्यात्मशास्त्र (sociology व metaphysics) पर प्रयत्न किया है। वे यहाँ 'अनग्निदग्ध' कहलाये हैं। ये सब के सब ज्ञान के प्रकाश में विचरण करते हैं, ज्ञान में ही उन्हें आनन्द का अनुभव होता है। (३) इन पितरों से प्राणविद्या को, जीवन की नीति को सीखने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। इस असुनीति को सीख कर हम स्वराट्=आत्मशासन करनेवाले बनेंगे तो अपने शरीरों को उचित प्रकार से शक्तिशाली बना सकेंगे।

भावार्थ—हम ज्ञानी पितरों से प्राणविद्या को सीखें, और अपने शरीरों को सुन्दर व शक्तिशाली बनायें।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि पितर 'प्राणविद्या को प्राप्त, ऋत को जाननेवाले व निर्लोभ' हैं, (१) इन पितरों के लिये हमें नमस्कार करना चाहिए, (२) हमें ये 'ज्ञान के द्वारा रक्षण करनेवाले, यज्ञशील' पितर प्राप्त हों, (३) ये पितर हमें 'शान्ति निर्भयता व निर्दोषता' प्राप्त कराते हैं, (४) वे पितर हमारे आमन्त्रण को स्वीकार करते हुए अवश्य घरों पर आयें, (५) हमें यज्ञों का उपदेश दें, (६) अपने सत्परामर्श से ये हमारे में 'वसु व अर्क' का स्थापन करें, (७) पितरों के साथ आनन्द को अनुभव करते हुए हम आवश्यकतानुसार ही भोजन को करनेवाले बनें, (८) ये पितर लोकहित के लिये प्रबल कामना वाले होते हैं, (९) ये प्रभु के उपासक व यज्ञशील होते हैं, (१०) अग्नि आदि देवों का इन्होंने खूब ज्ञान प्राप्त किया है, (११) इनके सम्पर्क में हम भी 'उपासना, स्वाध्याय व अग्निहोत्र' को अपनानेवाले बनते हैं, (१२) जो भी पितर हमारे घरों पर आयें, हम उनका सत्कार करें, (१३) उनसे प्राणविद्या को सीखकर अपने शरीरों को सुन्दर बनायें, (१४) आचार्य उचित तप व दण्ड के द्वारा हमें ज्ञान परिपक्व करें—

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—दमनो यामायनः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

तप-दण्ड व समावर्तन

मैन॑मग्ने॒ वि द॑हो॒ माभि शो॑चो॒ मास्य॒ त्वचं॑ चिक्षिपो॒ मा शरी॑रम्।

य॒दा शृ॒तं कृ॒णवो॑ जातवेदोऽथे॑मेनं॒ प्र हि॑णुतात्पि॒तृभ्यः॑॥ १॥

(१) गत सूक्त की समाप्ति पर 'असुनीति' के अध्ययन का उल्लेख था। ज्ञान के देनेवाले आचार्य भी पितर हैं। इन्हें 'अग्नि' भी कहते हैं, क्योंकि ये विद्यार्थी को ज्ञान के मार्ग पर आगे ले चलते हैं। माता-पिता बालक को आचार्य के समीप पहुँचा देते हैं, आचार्य के प्रति उसका अर्पण ही कर देते हैं। वह आचार्य विद्यार्थी को तपस्वी जीवनवाला बनाता है। बिना तप के विद्या के अध्ययन का सम्भव भी तो नहीं। परन्तु यह भी आवश्यक है कि आचार्य विद्यार्थी को इतने-अतिमात्र तप में न ले चले कि उसका शरीर अत्यन्त क्षीण व समाप्त ही हो जाए। सो मन्त्र में कहते हैं कि **अग्ने**=हे अग्रेणी आचार्य! **एनम्**=इस आपके प्रति अर्पित शिष्य को **मा विदहः**=तपस्या की अग्नि में भस्म ही न कर दीजिये, तप वही तो ठीक है जो कि शरीर को पीड़ित न कर दे। इस अतिमात्र तप से तंग आकर इस विद्यार्थी का जीवन दुःखी न हो जाए। **मा अभिशोचः**=इसे शोकयुक्त न कर दीजिये। यह घर की ही न याद करता रहे। (२) तप के अतिरिक्त शिक्षा में दण्ड भी अनिवार्य हो जाता है। आदर्श तो यही है कि दण्ड का स्थान हो ही न। परन्तु मानव स्वभाव की कमी दण्ड को भी आवश्यक ही कर देती है। परन्तु आचार्य कहीं क्रोध में दण्ड की भी अधिकता न कर दें, सो मन्त्र में कहते हैं कि **अस्य त्वचं मा चिक्षिपः**=इस की त्वचा को ही क्षिप्त न कर देना, चमड़ी ही न उधेड़ देना। इस बात का पूरा ध्यान करना कि **मा शरीरम्**=इस का शरीर विक्षिप्त न हो जाए, अर्थात् इसका कोई अंग-भंग न हो जाए। संक्षेप में, न तप ही अतिमात्र हो और ना दण्ड। शरीर को अबाधित करनेवाला तप हो और अमृतमय हाथों से ही दण्ड दिया जाये। (३) इस प्रकार तप व दण्ड की उचित व्यवस्था से **यदा**=जब, हे **जातवेदः**=ज्ञानी आचार्य! आप **शृतं कृणवः**=इस विद्यार्थी को ज्ञान में परिपक्व कर चुकें, **अथा**=तो **ईम्**=अब **एनम्**=इस विद्यार्थी को **पितृभ्यः**=इसके जन्मदाता माता-पिता के लिये **प्रहिणुतात्**=आप भेजनेवाले हों। ज्ञान देने के बाद आचार्य विद्यार्थी को वापिस पितृगृह में भेजता है। यही बालक का समावर्तन होता है।

भावार्थ—आचार्य उचित तप व दण्ड व्यवस्था को रखते हुए विद्यार्थी को ज्ञान परिपक्व करते हैं, और इस अध्ययन की समाप्ति पर उसे वापिस पितृगृह में भेजते हैं।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवानां वशनीः

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति॥ २॥

(१) हे **जातवेदः**=विकसित ज्ञान वाले आचार्य! आप **यदा**=जब इस विद्यार्थी को **शृतं करसि**=ज्ञान परिपक्व कर देते हैं, **अथ**=तो **ईम्**=अब **एनम्**=इसको **पितृभ्यः**=अपने माता-पिता के लिये **परिदत्तात्**=वापिस देते हैं। जब तक यह विद्यार्थी ज्ञान परिपक्व नहीं होता तब तक आचार्यकुल में ही निवास करता है। ज्ञान को प्राप्त करके घर में लौटता है। (२) आचार्यकुल में रहता हुआ **यदा**=जब **एतां असुनीतिम्**=इस प्राणविद्या को, जीवन-नीति को **गच्छाति**=अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेता है, **अथा**=तब यह ज्ञान को प्राप्त पुरुष **देवानाम्**=सब देवों का, इन्द्रियों को **वशनीः**=वश में प्राप्त करानेवाला **भवाति**=होता है। 'असुनीति' का अध्ययन करके यह सूर्यादि देवों का इस प्रकार उचित सम्पर्क बनाता है कि ये सब देव उसके अनुकूल ही अनुकूल होते हैं, मानो ये सब देव उसके वश में हों। इन देवों के साथ इसका किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होता। ये देव ही शरीर में चक्षुरादि के रूप से रह रहे हैं। इन शरीरस्थ देवांशों का बाह्य देवों से किसी प्रकार के युद्ध का न होना ही 'स्वास्थ्य' कहलाता है। इसी का वर्णन अगले मन्त्र में कुछ विस्तार

से दिया है—

भावार्थ—आचार्यकुल में असुनीति का अध्ययन करके हम सूर्यादि देवों को वश में प्राप्त करानेवाले हों। इनसे हमारी प्रतिकूलता न हो और हम पूर्ण स्वस्थ हों।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवों के साथ लाड़ाई का न होना

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः॥ ३॥

(१) कभी-कभी पिता पुत्र में भी संघर्ष हो जाता है, पुत्र अलग घर बसा लेता है और उसका पितृगृह में आना जाना नहीं रहता। यहाँ 'सूर्य' पिता है तो शरीर में अक्षि में निवास करनेवाली चक्षु उसका पुत्र है। 'वात' पिता है, शरीरस्थ प्राण उसका पुत्र है। 'द्युलोक' पिता है, 'मस्तिष्क' पुत्र। 'पृथिवी' पिता है, 'शरीर' पुत्र। 'अन्तरिक्ष' पिता है, 'हृदय' पुत्र। इन में पिता पुत्रों का संघर्ष हो जाए तो सारा स्वास्थ्य ही समाप्त हो जाए। सो कहते हैं कि **चक्षुः**=तेरी आँख **सूर्यं गच्छतु**=सूर्य को जाये। सूर्य के यहां उसका आना-जाना बना रहे। सूर्य के साथ चक्षु का संघर्ष होते ही चक्षु विकृत हो जाती है, वैदिक संस्कृति में सूर्याभिमुख होकर ध्यान करने का विधान इस दृष्टिकोण से कितना महत्त्वपूर्ण है? हम प्रभु का ध्यान करते हैं, और 'सूर्य' आँख को शक्ति देता है। (२) **आत्मा**=(प्राणः सा०) तेरा प्राण **वातम्**=वायु के प्रति जानेवाला हो। शुद्ध वायु में प्राणायाम के द्वारा कौन-सा दोष दूर नहीं किया जा सकता? (३) इसी प्रकार **द्यां च गच्छ**=तू मस्तिष्क के दृष्टिकोण से द्युलोक को जा। तेरे मस्तिष्क व द्युलोक में अनुकूलता हो। द्युलोक के सूर्य व नक्षत्रों की तरह तेरे मस्तिष्क में भी ज्ञान-विज्ञान के सूर्य व नक्षत्र चमकें। (४) **पृथिवीं च**=तू शरीर से पृथिवी को जानेवाला बन। 'अखाड़े में लोटना-पोटना व शरीर पर भस्म रमाना' शारीरिक दोषों को दूर करता है। मट्टी की रोटी पेट पर रखने से ज्वर उतर जाता है। यही शरीर के विषों को खैंच लेती है। (५) **अपो वा गच्छ**=(आपः=अन्तरिक्ष) हृदय के दृष्टिकोण से तू अन्तरिक्ष को जानेवाला हो। जैसे 'अन्तरिक्ष' (अन्तरिक्ष) द्युलोक व पृथिवीलोक के मध्य में है, इसी प्रकार तेरा हृदय सदा मध्यमार्ग का सेवन करनेवाला हो, वहाँ 'अकामता' न हो और 'कामात्मता' भी न हो जाए। (६) इस प्रकार सदा बना रहे। **धर्मणा**=शरीर के धारण के हेतु से यह आवश्यक है। जब देवों के साथ सम्बन्ध नहीं रहता, तब शरीर का धारण न होकर शरीर भी गिर जाता है। सो **यदि**=यदि **तत्र**=वहां देवों में **ते हितम्**=तेरा स्थापन (धा+क्त) होना है **शरीरैः**=इन स्थूल व सूक्ष्म शरीरों से तू **ओषधीषु प्रतितिष्ठा**=ओषधियों में प्रतिष्ठित हो। अर्थात् तू शरीरों के धारण के लिये ओषधियों, वानस्पतिक भोजनों का ही प्रयोग कर।

भावार्थ—सूर्य आदि देवों के साथ हमारी अनुकूलता बनी रहे। हम इसके लिये वानस्पतिक भोजनों का ही प्रयोग करें। देव वनस्पति का ही सेवन करते हैं।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवों द्वारा प्रभु का धारण

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम्॥ ४॥

(१) **अजः**=(अ+ज) कभी शरीर को न धारण करनेवाला, न पैदा होनेवाला, अथवा 'अज्

गतिक्षेपणयोः '=गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाला प्रभु ही **भागः**=तेरा उपास्य है (भज सेवायाम्) प्रभु का ही तूने उपासन करना है। **तं**=उस प्रभु को **तपसा**=तप के द्वारा **तपस्व**=तू दीप्त कर। सर्वव्यापकता के नाते अपने हृदयाकाश में वर्तमान उस प्रभु को तू तप से देखनेवाला हो। (२) **तम्**=उस प्रभु को **ते**=तेरी **शोचिः**=(शुच्) पवित्रता व ज्ञानदीप्ति **तपतु**=दीप्त करे, प्रकाशित करे। **तम्**=उस प्रभु को **ते**=तेरी **अर्चिः**=(अर्च पूजायाम्)=पूजा व उपासना दीप्त करे। प्रभु का दर्शन पवित्रता, ज्ञानदीप्ति व उपासना से ही सम्भव है। (३) हे **जातवेदः**=विकसित ज्ञान वाले 'दमन' **याः**=जो **ते**=तेरी **शिवाः तन्वः**=कल्याणमय व शुभ शरीर हैं **ताभिः**=उन से **एनम्**=इस प्रभु को **वह**=तू धारण करनेवाला बन, जो प्रभु **उ**=निश्चय से **सुकृताम्**=पुण्यशील लोगों के **लोकम्**=निवास-स्थान है। पुण्यशील लोग उस तृतीय धाम प्रभु में ही विचरण करते हैं। इस प्रभु को हम तभी धारण कर सकते हैं जब कि हम अपने शरीरों को निर्दोष बना पाते हैं। शरीरों की निर्दोषता के लिये 'तप, पवित्रता, ज्ञानदीप्ति व उपासना' साधन हैं। इन साधनों का ही उल्लेख मन्त्र के पूर्वार्ध में 'तपसा, शोचिः व अर्चिः' इन शब्दों से हुआ है।

भावार्थ—हम 'तप, पवित्रता, ज्ञानदीप्ति व उपासना' से शरीरों को निर्दोष बनाते हुए उस प्रभु को धारण करनेवाले बनें, जिन प्रभु में पुण्यशील लोग निवास करते हैं।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पुनः पितरों के प्रति अपना अर्पण परिव्राजित होने की तैयारी

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥ ५॥

(१) इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में माता-पिता ने सन्तानों को पितरों (=आचार्यों) के प्रति सौंपा था। आचार्यों ने उसे ज्ञान परिपक्व बनाकर घर वापिस भेजा था। यहाँ घरों में देवों के साथ अनुकूलता रखते हुए यह स्वस्थ शरीर बनाया और प्रभु की उपासना द्वारा हृदय में प्रभु का दर्शन करनेवाला बना। इस प्रकार गृहस्थ को सुन्दरता से समाप्त करके हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **पुनः**=फिर वनस्थ होने के समय **पितृभ्यः**=वनस्थ पितरों के लिये **अवसृज**=अपने को देनेवाला बन। उनके चरणों में अपना तू अर्पण कर। उनके समीप रहता हुआ ही तू फिर से साधना करके जीवन के अन्तिम प्रयाण के लिये तैयार हो सकेगा। (२) तू उस पितर के लिये अपने को अर्पित कर **यः**=जो **ते**=तेरे द्वारा **आहुतः**=आहुत हुआ-हुआ, अर्थात् जिसके प्रति तूने अपना अर्पण किया है, ऐसा वह **स्वधाभिः**=आत्मतत्त्व के धारण के हेतु से **चरति**=सब क्रियाएँ करता है। अर्थात् उन पितरों का प्रयत्न यह होता है कि तुझे आत्मदर्शन के मार्ग पर डाल दें। (३) अब आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त करके तू प्रव्रजित होता है और **आयुः**=उत्कृष्ट जीवन को, सशक्त व उत्तम जीवन को **वसानः**=धारण करता हुआ, **शेषः उपवेतु**=(शेषस्=अवशिष्ट) अवशिष्ट भोजन को ही तू प्राप्त करनेवाला हो। संन्यासी ने भिक्षा माँगनी है, परन्तु माँगनी तब है जब कि 'विद्धूमे सन्नमुसले'=रसोई में से धूआँ निकलना बन्द हो चुका हो और मुसल व्यापार भी समाप्त हो चुका हो। इस समय तक सब घर के व्यक्ति खा-पी चुके होंगे और बची-खुची ही रोटी भिक्षा में प्राप्त होगी। यही 'शेषः' है। इसके लेने में किसी पर यह संन्यासी बोझ नहीं बनता। (४) इस प्रकार गृहस्थ्य पर कम से कम बोझ होता हुआ यह **जातवेदः**=विकसित ज्ञानवाला परिव्राजक **तन्वा**=विस्तृत शक्तियों वाले शरीर से **संगच्छताम्**=संगत हो। इसका शरीर क्षीणशक्ति न होकर बढ़ी हुई शक्तियों वाला हो। इसका जीवन परिपक्व फल की तरह अधिक सुन्दर प्रतीत हो।

भावार्थ—गृहस्थ के बाद वनस्थ होकर यह उन पितरों के सम्पर्क में आये जो कि इसे आत्मदर्शन के मार्ग पर ले चलें। संन्यास होकर यह बचे हुए अन्न का भिक्षा में प्राप्त करे, स्वस्थ सुन्दर शरीर वाला हो।

ऋषिः—**दमनो यामायनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अग्नि व सोम द्वारा चिकित्सा (विष-प्रतीकार)

यत्ते॑ कृ॒ष्णः श॑कु॒न आ॑तु॒तोद॑ पिपी॒लः स॒र्प उ॒त वा॒ श्वाप॑दः।
अ॒ग्निष्टद्वि॒श्वाद॑ग॒दं कृ॑णोतु॒ सोम॑श्च॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ ॥ ६ ॥

(१) यहाँ नगरों में रहते हुए हम अनुभव करते हैं कि कुत्ते के काटने से कितने ही व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार वानप्रस्थ में, जहाँ कि मकानों व पलंगों का स्थान कुटिया व भूमि ही ले लेती है, कृमि कीट के दंश की अधिक आशंका हो सकती है। सो कहते हैं कि **यत्**=जब **कृष्णः शकुनः**=यह काला पक्षी कौआ अथवा द्रोणकाक (=काकोल) **ते**=तुझे **आतुतोद**=पीड़ित करता है, **पिपीलः**=कीड़ा-मकोड़ा तुझे काट खाता है, **सर्पः**=साँप डस लेता है, **उत वा**=अथवा **श्वापदः**=कोई हिंस्र-पशु तुझे घायल कर देता है, **तत्**=तो **विष्वात्**=(विश्व+अद्) सब विष आदि को भस्म कर देनेवाली **अग्निः**=आग **अगदं कृणोतु**=तुझे नीरोग करनेवाली हो। सर्पादि के दंश के होने पर उस विषाक्त स्थल को अग्नि के प्रयोग से जलाकर विष प्रभाव को समाप्त करना अभीष्ट हो सकता है। विद्युत् चिकित्सा में कुछ इसी प्रकार का प्रभाव डाला जाता है। (२) यह अग्नि प्रयोग तभी सफल हो पाता है यदि शरीर में रोग से संघर्ष करनेवाली वर्चःशक्ति (vitality) ठीक रूप में हो। इस वर्चस् शक्ति के न होने पर बाह्य उपचार असफल ही रहते हैं। इसीलिए मन्त्र में कहते हैं कि **सोमः च**=यह सोम भी, वीर्यशक्ति भी तुझे नीरोग करे, **यः**=जो सोमशक्ति **ब्राह्मणान्**=ज्ञानी पुरुषों में **आविवेश**=प्रवेश करती है। ज्ञानी लोग सोम के महत्त्व को समझकर उसे सुरक्षित रखने के लिये पूर्ण प्रयत्न कहते हैं। नासमझी में ही इस सोम का अपव्यय हुआ करता है। शरीरस्थ यह सोम ही वस्तुतः सब विकारों के साथ संघर्ष करता है और उन्हें दूर करनेवाला होता है। औषधोपचारों का स्थान गौण है, वे इसके सहायक-मात्र होते हैं।

भावार्थ—पक्षी, कृमि, कीट, सर्प, हिंस्र-पशुओं से उत्पन्न किये गये विकारों को अग्नि के प्रयोग से तथा शरीर में सोम के संरक्षण से हम दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—**दमनो यामायनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आत्म-संरक्षण प्रभुरूप कवच व भरा हुआ शरीर

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते ॥ ७ ॥

(१) गतमन्त्र में बाह्य कृमियों से होनेवाले विकारों की चिकित्सा का निर्देश था। प्रस्तुत मन्त्र अध्यात्म रोगों को चिकित्सा का उल्लेख करता है। इसके लिये कहते हैं कि **गोभिः**=वेद-वाणियों के द्वारा ज्ञान की वाणियों को सदा अपनाने के द्वारा **अग्नेः वर्म**=उस प्रभु के कवच को **परिव्ययस्व**=चारों ओर से ओढ़नेवाला बन। अपने को प्रभुरूप कवच से आच्छादित करले। (२) इसके अतिरिक्त तेरा शरीर अस्थिपंजर मात्र ही न हो। तू अपने शरीर को भी **पीवसा**=मज्जा के द्वारा **मेदसा च**=और मेदस् के द्वारा **सं प्रोर्णुस्व**=आच्छादित कर। तेरा शरीर, मज्जा व मेदस्

से भरा-सा प्रतीत हो, क्षीण न हो। पतला-दुबला आदमी कुछ चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है। शरीर भरा हुआ हो और मनुष्य प्रभु स्मरण में चलता हो तो वासनाओं का आक्रमण नहीं होता। पतला-दुबला व्यक्ति भी वासनाओं का शिकार हो जाता है। प्रभु से दूर होने पर तो वासनाएँ हमारे पर आधिपत्य जमा ही लेती हैं। (३) तू प्रभु को कवच बना, तथा शरीर भी तेरा भरा हुआ हो। जिससे **त्वा**=तुझे यह काम **न इत् पर्यङ्ख्याते**=चारों ओर से चिपट नहीं जाता, तुझे यह अपने वशीभूत नहीं कर लेता। वह 'काम' जो कि **धृष्णुः**=धर्षण करनेवाला है, हमें कुचल डालनेवाला है। **हरसा जर्हृषाणः**=विषयों में हरण के द्वारा रोमाञ्चित करनेवाला है। **दधृक्**=पकड़ लेनेवाला है, अर्थात् इस काम के वशीभूत हो जाने पर इस से पीछा छूटना बड़ा कठिन है। **विधक्ष्यन्**=और अपने काबू करके यह काम हमें भस्म कर देनेवाला है।

भावार्थ—इस काम के आक्रमण से हम बच तभी सकते हैं यदि प्रभु स्मरण रूप कवच हमने धारण किया हुआ हो और हमारा शरीर अस्थिपंजर-सा न होकर भरा हुआ व सुदृढ़ हो।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शरीर रूप चमस

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते॥ ८॥

(१) प्रगतिशील जीव को 'अग्नि' कहते हैं। यह अग्नि अपने इस शरीर को चमस=सोमपात्र बनाता है। इस शरीररूप चमस में वह सोम=वीर्य को सुरक्षित रखता है। जैसे घृत पूर्ण चम्मच कुछ टेढ़ा हो जाए तो घृत के गिरने की आशंका हो जाती है, उसी प्रकार इस शरीररूप चमस के भी टेढ़े होने से, इसमें कुटिलता के आने से सोम का नाश हो जाता है। इसलिए मन्त्र में कहते हैं कि **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! **इमं चमसम्**=इस सोमपात्रभूत शरीर-चमस को **मा विजिह्वरः**=तू कुटिल मत होने दे। यदि यहाँ कुटिल वृत्तियाँ पनप उठी तो सोम के रक्षण का सम्भव न रहेगा। (२) सोम के रक्षण से ही तो यह शरीर **देवानाम्**=देवताओं का बनता है **उत**=और यह शरीर **सोम्यानाम्**=सोम्य-शान्त-पुरुषों का होता है। अर्थात् सोम के सुरक्षित होने पर हम देववृत्ति वाले व सोम स्वभाव के होते हैं। दिव्यगुणों को विकसित करने का तथा सोम्यता के सम्पादन का उपाय यही है कि हम इस शरीर को चमस=सोमपात्र बनाएँ। यह देवों व सोम्यों का चमस **प्रियः**=अत्यन्त प्रिय होता है, बड़ा प्यारा लगता है, कान्ति-सम्पन्न होता है। (३) **एषः**=यह **यः**=जो **चमसः**=सोमपात्र बना हुआ शरीर है, जो कि **देवपानः**=देवों के सोमपान का स्थान बनता है (पिबन्ति अस्मिन् इति पानः) **तस्मिन्**=उस शरीर में **देवाः**=देव लोग **अमृताः**=रोगरूप मृत्युओं से आक्रान्त न होते हुए तथा विषय-वासनाओं के पीछे न मरते हुए **मादयन्ते**=हर्षित होते हैं। इस शरीर में देव नीरोगता व निर्मलता के आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—कुटिल वृत्तियों से ऊपर उठकर हम शरीर में सोमरक्षण के द्वारा इस शरीर को देवों व सोम्य पुरुषों का प्रिय शरीर बनायें। हम नीरोग व निर्मल वृत्ति के बनकर आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

क्रव्याद अग्नि का निर्वासन

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।

इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ९॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार शरीर को प्रिय व अमृत बनाने के लिये आवश्यक है कि हम आग्नेय भोजनों को न करके सोम्य भोजनों के ही करनेवाले हों। तामस भोजन को अपने जीवन में स्थान न देकर वानस्पतिक भोजनों के ही करनेवाले बनें। इसी भाव को वेद की काव्यमय भाषा में इस प्रकार कहा गया है कि '**क्रव्यादम्**'=मांस को खानेवाली **अग्निम्**=अग्नि को **दूरं प्रहिणोमि**=मैं दूर भेजता हूँ। हमारी जाठराग्नि में कभी भी मांस की आहुति न दी जाए। मांस 'हव्य' पदार्थ नहीं है। (२) यह क्रव्याद अग्नि तो **यमराज्ञः**=यमराजा का है, अर्थात् इस क्रव्याद अग्नि का सम्बन्ध मृत्यु की देवता से है। यह मांस भोजन मृत्यु का, रोगों का कारण बनता है। **रिप्रवाहः**=दोषों का दहन करनेवाला यह क्रव्याद अग्नि **गच्छतु**=हमारे से सुदूर प्रदेशों में जाये। हमारे से मांस भोजन दूर ही रहे। (३) **इतरः**=मांस भोजन से भिन्न वानस्पतिक भोजनों वाला **अयम्**=यह **जातवेदाः**=उत्पन्न प्रज्ञानों वाला अग्नि **एव**=ही **इह**=यहाँ हमारे जीवनों में हो। हम सदा सात्त्विक वानस्पतिक भोजनों को ही करनेवाले हों। यह भोजन ही हमें आहार शुद्धि के द्वारा सत्त्व-शुद्धि वाला बनायेगा। हमारे शुद्ध अन्तःकरणों में ज्ञान का प्रकाश होगा। (४) इसलिए **प्रजानन्**=एक समझदार पुरुष **देवेभ्यः**=दिव्यगुणों की उत्पत्ति के लिए **हव्यं वहतु**=हव्य पदार्थों को ही इस जाठराग्नि में प्राप्त करानेवाला हो। हम कभी भी मांस को भोजन न बनायें, यह अयज्ञिय है, हव्य नहीं है। मांस भोजन से क्रूरता व स्वार्थ आदि की भावनाओं का ही विकास होता है नकि दिव्यभावों का। दिव्यभावनाओं की उत्पत्ति के लिये हव्य पदार्थ ही हितकर हैं।

भावार्थ—हम मांस को सर्वथा छोड़कर यज्ञिय पवित्र वानस्पतिक भोजनों के ही करनेवाले बनें। मांस भोजन दोषों को पैदा करता है, हव्य पदार्थों का भक्षण सत्त्व-शुद्धि द्वारा ज्ञान व दिव्यगुणों की वृद्धि करनेवाला है।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वानस्पतिक भोजन व यज्ञप्रवृत्ति

यो अ॒ग्निः क्र॒व्यात्प्र॑वि॒वेश॑ वो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम्।
तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दे॒वं स घ॒र्मम्मि॑न्वात्पर॒मे स॒धस्थे॑॥ १०॥

(१) एक घर में जब तक शाक भोजन चलता है तब तक वह घर हव्याद् अग्नि वाला होता है। इन हव्य पदार्थों का प्रयोग करते हुए ये लोग अपनी बुद्धियों के विकास के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इसलिए यह हव्याद् अग्नि को **पश्यन्**=देखती हुई **यः**=जो **क्रव्यात् अग्निः**=मांस भोजन वाली अग्नि **वः गृहम्**=तुम्हारे घर में **प्रविवेश**=प्रवेश कर जाती है। **तं हरामि**=उसे घर से दूर करता हूँ (गृहान्निष्क्रमयामि सा०)। कई बार मनुष्य ठीक-ठीक सोचता ही नहीं, और ठीक न सोचने के कारण वह मांस भोजन में प्रवृत्त हो जाता है। वह मांस को भी अन्य भोजनों की तरह ही समझने लगता है। मछली को भी जलतोरी नाम देकर खाने लगता है। डाक्टर्स भी मांस को शरीर की पुष्टि के लिये आवश्यक बतलाते हैं और इस प्रकार क्रव्याद अग्नि घर में घुस जाती है। हमें चाहिए यह कि इस मांस भोजन को घर में न आने दें। (२) इस क्रव्याद अग्नि का घर में न आना इसलिए भी आवश्यक है कि 'पितृयज्ञाय'=पितरों का पूजन ठीक से चलता रहे। मांस भोजन के आते ही स्वभाव में क्रूरता बढ़ जाती है और मनुष्य कुछ स्वार्थी-सा हो जाता है। यह स्वभाव की अमधुरता व्यवहार में भी परिवर्तन ले आती है और एक युवक अपने बुजुर्गों का उचित आदर नहीं करता एवं इस क्रव्याद अग्नि वाले घर में से पितृयज्ञ उठ जाता है। (३) **स**=वह क्रव्याद अग्नि को घर से दूर करनेवाला व्यक्ति, **परमे सधस्थे**=उत्कृष्ट (सध=सह) आत्मा व परमात्मा के

मिलकर रहने के स्थान हृदय में **देवं**=उस प्रकाशमय प्रभु को **इन्वात्**=प्राप्त करे, उस प्रभु के दर्शन के लिये यत्नशील हो। तथा **परमे सधस्थे**=घर में सब के मिलकर बैठने के स्थान इस यज्ञवेदि में **घर्मम**=यज्ञ को **इन्वात्**=प्राप्त करे। अर्थात् हृदय में जहाँ प्रभु का ध्यान करे वहां यज्ञगृह में बैठकर घर के सब सभ्य अग्निहोत्र करें।

भावार्थ—यदि एक घर में मांसाहार को स्थान नहीं मिलता तो वहाँ पितृयज्ञ ठीक से चलता है, ब्रह्मयज्ञ (प्रभु का उपासन) तथा अग्निहोत्र भी वहाँ निरन्तर होते ही हैं।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

देवत्व व पितृत्व तथा शाकाहार

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः। प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥ ११॥

(१) **यः**=जो यह **क्रव्यवाहनः**=मांस का वहन करनेवाला **अग्निः**=क्रव्याद अग्नि अर्थात् मांस भोजन **ऋतावृधः**=ऋत का वर्धन करनेवाले, यज्ञ (=ऋत) को अपने जीवन में बढ़ानेवाले **पितॄन्**=पितरों के साथ भी **यक्षत्**=संगत हो जाता है अर्थात् यज्ञशील पितरों में भी कभी-कभी मांस-भोजन की ओर झुकाव हो जाता है। सो वे प्रभु **देवेभ्यः**=देवताओं के लिये **च**=और **पितृभ्यः**=पितरों के लिये भी **इद् उ**=निश्चय से **हव्यानि**=हव्य पदार्थों का **प्रवोचति**=प्रकृष्ट उपदेश देते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार से, भिन्न-भिन्न शब्दों में प्रभु मांस भोजन की हीनता व त्याज्यता का प्रतिपादन करते हैं और शाक भोजन की उपादेयता को कहते हैं। अथर्व के ये शब्द प्रसिद्ध हैं कि 'व्रीहिमत्तं यवमत्तं माष भक्षो तिलम्'=जौ, चावल, उड़द व तिल आदि पदार्थों को ही तुमने भोजन के रूप में लेना है। (२) बारम्बार उपदेश की आवश्यकता को ही यहाँ यह कहकर व्यक्त किया गया है कि यह मांस भोजन बड़ों-बड़ों को भी लुब्ध कर लेता है। सो इससे बचने के लिये आवश्यक है कि हमें स्थान-स्थान पर प्रभु की ओर से हव्य पदार्थों के प्रयोग का उपदेश हो। यह उपदेश विशेषकर देववृत्ति व पितृवृत्ति वालों के लिये आवश्यक है, क्योंकि उनका अनुकरण ही सामान्य लोगों ने करना होता है।

भावार्थ—देव व पितर सदा हव्य पदार्थों को ही ग्रहण करनेवाले हों। वस्तुतः यह हव्य पदार्थों का स्वीकार ही उनके देवत्व व पितृत्व को कायम रखता है। मांस भोजन से वे देव व पितर नहीं रह जाते।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उशन्=प्रभु प्राप्ति ही कामना वाला

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे॥ १२॥

(१) हे हव्याद अग्ने! **उशन्तः**=उस प्रभु प्राप्ति की कामना करते हुए हम **त्वा**=तुझे **निधीमहि**=अपने में स्थापित करते हैं वस्तुतः यदि हम हव्य पदार्थों का सेवन करेंगे तभी शुद्ध अन्तःकरण वाले बनकर प्रभु के दर्शन को भी कर सकेंगे। (२) **उशन्तः**=उस प्रभु की कामना करते हुए हम **समिधीमहि**=तुझ हव्याद अग्नि को समिद्ध करते हैं। जाठराग्नि मन्द हो जाने पर भी सब शक्तियों का ह्रास हो जाता है और प्रभु दर्शन का प्रसंग नहीं रहता। निर्बल के लिये प्रभु दर्शन का सम्भव नहीं। सो यह स्पष्ट है कि हमें इस अन्तःस्थित वैश्वानर अग्नि में हव्य पदार्थों को ही डालना है, और उन्हें भी इस प्रकार मात्रा में ही प्रयुक्त करना है कि यह अग्नि बुझ ही न जाए। 'मात्रा बलम्' में तैत्तिरीय उपनिषद् के शब्द मात्रा के महत्त्व को उत्तमता से व्यक्त कर रहे हैं। (३) हे **उशन्**=हमारे हित की कामना करनेवाले अग्ने! **उशतः**=प्रभु प्राप्ति की कामना वाले

पितॄन्=पितरों को **हविषे अत्तवे**=हव्य पदार्थों को खाने के लिये **आवह**=समन्तात् प्राप्त करा। ये पितर सदा हव्य पदार्थों को ही स्वीकार करें। इन के ग्रहण से इन में दिव्यता का वर्धन होगा। इस दिव्यता के वर्धन से ये 'महादेव' को प्राप्त करने के योग्य बनेंगे।

भावार्थ—हम अपनी वैश्वानर अग्नि में हव्य पदार्थों को ही मात्रा में डालें। इस प्रकार समिद्ध होकर यह अग्नि हमें सशक्त बनायेगी और हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

कियाम्बु तथा पाकदूर्वा

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑:। कि॒याम्ब्वत्र॑ रोहतु पाकदू॒र्वा व्य॑ल्कशा॥ १३॥

(१) भोजन दो भागों में बटे हुए हैं—(क) सौम्य तथा (ख) आग्नेय। आग्नेय भोजन उत्तेजित करनेवाले हैं, वे जलन को पैदा करते हैं—Acidity (ऐसिडिटि) को बढ़ानेवाले हैं। अम्लता के वर्धक होकर ये आयुष्य को क्षीण करते हैं। इसके विपरीत सौम्य भोजन शान्त स्वभाव को जन्म देते हैं। इसीलिए यहाँ मन्त्र में कहा है कि हे **अग्ने**=आग्नेय भोजन! अग्नितत्त्व की प्रधानता वाले भोजन! **त्वम्**=तूने **यम्**=जिसको **समदहः**=जला-सा दिया है, **तं उ**=अब उसको निश्चय से **पुनः**=फिर **निर्वापया**=बुझानेवाला हो। उत्तेजना को समाप्त करके उसमें शान्ति को स्थापित करनेवाला हो। (२) इस शान्ति-स्थापना के उद्देश्य से **अत्र**=यहाँ हमारे जीवन में **कियाम्बु**='कियत् प्रयाणमुदकम् (अम्बु) अस्मिन्' अत्यधिक जल के प्रमाण वाले ये व्रीहि (=चावल) आदि पदार्थ तथा **व्यल्कशा**=(विविधशाखायुक्ता नि०) पृथिवी पर अनेक शाखाओं से फैल जानेवाली यह **पाकदूर्वा**=परिपक्क दूर्वा अर्थात् पत्रशाक **रोहतु**=वृद्धि को प्राप्त करें। चावल तथा दूर्वा-प्रकार के शाक (=मांस भोजन से विपरीत घास भोजन) सौम्य भोजन हैं। ये हमारे में उत्तेजना को न पैदा करके शान्ति को देनेवाले हों।

भावार्थ—हम सदा सौम्य भोजनों को ही प्रधानता दें।

ऋषिः—**दमनो यामायनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मण्डूकी

शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति। म॒ण्डू॒क्या॒३॒॑ सु सं ग॑म इ॒मं स्व॑१॒॑ग्निं ह॑र्षय॥ १४॥

(१) प्रस्तुत मन्त्र में **मण्डूकी**=मण्डूकपर्णी का उल्लेख है, यह कोश के अनुसार कई पौधों का नाम है (Name of sevaral plants)। ये सब पौधे शीतवीर्य व सुख प्रीति के बढ़ानेवाले हैं। शीतवीर्य होने से इन्हें मन्त्र में 'शीतिके' शब्द से सम्बोधित किया गया है तथा सुख-प्रीतिवर्धक होने से 'ह्लादिके' कहा गया है। हे **शीतिकावति**=शीतवीर्य वाली, शरीर में उत्तेजना को दूर करके शान्ति को जन्म देनेवाली **शीतिके**=शीतिका नाम वाली ओषधि, हे **ह्लादिकावति**=शरीर में उत्तम धातुओं को जन्म देकर आह्लाद को बढ़ानेवाली **ह्लादिके**=ह्लादिका नामवाली ओषधि; ऐ **ह्लादिकावति**=शरीर को उत्तम धातुओं से मण्डित करनेवाली है। तू **आ सु संगम**=सब प्रकार से उत्तमता से हमारे साथ संगत हो और **इमं**=इस **अग्निम्**=प्रगतिशील जीव की वैश्वानर अग्नि को **हर्षय**=हर्षित कर। इस की यह जाठराग्नि बुझ न जाए। यह दीप्त अग्नि इसके जीवन को भी दीप्त करनेवाली हो। दीप्त अग्नि ही शरीर में शान्ति व हर्ष के वर्धन का कारण बनती है।

भावार्थ—हमारे भोजन मण्डूकपर्णी ओषधि के समान शीतवीर्य व प्रीतिवर्धक हो।

सूक्त के प्रारम्भ में आचार्य विद्यार्थी को तप व दण्ड की उचित व्यवस्था से ज्ञान परिपक्क करते हैं। (१) आचार्यकुल में विद्यार्थी असुनीति=प्राणविद्या का अध्ययन करता है और स्वास्थ्य की कला

को सीखता है, (२) सूर्यादि देवों के साथ यह अपनी अनुकूलता बनाता है, (३) तप पवित्रता व ज्ञानदीप्ति से यह प्रभु को धारण करता है, (४) गृहस्थ की समाप्ति पर फिर से पितरों के समीप वन में आता है, (५) विषादि को अग्नि प्रयोग से दूर करता है, (६) प्रभु स्मरण रूप कवच को धारण करता है, (७) अपने जीवन से कुटिलता को दूर करता है, (८) मांस भोजन को सर्वथा छोड़ता है, (९) वानस्पतिक भोजन द्वारा यज्ञिय वृत्ति वाला बनता है, (१०) शाकाहार से ही देवत्व तथा पितृत्व की वृद्धि होती है, (११) हम प्रभु की प्राप्ति की कामना वाले बनते हैं, (१२) हम कियाम्बु व पाकदूर्वा का प्रयोग करें, (१३) मण्डूकपर्णी जाति की ओषधियों को अपनायें जो कि शीतवीर्य व हर्षवर्धक हैं, (१४) ऐसा होने पर त्वष्टा की दुहिता सरण्यू से हमारा परिणय होगा।

द्वितीयोऽनुवाकः

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः** ॥ देवता—**सरण्यूः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

त्वष्टा की दुहिता का परिणय

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश॥ १ ॥

(१) 'त्वष्टा' परमात्मा का नाम है, वे प्रभु (त्वक्षतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः) सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले व संसार रूप फलक के बढ़ई हैं, तथा (त्विषेर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणः) वे प्रभु दीप्तिमय हैं, ज्ञानदीप्ति से परिपूर्ण हैं। (२) इस त्वष्टा की 'दुहिता'=(दुह प्रपूरणे) 'वेद' है जो कि अपने पाठक के जीवन का पूरण करनेवाली है। इसे ही द्वितीय मन्त्र में 'सरण्यू' नाम दिया गया है। यह 'सर'=गति (सृ गतौ) तथा 'ण'=ज्ञान, इन दोनों को (यु=मिश्रण) हमारे साथ जोड़नेवाली है। (३) इसका अध्ययन करना ही इसके साथ परिणीत होना है। इसके साथ परिणीत होनेवाला 'विवस्वान्'=ज्ञान की किरणों वाला है। ज्ञान की किरणों वाला ज्ञानी पुरुष 'विवस्वान्' है, तो प्रभु 'महान् विवस्वान्' हैं। जैसे आत्मा-परमात्मा ये शब्द जीव व ईश्वर के वाचक हैं, उसी प्रकार यहाँ विवस्वान् तथा महान् विवस्वान् शब्द हैं। यह वेद वाणी उस 'महान् विवस्वान्' प्रभु की जाया=प्रादुर्भाव करनेवाली है, 'सर्वेवेदा: यत् पदम् आमनन्ति'। उस प्रभु के प्रकाश को करती हुई यह अज्ञानान्धकार को नष्ट कर देती है। (४) यह त्वष्टा की दुहिता (अश्विनौ) का भरण करती है, इसी से यह 'यम'=twins=युगल की माता कहलाती है यह युगल 'नासत्य व दस्र' हैं। वेदवाणी का परिणाम जीवन में यही होता है कि न+असत्य=असत्य का अंश नष्ट हो जाता है, 'दसु उपक्षये' और सारी बुराइयों व रोगों का विध्वंस हो जाता है। 'अश्विनौ' का अर्थ 'प्राणापान' भी है 'प्राण' असत्य को नष्ट करता है तो 'अपान' सब बुराइयों को दूर करता है। (५) त्वष्टा की इस दुहिता के विवाह के समय सम्पूर्ण भुवन उपस्थित होता है अर्थात् मनुष्य को सम्पूर्ण भुवन का ज्ञान देनेवाली यह वेदवाणी होती है, 'वेद' सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ तो है ही। (६) मन्त्र में यह सब इन शब्दों में कहा गया है कि—**त्वष्टा**=प्रभु **दुहित्रे**=दुहिता के लिये **वहतुं**=विवाह को **कृणोति**=रचते हैं। **इति**=इस कारण **इदं विश्वं भुवनं समेति**=यह सम्पूर्ण भुवन एकत्र उपस्थित होता है। **यमस्य माता**=यह यम को, युगल को जन्म देनेवाली **पर्युह्यमाना**=जब परिणीत होती है तो वह **महो विवस्वतः जाया**=उस महान् विवस्वान् प्रभु का प्रादुर्भाव करनेवाली होती है। इस प्रादुर्भाव के होने पर **ननाश**=सब अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—हम वेदज्ञान को प्राप्त करें जिससे प्रभु दर्शन के अधिकारी हों और अपने

अज्ञानान्धकार को नष्ट कर सके।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः** ॥ देवता—**सरण्यूः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सरण्यू के दो सन्तान

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदद्दुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ २ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाला सब देवों के ज्ञान को प्राप्त करने के कारण 'देवश्रवाः' कहलाता है 'देवेषु श्रवे यस्य'। यह संयत जीवनवाला बनने से 'यामायन'=यम का पुत्र कहा गया है। यह 'देवश्रवा यामायन' ही प्रस्तुत सूक्त का ऋषि है। यह कहता है कि इस **अमृताम्**=कभी नष्ट न होनेवाली अथवा मृत्यु से बचानेवाली इस वेदवाणी को **मर्त्येभ्यः**=वासनाओं से आक्रान्त होकर विषयों के पीछे मरनेवाले मनुष्यों से **अपागूहन्**=दूर छिपाकर रखा जाता है। **अमताम्**=इसे प्राप्त नहीं कर सकता। निरुक्त के परिशिष्ट में हम पढ़ते हैं कि 'विद्या' ब्राह्मण के पास आई और कहा कि मुझे सुरक्षित करो, मैं तुम्हारा कोश हूँ। मुझे 'असूयक-अनृजु व अयति' (असंयमी) पुरुष के लिये न देना जिससे मैं वीर्यवती होऊँ। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह अमृत वेदवाणी असंयत जीवन वाले पुरुष को प्राप्त नहीं होती। (२) इस वेदवाणी को **सवर्णाम् कृत्वी**=प्रभु वर्णन युक्त करके **विवस्वते**=ज्ञानी पुरुष के लिये **अददुः**=देते हैं। 'सर्वे वेदाः यत् पदम् आमनन्ति' इन शब्दों के अनुसार यह वेदवाणी प्रभु के वर्णन से युक्त है। (३) **उत**=और यह वेदवाणी **अश्विनौ**=प्राणापान का **अभरत्**=पोषण करती है। 'असुनीति'=प्राणविद्या का प्रतिपादन करनेवाली यह वेदवाणी प्राणापान का पोषण क्यों न करेगी? (४) **यत्**=जो **तत्**=वह प्राणापान का पोषण करनेवाली अमृता वेदवाणी **आसीत्**=थी, अर्थात् जब इसने हमारे प्राणापान की शक्तियों का वर्धन किया तो **सरण्यूः**=ज्ञान व कर्म से हमारा मेल करनेवाली इस वेदवाणी ने **द्वा मिथुना**=दो युगलभूत 'नासत्य व दस्र' को **उ**=निश्चय से **अजहात्**=जन्म दिया। ज्ञान ही नासत्य है, कर्म ही दस्र है। ज्ञान से सत्य का दर्शन होता है और कर्म से सब बुराइयों का संहार (दसु उपक्षये) होता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा इस 'सरण्यू' नाम वाली वेदवाणी से सम्बन्ध हो और हमारे जीवन में सत्य व पवित्रता का संचार हो।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः** ॥ देवता—**पूषाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनष्टपशुः

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ३ ॥

(१) गत मन्त्रों के अनुसार 'महान् विवस्वान्'=परमात्मा **विवस्वान्**=आत्मा के लिये वेदवाणी को देते हैं और उसके द्वारा **पूषा**=हमारा सब प्रकार से पोषण करनेवाले प्रभु **त्वा**=तुझे **इतः**=इस संसार से **च्यावयतु**=मुक्त करें। वेदज्ञान के द्वारा मनुष्य विषयों में फँसने से बच जाता है। इधर से छूटता है और उधर (प्रभु से) इसका मेल होता है। (२) यह पूषा **'प्रविद्वान्'**=प्रकृष्ट ज्ञानी हैं, ये हमें ठीक ही मार्गदर्शन कराते हैं। जैसे एक ग्वाला अपनी गौवों को नष्ट नहीं होने देता, उसी प्रकार ये प्रभु भी **अनष्टपशुः**=अपने पशुओं को नष्ट नहीं होने देते। प्रभु ग्वाले हैं, हम उनकी गौवें। इस प्रकार वे प्रभु **भुवनस्य गोपाः**=सारे ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। (३) वे प्रभु ही

इस संसार में पितरों के द्वारा हमारा पालन करते हैं। प्रभु पालक हैं, अपनी पालन क्रिया में पितरों को वे निमित्त बनाते हैं। **स अग्निः**=वे प्रभु **त्वा**=तुझे **एतेभ्यः पितृभ्यः**=इन पितरों के लिये, जो कि **देवेभ्यः**=देववृत्ति वाले हैं तथा **सुविदत्रियेभ्यः**=उत्तम ज्ञान के द्वारा रक्षण करनेवाले हैं, **परिददत्**=देते हैं। इन पितरों को निमित्त बनाकर वे हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु पूषा हैं। हमें उत्तम पितरों के द्वारा आगे ले चलते हैं और इस प्रकार वे प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। संसार में आसक्त होने से प्रभु ही हमें बचाते हैं।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**पूषाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पुण्यात्म पुरुषों का मार्ग

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥ ४॥

(१) **आयुः**=(एति) गतिशील, स्वाभाविक क्रिया वाला, **विश्वायुः**=सम्पूर्ण क्रिया वाला वह प्रभु **त्वा**=तेरी **परिपासति**=रक्षा करता है। (२) **पूषा**=यह पोषण करनेवाला परमात्मा **त्वा**=तुझे **प्रपथे**=प्रकृष्ट मार्ग में **पुरस्तात्**=आगे-आगे **पातु**=रक्षित करनेवाला हो। (३) **यत्र**=जहाँ **सुकृतः**=पुण्यशाली लोग **आसते**=विराजते हैं, **यत्र**=जिस मार्ग पर **ते**=वे पुण्यशाली लोग **ययुः**=चलते हैं, **तत्र**=उस मार्ग पर **त्वा**=तुझे **सविता देवः**=सब का प्रेरक दिव्यगुणों का पुंज प्रभु **दधातु**=स्थापित करे। (४) सम्पूर्ण क्रिया के स्रोत वे प्रभु ही हैं। उनकी यह क्रियाशीलता ही जीव का पोषण करती है इसी से ये प्रभु पूषा कहलाते हैं। ये पूषा प्रभु हमारा रक्षण करें, हमें जीवन मार्ग में आगे ले चलें। इस पूषन देव की कृपा से हमारा मार्ग वही हो जो कि पुण्यशील पुरुषों का मार्ग होता है।

भावार्थ—हम उसी मार्ग से चलें जिस मार्ग से कि पुण्यात्मा लोग चला करते हैं।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**पूषाः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अभयतम मार्ग

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन्॥ ५॥

(१) **पूषा**=पोषण करनेवाले प्रभु **इमाः सर्वाः आशाः**=इन सब दिशाओं को **अनुवेद**=ठीक-ठीक रूप में जानते हैं। प्रभु से कुछ अज्ञात नहीं है। **सः**=वे प्रभु **अस्मान्**=हमें **अभयतमेन**=अत्यन्त निर्भयता के मार्ग से **नेषत्**=ले चलें। हमारे लिये जो भी मार्ग कल्याणकर है, प्रभु पूर्ण प्रज्ञ होने के नाते, हमें उस मार्ग से ही ले चलें। (२) वे प्रभु **स्वस्तिदा**=कल्याण को देनेवाले हैं। मार्गस्थ को **अवसाद**=कष्ट नहीं प्राप्त होता। प्रभु हमें मार्ग से ले चलेंगे तो हमारा कल्याण तो होगा ही। **आघृणिः**=वे प्रभु सर्वतः ज्ञानरश्मियों से दीप्त हैं, **सर्ववीरः**=सम्पूर्ण शक्तियों वाले हैं। न तो प्रभु के ज्ञान में कमी है, ना ही उनकी शक्ति में। सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होने के नाते वे प्रभु **अप्रयुच्छन्**=किञ्चिन्मात्र भी प्रमाद न करते हुए **प्रजानन्**=हमारी स्थिति को पूर्ण रूप से समझते हुए **पुरः एतु**=हमारे आगे चलें, अर्थात् हमारे मार्गदर्शक हों। हमें प्रभु कृपा प्राप्त हो, हम प्रभु से उपेक्षित न हों।

भावार्थ—वे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु सब मार्गों को अच्छी प्रकार जानते हुए अभयतम मार्ग से हमें ले चलें।

ऋषिः—देवश्रवा यामायनः॥ देवता—पूषा॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रियतम-सधस्थ

प्रप॑थे प॒थाम॑जनिष्ट पू॒षा प्रप॑थे दि॒वः प्रप॑थे पृथि॒व्याः।
उ॒भे अ॒भि प्रि॒यत॑मे स॒धस्थे॒ आ च॒ परा॑ च चरति प्रजा॒नन्॥ ६॥

(१) **पूषा**=वह सब का पोषक प्रभु **पथाम् प्रपथे**=मार्गों के प्रकृष्ट मार्ग में **अजनिष्ट**=प्रादुर्भूत होता है। मार्गों में प्रकृष्ट मार्ग मध्य मार्ग है। वस्तुतः यह मध्य मार्ग ही गत मन्त्र का 'अभयतम मार्ग' है। इसी मार्ग को अन्तारिक्ष मार्ग भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ 'अन्तराक्षि'=बीच में रहता है। अतिजागरणशील व अतिस्वप्रशील को प्रभु का दर्शन नहीं होता, युक्ताहार-विहार वाला ही प्रभुदर्शन का अधिकारी होता है। (२) वे प्रभु **दिवः**=प्रकाश के **प्रपथे**=प्रकृष्ट मार्ग में प्रकट होते हैं और **पृथिव्याः**=विस्तृत शक्तियों वाले शरीर के **प्रपथे**=प्रकृष्ट मार्ग में प्रकट होते हैं। प्रभु का दर्शन उसी व्यक्ति को होता है जो मस्तिष्क को ज्ञान-सम्पन्न व शरीर को शक्ति-सम्पन्न बनाता है। (३) **प्रजानन्**=एक समझदार पुरुष **उभे**=दोनों **प्रियतमे**=अत्यन्त प्रिय **सधस्थे**=(सह+स्थ) मिलकर बैठने के स्थानों का **अभि**=लक्ष्य करके **आचरति**=धर्मकार्यों का आचरण करता है **च**=और **पराचरति**=अधर्म के कार्यों को अपने से दूर करता है प्रत्येक सद्गृहस्थ को चाहिए कि अपने घर में प्रातः-सायं दोनों समय मिलकर सब के बैठने की व्यवस्था हो। यह यज्ञ-स्थान 'सधस्थ' है 'अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरास्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत'। यह घर के प्रत्येक सभ्य को प्रियतम हो। इसमें स्थित होकर सब उत्तम कर्मों को करने का संकल्प करें, और निश्चय करें कि सब दुरितों को वे अपने से दूर करेंगे।

भावार्थ—हम मध्य मार्ग पर चलेंगे, 'अति' से बचते हुए ज्ञान को बढ़ायेंगे, शरीर को दृढ़ करेंगे। प्रातः-सायं यज्ञवेदि में सब एकत्रित होकर उत्तम कर्मों को करने व दुरितों से बचने का निश्चय करेंगे।

ऋषिः—देवश्रवा यामायनः॥ देवता—सरस्वती॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

सरस्वती का आराधन

सर॑स्वतीं दे॒वय॑न्तो हवन्ते॒ सर॑स्वतीमध्व॒रे ता॒यमा॑ने।
सर॑स्वतीं सु॒कृतो॑ अह्वयन्त॒ सर॑स्वती दा॒शुषे॒ वार्यं॑ दात्॥ ७॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार 'सधस्थ' अर्थात् यज्ञवेदि में एकत्रित होकर सब यज्ञ करते हैं, और उसके बाद स्वाध्याय के द्वारा **सरस्वती**=विद्या की सरस्वती देवी का आराधन प्रारम्भ होता है। **देवयन्तः**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामना करते हुए और दिव्यगुणों के द्वारा दिव्यता के पुंज प्रभु को प्राप्त करने की कामना करते हुए लोग **सरस्वतीम्**=विद्या की अधिदेवता को **हवन्ते**=पुकारते हैं। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है, इस ज्ञान से जीवन में पवित्रता का संचार होता है। (२) **अध्वरे तायमाने**=यज्ञों का विस्तार होने पर सरस्वतीं=सरस्वती को पुकारते हैं। यह सरस्वती ही यज्ञों को 'अ-ध्वर' बनाये रखती है। ज्ञान के कारण ही यज्ञों में भी पवित्रता बनी रहती है। ज्ञान की कमी के साथ यज्ञों में रूढ़ियों का महत्त्व अधिक हो जाता है मध्यकाल में तो स्वाध्याय की कमी के कारण यज्ञ 'अ-ध्वर' ही न रहे। इन अ-ध्वरों में अधिकाधिक हिंसा का प्रारम्भ हो गया। (३) इसलिए **सुकृतः**=पुण्यशाली लोग **सरस्वतीम्**=सरस्वती को **अह्वयन्त**=पुकारते हैं। वस्तुतः यह सरस्वती ही उन्हें सुकृत् बनाती है। 'नहि ज्ञानेन सदृशं

पवित्रमिह विद्यते'=ज्ञान की मनुष्य को पवित्र बनाता है। (४) **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **दाशुषे**=आत्मापर्ण करनेवाले के लिये **वार्यं दात्**=सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराती हैं। हमें चाहिए यह कि अपना सारा अवकाश स्वाध्याय के लिए अर्पित करें। यही सरस्वती के प्रति आत्मापर्ण होगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमें सब आवश्यक वस्तुएँ अवश्य प्राप्त होगी हमें किसी प्रकार की कमी न रहेगी।

भावार्थ—सरस्वती हमें देव बनाती है। हमारे यज्ञों को हिंसाशून्य बनाकर सचमुच 'अध्वर' कहलाने योग्य करती है। हमें पुण्यात्मा बनाती है और वरणीय वस्तुओं को देती है।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सरस्वती के साथ समान रथ में

सर॑स्वति॒ या स॒रथं॑ य॒याथ॑ स्व॒धाभि॑र्देवि पि॒तृभि॒र्मद॑न्ती।
आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयस्वानमी॒वा इष॒ आ धे॑ह्य॒स्मे॥ ८॥

(१) हे **सरस्वति**=विद्या की अधिष्ठात्रि देवि! **या**=जो तू **सरथम्**=हमारे साथ एक ही रथ में (समानं रथं) **ययाथ**=गति करती हो। अर्थात् हमारा यह शरीर रूप रथ हमारा वाहन तो है ही। जब हम इसे सरस्वती का भी वाहन बनाते हैं, अर्थात् स्वाध्याय आदि में प्रवृत्त होते हैं तो उस समय हम सरस्वती के साथ एक ही रथ में बैठे होते हैं। (२) हे **देवि**=प्रकाश की पुंज व हमारे जीवन को प्रकाशित करनेवाली सरस्वती तू **स्व-धाभिः**=आत्मतत्त्व के धारण की प्रक्रियाओं से अर्थात् प्रतिदिन के प्रातः-सायं ध्यान से तथा **पितृभिः**=ज्ञानप्रद आचार्यरूप पितरों के साथ **मदन्ती**=तू हर्ष का अनुभव करती हुई होती है। हमें स्वाध्याय के साथ आत्मतत्त्व का धारण=उपासना तथा आचार्यों का सत्संग अवश्य करना चाहिए। (३) हे सरस्वति! **अस्मिन् बर्हिषि**=हमारे इस वासनाशून्य हृदय में **आसद्य**=आसीन होकर **मादयस्व**=हमें आनन्दित कर। 'हम ज्ञान की रुचि वाले बनें' यही सरस्वती का हृदयों में आसीन होना है। जब कभी भी यह हो सका, हम एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव करेंगे। (४) 'हम स्वाध्याय की रुचि वाले बनें' इसके लिये तू **अस्मे**=हमारे लिये **अनमीवा**=सब प्रकार के रोगों से रहित **इषः**=अन्नों को **आधेहि**=स्थापित कर। इन अन्नों का सेवन करते हुए हम सत्त्वशुद्धि के द्वारा, ज्ञान का वर्धन करनेवाले बनें।

भावार्थ—हमारा जीवन स्वाध्याय सम्पन्न हो। हम सात्त्विक अन्नों का प्रयोग करें।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

आराधना का फल

सर॑स्वतीं॒ यां पि॒तरो॒ हव॑न्ते दक्षि॒णा य॒ज्ञम॑भि॒नक्ष॑माणाः।
स॒ह॒स्रा॒र्घमि॒ळो अत्र॑ भा॒गं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धेहि॥ ९॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हम उस सरस्वती के साथ समान रथ में आरूढ़ हों **यां सरस्वतीम्**=जिस सरस्वती को **पितरः**=वे रक्षक लोग **हवन्ते**=पुकारते हैं जो **दक्षिणाः**=कर्मों में दक्ष व कुशल हैं, कुशलता के साथ कर्मों को करते हैं तथा **यज्ञम् अभिनक्षमाणाः**=सदा यज्ञों को व्यापन करते हैं। (२) कर्मों में कुशल व यज्ञशील पितर जिस सरस्वती की आराधना करते हैं वह सरस्वती **अत्र**=इस जीवन में **सहस्रार्घम्**=अनन्त मूल्य वाले अर्थात् जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी **इडः भागम्** वेदवाणी के भाग को **धेहि**=स्थापित करे। **यजमानेषु**=सरस्वती का सदा उपासन करनेवाले यज्ञशील पुरुषों में **रायस्पोषम्**=धन के पोषण को स्थापित करे।

सरस्वती की आराधना से अमूल्य ज्ञाननिधि की प्राप्ति तो होती ही है, जीवन के लिये आवश्यक धनों का भी लाभ होता है। एवं सरस्वती की कृपा से श्रेय व प्रेय दोनों का साधन होता है, परलोक व इहलोक दोनों ही ठीक होते हैं।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना से हमें अमूल्य ज्ञान तथा धन दोनों की प्राप्ति हो।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सरस्वती' के जल में स्नान

आपो॑ अ॒स्मान्मा॒तरः॑ शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु।
विश्वं॒ हि रि॒प्रं प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्यः॒ शुचि॒रा पू॒त ए॑मि॥ १०॥

(१) गत मन्त्रों में सरस्वती का उल्लेख था। यह ज्ञान की धारा व ज्ञान नदी गुरु-शिष्य परम्परा से आगे और आगे प्रवाहित होती है। 'इस ज्ञाननदी के जल हमारे जीवनों को पवित्र करें' यह प्रार्थना प्रस्तुत मन्त्र में की गई है। **मातरः**=मातृवत् हित को करनेवाले अथवा हमारे जीवन के स्वास्थ्य का निर्माण करनेवाले **आपः**=इस सरस्वती नदी के जल **अस्मान्**=हमें **शुन्धयन्तु**=शुद्ध कर डालें। ज्ञान के समान पवित्र करनेवाली अन्य वस्तु नहीं है। (२) **घृतप्वः**=(घृ=क्षरण-दीप्त्योः) मलों के क्षरण व ज्ञान की दीप्ति से ये जल पवित्र करनेवाले हैं। ये **घृतेन**=मलों के दूरीकरण के द्वारा **नः पुनन्तु**=हमें पवित्र करें। इन ज्ञान जलों से हमारे सब अंग पवित्र हो जाएँ। बाहर की पवित्रता जलों से होती है तो अन्तः पवित्रता इन ज्ञान जलों के बिना नहीं हो सकती। (३) **देवीः**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाले अथवा जीवन को प्रकाशमय करनेवाले ये ज्ञानजल **हि**=निश्चय से **विश्वं रिप्रम्**=सब मलों व दोषों को **प्रवहन्ति**=बहा ले जाते हैं। इन ज्ञान जलों से पापों के मल धुल जाते हैं। (४) इन ज्ञान जलों में गोता लगाने के बाद **शुचिः**=पवित्र हुआ-हुआ **आपूतः**=अंग-प्रत्यंग में शुद्ध हुआ-हुआ **आभ्यः**=इन से **उत् एमि**=ऊपर आता हूँ। वैदिक संस्कृति के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम में हम इन ज्ञान जलों में स्नान करके, शुद्ध होकर, गृहस्थ में आते हैं, और इसी कारण हमारा गृहस्थ मलिन नहीं हो पाता। पुनः वानप्रस्थ में 'स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्'=नित्य स्वाध्याय में युक्त होकर ज्ञान जलों में स्नान चलता है और पवित्र होकर, सब मलासंगों से रहित होकर हम संन्यस्त होते हैं और प्राजापत्य यज्ञ में प्रवृत्त हो जाते हैं। यह यज्ञ ही अन्ततः हमें प्रजापति की गोद में विलीन करनेवाला होता है।

भावार्थ—सरस्वती नदी के जल हमारे जीवन की पूर्ण पवित्रता को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**आपः सोमो वा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

सप्तर्षियों से सम्पादित यज्ञ

द्र॒प्सश्च॑स्कन्द प्रथ॒माँ अनु॒ द्यूनि॒मं च॒ योनि॒मनु॒ यश्च॒ पूर्वः॑।
स॒मा॒नं योनि॒मनु॑ सं॒चर॑न्तं द्र॒प्सं जु॑हो॒म्यनु॑ स॒प्त होत्राः॑॥ ११॥

(१) प्रस्तुत तीन मन्त्रों का देवता 'सोम' है। 'सरस्वती के जल का पान' इस सोम के रक्षण से ही सम्भव है। इस सोम के कण ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं और तभी हम ज्ञानग्रहण की क्षमता वाले होते हैं। इन सोमकणों को 'द्रप्सः' (drops) कहा गया है, ये सोमकण (दृप्=दर्पति Light, inflame, candel) ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं। जीवन के **प्रथमान् द्यून् अनु**=प्रथम दिनों का लक्ष्य करके अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में यह **द्रप्सः**=सोम **चस्कन्द**=(स्कन्द्=to ascend, go,

move to become dry) शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता है, और शरीर में गति करते हुए इसका शरीर में ही शोषण हो जाता है, अर्थात् शरीर में ही यह व्याप्त हो जाता है। (२) यह सोम **इमं च योनिम्**=इस अपने उत्पत्ति-स्थानभूत शरीर को और **यः च पूर्वः**=जो इस शरीर में सब से पूर्व स्थान है उस मस्तिष्क को **अनु**=लक्ष्य करके चस्कन्द=ऊर्ध्वगतिवाला व शरीर में ही व्याप्ति वाला होता है। यह सोम जहाँ शरीर को नीरोग बनाता है, वहाँ यह सोम मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करता है। (३) मैं इस सोम को, जो **समानं योनिम् अनु संचरन्तम्**=जहाँ यह उत्पन्न हुआ उस शरीर में ही अंग-प्रत्यंग में रुधिर के साथ संचरण करते रहा है, उस **द्रप्सम्**=ज्ञानाग्नि की दीप्ति के साधनभूत सोम को **सप्तहोत्राः अनु**=सात यज्ञों का लक्ष्य करके **जुहोमि**=आहुत करता हूँ। 'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे' प्रत्येक शरीर में सात ऋषि रखे गये हैं। 'कर्णाविमौ नासिक्ते चक्षणी मुखम्'=दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख। इनसे शब्द, गन्ध, रूप व रसादि विषयों का ग्रहण होकर निरन्तर ज्ञानयज्ञ चल रहे हैं। इन ज्ञानयज्ञों के चलने का सम्भव इस सोम के रक्षण पर ही है। इसी ने इन सप्तर्षियों को सबल बनाना है। इसी से शक्ति-सम्पन्न होकर ये ऋषि इन सात ज्ञान यज्ञों को चलाते रहते हैं।

भावार्थ—हम ब्रह्मचर्याश्रम में सोम का रक्षण करें। यह सोम शरीर को सबल बनाये व मस्तिष्क को दीप्त करे। शरीर में ही व्याप्त होता हुआ यह शरीर सप्तर्षियों से सम्पादित ज्ञानयज्ञ में आहुत हो।

ऋषिः—**देवश्रवा यामायनः**॥ देवता—**आपः सोमो वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण के लाभ

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात्।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम्॥ १२॥

(१) **य**=जो **ते**=तेरा **द्रप्सः**=ज्ञानाग्नि की दीप्ति का हेतुभूत सोम **स्कन्दति**=शरीर में ही ऊर्ध्वगतिवाला होता है। **यः**=जो यह **ते**=तेरा सोम **अंशुः**=(Ray of light) प्रकाश की किरण ही है। **बाहुच्युतः**=जो यह सोम तेरी बाहुओं को सिक्त करनेवाला है (to wet thoroughly, to moisten) अर्थात् तेरी भुजाओं में व्याप्त होकर उन्हें शक्ति-सम्पन्न बनानेवाला है। (२) **धिषणायाः**=बुद्धि की **उपस्थात्**=उपासना के हेतु से **वा**=तथा **अध्वर्योः**=हिंसाशून्य जीवन वाले पुरुष के **परिपवित्रात्**=सर्वतः पवित्र हृदय के हेतु से **तं**=उस सोम को **ते जुहोमि**=तेरे अन्दर ही आहुत करता हूँ। सोम के शरीर में ही आहुत होने के दो लाभ हैं। प्रथम तो यह कि बुद्धि तीव्र होती है और दूसरा यह कि हृदय में हिंसा-द्वेष आदि की भावनाएँ स्थान नहीं पातीं। बुद्धि की उपासना व हृदय की पवित्रता के दृष्टिकोण से इस सोम का रक्षण नितान्त आवश्यक है। (३) 'इस सोम की आहुति शरीर में ही किस प्रकार दी जाती है'? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **मनसा वषट् कृतम्**=यह सोम मन के द्वारा शरीर में आहुत होता है। मन के विचार पवित्र होंगे तो सोम का रक्षण होगा। यदि ये विचार पवित्र न हुए और वासनाओं की प्रबलता हुई तब यह सोम शरीर में आहुत न हो पाएगा। उस समय भोगाग्नि में आहुत होकर यह हमें रोगाक्रान्त कर देगा। 'मनसा' शब्द में मननशीलता की भावना है। मननशील मनुष्य सोम का रक्षण कर पाता है। यह सोम उसको अधिक मनन के योग्य बनाता है।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होने पर भुजाओं को शक्तिशाली बनाता है, बुद्धि को तीव्र करता है और हृदय को पवित्र बनाता है। मन की पवित्रता के बिना इसके रक्षण का सम्भव भी नहीं।

ऋषिः—देवश्रवा यामायनः॥ देवता—आपः सोमो वा॥ छन्दः—ककुम्मतीबृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

अपरा व पराविद्या की प्राप्ति

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शुर॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा।
अ॒यं दे॒वो बृ॒ह॒स्पतिः॒ सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से॥ १३॥

(१) **यः**=जो **ते**=तेरा **द्रप्सः**=ज्ञानाग्नि की दीप्ति का साधनभूत सोम **स्कन्नः**=शरीर में ही ऊर्ध्वगतिवाला हुआ है। **यः**=जो सोम **ते**=तेरा **अंशुः**=ज्ञान की किरण के रूप में है। यह सोम **अवः च**=निचले क्षेत्र में, अपराविद्या के क्षेत्र में **परः च**=और परक्षेत्र में अर्थात् पराविद्या के क्षेत्र में **अंशुः**=ज्ञानार्थ किरण बनता है। इस सोम से ही ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और मनुष्य प्रकृतिविद्या व आत्मविद्या को अपना पाता है। अपनाने का प्रकार है—**स्रुचा**=चम्मच के द्वारा। जैसे चम्मच से अग्नि में घृतादि की आहुति दी जाती है, इसी प्रकार आचार्य से वाणी रूप चम्मच के द्वारा (वाग्वै स्रुचः श० ६।३।१।८) शिष्य में ज्ञान की आहुति दी जाती है। (२) **अयं देवः बृहस्पतिः**=यह प्रकाश का पुंज-वेदवाणी का पति प्रभु **तम्**=उस सोम को **राधसे**=सब प्रकार की सफलताओं के लिये **सं सिञ्चतु**=तेरे में संसिक्त करे। प्रभु कृपा से हम सोम को शरीर में ही व्याप्त करनेवाले बनें और यह सोम हमें सभी क्षेत्रों में सफलता को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम प्रकृतिविद्या व आत्मविद्या के क्षेत्र में उन्नति करें। इस सोम के द्वारा हमें सर्वत्र सफलता मिले।

ऋषिः—देवश्रवा यामायनः॥ देवता—आपः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

सात्त्विक भोजन व स्वाध्याय सादा खान, पानी पीना

पय॑स्वती॒रोष॑धयः॒ पय॑स्वन्माम॒कं वचः॑। अ॒पां पय॑स्व॒दित्पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत॥ १४॥

(१) **ओषधयः**=सब ओषधियाँ **पयस्वतीः**=आप्यायन वाली हों। वस्तुतः यदि शरीर में सोम का रक्षण करना है तो उसके लिये सब से महत्त्वपूर्ण आवश्यक बात यही है कि हम वानस्पतिक भोजन को अपनाने का ध्यान करें। इनसे शरीर में सौम्य वीर्य की उत्पत्ति होकर उसके शरीर में रक्षण सम्भव होगा। उससे शारीरिक नीरोगता के साथ मानस स्वास्थ्य भी प्राप्त होगा और **मामकं वचः**=मेरा वचन **पयस्वत्**=आप्यायनवाला होगा। मेरी वाणी में भी वर्धन की शक्ति होगी। (२) **अपाम्**=इन सरस्वती के जलों का **पयः**=आप्यायन **इत्**=निश्चय से **पयस्वत्**=वर्धनवाला है, **तेन सह**=उस वर्धन के साथ **मा शुन्धत**=मुझे शुद्ध कर डालो। ज्ञान जल के पान के दो लाभ हैं—(क) सामान्यतः शारीरिक, वाचिक व मानस वर्धन होता है तथा (ख) जीवन की शुद्धि होती है।

भावार्थ—हम वानस्पतिक भोजन को अपनाएँ तथा सरस्वती विद्या के जलों के पान से, ज्ञानवर्धन से अपने जीवनों को उन्नत व शुद्ध करें।

सूचना—'ओषधयः और अपां' शब्द का प्रयोग 'सादे खाने व पानी पीने' का संकेत कर रहा है। जितना भोजन सादा होगा उतना ही जीवन का आप्यायन व शोधन सुगम होगा।

त्वष्टा की दुहिता के परिणय से सूक्त का प्रारम्भ होता है, (१) यह सरण्यू 'ज्ञान व कर्म' रूप दो सन्तानों को जन्म देती है, (२) प्रभु ग्वाले हैं और हम उनके पशु, (३) हम पुण्यात्माओं के मार्ग से चलें, (४) प्रभु, कृपया, हमें अभयतम मार्ग से ले चलें, (५) हम प्रातः-सायं यज्ञवेदि

में एकत्रित होकर उत्तम कर्मों के करने का निश्चय करें, (६) सरस्वती के आराधन बनें, (७-९) सरस्वती के जल में स्नान हमें शुद्ध व पवित्र करेगा, (१०) इस स्नान के लिये हम सोम (=वीर्य) का रक्षण करें, (११-१३) सोमरक्षण के उद्देश्य से हमारा खान-पान अत्यन्त सादा हो, (१४) ऐसा करने पर हम मृत्यु को अपने से दूर रख सकेंगे।

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**मृत्यु** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मृत्यु का मार्ग

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥ १॥

(१) हे **मृत्यो**=मृत्यु-देवते! तू **परं पन्थाम्**=सुदूर मार्ग को **अनु**=लक्ष्य करके **परेहि**=हमारे से दूर चलीजा। उस मार्ग पर जा **यः**=जो कि **ते**=तेरा **स्वः**=अपना है। **देवयानात् इतरः**=जो देवयान से भिन्न मार्ग है। देवताओं का मार्ग 'देवो दानात्' देने का है, देव देकर खाते हैं। इनसे विपरीत असुर हैं, जो कि सारे का सारा अपने मुख में डाल लेते हैं (स्वेषु आस्येषु जुह्वतश्चेति सः) देवताओं का मार्ग 'देवो दीपनाद्वाद्योतनाद्वा' ज्ञान का मार्ग है, इस मार्ग में स्वाध्याय व प्रवचन को प्रमुखता प्राप्त है, असुरों के मार्ग में 'खाने-पीने व भोग' की प्रमुखता है। सो मृत्यु ने वहीं आना है जहाँ स्वार्थ है, जहाँ भोग का प्राधान्य है। (२) मृत्यु को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि **चक्षुष्मते शृण्वते**=देखती व सुनती **ते**=तेरे लिये **ब्रवीमि**=मैं यह कहता हूँ कि तू **नः प्रजाम्**=हमारी प्रजा को **मा रीरिषः**=मत हिंसित कर, **उत**=और **वीरान् मा**=हमारी वीर सन्तानों का तू अन्त करनेवाली न हो। हमारी सन्तानें हमारे सामने जीवन को समाप्त कर न चली जायें। पीछे आने से उन्हें पहले जाने का अधिकार ही नहीं है। उनका पहले जाना तो अँधेर ही है।

भावार्थ—हम देवयान मार्ग से चलें। स्वार्थ व भोग से ऊपर उठें। स्वार्थ व भोग का मार्ग ही मृत्यु का मार्ग है।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**मृत्यु** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मृत्यु-पद-योपन (शुद्ध-पूत-यज्ञिय)

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥ २॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **मृत्योः पदम्**=मृत्यु के 'स्वार्थ व भोगमय' मार्ग को **योपयन्तः**=परे धकेलते हुए व अपने से दूर करते हुए **यदा एत**=जब चलते हैं तो **द्राघीयः**=अत्यन्त दीर्घ व **प्रतरं**=उत्कृष्ट **आयुः**=जीवन को **दधानाः**=धारण करते हुए होते हैं। दीर्घ व उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करने का मार्ग यही है कि हम देवयान से चलें, 'दान व ज्ञान' के मार्ग को अपनाएँ। (२) उत्कृष्ट जीवन का ही चित्रण करते हुए कहते हैं कि **प्रजया**=उत्तम सन्तान से तथा **धनेन**=धन से **आप्यायमानाः**=सब दिशाओं में उन्नति करते हुए **शुद्धाः**=शुद्ध अन्तःकरण वाले **पूताः**=यज्ञ व रोगों से शून्य शरीर वाले और **यज्ञियासः**=उत्तम कर्मों में प्रवृत्त **भवतः**=हो जाइये। सांसारिक जीवन में प्रजा व धन का स्थान स्पष्ट है धन के बिना संसार में एक कदम भी उठाना कठिन है। निर्धनता तो महान् पाप है। सन्तान भी न होकर हमें अप्रतिष्ठा कराती है तो यह मरणान्तक कष्ट है।

भावार्थ—संसार में रहते हुए हम श्रेष्ठ सन्तान व शुद्ध पवित्र धन प्राप्त कर मृत्यु को दूर भगाते रहें।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**मृत्यु** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीर्घ जीवन

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ३ ॥

इमे=ये **जीवाः**=जीवित मनुष्य **मृतैः**=मृत जनों से **वि आववृत्रन्**=घिरे हुये न रहें परन्तु **अद्य**=आज **नः**=हमें **भद्रा**=कल्याण-कारक **देवहूति**=विद्वानों का उपदेश **अभूत्**=चाहिये। जिससे हम **द्राघीय आयुः**=दीर्घ आयु को **प्रतरम्**=अच्छी प्रकार तर जायें, प्राप्त करें। दीर्घ जीवन **दधानाः**=धारण करते हुए **नृतये**=नृत्य के लिये **हसाय**=हँसने के लिए **प्राञ्चः**=आगे **अगाम**=पहुँचें।

भावार्थ—हम मृतकों की स्मृति में शोक में डूबे न रहें, अपितु नये उत्साह से अग्रिम कार्य को करने मन लगायें।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**मृत्यु** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शतायु जीवन

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ४ ॥

(१) मैं परमेश्वर **जीवेभ्यः**=जीवित मनुष्यों के लिये **इमम्**=इस **परिधिम्**=सीमा को **दधामि**=धारण करता हूँ (व्यवस्थित करता हूँ) (२) **एषाम्**=इनमें से **अपर**=कोई भी **एतम्-अर्थम्**=इस मृत्यु मार्ग से **नु**=निश्चय से **मा गात्**=मत जावे। सभी जीवित मनुष्य **शतम्**=सौ **शरदः**=वर्षों तक **पुरूचीः**=सौ से भी अधिक वर्षों तक **जीवन्तु**=जीवें। बीच में उनकी उम्र ही खण्डित न हो जाए। (३) ये जीव **मृत्युम्**=मृत्यु को **पर्वतेन**=पर्वत से **अन्तर्दधताम्**=अन्तर्हित करनेवाले हों। यह पर्वत क्या है? (क) कोश में पर्वत का अर्थ (A kind of vegetable) 'एक प्रकार की वनस्पति' दिया है। वनस्पति विशेष के प्रयोग से दीर्घजीवन सम्भव है ही। आचार्य दयानन्द ने यजु० ३३।५० में पर्वत का अर्थ (ख) (पर्वाणि उत्सवा विद्यन्ते येषां ते) 'उत्साहमय जीवन' किया है। दीर्घजीवन के लिये सदा प्रसन्न रहने का महत्त्व सुव्यक्त है। (ग) ३५।१५ में 'ज्ञानेन ब्रह्मचार्यादिना' इन शब्दों में आचार्य पर्वत का अर्थ 'ज्ञान और ब्रह्मचर्य' करते हैं। दीर्घायुष्य के ये मुख्यतम साधन हैं। ब्रह्मचर्य का दीर्घजीवन से अत्यधिक सम्बन्ध है। 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात्' इन शब्दों में 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है और उसका अभाव मृत्यु'। एवं ब्रह्मचर्य रूप पर्वत से मृत्यु को हमें अन्तर्हित करना है। (घ) यहाँ मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) भी शरीरस्थ मेरुपर्वत ही है। इसके सीधे रखने से भी दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है। झुककर न बैठना, सीधे बैठने का अभ्यास आवश्यक है।

भावार्थ—हम सौ वर्ष तक बड़ा क्रियाशील जीवन बितायें। ब्रह्मचर्य रूप पर्वत से मृत्यु को अपने से दूर रखें।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**धाता**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अविच्छिन्न व पूर्ण जीवन

यथाहा॑न्यनुपूर्वं भव॑न्ति यथ॑ ऋ॒तव॑ ऋ॒तुभि॒र्यन्ति॑ सा॒धु।
यथा॒ न पूर्व॒मप॑रो॒ जहा॑त्ये॒वा धा॑त॒रायूं॑षि कल्पयै॒षाम्॥ ५॥

(१) **यथा**=जिस प्रकार **अहानि**=दिन **अनुपूर्वम्**=अनुक्रम से **भवन्ति**=परिवृत्त होते रहते हैं, अर्थात् जैसे एक दिन के बाद दूसरा दिन आ जाता है और उससे लगा हुआ तीसरा दिन। और इस प्रकार यह दिनों का क्रम चलता ही जाता है, **एवा**=इसी प्रकार **धातः**=हे सब का धारण करनेवाले प्रभो! **एषाम्**=इन मन्त्र के ऋषि 'संकुसुक यामायन' लोगों के (कुस् to embrace) आपका आलिंगन करनेवाले संयमी पुरुषों के **आयूंषि**=जीवनों को **कल्पय**=बनाइये। इनका जीवन भी समय से पूर्व विच्छिन्न न हो जाए। (२) **यथा**=जैसे **ऋतवः**=ऋतुएँ **ऋतुभिः**=ऋतुओं के साथ **साधु यन्ति**=उत्तमता से चलती हैं, 'वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त व शिशिर' का क्रम अविच्छिन्न रूप से चलता जाता है, इसी प्रकार हे विधातः! इन स्वभक्तों के जीवनों को भी आप मध्य में ही विच्छिन्न न होने दीजिये। ये अपने जीवन के प्रयाणों के चक्र को, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास को पूरा कर ही पायें। (३) **यथा**=जैसे **पूर्वम्**=पूर्व काल में उत्पन्न हुए पिता को **अपरः**=अर्वाक् काल में होनेवाला सन्तान **न जहाति**=नहीं छोड़ता है, अर्थात् पिता से पूर्व ही जीवन को समाप्त करके चला नहीं जाता है, इस प्रकार हे प्रभो! इन स्वभक्तों के जीवनों को बनाइये। पहले आनेवाला पहले ही जाए। कोई भी व्यक्ति यौवन में ही समाप्त-जीवनवाला न हो जाए। प्रभु की कृपा से प्रभु-भक्तों के जीवन अविच्छिन्न रूप से अन्ततक चलनेवाले हों और वे जीवन के चक्र को पूर्ण करके ही आयुष्य को समाप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारी जीवन यात्रा मध्य में ही विच्छिन्न न हो जाए। पुत्र कभी पिता से पूर्व ही चला न जाए।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**त्वष्टा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

निरन्तर उद्योगशील

आ रो॑हता॒युर्ज॒रसं॑ वृणा॒ना अ॑नुपू॒र्वं यत॑माना॒ यति॑ ष्ठ।
इ॒ह त्वष्टा॑ सु॒जनि॑मा स॒जोषा॑ दी॒र्घमायुः॑ करति जी॒वसे॑ वः॥ ६॥

(१) एक घर में रहने वालों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि **यतिष्ठ**=आप जितने भी हो वे **अनुपूर्वं**=क्रमशः **यतमानाः**=गृह की स्थिति को उत्तम बनाने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते हुए **आयुः आरोहत**=आयु में आगे और आगे बढ़नेवाले होवो। **जरसं वृणानाः**=आप जरावस्था का वरण करनेवाले बनो। यौवन में ही आपका जीवन समाप्त न हो जाए। पिता के बाद पुत्र आता है। पिता ने जैसे घर को अच्छा बनाने का यत्न किया था। पुत्र ने उस गृह-स्थिति में और उन्नति के लिये प्रयत्न करना है। पिता अपना कार्य करके चला जाता है, अब पुत्र ने भी अपने कार्य को यथाशक्ति सम्पन्न करते हुए जीवन में आगे बढ़ना है। घर में यह आना और जाना अनुपूर्व बना रहे। कभी पिता के सामने पुत्र की मृत्यु न हो। (२) **इह**=यहाँ संसार में **सुजनिमा**= उत्तम जन्मों को देनेवाला **सजोषाः**=सदा हमारे साथ हृदयों में प्रीतिपूर्वक निवास करनेवाला **त्वष्टा**=वह निर्माता देव! **जीवसे**=उत्तम जीवन के लिये **वः**=आप सब की **दीर्घम् आयुः**=दीर्घ आयु को **करति**=करते हैं। प्रभु कृपा से हमारा जीवन उत्तम बनता है, विशेषकर तब जब कि हम उस प्रभु को अपने

साथ संगत अनुभव करते हैं।

भावार्थ—हम अपने घरों में सदा उत्तम स्थिति के लिये प्रयत्न करते हुए, आगे बढ़ें। प्रभु से संगत हुए-हुए जीवन को उत्तम बनाएँ।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

घर में स्त्री का सर्वप्रमुख स्थान

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ ७॥

(१) गत मन्त्र में गृहस्थिति को उत्तम बनाने के लिये उद्योग का संकेत था। गृह की उत्तमता में सर्वप्रथम स्थान स्त्री का है। सो उनका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि—**इमाः नारीः**=ये गृह को आगे ले चलनेवाली नारियाँ (नृनये) **अविधवाः**=अविधवा हों। दीर्घजीवी पतियों को प्राप्त करके ये सदा अपने सौभाग्य को स्थिर रखनेवाली हों। साथ ही **सुपत्नीः**=(शोभनाः पत्योः यासाम्) ये उत्तम पतियों वाली हों। जहाँ ये स्वयं पातिव्रत्य धर्म का पालन करनेवाली हों, वहाँ इनके पति भी एक पत्नीव्रत के धर्म को सुन्दरता से निबाहनेवाले हों। (२) ये पत्नियाँ **आञ्जनेन**=शरीर को सर्वतः अलंकृत करनेवाले **सर्पिषा**=घृत के साथ **सं विशन्तु**=घरों में सम्यक् प्रवेश करनेवाली हों। अर्थात् जिस गोघृत के सेवन से शरीर, मन व मस्तिष्क सभी दीप्त बने रहते हैं उस गोघृत की घर में इन्हें कमी न हो। घर में गौ होगी तो जीवन के लिये आवश्यक इन घृत आदि पदार्थों की कमी होगी ही क्यों कर? (३) इन्हें कभी दरिद्रता के कारण रोना न पड़े। **अनश्रवः**=ये अश्रु वाली न हों। घर में लक्ष्मी के निवास के कारण सदा उल्लास व प्रसन्नता बनी रहे। पति ने श्रम के द्वारा घर को लक्ष्मी का निवास-स्थान बना देना है। घर में नमक, तेल व ईंधन का ही रोना न होता रहे। (४) **अनमीवाः**=व्यवस्थित व संयत जीवन के कारण ये सदा नीरोग हों। नीरोग माताएँ ही नीरोग सन्तति को जन्म देती हैं। (५) **सुरत्नाः**=ये स्त्रियाँ उत्तम रमणीय पदार्थों वाली हों अथवा इन्हें उत्तम आभूषणों की कमी न हो। ये **जनयः**=उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली गृहिणियाँ **योनिम् अग्रे आरोहन्तु**=घर में सर्वमुख्य स्थान में स्थित हों। इनका घर में उचित आदर हो। वस्तुतः घर का निर्माण इन्होंने ही करना है। जितना अधिक इनका उत्तरदायित्व है उतना ही अधिक इनका मान भी है। मनु के शब्दों में एक माता सौ पिताओं के बराबर है।

भावार्थ—घरों में स्त्रियों का स्थान प्रमुख हो। इन्हें घर के निर्माण के लिये सब आवश्यक वस्तुएँ सुलभ हों। इनका अपना शरीर पूर्ण स्वस्थ हो।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यदि पति चले जाएँ तो

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ ८॥

(१) समान्यतः पति को दीर्घजीवी होना चाहिए। पत्नी 'अविधवा' रहे ऐसा गत मन्त्र में कहा था। परन्तु यदि अचानक पति का देहावसान हो जाए तो पत्नी श्मशान में ही न पड़ी रह जाए, मृत पति का ही सदा शोक न करती रहे, अपितु उत्साहयुक्त होकर अपने कर्तव्य कर्मों में लगे। अपने पति की सन्तानों का ध्यान करते हुए वह शोक-मोह को छोड़कर तत्परता से कार्यों में लगी रहे। मन्त्र में कहते हैं कि हे **नारि**=गृह की उन्नति की कारणभूत पत्नि! तू **उदीर्ष्व**=ऊपर उठ और

घर के कार्यों में लग (ईर गतौ), **जीवलोकम् अभि**=इस जीवित संसार का तू ध्यान कर। जो गये, वे तो गये ही। अब तू **गतासुम्**=गत प्राण **एतम्**=इस पति के **उपशेष**=समीप पड़ी है। इस प्रकार शोक का क्या लाभ? **एहि**=उठ और घर की ओर चल। घर की सब क्रियाओं को ठीक से करनेवाली हो। (२) **हस्तग्राभस्य**=अपने हाथ ग्रहण करनेवाले, **दिधिषोः**=धारण करनेवाले अथवा गर्भ में सन्तान को स्थापित करनेवाले **तव पत्युः**=अपने पति की **इदं जनित्वम्**=इस उत्पादित सन्तान को **अभि**=लक्ष्य करके **संबभूथ**=सम्यक्तया होनेवाली हो। अर्थात् तू अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान कर जिससे सन्तान के पालन व पोषण में किसी प्रकार से तू असमर्थ न हो जाए।

भावार्थ—यदि अकस्मात् पति गुजर जाएँ तो पत्नी, शोक न करती रहकर, पति के सन्तानों का ध्यान करती हुई, अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये यत्नशील हो।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सन्तानों का माता के प्रति कथन (पति के हाथ से धनुष को लेना)

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥ ९॥

(१) सन्तान माता से कहते हैं कि **मृतस्य हस्तात्**=मृत के हाथ से **धनुः आददाना उ**=निश्चय से धनुष को ग्रहण करती हुई, **अस्मे**=हमारे **क्षत्राय**=क्षतों से त्राण के लिये, **वर्चसे**=रोगों से संघर्ष करनेवाली व वीर्यशक्ति के लिये, **बलाय**=शत्रुओं से मुकाबिला कर सकनेवाली शारीरिक ताकत के लिये, **अत्र एव**=यहाँ इस लोक में ही, **इह**=इस घर में ही **त्वम्**=तू यत्नशील हो। वस्तुतः माता के अभाव में तो बालक निश्चित रूप से अनाथ हो ही जाएँगे। सो माता को चाहिए कि जिस जीवन-संग्राम को वह बच्चों के पिता के साथ मिलकर उत्तमता से चला रही थी, अब बच्चों के पिता श्री के चले जाने पर, उस संग्राम को वह स्वयं अकेली चलाने के लिये तैयारी करे। इसी भावना को यहाँ मन्त्र में 'उनके हाथ से धनुष को लेती हुई' इन शब्दों में कहा गया है। जीवन सचमुच एक संग्राम है। 'इसे उत्तमता से लड़ना, इसमें न घबराना' यह बच्चों की माता का अब मुख्य कर्तव्य हो जाता है। (२) माता ने अपना कर्तव्य ठीक निभाया तो सन्तानों की यह कामना अवश्य पूर्ण होगी कि **वयम्**=हम **सुवीराः**=उत्तम वीर बनकर **विश्वाः**=सब **स्पृधाः**=स्पर्धा करनेवाले **अभिमातीः**=शत्रुओं को **जयेम**=जीत लें। शत्रुओं के विजय करनेवाले सन्तान जहाँ संसार में वास्तविक उन्नति कर पाते हैं, वहाँ वे उन्नत सन्तान अपनी माता की प्रसन्नता का कारण बनते हैं और अपने पिता जी के नाम को उज्ज्वल करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—जीवन-संग्राम को लड़ने के लिये, पिता की मृत्यु पर, माता धनुष् को अपने हाथ में ले और अपने सन्तानों के जीवन को क्षत्र वर्चस् व बल से युक्त करके उन्हें शत्रुओं का विजेता बनाये।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ऊर्णम्रदा युवतिः

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्॥ १०॥

(१) तू **एताम्**=इस **मातरम्**=माता की तरह सब का पालन करनेवाली, **उरुव्यचसम्**=अत्यन्त

व्याप्ति वाली **पृथिवीम्**=विस्तृत **सुशेवाम्**=उत्तम कल्याण करनेवाली **भूमिं उपसर्प**=भूमि के समीप प्राप्त होनेवाली हो, इस भूमि पर गति करनेवाली हो। तू उदास होकर विषण्ण व गतिशून्य न हो जाए। (२) **दक्षिणावते**=अपने को तेरे प्रति दे डालनेवाली इस सन्तान के लिये तू **ऊर्णम्रदा**=(ऊर्णुञ् आच्छादने) आच्छादन करनेवाली, गोद में लेनेवाली व मृदुस्वभाव तथा **युवतिः**=दोषों को दूर व गुणों को समीप प्राप्त करानेवाली हो। (३) इतनी बात माता से कहकर कि तू (ख) इस पृथ्वी पर गतिशील हो और (ख) कोमलता से सन्तानों को सद्गुणी बना, अब सन्तान से कहते हैं कि **एषा**=यह माता **त्वा**=तुझे **निर्ऋतेः**=दुर्गति की **उपस्थात्**=गोद से **पातु**=बचाये। यह तेरी दुर्गति न होने दे। पिता के अभाव में, माता भी यदि शोकातुर हो सन्तानों का ध्यान न करे, तो उन सन्तानों की दुर्गति ही तो होगी।

भावार्थ—मृत पति का बच्चों की माता, उदासी को छोड़कर, क्रियाशील बने। बच्चों का रक्षण व कोमलता से पालन करे। उनको दुर्गति का शिकार न होने दे।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

सूपायना सूपवञ्चना

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ११ ॥

(१) हे **पृथिवि**=अपनी व सन्तानों की शक्तियों का विस्तार करनेवाली मातः! **उत् सु अञ्चस्व**=तू उदासी को छोड़कर उत्तमता से गति करनेवाली हो। **मा निबाधथाः**=व्यर्थ के शोक व उपवासादि से अपने को पीड़ित मत कर। **अस्मै**=उस सन्तान के लिये **सूपायना भव**=सुगमता से समीप प्राप्त होनेवाली हो, **सु उप वञ्चना**=उत्तम परिचर्या करनेवाली बन। बच्चों का ठीक प्रकार से पालन कर। (२) हे **भूमे**=भूमि मातः! तू भी **एनम्**=इस साथी के चले जाने से दुःखी जन को **अभि ऊर्णुहि**=अभितः आच्छादित करनेवाली हो, इसे न तो खान-पान की कमी हो, न इसके मानस उत्साह में कमी आये। इसको तू इस प्रकार सुरक्षित कर **यथा**=जैसे **माता**=माता **पुत्रम्**=पुत्र को **सिचा**=वस्त्रप्रान्त से ढककर सुरक्षित कर लेती है।

भावार्थ—माता शोक से अपने को पीड़ित न करती हुई बच्चों के पालन में आनन्द का अनुभव करे। वह बच्चों के लिये सूपायना व सूपवञ्चना हों।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः**॥ देवता—**पितृमेधः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

घृत की धाराओं वाले घर

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ १२ ॥

(१) यह **उत् सु अञ्चमाना**=उत्साहयुक्त हुई-हुई उत्तमता से गति करती हुई **पृथिवी**=सब प्रकार से शक्तियों का विस्तार करनेवाली माता **सुतिष्ठतु**=उत्तमता से स्थित हो। यह उदास होकर खाट पकड़कर न बैठ जाए। (२) इस घर में **सहस्रं मितः**=सहस्र संख्याक धन **हि**=निश्चय से **उपश्रयन्ताम्**=आश्रय करें। (२) **ते**=तेरे **गृहासः**=गृह **घृतश्चुतः**=घृत का क्षरण करनेवाले हों। इन घरों में घृत की धाराएँ बहें। किसी प्रकार से घृत की कमी न हो। **विश्वाहा**=सदा **अत्र**=इस घर में **अस्मै**=इस अकले रह गये जन के लिये **शरणाः**=रक्षण **सन्तु**=हों। अर्थात् बच्चों के पिता चले भी गये हैं, तो भी अन्य मामा, चाचा, दादा आदि लोग सहायक बने रहें। वे अपनी जिम्मेदारी

को पहले से अधिक समझते हुए अपने कर्तव्य को उत्तमता से निभाये।

भावार्थ—माता के पुरुषार्थ से घर में धनों की कमी न हो, घर पूर्ववत् घृत के बाहुल्य वाले हों, और अन्य बान्धवजन अपना सहारा दिये रखें।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**पितृमेधः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

घर

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥ १३ ॥

(१) प्रस्तुत मन्त्र में घर का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि **ते पृथिवीम्**=तेरी भूमि को **उत् स्तभ्नामि**=ऊपर थामता हूँ, अर्थात् तेरे पाये को (Pedestal) कुछ ऊँचा रखता हूँ। वस्तुतः घर का पाया नीचा होने पर घर में कुछ सील का अंश बना रहता है जो स्वास्थ्य के लिये उतना हितकर नहीं होता। (२) और **त्वत् परि**=तेरे चारों ओर **इमम्**=इस **लोगम्**=पार्थिव ढेर को, मुंडेर को **निदधन्**=रखता हुआ **अहं**=मैं **मा उ रिषम्**=मत ही हिंसित होऊँ। घर के चारों ओर कुछ चारदिवारी सी हो जिससे कि अवाञ्छनीय पशु आदि का प्रवेश न होता रहे और आंगन ठीक से बना रहे। (३) **एतां स्थूणाम्**=घर के इस स्तम्भ को **ते पितरः**=तेरे पितर—मामा, चाचा, दादा आदि **धारयन्तु**=धारण करनेवाले हों। बच्चों की माता के इन बुजुर्ग बन्धुओं की यह नैतिक जिम्मेदारी हो जाती है कि वे बच्चों के पिता के चले जाने के बाद घर के बोझ को अपने कन्धों पर लें, घर का ध्यान करनेवाले बनें। (४) और सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि **अत्रा**=इस घर में अब **यमः**=वह सर्वनियन्ता प्रभु **ते सादना**=तेरे बैठने-उठने के स्थानभूत कमरों को **मिनोतु**=(observer, perceiver) देखनेवाला हो। अर्थात् प्रभु की कृपादृष्टि इस घर पर सदा बनी रहे। अनाथों के सच्चे नाथ तो वे प्रभु ही हैं। प्रभु कृपा से सब बात ठीक हो जाती है।

भावार्थ—घर का पाया ऊँचा हो, नीरोगता के लिये यह आवश्यक है। चारदिवारी ठीक हो जिससे आंगन ठीक रहे। रिश्तेदार घर के बोझ को अपने कन्धों पर लें और सब से बड़ी बात यह कि घर पर प्रभु की कृपादृष्टि बनी रहे।

ऋषिः—**सङ्कुसुको यामायनः** ॥ देवता—**पितृमेधः प्रजापतिर्वा** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

विधवा का मौलिक कर्तव्य

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः। प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥ १४ ॥

(१) बच्चों की विधवा माता प्रभु से प्रार्थना करती है कि **माम्**=मुझे **प्रतीचीने**=(प्रति अञ्च्) एक-एक कार्य में लगे हुए **अहनि**=दिन में **इष्वाः पर्णम् इव**=बाण के पर्ण की तरह **आदधुः**=सब देव स्थापित करें। बाण में जो पर्ण लगाया जाता वह उसकी तीव्रगति का कारण होता है और लक्ष्य के वेधन में सहायक होता है। जैसे इषु में पर्ण के लगाने से पूर्व भी गति थी, इसी प्रकार यह माता पहले भी खूब क्रियामय जीवन वाली थी परन्तु पर्ण से गति में जैसे तीव्रता आ जाती है उसी प्रकार यह अब पहले से अधिक गति वाली हो गई है। अब यह अपने लक्ष्य की ओर पूर्वापेक्ष्या अधिक ध्यान से चल रही है। इसका दिन प्रतीचीने=प्रतिक्षण कार्य में लगा हुआ हो गया है। (२) इस विधवा के लिये सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि **वाचम्**=वाणी को **प्रतीचीम्**=**जग्रभा**=वापिस गतिवाला करके ग्रहण करे, उसी प्रकार ग्रहण करे **यथा**=जैसे **अश्वम्**=घोड़े को **रशनया**=लगाम से रोक लेते हैं। अर्थात् वाणी पर इसका पूरा control

(शासन) हो। यह व्यर्थ की बातों में समय को नष्ट न करे। मौन को ही वैधव्य का सर्वोत्तम आभूषण समझे। कम बोलनेवाला कार्य को अधिक सुन्दरता से कर भी सकता है।

भावार्थ—विधवा स्त्री का एक-एक क्षण कार्यमय हो। वह मौन को महत्त्व दे।

सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों में दीर्घ-जीवन की प्रार्थना है इसके लिये हम स्वार्थ से ऊपर उठें, शुद्ध पवित्र जीवन वाले हों, हम रोगशून्य व उल्लासमय जीवन वाले हों, ब्रह्मचर्य रूप पर्वत से मृत्यु को अन्तर्हित करें। (१-४) हमारा जीवन अविच्छिन्न व पूर्ण हो, (५) निरन्तर उद्योगशील होकर आगे बढ़ते रहें, (६) हमारे घरों में स्त्रियों का स्थान प्रमुख हो, (७) यदि अकस्मात् पति का देहान्त हो जाए तो पत्नी बच्चों का पूरा ध्यान करे, (८) पति के कर्तव्यभार को भी अपने कन्धे पर उठाये, (९) बच्चों का रक्षण व कोमलता के साथ पालन करे, (१०) वह बच्चों का ठीक उपचरण करे, (११) घर को घृत के बाहुल्यवाला बना के रखे, (१२) ऐसे घर पर ही प्रभु की कृपादृष्टि होती है, (१३) मौन रहती हुई कार्य में लगी रहे, (१४) घरों में गौवें हों, इन्द्रियाँ हमारे वश में हों, हमारे जीवन में अग्नि व सोम दोनों तत्त्व हों तथा धन की कमी न हो।

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा; अग्नीषोमौ**॥
छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अग्नि व सोम

नि वर्तध्वं मानु गाताऽस्मान्त्सिषक्त रेवतीः। अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम्॥ १॥

(१) गत सूक्त की समाप्ति पर ये शब्द थे कि जीभ को इस प्रकार वश में करो जिस प्रकार घोड़े को लगाम से वश में करते हैं। मनु ने इसी बात को इस प्रकार कहा है कि 'यच्छेद् वाङ् मनसिज प्राज्ञः' प्राज्ञ व्यक्ति वाणी को मन में रोके। यहाँ वाणी अन्य इन्द्रियों का भी प्रतीक है। हमें सब इन्द्रियों को रोकने का प्रयत्न करना है। प्रार्थना करते हैं कि हे इन्द्रियो! **निवर्तध्वम्**=तुम इन विषयों में विचरण से वापिस आओ। **मा अनुगात**=इन विषयों के पीछे ही सदा मत भटकती फिरो। **रेवतीः**=ज्ञान धन से सम्पन्न हुई-हुई तुम **अस्मान् सिषक्त**=हमारा सेवन करो। अर्थात् तुम्हारे द्वारा हमें ज्ञान का दुग्ध पीने को मिले। ज्ञानेन्द्रियाँ गौवें हैं, ज्ञान उनका दुग्ध है। (२) इस ज्ञान के अनुसार आचरण करने से **अग्नीषोमा**=अग्नितत्त्व व सोम तत्त्व हमारे लिये **पुनर्वसू**=पुनः-पुनः अर्थात् प्रतिदिन उत्तम निवास को देनेवाले हों। अग्नितत्व 'शक्ति' का प्रतीक है तो सोमतत्त्व 'शान्ति' का। हम ज्ञानी बनकर अपने जीवनों में 'शक्ति व शान्ति' का समन्वय करनेवाले बनें। (३) ये 'शक्ति व शान्ति' के तत्त्व समन्वित होकर **अस्मे**=हमारे जीवनों में **रयिं धारयतम्**=रयि को धारण करनेवाले हों। हमारे जीवनों में शक्ति हो और शान्ति हो, इनके होने पर जीवन सचमुच विभूतिवाला 'श्रीमत् व ऊर्जित' प्रतीत होता है। ये सब उस प्रभु के तेजोंश के चिह्न होते हैं।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ विषयों के पीछे न चली जाएँ। जिससे हमारा जीवन ज्ञानधनवाला, शक्ति व शान्ति से सम्पन्न-ऐश्वर्यमय हो।

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा**॥
छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

आत्मायत्तता

पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु। इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु॥ २॥

(१) इन्द्रियाँ क्योंकि उस-उस विषय का ग्रहण करने के स्वभाव वाली हैं, सो ये इन्द्रियाँ उन विषयों में जायेंगी तो सही परन्तु जीव से कहते हैं कि तू **पुनः**=फिर **एना**=इन को **निवर्तय**=लौटा। ये विषयों में जायें तो सही, फिर उनमें फँसकर वहीं न रह जाएँ। जैसे एक देश के युवक ज्ञान प्राप्ति के लिये विदेशों में जायें तो सही, परन्तु वे वहाँ की चमक (glase) से चुँधियाकर वहीं न रह जाएँ। (२) हे जीव! तू **पुनः**=फिर- **एना**=इन इन्द्रियों को **न्याकुरु**=निश्चय से आत्मायत्त (=अपने अधीन) करनेवाला हो। (३) **इन्द्रः**=इन्द्र वही है जो कि **एना**=इनको **नियच्छतु**=निश्चय से अपने वश में करे। इन्द्रियों का अधिष्ठाता ही तो 'इन्द्र' कहलाता है। (४) **अग्निः**=(अग्रेणीः) अपने को अग्र-स्थान में प्राप्त करानेवाला वह है जो कि **एना**=इन इन्द्रियों को **उपाजतु**=प्रभु की उपासना के साथ गतिशील बनाता है (उप+अजतु)। प्रभु का स्मरण करता है और जीवन-संग्राम को जारी रखता है। प्रभु स्मरण पूर्वक क्रिया में लगे रहने से सब मलों का दूरीकरण (=क्षेपण) हो जाता है। यही 'उपाजन' कहलाता है।

भावार्थ—विषयगामिनी इन्द्रियों को हम विषयों से लौटाएँ, उन्हें आत्मायत्त करें। इन्द्रियों को आत्मायत्त करके अपने 'इन्द्र' नाम को सार्थक करें। प्रभु की समीपता (उप) में रहते हुए क्रियाशील हों (अज=गति) जिससे मलों का विक्षेपण होकर हम अग्रेणी व अग्नि बनें।

ऋषिः-**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता-**आपो गावो वा**॥
छन्दः-**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः-**गान्धारः**॥

ज्ञान धन का रक्षण

पुन॑रे॒ता नि व॑र्तन्ताम॒स्मिन्पु॑ष्यन्तु॒ गोप॑तौ। इ॒हैवाग्ने॒ नि धा॑र॒येह ति॑ष्ठतु॒ या र॒यिः॥ ३॥

(१) **एताः**=ये ज्ञानेन्द्रिय रूप गोवें अपने-अपने विषयों में विचरण करके **पुनः**=फिर **निवर्तन्ताम्**=लौट आयें। और **अस्मिन् गोपतौ**=इस इन्द्रियरूप गौवों के स्वामी में **पुष्यन्तु**=पोषण को प्राप्त हों। विषयों में जाने से ही तो इनकी शक्तियाँ क्षीण होती हैं। ये सदा विषयों को ही न चरती रह जाएँ। विषयों में आसक्त हो जाने पर इनके पोषण का प्रसंग नहीं रहता। (२) हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **इह एव**=यहाँ अपने में ही **निधारय**=निश्चय से इनका धारण कर। मनरूपी लगाम के द्वारा हम इनको अपने वश में रखें। अपने वश में हुई-हुई इन्द्रियों से जब हम विषयों में जायेंगे तो उन विषयों से बद्ध न होंगे। (३) ऐसा करने पर इन इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाला **या रयिः**=जो ज्ञानधन है वह **इह तिष्ठतु**=हमारे में ही स्थित होता है। हमारा ज्ञान ठीक बना रहता है। यही इन्द्रियों की खूबी है कि वशीभूत हुई-हुई ये हमारे ज्ञानधन का वर्धन करती हैं, और उच्छृंखल हुई-हुई ये हमारे संचित ज्ञानधन को भी नष्ट करनेवाली हो जाती हैं।

भावार्थ—हम अपनी इन्द्रियों को उच्छृंखल न होने दें, अपितु स्व-वश में रखें।

ऋषिः-**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता-**आपो गावो वा**॥
छन्दः-**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः-**गान्धारः**॥

आवर्तन-निवर्तन

यन्नि॒यानं॒ न्यय॑नं सं॒ज्ञानं॒ यत्प॒राय॑णम्। आ॒वर्त॑नं नि॒वर्त॑नं॒ यो गो॒पा अपि॒ तं हु॑वे॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार **यः गोपाः**=जो मैं इन्द्रियों का रक्षक बनता हूँ, इन्द्रियरूपी गौवों का पोषण करनेवाला 'गोपति' होता हूँ, वह मैं **तं अपिहुवे**=उस-उस चीज को समुचित रूप में प्रार्थित करता हूँ, इन सब चीजों को चाहता हूँ। किनको? (क) **यत् नियानं**=जो इन्द्रियरूप गौवों का नियमेन जाने का स्थान है, जिसे सामान्य भाषा में 'गोष्ठ' कहते हैं। यहाँ इन्द्रियरूप गौवों का

'गोष्ठ' यह हमारा अपना शरीर ही है। प्राणमयकोश का (प्राणाः वाव इन्द्रियाणि) आधार यह अन्नमयकोश ही है। एवं यह अन्नमयकोश बिलकुल ठीक हो जिससे इसमें इन्द्रियों का निवास ठीक प्रकार से हो सके। (ख) **न्ययनम्**=मैं न्ययन की भी प्रार्थना करता हूँ। इन इन्द्रियरूप गौवों का ज्ञातव्य विषय रूप चारागाहों में निश्चय से जाना ही न्ययन है। (ग) वहाँ जाकर **संज्ञानं**=विषयों को उत्तमता से, सम्यक्तया जानना ही संज्ञान है इस संज्ञान की भी मैं प्रार्थना करता हूँ। (घ) संज्ञान के बाद **यत्**=जो **परायणम्**=फिर वापिस आना है इसकी भी मैं प्रार्थना करता हूँ। (२) इस प्रकार संक्षेप में यह जो इन्द्रियों का **आवर्तनम्**=ज्ञान प्राप्ति के लिये विषयों में (turning round and round) सब ओर विचरना है, नाना तथ्यों का संग्रहण है, इसकी मैं प्रार्थना करता हूँ। और **निवर्तनम्**='विषयों में आसक्त न होकर, लौट आना है' उसकी मैं प्रार्थना करता हूँ। इन्द्रियाँ विषयों में जायें, उनका ज्ञान प्राप्त करें, परन्तु ये उनमें कभी उलझ न जायें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से मैं गोपा बनकर आत्मवश्य इन इन्द्रियों से विषयों में विचरता हुआ उनका तत्त्वज्ञान प्राप्त करूँ। मेरी इन्द्रियाँ विषयों में न फँस जाएँ।

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा**॥
छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मूलगृह में फिर लौटना

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम्। आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम्॥ ५॥

(१) **यः गोपाः**=जो इन्द्रिय रूप गौवों का रखवाला **व्ययनम्**=इन्द्रियों के विविध विषयों में जाने को **उदानट्**=व्याप्त करता है, अर्थात् जब इन्द्रियाँ विषयों में जाती हैं, तो जो उन इन्द्रियों का रक्षक बनकर उनके साथ जाता है और **यः**=जो उनके **परायणम्**=विषयों से फिर वापिस आने को **उदानट्**=व्याप्त करता है, अर्थात् विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, जो उन इन्द्रियों को उन विषयों में न फँसे रहने देकर उनकी व्यावृत्ति का कारण बनता है। (२) और इस प्रकार जो **आवर्तनम्**=सर्वत्र विषयों में वर्तन को और **निवर्तनम्**=उन विषयों से निवृत्ति को व्याप्त करता है, वह **गोपा निवर्तताम्**=विषय व्यावृत्त हो, और पुनः अपने घर ब्रह्मलोक में लौटनेवाला बने।

भावार्थ—हम विषयों के तत्त्वज्ञान के लिये आत्मवश्य इन्द्रियों के द्वारा उनमें विचरें और उनमें ही न फँसे रहकर फिर से अपने मूलगृह ब्रह्मलोक में लौटनेवाले बनें।

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा**॥
छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

जीवित इन्द्रियरूपी गौवें

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि। जीवाभिर्भुनजामहै॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **आनिवर्त**=आप हमारी ओर लौटिये। आपकी कृपादृष्टि हमारे पर हो। और आप **निवर्तय**=हमारी इन इन्द्रियों को विषयों से लौटानेवाले होइये। और इस प्रकार हे प्रभो! आप **नः**=हमें **पुनः**=फिर **गाः**=इन इन्द्रियरूप गौओं को **देहि**=प्राप्त कराइये। (२) आपकी कृपा से हम **जीवाभिः**=जीवन से युक्त इन इन्द्रियों से **भुनजामहै**=अपना पालन करनेवाले बनें। ये इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाकर, उनका तत्त्वज्ञान प्राप्त करके उनका उचित उपयोग करती हुई सशक्त बनती है और इन जीवित इन्द्रियों से हम जीवनयात्रा में आगे बढ़ते हुए अपना रक्षण करते हैं। परन्तु ये ही इन्द्रियाँ यदि विषयों में जाकर फिर वहाँ से लौटें नहीं, और उन विषयों से बद्ध होकर उनका शिकार हो जाएँ तो इन मृत इन्द्रियों से हमने क्या उन्नति करनी?

(३) जैसे गौवों का चारागाह में जाना आवश्यक होता है, इस वायुसेवन के बिना उनके दूध में गुण उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार इन इन्द्रियों का विषयों में जाना आवश्यक है, अन्यथा ये ज्ञान को कैसे प्राप्त करेंगी? गौवों का जैसे चारागाह से लौटना आवश्यक होता है उसी प्रकार इन इन्द्रियों का भी लौटना आवश्यक है। गौवों का अधिष्ठता ग्वाला अप्रमत्त होकर इस आने-जाने में उनका रक्षण करता है, इसी प्रकार यहाँ इन इन्द्रियरूप गौवों का गोप यह आत्मा है। आत्मा के क्षणिक प्रमाद से ये इन्द्रियरूप गौवें विषय सिंह से आक्रान्त हो जाती हैं। यही उनका मरण हो जाता है। हम तो प्रभु कृपा से जीवित इन्द्रियों के द्वारा अपना रक्षण करनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारी इन्द्रियाँ विषयों का ग्रहण करती हुईं, उनका शिकार न हो जाएँ। ये जीवित इन्द्रियाँ हमारी यात्रा पूर्ति का साधन बनें।

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा**॥
छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अन्न-घृत-दुग्ध

परि॑ वो वि॒श्वतो॑ दध ऊ॒र्जा घृ॒तेन॒ पय॑सा। ये दे॒वाः के च॑ य॒ज्ञिया॒स्ते र॒य्या सं सृ॑जन्तु नः॥ ७॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **वः**=तुम इन्द्रियों को **ऊर्जा**=बल व प्राणशक्ति के वर्धक अन्नरस के द्वारा, **घृतेन**=मलों के क्षरण व जाठराग्नि को दीप्त करनेवाले घृत के द्वारा, **पयसा**=अप्यायन के साधनभूत दुग्ध के द्वारा **विश्वतः**=सब प्रकार से **परिदधे**=चारों ओर से धारण करता हूँ। अर्थात् सात्त्विक अन्न व गोघृत व गोदुग्ध आदि के प्रयोग से मैं इन इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति व क्रियाशक्ति के योग्य बनाता हूँ। (२) इस प्रकार इन्द्रियों को सशक्त बनानेवाले **नः**=हमें, **ये के च**=जो कोई भी **यज्ञियाः देवाः**=पूजा के योग्य, संगतिकरण योग्य, ज्ञान का दान करनेवाले देव पुरुष हैं, वे **रय्या**=ज्ञानधन से **संसृजन्तु**=संसृष्ट करें। हमें चाहिये कि हम सात्त्विक अन्न, घृत व दुग्ध के प्रयोग से अपने को ज्ञान ग्रहण के योग्य बनायें और ज्ञानी पुरुष हमें ज्ञानधन से युक्त करें। हमारी योग्यता के अभाव में उन देवों से दिये गये ज्ञान को हम ग्रहण ही न कर पायेंगे।

भावार्थ—हम ज्ञान प्राप्ति के योग्य बनें और देव हमें ज्ञान देनेवाले हों।

ऋषिः—**मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः**॥ देवता—**आपो गावो वा**॥
छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

इन्द्रियों का निवर्तन

आ नि॑वर्तन वर्तय॒ नि नि॑वर्तन वर्तय। भूम्या॒श्चत॑स्रः प्र॒दिश॒स्ताभ्य॑ एना॒ नि व॑र्तय॥ ८॥

(१) प्रभु जीव को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हे **निवर्तन**=जीवनयात्रा को उत्तमता से करनेवाले जीव! **आवर्तय**=तू अपनी इन इन्द्रियों को इन भूतों व लोकों और दिशा प्रदिशाओं में प्रवृत्त करनेवाला हो 'परीत्य भूतानि, परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च'। ये इन्द्रियाँ इनके प्रति जाकर इनको बारीकी से देखें और इनके ज्ञान को प्राप्त करनेवाली हों। (२) हे **निवर्तन**=इस संसार में न उलझनेवाले जीव! तू **निवर्तय**=इन इन्द्रियों को संसार के इन विविध विषयों से तू निवृत्त करनेवाला हो। ये इन्द्रियाँ उन विषयों के अन्दर उलझ न जायें। (३) **भूम्याः**=इस भूमि को **चतस्रः प्रदिशः**=ये चार विस्तृत दिशायें हैं। **ताभ्यः**=उनसे **एना**=इनको **निवर्तय**=तू निवृत्त करनेवाला हो। विषयों से ये इन्द्रियाँ बद्ध न हो जाएँ, तभी हम जीवन यात्रा को पूर्ण करके अपने ब्रह्मलोकरूप घर में वापिस आ सकेंगे।

भावार्थ—इन्द्रियाँ विषयों के ज्ञान के लिये हैं, उनमें फँस जाने के लिये नहीं। इनको विषय

व्यावृत्त करना हमारा मौलिक कर्तव्य है।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि हम इन्द्रियों को विषयासक्त न होने देकर 'शक्ति व शान्ति' के तत्त्वों का धारण करते हुए ज्ञानधन को धारण करें। (१) इन्द्रियों को आत्मवश्य करने का प्रयत्न करें, (२) इन्द्रियों को वश में करके हम गोपति बनें, (३) गोपा यही चाहता है कि इन्द्रियाँ विषयों में जायें परन्तु उनमें फँसे नहीं, (१४) यह गोपा ही ब्रह्मलोक में लौटता है, (५) हमारी ये इन्द्रियाँ भोगासक्त होकर मृत न हो जाएँ, (६) अन्न, घृत व दुग्ध के सेवन से ये पुष्ट हों, (७) इनको हम भूमि की सब दिशाओं से लौटायें, (८) ऐसा करने पर ही हमारा मन भद्र की ओर प्रेरित होगा।

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आसुरी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भद्राभिमुख मन

भद्रं नो॒ अपि॑ वातय॒ मनः॑ ॥ १ ॥

(१) गत सूक्त का ऋषि 'मथितो यामायनः'=मन्थन करनेवाला, विचारशील, संयमी पुरुष था। इन्द्रियों का संयम करके ही वह ज्ञान मन्थन कर पाया था। ज्ञान परिपक्व होने के कारण उसका नाम 'भृगु' हुआ, यह द्वेष का निवारण करने से 'ऋषि' कहलाया। यह ज्ञान परिपक्व=मार्ग व अज्ञानान्धकार व पाप को दूर करने के कारण 'च्यवन' कहलाया। इस अज्ञानान्धकार को दूर करके ही यह प्रभुदर्शन करनेवाला 'ऐन्द्र' नाम वाला हुआ है, मदशून्य होने से यह 'विमद' है। लोकहित में लगे होने से 'प्राजापत्य' है। अपने निवास को उत्तम बनाने के कारण 'वसुकृत्' है, 'आहार से रस, रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेदस् व मेदस् से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से वीर्य' इनका क्रमशः विनिमय करने से यह 'वासुक्र' कहलाया है। (२) यह प्रभु से प्रार्थना करता है कि **नः**=हमारे **मनः**=मन को **भद्रं अपिवातय**=कल्याण की ओर प्रेरित करिये। हमारा मन प्रभु कृपा से सदा शुभ की ओर ही प्रवृत्त हो। अशुभ से यह दूर हो। मन की प्रवृत्ति पुण्य प्रवाह वाली बने न कि पापमय प्रवाह वाली। (३) यह मन विविध इन्द्रिय द्वारों से विषयों की ओर भागता है। हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम इसे उधर-उधर से रोककर, आत्मा के वश में लाने का प्रयत्न करें। 'यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्'। मन हमारे वश में होगा, तभी हम इसे कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त कर सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा मन भद्र की ओर प्रवृत्त हो।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

यज्ञशेष का सेवन

अ॒ग्निमी॑ळे भु॒जां यवि॑ष्ठं शा॒सा मि॒त्रं दु॒र्धरी॑तुम्। यस्य॒ धर्म॒न्त्स्व॒१॒॑रेनीः॑ सप॒र्यन्ति॑ मा॒तुरूधः॑ ॥ २ ॥

(१) मैं **अग्निम्**=उस अग्रेणी परमात्मा का **ईडे**=उपासन करता हूँ जो कि **भुजाम्**=(भुज पालनाभ्यवहारयोः) केवल शरीर के रक्षण के लिये भोजन करने वालों को **यविष्ठम्**=बुराइयों से पृथक् व अच्छाइयों से संपृक्त करनेवाले हैं। वस्तुतः मनुष्य उतना ही भोजन करे जितना कि शरीररक्षण के लिये आवश्यक है तो इतना जिह्वा संयम होने से किसी प्रकार की बुराई के पैदा होने का सम्भव ही नहीं। (२) **शासा मित्रम्**=मैं उस प्रभु का उपासन करता हूँ जो कि अनुशासन

व उपदेश के द्वारा सब (प्रभीतेः त्रायते) पापों व मृत्युओं से बचानेवाले हैं। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में वह वेदज्ञान दिया है जो कि हमें सब पापों से बचाता है। वेद के गायत्री छन्द का तो अर्थ ही यह है कि 'गायन्तं त्रायते यतः'=यह गान करनेवाले का त्राण करता है। (३) **दुर्धरीतुम्**=ये प्रभु शत्रुओं से दुर्धर्षणीय हैं। कामादि शत्रुओं का हमारे लिये तो धर्षण करना कठिन हो जाता है। परन्तु जब हम उस प्रभु के साथ मिलकर इन कामादि से संघर्ष करते हैं तो ये कामादि सब भस्म हो जाते हैं (त्वया स्विद् युजा वयं) (४) **यस्यधर्मन्**=उस परमात्मा का उपासन करता हूँ जिसके धारण करने पर मनुष्य **स्वः एनीः**=स्वर्ग के प्रति ले जानेवाली आहुतियों का **सपर्यन्ति**=सेवन करते हैं, उसी प्रकार सेवन करते हैं जैसे कि बछड़े **मातुः ऊधः**=अपनी माता के ऊधस् (udder) का सेवन करते हैं। माता के ऊधस् से दुग्ध को प्राप्त करके बच्चे पोषण को प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार ये यज्ञ की आहुतियाँ हमारा इस लोक व पर लोक में कल्याण करती हैं।

भावार्थ—प्रभु के वेद में दिये गये आदेश के अनुसार यज्ञशेष का सेवन करनेवाले हम सब पापों से बचें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

'कृप-नीड' प्रभु

यमा॒सा कृ॒पनी॑ळं भा॒साके॑तुं व॒र्धय॑न्ति। भ्राज॑ते॒ श्रेणि॑दन्॥ ३॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को भक्त लोक **आसा**=(आस्येन) मुख के द्वारा, स्तुतिवचनों के उच्चारण के द्वारा **वर्धयन्ति**=बढ़ाते हैं अर्थात् जिस प्रभु का गुणगान करते हैं वे प्रभु **कृपनीडम्**=(कृपू सामर्थ्ये) सम्पूर्ण सामर्थ्यों के आश्रयस्थल हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और **भासाकेतुं**=ज्ञान के प्रकाश के द्वारा (कित निवासे रोगापनयने च) हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले तथा हमारे सब रोगों को दूर करनेवाले हैं। (२) वे प्रभु **श्रोणिदन्**=उपासकों के लिये अभीष्ट फलों की श्रेणियों के देनेवाले हैं—(अभीष्ट फलसमूह प्रदः सा०) अथवा सब जीवों को कर्मानुसार विविध श्रेणियों के प्राप्त करानेवाले हैं। वे प्रभु हमारे कर्मानुसार 'पशु मनुष्य व देव' आदि श्रेणियों में जन्म देते हैं। ऐसे वे प्रभु **भ्राजते**=कण-कण में देदीप्यमान हो रहे हैं। उस प्रभु की महिमा सर्वत्र द्योतित होती है।

भावार्थ—प्रभु सम्पूर्ण सामर्थ्यों के आधार हैं, ज्ञान के द्वारा मार्ग का प्रकाशन करते हैं। हम प्रभु का स्तवन करेंगे तो हम भी शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके अभीष्ट फल समूह को प्राप्त करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥
स्वरः—**षड्जः**॥

अज्ञानान्धकार विमर्श

अ॒र्यो वि॒शां गा॒तुरे॑ति॒ प्र यदान॑ड् दि॒वो अन्ता॑न्। क॒विर॒भ्रं दीद्या॑नः॥ ४॥

(१) वे प्रभु **अर्यः**=स्वामी हैं। वस्तुतः सब ब्रह्माण्ड के मालिक व पति प्रभु ही हैं 'भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' **विशाम्**=सब प्रजाओं के **गातुः**=मार्ग वे प्रभु ही हैं। वस्तुतः सब प्रजाओं ने उस प्रभु की ओर ही जाना है। भटक-भटकाकर अन्त में सब चलते उस प्रभु की ओर ही हैं। (२) **यत्**=क्योंकि वे प्रभु **दिवः अन्तान्**=ज्ञान के अन्तिम तत्त्वों को (उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वन-पोस्तत्त्वदर्शिभिः) **प्र आनट्**=प्रकर्षेण व्याप्त करते हैं, वे निरतिशय ज्ञान का आधार है, प्रभु में ही ज्ञान के तारतम्य की विश्रान्ति होती है, सो वे प्रभु **कविः**=सर्वज्ञ व क्रान्तदर्शी हैं और **अभ्रम्**=अज्ञान

के बादलों को **दीद्यानः**=छिन्न-भिन्न करनेवाले हैं। हमारे हृदयों में स्थित होकर हृदयों को ज्ञान के प्रकाश से द्योतित करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से ही अज्ञानान्धकार नष्ट होता है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'यज्ञ-प्रिय' प्रभु

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे। मिन्वन्त्सद्म पुर एति॥ ५॥

(१) वे प्रभु **मानुषस्य**=करुणापूर्ण मन वाले मनुष्य के (Humane=मानुष), मनुष्यों का हित चाहनेवाले व्यक्ति के **हव्या**=हव्य पदार्थों का **जुषत्**=सेवन करते हैं। अर्थात् लोकहित की भावना से जब मनुष्य त्यागपूर्वक उपभोग करता है तो वह प्रभु को प्रीणित करनेवाला है। (२) वस्तुतः मनुष्य यज्ञ करता है, तो वे प्रभु **ऊर्ध्वः तस्थौ**=ऊपर खड़े होते हैं, अर्थात् उन यज्ञों की रक्षा कर रहे होते हैं। प्रभुरक्षण से ही तो यज्ञ पूर्ण हो पाते हैं। (३) वे प्रभु **यज्ञे**=इन यज्ञों में ही **ऋभ्वा**=(उरु भाति) खूब देदीप्यमान होते हैं। वस्तुतः जहां यज्ञ, वहीं प्रभु का निवास। अयज्ञिय स्थलों में प्रभु का प्रकाश नहीं होता। (४) इन यज्ञशील पुरुषों के लिये वे प्रभु **सद्म मिन्वन्**=उत्तम देवगृहों का निर्माण करते हैं, अर्थात् इन को उत्तम लोकों में जन्म देते हैं और **पुरः एति**=इनके आगे आगे चलते हैं, अर्थात् इनके लिये मार्गदर्शन होते हैं। प्रभु के नेतृत्व में इन यज्ञशील पुरुषों का सदा कल्याण ही होता है।

भावार्थ—प्रभु के लिये यज्ञशील पुरुष ही प्रिय हैं, यज्ञों के रक्षक प्रभु ही हैं। इन यज्ञशील पुरुषों को उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वाशीमान्' अग्नि

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति। अग्निं देवा वाशीमन्तम्॥ ६॥

(१) **स**=वे प्रभु **हि**=निश्चय से **क्षेमः**=आनन्दस्वरूप हैं और सब का कल्याण करनेवाले हैं। **हविः**=(हु दाने) वे इस ब्रह्माण्ड यज्ञ को करते हुए जीव को उसकी उन्नति के लिये सब आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं। **यज्ञः**=वे पूजा के योग्य, संगतिकरण योग्य व समर्पणीय हैं। प्रभु के प्रति अपना अर्पण करके ही हम अपने पूर्ण कल्याण का साधन करते हैं। (२) **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **इत्**=निश्चय से **गातुः**=मार्ग पर चलानेवाला व्यक्ति **अस्य एति**=इसके प्रति प्राप्त होता है। वस्तुतः धर्म के मार्ग पर चलता हुआ व्यक्ति, एक दिन आगे और आगे बढ़ता हुआ, इस प्रभु को प्राप्त करता ही है। (३) उसी मार्ग का संकेत करते हुए कहते हैं कि **देवाः**=देववृत्ति के लोग, 'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा' देकर बचे हुए को खानेवाले, स्वाध्याय से अपने मस्तिष्क को दीप्त करनेवाले तथा प्रवचन द्वारा औरों तक ज्ञान-ज्योति को पहुँचानेवाले लोग **अग्निम्**=उस अग्रेणी, **वाशीमन्तम्**=आवाज वाले, हृदयस्थ होकर सदा प्रेरणा देनेवाले प्रभु को प्राप्त होते हैं। एवं स्पष्ट है कि प्रभु प्राप्ति के लिये देव बनना आवश्यक है। उन्नति के मार्ग पर चलने के लिये प्रयत्न करनेवाला तथा हृदयस्थ प्रभु की वाणी को सुननेवाला व्यक्ति ही प्रभु को प्राप्त करता है। प्रभु 'अग्नि' हैं, सो उनका भक्त अग्नि बनने का प्रयत्न करता है। प्रभु 'वाशीमान्' हैं, प्रभु-भक्त उस **वाशी**=(voice) को सुनने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—मैं धर्म के मार्ग पर चलता हुआ, देव बनने का प्रयत्न करता हुआ, प्रभु को प्राप्त करूँ। वे प्रभु ही मुझे श्रेष्ठ आनन्द को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'यज्ञासाह' अग्नि

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य। अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥ ७ ॥

(१) **यज्ञासाहम्**=यज्ञों के द्वारा समन्तात् शत्रुओं का पराभव करनेवाले, अर्थात् हमारे में यज्ञवृत्ति को उत्पन्न करके हमारे काम, क्रोध लोभादि को समाप्त करनेवाले, **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को लक्ष्य करके **दुवः**=परिचरणम्=उपासना को **इषे**=चाहता हूँ। मेरी कामना यह होती है कि मैं उस यज्ञ पुरुष का उपासक बनूँ जो कि यज्ञाग्नि में हमारे सब मलों को भस्मीभूत कर देते हैं। (२) उस प्रभु को **पूर्वस्य**=सर्वप्रथम व सर्वश्रेष्ठ **शेवस्य**=सुख व आनन्द का **सूनुम्**=प्रेरक **आहुः**=कहते हैं। वे प्रभु उस अवर्णनीय आनन्द को देनेवाले हैं जो आनन्द अन्य सब आनन्दों का अतिशायी है। उस प्रभु को **अद्रेः**=बड़ी कठिनता से विदारण के योग्य, पाँच पर्वों वाली अविद्यारूपी पर्वत का **आयुम्**=(इगतौ) हिला देनेवाला कहते हैं। उस प्रभु की कृपा से यह अत्यन्त दृढ़ अविद्या की चट्टान भी चकनाचूर हो जाती है। एवं प्रभु कृपा से हमारा अज्ञान नष्ट होकर हमें उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त होता है।

भावार्थ—यज्ञवृत्ति से सब पाप दूर होते हैं, तब प्रभु हमें अवर्णनीय आनन्द प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नर की वाम में स्थिति

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः। अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥

(१) **अस्मत्**=हमारे में से **ये के च**=जो कोई भी **नरः**=(नरम्) संसार के विषयों में न फँसनेवाले तथा (नृ नये) अपने को उन्नतिपथ पर आगे ले चलनेवाले व्यक्ति हों **विश्वा इत् ते**=वे सब निश्चय से **वामे**=उस सुन्दर-वननीय=उपासनीय प्रभु में **आस्युः**=सब प्रकार से हों। अर्थात् ब्रह्मस्थ व ब्रह्म का उपासक होने का उपाय यही है कि हम 'नर' बनें इस संसार में नर बनकर कार्य करें। (२) नर बनकर कार्य करनेवाला व्यक्ति आसक्त नहीं होता। इसका जीवन हविरूप होता है। हम इस **हविषा**=हवि के द्वारा-दानपूर्वक अदन के द्वारा सदा सदा यज्ञशेष के सेवन के द्वारा **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **वर्धन्तः**=वर्धन करनेवाले हों। प्रभु की उपासना हवि के द्वारा ही होती है 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। प्रभु के उपासक सदा 'वामे आस्युः'=सुन्दर सेवनीय पदार्थों में स्थित होते हैं। इन्हें इन पदार्थों की कमी नहीं हो जाती।

भावार्थ—दानपूर्वक अदन के द्वारा प्रभु का वर्धन करते हुए हम सदा नर बनें और ब्रह्मनिष्ठ व सब सुन्दर वस्तुओं को प्राप्त करनेवाले हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

हिरण्यरूप

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्। हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥

(१) गत मन्त्र का जो नर है **अस्य**=इसका **यामः**=मार्ग **कृष्णः श्वेतः**=काला व सफेद होता है। 'कृष्णः श्वेतः' यहाँ विरोधाभास अलंकार है। विरोध का परिहार इस प्रकार है कि कृष्णः=आकर्षक है, श्वेतः=शुद्ध व निर्मल है। इस पुरुष को देखकर औरों के मनों में भी इस मार्ग पर चलने की वृत्ति उत्पन्न होती है। **अरुषः**=इनका जीवन मार्ग (अ-रुष) क्रोध से शून्य है अथवा आरोचमान-प्रकाशमय है। **ब्रध्नः**=इनका मार्ग महान् होता है ये उदारवृत्ति को लेकर चलते हैं, इनके किसी भी विचार व कर्म में हृदय की संकीर्णता का प्रकटन नहीं होता है। **उत**=और इनका यह मार्ग **ऋज्रः**=इनका मार्ग ऋजु व सरल होता है, ये कुटिलता से दूर रहते हैं। **शोणः**=तेजस्विता के सूचक रक्तवर्ण वाला होता है, इनके प्रत्येक कर्म में तेजस्विता टपकती है। और इसीलिये इनका यह मार्ग **यशस्वान्**=यशोयुक्त होता है। (२) इस मार्ग पर चलनेवाले इन व्यक्तियों को **जनिता**=वह उत्पादक प्रभु **हिरण्यरूपम्**=ज्योतिर्मय रूप वाला **जजान**=बनाता है। अथवा हितरमणीयरूप वाला करता है। इन व्यक्तियों के चेहरे से ज्योति व निर्द्वेषता का आभास मिलता है।

भावार्थ—हमारा जीवन का मार्ग आकर्षक व शुद्ध हो, आरोचमान विशाल व ऋजु हो, तेजस्विता व यश से पूर्ण हो। हम हिरण्यरूप बनें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

विमद का सुन्दर जीवन

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः॥ १०॥

(१) हे **ऊर्जोनपात्**=बल के न नष्ट होने देनेवाले **अग्ने**=तेजस्विन् प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **विमदः**=मदशून्य, मार्ग पर चलनेवाला ऋषि **ते**=आपकी **मनीषाम्**=वेदवाणी में दी गई बुद्धि को **अमृतेभिः**=विषयवासनाओं के पीछे न मरनेवाले विद्वानों के साथ **सजोषाः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाला होता है। ऐसे विद्वानों के सम्पर्क में आकर वेदज्ञान को प्राप्त करता है। (२) **गिरः** **आवक्षत्**=स्तुतिवाणियों का यह उच्चारण करता है और **सुमतीः इयानः**=कल्याणकर बुद्धियों को प्राप्त करने के स्वभाव वाला होता है। (३) इस प्रकार स्तुति-वाणियों व कल्याणकर बुद्धियों को धारण करके यह **इषम्**=उत्तम अन्न को **ऊर्जम्**=शक्तिप्रद रस को तथा **सुक्षितिम्**=उत्तम निवास को, संक्षेप में **विश्वम्**=इन सब वस्तुओं को **आभाः**=(भृ) धारण करता है। उत्तम अन्न-रस को सेवन करता हुआ यह उत्तम निवास वाला होता है। (४) 'इषमूर्जम्' की यह भावना भी यह संगत ही है कि इषम्=प्रेरणा को तथा ऊर्जम्=उस प्रेरणा को कार्यरूप में लाने की शक्ति को और इस प्रकार सुक्षितिम्=उत्तम जीवन को यह पुष्ट करता है। 'इस उत्तम जीवनवाला भी यह 'वि-मद' होता है' यही इसके जीवन का सौन्दर्य है।

भावार्थ—हम विद्वानों से वेदज्ञान को प्राप्त करें, स्तुति-वाणियों का उच्चारण करें, सुबुद्धि वाले हों, अन्न-रस का सेवन करते हुए पूर्ण स्वस्थ हों।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हमारा मन भद्र में प्रवृत्त हो। (१) हम यज्ञशेष का सेवन करें, (२) सम्पूर्ण सामर्थ्यों के आधार व ज्ञान प्रकाश से मार्गदर्शन प्रभु का स्तवन करें, (३) प्रभु कृपा से ही अज्ञानान्धकार नष्ट होता है, (४) उस प्रभु को यज्ञशील पुरुष ही प्रिय हैं, (५) वे प्रभु ही श्रेष्ठ आनन्द को प्राप्त कराते हैं, (६) यज्ञवृत्ति से सब पाप दूर होते हैं, (७)

नर वे ही हैं जो सदा दानपूर्वक अदन करते हैं, (८) इन्हें प्रभु 'हिरण्यरूप' बनाते हैं, (९) ये अन्नरस का सेवन करते हुए पूर्ण स्वस्थ होते हैं, (१०) ये विशिष्ट उन्नति के लिये उस प्रभु का ही वरण करते हैं।

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'मैं' को छोड़कर

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥ १ ॥

(१) **होतारम्**=इस सृष्टियज्ञ के होता—सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओं के देनेवाले **अग्निम्**=अग्रेणी **त्वा**=आपको **न**=(सं प्रति) अब **स्ववृक्तिभिः**='मैं' के वर्जन के द्वारा, अर्थात् 'मैं' से ऊपर उठकर **आवृणीमहे**=सर्वथा वरण करते हैं। जहाँ 'मैं' और 'मेरा' होता है वहाँ प्रभु का निवास नहीं होता। 'मैं' गई और 'प्रभु' आये। मैं और प्रभु का साथ-साथ रहना नहीं सम्भव। दिव्यता की पराकाष्ठा निरभिमानता ही है। (२) प्रभु का वरण इसलिये करते हैं कि **यज्ञाय**=हमारे में यज्ञ की भावना की वृद्धि हो। '**स्तीर्णबर्हिषे**'='बिछाया है वासनाशून्य हृदय जिसने' ऐसा बनने के लिये। आये हुए अतिथि के लिये जैसे आसन देते हैं, उसी प्रकार प्रभु के आतिथ्य के लिये 'वासनाशून्य-हृदय' रूप आसन ही तो बिछाया जाता है। निर्वासन हृदय में ही प्रभु का निवास है। (३) उस प्रभु का वरण करते हैं जो कि **वः**=तुम्हारे **मदे**=आनन्द में **विशीरम्**=विशेषरूप से शयन व निवास करनेवाले हैं। अर्थात् प्रभु उसे ही प्राप्त होते हैं जो कि सुख-दुःख में सदा आनन्दित रहता है। खीझने की मनोवृत्ति वाले को प्रभु की प्राप्ति नहीं होती। **पावकशोचिषम्**=वे प्रभु शोधकदीप्ति वाले हैं। हमें प्रभु प्राप्त होते हैं तो उन प्रभु के ज्ञान का प्रकाश हमारे सब पापों व मलों को धो डालता है। (४) **विवक्षसे**=हम प्रभु को विशिष्ट उन्नति के लिये प्राप्त करते हैं (वक्ष् To grow)। प्रभु प्राप्ति से सब दिशाओं में हम अधिकाधिक उन्नत होते चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु का वरण 'मैं' के त्याग से होता है। प्रभु वरण करनेवाला निरन्तर उन्नतिपथ पर आगे बढ़ता है।

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उपसेचनी-ऋजीति-आहुति

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वाम्**=आपको **उ**=निश्चय से **ते**=वे **स्वाभुवः**=(स्वयं आभवन्ति) सब प्रकार स्वाश्रित लोग, **अश्वराधसः**=व्याप्त धनों वाले लोग **शुम्भन्ति**=अपने जीवन में सुशोभित करते हैं। प्रभु को प्राप्त लोगों के दो चिह्न हैं एक तो यह कि वे पराश्रित नहीं होते, अपने पाँव पर खड़े होते हैं, और दूसरा यह कि वे अर्जित धनों का विनियोग केवल अपने लिये नहीं करते। लोकहित के लिये धनों का विनियोग करते हुए वे 'व्याप्त धनों वाले' कहलाते हैं। (२) हे प्रभो! **त्वाम्**=आपको **उपसेचनी**=लोकों को सुखों से सिक्त करने की क्रिया **वेति**=प्राप्त कराती है। अर्थात्

यदि एक व्यक्ति दु:खितों पर करुणार्द्रचित्त होकर उनके दु:खों को दूर करता है और उनको सुखों की वर्षा से सिक्त करता है तो यह व्यक्ति आपको प्राप्त होता है। (३) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ऋजीतिः**=ऋजुता व सरलता आपको प्राप्त कराती है। सरलता प्रभु प्राप्ति का साधन बनती है। इसी प्रकार **आहुतिः**=त्याग व दान आपको प्राप्त कराता है। एवं प्रभु प्राप्ति के तीन साधन हैं—(क) लोगों को, दु:ख दूर करके, सुखसिक्त करना, (ख) सरलता व (ग) त्याग। (४) यह प्रभु प्राप्ति **वः**=तुम सबके **मदे**=मद के निमित्त होती है, अर्थात् एक अद्भुत मस्ती वाले जीवन को जन्म देती है और **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होती है।

भावार्थ—'प्रभु-भक्त' अपराश्रित व व्याप्तधन होता है। प्रभु प्राप्ति के लिये करुणार्द्रता, ऋजुता व त्याग आवश्यक हैं। प्रभु प्राप्ति से आनन्द मिलता है और सर्वतोमुखी उन्नति होती है।

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कृष्ण व अर्जुन

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥ ३ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वे**=आप में **धर्माणः**='धर्मो धारयते प्रजाः' धारणात्मक कर्मों को करनेवाले लोग **आसते**=आसीत होते हैं। ये लोग **जुहूभिः**=चम्मचों से **सिञ्चतीः इव**=सदा अग्नि का सेचन-सा कर रहे होते हैं। जैसे चम्मच से अग्नि में घृत का सेचन होता है, इसी प्रकार ये लोग (हु=दान) स्वार्जित धनों के त्याग व दान से प्रजा पर सुखों का वर्षण करते हैं, प्रजाओं को सुख से सींचते से हैं। (२) इन लोगों के **रूपाणि**=रूप **कृष्णा**=आकर्षकत्व **अर्जुना**=श्वेत व शुद्ध होते हैं। (३) हे प्रभु को प्राप्त करनेवाले जीव! तू **वः मदे**=अपने आनन्द में **विश्वाः श्रियः**=सब शोभाओं को **अधिधिषे**=आधिक्येन धारण करनेवाला होता है और **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होता है। प्रभु प्राप्ति का परिणाम प्रभु-भक्त के जीवन में यह होता है कि वह सब शुभ-गुणों का धारण करनेवाला होता है और सब प्रकार की उन्नति उसके जीवन को सुन्दर बना देती है।

भावार्थ—प्रभु के सच्चे उपासक वे ही हैं जो लोकधारण में तत्पर रहते हैं।

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अमर्त्य-सहसावन्-अग्नि'

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी, **सहसावन्**=बल-सम्पन्न, **अमर्त्य**=किसी भी विषय के पीछे न मरनेवाले अमर प्रभो! **यम्**=जिस भी **रयिम्**=धन को आप **मन्यसे**=आदरणीय समझते हैं **तम्**=उस **यज्ञेषु**=यज्ञों में विनियुक्त होने पर **चित्रं**=(चित्-र) ज्ञान की वृद्धि के कारण भूत धन को **नः**=हमारे लिये **आभरा**=धारण कीजिये। प्रभु अग्नि हैं, अग्र-स्थान पर स्थित हैं, क्योंकि सहसावन्=बल-सम्पन्न हैं। बिना बल के अग्नित्व प्राप्त नहीं होता, प्रभु बल-सम्पन्न हैं, क्योंकि अमर्त्य हैं, प्रभु विषयप्रसक्त नहीं है। ये तीन सम्बोधन हमें भी प्रेरणा दे रहे हैं कि 'अमर्त्य' बनकर 'सहसावन्' बनो, तभी 'अग्नि' बन पाओगे। (२) हे प्रभो! इस रयि को इसलिये प्राप्त कराइये

कि हम **वः**=आपकी प्राप्ति के **वि-मदे**=प्रकृष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये हों। यह रयि यज्ञों में विनियुक्त होता हुआ हमारी विषयाशक्ति का कारण न बनकर सदा उन्नति का ही कारण हो और इस प्रकार यह धन **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये हो (वाज-शक्ति, साति-प्राप्ति)। (३) 'वाजसाति' शब्द संग्राम के लिये भी प्रयुक्त होता है। यह धन हमें काम, क्रोध, लोभादि के साथ चलनेवाले अध्यात्म-संग्राम में सहायक हो। हमें इस धन के दास बनकर इस संग्राम में हार न जायें। यह धन हमें ह्रास की ओर न ले जाकर सदा उत्थान की ओर ले जानेवाला हो।

भावार्थ—'प्रभु' अग्नि सहसाधन व अमर्त्य हैं। प्रभु हमें भी वह रयि प्राप्त करायें जिससे कि हम भी ऐसे ही बन सकें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥
स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विवस्वान् का दूत

अ॒ग्निर्जा॒तो अथ॑र्वणा वि॒दद्विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।
भुव॑द्दू॒तो वि॒वस्व॑तो॒ वि वो॒ मदे॑ प्रि॒यो य॒मस्य॒ काम्यो॒ विव॑क्षसे ॥ ५ ॥

(१) गत मन्त्र में प्रार्थना की गई थी कि हम अग्नि बन सकें। उसीका उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि **अथर्वणा**=(न थर्वति) डाँवाडोल न होने से तथा (अथ अर्वाङ्) सदा अपने अन्दर आत्मनिरीक्षण करने से **अग्निः**=अग्नि **जातः**=हो जाता है। अग्नि व अग्रेणी बनने के लिये आवश्यक है कि मनुष्य अभ्यास व वैराग्य के द्वारा मन को स्थिर करे। चित्तवृत्तिनिरोध के बिना 'अग्नि' बनने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। इस अग्नि बनने के लिये प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण भी नितान्त आवश्यक है। आत्मनिरीक्षण का अभ्यासी पुरुष ही कमियों को दूर करता हुआ आगे बढ़ पाता है। (२) यह अग्नि बननेवाला व्यक्ति **विश्वानि काव्या**=सम्पूर्ण ज्ञानों को **विदद्**=जाननेवाला होता है। वस्तुतः अन्तःस्थित उस महान् अग्नि (=प्रभु) के प्रकाश को देखने से यह सम्पूर्ण तत्त्वों के रहस्य को जानने में समर्थ होता है। इसे उस कवि के काव्य प्राप्त होते ही हैं। (३) इन काव्यों को प्राप्त करके यह **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणों वाले उस प्रभु का **दूतः भुवत्**=दूत होता है। उसके सन्देश को सर्वत्र फैलानेवाला बनता है। यही जीवन की अन्तिम मंजिल में 'प्राजापत्य यज्ञ' में आहुति देना है। (४) इस ज्ञान-सन्देश को फैलाने के कार्य में लगा हुआ यह व्यक्ति **यमस्य**=उस सर्वनियन्ता प्रभु का **प्रियः**=प्यारा होता है। यह सारी प्रजा का भी **काम्यः**=चाहने योग्य होता है। (५) इस की कामना यही होती है कि हे प्रभो! **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=उत्कृष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=सब प्रजायें विशिष्ट उन्नति के लिये हों। सारी प्रजाओं का झुकाव आपकी ओर हो और वे उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाली हों।

भावार्थ—हम स्थिरचित्तता व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अग्नि बनें। प्रभु के सन्देशवाहक बनकर प्रभु के प्रिय हों। हमारी कामना यही हो कि सब प्रभु प्रवण होकर उन्नतिपथ पर आगे बढ़ें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्चीपङ्क्तिः** ॥
स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन

त्वां य॒ज्ञेष्वी॑ळ॒तेऽग्ने॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे। त्वं वसू॑नि॒ काम्या॒ वि वो॒ मदे॒ विश्वा॑ दधासि दा॒शुषे॒ विव॑क्षसे ॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाम्**=आपको ही **प्रयति**=प्रकर्षेण गति वाले **अध्वरे**=हिंसारहित जीवनयज्ञ में **यज्ञेषु**=इन 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' रूप श्रेष्ठतम कर्मों में **ईडते**=दाश्वान् पुरुष

उपासित करते हैं। दाश्वान् पुरुष वह है जो कि प्रभु से दिये जानेवाले धनों को सदा लोकहित के लिये देता है। यह अपने जीवन को क्रियाशील व हिंसारहित बनाता है एवं इसका जीवन निरन्तर चलनेवाला अध्वर ही होता है। इस जीवन में यह 'बड़ों का आदर, परस्पर प्रेम तथा दान' आदि यज्ञिय वृत्तियों को अपनाता है, ये वृत्तियाँ ही इसका प्रभु-उपासन हो जाती हैं। (२) **त्वम्**=हे प्रभो! आप भी **दाशुषे**=इस दाश्वान् पुरुष के लिये **विश्वा**=सब **काम्या**=कमनीय, चाहने योग्य **वसूनि**=धनों को **दधासि**=धारण करते हैं। (३) इन कमनीय धनों को प्राप्त करके यह दाश्वान् पुरुष **वः**=आपकी **विमदे**=प्राप्ति के आनन्द में **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होता है। संसार में निवास के लिये आवश्यक, अतएव कमनीय धनों के बिना किसी प्रकार की उन्नति का सम्भव नहीं होता। इन धनों के द्वारा भौतिक-स्वास्थ्य का साधन करके एक भक्त ध्यान में प्रभु प्राप्ति के अद्भुत आनन्द का प्रातः-सायं अनुभव करता है और जीवन में विशिष्ट उन्नति के लिये समर्थ होता है।

भावार्थ—हम यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करें। प्रभु कृपा से हम कमनीय वसुओं को प्राप्त करके भौतिक स्वास्थ्य का साधन करें और अध्यात्म-क्षेत्र में आगे बढ़ें।

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'शुक्र-चेतिष्ठ' प्रभु

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे। घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यज्ञेषु**=यज्ञों में **ऋत्विजम्**=समय-समय पर उपासना के योग्य **चारुम्**=अत्यन्त रमणीय आपको **मनुषः**=विचार पूर्वक कर्म करनेवाले लोग **निषेदिरे**=स्थापित करते हैं। समझदार लोग यज्ञों द्वारा ही प्रभु का उपासन करते हैं। उस-उस समय के अनुसार होनेवाले लोकहितात्मक कर्मों से इनका प्रभु-पूजन चलता है। वे प्रभु 'चारु' हैं, सुन्दर ही सुन्दर हैं। प्रभु में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं। इनका जीवन भी न्यूनताओं से रहित होकर सुन्दरता को प्राप्त करनेवाला होता है। (२) उस प्रभु को ये विचारशील पुरुष अपने में स्थापित करते हैं जो कि **घृतप्रतीकम्**=(घृत=व्याप्तै तेजोभिः, प्रतीक=अतिशयेन ज्ञातारं) व्याप्त तेजस्विताओं के साथ अतिशयेन ज्ञाता हैं। ये उपासक भी अपने में तेजस्विता व ज्ञान का समन्वय करने का प्रयत्न करते हैं। (३) वे उस प्रभु का उपासन करते हैं जो कि **शुक्रम्**=(शुक गतौ) अधिक से अधिक क्रियाशील हैं और **चेतिष्ठम्**=सर्वातिशायी चेतना व ज्ञान वाले हैं। एक उपासक भी क्रियाशील व ज्ञानी बनता है। यह ज्ञानी पुरुष कभी अकर्मण्य नहीं होता। (४) इस प्रकार ये उपासक **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=प्रकृष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होते हैं।

भावार्थ—प्रभु का उपासक तेजस्वी व ज्ञानी होता है, यह अपने में क्रियाशीलता व ज्ञान का समन्वय करके चलता है।

ऋषिः—**विमद एन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

क्रियाशील ज्ञानी भक्त

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत्।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **शुक्रेण शोचिषा**=(शुक गतौ) ज्ञानदीप्ति के

द्वारा **उरु**=हृदय की विशालता के साथ तथा **बृहत्**=अंग-प्रत्यंग की शक्ति की वृद्धि के साथ **प्रथयसे**=अपना विस्तार करनेवाला होता है। क्रिया व ज्ञान के समन्वय से इसकी भौतिक व अध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति होती है। 'उरु' अध्यात्म उन्नति का संकेत करता है तो बृहत्=भौतिक उन्नति का। एवं उन्नति में 'अभ्युदय व निःश्रेयस' दोनों का स्थान है। दोनों का समन्वय ही वास्तविक धर्म है 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। (२) हे अग्रेणी जीव! तू **अभिक्रन्दन्**=दिन के प्रारम्भ व अन्त में, अर्थात् दोनों समय उस प्रभु का आह्वान करता हुआ **वृषायसे**=एक शक्तिशाली पुरुष की तरह आचरण करता है। प्रभु-स्मरण से प्रभु की समीपता में यह उसी प्रकार सशक्त बन जाता है जैसे कि माता के अंक में स्थित बालक शक्ति को अनुभव करता है और निर्भीक होता है। (३) हे प्रभो! **वः**=आपकी प्रति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द के निमित्त यह **गर्भं दधासि**=हिरण्यगर्भ नामक आपका धारण करता है। आप सभी को अपने में धारण करने से 'गर्भ' हैं, यह भक्त आपको धारण करने के लिये यत्नवान् होता है। और इसीलिए **जामिषु**=सब बन्धुओं में **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होता है। वस्तुतः प्रभु का धारण व उपासन हमें मार्गभ्रष्ट होने से बचाता है और हमारी उन्नति का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासन ही सब उन्नतियों का मूल है। प्रभु का उपासक क्रियाशील व ज्ञानी होता है।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से होता है कि मैं को छोड़कर ही हम प्रभु का वरण कर पाते हैं। (१) प्रभु प्राप्ति के लिये 'करुणार्द्रता, सरलता व त्याग' आवश्यक हैं, (२) प्रभु के सच्चे उपासक लोक-धारण में तत्पर होते हैं, (३) प्रभु का उपासक 'अग्नि, सहसवान् व अमर्त्य' बनने का प्रयत्न करता है, (४) स्थिरचित्तता व आत्मनिरीक्षण के द्वारा हम अग्नि बनते हैं, (५) यज्ञों के द्वारा 'प्रभु उपासन' करके हम कमनीय वसुओं को प्राप्त करते हैं, (६) इन वसुओं को प्राप्त करके हम तेजस्वी व ज्ञानी बनते हैं, (७) क्रियाशील ज्ञानी पुरुष ही तो प्रभु का सच्चा उपासक होता है, (८) यह प्रभु ही हमारा उपास्य हो।

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ऋषियों के घरों में

कुह॑ श्रु॒त इन्द्रः॒ कस्मि॑न्न॒द्य जने॑ मि॒त्रो न श्रू॑यते। ऋषी॑णां वा॒ यः क्षये॒ गुहा॑ वा॒ चर्कृ॑षे गि॒रा ॥ १ ॥

(१) **कुह**=कहाँ **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **श्रुतः**=सुना जाता है। अर्थात् प्रभु की आवाज को कौन-सी योनि में आत्मा सुन पाती है? **अद्य**=आज **कस्मिन् जने**=किस व्यक्ति में **मित्रो न**=मित्र के समान **श्रूयते**=वह प्रभु सुना जाता है। जैसे एक मित्र की वाणी को हम सुनते हैं उसी प्रकार उस महान् मित्र प्रभु की वाणी को कौन सुनता है? इस संसार में प्रायः एक मित्र दूसरे मित्र को सलाह देता हुआ झिझकता है, प्रायः दूसरा व्यक्ति अपने मित्र की ठीक सम्मति को सुनने को तैयार भी नहीं होता। प्रभु सलाह तो सदा देते ही हैं, पर प्रायः हम उस सलाह को सुनते नहीं हैं? (२) ये प्रभु वे हैं **यः वा**=जो कि या तो **ऋषीणां क्षये**=तत्त्वद्रष्टाओं के घरों में **वा**=अथवा **गुहा**=बुद्धि व हृदयदेश में **गिरा**=वाणियों के द्वारा **चर्कृषे**=सदा आकृष्ट किये जाते हैं। अर्थात् प्रभु की वाणी ऋषियों के घरों में सुन पाती है अथवा हृदयदेश में उस प्रभु का ध्यान करनेवाले लोग ही स्तुति द्वारा उस प्रभु को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की वाणी को विरल ही सुननेवाले होते हैं। ऋषियों के गृहों में प्रभु-स्तवन होता है और हृदयदेश में प्रभु ध्यान चलता है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'वज्री-ऋचीषम' प्रभु

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः। मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥ २ ॥

(१) **इह**=इस मानव जीवन में **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **श्रुतः**=सुना जाता है। अर्थात् इस मानव योनि में ही हम उस प्रभु की वाणी को सुनने के लिये समर्थ होते हैं। पशु-पक्षियों को यह योग्यता प्राप्त नहीं। (२) **अस्मे**=हमारे से **अद्य**=आज **स्तवे**=उस प्रभु का स्तवन किया जाता है। जो प्रभु **वज्री**=क्रियाशीलता रूपी वज्र के द्वारा सब शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं। **ऋचीषमः**='ऋचा समः' ऋचाओं में की गई गुणवर्णना के समान हैं। 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' सब ऋचाएँ उस आकाशवत् व्यापक परम अविनाशी प्रभु में स्थित हैं। इन ऋचाओं में प्रभु की महिमा का ही वर्णन है। (३) यह 'वज्री-ऋचीषम-इन्द्र' वह है **यः**=जो कि **मित्रः न**=एक सच्चे मित्र की तरह अथवा सूर्य की तरह **जनेषु**=अपनी शक्तियों के प्रादुर्भाव के लिये पुरुषार्थ करनेवाले लोगों में **असामि**=पूर्ण **यशः**=प्रकाश व ज्ञान को **आचक्रे**=सब प्रकार से करते हैं। प्रभु हमें प्रकाश प्राप्त कराते हैं। इस प्रकाश में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। परन्तु यह प्रकाश प्राप्त उन्हीं को होता है जो कि अपने विकास के लिये यत्नशील होते हैं। वस्तुतः जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वत्र समरूप से फैलता है उसी प्रकार प्रभु का ज्ञान भी प्रत्येक हृदय में प्रकाशित होता है। उल्लू सूर्य के प्रकाश का लाभ नहीं उठा पाता, इसी प्रकार सांसारिक विषयों के पीछे उन्मत्त होनेवाले पुरुष उस प्रभु के प्रकाश को नहीं देख पाते। इन मोहमदिरा को पीकर उन्मत्त हुए-हुए पुरुषों के लिये उस प्रकाश की प्राप्ति नहीं होती।

भावार्थ—वे प्रभु पूर्ण प्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं। इस प्रकाश को प्राप्त वही करते हैं, जो कि अपनी शक्तियों के विकास के लिये यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'बल के स्वामी' प्रभु

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥ ३ ॥

(१) गत मन्त्र में हमारे से स्तुति किये जानेवाले प्रभु वे हैं **यः**=जो कि **महः शवसः**=महान् बल के **पतिः**=स्वामी हैं। उस प्रभु की शक्ति अनन्त है, उसकी शक्ति महनीय है। (२) वे प्रभु **महो नृम्णस्य**=महान् धन के **असामि**=पूर्णरूपेण **आतूतुजिः**=सब प्रकार से हमारे में प्रेरक हैं। अर्थात् प्रभु कृपा से हमें वह महनीय धन प्राप्त होता है जो कि हमारे सब सुखों का साधन बनता है। (३) वे प्रभु **वज्रस्य**=(वज गतौ) गतिशील और अतएव **धृष्णोः**=कामादि शत्रुओं का धर्षण करनेवाले व्यक्ति का **भर्ता**=भरण करनेवाले हैं। **इव**=उसी प्रकार भरण करनेवाले हैं जैसे कि **पिता**=एक पिता **प्रियं पुत्रम्**=प्रिय पुत्र का भरण करता है। 'स्वास्थ्य, सदाचार व स्वाध्याय' आदि गुणों से पिता को प्रीणित करनेवाला पुत्र पिता के लिये सदा प्रिय होता है और पिता उसका अवश्य भरण करते हैं। इसी प्रकार क्रियाशील व कामादि से युद्ध करके धर्षण में प्रवृत्त जीव प्रभु

का प्रिय होता है और प्रभु इसे महनीय शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं। इन्हें प्राप्त करके यह उन्नतिपथ पर अग्रसर होता है।

भावार्थ—प्रभु अनन्त शक्ति के स्वामी हैं, वे हमारे में शक्ति व धन को प्रेरित करते हैं, जिससे उन्नत होकर हम प्रभु के प्रिय पुत्र बन पायें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रभु का प्रिय पुत्र कौन?

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः। स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥ ४ ॥

(१) **वातस्य धुनी**=वायु को भी प्रेरित करनेवाले अर्थात् वायु से भी तीव्र गति वाले **अश्वा**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को **युजानः**=शरीर रूप रथ में जोड़नेवाला यह होता है। इसका जीवन सतत क्रियामय होता है। इस क्रियामय जीवन के कारण ही **देवः**=यह देव बनता है। इसका जीवन दिव्यगुणों वाला व प्रकाशमय होता है। (२) इस **देवस्य**=प्रकाशमय जीवन वाले **वज्रिवः**=क्रियाशीलता रूप वज्र को हाथों में धारण करनेवाले पुरुष के इन्द्रियाश्व **विरुक्मता**=विरोचमान, अर्थात् अमलिन पापशून्य पवित्र **पथा**=मार्ग से **स्यन्ता**=(स्यन्तौ गच्छन्तौ) चलनेवाले होते हैं। इसकी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-प्राप्ति में लगी रहती हैं और कर्मेन्द्रियों से यह यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगा रहता है। इस प्रकार इसकी इन्द्रियों का मार्ग सदा देदीप्यमान व प्रशस्त होता है। (३) यह **अध्वनः सृजानः**=मार्ग से धनों का सर्जन करता है। उत्तम मार्ग से धनों को कमाता है 'अग्ने नय सुपथा राये'। यह इस बात को समझता है कि धन के बिना यह निधन के ही मार्ग पर जाएगा। धन ही उसे धन्य बनानेवाला है, बशर्ते कि वह धन का दास न बन जाए और धन का स्वामी ही बना रहे 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्'। (४) धन का दास न बनने के लिये ही **स्तोषि**=तू प्रभु का स्तवन करता है। यह प्रभु स्तवन तुझे शक्ति देता है और तेरे समाने ये संसार के प्रलोभन अत्यन्त तुच्छ हो जाते हैं। वस्तुतः तभी तू प्रभु का प्रिय पुत्र बन पाता है।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व क्रियामय हों, विरोचमान मार्ग से ये चलनेवाले हों, धर्म से धनार्जन करते हुए हमें प्रभु-स्तवन सदा मार्गभ्रष्ट होने से बचाये।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

इन्द्रियों की प्रबलता

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै। ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥ ५ ॥

(१) **त्वम्**=हे इन्द्र-इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! तू **त्या**=उन **वातस्य**=वायु के **चित्**=भी **अश्वा**=घोड़ों को अर्थात् वायु के समान वेगवान् व बलवान् इन्द्रियाश्वों को **आगाः**=सर्वथा प्राप्त होता है। ये इन्द्रियाश्व तेरे अधिष्ठा-तृत्व में **ऋज्रा**=ऋजु मार्ग से चलनेवाले हैं। तू इन्हें **त्मना**=स्वयं **वहध्यै**=वहन के लिये प्राप्त होता है। तू इनका अधिष्ठाता बनता है, ये तुझे इधर-उधर भटकानेवाले नहीं होते। (२) तू उन ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों को लक्ष्य-स्थान की ओर ले चलता है, **ययोः**=जिनका **यन्ता**=काबू करनेवाला **न देवः**=न तो देव है, न=और ना ही **मर्त्यः**=मनुष्य। बड़े-बड़े विद्वान् भी इन इन्द्रियाश्वों को काबू नहीं कर पाते, मनुष्य की तो क्या शक्ति है कि इन्हें काबू कर सके? इन इन्द्रियाश्वों की शक्ति को **विदाय्यः**=जाननेवाला भी **नकिः**=कोई नहीं है। 'इन्द्रियाणि प्रमाथीनि'—इन शब्दों के अनुसार ये इन्द्रियाँ मनुष्य को कुचल देनेवाली हैं। इनका संयम

सुगम नहीं। इतनी प्रबल शक्ति वाली भी इन इन्द्रियों को वह जीव, जो कि प्रभु का प्रिय पुत्र बनने का प्रयत्न करता है, अपने वश में करके ऋजु मार्ग से जीवनयात्रा में आगे बढ़ता है।

भावार्थ—इन्द्रियों को वश में करना कठिन है। एक साधक ही इन इन्द्रियों को वश में करके जीवनयात्रा को सिद्ध करता है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

इन्द्रियों का सन्नियमन

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम्। आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम्॥ ६॥

(१) **अध**=अब, साधना के लिये प्रयत्न करने के उपरान्त **उशनाः**=जीवनयात्रा को पूर्ण करके प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामना वाला यह साधक, **ग्मन्ता**=निरन्तर बाह्य विषयों में जाती हुई **वां**=तुम दोनों-ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों से **पृच्छते**=पूछता है कि तुम **कदर्था**=क्यों (किमर्थम्) **दिवः ग्मः च**=द्युलोक के व पृथ्वीलोक के **पराकाद्**=दूर-दूर देशों से इस **मर्त्यम् गृहम्**=मनुष्य के घर में **न आजग्मथुः**=नहीं आते हो। (२) यह शरीर 'मर्त्य गृह' है। मरणधर्मा होने से 'मर्त्य' है, जीव का निवास-स्थान होने से 'गृह' है। इन्द्रियाँ सामान्यतः बाह्य विषयों में भटकती हैं। विषयों की चमक उनको सदा अपनी ओर खैंचती है। कोई एक आध वीर पुरुष ही इनको विषय-व्यावृत्त करके शरीर रूप गृह में ही स्थापित कर पाता है। जब ये अवस्थित हो जाती हैं तभी हम अपने स्वरूप में स्थित हो पाते हैं। यही उपनिषदों के शब्दों में 'परमागति' कहलाती है। द्युलोक व पृथ्वीलोक के दूर-दूर देशों में भटकनेवाली ये इन्द्रियाँ निरुद्ध होकर आत्मदर्शन के लिये सहायक होती हैं। तभी कैवल्य प्राप्त होता है, तभी हम प्रभु में विचरण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों को दूर-दूर देशों से लौटाकर हम शरीर गृह में ही निरुद्ध करें, तभी हम आत्मदर्शन करते हुए प्रभु को पानेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

मनुष्य बनना

आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्। तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम्॥ ७॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जब हम इन्द्रियों का निरोध कर पाते हैं तो **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमारे से **आपृक्षसे**=संपृक्त होते हैं। इन्द्रियों का निरोध करके ही तो ब्रह्म-दर्शन का सम्भव होता है। (२) इस सम्पर्क के होने पर **अस्माकम्**=हमारा **ब्रह्म**=ज्ञान **उद्यतम्**=(raised, lifted up) उन्नत होता है। प्रभु के सम्पर्क में आकर हमारा जीवन प्रकाशमय हो उठता है। प्रभु प्रकाश के पुञ्ज हैं, उनके सम्पर्क में आनेवाला अन्धकार में रह ही कैसे सकता है? (३) इस प्रकाश को प्राप्त करके हम हे प्रभो! **त्वा**=आप से **तत्**=उस **अवः**=रक्षण व **शुष्णम्**=बल को **याचामहे**=माँगते हैं, **यत्**=जो बल **अमानुषम्**=अमनुष्योचित प्रत्येक बुराई को **हन्**=नष्ट कर देती है। प्रभु से 'प्रकाश, रक्षण व बल' को प्राप्त करके हम सब आसुर भावनाओं को दूर करने व दिव्य भावनाओं को अपनाने में समर्थ होते हैं। हमारे अमानुष भाव दूर होते हैं और हमारे में दिव्य भावों का विकास होता है। 'अमानुष' शब्द क्रूरता व स्वार्थ का संकेत करता है, ये सब क्रूर व स्वार्थमयी भावनायें प्रभु के प्रकाश से नष्ट हो जाती हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से रक्षक बल प्राप्त हो जो कि हमारे सब अमानुष भावों

को दूर करके हमें सच्चा मनुष्य बनने की क्षमता प्राप्त कराये।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

दास का दामन

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः। त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय॥ ८॥

(१) गत मन्त्र में 'अमानुष' के विनाशक बल की आराधना की गई थी। प्रस्तुत मन्त्र में उसी 'अमानुष' का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि यह **अकर्मा**=(अविद्यमानयागादि कर्मा सा०) यह यज्ञादि उत्तम कर्मों में कभी प्रवृत्त नहीं होता। (२) यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होना तो दूर रहा, यह **दस्युः**=(उपक्षपयिता) औरों के विनाशकारी कर्मों में प्रवृत्त होता है, इसको दूसरों के कार्यों में विघ्न करना ही रुचिकर होता है। दूसरों की हानि में यह मजा लेता है। (३) यह **नः**=हमारा **अभि**=लक्ष्य करके **अमन्तुः**=न विचार करनेवाला है। जगत् को यह अनीश्वर मानता है। ईश्वर की सत्ता को न मानता हुआ, यह संसार को 'अपरस्पर संभूत कामहैतुक' मानता है। इसके प्रातः-सायं प्रभु के ध्यान करने का प्रश्न ही नहीं उठता। (४) **अन्यव्रतः**=श्रुति प्रतिपादित कर्मों को न करके अन्य कर्मों में ही यह व्यापृत रहता है। 'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'='धर्म को जानने की इच्छा वालों के लिये श्रुति ही परम प्रमाण है' ये मनु के शब्द इनको इष्ट नहीं हैं। ये श्रुति विरुद्ध कर्मों में ही आनन्द लेने का प्रयत्न करते हैं। (५) **अमानुषः**=ये क्रूर स्वभाव के राक्षस होते हैं। इनमें मनुष्यता नहीं है। ये (Humane)=दयालु न होकर Inhumane=क्रूर व बर्बर होते हैं। (६) हे **अमित्रहन्**=हमारे शत्रुओं के नष्ट करनेवाले प्रभो! **त्वं**=आप ही **तस्य दासस्य**=उस औरों का नाश करनेवाले के **वधः**=मारनेवाले हो। इस दस्यु का नाश आप ही कर सकते हो। सो कृपया **दम्भय**=इस को आप नष्ट करिये। राष्ट्र में राजा प्रभु का ही प्रतिनिधि होता है। सो राजा का यह कर्तव्य है कि वह इन अमानुष लोगों को नष्ट करके प्रजा का उचित रक्षण करें। ऐसे लोगों से पीड़ित हुई-हुई प्रजायें उन्नति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाती। इन से आनेवाले कष्ट ही आधिभौतिक कष्ट कहलाते हैं।

भावार्थ—'अकर्मा, दस्यु, अमन्तु, अन्यव्रत, अमानुष' पुरुष ही दास हैं। इनसे भिन्न आर्य हैं। प्रभु कृपा से व राज-प्रयत्न से राष्ट्र में आर्यों का वर्धन व दासों का वध हो।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

कामनाओं की पूर्ति

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा। पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा॥ ९॥

(१) हे **शूर**=हमारे शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं नः**=आप ही हमारे हो। **उत**=और **शूरैः**=अध्यात्म में सब आधि-व्याधियों को नष्ट करनेवाले मरुत् संज्ञक प्राणों के द्वारा **बर्हणा**=रोगों व दोषों के **उद्बर्हण**=विनाश से **त्वा**=आप द्वारा **ऊतासः**=रक्षित हुए-हुए हम होते हैं। प्रभु ने शरीर में प्राणों का स्थापन इस रूप में किया है कि यदि हम इनकी साधना करके प्राणशक्ति का वर्धन कर लें तो रोग ही नहीं, ईर्ष्या-द्वेष आदि मानस दोष भी नष्ट हो जाएँगे, और आधि-व्याधियों से शून्य यह जीवन अतिसुन्दर बन जायेगा। (२) हे प्रभो! **यथा**=जैसे **क्षोणयः**=मनुष्य **नवन्त**=आपके समीप आते हैं (नवतिर्गतिकर्मा) उसी प्रकार **ते**=आपकी **पुरुत्रा**=पालक, पूरक व रक्षक **विपूर्तयः**=विशिष्ट रूप से कामनाओं की पूर्तियाँ होती हैं। प्रभु हमारी गलत

इच्छाओं को तो पूर्ण नहीं करते, परन्तु 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' आदि में जिस भी पदार्थ की हम कामना करते हैं प्रभु हमें वे ही पदार्थ देते हैं। इन पदार्थों की आसक्ति से ऊपर उठने पर प्रभु हमें मोक्ष का भी पात्र बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही प्राणशक्ति के द्वारा हमारी नीरोगता की व्यवस्था करते हैं और हमारी सब उचित कामनाओं को वे प्रभु ही पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रभु द्वारा आलिंगन

त्वं तान्वृ॑त्रह॒त्ये॑ चोदयो॒ नॄन्का॑र्पा॒णे शू॑र वज्रिवः। गुहा॒ यदी॑ कवी॒नां वि॒शां नक्ष॑त्रशवसाम्॥ १०॥

(१) संस्कृत में 'कृपाण' शब्द तलवार के लिये प्रयुक्त होता है, क्योंकि यह (कृप् सामर्थ्ये) शक्ति को पैदा करती है और (आनयति) उत्साह का संचार करती है। इस तलवार से होनेवाले युद्ध को यहाँ 'कार्पाण' कहा गया है। हे **शूर**=हमारे शत्रुओं का संहार करनेवाले, **वज्रिवः**=क्रियाशीलता रूप वज्र युक्त हाथ वाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तान्**=उन **नॄन्**=उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाले लोगों को **वृत्रहत्ये**=ज्ञान पर आवरण रूप से आजानेवाली कामवासना के विनाश के निमित्त **चोदयः**=निरन्तर प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। इन वासनाओं के साथ चलनेवाला संग्राम ही सात्त्विक अध्यात्म संग्राम है। इस संग्राम में प्रभु हमारे उत्साह को बढ़ाते हैं। ठीक तो यह है कि प्रभु कृपा से ही हम इस संग्राम में विजयी होते हैं। (२) हे प्रभो! **यत्**=जब **ईं**=निश्चय से उन **विशाम्**=प्रजाओं का जो कि **कवीनाम्**=योग व स्वाध्याय के द्वारा तत्त्वदर्शन का प्रयत्न करते हैं और **नक्षत्रशवसाम्**=(न क्षीयते शवः यासां) भोग-विलास की वृत्ति से बचे रहने के कारण जिन का बल क्षीण नहीं होता, उन प्रजाओं का **गुहा**=(गुह्=Huge, to embrace) आप आलिंगन करते हैं अथवा अपनी गोद में जब इन्हें संवृत कर लेते हैं (गुह् संवरणे) तभी नर व्यक्ति वृत्र का हनन कर पाते हैं।

भावार्थ—हम प्रेरणा को सुनकर वासना का हनन करते हैं तो तत्त्वज्ञानी व अक्षीणशक्ति बनते हैं और प्रभु के आलिंगन के पात्र होते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शुष्ण के कुल का दंभन

म॒क्षू ता त॑ इन्द्र दा॒नाप्न॑स आक्षा॒णे शू॑र वज्रिवः। यद्ध॒ शुष्ण॑स्य द॒म्भयो॑ जा॒तं विश्वं॑ स॒याव॑भिः॥ ११॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं का संहार करनेवाले! **वज्रिवः**=वज्रयुक्त हाथों वाले **इन्द्र**=सब शत्रुओं के द्रावक प्रभो! **ताः**=वे **दानाप्नसः**=दानरूप कर्म वाली प्रजाएँ **मक्षू**=शीघ्र ही **ते**=आपके **आक्षाणे**=व्यापन में स्थित होती हैं। (२)हे जीव! यह वह स्थिति होती है **यत् ह**=जिसमें कि तू **शुष्णस्य**=विरह संताप से शुष्क करनेवाले काम के **विश्वं जातम्**=सम्पूर्ण अपत्यों को, बीजमात्र को **सयावभिः**=साथ गति करनेवाले प्राणों के द्वारा **दम्भयः**=नष्ट कर देता है। (३) दानशील प्रजाएँ भोगासक्त न होकर प्रभु के व्यापन में स्थित होती हैं। ये प्रजाएँ प्राणसाधना के द्वारा वासना को जड़मूल से उखाड़ देती हैं।

भावार्थ—हम दानशील बनें, प्रभु के व्यापन में रहें और वासना को भस्म कर डालें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

उत्तम इच्छाओं की पूर्ति

माक्रुध्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः। वयंवयं तं आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः॥ १२॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु के व्यापन में स्थित होने पर हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **शूर**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **अस्मे**=हमारी **वस्वीः**=निवास को उत्तम बनानेवाली **अभिष्टयः**=(यन्) यज्ञ क्रियाएँ वा (इष्) इच्छाएँ **मा क्रुध्यग् भूवन्**=कुत्सित गति वाली न हों अर्थात् व्यर्थ न हों। हमारी इच्छाएँ उत्तम हों, जीवन को उत्तम बनाने के दृष्टिकोण से हों और वे इच्छाएँ पूर्ण हों। इसी प्रकार हमारे यज्ञ हमारे निवास को उत्तम बनायें और सफल हों। (२) हे **वज्रिवः**=क्रियाशीलता रूप वज्र युक्त हाथ वाले प्रभो! **वयंवयम्**=(वेञ् तन्तुसन्ताने) कर्मतन्तु का सन्तान करनेवाले हम, अर्थात् सदा क्रियाशील रहनेवाले हम **ते**=आपके हों और **आसाम्**=इन इच्छाओं के, पूर्ण होने के कारण, **सुम्ने**=सुख में **स्याम**=हों। क्रियाशील पुरुष की ही इच्छाएँ पूर्ण हुआ करती हैं। और उन 'वस्वी अभिष्टियों' के पूर्ण होने पर मनुष्य सुख का अनुभव करता है।

भावार्थ—हमारी इच्छाएँ उत्तम हों और वे पूर्ण हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

सत्य व अहिंसा

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः। विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ताः**=वे **ते**=तेरी **उपस्पृशः**=उपासनाएँ **अस्मे**=हमारे लिये **सत्याः अहिंसन्तीः**=सत्य व अहिंसा वाली हों। आपकी उपासना से मेरे जीवन में सत्य व अहिंसा का वर्धन हो। दूसरे शब्दों में, प्रभु का उपासक सत्य व अहिंसा के व्रतवाला होता है। उसके जीवन में असत्य व हिंसा के लिये स्थान नहीं रहता। सत्य व अहिंसा ही उसके साध्य होते हैं। सत्य व अहिंसा को छोड़कर वह संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु को लेने का विचार नहीं करता। (२) ये उपासनाएँ वे हैं **यासाम्**=जिनके **भुजः**=पालनों को **विद्याम**=हम उसी प्रकार प्राप्त करें, हे **वज्रिवः**=वज्रयुक्त हाथों वाले प्रभो! **न**=जैसे **धेनूनाम्**=दुधार गौवों के भुजः=उपभोगों को हम प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—उपासना एक दुधार गौ के समान है, जिसका दूध हमारा उत्तम पालन करते हैं और हमारे जीवनों को सत्य व अहिंसा वाला बनाते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृद्बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

भोग व अनासक्ति

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्। शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः॥ १४॥

(१) **अहस्ता अपदी**=बिना हाथ-पैर वाली भी **क्षाः**=यह पृथिवी **वेद्यानाम्**=(वेद+य) उत्तम ज्ञानियों के **शचीभिः**=प्रज्ञापूर्वक किये गये कर्मों से **यद् वर्धत**=जो बढ़ जाती है तो हे प्रभो! आप ही **परि**=चारों ओर व्याप्त होनेवाले 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी को अपना अधिष्ठान बनानेवाले, **प्रदक्षिण् इत्**=अत्यन्त चतुर **शुष्णम्**=इस सुखा देनेवाले काम को **निशिश्नथः**=निश्चय

से नष्ट किया करते हैं जिससे **विश्वायवे**=पूर्ण जीवन को हम प्राप्त कर सकें। (२) पृथ्वी के हाथ-पाँव नहीं है, 'वह स्वयं चलकर हमारे पास आयेगी, और हमें भोग्य वस्तुएँ प्राप्त करायेगी' ऐसी बात नहीं है। इस पृथ्वीरूप गौ को तो ज्ञानपूर्वक श्रम करके ही दोह सकते हैं। ज्ञानपूर्वक श्रम के होने पर यह पृथ्वी हमारे लिये भोग्य पदार्थों को खूब बढ़ानेवाली होगी। (३) उन भोग्य पदार्थों के बढ़ने पर यह बड़ा भारी खतरा उत्पन्न हो जाता है कि हम उन भोगों में फँस न जाएँ। यह भोगासक्ति ही काम्य पदार्थों के उपभोग से अधिकाधिक बढ़ती जाती है और यह हमारे लिये शुष्णासुर बन जाती है। यह कामदेव बड़ा कुशल है, (प्रदक्षिणं) फूलों के ही धनुष से और फूलों के ही बाणों से हमारी सब ज्ञानेन्द्रियों पर इकट्ठा ही आक्रमण करता है, इसी से इसका नाम 'पञ्चबाण' भी हो गया है। इस को तो प्रभु ही मारते हैं, हमारे लिये इसके मारने का सम्भव नहीं होता। (४) इस शुष्ण के समाप्त हो जाने पर ही हमारा जीवन पूर्ण बनता है। काम तो 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी को ही नष्ट कर डालता है।

भावार्थ—ज्ञानपूर्वक कर्मों द्वारा हम इस पृथ्वी से अपने भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें। प्रभु स्मरण करते हुए हम उन पदार्थों के प्रति आसक्त न हो जाएँ। और इस प्रकार अनासक्त भाव से चलते हुए हम पूर्ण जीवन को प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्र; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

महनीय धनों से धनी

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान् वसुः सन्।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥ १५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **शूर**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **सोमं**=सोम को **पिबा पिबा**=अवश्य हमारे शरीर में ही व्याप्त कीजिये। इस सोम=वीर्य के शरीर में व्याप्त होने पर ही हम पूर्ण जीवन वाले बन सकेंगे। **मा रिषण्यः**=हे प्रभो! हमें हिंसित मत करिये। सोम के शरीर में व्याप्त होने पर हिंसित होने का प्रश्न नहीं रहता। (२) हे **वसवान**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **वसुः सन्**=सब के निवासक होते हुए आप **गृणतः**=स्तुति करनेवाले **उत**=और **मघोनः**=(मघ व्रत:, मघ, मख)=यज्ञशील हम लोगों का **त्रायस्व**=रक्षण करिये। **च**=और **महः रायः**=महनीय धनों से **नः**=हमें **रेवतः**=रयि व धनों वाला **कृधी**=करिये। प्रभु के स्तवन का यह परिणाम होता है कि हम ऐश्वर्यशाली होकर उस ऐश्वर्य का विनियोग यज्ञों में करते हैं, उन धनों के कारण भोगासक्त नहीं हो जाते।

भावार्थ—सोमरक्षण हमारे जीवनों को देव-जीवन बना देता है।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि ऋषि लोग हृदयदेश में प्रभु का ध्यान करते हैं। (१) प्रभु 'वज्री व ऋचीषम' हैं, (२) वे बल के स्वामी हैं, (३) प्रभु के प्रिय वे ही होते हैं जो कि इन्द्रयाश्वों को विरोचमान मार्ग से ले चलते हैं, (४) यह ठीक है कि इन्द्रियाँ अत्यन्त प्रबल हैं, (५) पर, इन का संयम करके ही हम प्रभु-दर्शन कर पायेंगे, (६) तभी अमानुषभावों को दूर करके मनुष्य बनेंगे, (७) हमें दास वृत्ति का दमन करना चाहिये, (८) सब कामनाओं के पूरक प्रभु ही हैं, (९) हम तत्त्वज्ञानी व अक्षीशक्ति बनकर ही प्रभु प्रिय होते हैं, (१०) दान की वृत्ति हमें प्रभु का प्रिय बनाती है, (११) प्रभु-भक्तों की इच्छाएँ उत्तम होती हैं, और अवश्य पूर्ण होती हैं, (१२) प्रभु उपासक सत्य व अहिंसा का व्रत लेता है, (१३) उसके भोग बढ़ते हैं, पर वह

उनमें फँसता नहीं, (१४) यह महनीय धनों से धनी होता है, (१५) सो हम उस प्रभु का यजन करें।

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

झटक कर झाड़ देना

यजा॑मह॒ इन्द्रं॒ वज्र॑दक्षिणं॒ हरी॑णां र॒थ्यं१ विव्र॑तानाम्।
प्र श्मश्रु॒ दोधु॑वदू॒र्ध्वथा॑ भूद्वि सेना॑भि॒र्दय॑मानो॒ वि राध॑सा ॥ १ ॥

(१) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यजामहे**=हम पूजते हैं अथवा अपने साथ संगत करते हैं अथवा उसके प्रति अपना अर्पण करते हैं (यज्, पूजा, संगतिकरण, दान) जो प्रभु **वज्रदक्षिणम्**=क्रियाशीलता में दक्षिण हैं, कुशलता से कार्यों को करनेवाले हैं। जो प्रभु **विव्रतानाम्**=विविध व्रतों वाले, भिन्न-भिन्न कार्यों को करनेवाले **हरीणाम्**=इन्द्रियाश्वों के **रथ्यम्**=शरीर रूप रथ में जोतने में उत्तम हैं। जिन्होंने इन विविध कार्यशक्ति सम्पन्न इन्द्रियाश्वों को इस शरीर रूप रथ में जोता है। (२) ये प्रभु ही **श्मश्रु**=(श्मनि शरीरे श्रितं) शरीर के आश्रय से रहनेवाली इन्द्रियों, मन व बुद्धि को **प्रदोधुवत्**=प्रकर्षेण कम्पित करनेवाले हैं। झाड़कर उनकी मैल को दूर करनेवाले हैं **ऊर्ध्वथा भूत्**=सदा ऊपर विद्यमान हैं, अर्थात् हमारे रक्षण के लिये सावधानता से खड़े हैं। इस रक्षण कार्य में प्रभु कभी प्रमाद नहीं करते। (३) ये प्रभु **सेनाभिः**=पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच प्राणों व पाँच अन्तरिन्द्रियों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय) की सेनाओं से **वि-दयमानः**=(देङ् रक्षणे) हमारा विशेषरूप से रक्षण करते हैं। **वि राधसा**=सब संसारिक आवश्यकताओं को सिद्ध करनेवाले धन के द्वारा भी वे प्रभु हमें रक्षण प्राप्त कराते हैं। हमें उस धन की प्रभु कमी नहीं होने देते, जो कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक है।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करते हैं। प्रभु हमारे इन्द्रियादि के मल को दूर करते हैं, सदा हमारे रक्षण के लिये उद्यत हैं और हमें उन्नति के अध्यात्म साधनों को तथा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन को देते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

वासना का समूल विनाश

हरी॒ न्व॑स्य॒ या वने॑ वि॒दे वस्विन्द्रो॑ म॒घैर्म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत्।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋभु॒क्षाः प॑त्यते॒ शवोऽव॑ क्ष्णौमि॒ दास॑स्य॒ नाम॑ चित् ॥ २ ॥

(१) ये मेरे **हरी**=इन्द्रियाश्व, **या**=जिनको कि मैं **वने**=(win) विजय करता हूँ, **नु**=अब **अस्य**=इस प्रभु के हैं, अर्थात् अब ये इन्द्रियाँ विषयाभिमुख न होकर प्रभु-प्रवण हो गयी हैं। वस्तुतः ऐसा होने पर ही मैं **वसु विदे**=वास्तविक धन को प्राप्त करता हूँ। (२) वह **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु जो कि **मघैः मघवा**=सब ऐश्वर्यों से ऐश्वर्य-सम्पन्न है, **वृत्रहा भुवत्**=वासना का नष्ट करनेवाला होता है। प्रभु प्रवणता से ही वासनाओं का विनाश होता है। (३) ये प्रभु **ऋभुः**=ऋत से दीप्त हैं, ऋत से ही सृष्टि का निर्माण कर रहा है। **वाजः**=वे

प्रभु शक्ति के पुञ्ज हैं। वस्तुतः ऋत में ही शक्ति है। जब प्रभु ऋत से चमकते हैं तो उन्हें शक्ति का पुञ्ज होना ही चाहिए। **ऋभुक्षाः**=वे प्रभु महान् हैं। अथवा ऋत से चमकने वालों में ही निवास करनेवाले हैं (ऋभु+क्षि)। जब हम अपने जीवन को नियमित बनाते हैं तो हम अपने को प्रभु का अधिष्ठान बनाते हैं। वे प्रभु **शवः पत्यते**=सब बलों के स्वामी हैं। सो जब भी हम अपने हृदयों में प्रभु को प्रतिष्ठित करेंगे तो हमारे में भी उस बल का संचार होगा। (४) इस प्रभु के बल से बल सम्पन्न होकर मैं **दासस्य**=इस विनाशक 'काम' नामक आसुरवृत्ति के **नाम चित्**=(नम्यते ऽनेन) शिरः सा=सिर को ही **अव क्ष्णौमि**=सुदूर हिंसित करता हूँ अथवा इस वृत्त के नाम को भी नष्ट कर डालता हूँ। इसको नामावशेष भी नहीं रहने देता।

भावार्थ—हम इन्द्रियों को जीतकर प्रभु-प्रवण बनायें। यही जीवन को उत्तम बनाने का मार्ग है। इससे हम प्रभु शक्ति-सम्पन्न होकर वासना को समूल नष्ट कर देंगे।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

हिरण्य वज्र

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः॥ ३॥

(१) **यदा**=जब **वज्रम्**=हमारी क्रियाशीलता **हिरण्यम्**=स्वर्णीय होती है, हितरमणीय होती है, अथवा जब हमारी सब क्रियाएँ स्वर्णीय मध्य से (Golden means) होती हैं, अर्थात् हम सोने-जागने व खाने-पीने आदि सब क्रियाओं में मध्य मार्ग का अवलम्बन करते हैं, **अथा इत्**=तब ही **रथम्**=हमारे शरीर रूप रथ को **हरी**=ये इन्द्रियाश्व **यमस्य**=उस नियन्ता प्रभु की ओर **वहतः**=ले चलते हैं। (२) उस समय **मघवा**=ऐश्वर्यों व यज्ञों वाला होकर **सनश्रुतः**=सनातन वेदज्ञानवाला होता हुआ **वि सूरिभिः**=विशिष्ट ज्ञानियों के साथ **आतिष्ठति**=सर्वथा स्थित होता है। प्रभु-प्रवण व्यक्ति के ये लक्षण हैं—(क) ऐश्वर्य का यज्ञों में विनियोग (मघवा), (ख) ज्ञान (सनश्रुतः), (ग) सत्संग रुचि। (३) यही व्यक्ति **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय व ऐश्वर्य-सम्पन्न होता है, **वाजस्य**=बल का तथा **दीर्घश्रवसः**=तामस व राजस वासनाओं के विदारक ज्ञान का **पतिः**=स्वामी होता है।

भावार्थ—प्रभु-भक्त हितरमणीय क्रियाओं वाला होता है, बल व ज्ञान का पति होता है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

सुक्षयम् (उत्तम गृह)

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम्॥ ४॥

(१) **स उ**=और वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **चित् नु**=निश्चय से अब **वृष्टिः**=सब पर सुखों की वर्षा करनेवाला होता है। यह प्रभु-भक्त सर्वभूत हितरत हो जाता है और **स्वा**=अपने **यूथ्या**=यूथ में, समूह में होनेवाले ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण व अन्तःकरण के पञ्चकों को **सचान्**=उस प्रभु से मेल वाला करता है (षच समवाये)। (२) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **श्मश्रूणि**=शरीर में आश्रित इन्द्रियों, मन व बुद्धि को **हरिता**=मलों का हरण करनेवाले सोम

(वीर्य) कणों से **अभिप्रुष्णुते**=सींचता है। सोम के रक्षण से इसकी ऊर्ध्वगति होकर यह शरीर में व्याप्त होता है। शरीर को तो यह नीरोग बनाता है, मन को निर्मल तथा बुद्धि को यह तीव्र करता है। (३) इस प्रकार इस सोम के रक्षण व सोम के द्वारा 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' के सेचन से यह **सुक्षयम्**=उत्तम शरीररूप गृह को **अव वेति**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है। (४) **सुते**=सोम के उत्पन्न होने पर **मधु**=यह सब भोजन के रूप में खायी हुई ओषधियों का सारभूत सोम **इत्**=निश्चय से **उत् धूनोति**=सब मलों को इस प्रकार कम्पित कर देता है **यथा**=जैसे **वातः**=वायु **वनम्**=वन को। वायु से पत्ते हिलते हैं और उनपर पड़ी हुई मट्टी कम्पित होकर दूर हो जाती है, इसी प्रकार सोम शरीर में व्याप्त होकर सब इन्द्रियों, मन व बुद्धि को निर्मल कर देता है।

भावार्थ—सोम शरीर में सुरक्षित होकर शरीर को निर्मल बनानेवाला होता है।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

कर्मवीर न कि वाग्वीर

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः॥ ५॥

(१) **यः**=जो प्रभु **वाचा**=इस वेदवाणी के द्वारा **विवाचः**=विरुद्ध वाणी वाले अथवा बड़ा बोलनेवाले तथा **मृध्रवाचः**=हिंसायुक्त वाणी वाले, अर्थात् कटुभाषी **पुरू सहस्रा**=अनेक हजारों **अशिवा**=अकल्याणकर शत्रुओं को **जघान**=नष्ट करता है। वेदवाणी में उपदेश देकर प्रभु मनुष्य को 'बहुत बोलने से तथा कड़वा बोलने से' रोकते हैं। वस्तुतः इस प्रकार बहुत व कड़वा बोलनेवाले व्यक्ति संसार में कर्मवीर नहीं हुआ करते। (२) कर्मवीर बनने के लिये हम **अस्य**=इस वेदोपदेश देनेवाले प्रभु के **तत् तत्**=उस-उस **पौंस्यम्**=वीरतायुक्त कर्म का **इत्**=निश्चय से **गृणीमसि**=स्तवन करते हैं। प्रभु के इन वीरतायुक्त कर्मों का स्तवन हमें भी वीरतापूर्ण कर्मों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है। (३) जब हम इस प्रकार वीर बनकर के कर्म करने का संकल्प करते हैं तो वे प्रभु उस **पिता इव**=पिता की तरह होते हैं **यः**=जो कि **तविषीं**=(अपने पुत्रों के) बल को तथा बल के द्वारा **शवः**=क्रियाशीलता को **वावृधे**=बढ़ाते हैं। प्रभु कृपा से हमारी शक्ति में वृद्धि होती है और हम क्रियाशील बनते हैं।

भावार्थ—हम असंगत बहुत प्रलापों को तथा हिंसयुक्त वाणियों को छोड़कर वीरतापूर्ण कर्मों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

अद्भुत स्तवन

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=शक्तियुक्त कर्मों के करनेवाले प्रभो! **विमदाः**=मदशून्य व्यक्ति **सुदानवे**=उत्तम दानी व (दाप् लवने) पापों का खण्ड का खण्डन करनेवाले व (दैप शोधने) हमारे जीवनों को शुद्ध करनेवाले **ते**=तेरे लिये **अपूर्व्यं**=अद्भुत, इस स्वकर्म में निरत होने के द्वारा होनेवाले (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य) **पुरुतमम्**=अधिक से अधिक लोकों का पालन व पूरण करनेवाले **स्तोमम्**=स्तुति को

अजीजनन्=उत्पन्न करते हैं। अर्थात् कर्मों द्वारा आपकी अर्चन करते हैं। (२) इन कर्मों द्वारा होनेवाले स्तवन को यहाँ 'अपूर्व्य' कहा है। इस स्तवन में किसी शब्द का उच्चारण नहीं होता। बिना ही शब्दों के उच्चारण के चलनेवाला यह स्तवन प्रभु को अत्यन्त प्रिय है। इस स्तवन को 'विमद' ही कर पाते हैं। 'उत्तम कर्मों को करना और उन्हें परमेश्वरार्पण करते जाना' यह विमद का कार्यक्रम है। ये विमद प्रभु के आदेश के अनुसार यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहते हैं और प्रभु कृपा से इनका योगक्षेम ठीक प्रकार से चलता है। यहाँ मन्त्र में कहते हैं कि **अस्य इनस्य**=इस ब्रह्माण्ड के स्वामी के **भोजनम्**=भोजन को, प्रभु से दिये गये भोजन को **हि**=निश्चय से **विद्म**=जानते हैं। हमें यह तो निश्चय है कि हम कर्तव्यपालन करेंगे तो प्रभु भोजन अवश्य प्राप्त करायेंगे ही। यह होता तब है **यदा**=जब कि **पशुं न गोपाः**=पशु के लिये जैसे ग्वाला होता है, इसी प्रकार हम अपने लिये उस प्रभु को **करामहे**=करते हैं। हम भेड़े बनते हैं और प्रभु 'मेषपाल' हम बकरियाँ तो प्रभु 'अजपाल' हम गौवें तो प्रभु 'गोपाल'। प्रभु हमारे चरवाहे हैं, वे हमें चारा देते ही हैं।

भावार्थ—लोकहित के कार्यों में लगे हुए हम प्रभु के सच्चे स्तोता बनते हैं। प्रभु गोपाल हैं, तो हम उनकी गौवें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(इन्द्र व विमद की) अटूट मित्रता

मार्किर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तव**=आपकी **च**=और **ऋषेः विमदस्य**=तत्त्वज्ञानी विमद की **एना**=ये **सख्या**=मित्रताएँ **नः**=हमारे लिये **माकिः वियौषुः**=मत नष्ट हों। ये मित्रताएँ हमारे लिये कल्याणकर हों। हम प्रभु का स्तवन करनेवाले हों और निरभिमान तत्त्वज्ञानियों के सम्पर्क में रहनेवाले हों। (२) हे **देव**=प्रकाशमान प्रभो! हम **हि**=निश्चय से **ते**=आपकी **प्रमतिम्**=प्रकृष्ट कल्याणी मति को **विद्म**=जानें। **जामिवत्**=जैसे एक बहिन भाई की प्रमति को प्राप्त करती है अथवा जैसे एक बन्धु अपने बड़े बन्धु की सुमति को प्राप्त करता है। (३) **अस्मे**=हमारे लिये **ते**=आपकी **सख्या**=मित्रताएँ **शिवानि**=कल्याणकर **सन्तु**=हों। आपकी मित्रता में हमारे अकल्याण का सम्भव ही कहाँ? वस्तुतः प्रभु की मित्रता अभिमानशून्य पुरुषों के साथ ही होती है। ये निरभिमानी सदा प्रभु के चरणों में अपने कर्मों का प्रणिधान करते हैं। यह प्रणिधान उन्हें अहंकार से दूर करता है। निरहंकारता उन्हें प्रभु जैसा बना देती है।

भावार्थ—हम विमद बनें, कर्मों द्वारा प्रभु का अर्चन करें। हमारी मित्रताएँ अनश्वर हों।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हम क्रियाकुशल प्रभु का पूजन करते हैं। (१) हम इन्द्रियों को जीतकर प्रभु-प्रवण बनायें, (२) प्रभु-भक्त हितरमणीय क्रियाओं वाला होता है, (३) यह अपने शरीर में सोम को सुरक्षित करके इसे निर्मल बनाता है, (४) हम वाग्वीर न बनकर सदा कर्मवीर बनें, (५) प्रभु गोपाल हों तो हम उनकी गौवें, (६) प्रभु के साथ हमारी मित्रता कभी नष्ट न हो, (७) इस मित्र का मौलिक प्रेरण यही है कि सोम का पान करो।

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मधुमन्तं चमूसुतम्

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम्।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे॥ १॥

(१) प्रभु अपने मित्र जीव को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि **इन्द्र**=हे जितेन्द्रिय पुरुष! **इमं सोमं पिब**=इस सोम को तू शरीर में ही पीने का प्रयत्न कर। आहार से रस रुधिरादि क्रम से उत्पन्न हुआ-हुआ यह **सोम**=वीर्य तेरे शरीर में ही व्याप्त हो जाए। **मधुमन्तम्**=यह अत्यन्त माधुर्य वाला है। शरीर में नीरोगता को, मन में निर्द्वेषता को तथा बुद्धि में तीव्रता को जन्म देकर यह हमारे जीवनों को अतिशयेन मधुर बना देता है। **चमूसुतम्**=(चम्वोः द्यावापृथिव्योः=मस्तिष्क व शरीर) यह सोम चमुओं, द्यावापृथिवियों, मस्तिष्क व शरीर के निमित्त ही पैदा किया गया है। शरीर को यह सब रोगों से बचाता है, और मस्तिष्क की तीव्रता को सिद्ध करता है। (२) प्रभु कहते हैं **वः**=तुम्हारे **विमदे**=विशिष्ट आनन्द के निमित्त **अस्मे**=हमारे **सहस्रिणम्**=हजारों की संख्या वाले अथवा प्रसन्नता को जन्म देनेवाले (स+हस्) **रयिम्**=धन को **निधारय**=निश्चय से धारण कर अथवा नम्रता से धारण कर। तुझे यह धन तो प्राप्त हो, परन्तु यह धन तुझे गर्वित न कर दे। (३) **पुरूवसो**=हे पालन व पूरण के लिये वसु=धन को प्राप्त करनेवाले जीव! तू **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये हो (वक्ष To grow) धन को प्राप्त करके तू धन का विनियोग इस प्रकार से कर कि यह धन जहाँ तेरे शरीर का पालन करे, उसे रोगाक्रान्त न होने दे, वहाँ तेरे मन का यह पूरण करनेवाला हो, तेरे मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष आदि की अवाञ्छनीय भावनाएँ न उत्पन्न हो जाएँ।

भावार्थ—हम वीर्य को शरीर में ही व्याप्त करें, यह हमारे जीवन को मधुर बनायेगा। हम धन को भी धारण करें, जो हमारे शरीर के पालन व पूरण का साधन बने।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'श्रेष्ठ वार्य' धन

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे॥ २॥

(१) गत मन्त्र में दी गई प्रभु प्रेरणा को सुनकर जीव प्रभु से कहता है कि हे प्रभो! **त्वाम्**=आप को **यज्ञेभिः**=देव-पूजनों से अर्थात् 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव' इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार माता, पिता, आचार्य व अतिथियों के आदर से ज्ञान प्राप्ति के द्वारा तथा **उक्थैः**=स्तुति-वचनों से स्तवन के द्वारा और **हव्येभिः**=(हु दानादनयोः) दानपूर्वक यज्ञशेष के सेवन के द्वारा **उप ईमहे**=समीप प्राप्त होकर आराधना करते हैं। प्रभु का आराधन देव-पूजन, स्तवन व हव्य के सेवन से होता है। ये तीन ही बातें ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड व कर्मकाण्ड कहलाती हैं। (२) **शचीनां शचीपते**=प्रज्ञाओं (नि० ३।९) व शक्तियों के पति प्रभो! **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द के निमित्त **नः**=हमारे लिये **श्रेष्ठं वार्यं**=उत्तम

वरणीय धन को **धेहि**=धारण कीजिये जिससे **विवक्षसे**=हम विशिष्ट उन्नति को कर सकें। श्रेष्ठ वरणीय धन वही है जो हमारी उन्नतियों का कारण बनता है, हमें प्रज्ञा व शक्ति सम्पन्न बनाकर प्रभु के समीप ले चलनेवाला होता है।

भावार्थ—हम 'यज्ञों, उक्थों व हव्यों' से प्रभु का आराधन करें। शक्ति व प्रज्ञा को प्राप्त करें तथा उस श्रेष्ठ वरणीय धन को प्राप्त करें जो कि हमारी उन्नति व हर्ष का कारण बने।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**शङ्कुमती पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्वेष व पाप से परे

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ३ ॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप **वार्याणाम्**=सब वरणीय वस्तुओं के **पतिः असि**=स्वामी हैं, **रध्रस्य**=आराधक व स्तोता को **चोदिता**=उत्तम कर्मों की प्रेरणा देनेवाले हैं, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप ही **स्तोतॄणाम्**=अपने स्तोताओं के **अविता**=अपने दिव्यांश के पूरण के द्वारा (promote) उन्नत करनेवाले हैं। प्रभु अपने स्तोताओं को (क) वरणीय धन प्राप्त कराते हैं, (ख) उन धनों के उचित विनियोग की प्रेरणा देते हैं, (ग) और इस प्रकार उन्हें उन्नत करते हैं। (२) हे प्रभो! **वः**=आप के **विमदे**=प्राप्ति के आनन्द के निमित्त **नः**=हमें **द्विषः**=द्वेषों से तथा **अंहसः**=पापों से **पाहि**=बचाइये। द्वेष व पाप से ऊपर उठकर ही तो हम आप को प्राप्त कर सकते हैं। **विवक्षसे**=आप ऐसी कृपा कीजिये कि हम विशिष्ट उन्नति वाले हो सकें। आपकी प्रेरणा को सुनकर निर्द्वेषता व निष्पापता के मार्ग पर चलेंगे तो हम सब प्रकार से उन्नति क्यों न करेंगे?

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें वरणीय धन प्राप्त हो। हम प्रभु की आराधना करें जिससे हमें प्रभु प्रेरणा प्राप्त हो। हम द्वेष व पाप से ऊपर उठकर प्रभु रक्षण के अधिकारी बनें। यह उन्नति का मार्ग ही हमारा मार्ग हो।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शक्ति, प्रज्ञा, सम्यक् कर्म व प्रभु-दर्शन

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम्। विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥

(१) प्राणापान 'अश्विनौ' कहलाते हैं क्योंकि 'न श्वः' ये आज हैं तो कल नहीं है, अस्थिरता के कारण इन्हें 'अश्विनौ' कहा गया है। अथवा 'अशू व्याप्तौ' ये कर्मों में व्याप्त होनेवाले हैं। कर्मों में व्याप्ति के कारण ये 'अश्विनौ' हैं। प्राणापान, शक्ति-सम्पन्न पुरुष ही आलस्य को परे फेंककर कार्यों में व्यावृत्त होता है। हे अश्विनौ! **युवम्**=आप दोनों **शक्रा**=शक्ति-सम्पन्न हो। शरीर में सारी शक्ति के कोश ये प्राणापान ही हैं। **मायाविना**=आप प्रज्ञा-सम्पन्न हो। प्राणसाधना से ही बुद्धि की सूक्ष्मता सिद्ध होती है। **समीची**=(सम्+अञ्च्) सम्यक् गति वाले आप हो। प्राणसाधना से सब मलों के दूर होने से कर्मों में भी पवित्रता आ जाती है। एवं प्राणसाधना के तीन लाभ यहाँ संकेतित हैं—(क) शक्ति की वृद्धि, (ख) प्रज्ञा-प्रसाद, (ग) कर्मों का सम्यक्त्व। (२) ऐसे प्राणापानो! आप **निरमन्थतम्**=जैसे दो अरणियों के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है, इसी प्रकार आप उस प्रभुरूप अग्नि का हमारे हृदयों में प्रकाश करो। (३) **विमदेन**='शक्ति प्रज्ञा व उत्तम कर्मों' को सिद्ध करके भी मद=(गर्व) शून्य स्थिति वाले ऋषि से **यद्**=जब **ईडिता**=आप उपासित होते

हो तो हे **ना सत्या**=(नासा+त्य) नासिका में निवास करनेवाले (न+असत्या) सब असत्यों को नष्ट करके सत्य को दीप्त करनेवाले प्राणापानो! आप **निरमन्थतम्**=मेरे में प्रभु रूप अग्नि को अवश्य उद्बुद्ध करो। एवं प्राणसाधना का चौथा लाभ यह है कि असत्य को समाप्त करके ये सत्य प्रभु का दर्शन करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्राणसाधना के द्वारा अपने में 'शक्ति-प्रज्ञा-कर्मपवित्रता' का सम्पादन करके प्रभु-दर्शन करनेवाले हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

देवों का शक्ति-सम्पन्न होना

विश्वे॑ दे॒वा अ॑कृपन्त समी॒च्योर्नि॒ष्पत॑न्त्योः। नास॑त्यावब्रुवन्दे॒वाः पुन॒रा व॑हता॒दिति॑॥ ५॥

(१) जब 'अश्विनौ' अर्थात् प्राणापान अन्दर आते हैं और बाहर जाते हैं तो **समीच्योः**=(सम्+अञ्च्) इन प्राणापानों के शरीर से संगत होने पर तथा **निष्पतन्त्योः**=बाहर जाने पर अर्थात् इन प्राणापान के विधारण व प्रच्छर्दन से **विश्वेदेवाः**=चक्षु आदि इन्द्रियों के रूप में स्थित सब देव **अकृपन्त**=(कृपू सामर्थ्ये) शक्तिशाली बनते हैं। प्राणसाधना से सब इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है। इसी में 'सु-ख' है। सब इन्द्रियों के स्वस्थ होने से जीवन का कार्यक्रम सुन्दरता से चलता है। (२) अब **देवाः**=ये देव **नासत्यौ**=इन प्राणापानों से **अब्रुवन्**=कहते हैं कि आप **पुनः**=फिर **आवहतात् इति**=हमें सब प्रकार से हमारे घर में प्राप्त करानेवाले होइये। अर्थात् आप की कृपा से हम फिर अपने मूल गृह 'ब्रह्मलोक' में पहुँच सकें। यह जीवन सुन्दरता से बीतेगा, तभी तो हम मोक्ष के भी अधिकारी समझे जाएँगे।

भावार्थ—प्राणापान के शरीर में आने-जाने की क्रिया से सब इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं। और ये प्राणापान ही अन्ततः हमें मोक्ष प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः; प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मोक्ष-प्रवण पुरु का जीवन

मधु॑मन्मे प॒राय॑णं॒ मधु॑म॒त्पुन॒राय॑नम्। ता नो॑ देवा दे॒वत॑या यु॒वं मधु॑मतस्कृतम्॥ ६॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जो पुरुष प्राणसाधना से सब इन्द्रियों को सशक्त बनाकर मोक्ष मार्ग की ओर चलता है उस पुरुष के जीवन में माधुर्य होता है। इसकी कामना यह होती है कि **मे**=मेरा **परायणं**=बाहर जाना **मधुमत्**=माधुर्य को लिये हुए हो। **मे**=मेरा **पुनः**=फिर **आयनम्**=आना-लौटना **मधुमत्**=मिठास वाला हो। मेरा आना-जाना, इसी प्रकार उठना-बैठना, बोलना-चालना सभी कुछ मधुर ही हो। मेरी सब क्रियाएँ मिठास को लिये हुए हों। (२) हे **देवा**=दिव्यगुणों वाले प्राणापानो! **ता युवम्**=वे आप दोनों **नः**=हमें **देवतया**=उस देवता के हेतु से, अर्थात् प्रभु प्राप्ति के उद्देश्य से **मधुमतः**=माधुर्य वाला **कृतम्**=कर दीजिये। प्रभु को वही प्राप्त करता है जो कि अपने में माधुर्य को भरता है। यह माधुर्य प्राणसाधना से ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से जीवन मधुर बनता है। मधुर जीवन ही हमें प्रभु को प्राप्त कराता है।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हम सोम का रक्षण करें, यह हमारे जीवन को मधुर बनायेगा। (१) हम यज्ञों, उक्थों व हव्यों से प्रभु का आराधन करें, प्रभु हमें वार्य धन प्राप्त

करायेंगे; (२) हम द्वेष व पाप से ऊपर उठकर प्रभुरक्षण के पात्र बनें, (३) प्राणसाधना से हमें 'शक्ति, प्रज्ञा व कर्म-पवित्रता' प्राप्त होगी, (४) प्राणापान की गति से ही इन्द्रियाँ सशक्त बनती हैं, (५) इस प्राणसाधना से ही जीवन मधुर बनता है, (६) अब प्रभु कृपा से हमारा मन भद्र मार्ग का ही आक्रमण करता है।

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता-**सोमः** ॥ छन्दः-**आस्तारपङ्क्तिः** ॥ स्वर-**पञ्चमः** ॥

भद्र-दक्ष-क्रतु

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे॥ १॥

(१) हे प्रभो! **नः**=हमारे **मनः**=मन को **भद्रम्**=कल्याण की **अपि**=ओर **वातय**=प्रेरित कीजिये। हमारा मन सदा शुभ कर्मों में ही प्रवृत्त हो। दुरितों से दूर, भद्र के समीप हम सदा रहें। (२) **दक्षम्**=हमारे मन को **दक्ष**=उन्नति की ओर आप प्रेरित करिये। हमारा यह मन कभी अवनति की ओर न जाये। अथवा कार्यों को हम दक्षता से करनेवाले हों, हमारे कार्यों में अनाड़ीपन न टपके। कर्मों को कुशलता से करना ही तो योग है। हम इस योग को सिद्ध कर सकें। (३) **उत**=और **क्रतुम्**=हमारे मनों को आप यज्ञ की ओर प्रेरित करिये। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'=यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। हमारा मन सदा इन उत्तम यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहे। एवं 'भद्र, दक्ष व क्रतु' ये हमारे ध्येय बन जायें। (४) **अधा**=अब मन की इस साधना के बाद **ते सख्ये**=आपकी मित्रता में तथा **अन्धसः**=आध्यानीय सोम (=वीर्य) के) **वि-मदे**=विशिष्ट मद (=हर्ष) में **वः रणन्**=हमारी इन्द्रियाँ आपके ही नामों का उच्चारण करें। इन इन्द्रियों का आपके स्तवन की ओर इस प्रकार रुझान हो कि **न गावः यवसे**=जिस प्रकार गौवें चारे की ओर झुकाव वाली होती हैं। गौवों का अपने हरे-भरे चारे की ओर झुकाव स्वाभाविक है, इसी प्रकार हमारी इन्द्रियाँ स्वभावतः आप की ओर झुकें। (५) यह सब हम इसलिये चाहते हैं कि **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति की साधना कर सकें। उन्नति का मार्ग यही है कि हम प्रकृति-प्रवण न होकर आप की ओर झुकाव वाले हों। यह आपके नामों का उच्चारण हमारे सामने हमारे जीवन के लक्ष्य को स्थापित करेगा और हम निरन्तर उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाले होंगे।

भावार्थ—हमारा मन 'भद्रता, दक्षता व क्रतु' की ओर प्रेरित हो। हम प्रभु के मित्र हों, सोम का रक्षण करें और हमारी इन्द्रियाँ प्रभु नामों का उच्चारण करें जिससे हम उन्नत ही उन्नत होते चलें।

ऋषिः-**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता-**सोमः** ॥ छन्दः-**आस्तारपङ्क्तिः** ॥ स्वर-**पञ्चमः** ॥

पर-वैराग्य

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे॥ २॥

(१) हे **सोम**=शान्त प्रभो! गत मन्त्र के अनुसार आपके मित्र बननेवाले तथा सोम का रक्षण करनेवाले लोग **ते**=आपके **हृदिस्पृशः**=हृदय का स्पर्श करनेवाले होते हैं, अर्थात् आपको अत्यन्त

प्रिय होते हैं। ते=वे आपके **विश्वेषु धामसु**=सब तेजों में **आसते**=स्थित होते हैं। आपके तेज के अंश से तेजस्वी बनते हैं, आपकी दिव्यता का उनमें अवतरण होता है। (२) इस दिव्यता के अवतरण के होने पर **अधा**=अब **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **मम**=मेरे **इमे**=ये **वसूयवः**=धन प्राप्ति के साथ सम्बद्ध **कामाः**=काम **वितिष्ठन्ते**=रुक जाते हैं। 'तत्परं पुरुख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्' इस योगसूत्र के अनुसार प्रभु का आभास होने पर संसार की तृष्णा ही नहीं रह जाती और यही 'पर-वैराग्य' है। प्रस्तुत मन्त्र का ऋषि 'विमद' भी प्रभु की तेजस्विता का अनुभव करने पर इन सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठ जाता है। (३) इनसे ऊपर उठकर ही वह **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिए समर्थ होता है। कामासक्ति उत्थान की प्रतिबन्धिका होती है, निष्कामता ही सब उत्थानों का मूल है।

भावार्थ—सोम का रक्षण करनेवाला ही सच्चा प्रभु का प्रिय बनता है, प्रभु के तेज से तेजस्वी होता है और इसको सांसारिक वासनाएँ नहीं तृप्त करती।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीनिचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

परमात्म-प्रेप्सा (प्राप्ति की कामना)

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥ ३ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त प्रभो! **अहम्**=मैं गत मन्त्र के अनुसार धन-सम्बन्धी कामनाओं से तो ऊपर उठता ही हूँ, **उत**=और **ते व्रतानि**=आपके व्रतों को, आपकी प्राप्ति के साधनभूत व्रतों को **पाक्या**=परिपक्व बुद्धि से **प्रमिनामि**=(प्रकर्षेण करोमीत्यर्थः सा०)=खूब ही सम्पादित करता हूँ मैं आपका ज्ञान भक्त बनता हूँ। बुद्धि की परिपक्वता से सृष्टि के एक-एक पदार्थ में आपकी महिमा को देखता हूँ, और प्रत्येक पदार्थ को आपका स्तवन करता हुआ अनुभव करता हूँ। (२) **अधा**=अब तो **इव पिता सुनवे**=जैसे पिता पुत्र के लिये उसी प्रकार **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में, **नः**=हमें **अभि चित्**=दोनों ओर ही, अर्थात् अन्दर और बाहर **वधात्**=वध से, अर्थात् आन्तर व बाह्य शत्रुओं के विनाश से **मृडा**=सुखी कीजिए। आपकी शक्ति से ही शत्रुओं का नाश होता है, विशेषतः इन कामादि अन्तःशत्रुओं का नाश मेरी ही शक्ति से नहीं होनेवाला। इन्हें तो आप ही मेरे लिये विजय करेंगे। जिससे **विवक्षसे**=मैं विशिष्ट उन्नति के लिये समर्थ हो सकूँ।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए साधनभूत व्रतों का आचरण करता हुआ मैं प्रभु को प्राप्त करूँ, प्रभु मेरे शत्रुओं का संहार कर मेरी उन्नति के साधक बनें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीनिचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

परमात्म प्राप्ति व क्रतु-धारण

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँइव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँइव विवक्षसे ॥ ४ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त प्रभो! अब तो मेरी **धीतयः**=ध्यान वृत्तियाँ व स्तुतियाँ **उ**=निश्चय से **सं प्रयन्ति**=आपकी ओर ही आती हैं, उस प्रकार स्वभाविक रूप से तथा प्रबलता से आती हैं

इव=जिस प्रकार **सर्गासः**=खूटों से खोली गई गौवें (विसृज्यन्ते उदक पानार्थम् सा०) **अवतान्**=कूओं की ओर आती हैं। प्यास की प्रबलता के कारण उन्हें कूएँ की ओर जाने के सिवाय कुछ रुचता ही नहीं इसी प्रकार मेरी ध्यानवृत्तियाँ भी अब आपकी ओर ही लगी हैं, वे इधर-उधर नहीं जाती। (२) **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द के निमित्त तथा **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन के लिए **नः**=हमारे में **क्रतुं धारया**=क्रतु का धारण कीजिए हमारे मस्तिष्क में प्रज्ञा का स्थापन हो (क्रतु=प्रज्ञा), हृदय में संकल्प हो (क्रतु=संकल्प) तथा हमारे हाथ यज्ञादि उत्तम कर्मों में व्यापृत हों (क्रतु=यज्ञ)। हमारे में क्रतु का धारण इस प्रकार कीजिए **इव**=जिस प्रकार कि अन्तरिक्ष में **चमसान्**=(चमस=मेघ नि० १।१०) आप मेघों की स्थापना करते हैं। बाह्य अन्तरिक्ष में जो मेघ का स्थान है, मेरे हृदयान्तरिक्ष में वही क्रतु का स्थान हो। मेघ अन्न को उत्पन्न करता है, सन्ताप को दूर करता है। इसी प्रकार मेरा संकल्प भी यज्ञादि को उत्पन्न करे तथा लोक-सन्ताप को हरनेवाला हो। (३) यह सब आप **विवक्षसे**=मेरी विशिष्ट उन्नति के लिये करिये ही। उन्नति का यही मार्ग है। 'क्रतु' ही उन्नति का साधक है, सो आप इसे मेरे में स्थापित करिये। क्रतु शून्य हृदय तो वेग से शून्य घोड़े व दूध से रहित गौ के समान ही तो है।

भावार्थ—मेरी ध्यान-वृत्तियाँ प्रभु-प्रवण हों। प्रभु कृपा से मेरा हृदय क्रतु सम्पन्न हो।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीनिचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

बाड़ा, गौवें तथा घोड़े

तव॒ त्ये सो॑म॒ शक्ति॑भि॒र्निका॑मासो॒ व्यृ॑ण्विरे ।
गृत्स॑स्य॒ धीरा॑स्त॒वसो॒ वि वो॒ मदे॑ व्र॒जं गोम॑न्तम॒श्विनं॒ विव॑क्षसे ॥ ५ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त परमात्मन्! **त्ये**=वे **निकामासः**=सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठे हुए **धीराः**=धीर-ज्ञानी-पुरुष **गृत्सस्य**=मेधावी-सम्पूर्ण बुद्धि के स्रोत- **तवसः**=शक्ति के दृष्टिकोण से महान्-प्रवृद्ध **तव**=आपकी **शक्तिभिः**=शक्तियों से **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **गोमन्तम्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाले तथा **अश्विनम्**=उत्तम कर्मेन्द्रियों वाले **व्रजम्**=शरीररूपी बाड़े को **वि-ऋण्विरे**=विशिष्टरूप से प्राप्त होते हैं और इस प्रकार **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिये होते हैं। (२) प्रभु को प्राप्त वे ही होते हैं जो निकामासः=कामनाशून्य होते हैं। सांसारिक वस्तुओं की कामना से ऊपर उठकर ही प्रभु की प्राप्ति होती है। प्रभु मेधावी (गृत्स) व महान् (तवस्) हैं। प्रभु को प्राप्त करनेवाला भी मेधावी व महान् बनता है। यह धीर पुरुष प्रभु प्राप्ति के विशिष्ट आनन्द को अनुभव करता है। (३) प्रभु को प्राप्त करनेवाला, प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर इस शरीररूप बाड़े में उत्तम ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप गौवों व घोड़ोंवाला होता है। इसका शरीर व्रज है, ज्ञानेन्द्रियाँ गौवें हैं और कर्मेन्द्रियाँ घोड़े हैं। (४) इस प्रकार अपने शरीररूप बाड़े को उत्तम बनाकर, इस उत्तम इन्द्रियरूप गौवों व घोड़ों से यह निरन्तर उन्नतिपथ पर आगे बढ़ता है। यह सब प्रभु कृपा से होता है, प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही ऐसा होने का सम्भव होता है।

भावार्थ—हम काम से ऊपर उठकर प्रभु को प्राप्त करें। प्रभु कृपा से हमारा शरीर एक उत्तम बाड़े की तरह हो। इसमें ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तम गौवें हों तथा कर्मेन्द्रियाँ उत्तम घोड़े हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**अस्तारपङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

'पशु' रक्षण व उत्तम जीवन

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा संपश्यन्भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त परमात्मन्! आप **नः**=हमारे **पशुम्**=काम-क्रोधरूप पाशविक भाव को **रक्षसि**=उसी प्रकार कैद में, संयम में रखते हैं जैसे कि शेर को पिञ्जरे में रखा जाता है। (२) इस प्रकार 'कामः पशु, क्रोधः पशुः' काम-क्रोधरूप इन पशुओं को पूर्णरूप से वश में रखते हुए आप **पुरुत्रा**=नाना प्रकार की कामनाओं में **विष्ठितम्**=विशेषरूप से स्थित, अर्थात् इस काम-मय जगत् में विविध कामनाओं में विचरनेवाले **जगत्**=इन लोगों को **जीवसे**=उत्तम जीवन के लिये **समाकृणोषि**=करते हैं। कामशून्य जीवन तो कोई जीवन ही नहीं, वह तो अचेतनावस्था है। पर काममय जीवन भी कोई सुन्दर जीवन नहीं, वह जीवन पतनोन्मुख होता है। 'कामातता न प्रशस्ता न चैषेहासयकामता'=मनु कहते हैं कि काममयता तो ठीक है ही नहीं, पर अकामता भी तो प्रशस्त नहीं। प्रभु हमारे काम-क्रोध को संयत करके हमारे जीवन को सुन्दर बना देते हैं। (३) हे प्रभो! इस प्रकार आप ही **विश्वा भुवना संपश्यन्**=सम्पूर्ण लोकों का ध्यान कर रहे हैं (Look after)। **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में ही लोग **विवक्षते**=विशिष्ट उन्नति के लिये होते हैं। वास्तविक उन्नति तभी प्रारम्भ होती है जब कि जीव प्रभु प्राप्ति के लिए प्रभु की उपासना में आनन्द लेने लगता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे काम-क्रोध संयत हों और इस प्रकार हमारा जीवन उत्तम बने। प्रभु ही हमारा पालन करनेवाले हैं, हम उनकी उपासना में चलते हुए निरन्तर उन्नत हों।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीविराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

अहिंसित ग्वाला

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्त्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥ ७ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त परमात्मन्! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **विश्वतः**=सब ओर से **अदाभ्यः**=न हिंसित होनेवाले **गोपाः**=रक्षक **भव**=होइये। जैसे एक ग्वाला गौवों का रक्षण अप्रमत्तता से करता है, उसी प्रकार प्रभु हमारा रक्षण करनेवाले हों। सांसारिक ग्वाले को कोई शत्रु मार भी सकता है और तब गौवों को हानि पहुँचा सकता है। पर प्रभु हमारे अहिंसित ग्वाले हैं। अहिंसित होते हुए वे प्रभु सब ओर से होनेवाले 'काम-क्रोध' आदि शत्रुओं के आक्रमणों से हमारी रक्षा करते हैं। (२) हे **राजन्**=हमारे जीवनों को व्यवस्थित करनेवाले प्रभो! **स्त्रिधः**=इन शत्रुओं को **अपसेध**=हमारे से दूर भगाइये। इनका हमारे पर आक्रमण न हो सके। **नः**=हमें **दुःशंसः**=बुराइयों को शंसन करनेवाला, बुरी बातों को अच्छे रूप में चित्रित करनेवाली शक्ति—**मा ईशत**=मत दबा ले। हम उसकी बातों में आकर मृगया आदि व्यसनों में न फँस जाएँ। (क) मृगया तो बड़ा सुन्दर व्यायाम है, (ख) इसमें चल लक्ष्य के वेधन में कितनी एकाग्रता का अभ्यास होता है, (ग) खेती की रक्षा के लिए मृग आदि पशुओं की वृद्धि को रोकना आवश्यक भी तो है और (घ) इस प्रकार तो उन्हें एक ही योनि में पीछे मुक्ति भी मिल रही होती है। इस प्रकार की सुन्दर लगनेवाली

हम उसकी युक्तियों में फँस न जाएँ। हम तो **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिए हों। यह होगा तभी जब कि हम प्रभु द्वारा रक्षित होंगे, प्रभु का रक्षण ही हमें कामादि के आक्रमण से बचा सकेगा।

भावार्थ—हम गौवें हों, प्रभु हमारे ग्वाले। तभी यह सम्भव होगा कि हम काम-क्रोधादि हिंस्र पशुओं के आक्रमण से बचे रहें।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीविराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

द्रोह व पाप से परे

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ८ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त परमात्मन्! **सुक्रतुः**=आप उत्तम संकल्पों, कर्मों व प्रज्ञानोंवाले हैं। **क्षेत्रवित्तरः**=हम सब के शरीररूप क्षेत्रों के उत्कृष्टता के साथ जाननेवाले हैं। सब क्षेत्रों में आप ही तो वस्तुतः क्षेत्रज्ञ हैं आप **वयोधेयाय**=हमारे में उत्कृष्ट जीवन के स्थापन के लिये सदा **जागृहि**=जागरित रहिये। आप ही हमारे अप्रमत्त रक्षक होंगे तभी तो हमारा जीवन शत्रुओं से आक्रान्त न होगा। (२) हे प्रभो! आप **मनुषः**=मनुष्य में स्वभावतः उत्पन्न हो जानेवाले **द्रुहः**=द्रोह के भाव से तथा **अंहसः**=पाप से **नः**=हमें **पाहि**=बचाइये। ज्ञान की अल्पता के कारण आ जानेवाली इन मलिनताओं से आप ही हमें बचायेंगे। (३) इस द्रोह व पाप से हमारा रक्षण आप अवश्य करें ही, जिससे **वः**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=हम विशिष्ट उन्नति के लिये हों। द्रोह व पाप की भावनावाला कोई भी व्यक्ति प्रभु-भक्त नहीं हो सकता और प्रभु-भक्त में द्रोह व पाप नहीं रह सकते। यह एकत्व को देखता है, सो द्रोह से ऊपर उठ जाता है, सदा 'सर्वभूतहिते-रतः' होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे रक्षक हों, जिससे हम द्रोह व पाप से ऊपर उठे रहें। द्रोह व पाप हमें प्रभु से दूर रखते हैं।

ऋषिः—**विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीविराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वर—**पञ्चमः** ॥

वह 'शिव-सखा'

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥ ९ ॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=हमारे ज्ञान पर आवरणरूप इस काम को सर्वाधिक नष्ट करनेवाले **इन्दो**=शक्तिशालिन् व ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **शिवः सखा**=कल्याणकर व 'शो तनूकरणे'=प्रज्ञान को क्षीण करनेवाले मित्र हैं। हमारे में से जो भी इन्द्रियों को जीतने का अभ्यास करता है, हे प्रभो! आप उसके मित्र होते हैं, आप इसके लिए वृत्र का विनाश करनेवाले होते हैं। इस वृत्र का विनाश करके ही तो आप उसके अज्ञान को क्षीण करते हैं। अज्ञान को दूर करनेवाले 'शिव सखा' आप ही हैं। संसार में भी वही सच्चा मित्र है जो सद्बुद्धि दे, नेक सलाह दे। हाँ में हाँ मिलानेवाले तो सच्चे मित्र नहीं होते। (२) 'आप ही शिव सखा हैं' यही कारण है कि **यत्**=जो **तोकसातौ**=(तु=वृद्धि, पूर्ति, हिंसा) शत्रुओं की हिंसा

के द्वारा वृद्धि व पूर्ति की प्राप्ति के निमित्त **समिथे**=संग्राम में, काम-क्रोधादि शत्रुओं के साथ चलनेवाले अध्यात्म संग्राम में **युध्यमाना:**=कामादि शत्रुओं से युद्ध करते हुए पुरुष **सीम्**=सर्वत: **हवन्ते**=आपको ही पुकारते हैं। वस्तुत: आपने ही तो विजय करनी है, व्यक्तियों के लिए इस विजय का सम्भव नहीं। (३) आप इस विजय को करवाइये ही, जिससे **व:**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=हम विशिष्ट उन्नति के लिये हों। बिना विजय के उन्नति नहीं और बिना आपकी कृपा के विजय नहीं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे शिव सखा हैं, ये ही हमें युद्ध में विजय प्राप्त कराते हैं।

ऋषि:—**विमद ऐन्द्र: प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र:** ॥ देवता—**सोम:** ॥ छन्द:—**अस्तारपङ्क्ति:** ॥ स्वर—**पञ्चम:** ॥

कक्षीवान् की बुद्धि का वर्धन

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥ १० ॥

(१) **अयं स:**=यह वह सोम ही **घ**=निश्चय से **तुर:**=(तुर्वी हिंसायाम्) सब शत्रुओं का संहार करनेवाला है **मद:**=स्वयं आनन्दस्वरूप होता हुआ, शत्रुओं के संहार के द्वारा हमारे आनन्द को बढ़ानेवाला है। यह प्रभु ही **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष को **प्रिय:**=प्रीति को पैदा करनेवाला है। जितेन्द्रिय पुरुष प्रकृति-प्रवण न होकर सदा प्रभु-प्रवण होता है, उसे प्रभु-भजन में आनन्द का अनुभव होता है। यह प्रभु सदा **वर्धत**=अपने स्वरूप में बढ़े हुए हैं 'वर्धमानं स्वेदमे'। प्रभु में कभी कोई कमी न थी, वे सदा से प्रवृद्ध हैं। (२) **अयम्**=ये प्रभु **कक्षीवत:**=दृढ़ कक्ष्या (=कटिबन्ध) वाले, दृढ़ निश्चयी, लक्ष्य पर पहुँचने के लिए कटिबद्ध, **मह:**=(मह पूजायाम्) पूजा की वृत्तिवाले और इस पूजा के द्वारा **विप्रस्य**=(वि-प्रा-पूरणे) विशिष्टरूप से अपना पूरण करनेवाले पुरुष की **मतिम्**=बुद्धि को **वर्धयत्**=बढ़ाते हैं। वस्तुत: इस प्रकार बुद्धि को बढ़ा करके ही वे इसकी वृद्धि को कारण बनते हैं। (३) हे प्रभो! आप जब बुद्धि को बढ़ाते हैं तभी **व:**=आपकी प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में यह 'विमद' **विवक्षसे**=विशिष्ट उन्नति के लिए होता है। बुद्धि-वर्धन के बिना किसी भी प्रकार की उन्नति का सम्भव नहीं होता।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमारी वासना को विनष्ट करके, बुद्धि को शुद्ध व वृद्ध कीजिए जिससे हम उन्नतिपथ पर आगे बढ़ सकें। हम भी 'कक्षीवान्, महस् व विप्र' बनकर बुद्धि-वर्धन के पात्र बनें।

ऋषि:—**विमद ऐन्द्र: प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र:** ॥ देवता—**सोम:** ॥ छन्द:—**अस्तारपङ्क्ति:** ॥ स्वर—**पञ्चम:** ॥

अन्धत्व व पंगुत्व का तिरसन

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥ ११ ॥

(१) **अयम्**=यह सोम प्रभु ही **दाशुषे**=देने की वृत्तिवाले अथवा प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले **विप्राय**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले पुरुष के लिए **गोमत:**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **वाजान्**=बलों को **इयर्ति**=प्राप्त कराते हैं। हम प्रभु के प्रति अपने को सौंपते हैं तो प्रभु हमें वह शक्ति प्राप्त कराते हैं जो हमारी इन्द्रियों को उत्तम बनाती है। इसी शक्ति को 'यशस्वी बल' कहा

गया है। (२) इस प्रकार **अयम्**=यह प्रभु **सप्तभ्यः**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' दो कान, दो नासिका, दो आँखें व मुख रूप सातों शरीरस्थ ऋषियों के लिए **आवरम्**=सब प्रकार से वरणीय धन को, शक्ति व प्रकाश को देते हैं। 'सब की सब इन्द्रियाँ सशक्त व प्रकाशमय बनें' इसके लिए आवश्यक है कि हम प्रभु का ध्यान करें, प्रभु के बनें। (३) जब हम प्रभु के बनते हैं तो वे प्रभु **अन्धम्**=अन्धे को व **श्रोणम्**=लंगड़े को भी **प्रतारिषत्**=उस अन्धत्व व पंगुत्व से तरा देते हैं। प्रभु कृपा से अन्धत्व से ऊपर उठकर हम दूरदृष्टि बनते हैं तथा पंगुत्व से ऊपर उठकर खूब गतिशील होते हैं। प्रभु कृपा हमारी ज्ञानेन्द्रियों को भी यशस्वी बनाती है और कर्मेन्द्रियों को भी शक्ति देती है। तभी **वः**=उस प्रभु की प्राप्ति के **विमदे**=विशिष्ट आनन्द में **विवक्षसे**=हम विशिष्ट उन्नति के लिये होते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशमय बनाती है तो कर्मेन्द्रियों को सशक्त। अन्धत्व व पंगुत्व दूर होकर हमारी उन्नति ही उन्नति होती है।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रार्थना से हुआ है कि हमें 'भद्रता, दक्षता व क्रतु' प्राप्त हों। (१) सोमरक्षण से हम प्रभु के सच्चे भक्त बनें, (२) प्रभु प्राप्ति के लिए साधनभूत व्रतों का आचरण करें, (३) क्रतु के धारण करने पर ही जीवन उत्तम बनता है, (४) प्रभु कृपा से मेरा शरीर इन्द्रियरूप पशुओं के लिये उत्तम बाड़ा बने, (५) प्रभु हमारे काम-क्रोधरूप पशुओं को नियन्त्रण में रखें, (६) हम गौवें हों तो प्रभु हमारे अहिंसित ग्वाले, (७) वे हमें द्रोह व पाप से ऊपर उठायें, (८) प्रभु ही हमारे शिव सखा हैं, (९) वे हमारी बुद्धि का वर्धन करते हैं, (१०) और हमारे अन्धत्व व पंगुत्व को दूर करते हैं, (११) ये प्रभु ही हमें स्पृहणीय मनीषाएँ प्राप्त कराते हैं।

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

मनीषा-नियुत्-दस्रा

प्र ह्यच्छा॑ मनी॒षाः स्पा॒र्हा यन्ति॑ नि॒युतः॑। प्र द॒स्रा नि॒युद्र॑थः पू॒षा अ॑विष्टु॒ माहि॑नः ॥ १ ॥

(१) प्रस्तुत सूक्त में परमात्मा को 'पूषा' नाम से स्मरण किया गया है। उस पूषा के अनुग्रह से **हि**=निश्चयपूर्वक **स्पार्हाः**=स्पृहणीय, चाहने योग्य **मनीषाः**=बुद्धियाँ **अच्छा यन्ति**=हमारी ओर प्राप्त होती हैं, अर्थात् वे बुद्धियाँ जो निर्माणात्मक-लोकहितात्मक कार्यों को जन्म देती हैं, हमें प्राप्त हों। ऐसी ही बुद्धियाँ स्पृहणीय हैं। इन बुद्धियों के साथ **नियुतः**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व हमें प्राप्त होते हैं। उत्तम बुद्धियों के साथ उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करके हम अपनी जीवन-यात्रा में निरन्तर आगे बढ़ते हैं। (२) **नियुद्रथः**=हमारे शरीररूप रथ में 'नियुत्' नामक घोड़ों को जोतनेवाला **माहिनः**=महिमावाला, पूजनीय, **पूषा**=सबका पोषण करनेवाला देव **दस्रा**=शरीर के सब रोगों को नष्ट करनेवाले प्राणापान को **प्र अविष्टु**=प्रकर्षेण रक्षित करनेवाला हो। उस पूषा के अनुग्रह से हमारी प्राणापान शक्ति अत्यन्त सुरक्षित हो। इसके सुरक्षित होने पर ही हमारी रक्षा निर्भर है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें स्पृहणीय बुद्धि, उत्तम इन्द्रियाश्व तथा सुरक्षित प्राणापान शक्ति प्राप्त हो।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**आर्चीस्वराडनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

वायु व जल में प्रभु-दर्शन

यस्य त्यन्मंहित्वं वाताप्यंमयं जनः। विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम्॥ २॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार वह पूषा हमें स्पृहणीय बुद्धि, उत्तम इन्द्रियाश्व व प्राणापान को प्राप्त कराये **यस्य**=जिस प्रभु के **त्यत्**=उस प्रसिद्ध **वाताप्यम्**=(वात+अप+य) वायु व जल में प्रकट होनेवाले **महित्वम्**=महत्त्व को **अयम्**=यह **विप्रः**=मेधावी **जनः**=मनुष्य **आवंसत्**=संभजते=सम्यक् सेवन करता है और **धीतिभिः**=ध्यान के द्वारा अथवा यज्ञादि उत्तम कर्मों के द्वारा **सुष्टुतीनाम्**=उस पूषा की उत्तम स्तुतियों को **चिकेत**=जानता है। (२) प्रभु की महिमा इस पाञ्चभौतिक संसार के प्रत्येक भूत में प्रकट हो रही है, परन्तु जीव विशेषकर उस महिमा को जल व वायु में देख पाता है। एक मिनिट के लिए भी वायु बन्द हुई तो दम घुटने लगता है, जल के बिना भी एक दिन का बिताना कठिन हो जाता है। सो बहती हुई वायु में तथा बहते हुए इन जलों में प्रभु की महिमा झट दिख पाती है। संस्कृत साहित्य में वायु तो 'प्राण' ही है, जल भी 'जीवन' है। ये प्राणि जीवन के दो मूल-स्तम्भ हैं। (३) वस्तुतः यह मेधावी मनुष्य जितना-जितना ध्यान करता है, प्रकृति के पदार्थों का चिन्तन करता है, उतना-उतना ही उन पदार्थों में प्रभु की महिमा का दर्शन करता है। उसे हिमाच्छादित पर्वत, समुद्र व पृथ्वी सभी प्रभु की महिमा का प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं। आकाश को आच्छादित करनेवाले तारे प्रभु की स्तुति करते दिखते हैं।

भावार्थ—उस पूषा की महिमा वायु व जल आदि सभी पदार्थों में सुव्यक्त है।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

शक्ति सेचन

स वेंद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा। अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति॥ ३॥

(१) **स**=वह प्रभु **सुष्टुतीनाम्**=हमारे से की जानेवाली उत्तम स्तुतियों को **वेद**=जानता है। 'हम वस्तुतः हृदय से उस प्रभु का स्तवन कर रहे हैं या नहीं' इस बात को प्रभु सम्यक् समझते हैं। हम बनावटी स्तुतियों से प्रभु को धोखा नहीं दे सकते। (२) **इन्दुः न**=सोम की तरह वह प्रभु **पूषा**=हमारा पोषण करनेवाले हैं और **वृषा**=हमारे पर सुखों की वृष्टि करनेवाले हैं। जैसे शरीर में सुरक्षित सोम=वीर्य हमारी सब शक्तियों का पोषण करता है और हमारे जीवन को सुखी बनाता है उसी प्रकार वे प्रभु हमारे लिये 'पूषा और वृषा' होते हैं। (३) वे प्रभु **प्सुरः**=(प्सु=रूप रा=दाने) हमारा पोषण करके हमें उत्तम रूप को देनेवाले हैं। प्रभु कृपा से हमारा स्वाथ्य ठीक होता है और यह स्वास्थ्य हमारे सौन्दर्य का वर्धन करता है। ये 'प्सुर' प्रभु **अभिप्रुषायति**=हमारा लक्ष्य करके सब शक्तियों का सेचन करते हैं। वे **नः**=हमारे **व्रजम्**=इस शरीररूप बाड़े को **आप्रुषायति**=सब ओर से सिक्त कर डालते हैं। हमारा अंग-प्रत्यंग शक्ति से सिक्त होकर, पुष्ट होकर हमें आगे बढ़ने के योग्य बनाता है।

भावार्थ—वे प्रभु पूषा हैं, वे सचमुच हमारे सम्पूर्ण अंगों को शक्ति से सिक्त करके हमें पुष्ट करते हैं।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**आचीनिचृदुष्णिक्** ॥
स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रकाश व पोषण

मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन्। मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम्॥ ४॥

(१) हे **देव**=हमारे जीवन को प्रकाशित करनेवाले, ज्ञान की ज्योति से दीप्त करनेवाले तथा **पूषन्**=हमारे अंग-प्रत्यंग को शक्ति सेचन से पुष्ट करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **अस्माकं मतीनां साधनम्**=हमारी बुद्धियों के सिद्ध करनेवाले, देव के रूप में ज्ञान के द्वारा हमारी मतियों को प्रकाशमय करनेवाले **च**=और **विप्राणाम्**=इन मेधावी पुरुषों के **आधवम्**=सब प्रकार से कम्पित करके मलों के दूर करनेवाले, विप्रों के जीवन को निर्मल बनानेवाले **त्वा**=आपको **मंसीमहि**=हम स्तुत करते हैं। (२) हम प्रभु का स्तवन करते हैं, वे प्रभु हमारे मस्तिष्क को प्रकाशमय व शरीर को पुष्ट करनेवाले हैं। 'देव' होते हुए हमें द्योतित करते हैं और 'पूषन्' के रूप में हमारा पोषण करते हैं। प्रकाश की प्राप्ति के लिये ही हमें उत्तम बुद्धि देते हैं और शक्ति को प्राप्त कराके सब बुराइयों से बचाते हैं।

भावार्थ—वे देव हमें ज्ञान की ज्योति देते हैं और वे पूषा हमारे अंगों को पुष्ट करते हैं।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

वह यावयत्सखा

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्। ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः॥ ५॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार हमारी बुद्धियों के सिद्ध करनेवाले तथा मलों को कम्पित करके दूर करनेवाले प्रभु ही **यज्ञानां प्रत्यर्धिः**=(प्रति+ऋध्+इ) प्रत्येक यज्ञ का समर्धन करनेवाले हैं। एक-एक यज्ञ को वे ही समृद्ध करते हैं। प्रभु कृपा बिना कोई भी हमारा यज्ञ पूर्ण नहीं होता। (२) वे प्रभु ही **रथानाम्**=हमारे इन शरीररूप रथों के **अश्वहयः**=(हयं गतौ) इन्द्रियाश्वों के द्वारा आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। (३) **ऋषिः**=वे प्रभु ही तत्वद्रष्टा हैं। **स**=वे वे हैं **यः**=जो **मनुर्हितः**=मनुष्य का सच्चा हित करनेवाले हैं। **विप्रस्य**=अपना पूरण करनेवाले मेधावी पुरुष के वे **यावयत् सखः**=ऐसे मित्र हैं जो उसे पाप से पृथक् कर रहे हैं और हित से युक्त कर रहे हैं। मित्र का यही तो लक्षण है 'पापान्निवारयति योजयते हिताय'। वे प्रभु हमें सदा पाप से निवारित कर रहे हैं (यु=अमिश्रण) तथा हित से युक्त कर रहे हैं (यु=मिश्रण)। ऐसा सच्चा मित्र ही तो हमारा हित कर सकता है। सांसारिक मित्र तो ज्ञान की कमी के कारण कभी गलत भी सलाह दे सकता है, प्रभु तो ऋषि हैं, तत्त्वद्रष्टा हैं, वहाँ गलत प्रेरणा का प्रश्न ही नहीं उठता एवं ये प्रभु ही हमारे सच्चे मित्र हैं।

भावार्थ—हमारे सब यज्ञ प्रभु कृपा से पूर्ण होते हैं, यह शरीर-यन्त्र भी प्रभु कृपा से चलता है। वे प्रभु तत्वद्रष्टा व हितचिन्तक मित्र हैं सो हमें बुराई से दूर करके भलाई से जोड़ रहे हैं।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

मार्जन (पत्नी-संतति व पति)

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च। वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत्॥ ६॥

(१) वे प्रभु एक घर में **आधीषमाणायाः**=(आत्मार्थं धीयमानायाः सा०) आत्म प्राप्ति के लिये अपना पूरण करनेवाली (धी=To accomplish) **च**=और अतएव **शुचायाः**=पवित्र जीवनवाली गृहिणी का **पतिः**=रक्षक है। **च**=और इसी प्रकार **शुचस्य**=पवित्र आचरणवाले गृहपति का वह रक्षक है। प्रस्तुत मन्त्र में 'आधीषमाणायाः' से पत्नी का, 'शुचायाः' से सन्तति का और 'शुचस्य' से पति का भी ग्रहण किया जा सकता है। पत्नी आत्म प्राप्ति के लिये अपने कर्तव्य कर्मों में सदा लगी रहती है। इन कर्मों से ही वह आत्म-दर्शन की अधिकारिणी बनती है। इसके कर्त्तव्यपालन से ही सन्तति, शुचि व पवित्र बनती है। इसका व्यवहार ही पति को भी 'शुच'=पवित्र बना देता है। जिन पत्नियों का व्यवहार सुन्दर नहीं होता, उनके पति कुञ्ज में आनन्द की तलाश करते फिरते हैं और एक विचित्र-सा अस्वाभाविक जीवन बिताने के लिये विवश होते हैं वहाँ पवित्रता की सम्भावना नहीं रहती। (२) और तो और वह तो **अवीनाम्**=भेड़ों के भी **वासोवायः**=बच्चों का विस्तार करनेवाला है, बुननेवाला है। भेड़ों के भी वस्त्रों का जो ध्यान करता है, वह प्रभु ही **वासांसि**=हमारे इन पञ्चकोश रूप वस्त्रों को **आमर्मृजत्**=पूर्ण शुद्ध बना देता है। अन्नमयकोश के रोगरूप मालिन्य को दूर करता है, तो प्राणमय के नैबल्य रूप मल को। मनोमयकोश से 'ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष' आदि को हटाता है और विज्ञानमयकोश की कुण्ठता को दूर भगाता है। ये प्रभु ही आनन्दमयकोश को निर्मल बनाकर उसे 'सहस्' से पूर्ण करते हैं एवं इस प्रभु की कृपा से ही हमारा जीवन शुद्ध होता है।

भावार्थ—पवित्र जीवनवाले पति-पत्नी ही प्रभु रक्षा के पात्र होते हैं। वे प्रभु भेड़ों का भी पालन करते हैं तो हमारा पालन क्यों न करेंगे?

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः**॥ देवता—**पूषा**॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

मलापहरण

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा। प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः॥ ७॥

(१) वे प्रभु **इनः**=स्वामी हैं, **वाजानाम्**=सब अन्नों व शक्तियों के **पतिः**=पति हैं। (२) **इनः**=ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु **पुष्टीनाम्**=अपना पोषण करनेवालों के **सखा**=मित्र हैं। प्रभु निर्बलों के मित्र नहीं 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'। विलासमय जीवन ही हमें 'क्षीणायु' बनाता है, यह विलासी पुरुष ही प्रभु की कृपा दृष्टि को प्राप्त नहीं करता। (३) वे **हर्यतः**=जाने योग्य व चाहने योग्य प्रभु **श्मश्रु**=(श्मनि श्रितं नि०) शरीर में आश्रित 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को **प्र दूधोद्**=प्रकर्षेण कम्पित करके निर्मल करनेवाले हैं। जैसे झाड़कर कपड़े के मल को दूर कर दिया जाता है, उसी प्रकार वे प्रभु हमारी इन्द्रियों, मन व बुद्धि को भी झाड़कर निर्मल बना देते हैं। इन्द्रियों की निर्बलता दूर हो जाती है, मन की मैल भस्मीभूत (चकनाचूर) हो जाती है और बुद्धि उज्ज्वल हो उठती है। (४) 'इतने अनन्त जीवों के मलों को वे प्रभु कैसे दूर सकते होंगे'? इस शंका का करना व्यर्थ है, वे अनन्त शक्ति प्रभु इन अपने एक देश में होनेवाले जीवों को **वृथा**=अनायास ही वि दूधोद्=विशिष्टरूप से झाड़कर ठीक कर देते हैं। वे प्रभु तो वे हैं **यः**=जो **अदाभ्यः**=किसी से हिंसित होनेवाले नहीं।

भावार्थ—वे प्रभु सबके स्वामी हैं। वे प्रभु ही चाहनेवालों व प्रभु की ओर जानेवालों के मलों का अपहरण करते हैं।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

धुरा का आवर्तन

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः। विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥ ८ ॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **ते रथस्य धुरम्**=आपके दिये हुए इस शरीररूप रथ की धुरा को **अजाः**=(अज गतिक्षेपणयोः) गति के द्वारा मलों को दूर करनेवाले व्यक्ति ही **आववृत्युः**= आवर्तित करते हैं, अर्थात् धारण करके कार्य में व्यापृत करते हैं। 'अज' पुरुष ही इस जीवनरथ का वहन कर पाते हैं। (२) वे प्रभु **विश्वस्य**=सब **अर्थिनः**=प्रार्थना करनेवालों के **सखा**=मित्र हैं। प्रभु ही तो हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं। वे प्रभु **सनोजाः**=चिरजात हैं, सदा से प्रादुर्भूत हैं। किसी समय विशेष में उनका प्रादुर्भाव नहीं होता, सदा से हैं, सदा रहेंगे। **अनपच्युतः**=उन प्रभु को कोई मार्ग से हटा नहीं सकता, उनकी व्यवस्था का कोई भंग नहीं कर सकता। प्रभु के नियम अटल हैं।

भावार्थ—हम गतिशील बनकर इस शरीर-रथ का वहन करनेवाले बनें। प्रार्थना द्वारा प्रभु के मित्र बनें।

ऋषिः—**विमदः ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**आर्चीविराडनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

रथ का रक्षण

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः। भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ९ ॥

(१) इस जीवन-यात्रा में गत मन्त्र के अनुसार जब अज बनकर हम शरीर-रथ की धुरा का आवर्तन करें तो वे **पूषा**=सबका पोषण करनेवाले, **माहिनः**=महिमा सम्पन्न प्रभु **अस्माकं रथम्**=हमारे इस शरीर-रथ को **ऊर्जा**=बल व प्राणशक्ति के द्वारा **अविष्टु**=रक्षित करें। उस प्रभु के रक्षण में ही हमारे लिये किसी भी प्रकार की उन्नति का सम्भव होता है। (२) वे प्रभु **वाजानाम्**=हमारी शक्तियों के **वृधः**=वर्धन करनेवाले **भुवत्**=हों। शक्ति-वर्धन के द्वारा ही रक्षण होता है। शक्ति ह्रास ही विनाश का मार्ग है। (३) वे प्रभु **नः**=हमारी **इमं हवम्**=इस प्रार्थना को **शृणवत्**=अवश्य सुनें। हमारी प्रार्थना न सुनने योग्य, न समझी जाए। पुरुषार्थ से हम अपने को पात्र बनायें जिससे प्रभु हमारी प्रार्थना को अवश्य पूर्ण करें।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे शरीर-रथ के रक्षक हैं, वे ही हमारी शक्तियों का वर्धन करते हैं।

सूक्त का प्रारम्भ स्पृहणीय बुद्धियों की प्राप्ति की कामना से होता है। (१) इन बुद्धियों से हम सर्वत्र जलवायु में उस प्रभु की महिमा का अनुभव करते हैं, (२) ये प्रभु ही हमारा पोषण व हमारे पर सुखों का वर्षण करते हैं, (३) हमारी बुद्धियों को सिद्ध करते हैं, (४) वे हमारे सच्चे मित्र हैं, (५) हमारा शोधन करते हैं, (६) मलों का अपहरण करते हैं, (७) इस प्रकार हमें शरीर-रथ की धुरा के वहन के योग्य बनाते हैं, (८) वे ही हमारी सब शक्तियों को बढ़ाते हैं, (९) वे प्रभु यजमान=यज्ञशील को ही शक्तिशाली बनाते हैं।

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुन्वन् यजमान'

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम्।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम्॥ १॥

(१) प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि 'वसुक्र ऐन्द्रः' है। उत्तम पदार्थों को निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को 'वसु' कहते हैं, जो इन वसुओं का श्रवण करता है, वह 'वसुक्र' कहलाता है। यह 'ऐन्द्रः' इन्द्र की ओर चलनेवाला होता है। यदि हमारा झुकाव 'इन्द्र'=प्रभु की ओर न रहकर प्रकृति की ओर हो जाए तो हम 'वसुक्र' ही न रहें। प्रकृति में फँसना 'निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों के ह्रास' का कारण होता है। (२) इस वसुक्र से प्रभु कहते हैं कि हे **जरितः**=स्तोतः! **मे**=मेरा **स**=वह **सु**=शोभन **अभिवेग**=मन का प्रबल भाव **असत्**=है **यत्**=कि **सुन्वते**=अपने शरीर में सोम=वीर्य का सम्पादन करनेवाले तथा **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **शिक्षम्**=सब उत्तम वसुओं को दूँ। प्रभु ही सब वसुओं के स्वामी है। ये वसु उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो 'सुन्वन् व यजमान' बनते हैं। 'सुन्वन्' अपने अन्दर शक्ति का सम्पादन करनेवाला है, 'यजमान' लोकहित के लिये यज्ञात्मक कर्मों को करनेवाला है। (३) जहाँ प्रभु 'सुन्वन् यजमान' को सब उत्तम वस्तुएँ प्राप्त कराते हैं वहाँ वे प्रभु कहते हैं कि **अहम्**=मैं **प्रहन्ता**=प्रकर्षेण मारनेवाला **अस्मि**=हूँ। किसको? (क) **अनाशीर्दाम्**=जो इच्छापूर्वक, दिलखोलकर दान नहीं करता। जिसकी देने की वृत्ति नहीं है, देव न होकर जो असुर है, देता नहीं, अपने मुँह में ही डालता है। (ख) **सत्यध्वृतम्**=जो सत्य की हिंसा करता है, अनृत भाषण करता है। (ग) **वृजिनायन्तम्**=(पापं कर्तुम् इच्छन्तम्) जो पाप करने की इच्छा करता है, जो पाप की वृत्तिवाला है, जिसका झुकाव धर्म की ओर न होकर अधर्म की ओर है और जो (घ) **आभुम्**=(आ-भवति) सब चीजों का मालिक होना चाहता है, 'ये भी मुझे मिल जाये, ये भी मुझे मिल जाये' यही जो सदा चाहता रहता है। जो सारी चीजों को व्याप्त करके जबर्दस्त परिग्रही बन जाता है।

भावार्थ—प्रभु 'सुन्वन् यजमान' को सब कुछ देते हैं तथा 'अनाशीर्दा, सत्यध्वृत्, वृजिनायन्, आभु' को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

○ अदेवयु पुरुषों का नाश

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान्।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम्॥ २॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **यत्**=जो **अहम्**=मैं **इत्**=निश्चय से **अदेवयून्**=न देने की वृत्तिवाले पुरुषों को और अतएव आत्मादि होने के कारण **तन्वा शूशुजानान्**=शरीर से खूब फूले हुए हृष्ट-पुष्ट जनों को **युधये संनयानि**=युद्ध के लिये प्राप्त कराता हूँ। इन्हें स्वार्थ-प्रधान वृत्ति के कारण परस्पर लड़नेवाला बना देता हूँ और इन युद्धों में ये परस्पर एक दूसरे का संहार करनेवाले होते हैं। (२) इनके विपरीत जो तू **अमा**=मेरे साथ रहता है, 'ऐन्द्र' बनने का प्रयत्न करता है उस **ते**=तुझे **तुम्रम्**=(strong) बड़े शक्तिशाली व **वृषभम्**=अपनी शक्ति से औरों पर सुखों की वर्षा करनेवाले के रूप में **पचानि**=परिपक्व करता हूँ। तुझे इस प्रकार परिपक्व करता हूँ। तू लोकहित के लिये

सुतं पञ्चदशम्=उत्पन्न किये हुए धन के पन्द्रहवें भाग को **तीव्रम्**=तीव्रता से, प्रबल इच्छा से **निषिञ्चम्**=सिक्त करनेवाला होता है (सिञ्चति इति)। एवं प्रभु-भक्त-प्रभु-प्रवण व्यक्ति बलवान्-बल से औरों को सुखी करनेवाला तथा लोकहित के लिये आय के पन्द्रहवें भाग को निश्चितरूप से देनेवाला होता है।

भावार्थ—'अदेवयु व तन्वाशूशुजान' आपस में लड़ मरते हैं। प्रभु-भक्त बलवान्, परोपकारी व दानी होते हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

भौतिकता व युद्ध

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान्।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति॥ ३॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **अहम्**=मैं **तम्**=उस पुरुष को **न वेद**=नहीं जानता हूँ **यः**=जो **इति ब्रवीति**=यह कहता है कि वह प्रभु **अदेवयून्**=अदेव वृत्तिवाले, न देनेवाले, सारा स्वयं ही खा जानेवाले असुर पुरुषों को **समरणे**=संग्राम में **जघन्वान्**=मारते हैं। अर्थात् लोग समान्यतः इस बात को भूले रहते हैं और उन्मत्त-सी जीवन की अवस्था में खा-पीकर शरीरों को खूब ही पुष्ट करते हैं। (२) परन्तु **यदा**=जब कभी यह व्यक्ति **ऋघावत्**=हिंसावाले, भयङ्कर हिंसा के दृश्यों से युक्त **समरणम्**=युद्ध को **अवाख्यत्**=देखता है, तो भयभीत होकर घबरा उठता है और **आत् इत्**=इसके एकदम बाद **ह**=निश्चय से **मे**=मेरे **वृषभा**=शक्तिशाली कर्मों का **ब्रुवन्ति**=प्रवचन करते हैं, अर्थात् युद्ध के आ जाने पर इन्हें मेरा स्मरण होता है और उस समय ये मेरी स्तुति करते हैं, अपने रक्षण के लिये प्रार्थना करते हैं। यदि इन युद्धों के आ जाने से पहले ही वे मेरा स्मरण करें और अदेवयु पुरुषों की गति का ध्यान करें तो वे अपनी अदेवयु बनने की वृत्ति को दूर करके इन युद्धों से बचे ही रहें।

भावार्थ—हमें इस बात को भूलना न चाहिए कि अदेवयु पुरुषों का अन्त भयङ्कर हिंसा असुर युद्धों में हो जाया करता है।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मघवान् का रक्षण, आयु का परिचय

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन्।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य॥ ४॥

(१) **यद्**=जब **अज्ञातेषु वृजनेषु**=अज्ञात संग्रामों में 'किसका विजय होगा, किसका नहीं' इस बात का जिनमें पता नहीं, ऐसे युद्धों में **आसम्**=मैं होता हूँ, अर्थात् जब इन संग्रामों में युद्ध करते हुए ये लोग मेरा स्मरण करते हैं तो **विश्वे मघवानः**=सब ऐश्वर्यशाली यज्ञशील (मघ-मख) पुरुष **सतः मे**=सर्वत्र वर्तमान मेरे **आसन्**=होते हैं, अर्थात् जो अपने ऐश्वर्यों का विनियोग यज्ञों में करते हैं उनका मैं रक्षण करता हूँ (२) और **क्षेमे**=जगत् के कल्याण के निमित्त **आसन्तम्**=चारों ओर होनेवाले, अर्थात् सर्वत्र अपना पैर फैलानेवाले **आभुम्**=सारे चीजों को प्राप्त करने के प्रयत्नवाले परिग्रही **तम्**=उस पुरुष को **पादगृह्य**=पाओं से पकड़ के **पर्वते प्रक्षिणाम्**=पर्वत पर फेंक देता हूँ, पहुँचा देता हूँ, अर्थात् ऐसे पुरुष को मैं सुदूर विनष्ट कर देता हूँ। (३) युद्ध होता है, और युद्ध में अदेव प्रभु-विरोधी करते हैं (उनके) के पक्ष का विनाश होता

है। इसे प्रभु सुदूर फेंक-सा देते हैं।

भावार्थ—ऐश्वर्यों का यज्ञों में विनियोग करनेवालों का प्रभु रक्षण करते हैं और परिग्रही आसुरी वृत्तिवालों का विनाश। इस प्रकार ही प्रभु संसार का कल्याण करते हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अश्रुत' प्रभु

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात्॥ ५॥

(१) **वृजने**=संग्राम में **माम्**=मुझे **वा उ**=निश्चय से **न वारयन्ते**=कोई भी रोक नहीं पाते। **न**=ना ही **पर्वतासः**=पर्वत मुझे प्रतिबद्ध कर सकते हैं, **यद्**=जब **अहम्**=मैं **मनस्ये**=निश्चय कर लेता हूँ। प्रभु की व्यवस्थाएँ अटल होती हैं, प्रभु के निर्णय रोके नहीं जा सकते। (२) **मम स्वनात्**=मेरे शब्द से **कृधुकर्णः**=अत्यन्त छोटे कानोंवाला, अर्थात् जो एकदम बहरे कानोंवाला है वह भी **भयात**=भयभीत हो उठता है और अपने कार्य में ठीक से लग जाता है। **एवा इत्**=इसी ही प्रकार **अनु द्यून्**=प्रतिदिन **किरणः**=प्रकाश को चारों ओर फेंकनेवाला यह सूर्य भी **समेजात्**=सम्यक् काँप उठता है और सम्यक् गति करता है एवं यह जड़ जगत् भी प्रभु के भय से पूर्ण व्यवस्था में चल रहा है। चेतन जगत् भी प्रभु-भय से व्यवस्था में चलता है तो कल्याण भागी होता है, व्यवस्था को तोड़ते ही उसे प्रभु की दण्डव्यवस्था में पिसना पड़ता है। 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' यह उपनिषद् वाक्य इसी भाव को व्यक्त कर रहा है।

भावार्थ—प्रभु की व्यवस्था को कोई रोक नहीं सकता। बहरे से बहरे को प्रभु की व्यवस्था सुननी होती है, सूर्यादि सब पिण्ड प्रभु भय से ही अपने मार्ग का आक्रमण कर रहे हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वज्रपतन

दर्शन्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान्।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः॥ ६॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **नु**=निश्चय से ही **अत्र**=यहाँ इस मानव जीवन में मैं **दर्शम्**=देखता हूँ। उन लोगों को जो **शृतपान्**=भट्ठियों में पकायी गयी शराब को पीनेवाले हैं (शृ पाके), **अनिन्द्रान्**=जो सर्वशक्तिमान् परमैश्वर्यशाली प्रभु के स्मरण से रहित हैं, **बाहुक्षदः**=अपनी भुजशक्ति से भले लोगों को टुकड़े-टुकड़े करने में लगे हुए हैं, **शरवे**=हिंसा के लिये **पत्यमानान्**=जो गति कर रहे हैं, जिनकी क्रियाएँ औरों के ध्वंस के लिये ही होती हैं। **वा**=या **ये**=जो **घृषुम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले **सखायम्**=मित्रभूत मुझे **निनिदुः**=निन्दित करते हैं, उपासना के स्थान में जो मेरा निरादर करते हैं। (२) इस प्रकार के **एषु अधि**=इन लोगों के ऊपर **पवयः**=मेरे वज्ररूप अस्त्र **ववृत्युः**=पड़ते हैं। इनका उन वज्रों व अशनिपातों से संहार हो जाता है, यहाँ 'वज्रपतन' प्रतीक है आधिदैविक आपत्तियों का। इन पर आधिदैविक आपत्तियाँ आती हैं और आधिदैविक आपत्तियाँ आकर इनका अन्त कर देती हैं। (३) यहाँ नाशक्रम इस प्रकार संकलित हो रहा है—(क) शराब पीने लगना, (ख) प्रभु को भूल जाना, (ग) अपनी शक्ति का प्रयोग सज्जनों के पीड़ित करने में करना और (घ) हिंसा प्रधान गतिवाला होना। (ङ) अन्ततः प्रभु की निन्दा करने लगना।

भावार्थ—शराब मनुष्य को प्रभु से दूर ले जाती है और हिंसक वृत्ति का बना देती है।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शत्रु-विदारक व्यापक प्रभु

अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड्दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष॥ ७॥

(१) 'वसुक्र' इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है कि हे इन्द्र! **अभूः**=आप ही प्रादुर्भूत होते हो। कण-कण में आपकी ही महिमा दृष्टिगोचर होती है। **वा**=निश्चय से **औक्षीः**=आप ही सब पर सुखों का सेचन करते हो आप ही **आयुः**=गतिशील पुरुष को **वि आनट्**=व्याप्त करते हो, गतिशील पुरुष के हृदय में आपका प्रादुर्भाव होता है। (२) **पूर्वः**=आगे होनेवाले आप **नु**=शीघ्रता से **दर्षत्**=शत्रुओं का विदारण करते हैं और **अपरः**=पीछे होनेवाले आप भी **नु**=शीघ्र ही **दर्षत्**=शत्रुओं का विदारण करते हैं। (३) **द्वे**=ये दोनों **पवस्ते**=महत्त्व से सबके अभिभव के लिये जानेवाले, अर्थात् सब से अधिक महत्त्ववाले द्युलोक व पृथ्वीलोक **तं**=उस परमात्मा को **न परिभूतः**=घेर नहीं सकते। परमात्मा इनकी परिधि में नहीं आ सकते, ये द्युलोक व पृथ्वीलोक उस प्रभु के एकदेश में हैं, ये प्रभु को व्याप्त नहीं कर पाते। उस प्रभु को **यः**=जो **अस्य रजसः**=इस लोक रञ्जित आकाश से **पारे**=पार भी **विवेष**=व्याप्त हो रहे हैं। जहाँ तक लोक-लोकान्तर हैं वहाँ तक आकाश 'रजः' कहलाता है, उससे परे 'पर व्योम'। यह सब रजस् प्रभु के एकदेश में है, प्रभु परव्योम को भी व्याप्त किये हुए हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड तो उस प्रभु के एकदेश में ही है। 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गौवें ग्वाला व स्वामी

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते॥ ८॥

(१) **गावः**=इन्द्रियरूपी गौवें **प्रयुताः**=इस शरीररूप रथ में प्रकर्षेण युक्त हुई-हुई **यवम्**=विषयरूप यव को **अक्षन्**=(भक्षयन्ति) खाती हैं, विषयों का ग्रहण करती हैं। इन्द्रियाँ विषयों में जाती हैं, इसीलिए प्रभु ने इनका निर्माण किया है। (२) **ताः**=इन इन्द्रियरूप गौवों को **सहगोपाः**=ग्वाले सहित, मन ही इनका ग्वाला है, मन इनके साथ विविध विषयों में भटकता है, **चरन्तीः**=विषयों में विचरण करती हुई इन इन्द्रियों को **अर्यः**=इनका स्वामी मैं **अपश्यम्**=इन्हें देखता हूँ (दृश्=look after) इनका रक्षण करता हूँ। (३) मैं इन इन्द्रियों का स्वामी हूँ। इन्द्रियाँ गौवें हैं, तो मन ग्वाला और आत्मा स्वामी। यहाँ स्वामी ग्वाले सहित गौवों का ध्यान करता है। आत्मा मन सहित इन्द्रियों का निरीक्षण करता है, यही आत्मालोचन कहलाता है। ये इन्द्रियाँ **हवाः**=आह्वान के योग्य हैं। जैसे गौवों को दोहन के लिये बुलाया जाता है इसी प्रकार इन इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति व कर्मसिद्धि के लिये आत्मा आहूत करता है और ये **इत्**=निश्चय से **अर्यः अभितः**=(अर्यम्) स्वामी के चारों ओर **समायन्**=उपस्थित होती हैं। (४) इन इन्द्रियरूप गौवों के समीप आ जाने पर **स्वपतिः**=अपना पूर्ण प्रभुत्व करनेवाला यह आत्मा **आसु**=इन गौवों में **कियत्**=कितने ही, अर्थात् बहुत अधिक ज्ञान व कर्मरूप दुग्ध को **छन्दयाते**=चाहता है। वह इन्हें खूब ही ज्ञान की प्राप्ति में व यज्ञादि की सिद्धि में व्यापृत रखता है।

भावार्थ—इन्द्रियाँ गौवें हैं, मन ग्वाला व आत्मा स्वामी है। जब आत्मा इन्हें अपने वश में रखता है तो प्रचुर ज्ञान व कर्मरूप दुग्ध को ये देनेवाली होती हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

योगी का विशाल परिवार

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥ ९ ॥

(१) **जनानाम्**=लोगों में **अहम्**=मैं **यवादः**=यव का, जौ का अदन करनेवाला हूँ। यह जौ मेरी मनोवृत्ति को अशुभ से अमिश्रित व शुभ से मिश्रित करता है, इसी से तो इसका नाम 'यव' है 'यु मिश्रणामिश्रणयोः'। (२) इस प्रकार वृत्ति के शुभ होने से **वयम्**=हम उस **अज्रे अन्तः**=इस विशाल वसुधा के प्रांगण में **यद्**=जो **यवसादः**=घास को खानेवाले पशु हैं उनके भी **सम्**=(Together) साथ एक स्थान में एकत्रित हैं, अर्थात् वे भी मेरे परिवार में शामिल हो गये हैं और इस प्रकार मैं 'अहं' न रह कर 'वयं' हो गया हूँ। (३) **अत्रा**=इस प्रकार यहाँ मानव जीवन में **युक्तः**=योगयुक्त हुआ-हुआ पुरुष सबके साथ एक हुआ-हुआ पुरुष एकत्व का दर्शन करनेवाला पुरुष **अवसातारम्**=जन्म-मरण के चक्र के अन्त के करनेवाले को **इच्छात्**=चाहे। इसकी यह प्रबल कामना हो कि प्रभु मुझे जन्म-मरण चक्र से मुक्त करें। इस मुक्ति के लिये ही युक्त होना आवश्यक है। (४) **अथ उ**=और यह युक्त पुरुष निश्चय से **वन्वान्**=इन्द्रियों व मन का विजय (वन्=win) करता हुआ **अयुक्तम्**=अयोगयुक्त पुरुष को उपदेश व प्रेरणा के द्वारा **युनजत्**=योग से युक्त करें। योगयुक्त होने से ही मानव का कल्याण सिद्ध होता है। यह योगी अकेला ही योग व समाधि का आनन्द लेने की अपेक्षा अपने विशाल परिवार के अन्य व्यक्तियों को भी योगमार्ग पर जाने के लिये यत्न करता है।

भावार्थ—योगी वह है जिसने संसार को अपने साथ युक्त किया है। यह सभी को योगी बनाने का यत्न करता है।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

योग व भोग

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥ १० ॥

(१) **अत्र इत् उ**=यहाँ योग के जीवन में निश्चय से तू **मे उक्तम्**=मेरे इस कथन को **सत्यं मंससे**=सत्य मानता है **यत्**=कि **द्विपात् च चतुष्पात् च**=दो पाँववाले और चारपावों वाले सभी को **संसृजानि**=मैं ही पैदा करता हूँ। इस प्रकार ये सारे प्राणी तेरे दृष्टिकोण में एक प्रभु के पुत्र होने से एक ही परिवार के हैं। तू इनके साथ अपना एकत्व देखता है। (२) ऐसा न करके, अर्थात् योगमार्ग पर न चल करके **यः**=जो भोगमार्ग पर चलता है, वह **स्त्रीभिः**=स्त्रियों के हेतु से, अर्थात् सांसारिक विलास की खातिर **अत्र**=यहाँ मानव जीवन में **वृषणं**=उस शक्तिशाली प्रभु से **पृतन्यात्**= लड़ाई ठान लेता है, अर्थात् प्रभु का कभी भी ध्यान नहीं करता, उसे प्रभु ध्यान की प्रवृत्ति ही नहीं होती, वह प्रभु ध्यान के दो मुख्य समयों में प्रातःकाल तो निद्रा देवी की गोद में होता है और सायं किसी क्लब में। इस प्रकार उसे प्रभु ध्यान का अवसर ही नहीं होता। ऐसा लगता है कि ध्यान से इसकी लड़ाई ही हो। (३) यह व्यक्ति **अयुद्धः**=काम, क्रोध, लोभ आदि से

चलनेवाले सात्त्विक संग्राम को प्रारम्भ ही नहीं करता। इसके सुधार के लिये प्रभु कहते हैं कि मैं **अस्य**=इसके **वेदः**=धन को इससे **विभजानि**=विभक्त कर देता हूँ, पृथक् कर देता हूँ। धन के आधिक्य ने ही तो इसे भोगमार्ग का पथिक बना दिया था, धन से पृथक् करके प्रभु उस कारण को ही दूर करना आवश्यक समझते हैं जो इसे भोगासक्त किये हुए था।

भावार्थ—योगी संसार में एकत्व देखता है। भोगी प्रभु को भूल जाता है। प्रभु इसके धन को नष्ट करके इसे ठीक मार्ग पर आ जाने का अवसर प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रकृति वहन व प्रकृति परित्याग

यस्या॑न॒क्षा दु॑हि॒ता जात्वास॒ कस्तां वि॒द्वाँ अ॒भि म॑न्याते अ॒न्धाम्।
क॒त॒रो मे॒निं प्रति॒ तं मु॑चाते॒ य ईं॒ वहा॑ते॒ य ईं॑ वा वरे॒यात्॥ ११॥

(१) प्रकृति जड़ है, ज्ञानशून्य है। प्रस्तुत मन्त्र में इसीलिए इसे 'अनक्षा' कहा गया है, यह **अनक्षा**=जड़ प्रकृति **यस्य**=जिसकी **दुहिता**=पूरक (दुह प्रपूरणे) आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाली **जातु आस**=कभी थी और इसीलिए **कः**=आनन्दमय जीवनवाला **विद्वान्**=समझदार पुरुष **ताम्**=उस प्रकृति को **अन्धाम्**=भोजन (=पालन करनेवाली) **अभिमन्याते**=मानता है। वस्तुतः 'जब तक प्रकृति को हम शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन और उन साधनों को प्राप्त कराके अपना पालन करनेवाली समझेंगे तब तक' तो यह ठीक ही है यह हमें कुचलनेवाली तभी बनती है जब कि हम इसे भोग्य वस्तु समझकर, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नहीं, अपितु मौज के लिए समझने लगते हैं। (२) यदि प्रकृति मेरे लिये दुहिता ही बनी रहती है तो **कतरः**=वह अत्यन्त आनन्दमय प्रभु **तं प्रति**=उस प्रकृति में न फँसनेवाले पुरुष के प्रति **मेनिम्**=वज्र को, क्रियाशीलता को **मुचाते**=प्राप्त कराता है अथवा मेनिम्=आदर को प्राप्त कराता है। उसके प्रति आदर को प्राप्त कराता है **यः**=जो **ईम्**=निश्चय से **वहाते**=इस प्रकृति का वहन करता है **वा**=परन्तु साथ ही **यः**=जो **ईम्**=निश्चय से **वरेयात्**=इसका निबारण करता है। प्रकृति का वहन करता, अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों का शरीर यन्त्र के चालन के लिये प्रयोग करना और प्रकृति का निवारण करना, अर्थात् इसके अन्दर फँस न जाना। इस प्रकार प्रकृति के अन्दर रहकर भी उसमें न फँसता हुआ व्यक्ति प्रभु से आदर को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग करें और उनमें आसक्त होकर उनका अतिभोग न कर बैठें।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मित्र न कि योषा

किय॑ती॒ योषा॑ मर्य॒तो व॑धू॒योः परि॑प्रीता॒ पन्य॑सा॒ वार्ये॑ण।
भ॒द्रा व॒धूर्भ॑वति॒ यत्सु॒पेशाः॑ स्व॒यं सा मि॒त्रं व॑नुते॒ जने॑ चित्॥ १२॥

(१) **मर्यतः**=प्रकृति के पीछे मरनेवाले, उसकी प्राप्ति के लिये अत्यन्त लालायित, **वधूयोः**=प्रकृति को अपनी वधू बनाने की कामनावाले के **वार्येण पन्यसा**=वरणीय सुन्दर स्तोत्र से यह प्रकृति **कियती परिप्रीता**=कितनी प्रसन्न हो सकती है? अर्थात् यदि हम इन प्राकृतिक भोगों के पीछे दौड़ते हैं तो ये प्राकृतिक भोग हमारा देर तक कल्याण नहीं कर सकते। प्रकृति के पीछे मरनेवाले को यह प्रकृति देर तक प्रसन्न नहीं कर सकती। (२) यह तो तभी **भद्रा**=कल्याणकर तथा

वधूः=(वहति कार्यधुरं) व हमारे कार्यों का वहन करनेवाली **भवति**=होती है **यत्**=जब कि **सुपेशाः**=सुन्दर आकृति को जन्म देनेवाली **सा**=वह प्रकृति **जने चित्**=लोगों में निश्चय से **स्वयम्**=अपने आप **मित्रं वनुते**=मित्र को सम्भक्त करती है, प्राप्त होती है। हम प्रकृति के पीछे न मरें, प्रकृति वरण के लिये लालायित न हों, प्रकृति ही हमारा वरण करे। जब प्रकृति हमारा वरण करती है तो यह हमारे कल्याण के लिये होती है और हमारे कार्यों की पूर्ति के लिये होती है, हमारे जीवनों को यह सुन्दर आकार देती है (भद्रा-वधू-सुपेशाः)।

भावार्थ—प्रकृति को हम अपना मित्र बनायें, इसे वधू बनाने के लिये लालायित न हों। यह देर तक हमें सन्तुष्ट न कर सकेगी।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नति से उन्नति (नम्रत्वेनोन्नमन्तः)

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम्॥ १३॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रकृति को मित्र बनानेवाला व्यक्ति **पत्तः**=(पद् गतौ) गति के दृष्टिकोण से, अर्थात् शरीर यात्रा चलती रहे इसीलिए **जगार**=भोजन करता है। (२) यह **प्रत्यञ्चम्**=प्रत्येक व्यक्ति की ओर जानेवाले भोजन को **अत्ति**=खाता है, अर्थात् यज्ञ में आहुति देकर और इस यज्ञ के द्वारा सभी को कुछ भोजनांश प्राप्त कराके ही भोजन को करता है। अकेला न खाकर सदा यज्ञशेष का सेवन करता है। (२) **वरूथम्**=अपने धन को (wealth) **शीर्ष्णा शिरः**=(per head) प्रति व्यक्ति के लिये **प्रतिदधौ**=धारण करता है। यह राजा को कर के रूप में धन देता है, राजा उस धन का विनियोग सारी प्रजा के हित के लिये करता है। (३) **उपसि आसीनः**=उपासना में स्थित हुआ-हुआ यह व्यक्ति **ऊर्ध्वाम्**=इस (get the upper hand) प्रबल हुई-हुई प्रकृति को **क्षिणाति**=(हिनस्ति) नष्ट करता है, अर्थात् उपासना के द्वारा यह इस प्रकृति को अपने पर प्रबल नहीं होने देता। (४) **न्यङ्**=(नि अञ्च्) सदा नम्रता से गति करता हुआ यह **उत्तानां भूमिं अन्वेति**=उन्नत प्रदेश को, उन्नत स्थिति को प्राप्त करता है। नम्रता से चलता हुआ यह सदा उन्नत होता जाता है। भर्तृहरि के शब्दों में 'नम्रत्वेनोन्नमन्तः' ये लोग नम्रता से उन्नत होते हैं।

भावार्थ—हम यज्ञशेष को खानेवाले बनें, शरीर यात्रा को चलाने के लिये हमारा भोजन हो, प्रकृति को हम अपने पर प्रबल न होने दें और नम्रता से चलते हुए उन्नति को प्राप्त हों।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उन्नति का स्वरूप

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः॥ १४॥

(१) गत मन्त्र की समाप्ति पर कहा था कि 'उत्तान भूमि को प्राप्त करता है'=उन्नत स्थिति को प्राप्त करता है। उस उन्नत स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि—(क) **बृहन्**=(बृहि वृद्धौ) यह वृद्धि को प्राप्त होनेवाला होता है प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करता है, शरीर के अंग-प्रत्यंगों की शक्ति को बढ़ाता है, (ख) **अच्छायः**=(तमो वर्जितः सा०) अन्धकार से रहित जीवनवाला होता है अथवा 'छादेर्भेदने' भेदन की वृत्तिवाला नहीं होता, तोड़-फोड़ के ही काम नहीं करता

रहता, सदा आलोचक न बना रहकर स्वयं कार्य में प्रवृत्त होता है। (ग) **अपलाशः**=(अ+पलाश=unkind, cruel) यह क्रूर नहीं होता। सो यह 'अ+पल+आश' मांस भोजन में प्रवृत्त नहीं होता। अथवा 'अ+पर+आश'=दूसरों के भोजन को खानेवाला नहीं होता, परपिण्डोपजीवी नहीं होता। समाज में parasite बनकर समाज शरीर को हानि पहुँचानेवाला नहीं होता। (घ) **अर्वा**=(going, moving, running) गतिशील होता है, (अर्व् To kill) गतिशीलता के द्वारा बुराइयों का संहार करनेवाला होता है। (ङ) **माता**=निर्माण करनेवाला होकर **तस्थौ**=जीवन में स्थित होता है। सदा निर्माणात्मक कार्यों में रुचिवाला होता है। (च) **विषितः**=(अबद्धः) अनासक्त होकर, शरीर रक्षा के लिये ही **अत्ति**=सांसारिक भोग्य पदार्थों का ग्रहण करता है। कभी स्वाद के लिये नहीं खाता। (छ) **गर्भः**=(गिरति अनर्थान् नि० १०।२३) अनर्थों को नष्ट करनेवाला होता है, वस्तुतः अनासक्तभाव से संसार में चलने का यह स्वाभाविक परिणाम है कि अवाञ्छनीय रोगादि उत्पन्न न हों। (२) **अन्यस्याः**=(strange) इस असाधारण वेदवाणी के (अन्या=Not drying up) कभी न सूखनेवाली सरस्वती नदी रूप इस वाणी के **वत्सं** (वदति)=उच्चारण करनेवाले को **रिहती**=चाटती हुई, जिस प्रकार गौ चाटकर बछड़े के शरीर को स्वच्छ कर देती है, इसी प्रकार यह वेदवाणी रूप गौ भी अपने वत्स को चाटकर शुद्ध बना देती है। **मिमाय**=यह वेदवाणी उसके जीवन का निर्माण करती है (निर्मिमीते)। (३) **धेनुः**=यह ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणीरूप गौ **कया भुवा**=बड़े आनन्दमय भाव से **ऊधः निदधे**=ज्ञानकोश को इस वत्स के लिये धारण करती है। ऊधस्=दुग्धकोश होता है, यहाँ वेदवाणीरूप गौ का ऊधस् उसका ज्ञानकोश है। यह वेदवाणी प्रेम से इसे अपने वत्स को प्राप्त कराती है। क्रुद्ध हुई-हुई माता बच्चे को दूध पिलाती है तो दूध उतना गुणकारी नहीं होता। सो यह वेदमाता तो आनन्दमय भाव से युक्त हुई-हुई ही अपने प्रिय को दूध पिलाती है। यह दूध उस 'वत्स' के जीवन का निर्माण करता है।

भावार्थ—वेदवाणी अपने ज्ञानदुग्ध के द्वारा हमारे जीवन का सुन्दरता से पोषण करे।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दशम दशक्त से पूर्व ही

स॒प्त वी॒रासो॑ अध॒रादुदा॑य॒न्नष्टोत्त॒रात्ता॒त्सम॑जग्मिर॒न्ते।
नव॑ प॒श्चाता॑त्स्थि॒विम॑न्त आय॒न्दश॒ प्राक्सानु॒ वि ति॑र॒न्त्यश्नः॑ ॥ १५ ॥

(१) **सप्त**=सात **वीरासः**=(वि+ईर) विशिष्टरूप से शत्रुओं को कम्पित करनेवाले मरुत्, अर्थात् प्राणा **अधरात्**=नीचे से लेकर **उत् आयन्**=ऊपर तक आते हैं, ये प्राण, प्राणायाम के द्वारा सिद्धि के होने पर शरीर को नीरोग बनाते हैं, जरा ऊपर आकर मन को निर्मल करते हैं, कुछ और ऊपर उठकर ये बुद्धि को बड़ा तीव्र बना देते हैं। इस प्रकार ये प्राण मनुष्य को भी ऊपर उठानेवाले होते हैं। इस प्राण साधना के द्वारा योगदर्शन के शब्दों में 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'=प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है। 'धारणासु च योग्यता मनसः' मन की धारणाओं में योग्यता उत्पन्न होती है, मन को देश-विशेष में बाँधना सुगम हो जाता है। (२) इस प्राण साधना को ही परिणाम होता है कि **ते अष्ट**=शरीर में मेरुदण्ड के मूल से शिखर तक रहनेवाले वे आठ चक्र **उत्तरातात्**=ऊपर **समजग्मिरन्**=संगत होते हैं। मेरुदण्ड के मूल में मूलाधार चक्र है, शिखर पर सहस्रार चक्र। मूलाधार चक्र में ही कुण्डलिनी शक्ति का निवास है। यह प्राणों की उष्णता से कुण्डल को तोड़कर ऊपर उठती है और सुषुम्णा नाड़ी में से होती हुई मेरुपर्वत के शिखर पर स्थित सहस्रार चक्र के स्थान तक पहुँचती है। (३) **नव**=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ और वाणी व जिह्वा

के दोनों ओर होने से ये नौ की नौ इन्द्रियाँ, विषयों से व्यावृत्त होकर **स्थिविमन्तः**='स्थानमन्तः' विषयों में न भटकने से स्थित हुई-हुई **पश्चात्तात्**=पीछे **आयन्**=आ जाती हैं, यही इन्द्रियों का 'प्रत्याहार' कहलाता है। (४) इस प्रकार प्रत्याहार की साधना करके **दश-प्राक्**=दसवें दशक से पूर्व ही (दशभ्यः प्राक्), अर्थात् मरण से पूर्व ही 'प्राक् शरीर विमोक्षणात्' **अश्नः**=(अशनवत्) बड़ा खानेवाले, अर्थात् न रजनेवाले इस काम के **सानु**=शिखर को **वितिरन्ति**=नष्ट कर डालते हैं। शरीर मोक्ष से पूर्व ही काम के वेग को जीतना आवश्यक है। यदि हम इसे नहीं जीतते तो यह हमारा नाश कर देता है। इसका नाश हमारे जीवन का कारण बनता है। काम के सिर को कुचल देना ही, इसे दवा देना ही, वश में कर लेना ही इसके शिखर का नाश है।

भावार्थ—सप्त प्राण, अष्ट चक्र व नव द्वार हमारे स्वस्थ व स्वाधीन हों और हम मृत्यु से ही पूर्व ही काम-क्रोधोद्भव वेग को जीतनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जगतः पितरौ

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥

(१) प्रस्तुत मन्त्र में प्रभु पिता है, प्रकृति माता है। संसार में सब व्यक्ति **क्रतवे**=यज्ञों के लिये तथा **पार्याय**=कर्मों के पार जाने के लिये, अर्थात् उन यज्ञादि कर्मों में सफलता के लिये **तं हिन्वन्ति**=उस प्रभु को प्राप्त करते हैं जो कि **दशानाम्**=दसों इन्द्रियों के **एकम्**=अद्वितीय **कपिलम्**=(कवृवर्णे, कपिं लाति) रंग के भरनेवाले, अर्थात् उस-उस इन्द्रिय को अमुक-अमुक शक्ति प्राप्त करानेवाले अथवा (कम्प् गतौ) प्रत्येक इन्द्रिय को गतिशील बनानेवाले, अपने-अपने कार्य में समर्थ करनेवाले हैं और **सम् आनम्**=सम्यक्तया प्राणशक्ति का संचार करनेवाले हैं। हृदयस्थ रूपेण प्रभु अपने पुत्र जीव को सदा उत्साह युक्त मनवाला करते हैं और उसे सोत्साह बनाकर प्रत्येक कर्म में सफल करते हैं। 'यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्' इत्यादि केनोपनिषद् के वाक्यों से यह स्पष्ट है कि प्रभु ही इन्द्रियों को कार्य समर्थ बनाते हैं। (२) इस प्रभु से उत्साह व शक्ति को प्राप्त करके **गर्भम्**=(गिरति अनर्थम्) अनर्थों के समाप्त कर देनेवाले, विघ्न-बाधाओं से न घबराकर उन्हें पार कर जानेवाले और अतएव **वक्षणासु**=(वक्ष To grow) आर्थिक, शारीरिक, मानस व बौद्ध सभी प्रकार की उन्नतियों में **सुधितम्**=उत्तमता से स्थापित, ऐसा होते हुए भी **अवेनन्तम्**=इन सांसारिक वस्तुओं की कामना न करते हुए (अकामयमानम्) अथवा 'अ'=प्रभु की ही कामनावाले पुरुष का **माता**=यह निर्माण करनेवाली प्रकृति माता **तुषयन्ती**=जीव की उन्नति से अन्दर ही अन्दर सन्तोष का अनुभव करती हुई **बिभर्ति**=उसका भरण व पोषण करती है। प्रकृति उसे किसी आवश्यक वस्तु की कमी नहीं रहने देती। इन वस्तुओं के ठीक से प्राप्त होते रहने पर ही उन्नति स्थिर रहती है। प्रभु उत्साह देकर मन को उन्नत करते थे तो प्रकृति सब आवश्यक खान-पान का सामान प्राप्त कराके उसके शरीर को पुष्ट करती है और जीव को उन्नत होते हुए देखकर सन्तुष्ट होती है।

भावार्थ—प्रभु हमारे पिता हैं, वे हमारे में उत्साह का संचार करते हैं। प्रकृति माता है, वह हमारे खान-पान का पूरा ध्यान करती है।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पीवान् मेष का पचन

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥

(१) १५वें मन्त्र में वर्णित **वीरा**=सात प्राण मनुष्य को **पीवानम्**=(stout and strong) अत्यन्त सुदृढ़ शरीरवाला तथा **मेषम्**=(मिष्) औरों पर सुखों की वर्षा करनेवाला **अपचन्त**=बनाते हैं। प्राण इसके जीवन का परिपाक इस रूप में करते हैं कि यह सशक्त शरीरवाला बनता है और अपनी शक्ति के द्वारा औरों के कष्टों का निवारण करके उनपर सुखों की वर्षा करता है। (२) **न्युप्ताः**=(निक्षिप्ताः) विषयों से व्यावृत्त होकर मन में ही क्षिप्त हुई-हुई अतएव **अक्षाः**=स्थिर इन्द्रियाँ **दीवे**=द्योतन व प्रकाशन की क्रिया में **अनु आसन्**=अनुकूल होती हैं। जब तक इन्द्रियाँ विषयों में फँसी होती हैं तब तक अन्तःप्रकाश का सम्भव ही नहीं होता। विषयों से ये आवृत्त हुई और अन्दर स्थिर हुई और अन्तःप्रकाश चमक उठा। स्थिर इन्द्रियोंवाला पुरुष ही प्रभु के प्रकाश को देखता है। (३) **द्वा**=मस्तिष्क व हृदय ये दोनों मिलकर 'मूर्धानमस्य संसीव्य अथर्वा हृदयं च यत्', **अप्सु अन्तः**=सदा कर्मों में रहते हुए **पवित्रवन्ता**=मानस पवित्रतावाले तथा **पुनन्ता**=शरीर को रोगों से रहित व शुद्ध करते हुए **बृहतीं धनुम्**=वृद्धि के कारणभूत धनुष को **चरतः**=बनाते हैं। इस धनुष का एक सिरा मस्तिष्क है और दूसरा सिरा हृदय। धनुष् की इन दोनों कोटियों को परस्पर गुणित कर देने पर ही यह धनुष पूर्ण होता है और कार्य को करने में समर्थ होता है। विद्या व श्रद्धा रूप कोटियोंवाले इस धनुष से चलाया हुआ कर्मरूप तीर अत्यन्त शक्तिशाली होता है। ये कर्म मनुष्य की वृद्धि के कारण बनते हैं। धनुष शोभा के लिये ही नहीं है यह कर्मरूप तीर को चलाने के लिये हैं। ज्ञान व श्रद्धा को प्राप्त करके हमें कर्मशील बनना है। अकर्मण्यता से शरीर व मन के मैलों के फिर से आ जाने का खतरा है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर शक्ति-सम्पन्न व परहित-साधक बनाती है। स्थिर हुई-हुई इन्द्रियाँ अन्तःप्रकाश की अनुकूलता का कारण होती हैं। श्रद्धा व विद्या मिलकर उस धनुष को बनाते हैं जो हमारी वृद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मामनुस्मर युध्य च (अमांसभोजन)

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः।
अयं मे देवः सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥ १८ ॥

(१) **वि क्रोशनासः**=विशिष्टरूप से उस प्रभु का आह्वान करनेवाले और **विष्वञ्चः**=विविध उत्तम कर्मों में गतिवाले व्यक्ति ही **आयन्**=प्रभु के समीप आते हैं। इस संसार में जीवन यात्रा को उत्तमता से चलाने का मार्ग यही है कि हम प्रभु का स्मरण करें (वि क्रोशानसः) और उत्तम कर्मों में लगे रहें (विश्वञ्चः)। प्रभु के स्मरणपूर्वक कार्यों को करना कर्मों की पवित्रता को बनाए रखता है। यह प्रभुस्मरण कर्म करने की शक्ति भी देता है। वस्तुतः अपने जीवन को परिपक्व करने के लिये यही प्रकार है कि 'प्रभुस्मरण पूर्वक कर्मों में लगे रहा जाये'। (२) संसार में उत्पन्न हुए-हुए व्यक्तियों में से **नेमः**=आधे ही **पचाति**=अपने जीवन को परिपक्व करते हैं। कुछ ही व्यक्तियों को जीवन के निर्माण का ध्यान आता है। संसार के विषय कुछ ऐसा विचित्र आकर्षण रखते हैं कि मनुष्य को अपने जीवन की साधना का ध्यान ही नहीं आता। वे विषयों में ही फँसा रह जाता

है। **अर्धः पक्षत्**=आधे लोग अपना परिपाक करते हैं। वे विषय-वासनाओं से अपने जीवन को सुरक्षित रखते हुए अपने परिपाक के लिये यत्नशील होते हैं। (३) इस जीवन में ठीक परिपाक करने के लिये **अयम्**=इस **सविता देवः**=प्रेरणा देनेवाले दिव्यगुणों के पुञ्ज प्रभु ने **तत् आह**=यह बात कही है कि **द्रु-अन्नः**=(द्रु=tree) वानस्पतिक भोजनवाला अथवा **सर्पिरन्नः**=गोघृत आदि का भोजन करनेवाला ही **इत्**=निश्चय से **मे वनवत्**=मेरा उपासन करता है। मांसाहारी प्रभु का उपासक नहीं हो सकता, मांसाहारी अपने मांस के पोषण का ही ध्यान करता है, वह प्रभु की ओर झुकाववाला नहीं हो सकता। प्रभु-भक्त सभी प्राणियों को प्रभु पुत्र समझने के कारण भी उनमें बन्धुत्व का अनुभव करता है और उसके लिये मांस के खाने का सम्भव नहीं रहता। संक्षेप में, जीवन के ठीक परिपाक के लिये मांसाहार अनुकूल नहीं है।

भावार्थ—हम प्रभु स्मरण के साथ अपने विविध कर्त्तव्यों के पालन में लगे रहें। वानस्पति भोजन को अपनाकर अपने जीवन का ठीक से परिपाक करें।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सद्गृहस्थ का धारक प्रभु

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्।
सिषक्त्यर्यः प्रयुगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान्॥ १९॥

(१) **ग्रामं वहमानम्**=प्राणि समूह को धारण करनेवाले व उन्नतिपथ पर आगे ले चलनेवाले प्रभु को **आरात्**=अपने समीप ही, अपने अन्दर ही **अपश्यम्**=देखता हूँ। वे प्रभु अपनी इस वहन क्रिया में **अचक्रया**=बिना किसी चक्रवाली **स्वधया**=अपनी धारण शक्ति से ही **वर्तमानम्**=प्रवृत्त हैं। प्रभु को किन्हीं सवारियों की आवश्यकता हो, सो बात नहीं है। (२) वह उत्पन्न जगत् का **अर्यः**=स्वामी प्रभु **जनानाम्**=लोगों के **युगा**=युगों को, अर्थात् पति-पत्नी रूप द्वन्द्व को **प्रसिषक्ति**=प्रकर्षेण प्राप्त होता है। जो भी लोग गृहस्थ के भार को पूर्ण कर्त्तव्यभावना के साथ उठाते हैं उन्हें प्रभु का साहाय्य सदा प्राप्त होता है। 'दुःखमित्येव यत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत्' इन शब्दों के अनुसार जो व्यक्ति 'कौन इतना बोझ उठायेगा' इस विचार से घबराकर गृहस्थ होने से भागते हैं, वे प्रभु के प्रिय नहीं होते। (३) वे प्रभु **शिश्ना**=भोग प्रधान जीवनवाले अथवा औरों की हिंसा करनेवाले लोगों को **सद्यः**=शीघ्र ही **प्रमिनानः**=हिंसित करते हैं। प्रभु की रक्षा के पात्र वे ही होते हैं जो भोग प्रधान जीवनवाले नहीं तथा जो औरों की हिंसा करनेवाले नहीं। (४) ये प्रभु **नवीयान्**=अतिशयेन स्तुति के योग्य हैं (नु स्तुतौ)। इनका स्तवन हमें जीवन मार्ग का प्रदर्शन कराता है।

भावार्थ—प्रभु ही सारे ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं। वे सद्गृहस्थों को प्राप्त होते हैं और विलासी पुरुषों की हिंसा करते हैं। इस प्रभु का स्तवन हमारे सामने एक लक्ष्य-दृष्टि पैदा करता है और हम ब्रह्म जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समुद्र जल-सूर्य व मेघ में प्रभु-दर्शन

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान्॥ २०॥

(१) **एतौ**=ये **मे**=मेरी **गावौ**=(गावः इन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप दो गौवों **प्रमरस्य**=शत्रुओं को प्रकर्षेण नष्ट करनेवाले इस प्रभु से **युक्तौ**=शरीर-शकट के अन्दर जोती गयी हैं। प्रभु

ने मेरे इस शरीर-शकट को सुचारुरूपेण चलाने के लिये इसमें ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप दो बैल (=गावौ) जोते हैं। प्रभु ने ये इन्द्रियाँ दी हैं जिससे हम जीवन-यात्रा में आगे और आगे चल सकें। (२) **मा उ सु प्रसेधीः**=हे प्रभो! आप इनको मेरे इस-रथ से (मा अपगमय) अलग न करिये। ये इसमें ठीक से जुती ही रहें। इनका कार्य ठीक प्रकार से चलता रहे। इन इन्द्रियों (ख) के ठीक (सु) होने को ही तो 'सुख' कहते हैं, इनका विकृत (दुः) होना ही दुःख है। इस प्रकार इन्हें मेरे से अपगत न करके **मुहुः**=और अधिक **उन्ममन्धि**=उत्कृष्ट हर्ष से युक्त करिये। (३) **अस्य**=इस स्तोता को **आपः चित्**=ये समुद्र के विस्तृत जल भी **अर्थम्**=उस गन्तव्य प्रभु को **विनशन्ति**=(attain, To reach) प्राप्त कराते हैं, अर्थात् इन समुद्र के विस्तृत जलों में उसे प्रभु की महिमा दिखती है। **च**=और **मर्कः**=शोधीयता अपने संतापयुक्त किरणों के द्वारा सब मलों को दग्ध करके शोधन का करनेवाला **सूरः**=सूर्य भी प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है। सूर्य में भी उसे प्रभु की महिमा दिखती है। यह **बभूवान्**=सब प्रकार के अन्नादि की उत्पत्ति का कारणभूत **उपरः**=मेघ भी उस प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ ठीक से कार्य करती रहें और हम समुद्र जलों में, सूर्य में तथा मेघों में प्रभु की विभूति को देखनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'कर्म ज्ञान व उपासना' का समन्वय

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥

(१) **सूर्यस्य**=सूर्य के **बृहतः**=विशाल **पुरीषात्**=उदक से **अवः**=नीचे, अर्थात् द्युलोक में सूर्य स्थित है, इस सूर्य की किरणों से अन्तरिक्ष में विशाल जल की मेघरूप में स्थापना होती है, उससे नीचे इस पृथ्वीलोक पर **अयम्**=यह **यः**=जो **वज्रः**=क्रियाशीलतारूप वज्र प्रभु ने दिया है। यह वज्र इन्द्र से **पुरुधा विवृत्तः**=नाना प्रकार से प्रवृत्त होता है। इस क्रियाशीलता से जीव नाना प्रकार के कर्म किया करता है। कर्मभेद से ही वह 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र' कहलाने लगता है। इस प्रकार जीव प्रभु से शक्ति को प्राप्त करके विविध कार्य करता है। यही उसका कर्मकाण्ड को अपनाना है। (२) **एना**=इस कर्मकाण्ड से **परः**=उत्कृष्ट **अन्यत्**=दूसरा **इत्**=निश्चय से **श्रवः**=ज्ञान **अस्ति**=है। ये व्यक्ति कर्म के साथ ज्ञान को अपनाते हैं। ज्ञान ही तो उनके कर्मों की पवित्रता का कारण होता है। (३) **तत्**=सो इस प्रकार कर्म व ज्ञान को अपनाकर **अव्यथी**=ये व्यथा से रहित होते हैं। कोई भी कर्मशील व्यक्ति भूखा नहीं मरता। यदि कर्म के साथ वह ज्ञान को भी अपनाता है और इस प्रकार अपने कर्मों को पवित्र कर लेता है, तब तो उसके पीड़ित होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। (४) इस प्रकार ज्ञानपूर्वक कर्मों के द्वारा **जरिमाणः**=प्रभु का स्तवन करनेवाले ये लोग **तरन्ति**=भवसागर को तैर जाते हैं। सब पापों से परे होने के कारण इन्हें फिर इस जन्म-मरण चक्र में नहीं आना पड़ता।

भावार्थ—हम 'कर्म ज्ञान व स्तवन' को अपनाकर इस भवसागर को तैरनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृक्ष में बद्ध गौ

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥ २२ ॥

(१) **वृक्षे वृक्षे**=प्रत्येक शरीररूप वृक्ष में हृदयस्थ प्रभु से **गौः**=वेदवाणी **नियता**=बद्ध की गई है और वह **मीमयत्**=वेदवाणी रूप गौ शब्द करती है। यह ठीक है कि इस शब्द को सब कोई सुनता नहीं है। (२) **ततः**=इन वेदवाणी के शब्दों से **पूरुषादः**=(पुरुषात् अदन्ति=ब्रह्म चरन्ति)=उस प्रत्येक शरीर में वास करनेवाले प्रभु से ज्ञान प्राप्त करनेवाले **वयः**=(वय् गतौ way)=मार्ग पर चलनेवाले प्रशस्तेन्द्रिय पुरुष **प्रपतान्**=प्रकृष्ट मार्ग से जाते हैं, उन्नतिपथ पर आगे बढ़ते हैं। (३) **अथ**=अब **इदम्**=यह **विश्वम्**=सब **भुवनम्**=लोक **भयाते**=उस प्रभु से भय करता है। उसके भय से ही 'अग्नि तपती है, सूर्य चमकता है, मेघ, वायु व मृत्यु भी उस प्रभु के शासन में ही अपने-अपने कार्य को करते हैं'। (४) **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **सुन्वत्**=अपने शरीर में सात्त्विक आहार से सोम (=वीर्य) का अभिषव करता है। इस सोम के शरीर में पान करने से ही वह उस सोम 'परमात्मा' को पानेवाला बनता है **च**=और **ऋषये**=उस प्रभु के दर्शन के लिये, ऋषि बनने के लिये **शिक्षत्**=विद्या का उपादान करता है। यह विद्या ही तो उसे ब्रह्म का साक्षात्कार करानेवाली होती है 'परा (विद्या) यया तदक्षरमधिगम्यते'। प्रभु दर्शन इस प्रकार ऋषियों की तीव्र बुद्धि से ही हो सकता है 'दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः'।

भावार्थ—हम हृदयस्थ प्रभु से उच्चारित वेदवाणी को सुनें। प्रभु के भय से सदा उत्कृष्ट मार्ग पर चलें। उस प्रभु के दर्शन के लिये सोम का रक्षण करें और शिक्षा का उपादान करते हुए ऋषि बनें।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान प्राप्ति में सर्वप्रथम

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्॥ २३॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार ऋषि बननेवाले लोग **देवानाम्**=पृथिवीस्थ ग्यारह, अन्तरिक्षस्थ ग्यारह और द्युलोकस्थ ग्यारह, इस प्रकार कुल तेंतीस देवों के **माने**=मापने में, ज्ञान प्राप्त करने में **प्रथमाः अतिष्ठन्**=प्रथम स्थान में स्थित होते हैं, अर्थात् ये लोग देवों का ऊँचे से ऊँचा ज्ञान प्राप्त करते हैं, इनके ज्ञान से ही तो इन्हें महादेव का ज्ञान प्राप्त होगा। (२) इस प्रकार ज्ञान के द्वारा **कृन्तत्रात्**=वासनाओं के काटने के द्वारा **एषाम्**=इनके **उपराः**=निचले प्रदेश (Lower regions) **उद् आयन्**=ऊर्ध्वगतिवाले होते हैं। सबसे नीचे मूलाधार चक्र हैं, यहाँ स्थित कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगतिवाली होती हुई सर्वोत्कृष्ट देश में पहुँचती है। (३) अब **त्रयः अनूपाः**=इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि ये तीनों शरीर में क्रम से प्रविष्ट होकर व्याप्त होनेवाले **पृथिवीम्**=शरीर को **तपन्ति**=खूब दीप्त करते हैं। इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि सभी ज्ञान की वृद्धि के द्वारा शरीर को प्रकाशमय बनाते हैं। (४) **द्वा**=प्राण और अपान ये दोनों **पुरीषम्**=शरीर का पालन व पोषण करनेवाले **बृबूकम्**=जल को, रेतःरूप में स्थित अप् तत्त्व को **वहतः**=धारण करनेवाले होते हैं। प्राणापान की साधना से रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होती है, इन रेतःकणों का शरीर में ही धारण होता है। शरीर में धारित रेतःकण सब प्रकार की उन्नति के कारण बनते हैं।

भावार्थ—हम देवों का ज्ञान प्राप्त करें। चक्रों की ऊर्ध्वगति करते हुए शरीर को दीप्त करें, प्राणसाधना द्वारा रेतःकणों को शरीर में ही धारण करें।

ऋषिः—**वसुक्र ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीवनौषध

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते॥ २४॥

(१) **सा**=गत मन्त्र में वर्णित वीर्य की ऊर्ध्वगति ही **ते जीवातुः**=तेरी जीवनौषध है। **उत**=और **तस्य विद्धि**=उसको तू अच्छी तरह जान, अर्थात् वीर्य की ऊर्ध्वगति के महत्त्व को तू अच्छी तरह समझ ले। (२) **एतादृग्**=ऐसा तू वीर्य-रक्षा के महत्त्व को समझनेवाला तू **अर्ये**=उस संसार के स्वामी प्रभु में **मा स्म**=मत **सं अपगूहः**=अपने को संवृत कर (गूहू संवरणे), अर्थात् प्रभु से अपने को छिपाने की कोशिश मत कर। प्रभु के सदा सामने रह। (३) यह सदा प्रभु के सामने रहनेवाला व्यक्ति **स्वः**=आत्म-प्रकाश को, सुख को **आविः कृणुते**=प्रकट करता है। इसका जीवन प्रकाशमय व सुखमय होता है। यह **बुसं गूहते**=यह रेतस् के रूप में रहनेवाले अप् तत्त्व को अपने में संवृत व सुरक्षित करता है। (४) **अस्य निर्णिजः**=इस अपने जीवन को शुद्ध करनेवाले का **स पादुः**=वह आचरण (पद गतौ=चर गतौ) **न मुच्यते**=कभी इससे छूटता नहीं, यह सदा अपने जीवन में प्रभु का स्मरण करता है और वीर्यरक्षा पर बल देता है।

भावार्थ—वीर्यरक्षा ही जीवनौषध है, इसके लिये प्रभु का अविस्मरण आवश्यक है।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि हम सुन्वन् यजमान बनें। (१) अदेवयु पुरुष परस्पर लड़कर नष्ट हो जाते हैं, (२) भौतिकता के साथ युद्ध जुड़े हुए हैं, (३) ऐश्वर्यों का यज्ञों में विनियोग करनेवालों का प्रभु रक्षण करते हैं, (४) प्रभु की व्यवस्था को कोई रोक नहीं सकता, (५) शराबियों पर प्रभु का वज्रपात होता है, (६) वे सर्वव्यापक प्रभु हमारे शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं, (७) इन्द्रियाँ गौवें हैं और मन ग्वाला व आत्मा स्वामी है, (८) इस चित्त को काबू करनेवाला योगी सारे संसार को अपना परिवार समझता है, (९) योगी एकत्व को देखता है तो भोगी प्रभु को भूल जाता है, (१०) हम कभी प्राकृतिक पदार्थों का अतियोग न करें, (११) प्रकृति को हम अपना मित्र बनाएँ न कि पत्नी, (१२) इस बात को न भूलें कि नम्रता से ही उन्नति होती है, (१३) वेदवाणी अपने ज्ञानदुग्ध से हमारे जीवन का सुन्दर पोषण करती है, (१४) हमारा प्रयत्न यह हो कि हम दशम दशक से पूर्व ही काम के वेग को जीत लें, (१५) प्रभु व प्रकृति को अपना पिता व माता जानें, (१६) प्राणसाधना द्वारा शरीर आदि का ठीक परिपाक करें, (१७) प्रभु स्मरण पूर्वक कर्मों में लगे रहें, (१८) प्रभु सद्गृहस्थों को प्राप्त होते हैं, (१९) इस प्रभु की महिमा समुद्र जल, सूर्य व मेघ में होती है, (२०) कर्म ज्ञान व उपासना का समन्वय ही हमें तरायेगा, (२१) प्रत्येक शरीर में वेदवाणी रूप गौ बद्ध है, (२२) उसके द्वारा हम ज्ञान प्राप्ति में सर्वप्रथम हों, (२३) वीर्यरक्षा को ही जीवनौषध समझें, (२४) हमारा यही प्रयत्न हो कि हमारे जीवन में वासनाओं की प्रबलता न होकर प्रभु का आगमन हो।

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह श्वशुर

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्॥ १॥

(१) **विश्वः**=सारे **हि**=ही **अन्यः**=दूसरे **अरिः**='काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर' आदि शत्रु तो **आजगाम**=मेरे जीवन में खूब ही आये हैं, पर **मम**=मेरे **श्व-शुरः**=सर्व प्रथम प्राप्त होनेवाला नायक प्रभु तो **इत्**=निश्चय से **अह**=ही **न आजगाम**=नहीं आये हैं। काम-क्रोध आदि का तो खूब जोर रहा, पर प्रभु का दर्शन नहीं हुआ। (२) जिस समय जीव इस प्रकार उपालम्भ भरे शब्दों में प्रभु के न आने की बात कहता है तो प्रभु कहते हैं कि जब जीव यह चाहता है कि वासनाएँ उसे न सताएँ और वह आत्मदर्शन करनेवाला बने तो उसे चाहिए कि—(क) **धाना**=भृष्ट यवों को, भुने जौ को **जक्षीयात्**=खाये। उन वनस्पति भोजनों को ही करे, क्योंकि वानस्पतिक भोजन मनुष्य की बुद्धि को सात्त्विक बनाते हैं। (ख) **उत**=और मनुष्य को चाहिए कि **सोमं पपीयात्**=सोम का पान करे। शरीर में **सोम**=वीर्य को सुरक्षित रखे अथवा ताजे गोदुग्ध का पान करे (सोमः पयः श० १२।७।३।१३)। (ग) इस प्रकार जौ व दूध आदि उत्तम भोजनों से **स्वाशितः**=उत्तम भोजनवाला व उत्तम तृप्तिवाला यह **पुनः**=फिर **अस्तं जागम्यात्**=अपने घर को आनेवाला हो, अर्थात् उन इधर-उधर भटकनेवाली चित्तवृत्तियों को काबू करके प्रातः-सायं अवश्य ध्यानावस्थित हों।

भावार्थ—जौ-दूध का प्रयोग तथा चित्तवृत्तिविरोध का अभ्यास ही हमें प्रभु-दर्शन करायेगा।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुतसोम का रक्षण

स रो॑रु॒वद् वृ॑ष॒भस्ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ वर्ष्म॑न्तस्थौ॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः।

विश्वे॑ष्वेनं वृ॒जने॑षु पामि॒ यो मे॑ कु॒क्षी सु॒तसो॑मः पृ॒णाति॑॥ २॥

(१) **स**=वह, गत मन्त्र के अनुसार जौ व गोदुग्ध का प्रयोग करनेवाला तथा चित्तवृत्ति के निरोध का अभ्यासी पुरुष, **रोरुवद्**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करता है। इस नामोच्चारण से वह अपने में प्रभु की शक्ति के संचार को करता हुआ **वृषभः**=शक्तिशाली बनता है औरों पर सुखों की वर्षा करनेवाला होता है। **तिग्मशृंगः**=तीक्ष्ण ज्ञान की रश्मियोंवाला होता है, इसकी इन प्रचण्ड ज्ञानरश्मियों में सब मल भस्मीभूत हो जाते हैं। अब यह **पृथिव्याः**=अन्तरिक्ष के, हृदयान्तरिक्ष के **वर्ष्मन्**=वरिष्ठ उन्नत प्रदेश में, द्वेषादि मलों के विध्वंस से निर्मल बने हुए प्रदेश में तथा **वरिमन्**=विशाल प्रदेश में **आतस्थौ**=सर्वथा स्थित होता है। यह अपने हृदय को निर्मल व विशाल बनानेवाला होता है। इसका शरीर शक्तिशाली बना है (वृषभः), मस्तिष्क—ज्ञानरश्मियों से उज्ज्वल, हृदय उत्कृष्ट व विशाल। (२) प्रभु कहते हैं कि इस प्रकार के जीवनवाला **यः**=जो कोई भी **सुतसोमः**=अपने अन्दर सोम=वीर्य को उत्पन्न करनेवाला **मे कुक्षी**=मेरी इन कोखों को **पृणाति**=पालित व सुरक्षित करता है, अर्थात् मेरे दिये हुए इस शरीर की कोखों में सोमरक्षण के द्वारा किसी प्रकार के रोग को उत्पन्न नहीं होने देता। **एनम्**=इसको **विश्वेषु**=सब **वृजनेषु**=संग्रामों में **पामि**=मैं सुरक्षित करता हूँ। काम-क्रोधादि शत्रुओं के साथ चलनेवाले संग्रामों में इसे हारने नहीं देता।

भावार्थ—प्रभु सुतसोम पुरुष का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृषभ-परिपाक

अद्रि॑णा ते म॒न्दिन॑ इन्द्र तू॒यान्त्सु॒न्वन्ति॒ सोमा॒न्पिब॑सि॒ त्वमे॑षाम्।

पच॑न्ति ते वृष॒भाँ अत्सि॒ तेषां॑ पृ॒क्षेण॒ यन्म॑घवन्हू॒यमा॑नः॥ ३॥

(१) गत मन्त्र में प्रभु ने जीव को सुतसोम बनने के लिये कहा था। उसका उत्तर देते हुए

वह कहता है कि हे **इन्द्र**=सोम का पान करनेवाले प्रभो! **ते मन्दिनः**=तेरे स्तोता लोग **अद्रिणा**=(अद्रिर्वज्रः) क्रियाशीलता के द्वारा अथवा (न दीर्यते) धर्म मार्ग से न विदूत होने के द्वारा **तूयान्**=विलम्ब न करनेवाले, अर्थात् शीघ्रता से कार्यों को करने की शक्ति को देनेवाले **सोमान्**=सोमों को, शक्ति कणों को **सुन्वन्ति**=उत्पन्न करते हैं। **एषाम्**=इन सोमकणों का **त्वम्**=आप ही **पिबसि**=पान करते हो, अर्थात् इन सोमकणों की मेरे शरीर में ही रक्षा आपकी कृपा से होती है। आपका स्मरण मुझे वासना से ऊपर उठाता है और वासना से ऊपर उठने के कारण मैं सोम को सुरक्षित करने में समर्थ होता हूँ। (२) इस प्रकार **ते**=तेरे ये भक्त **वृषभान् पचन्ति**=अपना परिपाक शक्तिशाली पुरुष के रूप में करते हैं, शक्तिशाली बनकर ये औरों पर सुखों की वर्षा करनेवाले होते हैं। (३) हे प्रभो! आप **तेषाम्**=उनके मार्ग में आनेवाले विघ्नों का **अत्सि**=संहार करते हैं (अद्=to destroy)। परन्तु यह विघ्नों का संहार आप कब करते हैं? **यत्**=जब कि **पृक्षेण**=(पृची संपर्के) आपके साथ सम्पर्क से, हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हूयमानः**=पुकारे जाते हैं। ये भक्त प्रातः-सायं आपके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं और शक्तिशाली बनकर, विघ्नों को दूर करते हुए, आगे बढ़ते हैं।

भावार्थ—क्रियाशीलता के द्वारा हम वासना से बचें। सोम के रक्षण से अपने को शक्तिशाली बनाएँ। प्रभु सम्पर्क से शक्तिशाली बनकर, विघ्नों को दूर करते हुए, हम आगे बढ़ें।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मूकं करोति वाचालम्

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात्॥ ४॥

(१) हे **जरितः**=स्तोता! तू **मे**=मेरे विषय में **इदम्**=इस बात को **सु आचिकिद्धि**=अच्छी प्रकार पूरी तरह से समझ ले कि मेरी कृपा के होने पर अथवा एक व्यक्ति के जीवन में मेरा सम्पर्क होने पर **नद्यः**=नदियाँ **शापम्**=जल को **प्रतीपम्**=उलटा-स्रोत की ओर **वहन्ति**=ले जानेवाली होती हैं। (२) **लोपाशः**=लुप्यमान (लुप् छेदने) तृणों को खानेवाला मृग **प्रत्यञ्चं सिंहम्**=अपनी ओर आते हुए शेर पर भी **अत्साः**=आक्रमण करता है वही बात प्रभु-भक्त के जीवन में होती है कि वह हरिण से शेर बन जाता है। निर्बल 'शक्ति का पुञ्ज' बन जाता है। निर्बलता का स्थान शक्ति ले लेती है। (३) **क्रोष्टा**=गीदड़ **वराहम्**=सूकर को **कक्षात्**=उसके छिपने के स्थान से निरन्तर बाहर निकालता है। 'गीदड़' कायरता का प्रतीक है। यह अब कायर न रहकर वीर बनता है और इतना वीर कि सूकर को भी उसके गुफा में से निकाल लाता है। इस प्रकार प्रभु सम्पर्क हमारी भीरुता को दूर करके हमें वीर बनाता है। (४) संक्षेप में, प्रभु-भक्ति मनुष्य को—(क) असम्भव से असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर देने के क्षम बनाती है। (ख) उसकी निर्बलता को नष्ट कर उसे शक्ति का पुञ्ज बनाती है। (ग) उसकी कायरता को दूर करके उसे वीर बना देती है।

भावार्थ—प्रभु-भक्त के लिये कुछ असम्भव नहीं रहता, वह शक्ति का पुञ्ज व वीर बनता है।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु का मैं 'पाक' हूँ प्र और उसका 'पाक'

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम्।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः॥ ५॥

(१) गत मन्त्र में प्रभु सम्पर्क से होनेवाले अद्भुत परिणाम का उल्लेख था। प्रस्तुत मन्त्र में जीव

कहता है कि हे इन्द्र! **ते**=आपके **एतत्**=इस अद्भुत बल को **अहम्**=मैं **कथम्**=कैसे **आचिकेतम्**=ज्ञान पाऊँ, मैं कैसे इसे अपने जीवन में अनुभव कर पाऊँ? क्रियात्मक बात तो यही है कि मैं आपकी उस शक्ति को अपने जीवन में देखनेवाला बनूँ। (२) **गृत्सस्य**=मेधावी, गुरु, गुरुओं के भी गुरु, **तवसः**=शक्ति के दृष्टिकोण से अत्यन्त बढ़े हुए आपका मैं **पाकः**=बच्चा ही तो हूँ। आपके द्वारा ही मैं परिपक्तव्य प्रज्ञावाला हूँ। आपने ही मेरा परिपाक करना है। (३) हमारे परिपाक के लिये ही **त्वम्**=आप **विद्वान्**=हमारी शक्ति व स्थिति को जानते हुए **ऋतुथा**=समयानुसार **नः**=हमें **मनीषाम्**=बुद्धि को, बुद्धिगम्य ज्ञान को **विवोचः**=विशेषरूप से कहते हैं। इस ज्ञान के द्वारा ही तो आपने हमारा परिपाक करना है। (४) आप तो ज्ञान देते हैं, परन्तु हम उस ज्ञान को पूरी तरह से ग्रहण नहीं कर पाते, परन्तु हे **मघवन्**=सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामिन् प्रभो! हम **ते**=आपके **यं अर्धम्**=जिस आधे भी ज्ञान को ग्रहण करते हैं, वह ही हमारे लिये **क्षेम्या**=अत्यन्त कल्याणकर **धूः**=wealth=सम्पत्ति होता है। इस ज्ञान का थोड़ा भी अंश हमारा कल्याण करता है। जितना भी अधिक इसे हम अपनाएँगे, उतना ही यह हमारे लिये अधिकाधिक कल्याणकर होगा।

भावार्थ—हम प्रभु के पाक-सन्तान हैं। प्रभु हमें ज्ञान देते हैं। उस ज्ञान को हम जितना अपनाएँगे उतने ही कल्याण को भी प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अ-शत्रु

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान॥ ६॥

(१) **एवा**=इस प्रकार गत मन्त्र में वर्णित प्रकार से बुद्धि के देने के द्वारा **हि**=निश्चय से **तवसम्**=वृद्धिशील मुझको **वर्धयन्ति**=प्रभु की प्रेरणाएँ बढ़ाती हैं और उस प्रेरणा के अनुसार चलने से **मे**=मेरा **धूः**=(wealth) धन **बृहतः दिवः चित्**=इस विशाल द्युलोक से भी **उत्तरा**=उत्कृष्ट होता है। सबसे नीचे इस पृथ्वीलोक=शरीर का धन है, यह धन है 'स्वास्थ्य'। इससे ऊपर अन्तरिक्ष-लोक हृदय का धन 'निर्मलता है, द्वेषादि का अभाव। इससे भी ऊपर द्युलोक=मस्तिष्क का धन है, अपरा विद्या व पराविद्या। प्रकृति विद्या के नक्षत्र व ब्रह्मविद्या का सूर्य मेरे मस्तिष्क रूप द्युलोक में चमकता है। इससे ऊपर मेरा धन 'एकत्वदर्शन' के रूप में होता है, मैं उस अद्वैत स्थिति में पहुँचता हूँ जिसके उपनिषद् में 'शान्तं शिवं अद्वैतम्' कहा है। ज्ञान का यह परिणाम होना ही चाहिए। (२) इस स्थिति में पहुँचा हुआ मैं **साकम्**=एक साथ ही **पुरू सहस्रा**=अनेक हजारों वासनारूप शत्रुओं को **निशिशामि**=(हिनस्मि) हिंसित करता हूँ, अपने तीर का निशाना बनाता हूँ। वासनाओं का विनाश करता हूँ। (३) इस प्रकार **जनिता**=उस उत्पादक प्रभु ने **मा**=मुझे **हि**=निश्चय से **अशत्रुम्**=शत्रुरहित **जजान**=कर दिया है। वस्तुतः अन्तःशत्रुओं के नाश से बाह्य शत्रुओं का नाश अपने आप ही हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु के दिये हुए ज्ञान से मेरी वृद्धि होती है, मैं 'स्वास्थ्य नैर्मल्य व उज्ज्वलता' रूप धनों से भी उत्कृष्ट 'एकत्वदर्शन' रूप धन को प्राप्त कर पाता हूँ। वासनाओं को नष्ट करके 'अशत्रु' हो जाता हूँ।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

तवस-उग्र-वृषा

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **हि**=निश्चय से **देवाः**=सब प्राकृतिक शक्तियाँ तथा विद्वान् लोग **माम्**=मुझे **तवसम्**=बढ़ा हुआ **जज्ञुः**=बनाते हैं। सब प्राकृतिक पदार्थों के यथोचित प्रयोग से तथा विद्वानों के सत्संग से मैं अपनी सब शक्तियों को बढ़ानेवाला बनता हूँ। ये देव **उग्रम्**=मुझे तेजस्वी बनाते हैं तथा **कर्मन् कर्मन्**=प्रत्येक कर्म में **वृषणम्**=ये मुझे शक्तिशाली बनाते हैं। (२) शक्तिशाली बनकर मैं **वज्रेण**=क्रियाशीलता के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **वधीम्**=नष्ट करता हूँ। वासना को नष्ट करने का उपाय क्रिया में लगे रहना ही है। (३) **मन्दसानः**=वृत्र के विनाश से प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ मैं **दाशुषे**=उस सम्पूर्ण पदार्थों के देनेवाले प्रभु के लिये **महिना**=महिमा के द्वारा, अर्थात् उस प्रभु की अर्चना के द्वारा **व्रजम्**=इन्द्रियरूप गौवों के समूह को **अप वम्**=(अप अवृ) विषय वृत्तियों से दूर करके सुरक्षित करता हूँ। प्रभु के स्तवन से विषय-वासनाओं की निवृत्ति होती है, ये इन्द्रियों को बाँधनेवाली नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु उपासन से हम इन्द्रियरूप गौवों का रक्षण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

परशु से वन का व्रश्चन (वन-दहन)

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति॥ ८॥

(१) **देवासः**=देववृत्ति के लोग **आयन्**=(इ गतौ) गति करते हैं। देव अकर्मण्य नहीं होते। वस्तुतः अकर्मण्यता देवत्व को नष्ट कर देती है। (२) ये देव **परशून् अबिभ्रन्**=परशुओं को धारण करते हैं। 'परान् श्यति' इस व्युत्पत्ति से शत्रुरूप वैषयिक वृत्तियों को नष्ट करनेवाले ये परशु हैं। देव इन परशुओं का धारण करते हुए वासनाओं को नष्ट करते हैं। **वना**=वासनाओं के जंगलों को **वृश्चन्तः**=काटते हुए और इस प्रकार अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए **विड्भिः**=प्रजाओं के साथ **अभि आयन्**=लौकिक व वैदिक उभयविध कर्मों में सम्मिलित होते हैं। (३) **सुद्रवम्**=उत्तम (द्रु) गतिवाले अपने को **वक्षणासु**=सब प्रकार की उन्नतियों में **निदधतः**=स्थापन करते हुए ये देव उस शरीर में निवास करते हैं **यत्रा**=जहाँ कि **कृपीटं अनु**=जल=रेतःकणों के अनुसार **तद्**=उस वासना वन को **दहन्ति**=जला देते हैं। शरीर में रेतःकणों का रक्षण करते हैं और जितना-जितना इनका रक्षण कर पाते हैं उतना-उतना ही वासनाओं को भस्मीभूत करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—देव लोग गतिशील होते हैं, असंगरूप परशु को धारण करते हुए वासना वन को काटते हैं और रेतःरक्षण के अनुपात में इन वासनाओं को जला देते हैं।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शश से शेर बन जाना (वासना दहन से पूर्व और पीछे)

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः॥ ९॥

(१) गत मन्त्र में वासना वन के दहन का उल्लेख था। इस दहन के होने पर **शशः**=एक खरगोश के तुल्य निर्बल व्यक्ति भी इतना शक्तिशाली बन जाता है कि **प्रत्यञ्चम्**=आक्रमण के लिये सामने आनेवाले, **क्षुरम्**=छेदन करनेवाले शेर इत्यादि को भी **जगाम्**=निगल जाता है। खरगोश क्या, वह तो शेर से भी अधिक शक्तिशाली बन जाता है। (२) इस वासना वन के दहन

पर मैं इतना शक्तिशाली बन जाता हूँ कि **आरात्**=दूर स्थित भी **आद्रिम्**=पर्वत को **लोगेन**=एक मट्टी के ढेले से **व्यभेदम्**=विदीर्ण कर देता हूँ। वासनाक्रान्त व्यक्ति एक मट्टी के ढेले की तरह था तो दग्धवासन पुरुष पर्वत से भी दृढ़ बन जाता है। (३) वासनाओं के नष्ट होने पर **ऋहते**=ह्रस्व-अल्पकाय पुरुष के लिये **बृहन्तं चित्**=अत्यन्त विशालकाय को भी **रन्धयानि**=वशीभूत कर देता हूँ अथवा (rend) विदीर्ण कर देता हूँ। वासना दहन से पहले हमारी स्थिति अल्प थी, इनके दहन को करके हम बड़ों को भी वशीभूत करनेवाले हो जाते हैं। (४) यह दग्धवासन व्यक्ति **शूशुवानः**=निरन्तर अपनी शक्ति को बढ़ाता हुआ **वत्सः**=बछड़े जैसा होता हुआ भी **वृषभम्**=एक शक्तिशाली वृषभ को **वयत्**=आक्रमण के लिये प्राप्त होता है। वत्स होता हुआ वृषभ को जीतनेवाला बनता है।

भावार्थ—वासना दहन से पूर्व जो शशधा वह दहन के बाद शेर बन जाता है, मट्टी का ढेला, पर्वत बन जाता है, ऋहत्-बृहत् हो जाता है और वत्स वृषभ में परिणत हो जाता है।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुपर्ण, सिंह, महिष, गोधा

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्॥ १०॥

(१) **इत्था**=इस प्रकार से **सुपर्णः**=अपना उत्तमता से पालन व पूरण करनेवाला व्यक्ति **नखम्**=(ख-दोष) निर्दोषता को **आसिषाय**=अपने साथ बाँधता है (आबबन्ध)। वासना दहन से जीवन निर्दोष तो बनता ही है। (२) इस समय **अवरुद्धः**=विषय-वासनाओं में जाने से रुका हुआ **सिंहः**=(हिनस्ति) अरुद्ध स्थिति में मनुष्य को नष्ट कर देनेवाला यह मन ('अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्') **न परिपदम्**=चारों ओर जानेवाला व भटकनेवाला नहीं होता। (३) **निरुद्धः चित्**=निरुद्ध वृत्तिवाला यह मन निश्चय से **महिषः**=उस प्रभु की पूजा करनेवाला होता है (मह पूजायाम्) **तर्ष्यावान्**=प्रभु प्राप्ति की प्रबल पिपासावाला होता है। मन एक मात्र प्रभु-प्रवण हो जाता है। (४) अब **गोधाः**=वेदवाणियों का धारण करनेवाला प्रभु **तस्मै**=उसके लिये **एतत् अयथम्**=इस अयथा योग को **कर्षत्**=दूर कर देते हैं। यथायोग के स्थान में जो अयोग व अतियोग की वृत्ति आ जाती है, उस वृत्ति को प्रभु दूर करनेवाले होते हैं। मनुष्य प्रभु कृपा से सदा मध्यमार्ग को अपनानेवाला बनता है।

भावार्थ—सुपर्ण बनकर हम निर्दोष बनें, हमारा मन भटके नहीं, हमारा मन प्रभु प्राप्ति की प्रबल प्यासवाला हो। हम प्रभु कृपा से मध्यमार्ग को अपनाएँ।

सूचना—यहाँ मन्त्र में सुपर्णादि शब्दों का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य को बढ़ानेवाला है। उनका यौगिक अर्थ न होने पर अर्थ विचित्र-सा प्रतीत होने लगता है।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सात्त्विक अन्न

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः॥ ११॥

(१) **गोधाः**=वेदवाणी का धारण करनेवाला प्रभु **तेभ्यः**=उनके लिये **एतत्**=इस **अयथम्**=अयथार्थता को अयथायोग को **कर्षत्**=खेंचकर बाहर कर देता है, दूर कर देता है, ये जो **ब्रह्मणः**=

ज्ञान के **अन्नैः**=अन्नों से **प्रतिपीयन्ति**=एक-एक बुराई को हिंसित करनेवाले होते हैं। 'ब्रह्म के अन्न' सात्त्विक अन्न हैं, इनके सेवन से सत्त्वशुद्धि के द्वारा मनुष्य अयोग व अतियोग से बचकर सदैव यथायोग करनेवाला बनता है। (२) ये अयथायोग से बचनेवाले व्यक्ति **सिमः**=(सर्वान्) सब **उक्ष्णः**=शक्तिशाली अथवा वीर्यवर्धक अन्नों का, **अवसृष्टान्**=(अनुज्ञातान्) इन अन्नों का जिनकी कि वेद में अनुज्ञा दी गई है, **अदन्ति**=भक्षण करते हैं, उन्हीं अन्नों का सेवन करते हैं जो सात्त्विक हैं। (३) इस प्रकार सात्त्विक अन्नों के सेवन से ये **तन्वः**=शरीर के **बलानि**=बलों का **शृणानाः**=(श्रृणानाः) परिपाक करते हैं। सात्त्विक अन्न के सेवन से उनकी शरीर की सब शक्तियाँ सुन्दर बनती हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम वस्तुओं का यथायोग करनेवाले होते हैं। ज्ञानवर्धक अन्नों का सेवन करते हैं, उन्हीं पौष्टिक अन्नों का जिनकी कि वेद में अनुज्ञा दी गई है। इस प्रकार ये अपने शरीर के बलों का ठीक परिपाक करते हैं।

ऋषिः—**इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञानी वीर

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः॥ १२॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सात्त्विक अन्नों का प्रयोग करनेवाले **एते**=ये व्यक्ति **शमीभिः**=शान्तभाव से किये जानेवाले कर्मों से **सुशमीः**=उत्तम कर्मों वाले **अभूवन्**=होते हैं। वे व्यक्ति, **ये**=जो **उक्थैः**=प्रभु के स्तोत्रों के द्वारा **सोम**=सोम के सुरक्षित होने पर **तन्वः**=शरीरों को **हिन्विरे**=बढ़ाते हैं। प्रभुस्तवन से हमारा जीवन वासनामय नहीं होता और वासनाओं के अभाव में सोम का रक्षण होता है। यह सुरक्षित सोम=वीर्य शरीर के वर्धन का कारण बनता है। (२) हे प्रभो! **नृवत्**=एक नेता की तरह **वदन्**=उपदेश देते हुए आप **नः**=हमारे **वाजान्**=बलों को **उपमाहि**=समीपता से बनानेवाले होइये। एक नेता जैसे अपने अनुयायियों को ठीक मार्ग का उपदेश देता है, उसी प्रकार प्रभु हमें ठीक मार्ग का उपदेश देते हुए हमें कहते हैं कि तू **दिवि**=(मूर्ध्नो धीः) अपने मस्तिष्क रूप द्युलोक में **श्रवः**=ज्ञान को **दधिषे**=धारण करता है और **वीरः नाम**=वीर नामवाला होता है, अर्थात् तेरा आदर्श यही होना चाहिए कि 'मस्तिष्क में ज्ञान और भुजाओं में वीरता'। 'ज्ञानी वीर' ही आदर्श मनुष्य है।

भावार्थ—सात्त्विक अन्नों के सेवन से हम शान्तभाव से कर्मों को करनेवाले हों। प्रभु स्तवन से शरीर में सोम को सुरक्षित करें। हम प्रभु के उपदेश के अनुसार चलते हुए ज्ञानी वीर बनें।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि चित्तवृत्ति के निरोध के अभ्यास से हम प्रभुदर्शन करें। (१) प्रभु उसी का रक्षण करते हैं, जो सोम का रक्षण करता है, (२) सोमरक्षण से शक्तिशाली बनकर, विघ्नों को दूर करते हुए हम आगे बढ़ें, (३) प्रभु कृपा हमें मृग से मृगपति बना देती है, (४) हम प्रभु के ही तो पुत्र हैं, (५) प्रभुदत्त ज्ञान से वासनाओं को नष्ट करके हम 'अशत्रु' बन जाते हैं, (६) तवस उग्र व वृषा बनते हैं, (७) असंगरूप परशु से हम वासनावन को काटनेवाले होते हैं, (८) इससे हम शश से शेर बन जाते हैं, (९) प्रभु कृपा से हम सदा मध्यमार्ग से चलते हैं, (१०) सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हैं और (११) 'ज्ञानी वीर' बनते हैं, (१२) सात्त्विक अन्नों के सेवन करनेवाले का जीवन उत्तम होता है।

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्षपावान् (संयत भोजनवाला)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्॥ १॥

(१) **यः**=जो मनुष्य **चाकन्**=(कामयमानः) कामना करता हुआ, चाहता हुआ **वने न**=उपासनीय के समान उस प्रभु में **वा**=निश्चय से **न्यधायि**=स्थापित होता है। उस प्रभु को अपना आधार बनाता है, उसकी उपासना में आनन्द का अनुभव करता है। इसीलिए **शुचिः**=पवित्र जीवनवाला होता है। हम प्रभु से दूर होते हैं, तभी पाप की ओर झुकाववाले होते हैं। प्रभु की समीपता हमारे जीवनों को पवित्र बनाये रखती है। (२) इस पवित्रता व प्रभु के उपासन के लिये ही, हे **भुरणौ**=पालन करनेवाले अश्विनी देवो, प्राणापानो! **वाम्**=आपका **स्तोमः**=स्तवन **अजीगः**=इसको प्राप्त होता है। यह प्राणापान का स्तवन करता हुआ प्राणापान की महिमा को अनुभव करता है और प्राणसाधना में तत्पर होता है। (३) वह मनुष्य **यस्य**=जिसका **इन्द्रः**=परमात्मा **इत्**=ही **पुरुदिनेषु**=बहुसंख्यक दिनों में, उन दिनों में जिनमें कि वह रोगों से अपने शरीर को सुरक्षित करने व मन में किन्हीं भी न्यूनताओं को न आने देने का ध्यान करता है, **होता**=इस जीवनयज्ञ के चलानेवाले हैं। प्रभु कृपा से इस जीवन-यात्रा को पूर्ण होता हुआ देखता है। इसीलिए उसे किसी भी उत्कर्ष का व्यर्थ अभिमान नहीं होता। (४) ऐसा निरभिमानी मनुष्य **नृणां नर्यः**=मनुष्यों में अधिक से अधिक नरहितकारी कर्मों का करनेवाला होता है। **नृतमः**=अत्यन्त उत्तम मनुष्य होता है। ऐसा तब बन पाता जब वह **क्षपावान्**=(क्षप् to fast, to be an abstinent) भोजन में बड़ा संयमी होता है। सब 'शरीर, मन व बुद्धि' की उन्नतियों का मूल भोजन की सात्त्विकता है।

भावार्थ—जो भोजन में संयमवाला होता है वह उत्तम मनुष्य बनता है। प्राणसाधना करता हुआ प्रभु में स्थित होता है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ससवान्

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान्॥ २॥

(१) हे प्रभो! **ते**=आपकी **अस्याः उषसः**=इस उषाकाल के तथा **अपरस्याः**=आनेवाली भी उषा के **प्रनृतौ**=प्रकृष्ट भवन में **प्रस्याम**=प्रकर्षेण हों। आप प्रत्येक उषःकाल में जिधर भी हमें ले चलनेवाले हों, उधर ही हम चलें। आप जो नाच नचायें, वही हमें रुचिकर हो। आप **नृणां नृतमस्य**=मनुष्यों के सर्वोत्तम नेता हैं। आपका नेतृत्व ही हमारा संचालक हो। (२) **अनु**=ऐसा होने पर ही, इसके बाद ही **कुत्सेन**=(कुथ हिंसायाम्) सब बुराइयों के संहार से **त्रिशोकः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों की दीप्ति **नॄन्**=मनुष्यों को **शतं आवहत्**=सौ वर्ष तक ले चलनेवाली होती है। जब हम प्रभु की इच्छा के अनुसार जीवन को चलाते हैं, तो तीनों दीप्तियों को प्राप्त करते हैं और ये तीनों दीप्तियाँ हमारे जीवनों को सौ वर्ष तक ले चलने का कारण बनती हैं। (३) **यः रथः**=(रथः अस्य अस्ति इति रथः) इस प्रकार जो भी उत्तम शरीररथवाला व्यक्ति **असत्**=होता है वह **ससवान्**=सस्य को ही खानेवाला होता है, यह वानस्पतिक भोजन को ही करता है।

वानस्पतिक भोजन सात्त्विक है, यही उपादेय है

भावार्थ—प्रभु की आज्ञा में चलें। सस्यभोजी बनें। इस प्रकार शरीर, मन व बुद्धि को दीप्त करनेवाले 'त्रिशोक' बनें।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अन्न व धन

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते मदः**=आपकी प्राप्ति का मद **कः**=अनिर्वचनीय आनन्द का देनेवाला है और **रन्त्यः**=रमणीय **भूत्**=है। आपको प्राप्त करनेवाला व्यक्ति एक अवर्णनीय सुख का अनुभव करता है और उसे सारा संसार सुन्दर ही सुन्दर प्रतीत होता है। (२) **अभ्युग्रः**=आप अतिशयेन तेजस्वी हो। **दुरः**=मेरे इन्द्रिय द्वारों को तथा **गिरः**=वाणियों को **विधाव**=विशेषरूप से शुद्ध कर दीजिये। प्रभु की तेजस्विता मेरी सब मलिनताओं को नष्ट करनेवाली होती है। (३) हे प्रभो! **कद्**=कब आपकी कृपा होगी और मेरा **वाहः**=यह इधर-उधर मुझे भटकानेवाला मन (वरु=To carry away) **अर्वाक्**=अन्तर्मुख होगा। कब यह मेरा मन बाह्य विषयों से निवृत्त होकर अन्दर ही स्थित होनेवाला होगा? कद्=कब **मा**=मुझे **मनीषा**=बुद्धि **उप**=आपके समीप पहुँचानेवाली होगी? (४) हे प्रभो! आप 'इन्द्रिय शुद्धि, मन की अन्तर्मुखी वृत्ति तथा मनीषा की प्राप्ति' के द्वारा मुझे इस योग्य बनाइये कि **उपमम्**=अन्तिकतम-अत्यन्त समीप हृदय में ही निवास करनेवाले **त्वा**=आपको **आ-शक्याम्**=प्राप्त होने में समर्थ होऊँ और साथ ही **अन्नैः**=अन्नों के साथ **राधः**=संसार के कार्यों के साधक धन को भी प्राप्त कर सकूँ। जीवनयात्रा में प्रभु प्राप्ति हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देती तो यह 'अन्न व धन' हमें आगे बढ़ने के योग्य बनाते हैं। यह ठीक है कि उतना ही धन वाञ्छनीय है, जितना कि 'राधः'=कार्यसिद्धि के लिये आवश्यक है। कार्यसिद्धि से अधिक धन सदा हानिकर हो जाता है।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति के लिये यत्नशील हों। प्रभु हमारी इन्द्रियों को शुद्ध करें, मन को अन्तर्मुख करें तथा बुद्धि को प्राप्त करायें। हम अन्न व धन को तो प्राप्त करें ही, साथ ही हमारा लक्ष्य प्रभु प्राप्ति हो।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु जैसे बनकर प्रभु को पाना

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन्।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **कद् उ**=कब निश्चय से **द्युम्नम्**=ज्योति को **करसे**=आप करते हैं। कब आपकी कृपा से मेरा जीवन ज्योतिर्मय होगा? और कब **कया**=आनन्द को देनेवाली **धिया**=ज्ञानपूर्विका क्रियाओं से **नॄन्**=हम मनुष्यों को **त्वावतः**=अपने जैसा (त्वत्सदृशान् सा०) **करसे**=करते हैं? अर्थात् कब वह समय मेरे जीवन में आयेगा जब कि मैं ज्ञानपूर्वक क्रियाओं में एक आनन्द का अनुभव करूँगा और इन क्रियाओं के द्वारा मैं आप जैसा बनने के लिये यत्नशील होऊँगा? प्रभु के समान दयालु व न्यायकारी बनता हुआ ही तो मैं प्रभु का सच्चा उपासक होता हूँ। **कत्**=कब **नः**=हम उपासकों को **आगन्**=आप प्राप्त होंगे? वस्तुतः आप जैसा बनकर ही तो

मैं आपको प्राप्त होने का अधिकारी होता हूँ। (२) हे **उरुगाय**=खूब ही स्तवन करने के योग्य प्रभो! आप **मित्रः न**=मित्र के समान हैं। हमारे साथ स्नेह करनेवाले (मिद् स्नेहने) तथा हमें 'प्रमीतेः जायते'=रोगों व पापों से बचानेवाले हैं। **सत्यः**=आप सत्यस्वरूप हैं। आप ही **भृत्ये**=हमारे भरण-पोषण के लिये होते हैं। आपने ही अन्नों के द्वारा हमारे भरण की व्यवस्था की है। (३) **यद्**=जो आपने यह भी अद्भुत व्यवस्था की है कि **समस्य**=सब की **मनीषाः**=बुद्धियाँ **अन्ने**=अन्न में **असन्**=हैं। जैसा अन्न कोई खाता है वैसा ही उसकी बुद्धि बन जाती है, 'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः' आहार की शुद्धि पर ही अन्तःकरण की शुद्धि निर्भर करती है। इस बुद्धि के द्वारा आप हमारा रक्षण करते हैं। इस प्रकार प्रभु ने अन्न के द्वारा ही हमारे 'अन्नमय, प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय' कोशों के निर्माण की व्यवस्था करके हमारे पालन का सुन्दर प्रबन्ध किया है।

भावार्थ—बुद्धि-वर्धक अन्नों का प्रयोग करते हुए हम ज्ञानपूर्वक कर्मों से प्रभु जैसा बनकर, प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसुक्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

भवसागर के पार

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः॥५॥

(१) हे प्रभो! आप **सूरः न**=सूर्य के समान हैं, 'आदित्यवर्णम्' शब्द से आपका स्मरण होता है। सूर्य की तरह ही आप हमारे हृदयाकाशों को प्रकाशित करनेवाले तथा कर्मों में प्रेरित करनेवाले हैं। आप **अर्थम्**=धर्म, अर्थ, काम व मोक्षरूप पुरुषार्थों की **प्रेरय**=प्रेरणा दीजिये तथा इन पुरुषार्थों के द्वारा **पारं** प्रेरय=इस भवसागर व अश्मन्वती नदी के पार प्राप्त कराइये। धर्मपूर्वक धन को कमाकर उचित आनन्दों का सेवन करते हुए ही हम मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं। यही मार्ग है, इस भवसागर को तैरने का। (२) प्रभु उन व्यक्तियों को भवसागर से तैराते हैं **ये**=जो **अस्य**=इस प्रभु की **कामम्**=कामना को, इच्छा को, **जनिधा इव**=विकास को धारण करनेवाले की तरह **ग्मन्**=प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रभु की कामना के अनुसार कर्मों को करते हैं। प्रभु ने वेद में जिस प्रकार आदेश दिया है, उसी प्रकार जो अपना आचरण बनाते हैं वे ही व्यक्ति प्रभु के प्रिय होते हैं और इन्हें ही प्रभु भवसागर से तैरानेवाले होते हैं। ये व्यक्ति की **जनि**=विकास का **धा**=धारण करते हैं। 'जनिधा' का अर्थ पत्नी का धारण करनेवाला, अर्थात् पति भी है। यहाँ 'परीमे गाम् अनेषत' इन वेद शब्दों के अनुसार वेदवाणी से परिणय करनेवाले ये वेदवाणी के पति ही 'जनिधा' हैं। वेदोपदिष्ट कर्मों के करने से ये सचमुच 'जनिधा' होते हैं। (३) हे **तुविजात**=इस महान् ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले, **इन्द्र**=प्रभो! ये **च नरः**=और जो लोग **ते**=आपकी **पूर्वीः**=हमारे जीवनों का पूरण करनेवाली **गिरः**=वेदवाणियों को **अन्नैः**=सात्त्विक अन्नों के सेवन के द्वारा, शुद्ध अन्तःकरणवाले होकर **प्रतिशिक्षन्ति**=एक-एक करके सीखते हैं, उन्हें आप पारं प्रेरय=भवसागर के पार प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्नों के सेवन से वेदवाणियों को शुद्ध अन्तःकरणों से समझें। वेदोपदिष्ट प्रभु की इच्छाओं के अनुसार कार्य करें। प्रभु हमें भवसागर से पार उतारेंगे।

ऋषिः—**वसुक्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'पूर्ण मदः पूर्ण मिदम्'

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि॥६॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं—हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **मात्रे ते**=अपने जीवन का निर्माण करनेवाले तेरे लिये, **मज्मना**=(मज शुद्धौ) शोधक **काव्येन**=ज्ञान से, **द्यौः पृथिवी**=द्युलोक तथा पृथिवीलोक **नु**=निश्चय से **सुमिते**=बड़ी उत्तमता से बनाये गये हैं और **पूर्वी**=ये तेरा पूरण करनेवाले हैं। द्युलोक से लेकर पृथ्वीलोक तक सारा ब्रह्माण्ड प्रभु की देदीप्यमान ज्योति से पूर्णता को लिये हुए बनाया गया है। यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है 'पूर्णमदः पूर्णमिदं'। कमी उन्हीं को लगती है जो जीवन के निर्माण की रुचिवाले न होकर भोगमार्ग में बह जाते हैं। भोगवृत्तिवाले के लिये संसार में कमी ही कमी है, पर निर्माणरूपि व्रती पुरुष को संसार में कमी नहीं दिखती। (२) हे **स्वाद्मन्**=(सु आ अद्मन्) सदा उत्तम भोजन खानेवाले जीव! **वराय**=(वृणोति इति) ठीक चुनाव करनेवाले तेरे लिये भोग की उपेक्षा जीवन के निर्माण को पसन्द करनेवाले तेरे लिये, **सुतासः**=भोजन से उत्पन्न सोमकण **घृतवन्तः**=मलों के क्षरणवाले तथा ज्ञान की दीप्ति को बढ़ानेवाले **भवन्तु**=हों। सात्त्विक भोजन से उत्पन्न शीतवीर्य के कण शरीर में ही सुरक्षित रहकर शरीर को रोगक्रान्त नहीं होने देते और साथ ही मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ये ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं। (३) ये सोमकण **पीतये**=रक्षण के लिये हों। इनकी रक्षा से हम शरीर व मन के रोगों से ऊपर उठें। **मधूनि** भवन्तु=ये अत्यन्त मधुर हों। ये हमारे स्वभाव व जीवन में माधुर्य को लाने का कारण बनें। सोम रक्षा के अभाव में ही स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है और हम द्वेष, ईर्ष्या व क्रोध के वश हो जाते हैं। सोम के सुरक्षित होने पर द्वेष का स्थान प्रेम ले-लेगा, ईर्ष्या के स्थान को मुदिता ले-लेगी और क्रोध करुणा से आक्रान्त होकर नष्ट हो जाएगा।

भावार्थ—जीवन का निर्माण करनेवाले के लिये यह संसार पूर्ण है, भोगवादी इसमें अपूर्णता को देखता है। सुरक्षित सोम हमें क्षीणमल, दीप्तज्ञान व मधुर-स्वभाव बनाता है।

ऋषिः—**वसुक्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

क्रतु-पौंस्य

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च॥ ७॥

(१) **अस्मा इन्द्राय**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये इस **पूर्णं अमत्रम्**=सब प्रकार की कमियों से रहित शरीररूप पात्र को **मध्वः**=मुझ से, सोम से **असिचन्**=सिक्त करते हैं। शरीर 'अमत्र' है, (अम गतौ, त्रा=पालने) गति के द्वारा इसका पालन होता है। यह शरीर पूर्ण है, उन्नति के लिये सब आवश्यक साधन इसमें जुटाये हुए हैं इसमें प्रभु ने आहार से रसादि के क्रम से वीर्य की उत्पत्ति की व्यवस्था की है। यह वीर्य यहाँ 'मधु' कहा गया है, यह सुरक्षित होकर जीवन को मधुर बनाता है। इसका शरीर में ही सेचन होने पर शरीर नीरोग बनता है और बुद्धि तीव्र होती है और इस प्रकार स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन वाले बनकर हम प्रभु दर्शन के योग्य होते हैं। (२) इस प्रकार शरीररूप पात्र को मधु से सिक्त करनेवाला **सः**=वह **हि**=निश्चय से **सत्यराधाः**=सत्य को सिद्ध करनेवाला अथवा सत्य सम्पत्तिवाला होता है। **स**=वह **पृथिव्याः**= पृथिवी के **वरिमन्**=विस्तृत प्रदेश में **आवावृधे**=सब प्रकार से बढ़ता है। (३) यह **अभि**=दोनों ओर, अन्दर और बाहर, अन्दर तो **क्रत्वा**=प्रज्ञान से **च**=और बाहर **पौंस्यैः**=वीरता पूर्ण कर्मों से बढ़ा हुआ यह **नर्यः**=सदा नरहित करनेवाला होता है। अपने में ज्ञान और शक्ति का समन्वय करके यह लोकहित के कार्यों में व्यस्त रहता है।

भावार्थ—हम शरीर को सोम से सिक्त करें वीर्यरक्षण द्वारा इसे पूर्ण बनायें। ज्ञान व शक्ति सम्पन्न होकर लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रथी व सारथि

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार **मधुः सोम**=वीर्य से शरीर को सिक्त करनेवाला **स्वोजाः**=उत्तम ओजवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **पृतनाः**=शत्रु-सैन्यों को **व्यानट्**=विशेषरूप से घेरनेवाला, उन्हें पराभूत करनेवाला बनता है। (२) इस प्रकार काम-क्रोधादि शत्रुओं को पराभूत करनेवाले **पूर्वीः**=अपना पूरण करनेवाले लोग **अस्मै सख्याय**=इस प्रभु की मित्रता के लिये **आयतन्ते**=सर्वथा प्रयत्न करते हैं। (३) प्रभु की मित्रता को प्राप्त करके प्रभु से यही चाहते हैं कि **न**=जैसे **पृतनासु**=संग्रामों में **रथम्**=रथ पर सारथि स्थित होता है उसी प्रकार हे प्रभो! आप भी **स्म**=निश्चय से **रथम्**=हमारे इस शरीर-रथ पर **आतिष्ठ**=आरूढ़ होइये। उस रथ पर **यम्**=जिसको कि **भद्रया सुमत्या**=कल्याणी सुमति से **चोदयासे**=प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मेरे रथ के सारथि हों, मैं अपनी जीवनयात्रा की दिशा प्रभु के निर्देश से चुनूँ।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से होता है कि मैं संयत भोजनवाला बनूँ। (१) सस्यभोजी होऊँ, (२) प्रभु मेरी वाणियों व इन्द्रिय द्वारों को शुद्ध कर दें, (३) प्रभु जैसा बनकर मैं प्रभु को पाऊँ, (४) प्रभु कृपा से भवसागर के पार हो जाऊँ, (५) निर्माता के लिये संसार में न्यूनता नहीं, (६) क्रतु और पौंस्य को सिद्ध कर मैं भी पूर्ण बनूँ, (७) प्रभु मेरे रथ के सारथि हों और मेरी यात्रा सुन्दरता से पूर्ण हो।

तृतीयोऽनुवाकः

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कवष एलूषः** ॥ देवता—**आपः अपान्नपाद्वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यात्रापूर्ति क्रम

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥ १ ॥

(१) प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि 'कवष ऐलूष' है। 'कवष' शब्द का अर्थ है 'ढाल'। जैसे एक योद्धा ढाल से अपने पर होनेवाले वार की रक्षा करता है इसी प्रकार यह अपने पर होनेवाले वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचाता है। ढाल का संकेत 'ऐलूष' शब्द में मिलता है। 'इडा' स्तुति को कहते हैं। स्तुति के द्वारा 'स्पति' अपने पापों का अन्त करता है, सो ऐडूष=ऐलूष कहलाता है। यह कवष ऐलूष **गातुः**=इस जीवन में यात्री बनता हुआ **ब्रह्मणे**=ब्रह्म की प्राप्ति के लिये **देवत्रा**=देवों में **प्र एतु**=प्रकर्षेण आये। ब्रह्म की प्राप्ति के लिये यही तो चाहिये कि हम अपने में दैवी सम्पत्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करें। जितना हम अपने में दिव्यगुणों का वर्धन करेंगे उतना ही उस परमदेव के समीप पहुँचते जाएँगे। (२) इन दिव्यगुणों के वर्धन के लिये यह कवष ऐलूष **अपः**=रेतःकणों की **अच्छा**=और **प्र एतु**=प्रकर्षेण आये। शरीर में रेतःकणों की रक्षा के लिये पूर्ण प्रयत्न करे। इन रेतःकणों के रक्षण से ही इसका शरीर नीरोग होता है और मन वासनाओं से शून्य। (३) रेतःकणों की रक्षा के लिये आवश्यक है कि मन सांसारिक विषयों की ओर न जाये। इसी बात को मन्त्र में इस तरह कहते हैं कि **मनसो न प्रयुक्ति**=मन के किसी भी विषय में

प्रयुक्ति=आसक्त न होने के द्वारा। मन को विषयों से ऊपर उठाकर ही हम रेतःकणों के रक्षण में समर्थ होते हैं। ये सुरक्षित रेतःकण हमारे मनों को सद्गुणों से अलंकृत करते हैं। (४) मन को विषयों में आसक्त न होने देने के लिये **मित्रस्य**=मित्र देवता के और **वरुणस्य**=वरुणदेव के **महीं धासिम्**=महनीय अन्न को (एतु) प्राप्त हो। हम उस अन्न का प्रयोग करें, जो हमें सबके साथ स्नेह करनेवाला तथा द्वेष के निवारण करनेवाला बनाये (मित्र-वरुण)। अन्न से ही तो मन का निर्माण होता है जैसा अन्न खायेंगे वैसा ही मन बनेगा। सात्त्विक अन्न के सेवन से मन सात्त्विक होगा। तभी हम वासनाओं से न आक्रान्त होने पर सोम का रक्षण कर पायेंगे। (५) इस सात्त्विक अन्न के सेवन के द्वारा मनो निरोध करते हुए 'कवष ऐलूष' को चाहिए कि वह **पृथुज्रयसे**=विशाल वेगवाले उस प्रभु के लिये, मन से भी अधिक वेगवान् उस प्रभु के लिये **सुवृक्तिम्**=उत्तमता से दोषवर्जनरूप स्तुति को **रीरधा**=सिद्ध करे। यह प्रभु स्तवन भी उसे लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाला होगा।

भावार्थ—इस प्रस्तुत मन्त्र में एक बड़ा सुन्दर कार्यकारणभाव का क्रम देखते हैं कि—(क) हम अपने को यात्री समझते हुए ब्रह्म को अपना लक्ष्य स्थान जानें, (२) इसके लिये अपने में दिव्य गुणों का वर्धन करें, (ख) दिव्यगुणों के वर्धन के लिये रेतःकणों का रक्षण करें, (ग) उसके लिये मन को विषयों में आसक्त न होने दें, (घ) इसके लिये सात्त्विक भोजन करें और उस प्रभु के लिये दोषवर्जनरूप स्तुति को सिद्ध करें।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अध्वर्यु-हविष्मान्

अध्व॒र्यवो ह॒विष्म॑न्तो॒ हि भू॒ताऽच्छा॒प इ॑तोश॒तीरु॑शन्तः।
अव॒ याश्चष्टे॑ अरु॒णः सु॑प॒र्णस्तमास्य॑ध्वमू॒र्मिम॒द्या सु॑हस्ताः॥ २॥

(१) उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **अध्वर्यवः**=(अ+ध्वर्+यु) अपने साथ हिंसा को न जोड़नेवाले और **हि**=निश्चय से **हविष्मन्तः**=हविवाले **भूत**=होइये। प्रभु की प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति हिंसा की वृत्ति से ऊपर उठता है और वह सदा दानपूर्वक अदन करनेवाला होता है। (२) **उशती**=हित को चाहनेवाले **अपः**=रेतःकणों की **अच्छा**=ओर **उशन्तः**=प्रबल इच्छावाले होते हुए **इत**=आओ, अर्थात् तुम्हारे अन्दर इन रेतःकणों के रक्षण की प्रबल भावना हो। इन रेतःकणों ने ही तो तुम्हारा रक्षण करना है। (३) ये सोमकण (=अपः) वे हैं **याः**=जिनको **सुपर्णः**=अपना उत्तमता से पालन व पूरण करनेवाला **अरुणः**=तेजस्वी पुरुष **अवचष्टे**=(To observe) बड़े ध्यान से देखता है, अर्थात् इनके रक्षण का पूर्ण प्रयत्न करता है। (४) हे **सुहस्ताः**=उत्तम हाथोंवाले, कार्यों को कुशलता से करनेवाले अथवा (हन् हिंसागत्योः=हस्त) उत्तमता से वासनाओं का हनन करनेवाले पुरुषो! **अद्या**=आज ही **तम्**=उस **ऊर्मिम्**=सोम संघात को, वीर्यकण समूह को **आस्यध्वम्**=अधिष्ठित करो, अर्थात् उनके शरीर में ही रक्षण के लिये यत्नशील होवो।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम—(क) हिंसा से ऊपर उठें, (ख) यज्ञशेष का सेवन करें और (ग) सोम का रक्षण करनेवाले बनें।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वह 'समुद्र व अपां नपात्'

अध्व॑र्यवोऽप इ॒ता स॑मु॒द्रम॒पां नपा॑तं ह॒विषा॑ यजध्वम्।
स वो॑ ददद्दू॒र्मिम॒द्या सुपू॑तं॒ तस्मै॒ सोम॒ं मधु॑मन्तं सुनोत॥ ३॥

(१) **अध्वर्यवः**=(अध्वर् यु) अपने साथ अहिंसा के सम्पृक्त करनेवालो! **अपः**=रेत:कणों के प्रति **इता**=जाओ, अर्थात् शरीर में इन रेत:कणों को सुरक्षित करनेवाले बनो। (२) रेत:कणों के रक्षण के लिये उस प्रभु के साथ **हविषा**=हवि के द्वारा, दानपूर्वक अदन के द्वारा **यजध्वम्**=अपना सम्पर्क बनाओ, जो प्रभु **समुद्रम्**=सदा मोद व हर्ष के साथ निवास करनेवाले हैं तथा **अपां नपातम्**=इन रेत:कणों का पतन न होने देनेवाले हैं। (३) **स**=वे प्रभु **वः**=तुम्हें **अद्य**=आज **सुपूतम्**=अत्यन्त पवित्रता के साधनभूत **ऊर्मिम्**=सोम-संघात को **ददत्**=दें। प्रभु कृपा से ही यह **सोमम्**=वीर्य प्राप्त होता है और यह हमारे जीवन को पवित्र बनाता है। (४) **तस्मै**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **मधुमन्तम्**=अत्यन्त माधुर्यवाले इस सोम का **सुनोत**=उत्पादन करो। उत्तम आहार के सेवन से शरीर में सोम की उत्पत्ति होती है, यह सोम हमारे जीवन को मधुर बनाता है और शरीर में सुरक्षित होकर, ज्ञानाग्नि को दीप्त करता हुआ, हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से, वासनाओं से बचने के द्वारा सोमरक्षण होता है और सोमरक्षण से बुद्धि सूक्ष्म होकर प्रभु दर्शन का साधन बनती है।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अनिध्म अग्नि

यो अ॒नि॒ध्मो दीद॑यद॒प्स्व१॒॑न्तर्यं विप्रा॑स॒ ईळ॑ते अध्व॒रेषु॑।
अपां॑ नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ या॒भि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑य॥ ४॥

(१) **यः**=जो प्रभु रूप अग्नि **अनिध्मः**=काष्ठों के बिना प्रज्वलित होनेवाली है और **अप्सु अन्तः**=प्रजाओं के हृदयों में (आपो नारा इति प्रोक्ताः आपो वै नर सूनवः) **दीदयत्**=देदीप्यमान है। **यम्**=जिसको **विप्रासः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले विद्वान् लोग **अध्वरेषु**=हिंसा रहित कर्मों में **ईडते**=उपासित करते हैं। वह **अपां नपात्**=हमारे रेत:कणों को न नष्ट होने देनेवाला है। (२) यह 'अपां न पात्' प्रभु **मधुमतीः**=हमारे जीवनों को मधुर बनानेवाले **अपः**=रेत:कणों को **दाः**=हमारे लिये देते हैं। वस्तुतः रेत:कणों के रक्षण से शरीर ही स्वस्थ बनता हो यह बात नहीं है, इनके रक्षण के परिणाम रूप मन भी स्वस्थ बनता है और मन में किसी प्रकार के राग-द्वेष की भावना उत्पन्न नहीं होती, हमारे मन बड़े मधुर बने रहते हैं। (३) ये रेत:कण वे हैं **याभिः**=जिनसे **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **वीर्याय**=शक्तिशाली कर्मों के करने के लिये **वावृधे**=बढ़ता है। वीर्य की स्थिरता ही मनुष्य के अन्दर उत्साह आदि गुणों का संचार करती है और उसे शक्तिशाली कर्मों को करने के लिये समर्थ करती है।

भावार्थ—प्रभु अग्नि हैं, इनके उपासन से वीर्य का रक्षण होकर हम आगे बढ़ने के योग्य होते हैं।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मोद व हर्ष

या॒भिः सोमो॒ मोद॑ते॒ हर्ष॑ते च कल्या॒णीभि॑र्युव॒तिभि॒र्न मर्यः॑।
ता अ॑ध्वर्यो अ॒पो अच्छा॒ परे॑हि॒ यदा॑सि॒ञ्चा ओष॑धीभिः पुनीतात्॥ ५॥

(१) गत मन्त्र में 'आपः' शब्द से 'सोम-कणों' का उल्लेख है। ये सोमकण वे हैं **याभिः**=जिनसे **सोमः**=सोमकणों का रक्षण करनेवाला और अतएव सौम्य स्वभाव पुरुष अथवा (स उमा) उमा, अर्थात् ब्रह्मविद्या से युक्त पुरुष **मोदते**=एक पूर्ण स्वास्थ्य के मौदिक सुख को प्राप्त करता है **च**=और

हर्षते=अध्यात्म आनन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार अनुभव करता है **न**=जैसे कि **मर्यः**=एक मनुष्य **कल्याणीभिः युवतिभिः**=मंगल स्वभाववाली युवतियों से। यदि घर में पत्नी, बहिन, ननद व भतीजी आदि सभी युवतियाँ प्रसन्न स्वभाव की तथा मुस्कराते हुए चेहरेवाली हों तो युवक पुरुष को प्रसन्नता का अनुभव होता है। इसी प्रकार सोम के रक्षण से एक आन्तरिक आनन्द की प्राप्ति होती है। (२) हे **अध्वर्यो**=अपने साथ अहिंसात्मक कर्मों को जोड़नेवाले पुरुष! तू **ताः अपः**=उन रेतःकणों की **अच्छा**=ओर आनेवाला हो। सदा इन रेतःकणों का रक्षण कर। इस रक्षण के लिये ही **परा-इहि**=सदा विषयों से दूर होने का प्रयत्न कर। मन को विषयों में न लगने देना ही वह उपाय है जो कि मनुष्य को सोम के रक्षण के योग्य बनाता है। (३) **यदा**=जब **आसिञ्चा**=तू इन रेतःकण रूप जलों से शरीर को समन्तात् सींच डालता है तो **ओषधीभिः पुनीतात्**=रोगमात्र की ओषधियों से ही अपने को पवित्र कर लेता है। इन वीर्यकणों में वह शक्ति है जो सब रोगकृमियों का संहार कर देती है, **ओष**=दहन को **धि**=आहित करती है एवं हमारा जीवन नीरोग हो जाता है, न केवल शरीर के दृष्टि से ही हम नीरोग हो जाते हैं, अपितु मानसदृष्टि से भी। तभी तो वस्तुतः हमारे जीवन में मोद व हर्ष आ पाते हैं।

भावार्थ—वीर्यरक्षण से हम शरीर व मन के दृष्टिकोण से स्वस्थ हों और यह स्वास्थ्य हमें मोद व हर्ष का अनुभव कराये।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मानस व बौद्धिक स्वास्थ्य

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः॥ ६॥

(१) **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **उशतीः**=हित की कामनावाले, अर्थात् सदा अपने रक्षक का हित करनेवाले इन (आपः) रेतःकणों की **अच्छ**=ओर **उशन्**=चाहता हुआ युवक **एति**=प्राप्त होता है, तो **एवा इत्**=ऐसा होने पर ही **यूने**=उस युवक के लिये **युवतयः**=युवतियाँ **नमन्त**=आदरवाली होती हैं। रेतःकणों के रक्षण से युवक का शरीर इतना सुन्दर प्रतीत होता है कि सब युवतियाँ उसकी ओर आकृष्ट होती हैं, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करती हैं, उनमें उसके प्रति आदर का भाव होता है। (२) **च**=और ये **देवीः**=सब रोगों के जीतने की कामनावाले **आपः**=रेतःकण **संजानते**=संज्ञानवाले होते हैं। अपने रक्षक में उत्तम ज्ञान को पैदा करनेवाले होते हैं और **मनसा**=मन के दृष्टिकोण से **संचिकित्रे**=इसकी उत्तम चिकित्सा करते हैं, अर्थात् इसके मन में किसी प्रकार के विकार को नहीं रहने देते एवं रेतःकणों के रक्षण से जहाँ बुद्धि में दीप्ति आकर ज्ञानवृद्धि होती है वहाँ मन में पवित्रता का संचार होता है। (३) इस प्रकार ये दिव्यगुणोंवाले रेतःकण **अध्वर्यवः**=अपने रक्षक के साथ 'अ+ध्वर+यु'=अहिंसा को जोड़नेवाले हैं और **धिषणा**=ये बुद्धि ही बुद्धि हैं, अर्थात् इनका रक्षण बुद्धि को तीव्र बनानेवाला है।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण शरीर के स्वास्थ्य के साथ मन व बुद्धि के स्वास्थ्य को देनेवाला है।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मधुमान् ऊर्मि

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत्।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः॥ ७॥

(१) हे **आपः**=रेतःकणो! **यः**=जो भी युवक **वृताभ्यः**=वरण किये गये, स्वीकार किये गये **वः**=आपके लिये **लोकम्**=शरीर में स्थान को **अकृणोत्**=बनाता है, अर्थात् जो आपको शरीर में ही सुरक्षित करता है और **यः**=जो **वः**=आपको **मह्याः**=इस पृथिवी के **अभिशस्तेः**=हिंसन से, अर्थात् पार्थिव भोगों में आसक्ति के कारण विनाश से **अमुञ्चत्**=मुक्त करता है, पार्थिव भोगों में फँसकर कभी तुम रेतःकणों का नाश नहीं होने देता। (२) **तस्मा**=(तस्मै) उस **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **मधुमन्तम्**=अत्यन्त माधुर्यवाली **ऊर्मिम्**=तरंग को **प्रहिणोत**=प्रकर्षेण प्राप्त कराओ, अर्थात् इसके जीवन को उत्साह-सम्पन्न करो, परन्तु इस उत्साह से उसका जीवन माधुर्यमय हो। इसमें स्फूर्ति हो, स्फूर्ति के साथ मधुरता हो। यह माधुर्य व स्फूर्ति से युक्त होकर सब कार्यों को करनेवाला हो। यह ऊर्मि **देवामादनम्**=देवों को हर्षित करनेवाली हो, अर्थात् इसके इस मधुर उत्साह को देखकर इसके माता, पिता, आचार्य आदि सब देव प्रसन्न हों। **अनात**=इसकी यह मधुमान् ऊर्मि उस देवाधिदेव परमात्मा को भी प्रसन्न करनेवाली हो, इसके कारण यह प्रभु का भी प्रिय बने।

भावार्थ—जो रेतःकणों का रक्षण करता है वह रक्षित रेतःकणों के कारण मधुर व उत्साह सम्पन्न जीवनवाला होता है, इससे मधुर उत्साह सम्पन्न जीवन से यह सब देवों को प्रीणित करनेवाला होता है।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उत्साह, ज्ञान व निर्मलता

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे॥ ८॥

(१) हे **सिन्धवः**=स्यन्दनशील रेतःकणो! **यः**=जो **वः**=आपका **गर्भः**=गर्भरूपेण मध्य में रहनेवाला **मध्वः उत्सः**=माधुर्य का चश्मा है, उस **मधुमन्तं ऊर्मिम्**=मधुर उत्साह तरंग को **अस्मै**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **प्रहिणोत**=प्रकर्षेण प्राप्त कराओ। आपके रक्षण से इसका जीवन माधुर्य का स्रोत ही बन जाए। उस माधुर्य में उत्साह तरंगित होता हो, अर्थात् आपका रक्षक स्फूर्ति-सम्पन्न माधुर्य को प्राप्त करे। (२) हे **आपः**=रेतःकणो! आप **रेवतीः**=सब प्रकार की रयि से सम्पन्न हो। आप से उत्पन्न ऊर्मि=उत्साह तरंग **घृतपृष्ठम्**=ज्ञान की दीप्ति व ईर्ष्यादि मानस मलों के क्षरण के पृष्ठ पर है और अतएव **ईड्यम्**=स्तुति के योग्य है। रेतःकणों से ज्ञान दीप्त होता है, मानस मल दूर होते हैं, जीवन को ये प्रशस्त बनाते हैं। (३) सो हे रेतःकणो! आप **अध्वरेषु**=इन जीवन के अहिंसात्मक यज्ञों में **मे**=मेरी **हवम्**=पुकार को **शृणुत**=सुनो, अर्थात् तुम मेरे अन्दर सुरक्षित रहते हुए मेरे जीवन में माधुर्य का संचार करो, मेरी ज्ञानदीप्ति व निर्मलता का आधार बनो, आपके रक्षण से मेरा जीवन सब आवश्यक रयि से सम्पन्न हो। यही मेरी प्रार्थना है। रेतःकणों के रक्षण से यह पूर्ण हो।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण हमें उत्साह सम्पन्न ज्ञानी व निर्मल वृत्ति बनाता है।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्रि-तन्तु

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम्॥ ९॥

(१) हे **सिन्धवः**=शरीर में रुधिर के साथ सर्वत्र स्यन्दनशील रेतःकणो! **तं ऊर्मिम्**=उस तरङ्ग को **प्रहेत**=हमें प्रकर्षेण प्राप्त कराओ जो **मत्सरम्**=(मादयितारं) जीवन के अन्दर उल्लास को उत्पन्न करनेवाली है, **इन्द्रपानम्**=जितेन्द्रिय पुरुष का रक्षण करनेवाली है। (२) उस ऊर्मि को प्राप्त कराओ **यः**=जो **उभे**=शरीर व मस्तिष्क दोनों को गतिमय बनाती है। जिसके कारण शरीर में गतिशीलता बनी रहती है और मस्तिष्क कहीं कुण्ठित नहीं होता। (३) उस ऊर्मि को प्राप्त कराओ जो कि 'मदच्युतं' शब्द की यह भावना भी सुन्दर है कि 'अभिमान को हमारे से दूर करनेवाली है'। **मदच्युतम्**=हमारे जीवनों में मद व हर्ष को टपकानेवाली है, **औशानम्**=उस प्रभु की प्राप्ति की कामना को हमारे में उत्पन्न करनेवाली है, **नभोजाम्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में प्रकाश के प्रादुर्भाव को करनेवाली है, **परि**=(सर्वतः) सब दृष्टिकोणों से **त्रितन्तुम्**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों का विस्तार करनेवाली है, **विचरन्तम्**=विशेषरूप से जीवन को क्रियाशील बनानेवाली है, **उत्सम्**=उत्स्यन्दनं (=देवानां प्रति ऊर्ध्वं गन्तारं सा०) हमें उत्कृष्ट गतिवाला करके दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली है।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण हमें उन्नतवाला, सुन्दर शरीर व मस्तिष्कवाला निरभिमान प्रभु-प्रवण, क्रियाशील व ऊर्ध्व गतिवाला बनाता है।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अपा-वन्दना

आ॒वर्वृ॑तती॒रध॒ नु द्वि॒धारा॒ गोषु॒युधो॒ न नि॒य॒वं चर॑न्तीः।
ऋषे॒ जनि॑त्री॒र्भुव॑नस्य॒ पत्नी॑र॒पो व॑न्दस्व स॒वृध॒ः सयो॑नीः॥ १०॥

(१) प्रभु अपने पुत्र जीव से कहते हैं कि—हे **ऋषे**=तत्त्वद्रष्टः! तत्त्वज्ञान की प्राप्ति की रुचिवाले! तू **अपः**=शरीर में रेतःकणों के रूप से रहनेवाले इन जलों का **वन्दस्व**=वन्दन कर। इनकी स्तुति करता हुआ तू इनके महत्त्व को समझ और इनकी रक्षा के लिये यत्नशील हो। ये रेतःकण **भुवनस्य जनित्रीः**=सब प्राणियों को जन्म देनेवाले हैं। इन्हीं से सब शरीरों का जन्म होता है। **पत्नीः**=ये उत्पन्न शरीरों का रक्षण करनेवाले हैं। ये ही उन्हें रोगादि से बचाकर सुरक्षित करते हैं। **संवृधः**=ये सदा वृद्धि के साथ होते हैं। इनके कारण ही सब प्रकार की उन्नतियाँ हुआ करती हैं। **सयोनीः**=(योनिः गृहम्) ये ही मनुष्य को पुनः अपने घर में प्राप्त करनेवाले हैं, इनके रक्षण से ही उन्नति करता हुआ जीव ब्रह्म को प्राप्त करता है। ब्रह्मलोक ही जीव का मूल निवास-स्थान है। वीर्यरक्षण हमें इस निवास-स्थान पर पहुँचने में सहायक होता है। (२) **आवर्वृततीः**=शरीर में ही समन्तात् होते हुए ये रेतःकण **अध**=अब **नु**=(ननु) निश्चय से **द्विधाराः**=शरीर व मस्तिष्क दोनों का धारण करनेवाले होते हैं अथवा इहलोक व परलोक दोनों का पोषण करनेवाले होते हैं। (३) **गोषुयुधः न**=(गावः इन्द्रियाणि) इन्द्रियों के निमित्त युद्ध करनेवालों की तरह ये रेतःकण **नियवम्**=(यु मिश्रणामिश्रणयोः) दुरितों के अमिश्रण व भद्रों के मिश्रण को **चरन्तीः**=(चर गतौ) प्राप्त करनेवाले होते हैं। इन रेतःकणों के रक्षण के होने पर ये रेतःकण इन्द्रियों में आ जानेवाली कमियों को दूर करते हैं। इन्द्रियों को वैषयिकरण से ये ऊपर उठाते हैं। सब नैर्मल्य इन्हीं पर निर्भर करता है।

भावार्थ—रेतःकण इहलोक व परलोक दोनों को सुन्दर बनानेवाले हैं। इस लोक में वृद्धि का कारण होते हुए ये परलोक में हमें ब्रह्मरूप गृह में प्राप्त कराते हैं, अर्थात् हमारे मोक्ष का साधन बनते हैं।

ऋषिः—**कवष एलूषः** ॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुखद' रेतःकण

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥ ११ ॥

(१) हे **आपः**=रेतःरूप में शरीरस्थ जलो! **नः**=हमारे जीवन में **अध्वरम्**=हिंसारहित यज्ञादि कर्मों को **हिनोता**=प्रेरित करिये। **देवयज्या**=देवों के संगतिकरण, विद्वानों के मेल को **हिनोत**=प्राप्त कराइये। देवों के सम्पर्क में आकर के ही हम तेजस्वी बनेंगे, इनके संग में रहते हुए हम हिंसादि अशुभ कर्मों में प्रवृत्त न होंगे। (२) **ब्रह्म**=ज्ञान को या स्तुति को हमारे में प्रेरित करिये। वीर्यरक्षण से हमारी ज्ञानाग्नि दीप्त हो और हमारा मन प्रभु-स्तुति के प्रति झुकाववाला हो। (३) हे रेतःकणो! आप **धानानां सनये**=धनों की प्राप्ति के लिये हमें प्रेरित करिये, अर्थात् आपके रक्षण से हमारे जीवनों को धन्य बनानेवाले धनों को हम प्राप्त करनेवाले बनें। वीर्यरक्षण के अभाव में ही मनुष्य अन्याय मार्ग से धन कमाने लगता है। (४) **ऋतस्य योगे**=हमारे जीवनों में ऋत का योग होने पर, अर्थात् जब हम धनादि के कमाने के लिये कभी अनृत का प्रयोग न करें तो आप **ऊधः**=वेदवाणी रूप गौ के ऊधस् को, ज्ञानकोश को **विष्यध्वम्**=वियुक्त करो, खोलनेवाले बनो। हमारे लिये यह वेदवाणीरूप गौ खूब ही ज्ञानदुग्ध को देनेवाली हो। (५) हे **आपः**=रेतःकणो! इस प्रकार आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **श्रुष्टीवरीः**=(सुखवत्यः सा०) सुख को देनेवाले **भूतन**=होइये। रेतःकणों के रक्षण से हमारा जीवन सुख ही सुखवाला हो।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण हमें 'अध्वर, देवयज्या, ब्रह्म, धन प्राप्ति, ऋत, ज्ञान व सुख' की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**कवष एलूषः** ॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भद्र क्रतु व अमृत

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद् गृणते वयो धात् ॥ १२ ॥

(१) **आपः**=हे रेतःकणों के रूप से शरीर में स्थित जलो! आप **रेवतीः**=रयिवाले हो, अन्नमयादि सब कोशों की सम्पत्ति आपके अन्दर है। **हि**=निश्चय से **वस्वः**=निवास के लिये सब आवश्यक तत्त्वों का **क्षयथा**=(क्षि=निवास) अपने में धारण करते हो। जीवन के सब वसु आप में स्थित हैं। (२) **च**=और **भद्रम्**=कल्याणकारक व सुखजनक **क्रतुम्**=ज्ञान को व शक्ति को आप **बिभृथ**=धारण करते हो। ये रेतःकण ऊर्ध्व गतिवाले होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके हम अपने कल्याण व सुख को सिद्ध करनेवाले होते हैं। **अमृतं च**=ज्ञान के साथ आप अमरता को भी धारण करते हो 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'। वीर्यकण सुरक्षित होकर रोगकृमियों का विध्वंस करते हैं और हमारा जीवन नीरोग बनता है। रोगरूप मृत्युओं के शिकार न होकर हम अमर बनते हैं। (३) हे रेतःकणो! आप **स्वपत्यस्य रायः च**=उत्तम सन्तानवाले धन के भी **पत्नीः**=रक्षक हो। आपके द्वारा जहाँ हम धन कमाने की योग्यता प्राप्त करते हैं, वहाँ हमारे सन्तान भी उत्तम होते हैं। रेतःकणों का रक्षण उत्तम सन्तान को तो प्राप्त कराता ही है, साथ ही हमारी शक्ति व बुद्धि में वृद्धि होकर हम धन भी कमानेवाले बनते हैं। (४) **सरस्वती**=अब ज्ञान स्वरूप परमात्मा **तद् गृणते**=उन रेतःकणों का स्तवन करनेवाले पुरुष के लिये

वयः=उत्कृष्ट जीवन को **धात्**=धारण करता है। रेतःकणों का स्तवन यही है कि हम उनका रक्षण करनेवाले बनें और इनका रक्षण करने पर हमारा ज्ञान व बल बढ़ता है, परिणामतः हमारा जीवन उत्तम बनता है। ज्ञान स्वरूप परमात्मा का अर्चन वीर्यरक्षण से ही होता है, क्योंकि ये सुरक्षित रेत:कण ही तो ज्ञानाग्नि के ईंधन हैं।

भावार्थ—सुरक्षित रेत:कण हमें 'श्रेयो ज्ञान' तथा अमरता (नीरोगता) प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'घृतं-पयांसि-मधूनि'

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः॥ १३॥

(१) हे **आपः**=रेत:कणो! **यद्**=जब मैं आपको **आयतीः**=शरीर में सर्वत्र गति करते हुए, अर्थात् शरीर में रुधिर के साथ व्याप्त होते हुए **प्रति अदृश्रम्**=प्रतिदिन देखता हूँ, अर्थात् जब आपका अपव्यय न होकर शरीर में ही रक्षण होता है तो मैं देखता हूँ कि आप **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति व मलों के क्षरण को, बुद्धि की तीव्रता व मानस निर्मलता को, **पयांसि**=सब प्रकार के आप्यायन को, शरीर की शक्तियों के वर्धन को तथा **मधूनि**=मधुर वचनों व व्यवहारों को **बिभ्रतीः**=धारण करते हुए हो। वीर्यरक्षण से जहाँ (क) हमारी बुद्धि बढ़ती है, वहाँ (ख) मन निर्मल होता है, (ग) हमारे शरीर की सब शक्तियों का आप्यायन होता है और (घ) हमारे जीवन में माधुर्य की वृद्धि होती है। (२) हे रेत:कणो! आप **अध्वर्युभिः**=अध्वर-हिंसारहित यज्ञों को अपने साथ जोड़नेवाले पुरुषों के साथ **मनसा संविदानाः**=मन से संज्ञानवाले होवो। अध्वर्युओं के साथ आपका मेल हो। दूसरे शब्दों में जो भी व्यक्ति अध्वर्यु बनता है उसके साथ आपका मेल होता है। यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगा हुआ पुरुष इनका रक्षण करनेवाला बनता है। ये आपः=रेत:कण **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **सुषुतं सोमम्**=इस उत्तमता से उत्पादित सोम को **भरन्तीः**=पुष्ट करनेवाले होते हैं। सोम शक्ति-सम्पन्न बनकर यह व्यक्ति सोम्य व शान्त स्वभाव का होता है। (३) यहाँ मन्त्र के पूर्वार्ध में रेत:कणों के रक्षण के लाभों का देना है। 'घृतं, पयांसि, मधूनि'=ये शब्द उन लाभों का वर्णन इस रूप में कर रहे हैं कि ज्ञान दीप्त होगा, मन निर्मल होगा, शरीर की शक्तियों का आप्यायन होगा तथा वचन व व्यवहार में मिठास आ जायेगी। उत्तरार्ध में रेत:कणों के रक्षण के उपाय 'अध्वर्युभिः' तथा 'इन्द्राय' शब्दों से सूचित किये गये हैं। 'यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहना' यह रेत:रक्षण के लिये आवश्यक है। दूसरा उपाय जितेन्द्रियता है, अजितेन्द्रिय के लिये वीर्यरक्षण का सम्भव नहीं। 'खाली न रहें, जितेन्द्रिय बनने का प्रयत्न करें' यही रास्ता है जिस पर कि चलकर हम वीर्यरक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—वीर्यरक्षण के लाभ हैं—ज्ञानदीप्ति, मानस नैर्मल्य, शक्तियों का आप्यान व माधुर्य। वीर्यरक्षण का उपाय है—यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे रहना और जितेन्द्रिय बनने का प्रयत्न करना।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रेवतीः आपः

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः॥ १४॥

(१) **इमाः**=ये रेत:कणों के रूप में स्थित जल **आ अग्मन्**=हमें सर्वथा प्राप्त हुए हैं।

रेवतीः=ये रयिवाले हैं, शरीर के सब कोशों को ये सम्पत्ति से परिपूर्ण करनेवाले हैं। **जीवधन्याः**=ये हमारे जीवन को धन्य बनानेवाले हैं, सब कमियों को दूर करके ये प्रीणित करनेवाले हैं। (२) इस प्रकार रयिवाले तथा प्रीणित करनेवाले इन रेतःकणों को हे **अध्वर्यवः**=अपने साथ हिंसारहित कर्मों के जोड़नेवाले **सखायः**=प्रभु की मित्रता को धारण करनेवाले लोगो! **सादयता**=अपने शरीरों के अन्दर स्थापित करो। इन्हें नष्ट मत होने दो। (३) हे **सोम्यासः**=सोम का, वीर्य का सम्पादन करनेवालो! आप **अपांनप्त्रा**=इन रेतःकणों को नष्ट न होने देनेवाले उस प्रभु के साथ **संविदानासः**= संज्ञानवाले होते हुए, अर्थात् प्रातः-सायं उस प्रभु के चरणों में उपस्थित होनेवाले बनकर **एनाः**=इन रेतःकणों को **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय के होने पर **निधत्तन**=अन्दर शरीर में ही धारण करनेवाले बनो। रेतःकणों के रक्षण के लिये प्रभु का उपासन आवश्यक है। प्रभु के उपासन से हृदय वासनाशून्य बनता है और ऐसा होने पर ही रेतःकणों के रक्षण का सम्भव होता है।

भावार्थ—रेतःकण ही शरीर के सब कोशों को रयि से पूर्ण करते हैं। इनके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम (क) यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहें, (ख) प्रभु का उपासन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**कवष एलूषः**॥ देवता—**आप अपान्नपाद्वा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवयज्या

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या॥ १५॥

(१) **उशतीः**=हमारे हित की कामना करते हुए **आपः**=रेतःकण **इदं बर्हिः**=इस वासनाशून्य हृदय को **आ आग्मन्**=सर्वथा प्राप्त हुए हैं। (२) **देवयन्तीः**=हमारे रोगादि शत्रुओं को जीतने की कामना करते हुए ये रेतःकण **अध्वरे**=इस हिंसारहित जीवनयज्ञ में **वि असदन्**=निश्चय से शरीर के अन्दर स्थित हुए हैं। जब जीवन क्रूर भावों से शून्य होता है तो इन रेतःकणों का रक्षण सुगम होता है। सुरक्षित रेतःकण रोगकृमियों को नष्ट करते हैं और हमें स्वस्थ बनाते हैं। (३) इसलिए **अध्वर्यवः**=अध्वर-यज्ञ को अपने साथ जोड़नेवाले व्यक्तियों **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **सोमं सुनुत**=सोम का, इन रेतःकणों का अभिषव करो। इनको अपने शरीर में उत्पन्न करो। जिससे **वः**=तुम्हारे लिये **देवयज्या**=उस देव के साथ संगतिकरण, अर्थात् उस प्रभु की प्राप्ति **उ**=निश्चय से **सुशका अभूत्**=सुगमता से हो सकनेवाली हो। इस सोम के, वीर्य के रक्षण से उस सोम की, प्रभु की प्राप्ति सुगम हो ही जाती है।

भावार्थ—सुरक्षित रेतःकण रोगों को नष्ट करते हैं और हमारे लिये प्रभु प्राप्ति को सुगम कर देते हैं।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से होता है कि 'हम यात्री हैं और ब्रह्म प्राप्ति हमारा लक्ष्य है' (१) प्रभु प्राप्ति के लिये हम हिंसा से ऊपर उठें और यज्ञशेष का सेवन करें, (२) प्रभु का उपासन हमें वीर्यरक्षण में समर्थ करता है, (३) इस वीर्यरक्षण से हमारा जीवन मधुर बनता है, (४) वीर्यरक्षण से हम शरीर व मन के दृष्टिकोण से स्वस्थ बनते हैं, (५) रेतःकणों का रक्षण बुद्धि को तीव्र करता है, (६) जीवन को यह उत्साह सम्पन्न बनाता है, (७) इससे हम ज्ञानी व निर्मल वृत्तिवाले बनते हैं, (८) एवं वीर्यरक्षण 'त्रितन्तु' है, 'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों की शक्तियों का विस्तार करता है, (९) यह वीर्यरक्षण इहलोक व परलोक दोनों को सुन्दर बनाता है, (१०) ये रेतःकण सुख के देनेवाले हैं, (११) ये 'ऋत' व 'अमृत' को प्राप्त कराते हैं, (१२) ये घृत पयस् व मधु को अपने में लिये हुए हैं, (१३) रेवती हैं, (१४) इनके द्वारा प्रभु प्राप्ति सुगमता

से हो पाती है, (१५) हमें देवों से दिये जानेवाला ज्ञान प्राप्त हो।

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देव-मैत्री

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम॥ १॥

(१) **नः**=हमें **देवानां शंसः**=देवों का ज्ञान, अर्थात् देवों से दिये जानेवाला ज्ञान **उपवेतु**=समीपता से प्राप्त हो। हम देवों के समीप, ज्ञान-ज्योति से दीप्त गुरुओं के समीप उपस्थित हों। हम उन्हें पुकारें (उपहूतो वाचस्पतिः), वे वाचस्पति हमें समीप उपस्थित होने की स्वीकृति दें (उपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्) इन आचार्यों के चरणों में बैठकर हम ज्ञान को प्राप्त करें। (२) यह ज्ञान **विश्वेभिः**=सब **तुरैः**=बुराइयों के संहार के द्वारा **अवसे**=रक्षण के लिये **यजत्रः**=संगतिकरण योग्य है। इस ज्ञान को हमें इसलिये प्राप्त करना चाहिये कि यह सब बुराइयों को समाप्त करनेवाला है। (३) सो **वयम्**=हम **तेभिः**=उन देवों के साथ **सुषखायः**=उत्तम मित्रतावाले **भवेम**=हों। इनके सम्पर्क में रहते हुए हम उत्तम ज्ञान को प्राप्त करें। (४) ज्ञान को प्राप्त करते हुए हम **विश्वा**=सब **दुरिता**=बुराइयों को **तरन्तः**=तैरते हुए **स्याम**=हों। सब बुराइयों के हम पार हो जायें। बुराइयों को छोड़कर अच्छाइयों को प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—देवों के सम्पर्क से ज्ञान प्राप्त करें। यह ज्ञान हमारी न्यूनताओं को दूर करे। ज्ञानियों की मित्रता से हम दुरितों को तैर जायें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यज्ञार्थ-धन

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत्।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात्॥ २॥

(१) **मर्तः**=मनुष्य **परिचित्**=सब ओर से ही, अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थ से **द्रविणम्**=धन को **ममन्यात्**=(कामयेत्) चाहे। धन की कामना तो करे, परन्तु **ऋतस्य पथा**=ऋत के मार्ग से ही धन को कमाने की अभिलाषा करे। धन को कमाता हुआ **नमसा**=नमन के द्वारा **विवासेत्**=उस प्रभु की परिचर्या करे। यह प्रभु स्मरण उसे अन्याय मार्ग से धन कमाने से रोकेगा। 'अग्ने नय सुपथा राये, भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम'। (२) **उत**=और इस प्रकार प्रभु स्मरण के साथ न्याय्य मार्ग से धनों को कमाता हुआ यह व्यक्ति **स्वेन क्रतुना**=अपने यज्ञों के साथ **संवदेत**=संवादवाला हो। अपने जीवन को यह यज्ञमय बनाये। धनों का विनियोग यह यज्ञों में ही करे। (३) इन यज्ञों को करता हुआ यह **मनसा**=मन से **श्रेयांसम्**=अतिशयेन कल्याणकर **दक्षम्**=प्रवृद्ध उस प्रभु को **जगृभ्यात्**=ग्रहण करे। यज्ञों को करते हुए, मन से प्रभु स्मरण करना इसलिए आवश्यक है कि हम उन यज्ञों के अहंकारवाले न हो जाएँ। यह प्रभु स्मरण हमें कल्याण को प्राप्त करानेवाला होगा तथा सब प्रकार से हमारी वृद्धि का कारण बनेगा, श्रेयान्=(दक्ष)।

भावार्थ—हम धन कमायें। धनों का विनियोग यज्ञों में करें। उन यज्ञों को प्रभु कृपा से होता हुआ जानकर अहंकारवाले न हों।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ध्यान व स्वास्थ्य

अधायि धीतिरसंसृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥ ३ ॥

(१) **धीतिः**=ध्यान **अधायि**=धारण किया गया, अर्थात् प्रभु ध्यान को हमने जीवन का एक नैत्यिक कार्य बना लिया। (२) और **तीर्थे**=तीर्थों में, पात्रों में **अंशाः**=अंश **असंसृग्रम्**=बनाये गये, अर्थात् हमने उपार्जित धन में से पात्रों में, योग्य व्यक्तियों में धनांश को प्राप्त कराया। यही धनों का यज्ञों में विनियोग है। (३) इस प्रकार करने पर **ऊमाः**=(अवितारः) पात्रों में दिये गये ये धनांश हमारे रक्षक होते हैं। ये रक्षक धनांश **दस्मम्**=विनाश को **न उपयन्ति**=नहीं प्राप्त होते हैं, अर्थात् यह धनांशों का यज्ञों में विनियोग सदा चलता रहता है, इसमें कभी विच्छेद नहीं होता। (४) इसके परिणामरूप हम **सुवितस्य**=उत्तम आचरण के **शूषम्**=सुख को **अभ्यानश्म**=प्राप्त करनेवाले हों। यज्ञ की वृत्ति हमें दुष्टाचरण से बचाती है और परिणामतः दुःखों से छुड़ाती है। (५) सुवित के सुख को अनुभव करते हुए हम **अमृतानाम्**=नीरोगताओं के **नवेदसः**=(न वेत्तारः, वेत्तार एव) जाननेवाले **अभूम**=हों। हम जीवन में सदा स्वस्थ हों।

भावार्थ—हमारा जीवन प्रभु ध्यान से समवेत हो, हम पात्रों में धनों के देनेवाले हों, ये धनांशों के दान सतत चलते रहें, सदाचरण के सुख का हम अनुभव करें और पूर्ण नीरोग हों।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आत्मशासन

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥ ४ ॥

(१) मनुष्य को चाहिये कि वह **नित्यः**=सदा **चाकन्यात्**=उस प्रभु की कामना करे। प्रभु प्राप्ति के लिये कामना ही सर्वोत्तम कामना है। इस कामना की पूर्ति के लिये **स्वपतिः**=वह अपना पति बने, अपना रक्षण करनेवाला हो। विषय-वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचायें। **दमूनाः**=(दान्तमनाः) अपने मन का दमन करनेवाला हो। दान्त मन ही हमारा बन्धु है, अजित मन तो हमारा नाश करनेवाला होता है। 'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः येनात्मैवात्मना जितः, अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्'। (२) यह स्वपति व दमूना वह व्यक्ति होता है **यस्मै**=जिसके लिये **उ**=निश्चय से **सविता देवः**=वह प्रेरक प्रकाशमय प्रभु **जजान**=अपने को प्रकट करता है। **वा**=और **भगः**=ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवता **गोभिः**=गौ इत्यादि पशुओं से **एनम्**=इसको **अनज्यात्**=अलंकृत करता है, अर्थात् इसके पास गवादि धन की किसी प्रकार से कमी नहीं होती। **अर्यमा**=(अर्यमेति तमाहुर्योददाति) दान की अधिष्ठात्री देवता भी **ईम्**=निश्चय से **एनम्**=इसको **अनज्यात्**=अलंकृत करती है, अर्थात् यह धनों का खूब दान देनेवाला बनता है। (३) अब **सः**=वह **चारुः**=सुन्दर ही सुन्दर प्रभु **अस्मै**=इसके लिये **छदयत्**=शरण को देनेवाला **उत**=निश्चय से **स्यात्**=होता है।

भावार्थ—जब मनुष्य प्रभु की कामनावाला होकर आत्मशासन करता है तो प्रभु उसके लिये प्रकाशित होते हैं, इसे आवश्यक धन व दान की वृत्ति प्राप्त कराते हैं और अन्ततः यह उस सुन्दरतम प्रभु की शरण में होता है।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शान्तिकर शक्तियाँ

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन्।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥ ५ ॥

(१) **यद् ह**=जब निश्चय से **क्षुमन्तः**=भूखवाले, अर्थात् जिनकी जाठराग्नि बुझ नहीं गई और जाठराग्नि के ठीक होने के कारण ही **शवसा**=बल व शक्ति के साथ **समायन्**=गतिवाले होते हैं, तब **इयं सा क्षा**=यह वह प्रसिद्ध पृथिवी **उषसां इव**=उषःकालों की तरह **भूयाः**=हो, अर्थात् जिस प्रकार उषःकाल के द्वारा अन्धकार का नाश होकर उत्तरोत्तर प्रकाश की वृद्धि होती चलती है, उसी प्रकार हमारे जीवनों में उत्तरोत्तर ज्ञान का प्रकाश बढ़ता चले। इस प्रकार के जीवन को बनाने के लिये यह आवश्यक ही है कि हमारा शरीर का स्वास्थ्य ठीक हो, हम शक्ति-सम्पन्न हों और गतिशील क्रियामय जीवनवाले हों। (२) **अस्य**=इस क्रियात्मक जीवन से **जरितुः**=स्तुति करनेवाले की **स्तुतिं भिक्षमाणाः**=स्तुति की प्रार्थना करते हुए, अर्थात् इस प्रकार की स्तुति को सदा कर सकने की कामनावाले **शग्मासः**=अत्यन्त सुख को करनेवाले, 'peace, plenty and power' वाले **वाजाः**=बल व ज्ञान **नः**=हमें **उपयन्तु**=समीपता से प्राप्त हों, अर्थात् हम शान्तिकर सुखों से युक्त बलों को प्राप्त करें, परन्तु वे बल हमें प्रभु की क्रियात्मक स्तुति से सम्पन्न करनेवाले हों।

भावार्थ—हमारी जाठराग्नि ठीक हो, शक्ति से युक्त होकर हम क्रियामय जीवनवाले हों। हमारे जीवन में उत्तरोत्तर प्रकाश की अभिवृद्धि हो। हमें सुखकर शक्तियों की प्राप्ति हो और हम प्रभु-स्तवन से कभी दूर न हों।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुमति व भरण

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाऽभवत्पूर्व्या भूमना गौः।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र में प्रतिपादित हुई **एषा**=यह **अस्य**=इस स्तोता की **सुमतिः**=कल्याणीमति **इत्**=निश्चय से **पप्रथाना**=निरन्तर विस्तृत होनेवाली हो। इस सुमति में कमी न आकर वृद्धि ही हो। (२) यह कल्याणीमति (क) **पूर्व्या**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हो। इस मति से शरीर रोगों से सुरक्षित रहे और मन में वासनाओं के कारण न्यूनता न आ जाये। यह सुमति (ख) **भूमना**='बहुत्वेन युक्त' हो, अर्थात् अपने परिवार को विस्तृत करनेवाली हो, वसुधा को ही अपना परिवार बनानेवाली हो। (ग) **गौः**=यह सुमति तत्त्वज्ञान को प्राप्त करानेवाली हो। तात्त्विक ज्ञान तो यही है कि हम सब उस प्रभु के पुत्र हैं और परस्पर भाई-भाई हैं, एक दूसरे के वर्धन में ही हमारी अभिवृद्धि है। (३) इस प्रकार एक परिवार के बनकर हम **अस्य असुरस्य**=इस प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाले (असून् रातिं) प्रभु के **योनौ**=गृह में **सनीडः**=समान रूप से रहनेवाले हम हों, और इस **समाने**=सबके लिये साधारण अथवा सबको सोत्साहित करनेवाले (सं आनयति) **आभरणे**=सब दृष्टिकोणों से पोषित करनेवाले घर में **बिभ्रमाणाः**=सब शक्तियों का भरण व पोषण करनेवाले हम हों। प्रभु की शरण में रहते हुए हम 'शरीर, मन व मस्तिष्क' की शक्तियों से युक्त हों। उस प्रभु रूप गृह में निवास करते हुए हमारा पोषण ही पोषण हो। हम सभी को उस प्रभु के पुत्र रूप में जानें और मिलकर परस्पर वर्धन करनेवाले हों।

भावार्थ—हम सदा प्रभु रूप गृह में निवास करें, यह निवास हमारी शक्तियों का पोषण करे।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'वन-वृक्ष'

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त॥ ७॥

(१) प्रभु के नाम तीनों लिङ्गों में होते हैं। सो 'किम्' शब्द भी तीनों ही लिङ्गों में प्रभु का प्रतिपादक है। इसकी मूलभावना 'आनन्दमयता' की है। वे **किम्**=आनन्दमय प्रभु **स्विद्**=निश्चय से **वनम्**=उपासनीय हैं 'तद्धि तद्वनं नाम, तद्वनमित्युपासितात्यम्'। उपासनीय होने से प्रभु का नाम ही 'वनम्' हो गया है 'वन संभक्तौ'। **उ**=और **स**=वे **कः**=आनन्दमय प्रभु **वृक्षः**=(वृश्चति इति) हमारे भव-बन्धनों को काटनेवाले हैं। 'उपासना' कारण है, 'भव-बन्धनों का काटना' उसका कार्य है। इसी से उपासना का पहले तथा बन्धनच्छेद का उल्लेख पीछे हुआ है। (२) ये प्रभु वे हैं **यतः**=जिनसे **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक, द्युलोक से लेकर पृथिवीलोक तक सब लोक-लोकान्तर **निष्टतक्षुः**=बनाये गये हैं। ये दोनों लोक **संतस्थाने**=सम्यक्तया अपनी मर्यादा में स्थित हैं, ये डाँवाडोल हो जानेवाले व अमर्याद गतिवाले होकर नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले नहीं हैं। **अजरे**=कभी जीर्ण नहीं होते। 'पृथ्वी की उपजाऊँ शक्ति कम होती जा रही हो' ऐसी बात नहीं अथवा 'वायुमण्डल में अम्लजन की मात्रा कम होती जा रही हो' ऐसी बात भी नहीं। 'सूर्य क्षीण होता जा रहा हो' ऐसा कुछ नहीं है। सब चाक्रिक व्यवस्थाओं के कारण 'जो है' वह उतना ही बना रहता है। ये सब लोक जीर्ण होनेवाले नहीं। मनुष्य निर्मित चीजे जीर्ण होती हैं, प्रभु की सृष्टि अजीर्ण है। ये द्युलोक व पृथ्वीलोक **इत ऊती**=इस लोक से हमारा रक्षण करनेवाले हैं। यदि हम इनका ठीक प्रयोग करते हैं तो हमारा भौतिक संसार ठीक बना रहता है, शरीर स्वस्थ रहता है। (३) इस प्रकार स्वस्थ शरीरवाले बनकर ये ज्ञानी पुरुष **अहानि**=जीवन के प्रत्येक दिन **पूर्वीः उषसः**=उषाकाल के पूर्वभागों में (early in the morning) **जरन्त**=उस 'वन व वृक्ष' नामक प्रभु का स्तवन करते हैं। इस प्रभु ने ही तो उन द्युलोक व पृथिवीलोक को बनाया है जिनके कारण हमारी ऐहिक उन्नति बड़ी सुन्दरता से हो पाती है। इस प्रभु के स्तवन से अध्यात्म उन्नति होती है और हमारे बन्धनों का उच्छेद होता है। प्रकृति ऐहिक उन्नति में सहायक होती है तो प्रभु पारलौकिक व अध्यात्म उन्नति का कारण बनते हैं।

भावार्थ—प्रकृति के ठीक प्रयोग से हम इधर से अपना रक्षण करें और प्रभु-स्तवन से उधर के कल्याण को साधें। प्रभु का बनाया हुआ यह संसार हमें भौतिक स्वास्थ्य देगा और प्रभु-स्मरण अध्यात्म-स्वास्थ्य का कारण बनेगा।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इन्द्रियों की पवित्रता व पवित्र जीवन

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति॥ ८॥

(१) मनुष्य अपनी अल्पज्ञता से कई बार इस संसार में ऐसा उलझ जाता है कि उसे परलोक का ध्यान ही नहीं रहता। उपनिषद् में इन्हीं के लिये कहा गया है कि 'अयं लोकोनास्ति पर इति मानी, पुनः पुनर्वशमापद्यते मे', 'यही लोक है, परलोक नहीं है' ऐसा माननेवाला फिर-फिर मृत्युचक्र

में पड़ता है। वेद कहता है कि यह उनकी धारणा गलत है **न एतावत्**=केवल यही लोक नहीं है। **एना**=(एनेभ्यः) इन दृश्यमान लोक-लोकान्तरों से **परः**=उत्कृष्ट **अन्यत्**=दूसरा आत्मतत्त्व **अस्ति**=है। **उक्षा**=वस्तुतः वह आत्मतत्त्व ही इस संसार-शकट का वहन करनेवाला है, सब पर सुखों का सेचन करनेवाला है और **सः**=वह ही **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथ्वीलोक को, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को **बिभर्ति**=धारण करता है। (२) आत्मतत्त्व को 'स्व' कहते हैं, इस आत्मतत्त्व का धारण 'स्वधा' है। **स्वधावान्**=इस आत्मतत्त्व के धारणवाला व्यक्ति **त्वचम्**= (Touch) इन्द्रियों के विषयों के साथ सम्पर्क को, मात्रा स्पर्शों को **पवित्रं कृणुत**=पवित्र कर लेता है, अर्थात् यह इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण जीवन की उन्नति के लिये ही करता है। यह उन सम्पर्कों में आसक्त नहीं हो जाता। (३) यह वह समय होता है **यद्**=जब कि **ईम्**=निश्चय से **हरितः**=ये इन्द्रियरूप अश्व इसके लिये **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को उसी प्रकार **वहन्ति**=प्राप्त कराते हैं **न**=जैसे कि हरितः=सूर्य-किरण रूप अश्व सूर्यम्=सूर्य को वहन्ति=इस पृथ्वी पर प्राप्त कराते हैं, अर्थात् विषयों में अनासक्त इन्द्रियाँ ज्ञानवृद्धि का कारण बनती हैं।

भावार्थ—इस भौतिक संसार से परे इसका संचालक आत्मतत्त्व भी है। इस आत्मतत्त्व का ज्ञान हमारे जीवनों को पवित्र करता है। इस जीवन में इन्द्रियाँ हमें ज्ञान के सूर्य को प्राप्त करानेवाली होती हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

आधिदैविक आपत्तियों का दूरीकरण

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूमं।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम्॥ ९॥

(१) पिछले मन्त्र के अनुसार जीवन के पवित्र होने पर **स्तेगः**=सूर्यरश्मियों का **संघात क्षाम्**=इस निवास के योग्य **भूमिम्**=पृथ्वी को **न अति एति**=अतिशयेन प्राप्त नहीं होता, अर्थात् सूर्य की प्रचण्ड रश्मियों से अत्युष्णता होकर यह पृथ्वी निवास के अयोग्य नहीं हो जाती। अत्युष्णता व अतिशीत रूप आधिदैविक आपत्तियाँ मनुष्य को नहीं सताती। (२) **वातः**=वर्षा को लानेवाले वायु में **मिहम्**=वर्षा को **भूम**=इस पृथ्वी पर **ह**=निश्चय से **न विवाति**=अतिशयेन नहीं प्राप्त कराती। वर्षा, मर्यादितरूप में होकर, अन्नवृद्धि व रोगाभाव का कारण बनती है। अतिवृष्टि व अनावृष्टिरूप आधिदैविक आपत्तियों से हम बचे रहते हैं। (३) **अग्निः**=आग **वने**=वनों में **शोकम्**=अपनी दीप्ति को **न व्यसृष्ट**=नहीं विसृष्ट करती, अर्थात् वनों में आगें नहीं लगती रहतीं। वन राष्ट्र के महान् धन हैं, अग्नि इनका विनाश नहीं कर देती। (४) 'आगें लगना' स्वयं एक आधिदैविक आपत्ति है। यह आधिदैविक आपत्ति भी उस स्थान में नहीं आती **यत्र**=जहाँ कि **मित्रः**=स्नेह की देवता व **वरुणः**=निर्द्वेषता की देवता **अज्यमानः**=विशेषरूप से व्यक्त होती है। जहाँ लोग परस्पर प्रेम व द्वेष के अभाव के साथ वर्तते हैं।

भावार्थ—प्रेम व निर्द्वेषता का राज्य होने पर अत्युष्णता, अतिवृष्टि व अग्निदाह आदि आधिदैविक आपत्तियों का कष्ट नहीं होता।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

(sterile) का (fertile) हो जाना (वन्ध्यात्वविनाश)

स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान्॥ १०॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार मनुष्य जब राग-द्वेष से ऊपर उठकर वर्तते हैं तो **यत्**=जो **स्तरीः**=

वन्ध्या गौ होती है वह भी **अज्यमाना**=निषिच्यमानरेतस्का होने पर, रेतस् के आधान होने पर, **सद्यः**=शीघ्र ही **सूत**=बछड़े को जन्म देनेवाली होती है। पवित्राचरण के होने पर वन्ध्यात्व का विनाश हो जाता है। (२) **स्वगोपाः**=अपना गोपन-रक्षण करनेवाला व्यक्ति जब यह वासनाओं से अपने को आक्रान्त नहीं होने देता तो **व्यथिः अव्यथीः कृणुत**=दुःखियों को दुःखरहित कर देता है। आधिदैविक कष्टों के निवारण से सब का जीवन सुखी हो जाता है। (३) **यत्**=जब यह **स्वगोपाः**=आत्मरक्षक व्यक्ति **पित्रोः**=माता-पिता का **पूर्वः पुत्रः**=प्रथम स्थान में स्थित होनेवाला पुत्र **जनिष्ट**=होता है, अर्थात् जब यह उन्नततम जीवनवाला होता है तो **यत् ह**=जब भी निश्चय से **पृच्छान्**=इससे पूछते हैं तो **गौः**=इसकी वाणी **शम्याम्**=शान्ति को देनेवाले वचनों को ही **जगार**=उद्गिरण करती है। यह शान्त वचन ही बोलता है, कभी तेजी में कोई बात नहीं कहता एवं आधिदैविक आपत्तियाँ तभी दूर होती हैं जब कि हम जीवन को उन्नत बनाते हैं और शान्त मधुर ही शब्द बोलते हैं।

भावार्थ—हम आत्मरक्षण करें, माता-पिता के उत्तम पुत्र बनें, शान्त वाणी बोलें तो राष्ट्र में गौवें वन्ध्या न होंगी और सब कष्ट दूर हो जायेंगे।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नृषद् पुत्र 'कण्व'

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत्॥ ११॥

(१) **उत**=और **कण्वम्**=कण-कण करके उत्तमता का संचय करनेवाले को, अतएव मेधावी को **नृषदः**=सब मनुष्यों में निवास करनेवाले प्रभु का **पुत्रम्**=पुत्र **आहुः**=कहते हैं। प्रभु 'नृषद्' हैं, यह मधुरवाणी बोलनेवाला, आत्मरक्षण करनेवाला व्यक्ति प्रभु का सच्चा पुत्र है। (२) **उत**=और **श्यावः**=(श्यैङ् गतौ) खूब क्रियामय जीवनवाला यह **वाजी**=शक्तिशाली बनता है और **धनम्**=धन को **आदत्त**=प्राप्त करता है। क्रियाशीलता धन प्राप्ति का साधन होती है और शरीर के अंगों को सबल बनाये रखती है। (३) **ऊधः**=ऊधस्, अर्थात् ऊधः स्थानीय दूध **कृष्णाय**=मन को विषयों से वापिस खैंच (आकृष्ट) करके, संसार के रंग में न रंगे जानेवाले के लिये **रुशत्**=देदीप्यमान रूप को **प्र अपिन्वत**=प्रकर्षेण सिक्त करता है। दूध का प्रयोग तथा विषयों में अनासक्ति मनुष्य को दीप्त रूप प्राप्त कराता है। (४) **अत्र**=इस जीवन में **ऋतम्**=ऋत, सत्य व यज्ञ **अस्मै**=इस व्यक्ति के लिये **नकिः अपीपेत्**=क्या वर्धन नहीं करता? ऋत के द्वारा इसके जीवन में सब आवश्यक वस्तुओं का आप्यायन होता है।

भावार्थ—मेधावी पुरुष प्रभु का सच्चा पुत्र होता है। गतिशीलता से यह धन व शक्ति का संग्रह करता है। दूध का प्रयोग इसे दीप्तरूप देता है। सत्य व यज्ञ इसे सब आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं।

सूक्त के प्रारम्भ में प्रार्थना है कि हमें देवों की मैत्री प्राप्त हो। (१) यज्ञार्थ हम धनों का संग्रह करें, (२) हमारे जीवनों में ध्यान व स्वास्थ्य हो, (३) हम आत्मशासन करनेवाले हों, (४) हमें शान्तिकर शक्तियों की प्राप्ति हो, (५) सुमति बनी रहे, (६) प्रभु को हम उपास्य व भव-बन्धनों का काटनेवाला जानें, (७) हमारे जीवन पवित्र हों, (८) यह जीवन की पवित्रता 'अत्युष्णता, अतिवृष्टि, अग्निदाह' आदि आपत्तियों से बचायेगी, (९) मधुर जीवन के होने पर वन्ध्यात्व विनष्ट हो जाएगा, (१०) हम उस अन्तःस्थित प्रभु के सच्चे पुत्र होंगे, (११) अच्छे से अच्छे मार्ग की ओर हम बढ़ें।

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

उत्तमोत्तम मार्ग की ओर

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥ १ ॥

(१) पति पत्नी को सम्बोधन करके कहते हैं कि **धियसानस्य**=ध्यान करने के स्वभाववाले के **सक्षणि**=सेवन में, सम्पर्क में **प्र**=प्रकर्षेण **सुगमन्ता**=अच्छी तरह से आप जानेवाले होवो। आपका सम्पर्क ध्यान की वृत्तिवाले लोगों के साथ हो, भोग प्रधान वृत्तिवालों का सम्पर्क आपको भी भोग-प्रवण ही तो बना देगा। (२) इस प्रकार ध्यान-प्रवण लोगों के सम्पर्क में रहकर **वरेभिः वरान्**=अच्छे से भी अच्छे मार्गों के **अभि**=ओर **सु**=उत्तमता से **प्रसीदतः**=(proceed) आप आगे बढ़ो। प्रभु ध्यान करनेवाले लोगों का सम्पर्क हमें उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ायेगा, जबकि भोग-प्रवण लोगों का सम्पर्क हमारे ह्रास का ही कारण बनेगा। (३) प्रभु कहते हैं कि **इन्द्रः**=ध्यान वृत्ति के लोगों के सम्पर्क में रहनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष **अस्माकम्**=हमारा **उभयम्**=दोनों सन्ध्या कालों में प्रातः-सायं निरन्तर **जुजोषति**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता है। इसकी भी रुचि ध्यान की बनती है और इस ध्यान में यह कभी भी विच्छेद नहीं होने देता। (४) यह कर ऐसा तभी पाता है **यत्**=जब कि **सोम्यस्य अन्धसः**=सोम के लिये, वीर्य शक्ति के लिये हितकर अन्धसः=अन्न को ही यह **बुबोधति**=जानता है। यह सोम्य अन्नों के सिवाय अन्य अन्नों का पदार्थों का यह कभी प्रयोग नहीं करता। इसीका परिणाम है कि इसकी मनोवृत्ति सुन्दर बनी रहती है।

भावार्थ—ध्यानवृत्ति पुरुषों के सम्पर्क से हम उत्तमोत्तम मार्गों का आक्रमण करनेवाले हैं। दोनों संधिवेलाओं में प्रभु का ध्यान करें। सोम्य अन्नों का ही सेवन करें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दिव्य-प्रकाश (Divine light)

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **दिव्यानि रोचना**=दिव्य दीप्तियों को (Divine light) **वियासि**=विशेषरूपेण प्राप्त होता है। जितेन्द्रियता ही वस्तुतः दिव्य प्रकाश की प्राप्ति का साधन होती है। (२) हे इन्द्र! तू **पार्थिवानि (रोचना) वियासि**=पार्थिव दीप्तियों को भी विशेषरूप से प्राप्त होता है। स्वास्थ्य के कारण शरीर पर प्रकट होनेवाला सौन्दर्य ही 'पार्थिव रोचन' है। इसमें कमी आने पर चेहरा मुरझाया-सा प्रतीत होता है। (३) हे इन्द्र! तू **रजसा**=(रजः कर्मणि) कर्म के द्वारा अथवा 'रजः अन्तरिक्षम्' अपने हृदयान्तरिक्ष के द्वारा **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुत होता है। कर्मों के कारण व हृदयान्तरिक्ष की निर्मलता के कारण तेरी सब प्रशंसा करते हैं। (४) हे प्रभो **ये**=जो भी व्यक्ति **त्वा वहन्ति**=आपका धारण करते हैं और **मुहुः**=फिर **अध्वरान् उप**=हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों के समीप निवास करते हैं, अर्थात् जो आपका स्मरण करते हैं और यज्ञों में लगे रहते हैं **ते**=वे **वग्वनान्**=केवल वाणी का सेवन करनेवाले (वच् वन), बात करनेवाले, परन्तु **अराधसः**=कार्यों को न सिद्ध करनेवाले पुरुषों को **सुवन्वन्तु**=उत्तमता से जीतनेवाले हों (वन् win)। 'बातें करना और कामों को न करना' यह अवनति का मार्ग है और इसके विपरीत 'प्रभु

का हृदय में स्मरण करना और यज्ञों में लगे रहना' ही उन्नति का मार्ग है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरणपूर्वक हम कर्मों में लगे रहें, इसी से हमें दिव्य प्रकाश प्राप्त होगा, स्वास्थ्य की दीप्ति मिलेगी और कर्मों की भावना व हृदय की पवित्रता से प्रशस्त जीवनवाले होंगे।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'भक्त', 'पुत्र', 'जाया' व 'भद्र पुरुष' का लक्षण

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥ ३ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **तत्**=वह **इत्**=ही **मे**=मेरा है, वही मेरा सच्चा भक्त अपत्य है, जो कि **वपुषः वपुष्टरम्**=अच्छे से अच्छे शरीर की **छन्त्सत्**=कामना करता है। प्रभु का सच्चा भक्त सन्तान वही है कि जो शरीर को अधिक से अधिक स्वस्थ रखने का ध्यान करता है। प्रभु ने परमार्थ-साधन के लिये यह शरीर दिया है, यदि इस शरीर को ही हम विकृत कर लेते हैं तो प्रभु के निर्देश का पालन न करते हुए हम उस प्रभु की अवज्ञा कर रहे होते हैं। (२) **पुत्रः**=पुत्र वही है **यत्**=जो **पित्रोः**=माता-पिता के **जानम्**=विकास को **अधीयति**=प्राप्त करता है। माता-पिता के गुण-कर्मों का अनुकरण करते हुए अपनी शक्तियों का विकास करनेवाला ही सच्चा पुत्र होता है। (३) **जाया**=पत्नी वह है जो **सुमत्**=उत्तम विचारपूर्वक उच्चारण की गई **वग्नुना**=वाणी से **पतिम्**=पति को **वहति**=आवश्यक पदार्थ प्राप्त कराती है। कभी कटु व अप्रीतिकर वचनों को नहीं बोलती। 'जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्'=पत्नी पति के लिये माधुर्यवाली शान्ति को देनेवाली वाणी को बोले। (४) **पुंसः**=मानवजाति का **इत्**=निश्चय से **भद्रः**=भद्र पुरुष वही है जो इस बात का ध्यान करता है कि **वहतुः**=(Marriage) उसका विवाह सम्बन्ध **परिष्कृतः**=बड़ा परिष्कृत हो, वासनात्मक यह सम्बन्ध न हो। पति-पत्नी का परस्पर प्रेम हो और वह प्रेम पुनीत सन्तान को जन्म देनेवाला हो। 'प्रजायै गृहमेधिनम्'=सन्तान के लिये ही वे गृहस्थ में प्रविष्ट हुए हों और इस प्रकार गृहस्थाश्रम को वे यज्ञ का रूप दे दें।

भावार्थ—हम शरीर को उत्तम बनायें और प्रभु के सच्चे भक्त हों, माता-पिता से जीवन के विकास को सीखकर सच्चे पुत्र बनें, पत्नी के रूप में हों तो विचारपूर्वक मधुरवाणी से पति को प्राप्त हों। गृहस्थ को परिष्कृत बनाकर भद्र पुरुष बनें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'माता' व 'जन' का लक्षण

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥ ४ ॥

(१) हे प्रभो! आप **इत्**=निश्चय से **तत्**=उस **सधस्थम्**=आत्मा और परमात्मा के मिलकर बैठने के स्थान 'हृदय' को **चारु**=सुन्दरता से **अभि दीधय**=दीप्त करिये। इस प्रकार हमारे इस हृदय को ज्ञान से दीप्त करिये **यत्**=कि **धेनवः गावः**=विषयों के द्वारा प्रीणित करनेवाली इन्द्रियरूप गौवें **वहतुम्**=हमारे विवाह सम्बन्धों को **न शासन्**=न शासित करनेवाली हों, अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा विषयों के भोग ही वैवाहिक जीवन में प्रधान स्थान न ले लें। हमारा हृदय दीप्त हो और इस प्रकार दीप्त हो कि हमारा वैवाहिक जीवन भी पवित्र बना रहे। (२) **माता**=माता वही है जो कि **मन्तुः**=आज्ञा को माननेवाले पुत्र का **यूथस्य पूर्व्या**=पालन व पूरण स्थान प्राप्त कराने में उत्तम

है। अचानक किन्हीं पूर्व संस्कारों के कारण बच्चा कहना ही न माननेवाला हो तो माता के लिये उसे उन्नत करना कठिन हो जाता है, परन्तु सामान्य स्थिति में माता का पूर्ण प्रयत्न यही होना चाहिए कि उसका सन्तान बाल समूह में अग्रणी हो। इसी निर्माण में माता का मातृत्व है। (३) **जनः**=विकासशील मनुष्य वही है जो **वाणस्य अभि**=स्तुति शब्दों का लक्ष्य करके **सप्तधातुः**=सात छन्दोंवाली वेदवाणी को धारण करता है (धार्यन्ते कर्माणि एभिः इति धातवः छन्दांसि) इन सात छन्दोंवाली वेदवाणी के द्वारा वह प्रभु का गुणगान करता हुआ अपने जीवन के लक्ष्य को ऊँचा बनाता है इसी प्रकार उसके जीवन की शक्तियों का विकास होता है और उसका जन यह नाम अन्यर्थक होता है। 'सप्तधातु' शब्द का अर्थ 'रस, रुधिर, मांस, अस्थि, मेदस्, मज्जा, वीर्य' इन 'सात धातुओंवाला' भी है। विकास के लिये इन सातों धातुओं का ठीक होना आवश्यक है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदय को ऐसा दीप्त करें कि हमारा गृहस्थ जीवन भी बड़ा पवित्र हो। हम माता बनें तो निर्माण करनेवाली हों। जन हों तो 'सप्तधातु' बनकर जन नाम को अन्वर्थक करें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दुरित-विरेचन

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु॥ ५॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **वः**=हे मनुष्यो! तुम्हारे में से **देवयुः**=देव के साथ अपने को जोड़ने की कामनावाला व्यक्ति, प्रभु प्राप्ति की प्रबल इच्छावाला व्यक्ति, **पदं अच्छा**='पद्यते मुनिभिर्यस्मात् तस्मात् पद उदाहृतः' उस गन्तव्य स्थान, परागति प्रभु का लक्ष्य करके **प्रिरिचे**=(रेचति=(To give up) बुराइयों को छोड़ता है, दुरितों को अपने से दूर करता है। दुरितों को दूर करके और भद्रों को अपनाकर ही तो हम उस प्रभु के समीप पहुँचनेवाले होते हैं। (२) **एकः**=यह गतिशील (इ गतौ) अथवा औरों की पड़ताल न करता हुआ अपने आप **रुद्रेभिः**=प्राणों के साथ **याति**=उस प्रभु को प्राप्त करता है। प्राणसाधना के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करता हुआ यह प्रभु का दर्शन करनेवाला बनता है और **तुर्वणिः**=शत्रुओं का संहार करनेवाला होता है 'तुर्व् हिंसायाम्' अथवा त्वरा से शत्रुओं का जीतनेवाला होता है (त्वर् वन्) (३) **येषु अमृतेषु**=जिन विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले व्यक्तियों में **जरा**=प्रभु का स्तवन **दावने**=सब उत्तम वस्तुओं के देनेवाला होता है। मनुष्य विषयों से आक्रान्त न हो और प्रभु का स्मरण करनेवाला बने तो उसे योगक्षेम की किसी प्रकार से चिन्ता नहीं रहती। सब आवश्यक वस्तुएँ तो उसे प्राप्त हो ही जाती हैं। (४) प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुम्हारी **ऊमेभ्यः**=रक्षा करनेवाले इन देवों के लिये, इन देवों की प्राप्ति के लिये **मधु**=सोम को, वीर्यशक्ति को **परि सिञ्चता**=शरीर में चारों ओर सिक्त करने का प्रयत्न करो। इस मधु के शरीर में सुरक्षित होने पर ही जीवन के सारे माधुर्य निर्भर हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम दुरितों से दूर हों। प्राणसाधना द्वारा कामादि शत्रुओं को वश में करे। प्रभु-स्तवन को अपनाएँ। सोम को शरीर में ही सुरक्षित करें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'देव व्रत पालन इन्द्र विद्वान्'

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥ ६॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोम को शरीर में ही सिक्त करनेवाले **मे**=मुझे **देवानां व्रतपाः**=देवों के व्रत का पालन करनेवाला, सत्य के व्रत का पालन करनेवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष **उवाच**=उस प्रभु का प्रतिपादन करता है, जो **निधीयमानम्**=प्रत्येक प्राणी व वस्तु के अन्दर निहित=विद्यमान हैं तथा **अप्सु**=सब (आपो नारा इति प्रोक्ताः) मानव प्रजाओं में **अपगूढम्**=हृदयरूप गुहा में छिपकर बैठे हुए हैं। शिष्य की विशेषता यह है कि वह 'ब्रह्मचारी' हो, आचार्य की विशेषता यह कि वह 'सत्यवादी, जितेन्द्रिय व विद्वान्' हो, 'देवानां व्रतपाः, इन्द्र व विद्वान्' हो। ऐसा आचार्य ही शिष्य के लिये प्रभु का उपदेश कर पाता है। (२) हे प्रभो! **इन्द्र विद्वान्**=यह जितेन्द्रिय ज्ञानी पुरुष **हि**=ही **त्वा**=आपको **अनुचचक्ष**=आत्मदर्शन के साथ देखता है। आपका दर्शन किये हुए होने के कारण ही यह औरों के लिये प्रभु का प्रतिपादन कर पाता है। (३) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तेन**=इस विद्वान् से **अनुशिष्टः**=अनुशासन व उपदेश किया हुआ **अहम्**=मैं **आगाम्**=आपके समीप आनेवाला बनूँ। अजितेन्द्रिय अन्ध पुरुष के पीछे चलता हुआ तो मैं गर्त में ही गिरूँगा। सो मेरा सम्पर्क सदा जितेन्द्रिय ज्ञानी पुरुषों के साथ ही हो।

भावार्थ—मुझे 'सत्यवादी जितेन्द्रिय ज्ञानी पुरुषों से प्रभु का उपदेश प्राप्त हो। इन प्रभु साक्षात्कार करनेवालों से उपदिष्ट हुआ-हुआ मैं प्रभु को प्राप्त करनेवाला बनूँ'।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मार्ग-ज्ञान

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम्॥ ७॥

(१) 'क्षीयते गम्यतेऽनेन इति क्षेत्रं मार्गः' **अक्षेत्रवित्**=मार्ग को न जाननेवाला पुरुष **क्षेत्रविदम्**=मार्ग को जाननेवाले को **हि**=निश्चय से **अप्राट्**=पूछता है और **सः**=वह **क्षेत्रविदा**=मार्गज्ञ से **अनुशिष्टः**=उपदिष्ट हुआ-हुआ **प्रैति**=प्रकर्षेण अपने मार्ग पर चलता है। क्षेत्रवित् के न मिलने पर भटकने की आशंका बनी ही रहती है। (२) **एतद् वै**=यह ही **अनुशासनस्य**=उपदेश का **भद्रम्**=कल्याण है कि **अञ्जसीनाम्**=सरलता से जाने योग्य ऋजु कर्मों के **स्रुतिम्**=मार्ग को **विन्दति**=पा लेता है, अर्थात् क्षेत्रविदों से अनुशिष्ट हुआ-हुआ व्यक्ति अकल्याण के मार्ग का कभी आक्रमण नहीं करता।

भावार्थ—क्षेत्रवित् से उपदेश को प्राप्त करके मनुष्य भद्र मार्ग का ही आक्रमण करता है।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उत्तम जीवन या जीवन मार्ग

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव॥ ८॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार क्षेत्रविदों से अनुशिष्ट होकर जब मनुष्य ऋजु मार्ग का आक्रमण करने लगा **अद्य इत् उ**=उस ही दिन निश्चय से **प्राणीत्**=इसने प्रकृष्ट जीवन पाया। इससे पूर्व कुटिल व भोग-प्रधान जीवन कोई जीवन थोड़े ही था! (२) अब यह **इमा अहा**=इन दिनों में निरन्तर, बिना विच्छेद के **अममन्**=(अमन्यत सा०) मनन करनेवाला हुआ। प्रत्येक कार्य को यह विचारपूर्वक करनेवाला बना और इस प्रकार अपने 'मनुष्य'=(मत्वा कर्माणि सीव्यति), 'विचारपूर्वक कर्म करता है' इस नाम को इसने चरितार्थ किया। (३) **अपीवृतः**=तेज से परिवृत हुए-हुए इसने

मातुः=वेदमाता के **ऊधः**=ज्ञान दुग्ध के स्रोत का **अधयत्**=पान किया। (स्तुता मया वरदा वेदमाता)। 'वेदवाणी को पढ़ना, उसके अन्दर निहित ज्ञान को अपनाना' यह इसका दैनिक कृत्य हो गया। (४) **एनम्**=इस **युवानम्**=दोषों के अभिक्षण व गुणों के मिश्रणवाले युवक को **ईम्**=निश्चय से **जरिमा**=स्तुति **आप**=प्राप्त हुई। यह प्रातः-सायं प्रभु का स्तवन करनेवाला बना। (५) और इस स्तुति का यह परिणाम हुआ कि यह **अहडन्**=घृणा न करनेवाला (हेड्=Hate) सब से प्रेमपूर्वक वर्तनेवाला, **वसुः**=(वसति, वासयति) स्वयं उत्तम निवासवाला और औरों के उत्तम निवास का कारण बननेवाला, **सुमनाः**=उत्तम मनवाला **बभूव**=हुआ। इस संसार में उत्तम व शान्त मनवाला व्यक्ति वही होता है जो कि 'Live and let live'=जीने और औरों के जीने में सहायक होने के सिद्धान्त को समझ लेता है।

भावार्थ—उत्तम जीवन यही है कि मनुष्य विचारपूर्वक कर्म करे, स्वाध्यायशील हो, स्तुति करनेवाला, घृणा से परे, सबका वासयिता व सुमना हो।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

कलश-कुरुश्रवण

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि॥ ९॥

(१) हे **कलश**=(कलाः शेरते अस्मिन्) 'प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक व नाम' रूप १६ कलाओं के आधारभूत! **कुरुश्रवण**=उस पिता प्रभु की वाणी को सुननेवाले व करनेवाले! प्रभु की वाणी को सुनते ही तदनुसार कार्य करनेवाले जीव! **मघानि ददतः**=ऐश्वर्यों के देनेवाले तेरे **एतानि भद्रा**=इन कल्याणों को **क्रियाम**=हमने किया है। गत मन्त्र में वर्णित प्रकार से तेरे जीवन को उत्तम बनाया है। (२) हे **मघवानः**=ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषो! **वः**=तुम्हारा **अयम्**=यह दान देना **इत्**=सचमुच **दानः**=दान ही **अस्तु**=हो 'दाप् लवने' यह तुम्हारी बुराइयों का लवन करनेवाला हो, उनको नष्ट करनेवाला हो और इस प्रकार बुराइयों को नष्ट करके 'दैप् शोधने' यह तुम्हारे जीवन का शोधन करनेवाला हो। **अयं च सोमः**=और यह **सोम**=वीर्यशक्ति भी तुम्हारे जीवन में रोगादि को दूर करके शोधन करनेवाली हो, **यम्**=जिस सोमशक्ति को **हृदि**=तुम्हारे हृदय में **बिभर्मि**=मैं धारण करता हूँ। तुम्हारे हृदय में सम्पूर्ण आहार-विहारों को करते समय यह भावना हो कि मेरे ये आहार-विहार सोम का रक्षण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु की वाणी को सुनें और तदनुसार क्रिया को करें। दान देनेवाले हों, इसी में हमारा कल्याण है। यह दान हमारी बुराइयों को नष्ट करके जीवन का शोधन करे। हमारे हृदय में सोम के रक्षण की भावना हो।

हम उत्तम से उत्तम मार्ग की ओर चलें। (१) दिव्य प्रकाश को प्राप्त करें, (२) 'भद्र पुरुष' बनें, (३) हमारे पर इन्द्रियों का शासन न हो, (४) दुरित का विरेचन हो, (५) विद्वानों से अनुशिष्ट होकर हम भद्र मार्ग पर चलें, (६) ज्ञानी से ही मार्ग का ज्ञान प्राप्त होता है, (७) मार्ग पर चलने से ही सुन्दर जीवन का प्रारम्भ होता है, (८) हमें चाहिए कि प्रभु की वाणी को सुनें और करें। प्रभु कह रहे हैं 'दान दो और सोम का रक्षण करनेवाले बनो, तभी देव हमारा रक्षण करेंगे'।

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**विश्वे देवा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**१ धैवतः** ॥

लोकहित के कार्यों में लगे रहना

प्र मा॑ युयुज्रे प्र॒युजो॒ जना॑नां॒ वहा॑मि स्म पू॒षण॒मन्त॑रेण।
विश्वे॑ दे॒वासो॒ अध॒ माम॑रक्षन्दुः॒शासु॒राग॒दिति॒ घोष॑ आसीत्॥ १ ॥

(१) **मा**=मुझे **जनानां प्रयुजः**=लोगों के कार्य (प्रयुज्=जिनमें लगा रहा जाता है) **प्रयुयुज्रे**=प्रकर्षेण कार्य में लगाये रहते हैं। गत मन्त्र के अनुसार लोकहित के लिये दान देनेवाले लोग यही चाहते हैं कि हमें लोकहित के कार्य सदा व्यस्त रखें। हमें नाममात्र भी अवकाश न हो, हमारा सारा समय कार्यों में लगा रहे और मैं **अन्तरेण**=हृदय मध्य में **पूषणं वहामि स्म**=उस पोषक परमात्मा को धारण करता हूँ। लोकहित के कार्यों में तो लगता हूँ, परन्तु उन सब कार्यों को उस हृदयस्थ प्रभु की शक्ति से ही होता हुआ जानता हूँ, उन कर्मों का मैं किसी प्रकार भी गर्व नहीं करता। सबका पोषण वे प्रभु ही करते हैं, मैंने क्या पोषण करना ? (२) **अध**=इस प्रकार लोकहित के इन कार्यों का गर्व न करने पर **विश्वेदेवासः**=सब देव **मां अरक्षन्**=मुझे सुरक्षित करते हैं। वस्तुतः ये लोकहित के कार्य ही यज्ञ कहलाते हैं, यज्ञों से देववृत्ति का रक्षण होता है। (३) इस प्रकार देवरक्षण प्राप्त होने पर जब कभी अशुभवृत्ति हृदय में उठती है तो 'दुःशासुः आगात्'=यह कठिनता से शासन करने योग्य वृत्ति आई **इति**=इस प्रकार **घोषः**=अन्दर की वाणी **आसीत्**=होती है। अन्तःस्थित प्रभु से यह प्रेरणा मिलती है कि यह वृत्ति अशुभ है इससे बचने का पूर्ण प्रयत्न करो।

भावार्थ—हम लोकहित के कार्यों में लगें, इन कार्यों को प्रभु की ओर से होता हुआ जानें। देवों से होनेवाली रक्षा का पात्र बनें। समय-समय पर प्रभु से दी जानेवाली प्रेरणाओं को सुनें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

धृति की परीक्षा—'क्षुधा व नग्नता' का कष्ट

सं मा॑ तपन्त्य॒भितः॑ स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः। नि बा॑धते॒ अम॑तिर्न॒ग्नता॒ जसु॒र्वेर्न वे॑वीयते म॒तिः ॥ २ ॥

(१) जिस समय गत मन्त्र के अनुसार मनुष्य लोकहित के कर्मों में, यज्ञात्मक कर्मों में ही लगा रहता है, उस समय एक समय वह भी आता है जिसमें कि मनुष्य सांसारिक दृष्टिकोण से अत्यन्त कष्टमय स्थिति में होता है। ये कष्ट वस्तुतः उसके धैर्य की परीक्षा के लिये आते हैं। यदि इनमें वह उत्तीर्ण हो जाता तो प्रभु की कृपा का पात्र बनता है। उन्हीं कष्टों का अनुभव करते हुए मन्त्र कहता है कि **मा**=मुझे **पर्शवः**=पार्श्व-स्थितियाँ—पसलियाँ अन्नभाव के कारण दुर्बलता से **अभितः**=दोनों ओर से **संतपन्ति**=पीड़ित करती हैं। इस प्रकार पीड़ित करती हैं, **इव**=जैसे कि **सपत्नीः**=सपत्नियाँ एक पुरुष को पीड़ित कर देती हैं। बहुविवाह के कारण जैसे एक पुरुष को सदा परेशानी ही परेशानी का सामना करना पड़ता है, उसी प्रकार इस धर्ममार्ग पर चलनेवाले पुरुष को भी एक समय गरीबी के कष्ट के कारण अन्न भी न मिल सकने से क्षुधा का कष्ट पीड़ित करता है, इसकी पसलियाँ ही दुर्बलता से दुःखने लगती हैं। (२) परेशानी इतनी अधिक हो जाती है कि **अमतिः निबाधते**=अचेतनता पीड़ित करने लगती है, होशोहवास के कायम न रहने की आशंका हो जाती है। वस्त्राभाव के कारण **नग्नता**=नग्नता के कष्ट का सामना करना पड़ता है। (३) ऐसी स्थिति में **मतिः**=बुद्धि **वेवीयते**=इस प्रकार डाँवाडोल हो जाती है **न**=जैसे कि **वेः**=पक्षी के होश **जसुः**=व्याधे से व्याधे के देखने पर नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु चेहरे में झाँकती प्रतीत होती

है और सब समाप्ति ही समाप्ति दृष्टिगोचर होती है, इस भयंकर स्थिति में बुद्धि का डाँवाडोल हो जाना स्वाभाविक है। यदि हम विचलित हो गये तो धृति की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाएँगे और हमारा पतन हो जाएगा।

भावार्थ—धर्म के मार्ग पर चलनेवाले की परीक्षा होती है तो उसे 'क्षुधा व नग्नता' का कष्ट भी झेलना पड़ता है। कई बार तो ये कष्ट बुद्धि को विचलित कर देते हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

परीक्षार्थी की प्रार्थना

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव॥ ३॥

(१) गत मन्त्र का धर्म परीक्षा में बैठनेवाला परीक्षार्थी परीक्षक प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! **ते स्तोतारं मा**=तेरे स्तोता मुझको **आध्यः**=मानस पीड़ाएँ-चिन्ताएँ इस प्रकार **व्यदन्ति**=खाये चली जा रही हैं **न**=जैसे कि **मूषः**=चूहा **शिश्ना**=मांड से स्नात सूत्र को कुतर देता है। (२) वस्तुतः प्रभु-भक्तों को कई बार ये सांसारिक कष्ट बड़ा ही व्याकुल करनेवाले होते हैं, इन कष्टों में न घबराना ही प्रभु-भक्त का कर्त्तव्य है। कई बार वह घबराकर इस प्रकार प्रार्थना करता है कि हे **मघवन्**=ऐश्वर्यों के स्वामिन्! **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **सकृत्**=एक बार तो **सु-मृळय**=उत्तमता से सुखी जीवनवाला कर दीजिये **अधा**=और **नः**=हमारे लिये **पिता इव भव**=पिता के समान होइये। पिता जैसे पुत्र को सुखी करता है उसी प्रकार आप हमें सुखी करिये। ये दारिद्र्यादि के कष्ट हमारी परेशानी का कारण न रहें। अब इनका सहन हमारे लिये बड़ा कठिन हो गया है। (३) इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ भी यह यदि धर्मपथ को छोड़ता नहीं तो अवश्य ही प्रभु का प्रिय बनता है। यही भाव हम अगले मन्त्र में देखेंगे—

भावार्थ—प्रभु-भक्त कष्टों की व्याकुलता में कष्ट-निवारण के लिये याचना करता है, परन्तु वह मार्ग से विचलित होना नहीं चाहता।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु किसका वरण करते हैं?

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठं वाघतामृषिः॥ ४॥

(१) गत मन्त्र में की गई कष्ट-पीड़ित भक्त की प्रार्थना को सुनकर प्रभु कहते हैं कि **ऋषिः**=तात्त्विक स्थिति का द्रष्टा मैं **आवृणिः**=वरता हूँ, उसको जो **कुरुश्रवणम्**=सुनता है और करता है। जो मेरे आदेश को सुनकर उसके अनुसार कार्य करता है। **राजनम्**=जो अपने जीवन को ज्ञान से दीप्त बनाता है अथवा अपने जीवन को (well regulated) व्यवस्थित करता है। **त्रासदस्यवम्**=जो दस्युओं को त्रास देनेवाला है, अशुभ भावनाएँ जिससे भयभीत होकर दूर भाग जाती हैं। **वाघताम्**=मेधावी ऋत्विजों को **मंहिष्ठम्**=अधिक से अधिक देनेवाला है। (२) प्रभु कहते हैं कि मैं भक्त के कष्टों को देखता हूँ। मुझे उनका ज्ञान न हो सो बात नहीं, परन्तु ये कष्ट तो उसकी परीक्षा के लिये उपस्थित किये गये हैं, सो मैं तो यही देखता हूँ कि यह भक्त कहाँ तक उन कष्टों को सहनेवाला बनता है। इन कष्टों की अग्नि में तपकर उसका जीवन अधिक निखर उठेगा।

भावार्थ—हम 'प्रभु के आदेशों को सुनें और करें, जीवन को व्यवस्थित बनायें, दास्यव वृत्तियों को दूर करें, पात्रों में देनेवाले बनें। तभी हम प्रभु के प्रिय बनेंगे'।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दमन व दान

यस्य॑ मा ह॒रितो॒ रथे॑ ति॒स्रो वह॑न्ति साधु॒या। स्तवै॑ स॒हस्र॑दक्षिणे ॥ ५ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **रथे**=इस शरीररूप रथ में **यस्य**=जिसके **तिस्रः हरितः**=तीनों दुःखहरण के साधनभूत घोड़े, 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' **मा**=मुझे **साधुया**=बड़ी उत्तमता से **वहन्ति**=वहन करनेवाले होते हैं उस **सहस्रदक्षिणे**=शतशः दानों को देनेवाले के लिये **स्तवै**=मैं प्रशंसा करता हूँ। (२) जैसे एक उत्तम सन्तान पिता से प्रशंसात्मक शब्दों को सुनता है इसी प्रकार वह जीव भी प्रभु से प्रशंसनीय होता है जो कि अपनी—(क) इन्द्रियों, मन व बुद्धि को अपने वश में करके प्रभु-प्रवण करता है। इनके द्वारा प्रभु-दर्शन के लिये यत्नशील होता है तथा (ख) भोग-प्रवण वृत्ति के न होने के कारण सदा दान देनेवाला बनता है। दान देने में एक आनन्द का अनुभव करता है। (३) इस प्रकार ये 'दम' व 'दान' उसको प्रभु की प्राप्ति करानेवाले होते हैं। इन्द्रियों, मन व बुद्धि को विषयों से रोकना 'दमन' है, सहस्र-दक्षिण बनना 'दान' है।

भावार्थ—प्रभु का प्रिय वही है जो दम व दान को अपनाता है। ये ही उसे प्रभु तक पहुँचानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मधुर-वाणी

यस्य॑ प्र॒स्वाद॑सो॒ गिर॑ उप॒मश्र॑वसः पि॒तुः। क्षेत्रं॒ न र॒ण्वमू॒चुषे॑ ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु उसका स्तवन करते हैं **यस्य**=जिसकी **गिरः**=वाणियाँ **प्रस्वादसः**=प्रकृष्ट स्वादवाली हैं। किसकी? **उपमश्रवसः**='उप' समीपता से 'म' मापता है **श्रवः**=ज्ञान को जो उस 'उपमश्रवा' की। प्रभु की उपासना से जो ज्ञान को प्राप्त करता है वह 'उपमश्रवा' कहलाता है। **पितुः**=रक्षक की। यह उपमश्रवाः सदा रक्षणात्मक कार्यों में ही लगता है। इसकी वाणियाँ सदा मधुर होती हैं। यह कभी कड़वी वाणी को नहीं बोलता। (२) इस **ऊचुषे**=मधुर वाणी को बोलनेवाले के लिये **न**=जैसे **क्षेत्रं रण्वम्**=सारा क्षेत्र 'शरीर' ही रमणीय होता है इसी प्रकार इसकी वाणी भी मधुर होती है। वस्तुतः मधुर शब्दों से इसके सारे जीवन में ही माधुर्य आ जाता है। यह मधुर जीवनवाला प्रभु से प्रशंसा को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम उपासना के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करनेवाले बनें, रक्षक हों, हमारी वाणी में माधुर्य हो, सारा शरीर ही रमणीयता को लिये हुवे हो।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः** ॥ देवता—**उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रक्षक' उपमश्रवा

अधि॑ पु॒त्रोप॑मश्रवो॒ नपा॑न्मित्रातिथेरिहि। पि॒तुष्टे॑ अस्मि॒ वन्दि॒ता ॥ ७ ॥

(१) हे **पुत्र**=अपने जीवन को 'पुनाति त्रायते'=पवित्र व रक्षित करनेवाले! **उपमश्रवः**=समीपता से उपासना के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करनेवाले, अर्थात् प्रभु के उपासन से ज्ञान को प्राप्त करनेवाले, अतएव **मित्रातिथेः नपात्**=उस सनातन मित्र व अतिथि प्रभु के अपने हृदय से च्युत न होने

देनेवाले! **अधीहि**=तू अध्ययन करनेवाला बन। 'ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करना' यह तेरा लक्ष्य हो। 'वह प्रभु ही सनातन मित्र है' ऐसा तूने समझना। वही अतिथि है, सदा प्राप्त होनेवाला है, कष्ट के समय वही सहायकरूपेण प्राप्त होता है। इस ब्रह्म को तू जानने की कामनावाला हो। (२) इस प्रकार प्रभु के मार्ग पर चलनेवाला तू सदा सबका रक्षक होता है। गत मन्त्र के अनुसार मधुर ही वचन बोलता है। इस **ते पितुः**=तुझ रक्षक का मैं **वन्दिता अस्मि**=तारीफ करनेवाला हूँ, प्रशंसक हूँ। प्रभु की प्रशंसा का वस्तुतः वही पात्र बनता है जो सर्वत्र प्रभु-दर्शन करता हुआ सबका रक्षक बनने के लिये यत्नशील होता है। यही प्रभु का सच्चा पुत्र होता है।

भावार्थ—प्रभु के निर्देश के अनुसार हम सर्वत्र प्रभु-सत्ता को अनुभव करें और सबके रक्षण करनेवाले बनें।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः**॥ छन्दः—**पादनिचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

चक्रवर्तिता व प्रभु-स्मरण

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्। जीवेदिन्मघवा मम॥ ८॥

(१) **यत्**=यदि **अमृतानाम्**=देवों का **उतवा**=अथवा **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों का मैं **ईशीय**=स्वामी हो जाऊँ तो भी **मम मघवा जीवेत् इत**=मेरे में उस ऐश्वर्यों के स्वामी प्रभु की भावना बनी ही रहे। प्रभु के स्मरण से मैं दूर न हो जाऊँ। (२) देवों व मनुष्यों का ईश बनने का भाव यह है कि मैं इस पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा बन जाऊँ अथवा देवलोक का राज्य भी प्राप्त कर लूँ। मैं अहंकार में आकर प्रभु को न भूल जाऊँ। यह सम्पत्ति का हिरण्मय पात्र मेरी आँख पर आवरण के रूप में न हो जाए। इस सम्पत्ति से गर्वित होकर 'मैं ही मैं' न हो जाऊँ प्रभु के स्मरण से सदा विनीत बना रहूँ और अनुभव करूँ कि यह सब सम्पत्ति उस प्रभु की ही है। यह लक्ष्मी मेरे लिये सहायक व पालक हो सकती है, मैं इसका स्वामी नहीं हूँ।

भावार्थ—सांसारिक ऐश्वर्य मेरी आँख पर पर्दा न डाल दे, मैं प्रभु को भूल न जाऊँ।

ऋषिः—**कवष ऐलूषः**॥ देवता—**उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

घर की ओर लौटना

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति। तथा युजा वि वावृते॥ ९॥

(१) मनुष्य यदि मृत्यु का स्मरण करता है तो अहंकार को जीत लेता है, यह मृत्यु स्मरण उसे प्रभु से भी दूर नहीं होने देता। सो मनुष्य को यह स्मरण रखना चाहिये कि **शतात्मा चन**=शत वर्षपर्यन्त जीवनवाला यह व्यक्ति भी **देवानां व्रतम्**=देवों के नियम को **न अतिजीवति**=लाँघकर नहीं जीता है, अर्थात् मनुष्य मरणधर्मा है, मृत्यु तो अवश्य आनी ही है। इस मृत्यु को कोई लाँघ नहीं सकता। यदि मनुष्य इस मृत्यु को न भूलेगा तो विषयों में न फँसेगा। (२) उस समय **तथा**=विषयों में न फँसने पर **युजा**=अपने उस प्रभुरूप मित्र के साथ रहता हुआ **विवावृते**=यह इस पृथ्वीलोक के वास को समाप्त करके अपने घर में लौट जाता है। फिर से ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है। यह ब्रह्मलोक प्राप्ति ही मोक्ष है। यहाँ पहुँचता वही है जो प्रकृति का मित्र न होता हुआ प्रभु का मित्र बनता है। प्रभु का मित्र वही बनता है जो मृत्यु को नहीं भूलता है।

भावार्थ—शरीर की नश्वरता का स्मरण करते हुए हम प्रभु के मित्र बनें और भोगों में न फँसकर अपने गृह ब्रह्मलोक की ओर लौटनेवाले बनें।

सूक्त का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि हम लोकहित के कार्यों में लगे रहें। (१) इन कार्यों

में लगने पर क्षुधा, तृषा आदि शतशः कष्टों से हमारे धैर्य की परीक्षा होगी, (२) हम घबराकर प्रभु से कल्याण की प्रार्थना करेंगे, (३) प्रभु कहेंगे कि मुझे तो वही प्रिय है जो 'मेरी प्रेरणा को सुने और करे', (४) जो दमन व दान को अपनाये, (५) वाणी में माधुर्य को धारण करे, (६) प्रभु कहते हैं कि मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ जो रक्षक बनता है, (७) जीव की प्रार्थना यही होनी चाहिए कि वह चक्रवर्ती भी बन जाए तो प्रभु को भूले नहीं, (८) न भूलेंगे तो घर की ओर लौटेंगे ही, (९) अन्यथा जूए आदि व्यसनों में फँसकर विचित्र-सा जीवन बिता रहे होंगे।

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकृषिप्रशंसा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अक्षों की मादकता

प्रा॒वे॒पा मा॑ बृह॒तो मा॑दयन्ति प्रवाते॒जा इरि॑णे॒ वर्वृ॑तानाः।
सोम॑स्येव मौजव॒तस्य॑ भ॒क्षो वि॒भीद॑को जागृ॒विर्मह्य॑मच्छान्॥ १॥

(१) **बृहतः**=महान् विभीतक वृक्ष के विकारभूत अक्ष **प्रवातेजाः**=प्रवण (=निम्न) देश में उत्पन्न हुए हैं, पहाड़ की तराई में इनकी उत्पत्ति हुई है। अथवा प्रकृष्ट वायुवाले स्थान में इनका जन्म हुआ है, सम्भवतः इसीलिए ये हमारे मनों की भी चञ्चलता का कारण बनते हैं। **इरिणे वर्वृतानाः**=अक्ष-फलक पर इधर-उधर वर्तमान होते हुए ये पासे **प्रावेपाः**=मेरे प्रकृष्ट कम्प का कारण बनते हैं। 'जय होगी अथवा पराजय होगी' इस विचार से ये मुझे भयभीत करते हैं और **मा मादयन्ति**=मेरे में एक विचित्र-सा नशा पैदा कर देते हैं। (२) **मौजवतस्य**=मुञ्जवान् पर्वत पर होनेवाले **सोमस्य**=सोम का **भक्षः**=भोजन **इव**=जैसे एक अद्भुत मस्ती को देता है उसी प्रकार यह **जागृविः**=मुझे सदा चिन्ता के कारण जगानेवाला अथवा अत्यन्त सावधान रखनेवाला **विभीदकः**=विभीतक वृक्ष का विकारभूत यह अक्ष **मह्यं अच्छान्**=(मां अचच्छदत्-मादयति) मुझे मादित करता है। एक विचित्र से नशे को मेरे में ले आता है।

भावार्थ—द्यूत के साधनभूत अक्ष जुआरी के अन्दर एक विचित्र से मद को पैदा करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

जुए से घर का बिगाड़

न मा॑ मिमेथ॒ न जि॑हीळ ए॒षा शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत्।
अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तोरनु॑व्रता॒मप॒ जा॒याम॑रोधम्॥ २॥

(१) द्यूत का व्यसनी पुरुष कहता है कि **एषा**=यह मेरी पत्नी **मा न मिमेथ**=(wrangle, contradict) मेरा कभी विरोध न करती थी, मेरे साथ कभी इसकी लड़ाई न होती थी। **न जिहीडे**=(neglect) यह मेरी कभी उपेक्षा भी न करती थी। मेरे सुख का पूरा ध्यान करती थी। **सखिभ्यः**=मेरे मित्रों के लिये **उत मह्यम्**=और मेरे लिये यह **शिवा**=कल्याणकर **आसीत्**=थी। आये गये मेरे मित्रों का भी ध्यान करती थी। (२) परन्तु इस जूए ने एक विचित्र-सी परिस्थिति पैदा कर दी। मैंने उस **अनुव्रताम्**=अत्यन्त अनुकूल व्रतोंवाली **जायाम्**=मेरे सन्तानों को जन्म देनेवाली इस पत्नी को **एकपरस्य**=(एकः परः प्रधानं=यस्य) इक्का जिसमें प्रधान है उस **अक्षस्य**=पासों से खेले जानेवाले द्यूत के **हेतोः**=कारण से **अप अरोधम्**=अपने से दूर कर दिया। न मैं जुआ खेलता, ना मेरी पत्नी मेरे से दूर होती। जुए के कारण मुझे पत्नी को भी खोना पड़ा, उस पत्नी

को जो कि मेरे जीवन के सारे सुख का मूल थी।

भावार्थ—जुए से घर ही बिगड़ जाता है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

घर में निरादर

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥ ३॥

(१) जुवारी अनुभव करता है कि **श्वश्रूः**=सास **द्वेष्टि**=द्वेष करती है, सास को मेरे से किसी प्रकार की प्रीति नहीं रही **जाया**=पत्नी भी **अपरुणद्धि**=मुझे अपने से दूर ही रोकती है, मुझे अपने समीप नहीं आने देती। **नाथितः**=याचना करता हुआ यह कितव (=जुवारी) **मर्डितारम्**=धन की सहायता से सुख देनेवाले को **न विन्दते**=नहीं प्राप्त करता है, अर्थात् अब कोई ऐसा मित्र भी नहीं जिससे कि मैं याचना करूँ और वह मेरी कुछ मदद कर दे। (२) मेरी स्थिति तो ऐसी हो गई है कि **इव**=जैसे **जरतः**=बूढ़े कार्य के लिये अनुपयुक्त **वस्न्यस्य**=मूल्यार्ह—मूल्य के योग्य, अर्थात् बेच देने योग्य **अश्वस्य**=घोड़े की हो। ऐसे घोड़े को जैसे चारा व दाना भी उपेक्षितरूप से दिया जाता है, इसी प्रकार **अहम्**=मैं **कितवस्य भोगम्**=जुवारी के धन को, भोग्य पदार्थ को **न विन्दामि**=नहीं प्राप्त करता हूँ, अर्थात् मुझे घर में खान-पान भी ठीक रूप में नहीं प्राप्त होता।

भावार्थ—पराजित जुवारी को घर में किसी से भी प्रेम व आदर प्राप्त नहीं होता, इसके खान-पान का भी कोई ध्यान नहीं करता।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

पत्नी की भी दुर्गति

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम्॥ ४॥

(१) यह जुवारी जुए में पत्नी को भी कई बार हार जाता है, तब **अन्ये**=दूसरे विरोधी लोग **अस्य जायाम्**=इसकी पत्नी को **परिमृशन्ति**=वस्त्रकेश अपकर्षण से छूनेवाले होते हैं। (२) यह **वाजी अक्षः**=प्रबल पासा, प्रबल इसलिए कि इसके प्रलोभन को जीतना बड़ा कठिन हो जाता है, **यस्य वेदने**=जिसके धन में **अगृधद्**=लालचवाला होता है, उसकी पूर्वोक्त प्रकार से पत्नी की दुर्गति होती है और **पिता माता भ्रातरः**=पिता, माता व भाई आदि सभी बन्धु उसके विरोधी जुवारियों के प्रति **आहुः**=कहते हैं कि **एनम्**=इसको **न जानीमः**=हम नहीं जानते, हमारा यह कुछ नहीं लगता **एतं बद्धं नयता**=(बेशक) इसे बाँधकर ले जाओ। हम इसके छुड़ाने के लिये यत्नशील न होंगे।

भावार्थ—जुवारी की पत्नी की भी दुर्गति होती है, इससे कोई सम्बन्ध रखना पसन्द नहीं करता।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

व्यसन की प्रबलता व दुरन्तता

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव॥५॥

(१) उपरोक्त प्रकार से जुए से होनेवाली दुर्गति को देखकर **यद्**=जब **आदीध्ये**=यह ध्यान करता हूँ कि **एभिः**=इनसे **न दविषाणि**=(देविष्यामि) अब जुवा न खेलूँगा, इस जुए के परिणामरूप मैं **परायद्भ्यः**=एक-एक करके दूर जाते हुए **सखिभ्यः**=मित्रों से **अवहीये**=मैं हीन होता जाता हूँ। (२) परन्तु, **च**=और जब **न्युप्ताः**=द्यूत-फलक पर डाले हुए **बभ्रवः**=बभ्रु (Brown) वर्णवाले ये पासे **वाचं अक्रत**=शब्द को करते हैं तो मैं **एषां निष्कृतम्**=इनके स्थान को द्यूत-व्यसन से अभिभूत हुआ-हुआ मैं सब सङ्कल्पों को छोड़कर **एमि इत्**=आता ही हूँ। मैं फिर द्यूत सभा में पहुँच जाता हूँ, उसी प्रकार पहुँच जाता हूँ **इव**=जैसे कि **जारिणी**=कोई स्वच्छन्द आचरणवाली स्त्री संकेत स्थान की ओर अग्रसर होती है।

भावार्थ—व्यसन दुरन्त हैं, इनका अन्त तो खराब है ही, पर इनका अन्त करना भी बड़ा कठिन है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

हार से इच्छा में और वृद्धि

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥६॥

(१) **कितवः**=यह जुवारी **पृच्छमानः**=यह पूछता हुआ कि 'कौन-कौन आया है' **सभां एति**=द्यूत-सभा में आता है। वह उस समय **जेष्यामि इति**='जीत जाऊँगा' इस भावना के कारण **तन्वा शूशुजानः**=शरीर से खूब (दीप्यमानः) चमक रहा होता है, खूब खुशी में फूला हुआ होता है। (२) वहाँ **प्रतिदीव्ने**=विरोधी जुवारी के लिये **कृतानि**=पुरुषार्थ से सम्पादित धनों को **आदधतः**=धारण करते हुए **अस्य**=इस जुवारी के **कामम्**=जुए की अभिलाषा को **अक्षासः**=पासे **वितिरन्ति**=और अधिक बढ़ा देते हैं। जितना यह हारता है उतनी ही इसकी जुए की इच्छा और बढ़ती जाती है। यह बढ़-बढ़कर दाव लगाता है और सोचता है कि अब के तो अवश्य जीतूँगा। 'हार-जीत तो हुआ ही करती है, अब के हारा हूँ तो अगली बार जीतूँगा भी' इस प्रकार सोचता हुआ यह जुए की खेल में और अधिक फँस जाता है।

भावार्थ—हार इसकी खेलने की इच्छा को और अधिक बढ़ा देती है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकृषिप्रशंसा**॥ छन्दः—**जगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

मधुर परन्तु विनाशकारी

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा॥७॥

(१) **अक्षासः**=ये जुए के पासे **इत्**=निश्चय से **अंकुशिनः**=अंकुशवाले हैं, जैसे अंकुश हाथी को आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है वैसे ही ये पासे जुवारी को द्यूत-सभा की ओर धकेलते हैं। **नितोदिनः**=जैसे एक चाबुक घोड़े को मार्ग पर तेजी से दौड़ने के लिये प्रेरित करता है, उसी प्रकार ये पासे जुवारी को सभास्थल की ओर तेजी से पग उठवाते हैं। (२) **निकृत्वानः**=वहाँ सभास्थल में हारने पर यह जुवारी का कर्तन करनेवाले हैं। **तपनाः**=उसके हृदय को संतप्त करनेवाले हैं। **तायिष्णवः**=इन पासों का स्वभाव ऐसा है कि ये इसके परिवार के अन्य सदस्यों को भी सतत संतप्त करते हैं। (३) **कुमारदेष्णाः**=अन्ततः ये बड़ी बुरी मार को देनेवाले हैं। **जयतः**=जीतते हुए के **पुनः हणः**=फिर मारनेवाले हैं। एक दाव सीधा पड़ा और कुछ जीत हुई, परन्तु अगला ही दाव उलटा पड़ जाता है और फिर हार की हार हो जाती है, सब जीत हार में परिवर्तित हो जाती है। (३) **मध्वा संपृक्ताः**=ऊपर से मधु से सम्पृक्त हैं, बड़े मीठे प्रतीत होते हैं, परन्तु **कितवस्य वर्हणा**=ये पासे जुवारी की जड़ को ही उखाड़ डालनेवाले हैं (बर्हयति=destroy)। विजय की आशा से ये बड़े मीठे प्रतीत होते हैं, परन्तु पराजय के होने पर ये समूल विनाश कर डालते हैं।

भावार्थ—ये पासे ऊपर से मधुर हैं, परन्तु परिणाम में विनाशकारी हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्रेपन पासे

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति॥ ८॥

(१) **एषाम्**=इन पासों का **त्रिपञ्चाशः**=त्रेपन (५३) संख्या से गणित **व्रातः**=समूह **क्रीडति**=द्यूत-फलक पर इस प्रकार खेलता है **इव**=जैसे कि **सत्यधर्मा**=सत्य का धारण करनेवाला **सविता**=सबका प्रेरक **देवः**=दिव्यगुणोंवाला महान् खिलाड़ी (दिव्=क्रीडा) वह प्रभु इस भुवन-फलक पर जीवरूपी पासों से खेलता है। वस्तुतः ये पासों का समूह भी कितने ही व्यक्तियों को अपना शिकार बनाता है। (२) ये पासे **उग्रस्य**=बड़े तीव्र स्वभाववाले अथवा बड़े भारी (noble) धनी पुरुष के **मन्यवे चित्**=क्रोध के लिये भी **न**=नहीं **आनमन्ते**=जरा भी झुकते। बड़े-से-बड़ा धन-सम्पन्न पुरुष भी अपने क्रोध से इन पासों को वशीभूत नहीं कर सकता। **राजा चित्**=स्वयं राजा भी **एभ्यः**=इनके लिये **नमः इत्**=नमस्कार को ही **कृणोति**=करता है। राजा भी इनकी प्रबलता को स्वीकार करता है। व्यसनाभिभूत पुरुष इन पासों को देव तुल्य प्रणाम करता है।

भावार्थ—ये पासे कितने ही व्यक्तियों के जीवन के साथ खेल जाते हैं। इनकी प्रबलता उग्र-से-उग्र पुरुष व राजा भी स्वीकार करता है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकृषिप्रशंसा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

नीचे होते हुए ऊपर

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति॥ ९॥

(१) जुए के ये पासे **नीचा वर्तन्ते**=नीचे द्यूत-फलक पर इधर-उधर वर्तमान होते हैं, पर **उपरि स्फुरन्ति**=पराजित होनेवालों के हृदय में ये दीप्तरूप से शासन करते हैं। इनके हृदयों में

खलबली मचाने के कारण बनते हैं। **अहस्तासः**=ये हाथवाले तो नहीं हैं, परन्तु **हस्तवन्तं सहन्ते**=हाथवाले का पराभव करते हैं। पासों के हाथ तो नहीं हैं, परन्तु इन हाथवाले जुवारियों के ये पराभूत करनेवाले होते हैं। (२) ये पासे तो **दिव्या अंगाराः**=जुए के खेलने के साधनभूत कुछ अलौकिक अंगारों के समान हैं। **इरिणे**=द्यूत-फलक पर **न्युप्ताः**=ये फेंके जाते हैं। **शीताः सन्तः**=स्पर्श में ठण्डे होते हुए भी **हृदयम्**=पराजित पुरुष के हृदय को **निर्दहन्ति**=जलानेवाले होते हैं, उनके हृदयों के सन्ताप का कारण बनते हैं। (३) प्रस्तुत मन्त्र में 'नीचाः-उपरि, अहस्तासः-हस्तवन्तं, शीताः-निर्दहन्ति' इन शब्द-युग्मों से विरोधाभास अलंकार का सुन्दर प्रतिपादन है।

भावार्थ—पासे दिव्य अंगारों के समान हैं, ये स्पर्श में ठण्डे होते हुए भी पराजित पुरुष के हृदय-दाह का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ऋण व सौर्य-प्रवृत्ति

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति॥ १०॥

(१) **कितवस्य**=इस पराजित हुए-हुए जुवारी की **जाया**=पत्नी **हीना**=आर्थिक दृष्टि से बड़ी हीन स्थिति में हुई-हुई **तप्यते**=सन्ताप को अनुभव करती है। **क्वस्वित्**=कहीं इधर-उधर **चरतः**=भटकते हुए इस **कितव पुत्रस्य**=पुत्र की **माता**=माता भी परेशानी को महसूस करती है। (२) यह पराजित जुवारी **ऋणावा**=ऋणवान् हुआ-हुआ ऋण के बोझ के नीचे दबा हुआ, **बिभ्यत्**=भयभीत होता हुआ **नक्तम्**=रात्रि में चोरी से धन की प्राप्ति के लिये **अन्येषाम्**=दूसरों के **अस्तम्**=गृह को **उपैति**=प्राप्त होता है। (३) कर्ज को उतारने के लिये वह धन की परेशानी में होता है, कैद आदि में पहुँचने का उसे भय लगता है। इस भय की तुलना में वह रात में चोरी के द्वारा धनार्जन को कम भय जनक समझता है। सो इसका झुकाव चोरी की ओर होता है। चोरी के लिये रात में सेन्ध लगाकर किसी के घर में प्रवेश करता है।

भावार्थ—द्यूत में पराजित व्यक्ति अपने कर्ज को चुकाने के लिये चोरी से धन संग्रह की ओर झुकता है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दरिद्रता की चरमसीमा

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप्राप्यन्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद॥ ११॥

(१) चोरी के लिये जब उस घर में घुसता है तो **स्त्रियं दृष्ट्वाय**=स्त्री को देखकर भी **कितवम्**=इस कितव को **तताप**=सन्ताप अनुभव होता है। अपने कर्म में विघ्न होते समझ, वह घबरा उठता है **च**=और इसके अतिरिक्त **अन्येषां जायाम्**=दूसरों की पत्नी को देखकर वह सन्तप्त होता है। उसे अपनी पत्नी का स्मरण हो आता है और दोनों की स्थिति की तुलना करता हुआ, इस सारी स्थिति का अपने को कारण समझता हुआ घबरा जाता है। **सुकृतं योनिम्**=खूब परिष्कृत घर को देखकर भी वह सन्तप्त हो उठता है। इस घर की सुन्दरता और अपने घर की विपरीत

स्थिति उसे भयङ्करता से व्याकुल कर देती है। (२) यह **वृषलः**=द्यूत में फँसकर धर्म का लोप करनेवाला 'वृषो हि भगवान् धर्मः तस्य यः कुरुते ह्यलं, वृषलं ते विदुर्देवाः' व्यक्ति आज ही **पूर्वाह्णे**=दिन के पूर्व भाग में १२ बजे से पहले **बभ्रून्**=भूरे रंग के **अश्वान्**=घोड़ों को **हि**=निश्चय से **युयुजे**=अपने रथ में जोते हुए था, **सः**=वही इस समय, रात्रि के समय शीत से पीड़ित हुआ **अग्नेः अन्ते**=आग के समीप **पपाद**=आकर पड़ा हुआ है। अपनी सारी सम्पत्ति को जुए में गँवाकर इस प्रकार निर्धन स्थिति में हो गया है कि शीत निवारण के लिये कपड़ों से भी वञ्चित है।

भावार्थ—जुवारी की दुर्गति का स्वरूप यह है कि उसके पास सर्दी को दूर करने के लिये कपड़े भी नहीं रहे।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकृषिप्रशंसा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

जुए को सदा के लिये प्रणाम

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि॥ १२॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित कटु अनुभवों को लेने के बाद यह कितव जुए से अन्तिम बिदा लेते हुए कहता है कि हे पासो! **यः**=जो **वः**=आपके इस **महतः गणस्य**=बड़े भारी समूह का **सेनानीः**=सेनापति **बभूव**=है अथवा **व्रातस्य**=तुम्हारे मण्डल का **प्रथमः राजा**=सबसे प्रधान शासक बभूव=है **तस्मै**=उसके लिये **अहम्**=मैं **दश**=दोनों हाथों की इन १० अङ्गुलियों को **प्राचीः कृणोमि**=आगे आनेवाली करता हूँ, अर्थात् मैं उसे बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम करता हूँ, उसके आगे हाथ जोड़ता हूँ और स्पष्ट कहे देता हूँ कि आज के बाद मैं **धना**=अपने श्रमार्जित धनों को इस जुए के लिये **न रुणध्मि**=अपने से दूर रोकता नहीं हूँ, अर्थात् जुए में धन का व्यर्थ व्यय व नाश नहीं करता। **तद् ऋतं वदामि**=मैं यह बात सत्य कह रहा हूँ। ये मेरा दृढनिश्चय है कि अब मैं जुआ न खेला करूँगा। अपने धनों का रक्षण करूँगा और अपने घर की स्थिति को सुन्दर बनाऊँगा।

भावार्थ—जुए के न खेलना का निश्चय करना आवश्यक है। घर की उत्तम स्थिति इसी पर निर्भर करती है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकृषिप्रशंसा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

कृषि, न कि जुआ

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥ १३॥

(१) **अयम्**=यह **अर्यः**=सबके स्वामी **सविता**=सबके प्रेरक प्रभु **मे**=मुझे **तत् विचष्टे**=उस बात को कहते हैं कि **अक्षैः**=पासों से **मा दीव्यः**=जुआ मत खेल। **इत्**=निश्चय से **कृषिं कृषस्व**=खेती को ही कर। कोई भी मार्ग, जिससे कि हम एक ही दिन में धनी होना चाहते हैं, ठीक नहीं है। ऐसे मार्गों का प्रतीक ही यहाँ जूआ है। इन मार्गों से न चलना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है। कृषि प्रधान जीवन ही जीवन है। श्रम से धनार्जन के मार्गों का कृषि प्रतीक है। मनुष्य को पुरुषार्थ से ही धन कमाना चाहिए, यूँ ही धन प्राप्त की कामना हमें पौरुषशून्य बनाती है। (२) प्रभु कहते हैं कि कृषि से प्राप्त होनेवाले **वित्ते**=धन में ही **रमस्व**=तू रमण कर, आनन्द का अनुभव कर। उसी धन को **बहु मन्यमानः**=बहुत मानता हुआ तू चित्त में सन्तोष को धारण कर। **तत्र**=उस कृषि कर्म में **गावः**=गौ आदि पशुओं की कमी नहीं। वो तेरे जीवन के लिये

आवश्यक दूध आदि पदार्थों के प्राप्त करानेवाले होंगे। हे **कितव**=जुए में प्रसित व्यक्ति तू यह समझ ले कि **तत्र**=उस कृषि कर्म में ही **जाया**=तेरी पत्नी भी तेरे लिये उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली होती है, अर्थात् सब प्रकार से घर उत्तम बनाने के लिये आवश्यक है कि हम श्रम-प्रधान जीवन से धनार्जन की कामना करें।

भावार्थ—अक्षों और कृषि में कृषि ही श्रेयस्कर है।

ऋषिः—**कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्**॥ देवता—**अक्षकितवनिन्दा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्यूत-बन्धन से दूर

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु॥ १४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु के निर्देश को सुनकर जुए से दूर रहने का निश्चय करता हुआ जुवारी प्रार्थना करता है कि हे अक्षो! **मित्रं कृणुध्वम्**=हमारे साथ तो स्नेह ही रखो। मित्र जानकर हमें तो आप परेशान मत करो, हमारे पर तो आप जरा मेहरबानी ही रखें। **नः**=हमें **खलु**=निश्चय से **मृळता**=सुखी करनेवाले होइये। **नः**=हमें **धृष्णु**=पराभव करनेवाले **घोरेण**=अपने भयङ्कर रूप से **मा अभिचरत्**=मत प्राप्त होइये, अर्थात् कृपा करके आप हमारे से दूर ही रहिये। हमें आपके कारण दुर्गति में न पड़ना पड़े। (२) **वः मन्युः**=आपका क्रोध अथवा आपके कारण उत्पन्न हुआ-हुआ शोक **नु**=निश्चय से **अरातिः**=हमारा शत्रु ही **निविशताम्**=भोगे-प्राप्त करे। **बभ्रूणाम्**=भूरे वर्णवाले आपके **प्रसितौ**=बन्धन में **नु**=निश्चय से **अन्यः**=हमारे से भिन्न और ही कोई व्यक्ति **अस्तु**=हो। हमें आपका बन्धन न प्राप्त हो। हम जुए से सदा बचे रहें। यह व्यसन तो शत्रुओं को ही लगे।

भावार्थ—ये जुए के पासे हमारे पर तो कृपा ही करें। हमारे शत्रुओं को ही अपने बन्धन में बाँधे।

इस सूक्त में 'द्यूत-व्यसन' का अत्यन्त उपयुक्त मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। ये जुए के पासे बड़े मादक हैं। (१) जुए से घर बिगड़ जाता है, (२) जुवारी का घरवाले भी आदर नहीं करते, (३) इसकी पत्नी भी दुर्गति को भोगती है, (४) यह जुआ एक दुरन्त व्यसन है, (५) हारने पर भी और इच्छा बढ़ती ही है, (६) ये पासे मधु-सम्पृक्त हैं, हैं विनाशकारी, (७) त्रेपन पासों से यह खेला जाता है, (८) ये पासे छूने में ठण्डे होते हुए भी अत्यन्त सन्तापकारी होते हैं, (९) जुवारी ऋणी बन जाता है और चोरी में प्रवृत्त होता है। (१०) यह दरिद्रता की चरमसीमा पर पहुँच जाता है, (११) कटु अनुभव लेकर यह जुए से बिदा लेने का निश्चय करता है, (१२) कहता है कि प्रभु मुझे यही तो कहते हैं कि 'जुए को छोड़ो और कृषि को अपनाओ', (१३) सो हे पासो! मेरे पर तो आप कृपा करो। मेरे शत्रु को ही आप प्राप्त होवो, (१४) इन द्यूत आदि व्यसनों के छोड़ने पर ही हम सब दिव्यताओं के स्वागत के लिये तैयार होंगे। दोनों सूक्तों का विषय 'विश्वेदेवाः' ही है। इन दिव्यगुणों से अपने को अलंकृत करने के कारण यह 'लुशः' (लुश् to adore) नामवाला हुआ है। ऐसा बना रहने के लिये यह 'धानाकः'=धान आदि अन्नों का ही सात्त्विक भोजन करता है।

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**लुशो धानाकः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

इन्द्रवान् अग्नियों का उद्बोधन

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥ १ ॥

(१) **इन्द्रवन्तः**=प्रभु की उपासनावाली, अर्थात् प्रभु की उपासना से युक्त **त्ये**=वे **अग्नयः**=यज्ञाग्नियाँ **अबुध्रम्**=हमारे गृहों में उद्बुद्ध हों। हम इन्द्र का उपासन करें और घरों में अग्निहोत्र के करनेवाले हों। (२) हम **उषसः व्युष्टिषु**=उषःकालों के निकलने पर, जब उषाएँ अन्धकार को दूर करें, उस समय **ज्योतिः भरन्तः**=स्वाध्याय द्वारा अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति को भरनेवाले हों। (३) **मही**='मह पूजायाम्' प्रभु की पूजा में लगे हुए **द्यावापृथिवी**=हमारे द्युलोक व पृथ्वीलोक, अर्थात् मस्तिष्क और शरीर **अपः**=अपने कर्त्तव्य कर्मों को **चेतताम्**=जाननेवाले हों। हमारे मस्तिष्क में ज्ञान हो तथा शरीर में शक्ति हो। इस प्रकार हम समझदारी से अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन कर सकें। (४) इस प्रकार ज्ञान व शक्ति से अपने कर्त्तव्यों में पवित्र व सफल होते हुए हम **अद्य**=आज **देवानाम्**=देवों के **अवः**=रक्षण की **वृणीमहे**=याचना करते हैं। हम सब देवों से रक्षणीय हों। हम अपने जीवनों में दैवी सम्पत्ति के रक्षण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें। हमारे घरों में अग्निहोत्र हो। स्वाध्याय के द्वारा हम अपने में ज्योति को भरनेवाले हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

द्यावापृथिवी का रक्षण

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥ २ ॥

(१) **मातॄन् सिन्धून्**=हमारे जीवन में निर्माण का कार्य करनेवाले स्यन्दनशील रेतःकणों से **दिवः पृथिव्योः**=द्युलोक व पृथिवीलोक के, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर के **अवः**=रक्षण का **आवृणीमहे**=हम वरण व याचन करते हैं। ये रेतःकण स्यन्दनशील हैं, बहने के स्वभाववाले हैं। इनका रक्षण न किया जाए तो ये स्वभावतः नीचे की ओर जानेवाले होते हैं और तब शरीर में नाना प्रकार के रोग व्याप्त हो जाते हैं तथा मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि बुझ जाती है। रेतःकण, सुरक्षित होने पर शरीर को रोगों का शिकार नहीं होने देते और मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि को दीप्त रखते हैं। इसीलिए मन्त्र में कहते हैं कि हम इन रेतःकणों से शरीर व मस्तिष्क के रक्षण की याचना करते हैं। ये रेतःकण ही वस्तुतः हमारे शरीर में सब आवश्यक तत्त्वों का निर्माण करनेवाले हैं। (२) इन्हीं स्यन्दनशील रेतःकणों से हम **शर्यणावतः**=(शर्य=हिंसा) हिंसा व विनाश के कारणभूत **पर्वतान्**=अविद्या पर्वतों को (पञ्चपर्वा अविद्या को) आवृणीमहे=(keep away) अपने से दूर रखते हैं। एक रेतःकणों के रक्षण से (क) शरीर नीरोग बनता है, (ख) ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, (ग) विनाश के कारणभूत अविद्या के पर्वत उच्छिन्न हो जाते हैं। (३) अब अज्ञान को दूर करके **सूर्यं उषासम्**=सूर्य व उषा से हम **अनागास्त्वम्**=निष्पापता को **ईमहे**=चाहते हैं। 'सूर्य' 'निरन्तर गति' का प्रतीक है और उषा 'अन्धकार के दहन' का। हम निरन्तर गतिशील बनकर तथा अविद्यान्धकार का दहन करके निरपराध बनते हैं। (४) **सुवानः सोमः**=सात्त्विक अन्नों से उत्पन्न

किया जाता हुआ सोम (=वीर्य) **अद्य**=आज **नः**=हमारा **भद्रं कृणोतु**=कल्याण करे। सोम के रक्षण से हमारा सब प्रकार से कल्याण ही कल्याण हो। शरीर में व्याधियाँ न हों, मन में आधियाँ न हों तथा मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि की दीप्ति सदा बनी रहे।

भावार्थ—शरीर में रेतःकण ही सब आवश्यक तत्त्वों का निर्माण करनेवाले हैं। इनके रक्षण से ही हमारा जीवन अविद्यान्धकार व पापों से शून्य बनेगा।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

निष्पापता

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ३॥

(१) **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर **मही**=महनीय हैं, ये दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। **मातरा**=ये हमारे जीवन का निर्माण करनेवाले हैं। शरीर व मस्तिष्क से ही मनुष्य बनता है, **अनागसो**=निष्पाप मनुष्य आदर्श मनुष्य वही है जो स्वस्थ व सशक्त शरीर के साथ दीप्त मस्तिष्कवाला है। ये दोनों मस्तिष्क व शरीर **अद्य**=आज **नः**=हमें **सुविताय**=उत्तम आचरण व उत्तम आचरण से जनित सुख के लिये **त्रायेताम्**=रक्षित करें। शरीर की शक्ति व मस्तिष्क का ज्ञान हमारे आचरण को सुन्दर बनायें, जिससे हम अपने जीवन में सुखी हो सकें। (२) **उच्छन्ती**=अन्धकार को दूर करती हुई **उषा**=प्रातःकाल की वेला **अघम्**=पाप को **अपबाधताम्**=हमारे से दूर करे। उषा होती है और अन्धकार दूर हो जाता है, इसी प्रकार यह उषा हमारे जीवन में भी हृदयान्धकार को दूर करनेवाली हो और परिणामतः हमारे जीवन में से पाप विनष्ट हो जाएँ। (३) इस उषाकाल में **समिधानम्**=दीप्त की जाती हुई **अग्निम्**=इस अग्निहोत्र की अग्नि से **स्वस्ति**=उत्तम जीवन को, कल्याण को **ईमहे**=हम माँगते हैं, हम उषःकाल में अग्निहोत्र की अग्नि को उद्बुद्ध करनेवाले हों। यह प्रतिदिन उद्बुद्ध की जाती हुई अग्नि हमारे सब ज्ञात-अज्ञात रोगों को दूर करती हुई, हमारा कल्याण करे।

भावार्थ—हमारा स्वस्थ शरीर व दीप्त मस्तिष्क हमें निष्पाप बनाये। उषा हमारे पाप को दूर करे। समिद्ध अग्नि हमें 'स्वस्ति' प्राप्त कराये।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ऐश्वर्य व अक्रोध

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ४॥

(१) उषा से ही प्रार्थना करते हैं कि **इयम्**=यह **रेवती**=उत्तम प्रकाशरूप धनवाली **उस्रा**=पापों का उत्स्रावण=दूरीकरण करनेवाली **प्रथमा**=हमारे जीवन में सर्वप्रथम स्थान रखनेवाली अथवा हमारे हृदयों का पवित्र भावनाओं के सञ्चार से विस्तार करनेवाली यह उषा **सनिभ्यः नः**=उत्तम संविभाग पूर्वक खानेवाले अथवा प्रभु-पूजन करनेवाले हमारे लिये **रेवत्**=ऐश्वर्य से युक्त **सुदेव्यम्**=उत्तम दिव्यगुणों के लिये हितकर रूप में **व्युच्छतु**=अन्धकार को दूर करनेवाली हो। उषा हमें ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाये और ऐश्वर्य के साथ हमारे में दिव्यगुणों का सञ्चार करे। हम इस उषाकाल में प्रभु का पूजन करनेवाले हों हमारी वृत्ति सबके साथ बाँटकर खाने की हो। (२) **दुर्विदत्रस्य**=दुर्धन पुरुष के (विदत्र=धन) **मन्युम्**=क्रोध को **आरे**=अपने से दूर **धीमहि**=धारण करें। जिस प्रकार दुर्धन पुरुष क्रोध के वश हो जाते हैं, हम उस प्रकार दुर्धन न बनें। उषा हमें धन व ऐश्वर्य को

प्राप्त कराये, परन्तु हम उस धन के मद में भोग-प्रवण जीवनवाले होकर क्रोध न करते रहें। (३) इन धनों का विनियोग हम यज्ञादि उत्तम कर्मों में करें। प्रतिदिन **समिधानं अग्निम्**=समिद्ध की जाती हुई अग्नि से हम **स्वस्ति**=उत्तम जीवन व कल्याण की **ईमहे**=याचना करते हैं। अग्निहोत्र से रोग दूर हों और सौमनस्य प्राप्त हो। स्वस्थ व सुमना बनकर हम स्वस्ति व उत्तम जीवनवाले हों।

भावार्थ—उषा हमें धन व दिव्यगुण प्राप्त कराये। हम धनी हों, परन्तु क्रोधादि से कभी अभिभूत न हों। धनों का विनियोग यज्ञों में करें।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**आर्चीभुरिग्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ज्योति का भरण

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ५॥

(१) **याः उषसः**=जो उषाकाल **सूर्यस्य**=सूर्य की **रश्मिभिः**=किरणों से **सिस्रते**=(संगच्छन्ते) संगत होती हैं और जो उषाएँ **व्युष्टिषु**=अन्धकारों के दूर करने पर **ज्योतिः भरन्तीः**=प्रकाश का भरण करनेवाली होती हैं, वे उषाएँ **अद्य**=आज **भद्राः**=कल्याणकर होती हुई **नः**=हमारे **श्रवसे**=ज्ञान-प्रकाश के लिये **व्युच्छत**=अन्धकार को दूर करें। (२) इन उषाकालों में हम **समिधानम्**=समिद्ध होती हुई **अग्निम्**=अग्नि से **स्वस्ति ईमहे**=कल्याण की याचना करते हैं। ये अग्निहोत्र में प्रज्वलित की गई अग्नियाँ हमें नीरोगता व सौमनस्य को देकर उत्तम जीवनवाला बनायें। (३) उषाकाल जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सम्पृक्त होते हैं उसी प्रकार हम ज्ञान रश्मियों से संगत हों। उषाकाल अन्धकार को दूर करके प्रकाश का भरण करते हैं, हमारे मस्तिष्कों से भी अविद्यान्धकार का लोप होकर उनमें ज्ञान के प्रकाश का भरण हो।

भावार्थ—हम उषाकाल के समान अन्धकार को दूर करके अपने ज्ञान के प्रकाश का भरण करें।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

नीरोगतावाली उषाएँ

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत्।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ६॥

(१) **नः**=हमें **अनमीवाः उषसः**=रोगरहित उषाकाल **आचरन्तु**=सर्वथा प्राप्त हों। प्रत्येक उषाकाल में हम नीरोगता का अनुभव करें। उषाकाल का वायु ओजोन गैस के प्राचुर्यवाला होता है। इस समय का भ्रमण हमें आरोग्य का प्रदान करे। (२) इस समय **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **ज्योतिषा**=ज्ञान के प्रकाश के साथ **अग्नयः**=अग्निहोत्र में समिद्ध की जानेवाली अग्नियाँ **उज्जिहताम्**=उद्गत हों, अर्थात् घृत व सामग्री की आहुतियों से ये ऊँची-ऊँची लपटोंवाली हैं। हम अग्निहोत्र करें और स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान का वर्धन करें। (३) **अश्विना**=प्राणापान **तूतुजिं रथम्**=शीघ्रगामी शरीररूप रथ को **आयुक्षाताम्**=जोतें। इस शरीररूप रथ में इन्द्रियरूप घोड़े जुते हुए हों और हमारा यह रथ अकर्मण्य-सा न पड़ा रहे। कहने का अभिप्रायः यह कि हमारा जीवन बड़ा क्रियाशील हो। (४) प्रतिदिन प्रातः-सायं **समिधानं अग्निम्**=समिद्ध की जाती हुई इस अग्निहोत्र की अग्नि से **स्वस्ति**=कल्याण व उत्तम जीवन की **ईमहे**=हम याचना करते हैं। यह अग्नि हमारे जीवनों में नीरोगता व सौमनस्य को देनेवाली हो।

भावार्थ—हमें उषाकाल नीरोगता को देनेवाले हों हम प्रातः–सायं अग्निहोत्र अवश्य करें। प्राणसाधना से हमारे में क्रियाशीलता का विकास हो।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ज्ञान व धन का समन्वय

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ७॥

(१) हे **सवितः**=सबके प्रेरक प्रभो! **अद्य**=आज **नः**=हमारे लिये **श्रेष्ठम्**=प्रशस्यतम **वरेण्यम्**=वरणीय–चाहने योग्य **भागम्**=भजनीय–सेवनीय धन को **आसुव**=प्रेरित करिये। आपकी कृपा से हमें उत्तम चाहने योग्य धन प्राप्त हो। **स**=वे आप **हि**=निश्चय से **रत्नधाः असि**=रमणीय धनों के धारण करनेवाले हैं। (२) हे प्रभो! मैं आप से **रायः जनित्रीम्**=ऐश्वर्य को जन्म देनेवाली **धिषणाम्**=बुद्धि को **उपब्रुवे**=भोगता हूँ। मैं उस बुद्धि को प्राप्त करूँ जो मुझे धन कमाने के भी योग्य बनाये। मेरे में 'ज्ञान व धन' दोनों का समन्वय हो। (३) **समिधानं अग्निम्**=अग्निहोत्र में समिद्ध की जाती हुई अग्नि से **स्वस्ति ईमहे**=हम कल्याण की **ईमहे**=याचना करते हैं।

भावार्थ—हमें वरणीय धन प्राप्त हो। हमारे जीवन में 'धन व ज्ञान' का समन्वय हो।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**आर्चीस्वराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ऋत का प्रवाचन

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ८॥

(१) **यत्**=जब **मनुष्याः**=मननपूर्वक कर्मों को करनेवाले हम **देवानाम्**=सूर्य, चन्द्र आदि देवों का **अमन्महि**=ज्ञान प्राप्त करते हैं और इनकी गतियों में ऋत का दर्शन करते, अपनी इन्द्रियों से भी ऋतस्य **प्रवाचनम्**=ऋत का ही उच्चारण करवाते हैं, अर्थात् सब इन्द्रियों से सब कार्यों को बड़ी नियमितता से करते हैं, तो **तत्**=वह ऋत का प्रवाचन=सब कार्यों का समय पर करना **मा पिपर्तु**=मेरा पालन व पूरण करे। ऋत के पालन से मेरा शरीर रोगों से आक्रान्त न हो और मेरे मन में किसी प्रकार की न्यूनता न आ जाये। वस्तुतः 'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्र–मसाविव'=सूर्य व चन्द्रमा की तरह हम बड़े नियम से अपने मार्ग का आक्रमण करें, इसी में कल्याण है। (२) इस ऋत के पालन के होने पर **विश्वाः**=सब **उस्राः**=प्रकाशों को **स्पट्**=स्पर्श करता हुआ **सूर्यः**=ज्ञान का सूर्य **इत् उदेति**=निश्चित ही हमारे जीवन के आकाश में उदित होता है। ऋत का पालन ज्ञान के प्रकाश की अभिवृद्धि का कारण हो जाता है। (३) हम प्रतिदिन **समिधानं अग्निम्**=समिद्ध की जाती हुई अग्नि से **स्वस्ति ईमहे**=कल्याम की याचना करते हैं।

भावार्थ—हम सूर्यादि देवों का मनन करते हुए अपने जीवन में ऋत का पालन करें। यह ऋत हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाये।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

आचार्यों का सम्पर्क

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे।

आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे॥ ९॥

(१) हे प्रभो! आपकी कृपा से **बर्हिषः**=वासनाशून्य हृदय के **स्तरीमणि**=बिछाने के निमित्त **अद्य**=आज **अद्वेषः**=हमारे किसी प्रकार का द्वेष न हो। हम सब प्रकार के ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि से ऊपर उठकर हृदय को निर्मल बना पायें। उस निर्मल हृदयासन पर हम आपको आमन्त्रित करनेवाले बनें। (२) हम **ग्राव्णाम्**=(गृ-गुरूणां) ज्ञान देनेवाले गुरुओं के **योगे**=सम्पर्क में **मन्मनः**=ज्ञान की **साधः**=साधना को **ईमहे**=माँगते हैं। ज्ञानी गुरुओं के सम्पर्क में आकर हमारे ज्ञान में निरन्तर वृद्धि हो। (साधनं साधः) (३) हे प्रभो! आप हमें निरन्तर यही तो प्रेरणा दे रहे हैं कि **आदित्यानाम्**=सब ज्ञानों का आदान करनेवाले गुरुओं के **शर्मणि**=(स्थाने शा० shelter) शरण में **स्थाः**=तू स्थित हो और **भुरण्यसि**=ज्ञान से अपने को भरनेवाला बन तथा कर्त्तव्य कर्मों का धारण करनेवाला बन। (४) हम आपकी इस प्रेरणा को सुनते हुए ज्ञानियों से ज्ञान को प्राप्त करने के लिये यत्नशील हों तथा प्रतिदिन **समिधानं अग्निम्**=समिद्ध की जाती हुई अग्नि से **स्वस्ति**=कल्याण की **ईमहे**=याचना करें। यह अग्निहोत्र की अग्नि हमें नीरोग व सुमना बनाये और इस प्रकार हमें ज्ञान प्राप्ति के योग्य करे।

भावार्थ—हम द्वेष से ऊपर उठकर हृदय को निर्मल बनायें। आचार्यों के सम्पर्क में आकर ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'इन्द्र-मित्र-वरुण-भग'

आ नो॑ ब॒र्हिः स॑ध॒मादे॑ बृ॒हद्दि॒वि दे॒वाँ ई॑ळे सा॒दया॑ स॒प्त होतॄ॑न्।
इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णं सा॒तये॒ भगं॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **नः**=हमें **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय **आसादया**=प्राप्त कराइये। इस **बृहद्दिवि**=बढ़ी हुई दीप्तिवाले **सधमादे**=प्रभु व जीव के मिलकर आनन्दित होने के स्थानभूत हृदय में **देवान् ईडे**=मैं देवों का, विद्वानों का पूजन करता हूँ। उनके प्रति श्रद्धा की भावना को धारण करता हूँ। इनके सम्पर्क से ही तो मुझे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होगा। (२) हे प्रभो! आप **सप्त होतॄन्**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इस मन्त्र भाग में वर्णित सात ज्ञान यज्ञ के होतृभूत कानों, नासिका छिद्रों, आँखों व मुख को **आसादय**=हमें प्राप्त कराइये। इनके द्वारा ही तो हमारा यह ज्ञानयज्ञ सुचारुरूपेण चलेगा। (३) हम **सातये**=उत्तम कल्याण की प्राप्ति के लिये **इन्द्रम्**=इन्द्र को, जितेन्द्रियता की भावना को, **मित्रम्**=सबके प्रति स्नेह की भावना को, **वरुणम्**=द्वेष निवारण की भावना को और **भगम्**=ऐश्वर्य की अधिष्ठातृ देवता को **ईमहे**=प्राप्त करने के लिये चाहते हैं। 'जितेन्द्रियता, स्नेह, निर्द्वेषता व ऐश्वर्य' ये हमें कल्याण प्राप्त कराएँगे। (४) **समिधानं अग्निम्**=हम अग्निहोत्र में समिध्यमान अग्नि से **स्वस्ति**=कल्याण की **ईमहे**=याचना करते हैं।

भावार्थ—हमारा हृदय वासनाशून्य हो। उस हृदय में देवों के प्रति श्रद्धा की भावना हो। हम जितेन्द्रिय, स्नेहवाले, निर्द्वेष व ऐश्वर्यशाली हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'बृहस्पति-पूषा-अश्विनौ-भग'

त आ॑दि॒त्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये वृ॒धे नो॑ य॒ज्ञम॑वता सजोषसः।
बृह॒स्पतिं॑ पू॒षण॑म॒श्विना॒ भगं॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे॥ ११॥

(१) हे **आदित्याः**=सब ज्ञानों व अच्छाइयों का आदान करनेवाले देवो! **ते**=वे आप

सर्वतातये=हमारे में सब गुणों के विकास के लिये **आगता**=आइये। देवों के सम्पर्क में आकर हम भी देव बनते हैं, हमारे में सब दिव्य गुणों का विकास होता है। जैसों के साथ हमारा उठना-बैठना होता है वैसे ही हम बनते हैं। (२) हे देवो! आप **सजोषसः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **यज्ञं अवता**=हमारे से किये जाते हुए यज्ञों का रक्षण करिये। आपकी कृपा से हमारी यज्ञिय वृत्ति सदा बनी रहे। (३) हम **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के अधिष्ठातृदेव बृहस्पति से **पूषणम्**=पुष्टि के देवता पूषा से, **अश्विना**=प्राणापान से, **भगम्**=ऐश्वर्य के देवता भग से, **समिधानं अग्निम्**=अग्निहोत्र में समिद्ध की जाती हुई अग्नि से **स्वस्ति ईमहे**=कल्याण व उत्तम स्थिति की याचना करते हैं। वस्तुतः जीवन के उत्कर्ष के लिये आवश्यक है कि हम बृहस्पति आदि देवों की आराधना करें। 'ऊँचे से ऊँचा ज्ञान प्राप्त करें' यही बृहस्पति की आराधना है। इसी प्रकार शरीर के उचित पोषण से 'पूषा' की तथा प्राणापान की शक्ति की वृद्धि के द्वारा हम 'अश्विना' की आराधना करें। सुपथ से ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए 'भग' के उपासक हों और प्रातः-सायं अग्निहोत्र करते हुए अग्नि का पूजन करें। यही कल्याण प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—हम 'बृहस्पति, पूषा, अश्विनौ, भग' के उपासक बनें।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**पादनिचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'सुप्रवाचन-सुभर-नृपाय्य' घर

तन्नो॑ देवा यच्छत सुप्रवाच॒नं छ॒र्दिरा॑दित्याः सु॒भरं॑ नृ॒पाय्य॑म्।
पश्वे॑ तो॒काय॒ तन॑याय जी॒वसे॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे॥ १२॥

(१) हे **देवाः**=गत मन्त्रों में वर्णित देवो! **आदित्याः**=आप सब ज्ञानों व उत्तमताओं का आदान करनेवाले हो आप **नः**=हमें **तत् छर्दिः**=वह घर **यच्छता**=दीजिये। जो (क) **सुप्रवाचनम्**=प्रभु के गुणों के उत्तम प्रवचनवाला है। जिसमें प्रभु के गुणों का गान होता है अथवा जिसमें सदा शुभ ही शब्द बोले जाते हैं। (ख) **सुभरम्**=जो उत्तम भरण व पोषणवाला है, जो समृद्ध है, जिसमें खान-पान की किसी भी प्रकार से कमी नहीं है। (ग) **नृपाय्यम्**=जो घरों-नरों का रक्षण करनेवाला है, जिस घर में नरों का वास है, उनका जो (नृ नये) निरन्तर अपने को आगे ले-चल रहे हैं। (२) ऐसे घर में निवास करते हुए हम **पश्वे**=अपने गौ आदि पशुओं के लिये, **तोकाय**=अपने सन्तानों के लिये **तनयाय**=पौत्रों के लिये तथा **जीवसे**=उत्तम दीर्घ जीवन के लिये **समिधानं अग्निम्**=समिद्ध की जाती हुई अग्नि से **स्वस्ति ईमहे**=कल्याण की याचना करते हैं। 'सुप्रवाचन-सुभर-नृपाय्य' घर में हम नियमपूर्वक अग्निहोत्र करें। इस अग्निहोत्र से वायुमण्डल की शुद्धि होकर उस घर में सभी स्वस्थ हों। हमारे पशुओं की स्थिति भी उत्तम हो, हमारे पुत्र-पौत्र अच्छे हों और हमारा जीवन भी दीर्घ हो।

भावार्थ—देव कृपा से हम 'सुप्रवाचन-सुभर-नृपाय्य' घर को प्राप्त करें। उस घर में हम नियम से अग्निहोत्र करें।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्राणायाम व अग्निहोत्र

विश्वे॑ अ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः।
विश्वे॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ अ॒स्मे॥ १३॥

(१) **अद्य**=आज **विश्वे**=सब **मरुतः**=प्राण **समिद्धाः**=दीप्त **भवन्तु**=हों और **विश्वे**=ये

सब प्राण **ऊती**=रक्षण के लिये **भवन्तु**=हों। हमारे घरों में **विश्वे अग्नयः**=सब यज्ञों की अग्नियाँ **समिद्धाः भवन्तु**=समिद्ध हों। वे यज्ञाग्नियाँ कभी बुझे नहीं। हम प्राणायाम के द्वारा प्राणसाधना को करनेवाले हों और अग्निहोत्र के द्वारा घर के वायुमण्डल का शोधन करें। (२) ऐसा करने पर, अर्थात् प्राणायाम व अग्निहोत्र के अपनाने पर **विश्वे**=सब **देवः**=देव **नः**=हमें **अवसा**=रक्षा के हेतु से **गमन्तु**=प्राप्त हों। प्राणसाधना व अग्निहोत्र से सब आन्तर व बाह्य देवों का आनुकूल्य प्राप्त होता है और ये देव हमारा रक्षण करनेवाले होते हैं। (३) देवों के रक्षण के परिणामस्वरूप **विश्वं द्रविणम्**=सम्पूर्ण धन व **वाजः**=शक्ति व ज्ञान **अस्ये**=हमारे में **अस्तु**=हो। शक्ति व ज्ञान हमारी आन्तर सम्पत्ति हो और धन हमारी बाह्य समृद्धि का कारण बने। इस प्रकार हम प्राणायाम से शक्ति व ज्ञान की सम्पत्ति का लाभ प्राप्त करें तो अग्निहोत्र से उचित वर्षण के द्वारा अन्नादि की समृद्धिवाले हों।

भावार्थ—प्राणायाम हमें 'शक्ति व ज्ञान' रूप आन्तर सम्पत्ति को प्राप्त करायें तथा अग्निहोत्र हमें आद्य अन्नों को प्राप्त कराता हुआ समृद्ध करनेवाला हो।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अभय प्राप्ति

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः॥ १४॥

(१) हे **देवासः**=देवो! **यम्**=जिसको आप **वाजसातौ**=इस जीवन में **अवथ**=रक्षित करते हो, **यं त्रायध्वे**=जिसको आप रोगादि के आक्रमण से बचाते हो और **यम्**=जिसे **अंहः अतिपिपृथ**=पाप से पार ले जाते हो इस प्रकार **यः**=जो **वः**=आपके **गोपीथे**=रक्षण में होता है वह **भयस्य न वेद**=किसी भय को प्राप्त नहीं होता। देवों के रक्षण में स्थित होने पर एक मनुष्य को निर्धनता जनित कष्ट परेशान नहीं करते, वह रोगों का शिकार नहीं होता और वह पापगर्त में नहीं फँसता। (२) हे देवो! आप ऐसी कृपा करो कि हम भी **ते स्याम**=वे ही हों जो आपके रक्षण में निर्भीक होकर विचरते हैं तथा **तुरासः**=त्वरावाले, शीघ्रता से कार्य करनेवाले अथवा शत्रुओं का संहार करनेवाले हम **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **स्याम**=हों। देवों के रक्षण में हम अपने अन्दर उत्तरोत्तर दिव्यगुणों का वर्धन कर पायें।

भावार्थ—जीवन-संग्राम में देव हमारा रक्षण करें। हमें वे रोगों से बचाएँ तथा पापों के पार ले जायें। इस प्रकार हम अपने में दिव्यगुणों का वर्धन करनेवाले बनें।

सूक्त का प्रारम्भ इन शब्दों से हुआ है कि स्वाध्याय के द्वारा हम अपने में ज्योति का भरण करें। (१) रेतःकणों के रक्षण से हम निष्पापता को प्राप्त करें, (२) उषा हमारे पापों को दग्ध करे, (३) हम धनी हों, पर कभी क्रोधाभिभूत न हों, (४) उषा से प्रेरित होकर हम ज्योति का भरण करें, (५) उषाएँ हमारे लिये नीरोगता को लानेवाली हों, (६) हमारे जीवन में धन व ज्ञान का समन्वय हो पाये, (७) ऋत का हम पालन करें, (८) आचार्यों के सम्पर्क में रहकर ज्ञान को बढ़ायें, (९) 'इन्द्र, मित्र, वरुण व भग' के उपासक बनें, (१०) बृहस्पति पूषा अश्विनौ भग का निरन्तर पूजन हो, (११) सुप्रवाचन, सुभर व नृपाय्य घर हमें प्राप्त हो, (१२) इस घर में हम 'प्राणायाम व अग्निहोत्र' को नियम से अपनायें, (१३) देव कृपा से हमें अभय प्राप्त हो, (१४) हम देवों का आराधन करनेवाले हों।

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—लुशो धानाकः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

देवाह्वान व स्वर्ग

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः॥ १ ॥

(१) मैं **उषासानक्ता**=उषा व रात्रि को **हुवे**=पुकारता हूँ। उषा जैसे अन्धकार का दहन कर प्रकाश को फैलाती है, मैं भी इसी प्रकार अज्ञानान्धकार को दूर करके ज्ञान के प्रकाश को फैलानेवाला बनूँ। नक्त=अर्थात् रात्रि जिस प्रकार उचित लज्जावाली होती हुई अपने को अन्धकार में छिपा लेती है उसी प्रकार मैं भी उचित लज्जाशीलतावाला व 'ह्री' के बलवाला बोता हुआ अपने को अप्रसिद्धि (obseurity) में ही रखनेवाला बनूँ। (२) **बृहती**=खूब बढ़ी हुई विशाल **सुपेशसा**=उत्तम रूपवाली **द्यावाक्षामा**=द्युलोक व पृथिवीलोक को **हुवे**=मैं पुकारता हूँ। द्युलोक व पृथिवीलोक विशाल व सुरूप हैं। मैं भी अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को अत्यन्त विशाल बनाने का प्रयत्न करता हूँ, मैं अपने ज्ञान को खूब ही बढ़ाता हूँ। साथ ही मैं अपने पृथिवी के समान शरीर को सुरूप बनाता हूँ। स्वास्थ्य के साधन से मेरा शरीर सौन्दर्यवाला होता है। (३) **वरुणः मित्रः अर्यमा**='वरुण, मित्र व अर्यमा' ये तीनों देव मेरे से पुकारे जाते हैं। मैं द्वेष का निवारण करनेवाला 'वरुण' बनता हूँ, सब के साथ स्नेह करता हुआ 'मित्र' होता हूँ और सदा काम-क्रोधादि शत्रुओं का नियमन करनेवाला 'अर्यमा' बनता हूँ 'अरीन् यच्छति'। (४) इस प्रकार सब शत्रुओं का नियमन करके मैं **'इन्द्रं'**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता को **हुवे**=पुकारता हूँ। सब असुरों का संहार करनेवाला इन्द्र है मैं भी अपने में असुरवृत्तियों का संहार करके 'इन्द्र' बनता हूँ। (५) इन्द्र बनने के लिये ही मैं **'मरुता'**=प्राणों को **हुवे**=पुकारता हूँ। प्राणसाधना ही तो मुझे आसुर-वृत्तियों के संहार में समर्थ बनाती है। इसी से मरुत् इन्द्र के सैनिक कहलाते हैं। (६) **पर्वतान् हुवे**=मैं पर्वतों को पुकारता हूँ। आचार्य ने यजुर्वेद ३५,१५ में पर्वत का अर्थ ज्ञान व ब्रह्मचर्य किया है। 'अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन' इस मन्त्र भाग में ब्रह्मचर्य अर्थ ही सुसंगत प्रतीत होता है—'मृत्यु को ब्रह्मचर्य से अन्तर्हित करे'। मैं यही आराधना करता हूँ कि मेरे में ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित हो, उस ब्रह्मचर्य से मैं ज्ञान को प्राप्त करनेवाला बनूँ। (७) **अपः**=जलों को मैं पुकारता हूँ। शरीर में ये जल रेतःकणों के रूप में निवास करते हैं। इन्हें मैं अपने में धारण करता हूँ। (८) इन रेतःकणों के धारण से **आदित्यान्**=मैं आदित्यों को पुकारता हूँ। इन आदित्यों की तरह उत्तम गुणों का आदान करनेवाला बनता हूँ। ये आदित्य भी तो सारे समुद्र में से मधुर जल को ही लेते हैं। (९) इस प्रकार आदित्य बनकर मैं 'द्यावापृथिवी अपः' द्युलोक, पृथिवीलोक व अन्तरिक्षलोक सभी को ही सुन्दर बनाता हूँ। द्युलोक मेरा मस्तिष्क है, इसे मैं ज्ञानोज्वल करता हूँ। पृथिवीलोक मेरा शरीर है, इसे मैं दृढ़ बनाता हूँ। अन्तरिक्षलोक मेरा हृदय है, इसे मैं निर्मल रखने का प्रयत्न करता हूँ। (१०) इस प्रकार त्रिलोकी को सुन्दर बनाकर मैं **'स्वः'**=स्वर्गलोक को, प्रकाशमय लोक को पुकारता हूँ। त्रिलोकी का सौन्दर्य मुझे स्वर्ग में आसीन करता है। मुझे सुख ही सुख प्राप्त होता है, मेरे दुःखों व नरक का अन्त हो जाता है।

भावार्थ—मैं सब देवताओं का अनुकरण करता हुआ अपने जीवन को स्वर्ग-तुल्य बनाता हूँ।

ऋषिः—लुशो धानाकः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्क

द्यौश्च॑ नः पृथि॒वी च॒ प्रचे॑तस ऋ॒ताव॑री रक्षता॒मंह॑सो रि॒षः।
मा दु॒र्वि॒दत्रा॒ निर्ऋ॑तिर्न ईशत॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे॥ २॥

(१) **द्यौः च पृथिवी च**=द्युलोक और पृथिवीलोक **नः**=हमारे **प्रचेतसे**=प्रकृष्ट ज्ञान के लिये हों। मस्तिष्करूप द्युलोक का तो ज्ञान प्राप्ति के लिये ठीक होना आवश्यक ही है, शरीररूपी पृथिवी की दृढ़ता भी ज्ञान प्राप्ति के लिये जरूरी है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का भी निवास होता है। (२) **ऋतावरी**=ऋत का रक्षण करनेवाले द्युलोक व पृथिवीलोक **अंहसः**=पाप से तथा **रिषः**=रोगादि के कारण होनेवाली हिंसा से **रक्षताम्**=हमें बचाएँ। हमारे मस्तिष्क में ऋत हो, सत्य हो। मस्तिष्क में होनेवाला ऋत हमारे विचारों की पवित्रता का कारण बनेगा। पवित्र विचार हमारे आचार को सत् व पवित्र बनाएँगे और इस प्रकार हम पापों से बचे रहेंगे। शरीर में ऋत 'नियमितता=regularity' के रूप में है और यह नियमितता हमें रोगों से होनेवाली हिंसा से बचाती है। समय पर सोने-जागने व खानेवाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता। (३) इस प्रकार स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ शरीरवाले **नः**=हमारा **दुर्विदत्रा**=दुष्ट धन से उत्पन्न होनेवाली **निर्ऋतिः**=दुर्गति **मा ईशत**=मत शासन करे। हम अन्याय मार्ग से धन कमानेवाले न हों। अन्याय मार्ग से अर्जित धन अन्ततः दुर्गति का कारण बनता है। वस्तुतः अनुचित मार्ग से धन कमाने की ओर उन्हीं का झुकाव होता है जो मस्तिष्क व शरीर के दृष्टिकोण से स्वस्थ नहीं होते। (४) इस प्रकार सुपथ से ही धनार्जन करते हुए हम **अद्या**=आज **देवानाम्**=देवों के **तत् अवः**=उस रक्षण को **वृणीमहे**=वरते हैं। हम अपने अन्दर दिव्यता को धारण करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—सत्य से दीप्त मस्तिष्क हमें पापों से बचाये। नियमित क्रियाओंवाला शरीर रोगों का शिकार न हो। 'हम सुपथ से ही धनार्जन करें' यही स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्क का लक्षण है।

ऋषिः—लुशो धानाकः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—विराड्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

लोलुपता शून्य ऐश्वर्य

विश्व॑स्मान्नो॒ अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सो मा॒ता मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य रे॒वतः॑।
स्व॑र्व॒ज्ज्योति॑रवृ॒कं न॑शीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे॥ ३॥

(१) **रेवतः**=ऐश्वर्यवाले **मित्रस्य**=मित्र की **वरुणस्य**=और वरुण की **माता**=जननी **अदितिः**=अदीना देवमाता **नः**=हमें **विश्वस्मात् अंहसः**=सम्पूर्ण पापों से **पातु**=बचाये। 'मित्र' स्नेह की देवता है और 'वरुण'=निर्द्वेषता की। 'सब के प्रति स्नेह व द्वेष का अभाव' ये दो वृत्तियाँ मनुष्य को सांसारिक दृष्टिकोण से भी सम्पन्न बनाती हैं, इसी से यहाँ इनका विशेषण 'रेवतः' दिया गया है। मूल में 'अदिति' प्रभु हैं, वे हमें प्रेमवाला व निर्द्वेष बनाएँ, जिससे जहाँ हम पापों से बचे रहें वहाँ ऐश्वर्य-सम्पन्न भी बनें। (२) ऐश्वर्य को पाकर हम **अवृकम्**=लोभ से रहित **स्वर्वत्**=प्रकाशमय व सुखमय **ज्योतिः**=ज्ञान को **नशीमहि**=प्राप्त हों। हम धन सम्पन्न तो हों, परन्तु उस धन का हमें लालच न हो। 'धन तो हो, पर धन का लोभ न हो' तो ही वास्तव में सुखमय प्रकाश की प्राप्ति होती है। (३) इस प्रकार धन तथा निर्लोभता को प्राप्त करके हम **अद्या**=अब **तत् देवानाम् अवः**=उस देवताओं को रक्षण को **वृणीमहे**=वरते हैं। हम अपने अन्दर दिव्यवृत्तियों

के धारण के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—हम प्रेम व निर्द्वेषता को धारण करें। लोलुपताशून्य ऐश्वर्यवाले हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

आचार्योपदेश से रक्षः निराकरण

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम्।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥ ४॥

(१) **ग्रावा**=ज्ञानी प्रभु-भक्त गुरु (गृ=शब्दे विद्वांसो हि ग्रावाणः श० ३।९।३।१४) **वदन्**=उपदेश देता हुआ **रक्षांसि**=राक्षसी वृत्तियों को **अपसेधतु**=दूर करे। यह आचार्य सदुपदेश द्वारा **दुष्ष्वप्न्यम्**=बुरे स्वप्नों की कारणभूत वृत्तियों को दूर करे। **निर्ऋतिम्**=दुराचरण को दूर करे और **विश्वम्**=सब **अत्रिणम्**=(अद्भक्षणे) स्वयं खा जाने की वृत्तियों को दूर करे। अपने मुँह में ही आहुति देनेवाले तो असुर होते हैं, आचार्य हम से इस आसुरवृत्ति को दूर विनष्ट करनेवाले हो। (२) आचार्य के उपदेश के प्रभाव से ही हम **मरुताम्**=प्राणों के **आदित्यम्**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले **शर्म**=सुख को **अशीमहि**=प्राप्त करें। 'आदित्य शर्म' वह है जो बुराइयों को छोड़ने व अच्छाइयों के ग्रहण करने से उत्पन्न होता है। आचार्य का उपदेश हमें दुरितों से दूर व सुवितों के समीप करके इस योग्य बनाता है कि जीवन में सुख को प्राप्त करनेवाले हों। प्राणसाधना से इस 'आदित्य शर्म' की प्राप्ति में सहायता मिलती है। वास्तविकता तो यह है कि प्राणसाधना से ही सब दोषों का दहन होता है। (३) इस प्रकार दोषों का दहन करके **अद्या**=आज हम **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **वृणीमहे**=वरते हैं, अर्थात् हम दिव्यता को अपने अन्दर धारण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—आचार्य का उपदेश हमारे जीवनों से अशुभवृत्तियों को दूर करे प्राणसाधना के द्वारा दोषदहन से अच्छाइयों का ग्रहण करते हुए हम सुखी हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ज्ञान व भक्ति का समन्वय

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **बर्हिः**=हमारे वासनाशून्य हृदय में **आसीदतु**=आसीन हो। उस हृदयस्थ प्रभु के द्वारा प्रेरित **इडा**=वेदवाणी **पिन्वताम्**=हमें प्रीणित करनेवाली हो। वेदवाणी के ग्रहण से **बृहस्पतिः**=उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुआ **ऋक्वः**=स्तुति के मधुर शब्दों का उच्चारण करनेवाला पुरुष **सामभिः**=साम-मन्त्रों से **अर्चतु**=प्रभु की अर्चना करे अथवा ऋक्वः=ज्ञान में निपुण यह पुरुष सामभिः=उपासनाओं के द्वारा अर्चतु=चमक उठे (अर्च् to shine)। ज्ञान के साथ उपासना का समावेश इसे दीप्त करनेवाला हो। (२) हे प्रभो! आपकी कृपा से हम **सुप्रकेतम्**=उत्तम विज्ञानवाले **मन्म**=मननीय स्तोत्रों का **धीमहि**=धारण करें जिससे **जीवसे**=हम उत्कृष्ट जीवन के लिये हों। 'ज्ञान व स्तवन' का समन्वय ही तो हमें प्रशस्त जीवनवाला बनायेगा। (३) इस प्रकार ज्ञानी स्तोता बनकर हम **देवानां तद् अवः**=देवों के उस रक्षण को **अद्या**=आज **वृणीमहे**=वरते हैं। हम प्रयत्न करते हैं कि अपने अन्दर दिव्यता का रक्षण कर सकें।

भावार्थ—हम हृदय को वासना शून्य बनाकर प्रभु को उसमें आसीन करें और हृदयस्थ प्रभु

से वेदवाणी की प्रेरणा को प्राप्त करनेवाले हों। इस प्रकार हमारे जीवनों में ज्ञान व भक्ति का समन्वय हो पायेगा।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

यज्ञाग्नि व सूर्य-किरणें

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अस्माकम्**=हमारे **दिविस्पृशम्**=द्युलोक में स्पर्श करनेवाले 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यन् आदित्यमुपतिष्ठते' **यज्ञम्**=यज्ञ को **जीराध्वरम्**=रोग-कृमियों के जीर्ण करनेवाला तथा हमारे जीवनों को अहिंसित करनेवाला और इस प्रकार **सुम्नम्**=सुख को देनेवाला **कृणुतम्**=करिये। यह यज्ञ **इष्टये**=हमारे इष्ट की प्राप्ति के लिये हो, अभिलषित सिद्धि के लिये हो। (२) हम अपने जीवनों में यज्ञों को करनेवाले हों। हमारी प्राणापान शक्ति यज्ञादि उत्तम कर्मों में ही विनियुक्त हो। ये हमारे प्राणापान **घृतेन**=घृत से **आहुतम्**=आहुति दिये गये इस अग्नि को **प्राचीनरश्मिम्**=रश्मियों के अभिमुख जानेवाला करें। वस्तुतः सूर्योदय के समय किया गया यह अग्निहोत्र सम्पूर्ण वायुमण्डल के शोधन के लिये होता है। (३) इस प्रकार यज्ञों को करते हुए हम **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **अद्या**=आज **वृणीमहे**=वरते हैं। यज्ञों के द्वारा दिव्यता का अपने में वर्धन करते हैं।

भावार्थ—हमारी प्राणशक्ति यज्ञों में विनियुक्त हो। यज्ञ रोग-कृमियों के संहार व हमारे जीवनों की अहिंसा के लिये हों। यज्ञाग्नि व सूर्य-रश्मियाँ मिलकर वायुमण्डल के शोधक हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

मारुतगण का आह्वान

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम्।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥७॥

(१) **मारुतं गणम्**=प्राणों के गण को **उपह्वये**=पुकारता हूँ, अर्थात् प्राणायामादि के द्वारा मैं इन प्राणों की साधना करता हूँ। जो प्राण **सुहवम्**=उत्तम पुकारवाले हैं, अर्थात् जिनका आराधन कल्याण ही कल्याण करनेवाला है। **पावकम्**=ये प्राण पवित्र करनेवाले हैं, प्राणायाम से दोषों का दहन होकर इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं। **ऋष्वम्**=यह मारुतगण दर्शनीय है व महान् है (great, high, noble) प्राणसाधना से शरीर स्वस्थ व सुन्दर बनता है और मनुष्य उन्नत होकर महान् बनता है। **शंभुवम्**=यह मारुतगण शान्ति को जन्म देता है, इस प्राणसाधना से मानस शान्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार यह मारुतगण **सख्याय**=उस प्रभु के साथ हमारी मित्रता के लिये साधन बनता है। (२) इस प्राणसाधना के द्वारा हम **रायस्पोषम्**=धनों के पोषण को भी **धीमहि**=धारण करते हैं और यह रायस्पोष हमारे **सौश्रवसाय**=उत्तम यश के लिये हो। प्राणसाधना से शक्ति की भी वृद्धि होती है और मानस पवित्रता भी प्राप्त होती है। शक्ति वृद्धि से हमारी धनार्जन की क्षमता बढ़ती है और मानस पवित्रता से हम उस धन का ठीक उपयोग व यज्ञ में विनियोग करते हैं। इसलिए यह धन हमारे यश का कारण बनता है। (३) इस प्रकार यज्ञों को करते हुए हम **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **अद्या**=आज **वृणीमहे**=वरते हैं। यज्ञों के द्वारा दिव्यता का अपने में वर्धन करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारे जीवन को पवित्र व सशक्त बनाये। हम धनार्जन की क्षमतावाले बनें और उस धन का यज्ञों में विनियोग करके यशस्वी हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सोम का भरण व यमन

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम्।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ८ ॥

(१) गत मन्त्र में प्राणसाधना का वर्णन था। प्राणसाधना हमारे जीवन को पवित्र व महान् बनाती है। वस्तुतः इस प्राणसाधना से सोम का रक्षण होता है और यह सुरक्षित सोम ही सब प्रकार की उन्नतियों का कारण बनता है। मन्त्र में कहते हैं कि **सोमम्**=इस सोम को **भरामहे**=अपने में धारण करते हैं और **यमीमहि**=इस सोम का संयम करते हैं, इस शरीर में सुरक्षित करते हैं। (२) भृत व रक्षित सोम **अपां पेरुम्**=हमारे सब कर्मों का पूरण करनेवाला है, इसकी शक्ति से ही हम सब कर्मों में सफल होते हैं। **जीवधन्यम्**=यह हमारे जीवन को धन्य बनानेवाला है, **देवाव्यम्**=हमारे जीवन में दिव्यगुणों का रक्षण करने में यह उत्तम है, सोम के रक्षण से दिव्यगुणों की वृद्धि होती है। **सुहवम्**=यह शोभन पुकारवाला है, इसकी आराधना से कल्याण ही कल्याण होता है। **अध्वरश्रियम्**=यह जीवनयश की शोभा का कारण बनता है (अध्वरस्य श्रीः यस्मात्) **सुरश्मिम्**=ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर यह उत्तम ज्ञान की किरणोंवाला होता है और साथ ही **इन्द्रियम्**=यह हमारी सब इन्द्रियों को सशक्त बनानेवाला है और इसीलिए इसे 'इन्द्रिय' यह नाम प्राप्त हो पाया है। (३) इस प्रकार सोम का रक्षण करते हुए हम **अद्य**=आज **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **वृणीमहे**=वरते हैं। हम सोमरक्षण के द्वारा अपने में दिव्यता का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—सोम का भरण व रक्षण हमें सफल जीवनवाला बनाये।

ऋषिः—**लुशो धानाकः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

संविभाग द्वारा उपासन

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ९ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार सोम का भरण व रक्षण करनेवाले **वयम्**=हम **जीवाः**=उत्तम जीवनवाले **जीवपुत्राः**=दीर्घजीवी सन्तानोंवाले **अनागसः**=निष्पाप होते हुए **सनित्वभिः**=संभजन की वृत्तिवाले पुत्र-पौत्रादिकों के साथ **तत्**=उस दिव्यगुणों के समूह को **सुसनिता**=उत्तम संभजन से **सनेम**=उपासित करें। वस्तुतः संविभागपूर्वक धन का सेवन ही प्रभु का उपासन है, यही दिव्यगुणों की प्राप्ति का मार्ग है। 'हविषाविधेम'=हवि के द्वारा, दानपूर्वक अदन के द्वारा हम प्रभु का पूजन करें यह मन्त्र भाग कई बार पढ़ा गया है। 'यज्ञ' की मौलिक भावना भी यही है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'=देव यज्ञ के द्वारा ही उस यज्ञ (=पूज्य) की उपासना करते हैं। (२) **ब्रह्मद्विषः**=ज्ञान से प्रीति न करनेवाले लोग ही **विश्वग्**=विविध गतियोंवाले **एनः**=इस पाप को **भरेरत**=धारण करें। अज्ञानियों में ही पाप का वास हो। हम तो संविभागपूर्वक यज्ञियवृत्ति से वस्तुओं का उपभोग करते हुए ज्ञानी बनें और पाप को अपने से दूर ही रखें। (३) इस प्रकार **तद्**=उस **देवानां अवः**=देवताओं के रक्षण को **अद्या**=आज **वृणीमहे**=हम वरते हैं। अपने अन्दर दिव्यता को धारण करते हैं।

भावार्थ—हम संविभाग की वृत्ति से प्रभु का उपासन करनेवाले बनें, ज्ञानी बनकर निष्पाप जीवनवाले हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

जैत्र क्रतु

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥ १०॥

(१) **ये**=जो आप **मनोः**=ज्ञान के **यज्ञियाः**=संगतिकरण में उत्तम **स्थाः**=हो **ते**=वे आप **शृणोतन**=हमारी बात को सुनिये और **देवाः**=हे विद्वानो! **यद्**=जो **वः**=आपसे **ईमहे**=हम याचना करते हैं **तद् ददातन**=हमें दीजिये। वस्तुतः वे विद्वान् जो अपने साथ ज्ञान को निरन्तर संगत करने में लगे हैं, वे ही हमारे संगतिकरण योग्य होते हैं। हमें उनके सम्पर्क में आकर यह कामना करनी कि—(२) वे देव हमें **जैत्रम्**=विजयशील **क्रतुम्**=ज्ञान को प्राप्त कराएँ। उस ज्ञान को वे हमें देनेवाले हों जो ज्ञान हमें काम-क्रोधादि शत्रुओं पर विजय करनेवाला बनाये। (३) इसके साथ ही वह ज्ञान हमें **रयिमत्**=उत्तम धन से युक्त **वीरवत्**=वीरतावाले **यशः**=यशस्वी जीवन को देनेवाला हो। देवों के सम्पर्क में आकर हमारा जीवन विजयशील ज्ञानवाला तथा धन व वीरता से युक्त यशवाला हो। (४) इस प्रकार हम **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **अद्या**=आज **वृणीमहे**=वरण करते हैं, अर्थात् ज्ञान व यश का सम्पादन करते हुए हम अपने में दिव्यता का अवतरण करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—देव हमें विजयी ज्ञान तथा धन व शक्ति से युक्त यश को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**लुशो धानाकः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

वीरजात वसु की प्राप्ति

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम्।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥ ११॥

(१) **अद्य**=आज **महताम्**=महान्, पूजा के योग्य **बृहताम्**=शरीर, मन व मस्तिष्क के दृष्टिकोण से वृद्धि को प्राप्त **अनर्वणाम्**=हिंसा की वृत्ति से रहित **देवानाम्**=देवों के **महत् अवः**=महनीय रक्षण का **आवृणीमहे**=वरण करते हैं **यथा**=जिससे कि **वीरजातम्**=वीरों के जन्म देनेवाले **वसु**=धन को **नशामहै**=हम प्राप्त करें। (२) देवों के लक्षणों में प्रथम लक्षण है 'महतां', देव महान् होते हैं, विशाल हृदयवाले होते हैं। दूसरा लक्षण 'बृहतां' शब्द से सूचित हुआ है। ये 'बृहि वृद्धौ' शरीर, मन व मस्तिष्क के दृष्टिकोण से उन्नत होते हैं! तीसरा लक्षण 'अनर्वणाम्' शब्द से कहा गया है, ये हिंसा की वृत्ति से दूर होते हैं। (३) इन देवताओं के सम्पर्क में हमारा जीवन भी इसी प्रकार का बनेगा और इस प्रकार हम अपने जीवन में उस **वसु**=धन को प्राप्त करेंगे जो हमें वीर बनानेवाला होगा। (४) इस प्रकार वसु का सम्पादन करते हुए हम **अद्या**=आज **देवानाम्**=देवों **तद् अवः**=उस रक्षण का **वृणीमहे**=वरण करते हैं। हम अपने जीवनों में दिव्यता को सुरक्षित करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—देव 'महान् बृहत् व अनर्वा' हैं। हम इनका रक्षण प्राप्त हों।

ऋषिः—लुशो धानाकः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—पादनिचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रभु की प्रेरणा में

महो अ॒ग्नेः स॑मिधा॒नस्य॒ शर्म॒ण्यना॑गा मि॒त्रे वरु॑णे स्व॒स्तये॑।
श्रेष्ठे॑ स्याम सवि॒तुः सवी॑मनि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे॥ १२॥

(१) **समिधानस्य**=अग्निकुण्ड में समिद्ध की जाती हुई **महः अग्नेः**=महनीय अग्नि की **शर्मणि**=शरण में हम हों अथवा इस अग्निहोत्र की अग्नि के शर्मणि=सुख में हम हों। यह अग्नि नीरोगता व सौमनस्य को देती है और इस प्रकार हमारे जीवन को सुखी बनाती है। (२) **मित्रे**=मित्र में तथा **वरुणे**=वरुण की शरण में हम **अनागाः**=निष्पाप हों। मित्र की शरण में होने का अभिप्राय यह है कि हम सदा परस्पर स्नेह करनेवाले हैं तथा वरुण की शरण का अभिप्राय 'द्वेष से ऊपर उठना' है। स्नेह व निर्द्वेषता हमारे जीवनों को निष्पाप बनाती हैं। इस प्रकार निष्पाप जीवनवाले हम **स्वस्तये**=उत्तम स्थिति के लिये हों, हमारा जीवन उत्तम बने। (३) हम सदा **सवितुः**=उस प्रेरक प्रभु को **श्रेष्ठे सवीमनि**=प्रशस्यतम प्रेरणा में चलनेवाले **स्याम**=हों। यह प्रेरणा हमें कभी मार्गभ्रष्ट न होने देगी। (४) इस प्रेरणा में चलते हुए हम **देवानाम्**=देवों के **तद् अवः**=उस रक्षण को **अद्य**=आज **वृणीमहे**=वरते हैं। हम प्रभु प्रेरणा से चलते हुए अपने में दिव्यता का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—हम अग्निहोत्र करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाते हैं। प्रभु की प्रेरणा में चलते हुए अपने में दिव्यता का विकास करते हैं।

ऋषिः—लुशो धानाकः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

स्नेह व निर्द्वेषता

ये स॑वि॒तुः स॒त्यस॑वस्य॒ विश्वे॑ मि॒त्रस्य॑ व्र॒ते वरु॑णस्य दे॒वाः।
ते सौभ॑गं वी॒रव॒द्गोम॒दप्नो॒ दधा॑तन॒ द्रवि॑णं चि॒त्रम॒स्मे॥ १३॥

(१) **ये**=जो **विश्वेदेवाः**=सब देव **सत्यसवस्य**=सत्य प्रेरणा देनेवाले **सवितुः**=प्रेरक के **मित्रस्य**=मित्र के तथा **वरुणस्य**=वरुण के **व्रते**=व्रत में स्थित हैं **ते**=वे **अस्मे**=हमारे लिये **सौभगम्**=सौभाग्य को और **वीरवत्**=वीरता से युक्त तथा **गोमत्**=उत्तम इन्द्रियों से युक्त **अप्नः**=कर्म को तथा **चित्रं द्रविणम्**=ज्ञान से युक्त अद्भुत धन को **दधातन**=धारण करें। (२) वस्तुतः देव वे ही हैं जो उस महान् देव के व्रतों में चलते हैं। वे महान् देव हृदयस्थरूपेण सदा सत्य प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। उस प्रेरणा के अनुसार जिनका जीवन चलता है वे देव बन जाते हैं। इस सविता देव की प्रेरणा में मुख्य बातें ये दो ही हैं कि 'सब के साथ स्नेह से चलो (मित्रस्य) और किसी से द्वेष न करो (वरुणस्य)'। देवताओं के ये ही मुख्य व्रत बनते हैं, वे सब के प्रति स्नेहवाले होते हैं और किसी के प्रति द्वेष नहीं करते। (३) इन देवताओं के सम्पर्क में चलने पर हमारा जीवन भी प्रशस्त बनता है, वह सौभाग्यवाला होता है, वीरता से युक्त होता है, प्रशस्त इन्द्रियोंवाला तथा क्रियामय होता है। इसके साथ हम उस अद्भुत धन को प्राप्त करनेवाले बनते हैं जो ज्ञान से युक्त होता है।

भावार्थ—प्रभु की प्रेरणा से मित्रता व निर्द्वेषता के व्रत को ग्रहण करनेवाले देव कहलाते हैं इनके सम्पर्क में आकर हम भी अपने जीवन को 'सौभाग्य, वीरता, प्रशस्तेन्द्रियता व ज्ञानयुक्त धन' से अलंकृत करें।

ऋषिः—लुशो धानाकः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सविता से सुत सर्वताति

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥ १४ ॥

(१) गत मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हम सत्य प्रेरणा देनेवाले सविता की प्रेरणा में चलते हुए देव बनें और सौभाग्यशाली जीवनवाले हों। उसी प्रार्थना को परिवर्तित रूप में इस प्रकार करते हैं कि वह सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक **सविता**=सम्पूर्ण ऐश्वर्योंवाला प्रभु **पश्चातात्**=पीछे से वही **सविता**=प्रेरक प्रभु **पुरस्तात्**=सामने से वही **सविता**=सब उत्तमताओं को जन्म देनेवाला प्रभु **उत्तरात्तात्**=ऊपर उत्तर से तथा वही **सविता**=जन्मदाता प्रभु **अधरात्तात्**=नीचे से यह **सविता**=उत्पादक प्रभु **नः**=हमारे लिये **सर्वतातिम्**=सब शक्तियों के विस्तार को **सुवतु**=प्रेरित करे। सविता की कृपा से हमारे जीवनों में सब शक्तियों का विस्तार हो। (२) इस शक्ति के विस्तार के द्वारा **सविता**=यह प्रेरक प्रभु **नः**=हमें **दीर्घम् आयुः**=दीर्घ जीवन **रासताम्**=दें शक्तियों के ह्रास से जीवन का ह्रास है, शक्तियों के विस्तार से जीवन का विस्तार है। शक्तियों का विस्तार करते हुए प्रभु हमें दीर्घजीवन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सविता की कृपा से हमारी सब शक्तियों का विस्तार हो और हमें दीर्घजीवन प्राप्त हो।

सूक्त के प्रारम्भ में कहा गया है कि सब देवों का अनुकरण करते हुए मैं अपने जीवन को स्वर्गतुल्य बनाता हूँ। (१) मैं स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ शरीरवाला बनूँ, (२) हम लोलुपता-शून्य ऐश्वर्यवाले हों, (३) आचार्यों का उपदेश हमारे जीवनों से अशुभवृत्तियों को दूर करे, (४) हमारे जीवन में ज्ञान व भक्ति का समन्वय हो, (५) यज्ञाग्नि व सूर्यरश्मियाँ मिलकर वायुमण्डल के शोधक हों, (६) प्राणसाधना हमारे जीवन को पवित्र व सशक्त बनाये, (७) सोम का भरण हमारे जीवन को सफल करे, (८) हम संविभाग की वृत्ति से प्रभु का उपासन करनेवाले बनें, (९) हम जैत्र क्रतु को प्राप्त करें, (१०) हम देवों की तरह 'महान्, बृहत् व अनर्वा' बनें, (११) प्रभु की प्रेरणा में चलें, (१२) स्नेह व निर्द्वेषतावाले हों, (१३) सविता से हमें सर्वताति प्राप्त हो और (१४) इस प्रकार हम 'सौर्य अभिलाषा' बन पायें।

॥ इति षट्त्रिंशं सूक्तम् समाप्तः ॥

वेद प्रभु की वाणी है।

दिव्य ज्ञान वेद प्रभु वाणी है। इसका विस्तार कर मानव जीवन में सुख, शान्ति व ऐश्वर्य वृद्धि का प्रयास करने वाले ही परम पिता परमात्मा को प्रिय होते हैं। पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार ईश्वर के एक ऐसे ही प्रिय पुत्र थे। आजीवन ब्रह्मचारी रह कर इन्होंने निरन्तर वेदों का स्वाध्याय किया और इससे अर्जित ज्ञान को वाणी व लेखनी से जन-जन तक पहुँचाया।

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों से सम्बन्धित वेदाशय को प्रकट करने वाली तीस से अधिक पुस्तकों के प्रणयन के अतिरिक्त उन्होंने लगभग पन्द्रह हजार पृष्ठों में चारों वेदों का भाष्य भी किया। उनके अपने शब्दों में इस वेद भाष्य का उद्देश्य है "हमने अपनी ओर से प्रयास किया है कि सामान्य पाठक पढ़कर यह न कह बैठे कि समझ में नहीं आया और कोई विद्वान् यह न कह सके कि व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं।"

वेद विद्या की अमूल्य निधि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मानव जाति को प्रदान की थी। इसमें पृथ्वी व तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों का ठीक-ठीक ज्ञान एवं जीवन में लोक व्यवहार की सिद्धि तथा भगवत्-प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन है। वेदों का मुख्य विषय तो अध्यात्म ज्ञान ही है। प्रतीकों, रूपको व अलंकारों में बांध कर इसे गुह्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेद के शब्द ऐसे रहस्यमय ज्ञान की ओर संकेत करते हैं जिन्हें भाषा की साधारण पद्धति से समझा ही नहीं जा सकता।

वेद के इस गुह्य ज्ञान का उद्घाटन ऋषि-मुनियों ने दीक्षा, तप एवं ध्यान द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों व उपनिषदों में किया। कालान्तर में साधना के अभाव में तथा अप्रचलित भाषा शैली के कारण वेद के अभिप्राय को समझना कठिन होता गया। यही कारण था कि रावण, स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वररूचि, भट्ट भास्कर, महिधर व उव्वट आदि बाद के भाष्यकार वेद के वास्तविक अर्थों को अपने भाष्यों में प्रकट न कर पाए।

पाश्चात्य विद्वान् भी वेदों में निहित उदात्त ज्ञान का मूल्यांकन न कर सके। वे इन्हें आदिम काल के पशुपालकों के गीत अथवा वैदिक युग का इतिहास तथा गाथा भण्डार मात्र समझ कर रह गये। उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में महर्षि दयानन्द ने नैरुक्तिक प्रणाली से भाष्य करके दिखाया कि वेदों में बीज रूप से सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान विद्यमान है।

पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार ने स्वामी दयानन्द की निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार वेदभाष्य किया है। वह निरुक्त एवं व्याकरण के अप्रतिम विद्वान् थे। वेद मन्त्रों की शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करने तथा संगति लगाने में उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। व्याकरण, धातु पाठ से युक्त उनका यह भाष्य जहां उद्भट विद्वानों के लिए विचार विमर्श की सामग्री प्रस्तुत करता है वहीं सामान्य पाठक के लिए यह अत्यन्त प्रेरणादायक, रोचक, सरल, सुबोध एवं सहज में ही हृदयंगम हो जाने वाला है।

अजय भल्ला

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी: ०११-६५८४५५९९, ९३१३७८४२७२